नाटक समयसार अक्षरशः प्रवचन

भाग-४

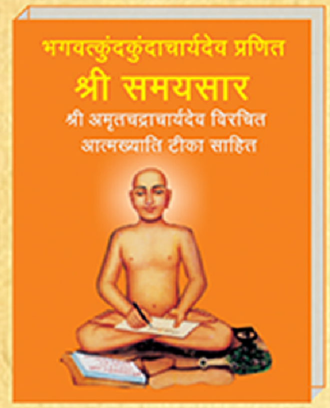

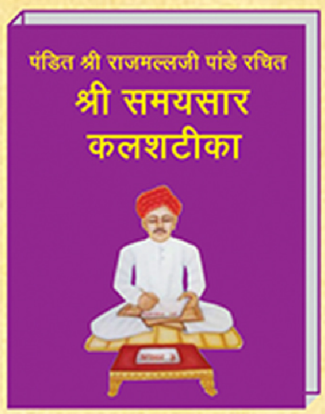

-:प्रकाशक:-
श्री कुंदकुंदकहान दिगंबर
जैन मुमुक्षु मंडल ट्रस्ट
पार्ला-सांताक्रुझ , मुंबई

ॐ

परमात्मने नमः

नाटक समयसार प्रवचन

(भाग-4)

अध्यात्म प्रेमी कविवर पण्डित बनारसीदासजी कृत
नाटक समयसार ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
शब्दशः प्रवचन बंध द्वार, पद 51 से 58;
मोक्षद्वार, पद 1 से 53; सर्वविशुद्धि द्वार, पद 1 से 63
प्रवचन क्रमांक 101 से 133

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2080

वीर संवत
2550

ई. सन
2024

—: प्रकाशन :—

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावायभावाय: सर्व भावान्तरच्छिदे॥

सदेह विदेह जाकर महाविदेहक्षेत्र में विराजमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवाधिदेवश्री सीमन्धर भगवान की दिव्य देशना का अपूर्व संचय करनेवाले, भरतक्षेत्र में सीमन्धर लघुनन्दन, ज्ञानसाम्राज्य के सम्राट, भरतक्षेत्र के कलिकाल सर्वज्ञ, शुद्धात्मा में निरन्तर केली करनेवाले हालते-चालते सिद्ध-सम भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् 49 के वर्ष में हुए हैं।

भगवान महावीर से प्रवाहित ज्ञान में आचार्यों की परम्परा से श्री गुणधर आचार्य को ज्ञानप्रवाद पूर्व के दसवें पूर्व अधिकार के तीसरे प्राभृत का ज्ञान था। तत्पश्चात् के आचार्यों ने अनुक्रम से सिद्धान्त रचे और परम्परा से वह ज्ञान भगवान कुन्दकुन्द आचार्य को प्राप्त हुआ।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वि.सं. 49 में सदेह महाविदेह में आठ दिन गये थे, उन्होंने श्री सीमन्धर भगवान के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृतरूपी ज्ञानसरिता का तथा श्रुतकेवलियों के साथ हुई आध्यात्मिक सूक्ष्मचर्चा का अमूल्य खजाना हृदयगत करके भरतक्षेत्र में आकर पंच परमागम आदि आध्यात्मिक शास्त्रों की रचना की। उनमें का एक श्री समयसारजी द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म शास्त्र है। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने 415 मार्मिक गाथाओं की रचना की है। यह शास्त्र सूक्ष्म दृष्टिप्रधान ग्रन्थाधिराज है, जो भवरहित अशरीरी होने का शास्त्र है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के बाद लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् अध्यात्म के अनाहत प्रवाह की परिपाटी में इस अध्यात्म के अमूल्य खजाने के गहरे हार्द को स्वानुभवगत कर श्री कुन्दकुन्ददेव के ज्ञान हृदय को खोलनवाले, सिद्धपद साधक, मुनिवर सम्पदा को आत्मसात करके निज स्वरूप साधना के अलौकिक अनुभव से श्री समयसार शास्त्र की 415 गाथाओं की टीका करने का सौभाग्य श्री अमृतचन्द्र आचार्यदेव को प्राप्त हुआ। उन्होंने 'आत्मख्याति' नामक टीका की रचना की। तदुपरान्त उन गाथाओं पर 278 मार्मिक कलश तथा परिशिष्ट की रचना की। यह टीका वाँचते हुए परमार्थतत्त्व के मधुर रसास्वादी धर्मजिज्ञासुओं के हृदय में नि:सन्देह आत्मा की अपूर्व महिमा आती है, क्योंकि आचार्यदेव ने इसमें परम हितोपदेशक, सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर भगवन्तों का हार्द खोलकर अध्यात्मतत्त्व के निधान ठसाठस भर दिये हैं। अध्यात्मतत्त्व के हार्द को सर्वांग प्रकाशित करनेवाली यह 'आत्मख्याति' जैसी सुन्दर टीका अभी तक दूसरी किसी जैन अध्यात्मग्रन्थ की लिखी हुई नहीं है।

श्री समयसार कलश पर अध्यात्मरसिक पण्डित श्री राजमलजी पाण्डे ने टीका लिखी है, जो वि.सं. सत्रहवीं शताब्दी में हुए हैं। वह उन्होंने राजस्थान के ढूंढार प्रदेश में बोली जानेवाली प्राचीन ढूंढारी भाषा में लिखी है। सामान्यबुद्धि के जिज्ञासु जीव भी सरलता से समझ सकें, इस प्रकार विस्तार से स्पष्टतापूर्वक और जोरदार शैली से स्पष्ट किया है। टीका में स्थान-स्थान पर निर्विकल्प सहज

स्वानुभव का अतिशय महत्त्व बतलाया है और उसकी प्राप्ति करने के लिये प्रेरणा दी है। वे कविवर श्री बनारसीदासजी से थोड़े से वर्ष पहले ही हो गये हों, ऐसा विद्वानों का मानना है।

श्री समयसार कलश की विद्वान् पण्डित राजमलजी ने टीका की और उसके आधार से विद्वान् पण्डित कविवर श्री बनारसीदासजी ने 'नाटक समयसार' की रचना की है। यह ग्रन्थ अध्यात्म का एक उज्ज्वल रत्न है।

पण्डित बनारसीदासजी का जन्म वि.सं. 1943 के माघ महीने में मध्य भारत में रोहतकपुर के पास बिहोली गाँव में हुआ था। उनका कुल श्रीमाण था और गोत्र बिहोलिया था। विद्वान कविवर श्री बनारसीदासजी ने पण्डित राजमलजी रचित 'समयसार कलश' के आधार से 'नाटक समयसार' की रचना की है। उसमें मंगलाचरण तथा उत्थानिका के 51 पद, जीवद्वार के 35 पद्य, अजीवद्वार के 14, कर्ता-कर्म-क्रिया द्वार के 36, पुण्य-पाप एकत्व द्वार—16, आस्रव द्वार—15, संवर द्वार—11, निर्जरा द्वार—61, बन्ध द्वार—58, मोक्ष द्वार—53, सर्वविशुद्धिद्वार—137, स्याद्वाद द्वार—21+1, साध्यसाधक द्वार—56, चौदह गुणस्थानाधिकार—115, ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति के 40 पद की रचना की गयी है।

वर्तमान इस काल में मोक्षमार्ग प्रायः लुप्त हुआ था। मिथ्यात्व का घोर अन्धकार छाया हुआ था। जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त मृतप्रायः हुए थे। परमागम मौजूद होने पर भी उनके गूढ़ रहस्यों को समझानेवाला कोई नहीं था। ऐसे में जैनशासन के नभमण्डल में एक महाप्रतापी वीर पुरुष, अध्यात्ममूर्ति, अध्यात्मयुगसृष्टा, आत्मज्ञसन्त, अध्यात्म युगपुरुष, निष्कारण करुणाशील, भवोदधि तारणहार, भावि तीर्थाधिराज परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का उदय हुआ।

भारत की भव्य वसुन्धरा, वह सन्तरत्न पकने की पवित्र भूमि है। उसमें सौराष्ट्र का नाम अग्रगण्य है। अर्वाचीनयुग में अध्यात्मप्रधान जैन गगनमण्डल में चमकते नक्षत्र सम समीप समयज्ञ श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्म युगसृष्टा आत्मज्ञ सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पवित्रात्मा बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूति धर्मप्रकाशक साधक महात्माओं की जगत को भेंट देकर, सौराष्ट्र की धरती पुण्यभूमि बनी है। तथा सोनगढ़ में एक ही रात्रि में सम्यग्दर्शन प्राप्त कर श्री निहालचन्द सोगानीजी ने सोनगढ़ से अपनी मोक्षयात्रा शुरु की है।

परम देवाधिदेव चरमतीर्थंकर परम पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा पुनः प्रवाहित और गुरु परम्परा द्वारा सम्प्राप्त जिस परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 'परमागम समयसार' इत्यादि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है, उस पुनीत प्रवाह के अमृत का पान करके, अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्मसाक्षात्कार पाकर, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरात, समग्र भारतवर्ष तथा विदेश में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन

प्रसारित कर वर्तमान सदी के विषमय भौतिकयुग में दुःखी जीवों का उद्धार किया है, वे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति परमोपकारी परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म सुधारस मंगलमय पवित्रता, पुरुषार्थ से धधकता ध्येयनिष्ठ सहज वैराग्य नितरता उत्तम बालब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्गदर्शक सदुपदेशों और दूसरे अनेकानेक उपकारों का वर्णन चाहे जितना संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी बहुत पृष्ठ भर जायें, ऐसा है।

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने 45-45 वर्षों तक अलौकिक प्रवचनों और तत्त्वचर्चाओं द्वारा मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया। उन्होंने 15 शास्त्रों पर सम्पूर्ण तथा अन्य सात शास्त्रों पर अमुक प्रवचन तथा अमुक शास्त्रों पर बहुत बार प्रवचन किये हैं। लगभग 9400 घण्टे के प्रवचन टेप और सी.डी. में संग्रहित किये गये हैं।

यदि अक्षरशः प्रवचन की पुस्तक बनायी जाये तो उसका बहुत लाभ मुमुक्षुओं को होगा। प्रवचन में आये हुए सन्दर्भ को शान्तचित्त से विशेष घोलन कर सके। न समझ में आये हुए सन्दर्भ पूछ सके, तथा किस अपेक्षा से और न्याय पूज्य गुरुदेव निकालकर देते हैं, उसका अवलोकन भी कर सके इत्यादि। अलग-अलग मण्डलों तथा व्यक्तियों की भावना थी कि सभी शास्त्रों के अक्षरशः प्रवचन प्रकाशित हों तो मुमुक्षुओं को बहुत लाभ का कारण होगा।

हमारे पार्ला मण्डल के ट्रस्टियों के समक्ष मुमुक्षुओं ने अनुरोध करने पर उन्होंने सहर्ष स्वीकारता पूर्वक अनुमोदना दी और पार्ला मण्डल ने श्री नाटक समयसार पर अक्षरशः प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय किया और तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यवाही श्री पंकजभाई प्राणभाई कामदार को सौंपी गयी। जिससे मुमुक्षुओं से प्रवचन लिखाना, उन्हें जाँचना, कम्पोज कराना, दो बार प्रूफ रीडिंग और भाषा दृष्टि से चैक कराना तथा प्रकाशित कराना इत्यादि गतिविधियाँ सम्मिलित हैं।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी लाभ प्राप्त करे, इस भावना से और हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज की विशेष माँग को दृष्टिगोचर करते हुए प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद और सी.डी. प्रवचन से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ में नाटक समयसार बन्ध द्वार, पद 51 से 58; मोक्षद्वार, पद 1 से 53 तथा सर्वविशुद्धि द्वार, पद 1 से 63, के कुल 33 प्रवचन संग्रहित हैं।

सभी आत्मार्थी मुमुक्षुजन प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का भरपूर लाभ प्राप्त करें, इस पवित्र भावना के साथ विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

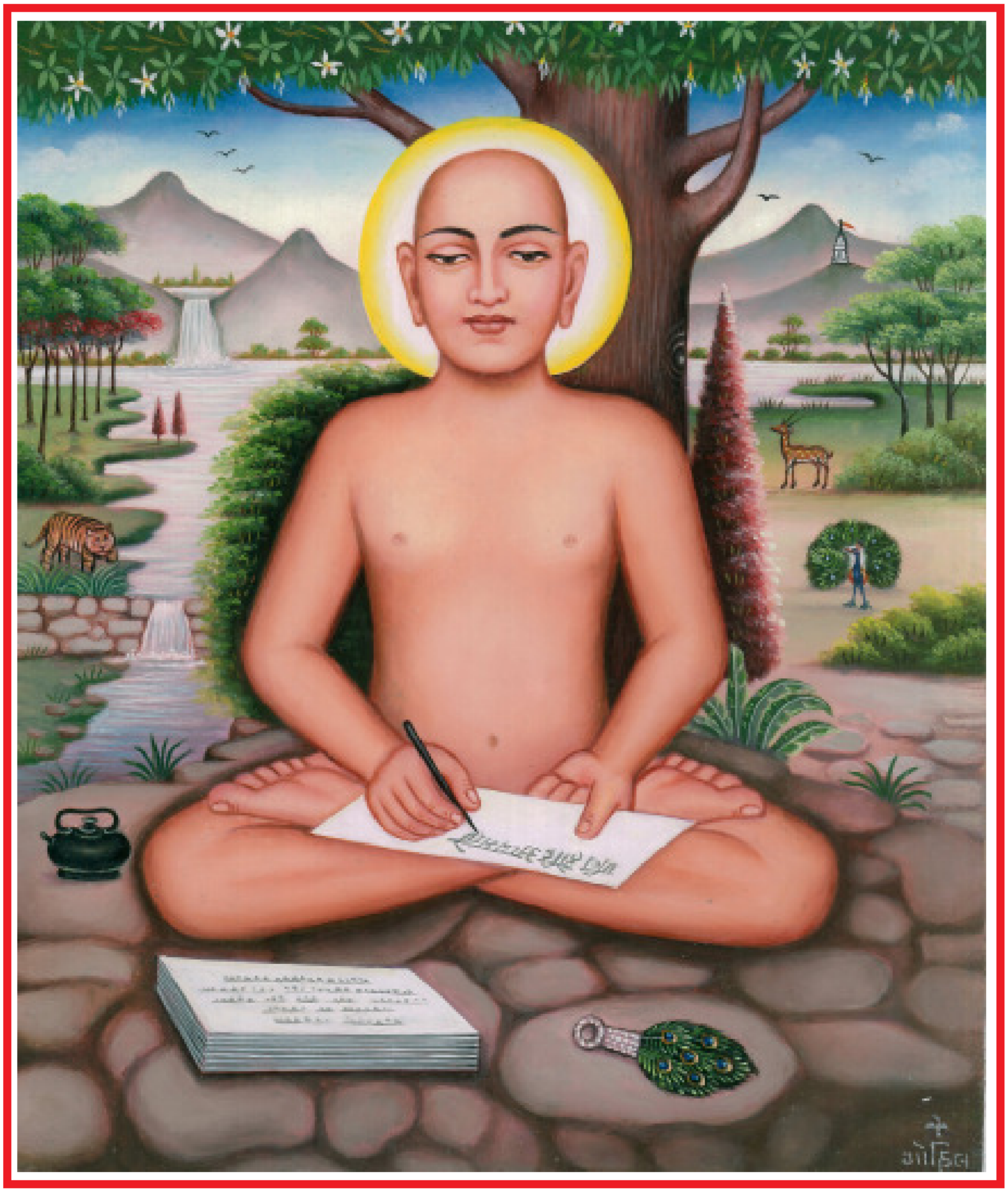

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध–विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह

अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की

देश–विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश–विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और

मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन,

और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्‌चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	अधिकार तथा पद नम्बर	पृष्ठ नं.
१०१.	बन्ध द्वार, पद—५१ से ५४	१
१०२.	बन्ध द्वार, पद—५५ से ५८	२०
१०३.	बन्ध द्वार का सार तथा **मोक्ष द्वार,** पद—१ से ४	४२
१०४.	मोक्ष द्वार, पद—५ से ८	६२
१०५.	मोक्ष द्वार, पद—९ से १२	८१
१०६.	मोक्ष द्वार, पद—१३ से १७	९९
१०७.	मोक्ष द्वार, पद—१८ से २२	११८
१०८.	मोक्ष द्वार, पद—२३, २४	१३७
१०९.	मोक्ष द्वार, पद—२४,२५,२६,२७	१५६
११०.	मोक्ष द्वार, पद—२८,२९,३०	१७४
१११.	मोक्ष द्वार, पद—३१,३२,३३	१९२
११२.	मोक्ष द्वार, पद—३४ से ३९	२१३
११३.	मोक्ष द्वार, पद—४० से ४४	२३६
११४.	मोक्ष द्वार, पद—४५ से ५०	२५८
११५.	मोक्ष द्वार, पद—५१,५२,५३ मोक्ष द्वार का सार	२७७
११६.	मोक्ष द्वार का सार	२९६
११७.	**सर्वविशुद्धि द्वार,** पद—१,२	३१२
११८.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—३,४,५	३३४
११९.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—६,७,८	३५४
१२०.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—८,९,१०	३७३
१२१.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१० से १४	३९२
१२२.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—१५ से २०	४१४
१२३.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—२१ से २६	४३७
१२४.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—२७ से ३४	४५७
१२५.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—३५ से ३८	४८०
१२६.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—३९ से ४१	५०३
१२७.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—४२ से ४५	५२३
१२८.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—४५ से ४८	५४७
१२९.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—४८ से ५०	५६९
१३०.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—५१ से ५३	५८८
१३१.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—५४ से ५८	६०७
१३२.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—५९, ६०	६२८
१२३.	सर्वविशुद्धि द्वार, पद—६१,६२,६३	६४७

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

नाटक समयसार प्रवचन

(भाग - 4)

कविवर पण्डित बनारसीदासजी कृत **नाटक समयसार** पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
अक्षरश: प्रवचन

प्रवचन नं. १०१, आषाढ़ कृष्ण ३, रविवार, दिनांक ११-०७-१९७१
बन्ध द्वार काव्य - ५१ से ५४

यह समयसार नाटक है। बन्ध अधिकार। मन की चंचलता के ऊपर ज्ञान का प्रभाव। ५१ है न? ५१। बन्ध अधिकार है उसमें, आत्मा मन के सम्बन्ध में जुड़ता है, तब उसे चंचलता अर्थात् शुभ—अशुभ अनेक प्रकार के विकल्प होते हैं, वह बन्ध का कारण है, यह कहते हैं पहली बात। अन्तिम लाईन में कहेंगे।

मन की चंचलता पर ज्ञान का प्रभाव (सवैया इकतीसा)

धायौ सदा काल पै न पायौ कहूं साचौ सुख,
रूपसौं विमुख दुखकूपवास बसा है।
धरमकौ घाती अधरमकौ संघाती महा,
कुरापाती जाकी संनिपातकीसी दसा है।।
मायाकौं झपटि गहै कायासौं लपटि रहै,
भूल्यौ भ्रम-भीरमैं बहीरकौसौ ससा है।
ऐसौ मन चंचल पताकासौ अंचल सु,
ग्यानके जगेसौं निरवाण पथ धसा है।।५१।।

शब्दार्थ:-धायौ=दौड़ा। विमुख=विरुद्ध। संघाती=साथी। कुरापाती=उपद्रवी। गहै=पकड़े। बहीर=बहेलिया। ससा (शशा)=खरगोश। पताका=ध्वजा। अंचल=कपड़ा।

अर्थ:-यह मन सुख के लिये हमेशा से ही भटक रहा है, पर कहीं सच्चा सुख नहीं पाया। अपने स्वानुभव के सुख से विरुद्ध हुआ दु:खों के कुएँ में पड़ रहा है। धर्म का घाती, अधर्म का संगाती, महा उपद्रवी, सन्निपात के रोगी के समान असावधान हो रहा है। धन-सम्पत्ति आदि को फुर्ती के साथ ग्रहण करता है और शरीर से मुहब्बत लगाता है, भ्रमजाल में पड़ा हुआ ऐसा भूल रहा है, जैसा शिकारी के घेरे में खरगोश भ्रमण करता है। यह मन पताका के वस्त्र के समान चंचल है, वह ज्ञान का उदय होने से मोक्षमार्ग में प्रवेश करता है।।५१।।

काव्य-५१ पर प्रवचन

धायौ सदा काल पै न पायौ कहूं साचौ सुख... भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप होने पर भी, मन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कल्पना में, पर में सुख है, ऐसी कल्पना के जाल में फँस गया है। **धायौ सदा काल पै न पायौ कहूं साचौ सुख...** शरीर में, इन्द्रियों में, विषयों में, लक्ष्मी में, कीर्ति में सुख है, ऐसी कल्पना करके मन वहाँ दौड़ता है, परन्तु वहाँ सुख है नहीं। धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। मन पर में (सुख) खोजने जाता है, सुख कहो या धर्म, (परन्तु) पर में तो धर्म है नहीं। **न पायौ कहूं साचौ सुख रूपसौं विमुख...** चैतन्यस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसे स्व-स्वरूप के अनुभव से तो विमुख है। मन की कल्पना और मन का सम्बन्ध है, वह तो आत्मा के स्वरूप के अनुभव से विपरीत—विमुख है। समझ में आया?

आज एक प्रश्न था, परन्तु चले गये लगते हैं। एक कच्छी थे कच्छी। कहे, यह देव-गुरु... गुरु चाहिए, गुरु चाहिए। श्रीमद् के होंगे। 'गुरु गम बिना न होय।' गुरु बिना नहीं होता। कहा, गुरु होते हैं, परन्तु उनसे होता नहीं। अरे, अरे! गजब! मन का ऐसा स्वभाव है कि पर में जुड़ता है, इसलिए उसे विकल्प तो आवे ही। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो अथवा चाहे तो स्त्री-कुटुम्ब-परिवार हो। चाहे तो सम्मेदशिखर की यात्रा हो या शत्रुंजय की यात्रा हो, मन का धर्म है कि वह विकल्प ही उत्पन्न करे परसन्मुख में।

रूपसौं विमुख... शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्दस्वरूप से तो विमुख है मन की कल्पना। चाहे तो शुभभाव हो या चाहे तो अशुभ हो, (वह) बन्ध का कारण है। आहाहा! जहाँ सुख नहीं, वहाँ सुख मानता है। **दुख कूपवास बसा है...** दु:ख के कुएँ के वास में बसा है। पुण्य और पाप के संकल्प-विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध के भाव—वह दु:ख का कुआँ है। आहाहा! यह लोगों को बहुत कठोर लगता है। भगवान की भक्ति, गुरु मिलें और उनकी भक्ति करे और कल्याण न हो, यह कैसी बात? गुरु तो तू है पहला। तेरा स्वरूप तू समझ और समझा अन्तर आत्मा को, हों! वह गुरु स्वयं है। गुरु ने कहा, तीर्थंकर ने कहा। परन्तु वह स्वयं अपने को समझावे नहीं कि 'मैं तो एक आनन्द और ज्ञान हूँ। पर के सम्बन्ध से रहित अबन्ध हूँ, पर के सम्बन्ध के बन्ध से रहित हूँ।'—ऐसा आत्मा को स्वयं अन्दर समझावे नहीं और समझे नहीं, तब तक गुरु ने कहा हुआ इसे अन्तर में बैठता नहीं। ऐसी बात है। आहाहा!

धरमकौ घाती... भाषा क्या की है,...! मन के सम्बन्ध में जितनी परद्रव्य-अनुसारी वृत्ति होती है, वह सब मन की चंचलता धर्म का घात करनेवाली है। आहाहा! चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय, स्मरण में मन जाये, परन्तु वह मन धर्म का घात करनेवाला है। आहाहा! बन्ध अधिकार है न? धर्म का घाति, अधर्म का संघाति। वापस गुलांट खाकर अनेकान्त करते हैं। जितना लक्ष्य उसका परद्रव्य की ओर जाये, मन का संग हो तो परद्रव्य की ओर ही जाये, वे सब पुण्य-पाप के विकल्प अधर्म का संघात है। आहाहा! वह मन में अधर्म का संघात है। मन से रहित... अन्तिम कहेंगे। 'ज्ञानानन्द हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ' ऐसा अन्तर्मुख होकर उसे अनुसरकर अनुभव करे तो वह अबन्धपरिणाम और वह धर्म है। जितना मन परद्रव्य अनुसारी विकल्प उठावे, वह सब अधर्म है। लो, यहाँ तो पुण्यभाव को अधर्म कहा। नवीनभाई! बात ऐसी बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने सुना न हो न....

कहते हैं, अधर्म का संघाति महा, वापस ऐसा। वह तो अधर्म का संघाति हे और महा कुरापाती—उपद्रवी है। आहाहा! भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द, उसका संग छोड़कर जिसने मन का संग किया, वह सब उपद्रव का करनेवाला है। आहाहा! चाहे तो व्रत के, भक्ति के, दान के, पूजा के परिणाम हों, परन्तु वे सब उपद्रवी हैं। चैतन्य की

शान्ति को उपद्रव करनेवाले हैं, सूक्ष्म-कठोर बात पड़े लोगों को, हों! पर की दया के भाव, परद्रव्य की भक्ति के भाव, कहते हैं, वह मन की चंचलता है, वह तो जीव को उपद्रव है। आहाहा! वह भाव, उसमें शान्ति और आनन्द को उपद्रव करते हैं।

जाकी संनिपातकीसी दसा है... सन्निपातिया जैसी दशा है।

मुमुक्षु : रुपये खर्च करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खर्च करे? रुपये कहाँ इसके बाप के थे? इसके रुपये कहाँ थे? रुपये तो जड़ के हैं। ऐई! अजीव पैसा मैंने खर्च किया, ऐसा मन का जो विकल्प उठा, वह स्वरूप को उपद्रव है। ऐसी बात है। वीतरागमार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। राग के विकल्प से कहीं वीतराग धर्म उत्पन्न नहीं होता। यह सन्निपात जैसी दशा है, कहते हैं। **सन्निपात रोगी के समान असावधान हो रहा है।** कहाँ मैं जुड़ता हूँ और क्या करता हूँ, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप मन और मन के विकल्प से अत्यन्त भिन्न है। ऐसी चीज़ के ऊपर दृष्टि (नहीं), और उसे स्वीकार न करके, मन के झुकाववाला भाव का स्वीकार, वह उपद्रव है, कहते हैं। आहाहा!

धर्मी को अशुभभाव तो उपद्रव लगता है, परन्तु शुभभाव भी उपद्रव लगता है, ऐसा कहते हैं। है न उसमें? आहाहा! अज्ञानी उसमें—विषय में सुख मानता है। वह विषय ही है। भगवान की प्रतिमा और भगवान को देखना, वह विषय है। राग का विषय है, शुभराग। स्त्री, पुत्र, परिवार, राजपाट—यह अशुभराग का विषय है। है तो दोनों एक, बन्ध की अपेक्षा से पर विषय। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन काम पड़े जगत को, हों! **मायाकौं झपटि गहै...** धर्मी तो अपनी धर्मदशा से आत्मा को ग्रहे। तब मन के विकल्प तो माया को शीघ्रता से ग्रहे—पकड़े। यह ठीक है, यह ठीक है, यह ठीक है। शुभराग ठीक है, अशुभराग अठीक है। आहाहा!

पूजा—भक्ति और पूजा चले न आठ-आठ दिन तक। क्या कहा जाता है उसे? विनय। नहीं कहते? कर्मदहन पूजा, शान्तिहित पूजा। ऐसा कुछ आता है न आठ-आठ दिन। शान्ति स्नात्र, लो। कहते हैं कि उस ओर का विकल्प है, वह उपद्रव है। माया को झपटता है, कहते हैं, वह तो। आहाहा! माया में झपट मारता है, कहते हैं। अब यह

लोग बेचारे नहीं कहते कि यह ... सब उत्थापित हो जायेगा? यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा तो, मन के सम्बन्ध से परलक्ष्यी पुण्य-पाप के विकल्प हों, उनसे तो भिन्न है। मन से भिन्न है और विकल्प से भी भिन्न है। अब ऐसे भिन्न तत्त्व को सत्ता में स्वीकार में न लेकर, ऐसी सत्ता महाप्रभु की ऐसी सत्ता का स्वीकार न करके, यह सत्ता—मन के विकल्प का स्वीकार करता है, वह दुःखरूप है। माया में झपट मारी है इसने, कहते हैं। आहाहा!

कायासौ लपटि रहै... शरीर के साथ एकत्वबुद्धि। इस शरीर के काम मैं करता हूँ, इस शरीर से काम मैं करता हूँ, (ऐसे) शरीर में लिपटा रहता है। यह तो जड़ मिट्टी है, अजीवतत्त्व है। भगवान (आत्मा) तो जीवतत्त्व भिन्न है। इस शरीर के साथ लिपटकर रहे एकाकार। आहाहा! सवेरे गाय जाती थी बड़ी लट्ठ जैसी। उस गाय को कुछ पर्याय के अंश की खबर नहीं। यह तो वह शरीर, यह मैं। बस, यह हरी घास खाये ऊँची। उसे कुछ खबर नहीं होती। पर्यायबुद्धि का बड़ा प्रश्न उठा है। पर्याय, उस अंश को स्वीकार करे। उस अंश को कहाँ स्वीकारता है? परन्तु आगे बढ़ा हुआ ज्ञानी उसका एक अंश में अटकना हुआ है, यह उसके कारण। यह तो शरीर, बस वह मैं। आहाहा! यह मन का झुकाव पर में जाता है, कहते हैं। आता है न, 'मने मनुष्याणां कारणं बंध मोक्ष...' मन का सम्बन्ध करने से बन्ध ही होता है और उसका सम्बन्ध छोड़ने से आत्मा के परिणाम अबन्ध होते हैं। समझ में आया?

कायासौ लपटि रहै... उसमें कुछ सुन्दर रूपवान शरीर हो और लड्डू-बड्डू दो-चार खाता हो ठीक से, मौसम्बी का पानी पीवे और मानो अलमस्त शरीर और मानो यह सब इसमें आ गया। यह तो धूल—श्मशान की राख है। आहाहा! उसके साथ लिपटकर लिप्त हो गया है, कहते हैं। यहाँ मन का सम्बन्ध पर में जाता है, उसकी व्याख्या है। मन का सम्बन्ध स्व में जाता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा!

भूल्यो भ्रम-भीरमैं... भ्रमणा में भूला। भ्रमजाल। **भीर** अर्थात् जाल। भ्रमणा की जाल में भूला। **बहीरकोसौ ससा है...** खरगोश को शिकारी पकड़ने जाये, बेचारा ऐसे से ऐसे दौड़ा-दौड़ करे। खरगोश छोटा होता है न? मारने जाये (तो) ऐसे भागे, ऐसे भागे, ऐसे भागे। **शिकारी के घेरे में खरगोश भ्रमण करता है**। खरगोश... खरगोश... इसी

प्रकार यह भी चारों ओर भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा... पैसा कमा दूँ, प्रसिद्ध होऊँ, सामने पड़ूँ, बड़े घर, दुनिया में महत्ता माने, कुर्सी पहली पड़े, और इतने हमने खर्च किये, ऐसा प्रसिद्ध हो तो वह प्रसन्न होता है। आहाहा! जैसे खरगोश को शिकारी ने घेरा होता है और वह ऐसे दौड़ा-दौड़ा करता है बेचारा, उसी प्रकार यह उसकी भाँति मन के संकल्प-विकल्प में दौड़ा-दौड़। यहाँ से होगा, यहाँ से होगा, यहाँ से होगा। आहाहा!

ऐसौ मन चंचल पताकासौ अंचल सु... वस्त्र की पताका का छोर होता है न छोर। ध्वजा का छोर पतला फरफर फरफर हुआ ही करता है। इसी प्रकार मन के जुड़ान में स्वरूप के अनुभव बिना, स्वरूप की दृष्टि के सत्ता के स्वीकार बिना, उस मन के चंचलपने का, वस्त्र का छोर जैसे धूजा करता है, वैसे धूजा ही करता है। आहाहा! **ग्यानके जगेसौं निरवाण पथ धसा है...** लो। अन्त में डाला। यह बन्धभाव है, उससे 'मैं' भिन्न हूँ। ज्ञानानन्दस्वभाव, मेरा धर्म मुझमें, मेरा सुख मुझमें। मेरा धर्म मुझमें से आता है। कहीं पुण्य-पाप के राग में से नहीं आता। जैसा जब अन्तर स्वरूप का अनुभव का ज्ञान होने से **निरवाण पथ...** निर्वाण—मोक्ष की ओर गति जाती है। वह संसार की ओर गति थी, यह आत्मा का ज्ञान होने पर... अरे, मैं तो आत्मा! मन से भिन्न, मन के विकल्प से भिन्न, कर्म और शरीर तो कहीं रह गये बाहर—ऐसा मैं आत्मा। वास्तविक आत्मा की स्थिति ऐसी है। ऐसा जिसे अन्तर ज्ञान हो, वह ज्ञानी मोक्ष के पंथ में घुसा है अब। अब छूटने की ओर उसकी दौड़—गति है। राग से छूटने की ओर उसकी गति है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ग्यानके जगेसौं निरवाण पथ धसा है... लो! **वह ज्ञान का उदय होने से मोक्षमार्ग में प्रवेश करता है...** लो। बहुत संक्षिप्त बात। बन्धद्वार है न, इसलिए मन के सम्बन्ध में संकल्प-विकल्प परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न हो, वह सब बन्ध का कारण है। वह सब मन की चंचलता का कारण है। परन्तु मन और चंचलता से रहित मेरा स्वभाव अस्तिरूप ज्ञान और आनन्दरूप शाश्वत् वस्तु हूँ, शाश्वत् वस्तु हूँ—ऐसा अन्तर में ज्ञान होने पर, वह ज्ञान की दशा छूटने की ओर गति करती है। राग से छूटने की ओर की उसकी गति होती है। देखो, यह मोक्ष का मार्ग। वापस संक्षिप्त शब्द में कहा।

ग्यानके जगसौं निरवाण पथ धसा है... ज्ञान... वह क्रियाकाण्ड का भाव था।

यह ज्ञानकाण्ड निकला अब। आहाहा! संकल्प-विकल्प पुण्य-पाप के, उनसे मेरी चीज़ अत्यन्त भिन्न है। क्योंकि संकल्प-विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। कर्म, शरीर तो अजीवतत्त्व है। उससे मेरी चीज़ अत्यन्त भिन्न है। ऐसे अन्तर की दृष्टि होने पर, आत्मा तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अनुभव में आने से, धर्मी की गति मोक्ष के पंथ की ओर है अब। समझ में आया? ५२। **मन की स्थिरता का प्रयत्न।**

★ ★ ★

काव्य - ५२

मन की स्थिरता प्रयत्न (दोहा)

जो मन विषै कषायमैं, बरतैं चंचल सोइ।
जो मन ध्यान विचारसौं, रुकै सु अविचल होइ।।५२।।

शब्दार्थ:-रुकै=ठहरे। अविचल=स्थिर।

अर्थ:-जो मन विषय-कषाय आदि में वर्तता है, वह चंचल रहता है और जो आत्मस्वरूप के चिन्तवन में लगा रहता है, वह स्थिर हो जाता है।।५२।।

काव्य-५२ पर प्रवचन

जो मन विषै कषायमैं, बरतैं चंचल सोइ।
जो मन ध्यान विचारसौं, रुकै सु अविचल होइ।।५२।।

जो मन विषय और कषाय में जाता है, पुण्य-पाप के विकल्प में जाता है, वह चंचल रहता है। वहाँ तो चंचल है। **जो मन ध्यान विचारसौं... आत्मस्वरूप के चिन्तवन में लगा रहता है।** अथवा स्वरूप का ज्ञान, या स्वरूप का ध्यान, उसमें लगे **वह स्थिर हो जाता है।** मन वहाँ स्थिर हो जाता है। अर्थात् मन का विकल्प वहाँ होता नहीं। अरे, भारी कठिन बात आयी। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। ऐसा इसे पहले जानकर मानना पड़ेगा। फिर अनुभव में ले, तब उसे धर्म होता है। आहाहा!

जो मन ध्यान विचारसौं, रुकै सु अविचल होई... चंचल था, उसके सामने अब अविचल हो गया। शुद्ध चैतन्य भगवान में दृष्टि को स्थापित करने से स्थिर हो जाता है। बाहर के संकल्प-विकल्प में तो अस्थिर और चंचलता ही होती है। आहाहा! यह देखो न, भगवान की भक्ति करे, मानो ऐसे उछल-उछलकर करे ऐसे। हाथ में क्या होता है? करताल। एकमेक होकर अन्दर। वह क्रिया और राग से चीज़ भिन्न है, उसका कुछ लक्ष्य रहा? या वहीं का वहीं घिरा? जैसे खरगोश को शिकारी ने घेरा में डाला हो और भटका-भटक करे, उसी प्रकार संकल्प और विकल्प में भटका-भटक करे ऐसे। और मैं भक्ति करता हूँ, दूसरे देखते हैं, देखते हैं कि कितने रस से भक्ति करता हूँ। ठगा गया है न वह। ठगने का काम किया। अब हमको कुछ धर्म होगा। **जो मन ध्यान विचारसौं, रुकै न अविचल होइ,...** लो।

★ ★ ★

काव्य - ५३

पुनः (दोहा)

तातैं विषै कषायसौं, फेरि सु मनकी बांनि।
सुद्धातम अनुभौविषै, कीजै अविचल आनि।।५३।।

शब्दार्थ:-बांनि=आदत-स्वभाव। अविचल=स्थिर। आनि=लाकर।

अर्थ:-इससे मन की प्रवृत्त विषय-कषाय से हटाकर उसे शुद्ध आत्मअनुभव की ओर लाओ और स्थिर करो।।५३।।

काव्य-५३ पर प्रवचन

तातैं विषै कषायसौं, फेरि सु मनकी बांनि। बांनि—आदत। मन की आदत (है कि) पर की ओर जाता है, उसे मोड़ दे। **सुद्धातम अनुभौ विषै, कीजै अविचल आनि... अविचल आनि...** (अर्थात्) लाकर... लाकर... अविचलपना करके। ज्ञान भी अविचल हो गया। ज्ञान, आनन्द—ऐसा जो आत्मा का अविनाशी नित्य स्वभाव है,

उसका अनुभव करने से, **कीजै अविचल आनि...** अविचलता को प्रगट कर। **लाओ और स्थिर करो... आत्म अनुभव की ओर लाओ और स्थिर करो। मन की प्रवृत्ति विषय-कषाय से हटाकर उसे शुद्ध आत्म अनुभव की ओर लाओ और स्थिर करो।** आहाहा!

चैतन्यस्वरूप ज्ञान और आनन्द ही जिसकी चीज़—वस्तु है, उसमें स्थिर करो, प्रतीति करो, उसका ज्ञान करो और उसमें स्थिर होओ। इसका नाम अबन्धपरिणाम और मोक्ष का मार्ग है। शर्तें कठिन। कल ऐसा कहा किसी ने, 'हम साधारण प्राणी तो ऐसा नहीं कर सकते। तब हमको दूसरा कोई मार्ग है?' भगवान की भक्ति करना, यह करना, वह करना, उससे फिर करते... करते... आगे बढ़े, ऐसी बात है। ऐ शान्तिभाई! विकल्प-राग करते... करते... आगे बढ़ा जाता है या राग की रुचि छोड़ने से आगे बढ़ा जाता है? परन्तु लोगों को यह सुनने को मिला न हो तो ऐसी चोट लगे अन्दर से। आहाहा! यह तो सब उत्थापित कर डालते हैं। चाहे तो शुभराग हो, परन्तु यह सब बन्ध का ही कारण है। मोक्ष के पंथ में उसकी सहायता नहीं है। आहाहा! होता है, ज्ञानी को भी शुभभाव होता है, परन्तु वह समझता है कि यह बन्ध का कारण है। यह मेरे स्वभाव की शान्ति को सहायक नहीं है। आहाहा! कठिन काम!

यह अभी का है? सोनगढ़ का है यह सूत्र?

मुमुक्षु : पुस्तक तो पहले की है परन्तु प्रकाशित हुआ सोनगढ़ में न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुस्तक तो पहले से है। इसका अक्षर अक्षर है। वह पहले का है। अक्षर अक्षर यह हो जायेगा। छोटी जगह छोटा, बड़ी जगह बड़ा। इसका अक्षर अक्षर इसमें का है जो पहले छपाया है। तो क्या सोनगढ़ का हो गया? आहाहा! इसमें से अक्षर अक्षर मिला लो। यह छप गया है। पहले कहाँ छपा है? मुम्बई। मुम्बई छपा है, लो। हिन्दी टीकासहित है। सागर निवासी बुद्धिलाल श्रावक। प्रकाशक—जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पोस्ट गिरगाम, मुम्बई। उसमें से अक्षर अक्षर हो जाये तो यह वाँचना।

भले ढ़ेढ़ के घर का सोना हो, परन्तु सोना तो सोना है या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो साहूकार को....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, उसे ऐसा कि ढ़ेढ़ के घर का सोना है, परन्तु सोना है या नहीं? अब सुन न! सोना की जाति में अन्तर होगा? ढ़ेढ़ का सोना अलग और बनिये के सोना अलग? इसी प्रकार परमात्मा तीर्थंकरदेव कहते हैं कि पुण्य और पाप के विकल्प की जाति को छोड़ दे। परन्तु उसे छोड़कर जाना कहाँ, हमारे करना क्या? पहले निर्णय तो कर कि यह छोड़नेयोग्य है और अन्तर में जानेयोग्य है। अन्तर में गये बिना, आरूढ़ हुए बिना इसे शान्ति और सुख का अंश प्रगट होगा नहीं। यह बात है, भाई! कोई दुनिया सामने देखने नहीं आयेगी। वह तो मरने के समय सब छोड़कर चला जायेगा। आहाहा! शरीर के टुकड़े-टुकड़े पड़े रहेंगे। आहाहा! उसकी स्त्री और पुत्र तो कहीं रह गये। बेचारे रोते खड़े रहेंगे।

'एक रे दिन ऐसा आयेगा,.... सगी नारी रे तेरी कामिनी, खड़ी टगटग देखे। आ रे काया में अब कुछ नहीं, खड़ी सुबक सुबककर रोवे।' स्वार्थ। अब इसमें कुछ नहीं है। पुरानी है। उस सज्झायमाला में है। वह दुकान पर सब पढ़ी हुई, उसमें कोई-कोई याद रह गये। चार सज्झायमाला है न! एक नहीं थी, वह अभी आयी। कोई लाया नहीं जामनगर से? भाई लाये जयन्तीभाई? 'एक दिवस ऐसा आयेगा।' आयेगा वह आयेगा, वह पक्का आयेगा। उसमें कुछ... आहाहा! भाई को ठीक नहीं, हों! अन्दर वेदन लगता है अधिक, हों! डॉक्टर को बुलाओ न, एक-दो इंजैक्शन दे तो जरा थोड़ी देर ठीक रहे। यह बुलावे डॉक्टर को। मारा, आयुष्य पूरा हो गया यहाँ।

शिवाभाई पटेल थे न।

मुमुक्षु : एक दृष्टान्त दिया। निरोग हुए का दृष्टान्त दो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरोग धूल में भी हुए नहीं।

मुमुक्षु : वह केस ही ऐसा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई केस (ऐसा) नहीं था। निरोगी था। निरोगी था। छत्तीस घण्टे पहले तो कुछ नहीं था। ओळा खाये, क्या कहलाते हैं तुम्हारे? सींग के— मूँगफली के। दानें सींके हुए। केला के ऊपर खाये। उसमें फिर यहाँ भोजनशाला की

रोटियाँ। तब बचुभाई थे न? रोटियाँ। बचुभाई वहाँ आये थे जयपुर। बीस दिन की रसोई उनकी थी। गोदीका के घर में। घर में, हों! उसमें (समूह में) दूसरे।

रोटी, दाल, भात, खिचड़ी, सब्जी, कढ़ी खाकर आये। आये, साथ में श्वास नाभि से हट गया। कोई रोग नहीं। कोई कुछ कहता नहीं।

मुमुक्षु : श्वास हट गया, वह रोग नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो नया हुआ।

मुमुक्षु : रोग तो नया ही होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाकर बैठे थे, देखो! वह कमरा था न कमरा। मैं आहार करके घूमने जाता था। क्यों पटेल? अन्तक्रिया। परन्तु क्या अन्तक्रिया? क्या कहते हो? अन्तिम क्रिया। अभी खाकर आये। यह नाभि से श्वास हट गया है, नीचे बैठता नहीं। .... खाकर आये, फिर एकदम बस श्वास यहाँ से हट गया, नाभि से (हट गया)। ऐसे चलता है, नीचे बैठता नहीं। अन्तिम क्रिया लगती है। ऐ चन्दुभाई!

मिनिट पहले कुछ नहीं और दूसरे मिनिट में कहे अन्तक्रिया।

मुमुक्षु : वह तो सबको ऐसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको ऐसा होता है... परन्तु यह तो शरीर लठ्ठ जैसा, हों! .... आहाहा! धरमचन्दभाई थे न, डॉक्टर थे। वे कहे, छत्तीस घण्टे से चलता है यह बेचारे को। लाओ न इंजेक्शन दूँ। मैं यहाँ आया और इंजेक्शन दिया। मैं वहाँ गया वहाँ अन्तिम। श्वास छूटने की तैयारी। यह इंजेक्शन ने काम किया। यह स्थिति ऐसी होनेवाली ही थी। उसे तो बेचारे को भाव ऐसा कि बहुत श्वास चलता है... दूसरा कुछ रोग नहीं, बस यह रोग उठा, बस। कोई एकदम... आहाहा! पटेल कैसे है? कहे, अन्तक्रिया है। परन्तु किसकी अन्तक्रिया? मरने की है, कहे। वे दूसरे तो तड़पकर मरे। हाय, हाय!

अरे, एक देह के छूटने के काल में वह तो छूटी हुई चीज़ ही है। वह दूसरी चीज़ है। वह कहीं तुझमें आयी नहीं, तेरी होकर रही नहीं। शरीर कुछ तेरा होकर नहीं रहा। वह तो जड़ होकर रहा है। आहाहा! क्षेत्र में इकट्ठा रहा है, वह जरा छूटे आगे तो इसे

लगे कि हाय... मर गये। आहाहा! तेरे कमाये हुए पैसे और स्त्री, पुत्र सब रोते... रोते... 'निकालो रे निकालो इसे सब कहे। मानो जन्मा ही नहीं था।' यह सज्झाय में आता है। 'निकालो रे निकालो इसे सब कहे। मानो जन्मा ही नहीं था जी। एक रे दिन ऐसा आयेगा।' सज्झायमाला में है।

मुमुक्षु : ऊँचा मन्दिर अरु ऊँचा मालिया....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। आहाहा!

चार सज्झायमाला है। श्वेताम्बर में है। चार थी। दुकान के ऊपर ही रखी थी। (संवत्) १९६६-६७ की बात है। चारों ही सज्झायमाला पढ़ी थी। दुकान के ऊपर फुरसत बहुत थी। सबकी तरह हम कुछ नहीं करते थे। दुकान चले तो चले। फुरसत में हों तो पढ़ें। शास्त्र स्वाध्याय और ऐसा। आहाहा! कोई एक रजकण भी तेरा नहीं भाई! अरे, राग का कण भी तेरा नहीं। तेरा हो तो पृथक् कैसे पड़े? ऐसी चीज़ को अन्तर में देखने से, कहते हैं, ज्ञान जगा। **कीजै अविचल आनि...** इसे स्थिर कर अब अन्दर में। पर से हटकर स्वरूप में स्थिर कर, यह मोक्ष का उपाय और धर्म है। आहाहा! **आत्मानुभव करने का उपदेश।** ५४।

★ ★ ★

काव्य - ५४

आत्मानुभव करने का उपदेश (सवैया इकतीसा)

अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज,
निराधार निगम निरंजन निरंध है।
नानारूप भेस धरै भेसकौ न लेस धरै,
चेतन प्रदेस धरै चेतनकौ खंध है।।
मोह धरै मोहीसौ विराजै तोमैं तोहीसौ,
न तोहीसौ न मोहीसौ न रागी निरबंध है।
ऐसौ चिदानंद याही घटमें निकट तेरे,
ताहि तू विचारु मन और सब धंध है।।५४।।

शब्दार्थ:-अमूरति (अमूर्ति)=आकार रहित। अविनासी=नित्य। अज=जन्म रहित। निगम=ज्ञानी। निरंध=अखण्ड। खंध (स्कंध)=पिण्ड। धंध (द्वंद)=द्विविधा।

अर्थ:-यह आत्मा अलख, अमूर्तीक, अरूपी, नित्य, अजन्म, निजाधार, ज्ञानी, निर्विकार और अखण्ड है। अनेक शरीर धारण करता है पर उन शरीरों के किसी अंशरूप नहीं हो जाता, चेतन प्रदेशों को धारण किये हुए चैतन्य का पिण्ड ही है। जब आत्मा शरीर आदि से मोह करता है, तब मोही हो जाता है और जब अन्य वस्तुओं में राग करता है, तब उनरूप हो जाता है। वास्तव में न शरीररूप है और न अन्य वस्तुओं रूप है, वह बिलकुल वीतरागी और कर्मबंध से रहित है। हे मन! ऐसा चिदानन्द इसी घट में तेरे निकट है, उसका तू विचार कर, उसके सिवाय और सब जंजाल है।।५४।।

काव्य-५४ पर प्रवचन

अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज,
निराधार निगम निरंजन निरंध है।
नानारूप भेस धरै भेसकौ न लेस धरै,
चेतन प्रदेस धरै चेतनकौ खंध है।।
मोह धरै मोहीसौ विराजै तोमैं तोहीसौ,
न तोहीसौ न मोहीसौ न रागी निरबंध है।
ऐसौ चिदानंद याही घटमें निकट तेरे,
ताहि तू विचारु मन और सब धंध है।।५४।।

घटमैं निकट.... यह तो समझाना है न। तू स्वयं ही है। आहाहा!

कैसा है आत्मा? **अलख** है। पहला शब्द। अलख अर्थात् इन्द्रियों से जाना जाये नहीं। लख्यो अर्थात् जाना न जाये। विकल्प और पुण्य के परिणाम और इन्द्रियों से जाना न जाये, इसलिए भगवान अलख है। आहाहा! 'अलख नाम धूनी लगी गगन में, मगन भया मन मेरा, आसन मारी श्रुत दृढ़ धारी, दिया अगम घर देरा। देख्या अलख देरा।' यह लाईन है। श्रीमद् में है। श्रीमद् में है। अलख अर्थात् इन्द्रियों से जाना न जाये। वह

विकल्प से-राग से जाना न जाये। वह व्यवहार के पुण्यपरिणाम से जाना न जाये, ऐसा कहते हैं। उसके निर्मल अंश द्वारा जाना जाये। आहाहा! तत्त्वज्ञान तरंगिणी में दृष्टान्त दिया है न शरीर का। कि यह शरीर है, यह लकड़ी हाथ में रखकर ऐसे... ऐसे करे तो कुछ जाना जाये कि ठण्डा है या गर्म है वह? और नख से ऐसे जाने तो जाना जाये? तत्त्वज्ञान तरंगिणी में है। उसका अवयव यह है। हाथ उसका अवयव है। वह ऐसा जाने कि यह गर्म है या ठण्डा है।

इसी प्रकार आत्मा में... शरीर, वाणी तो लकड़ी है, उससे तो जाना जाये नहीं और पुण्य के विकल्प नख जैसे हैं, उससे जाना जाये नहीं। वह रागरहित ज्ञान का अंश जो निर्मल है, वह उसका अवयव है। उस अंश द्वारा अंशी जानने में आता है। अरे गजब! न्याय से तो समझाया है। शरीर को जानना हो कि गर्म-ठण्डा है। वह सीधे ऐसा करे तो जाने। लकड़ी हाथ में रखकर ऐसे ज्ञात हो? बढ़ा हुआ नख हो (उसे) ऐसे फिराये तो जानने में आवे? उसके अवयव द्वारा अवयवी ज्ञात होता है। पुण्य-पाप के विकल्प कहीं उसका अवयव नहीं, वह तो विकार है, वह तो बढ़ा हुआ नख है। आहाहा! शान्तिभाई!

ऐसी बात है। परन्तु वाडावालों को ऐसा कठिन लगे। यह .... सोनगढ़ ने कैसा निकाला है? निकाला नहीं, अनादि का है, सुन न अब! यह नया धर्म निकाला, ऐसा कहते हैं। नया नहीं, भगवान वीतराग का अनादि का यह मार्ग है। बिल्ली के बच्चे को आँखें आयी (खुली), तब ज्ञात हुआ कि जगत है। परन्तु आँखें नहीं थी, उससे पहले भी जगत तो था। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ऐसा अनादि का है। तुझे जानने में आवे, इसलिए ऐसा लगे कि यह कैसे? जानने में आवे तो यह है, बस। अनादि का चिदानन्द अलख—राग और इन्द्रियों से न ज्ञात हो, ऐसा भगवान अनादि का है। आहाहा!

अलख अमूरति... ऐसे तो इन्द्रियों और राग से परमाणु भी ज्ञात न हो। परमाणु भी अणीन्द्रिय है न। परन्तु यह अमूर्ति है, ऐसा विशेष लेना है। अमूर्ति—उसमें रंग, गन्ध, स्पर्श, रस, रूप है नहीं। आहाहा! अब वे विवाद करे। कर्म का सम्बन्ध है, वहाँ तक उसे मूर्त कहो और मूर्त, मूर्त को बाँधता है। यह विवाद .... जगत का। ऐई! कथंचित् मूर्त और कथंचित् अमूर्त... आहाहा! वह तो कर्म जड़ है, उसके सम्बन्ध से जीव को

सम्बन्धवाला गिनकर मूर्त कहा, स्वयं मूर्त है नहीं। अनादि अमूर्त है। अरूपी चीज़ है, उसे रूप कैसा? तो भी अरूपी परन्तु वस्तु है। अरूपी अर्थात् रूप नहीं, इसलिए वस्तु नहीं, ऐसा नहीं है। चैतन्यघन, आनन्द का घन है। रंग, गन्ध, रस, रूप रहित चीज़ है।

अविनासी है। वह वस्तु अविनाशी ध्रुव त्रिकाल है... त्रिकाल है। आहाहा! उसकी दृष्टि कर और उसका ज्ञान कर और उसमें रमणता (कर), वह धर्म है। अविनाशी है। **अज** है—जन्मता नहीं। अ+ज। ज—जन्मना। उसे जन्म नहीं। अजन्म है। है न? अविनाशी का अर्थ नित्य किया। अजन्म। जन्मना कैसा जीव को? जीव तो अनादि-अनन्त है, उसे जन्म हो? नयी चीज़ हो, उसका जन्म होता है। बहुत तो पर्याय की सृष्टि को जन्म कहा जाता है। आत्मा में पर्याय हो, उसे जन्म कहा जाता है। जन्म कहो, सृष्टि कहो, उत्पाद कहो, सृजनहार दशा कहो। वस्तु को सृजन—उत्पन्न है? वस्तु तो त्रिकाल है। अज है। जन्म-मरण नहीं उसे। पर्याय को जन्म कहते हैं न?

आता है न समन्तभद्राचार्य में? जन्म और व्यय और ध्रुव भगवान एक समय में जानते हैं। इसलिए प्रभु! तेरी सर्वज्ञता इसमें सिद्ध होती है। समय एक और वस्तु तीन। एक समय में तीन जाने, वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त हो नहीं सकता। समय वह कितना? 'क' बोले इसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें उसमें का एक समय। एक समय अर्थात् ओहोहो! तथापि उत्पाद, व्यय और ध्रुव—यह तीन आपने जानकर कहा, वह आपका—सर्वज्ञ का लक्षण है। जिसने एक समय में तीन जाने, आहाहा! छोटा, छोटे में छोटा समय और एक में तीन। वह पूर्ण ज्ञान का लक्षण है। पूर्ण ज्ञान सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा हो नहीं सकता। आहाहा! ऐसा इसके भरोसे—विश्वास में आना चाहिए। ऐसा का ऐसा भगवान ऐसे थे तीन काल, तीन लोक को जाननेवाले। तेरे भाव में उसका भासन होना चाहिए न? आहाहा! कहते हैं, **अज**।

निराधार—किसी का आधार नहीं उसे। निरालम्बी वस्तु अनादि-अनन्त है। निज आधार, ऐसा। निराधार, निजाधार। पर का आधार नहीं (और) स्व का आधार निजाधार। अनादि-अनन्त। यह शरीर है तो शरीर के आधार से आत्मा रहा है, कर्म के आधार से रहा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जहाँ-जहाँ है, वहाँ निराधार और निजाधार है। पर के आधाररहित और स्व के आधारवाला। आहाहा! लो, लिया न निराधार।

किसी का आधार नहीं। परन्तु यह धर्मास्ति नहीं, इसलिए सिद्ध आगे नहीं जाते, लो।

मुमुक्षु : जाना है ही कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई! उसका आधार है या नहीं? धर्मास्ति है... अधर्मास्ति है, उसके आधार से रहे हैं। अधर्मास्ति स्थिर में निमित्त है या नहीं? अधर्मास्ति बिना सिद्ध रहे? यहाँ कहते हैं, किसी के कारण से कोई नहीं। निजाधार और निराधार है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... अनन्त आत्माओं की जाति ही ऐसी है, ऐसा कहते हैं।

निगम है वह। है न? ज्ञानी है, निगम का अर्थ। निगम-निगम। नि—विशेष, गम। अकेला ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। ज्ञानस्वरूपी अरूपी प्रभु आत्मा, वह तो निगम है। अगम-निगम की बातें, आता है न? अगम में इन्द्रिय से गम न हो, ऐसी बातें। निगम अर्थात् ज्ञानस्वरूप। यह तो चैतन्यपुंज प्रभु है। यह विशेष कहेंगे वापस। **निरंजन**। वह निरंजन है, लो। निर्विकार है। निरंजन अर्थात् अंजन नहीं। प्रभु आत्मा को राग-द्वेष का मैल—अंजन नहीं। आहाहा! ऐसा घट में विराजमान तेरा प्रभु है। तुझे तेरी खबर नहीं। दुनिया की खबर लेने निकल गया। घर के लड़के चक्की चाटे, पड़ोसी को आटा। तू कौन? कहाँ? कैसे? यह कुछ मुझे खबर नहीं पड़ती। दुनिया की बातें करने देव का पुत्र उतारा मानों ऊपर से। उसकी बातें कम न हो वापस घण्टे-दो घण्टे में। **निरंजन** है अर्थात् निर्विकारी है।

निरंध है। निर्द्वंद्व (अर्थात्) दो नहीं। अखण्ड है। द्वैत नहीं, अद्वैत है। आहाहा! आत्मा अन्दर भगवान अरूपी अद्वैत है। पर के साथ काम नहीं, यह आ गया अपने, नहीं? यह श्लोक आ गये न? पर के साथ क्या काम है। आ गया ४५ में। **ए जगवासी यह जगत्, इन्हसौं तोहि न काज...** (पद) ४५ में आ गया। अरे, जगवासी प्राणी! **यह जगत्, इन्हसौं तोहि न काज...** आहाहा! ४५, ४५। तुझे इस जगत के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! हे जगवासी जीव! **यह जगत्, इन्हसौं तोहि न काज...** तुझे जगत के किसी पदार्थ के साथ कुछ काम नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कोई कहे न? क्या कहते हैं? भाई! हाथीवाले को... हजार हाथीवाले को गरज पड़े, ऐसा कुछ कहते हैं?

मुमुक्षु : एक हाथीवाले को सौ हाथीवाले की गरज पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक हाथीवाले को सौ हाथीवाले की गरज पड़े या सौ हाथीवाले को एक हाथीवाले की गरज पड़े? एकवाला तो ठीक। सौ हाथीवाले को एक हाथीवाले की गरज की बातें करे लोग। भाई! दो हाथ से ताली बजती है, अकेले से नहीं बजती। इसी प्रकार अकेला नहीं शोभता।

मुमुक्षु : अकेला कहाँ शोभे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहते हैं, अकेला ही शोभता है तू, सुन न! वे वन के वृक्ष हों तो उन्हें पत्ते, डालियाँ हों तो शोभे, ऐसा। इसी प्रकार यह अकेला आत्मा नहीं शोभता। स्त्री हो, पुत्र हो, मकान हो, पैसा हो। धूल में भी नहीं, सुन न ....! यहाँ तो पर के साथ तुझे काम नहीं। आहाहा! जहाँ पर के साथ कुछ काम नहीं, उसमें देव-गुरु आ जाते होंगे? ऐ जगवासी, यह जगत। दोनों भिन्न किये।

इन्हसौं तोहि न काज, तैरै घटमैं जग बसै, तमों तेरौ राज... तेरा राज सब यहाँ पड़ा है अन्दर और अन्दर। आहाहा! निरंजन, पश्चात् अखण्ड। **नानारूप भेस धरै...** अनेक प्रकार की अवगाहना में मानो शरीर दिखे साथ में। **भेखको न लेस धरे...** परन्तु शरीर का एक भी अंश आत्मा धरता नहीं। आहाहा! कीड़े के, कौवे के, नारकी के .... आहाहा! स्त्री के शरीर के और पुरुष के शरीर के, शरीर के आकार, हों! ऐसे नानारूप अर्थात् अनेकरूप वेश को धरे। ऐसा कहलाये न बाह्य (अपेक्षा से), ऐसा कहते हैं। धरे अर्थात् व्यवहार से। वास्तव में **भेखको न लेस धरे...** शरीर के वेश का एक अंश को भी धरता नहीं। शरीर के काम अत्यन्त भिन्न, आत्मा के भिन्न। यह तो जगवासी में रहे हुए की भी यह स्थिति है, हों! **नानारूप भेस धरै भेसकौ न लेस धरै, चेतन प्रदेश धरै...** परन्तु वह तो असंख्य चैतन्य प्रदेश को धारण किया है। यह किसी का खेत और किसी का मकान को धारण नहीं करता। **चेतन प्रदेश धरै चेतनकौ खंध है...** यह चेतन का पिण्ड है, ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष और पुण्य-पाप उसमें है नहीं। शरीर, वाणी और वे तो कहीं रह गये बाहर। आहाहा!

चेतन प्रदेश धरै... देखो, क्षेत्र डाला वापस। अन्यमति में कहीं नहीं न। यह तो

असंख्य प्रदेशी वस्तु है। इसलिए प्रदेश डाले। प्रदेश-प्रदेश उनको—अन्यमति को होते नहीं कुछ। या सर्वव्यापक है और या आत्मा है और... **चेतन प्रदेश धरै चेतनकौ खंध है...** असंख्य प्रदेश है और उसका एकरूप स्कन्ध है, ऐसा कहते हैं। चेतन है असंख्य प्रदेशी... प्रदेशवाला है। चेतन का स्कन्ध है। स्कन्ध एकरूप है। वहाँ कहीं पृथक् टुकड़े नहीं। समझ में आया? **चेतन प्रदेश धरै चेतनकौ खंध है...** पुद्गल को स्कन्ध कहा जाता है, चेतन को स्कन्ध? अधिक दो परमाणु इकट्ठे हों, उसे स्कन्ध कहा जाता है। हाँ, सुन न! स्कन्ध अर्थात् पिण्ड।

चेतन प्रदेशों को धारण किया हुआ चैतन्य का पिण्ड ही है। देखो, इन्होंने अर्थ भी ऐसा किया है। स्कन्ध का अर्थ पिण्ड है। उन परमाणु को स्कन्ध कहें, वह तो अधिक रजकणों के सम्बन्ध से उसे स्कन्ध कहा जाता है। इसे कहीं ऐसा नहीं है। स्कन्ध कहा, वह तो पिण्ड है। चैतन्य का पिण्ड अकेला। ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है, वह तो भगवान। अरूपी और ऐसा पिण्ड। अरूपी परन्तु पदार्थ है या नहीं? अस्ति है या नहीं? अविनाशी है या नहीं? वस्तु है या नहीं? आहाहा! ऐसा चैतन्य का पिण्ड प्रभु....

मोह धरै मोहीसौ विराजै तामैं तोहीसौं... आहाहा! क्या कहते हैं? **जब आत्मा शरीरादि से मोह करता है, तब मोही हो जाता है।** पर्यायादि में मोह मानता है। **और जब अन्य वस्तु में राग करता है, तब उनरूप हो जाता है।** उनरूप अर्थात् रागरूप हूँ, ऐसा मानता है। मोह के कारण रागरूप हूँ, द्वेषरूप हूँ, विषय-वासनारूप हूँ—ऐसा मोही मोह के कारण मानता है। **वास्तव में न शरीररूप है न अन्य वस्तुरूप है,...** लो। **मोह धरै मोहीसौ विराजै तोमैं तोहीसौं, न तोहीसौ न मोहीसौ।** उसमें नहीं और मोहवाला भी नहीं। **बिलकुल वीतरागी और कर्मबन्ध से रहित है।** न अन्य वस्तुरूप है, ऐसा।

न तोहिसौ न मोहीसौ... मोही भी नहीं और तोही भी नहीं। उसके रूप—रागरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **न रागी निरबंध है...** वह तो बिल्कुल वीतरागी प्रभु है। आहाहा! वह वस्तु स्वयं वीतरागी स्वरूप है। वीतरागी वस्तु नहीं होती, तो वीतरागी पर्याय कहाँ से आयेगी? आहाहा! निर्ग्रन्थस्वरूप ही आत्मा है। **न रागी निरबंध है...** वह तो बन्ध रहित चीज़ है। **कर्मबन्ध से रहित है...** ऐसा लिखा है। **ऐसो चिदानंद याही घटमैं निकट तेरे...** ऐसा चिदानन्द तेरे घट में तेरे निकट है। आहाहा! निकट कहा उसे,

(मानो) दूसरी चीज़ हो साथ में। ऐई! इसका अर्थ यह कि तू स्वयं ही है। आहाहा! तेरा स्वरूप तुझसे एक समय भी दूर नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसो चिदानंद याही घटमैं निकट तेरे... इस शरीर में अन्दर वस्तु चिदानन्द भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और प्रभुता का पिण्ड, वह तू स्वयं ही है। आहाहा! **ताहि तू विचारु मन।** अरे, मन! उस वस्तु का ध्यान कर न! ऐसा भगवान आत्मा... यह मन के बाहर के विचार को छोड़कर उसका विचार कर न कि ऐसा हूँ, ऐसा हूँ, ऐसा कहते हैं। **और सब धंध है...** उसके अतिरिक्त सब जंजाल... ऐसा भगवान अन्दर विराजमान तेरा स्वरूप परमात्मा है। तू स्वयं वीतराग है। आहाहा! रागवाला कहलाये तो भी रागवाला है नहीं। कर्मवाला कहलाये तो भी कर्मवाला (नहीं)। शरीरवाला कहलाये, तो भी शरीरवाला (नहीं)। आहाहा! व्यवहारनय कहता है कि इस वाला। निश्चय कहे, इस वाला नहीं। **और सब धंध है,...** लो। अब आत्मा के अनुभव की विधि कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०२, आषाढ़ कृष्ण ४, सोमवार, दिनांक १२-०७-१९७१
बन्ध द्वार काव्य - ५५ से ५८

समयसार नाटक, बन्ध द्वार। **आत्मानुभव करने की विधि।** ५५ है न ५५। यह वीरजीभाई को बहुत प्रिय थी। वीरजी वकील, जामनगर। यह बहुत वर्ष पहले, हों! बहुत वर्ष पहले। ओहो! बहुत वर्ष पहले अभ्यास करते। यह चर्चा वहाँ हुई थी एक बार। वह गाँव नहीं भाणवड यहाँ से, नहीं? जामनगर से उठकर आये और गाँव छोटा। भाणवड की उस ओर, भाणवड के उस ओर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। हाँ, हाँ, कैसा? .... (संवत्) १९८८ का, ८९ का वर्ष, लो। वहाँ गाँव में यह चर्चा हुई थी। उन्हें बहुत कण्ठस्थ कण्ठस्थ। और संघराजभाई एक वकील थे। दोनों आये हुए वहाँ गाँव में। ....है। ....साथ में। दोनों वहाँ गाँव में रहे। महाराज यहाँ है न.... फिर यह चर्चा बहुत हुई थी। ८९ की बात है। कितने वर्ष हुए? ११ और २७...

मुमुक्षु : ३८।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३८ वर्ष हुए।

प्रथम सुदृष्टिसौं सरीररूप कीजै भिन्न... आत्मा को साधने की विधि कहते हैं। बन्ध है न बन्ध। बन्ध से भिन्न पड़ने की कला बताते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ५५

आत्मानुभव करने की विधि (सवैया इकतीसा)

प्रथम सुद्रिष्टिसौं सरीररूप कीजै भिन्न,
तामें और सूच्छम सरीर भिन्न मानिये।
अष्ट कर्म भावकी उपाधि सोऊ कीजै भिन्न,
ताहूमैं सुबुद्धिकौ विलास भिन्न जानिये।।

तामें प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप,
वहै श्रुत ग्यानके प्रवांन उर आनिये।
वाहीकौ विचार करि वाहीमैं मगन हूजै,
वाकौ पद साधिबेकौं ऐसी विधि ठानिये।।५५।।

शब्दार्थ:-शरीर=औदारिक, वैक्रियक, आहारक। सूच्छम सरीर (सूक्ष्मशरीर)= तैजस, कार्माण। अष्ट कर्म भाव की उपाधि=राग-द्वेष-मोह। सुबुद्धिकौ विलास= भेदविज्ञान।

अर्थ:-पहले भेदविज्ञान से स्थूल शरीर को आत्मा से भिन्न मानना चाहिए, फिर उस स्थूल शरीर में तैजस, कार्माण सूक्ष्म शरीर हैं, उन्हें भिन्न जानना उचित है। पश्चात् अष्ट कर्म की उपाधिजनित राग-द्वेषों को भिन्न करना और फिर भेद-विज्ञान को भी भिन्न मानना चाहिए। उस भेदविज्ञान में अखण्ड आत्मा विरामान है, उसे श्रुतज्ञानप्रमाण वा नय-निक्षेप आदि से निश्चित करके उसी का विचार करना और उसी में लीन होना चाहिए। मोक्षपद पाने की निरन्तर ऐसी ही रीति है।।५५।।

काव्य-५५ पर प्रवचन

प्रथम सुद्रिष्टिसौं सरीररूप कीजै भिन्न,
तामें और सूच्छम सरीर भिन्न मानिये।
अष्ट कर्म भावकी उपाधि सोऊ कीजै भिन्न,
ताहूमैं सुबुद्धिकौ विलास भिन्न जानिये।।
तामें प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप,
वहै श्रुत ग्यानके प्रवांन उर आनिये।
वाहीकौ विचार करि वाहीमैं मगन हूजै,
वाकौ पद साधिबेकौं ऐसी विधि ठानिये।।५५।।

लो, धर्म करने की और सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की यह विधि। आहाहा! यह विधि। तुम्हारे आवे न विधि?

मुमुक्षु : विधि न करने की....

पूज्य गुरुदेवश्री : विधि न करना, यह विधि नहीं।

मुमुक्षु : यह बाहर की हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन लोगों में ऐसा आवे, विधि करते हुए... मिच्छामि दुक्कडं।

मुमुक्षु : प्रत्येक में आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक में आवे। खबर है न। श्वेताम्बर में आवे। परन्तु वह विधि ही अविधि है। यह तो आत्मा को पर से भिन्न करके स्वसन्मुख होने की विधि, उस विधि की बात है। आहाहा!

प्रथम सुद्रिष्टिसौं सरीररूप कीजै भिन्न... पहले तो शरीर जड़ है। यह औदारिक, वैक्रियक, आहारक—इन तीन से आत्मा भिन्न है, ऐसा पहले भेदज्ञान करना। **तामैं और सूच्छम सरीर भिन्न मानिये...** उसमें भी सूक्ष्म अर्थात् तैजस और कार्मण, यह शरीर भी भिन्न है। चैतन्यतत्त्व भगवान भिन्न है। देखो, यह विधि। ऐसे व्रत पालना और तप करना और यह करना और यह विधि आत्मा को प्राप्त करने की नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें से आपने व्रत-तप निकाला?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है या नहीं? देखो न इसमें। कहो, यह तो सब विकल्प है पर सन्मुख के। यह तो स्वसन्मुख होने की पद्धति यह है। आहाहा! **तामें और सूच्छम सरीर भिन्न मानिये...** कार्मणशरीर भिन्न।

अष्टकर्म भावकी उपाधि सोऊ कीजै भिन्न... कर्म के निमित्त से राग-द्वेष, मोह होता है, उसे भी भिन्न (करना)। **अष्टकर्म भाव...** कर्म के भाव से, हों! कर्म तो भिन्न किया पहले। उस कर्म को तो सूक्ष्म शरीर में भिन्न कहा। परन्तु उसके निमित्त से होता मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव, उसे भी **उपाधि सोऊ कीजै भिन्न...** भावकर्म से भिन्न करना, ऐसा कहा। पहले नोकर्म से अथवा शरीर से, पश्चात् द्रव्यकर्म से, पश्चात् भावकर्म से। समझ में आया? कितनी धीरज चाहिए? यह कहीं पठन से और कहीं तप करने से यह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! जहाँ चीज़ पड़ी है, वहाँ नजर करके पर से भिन्न करके पकड़ना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अष्टकर्म भावकी उपाधि सोऊ कीजै भिन्न... पुण्य-पाप के विकल्प उठें, उनसे भी भगवान भिन्न है, ऐसा अन्दर स्वसन्मुख होना। **ताहूमैं सुबुद्धिकौ विलास भिन्न जानिये...** उसमें भी भेदज्ञान (अर्थात् कि) यह राग है, वह मैं नहीं और आत्मा हूँ, ऐसा जो विकल्प, उससे भी भिन्न जानना। आहाहा! समझ में आया? अनुभव प्राप्त करने की यह पद्धति और कला। **सुबुद्धिकौ विलास भिन्न जानिये...** यह विकल्प है भेदज्ञान। यह राग नहीं, यह आत्मा—ऐसा जो (दो) के बीच भेदज्ञान करने की वृत्ति, उससे भी भिन्न जानिये। वस्तु उससे भिन्न है। कहो, अब व्यवहार करने से निश्चय होगा, यह बात इसमें कहाँ रही?

मुमुक्षु : यह आवे न, पहले होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या होता है? किसे क्या?

मुमुक्षु : यह सब पहले होता है, उसे व्यवहार कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ कहा है? इसमें कहीं व्यवहार की बात आयी नहीं। क्या? पहले शरीर से भिन्न करना, ऐसा कहा। भिन्न करना, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : शरीर परपदार्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले पर हो, परन्तु उससे भिन्न करना, ऐसा कहा। उसे रखकर होता है, ऐसा कहा है? यहाँ तो सुबुद्धि का विलास, उसे रखकर होता है, ऐसा है? उससे भिन्न करके... जिससे भिन्न करना, उससे निश्चय होगा, ऐसा बने? समझ में आया? कहाँ गये भाई? बालचन्दभाई गये?

मुमुक्षु : हाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक। समझ में आया? उपाधि में भावकर्म भी लिया और विकल्प-व्यवहार से भिन्न (कहा)। और यह एक भावकर्म सूक्ष्म है कि यह... यह... आत्मा और यह राग, वह नहीं, वह राग यह नहीं—ऐसा जो विकल्प, उससे भिन्न है। आहाहा!

तामैं प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप... लो। अब आया। **तामैं प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप...** अभेदरूप विराजता है। आहा!

मुमुक्षु : यह तो पर्याय में भगवान विराजता है, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रभु **चेतन विराजत अखंडरूप...** अखण्ड द्रव्य। **चेतन विराजत अखंडरूप... वहै श्रुतज्ञानके प्रमाण उर जानिये।** श्रुतज्ञान के प्रमाण से द्रव्य को पकड़ना, ऐसा कहते हैं। उसमें नय-निक्षेप डाला है। यह नय-निक्षेप की आवश्यकता नहीं। भावश्रुतज्ञान है, उससे पकड़ना। भले श्रुतज्ञान प्रमाणरूप हुआ, परन्तु यह पहले ऐसे पकड़ना, वह निश्चय में जाता है, ऐसा। समझ में आया? यह भावश्रुतज्ञान की बात है, हों! द्रव्यश्रुत नहीं, उसका विकल्प भी नहीं। लोगों को भारी कठिन बात लगे न! यह सब हम करते हैं, यह व्यवहार करते हैं और करते-करते होगा। ऐसे का ऐसे सीधे होता होगा? लो, ऐसा लोग कहते हैं।

यह तो कहते हैं कि अभी एक विकल्प है, उससे भिन्न करने से होता है। उससे होता नहीं। क्या हो? वाद-विवाद में बात चढ़े। आधार मिले व्यवहारवालों को कि व्यवहार को साधन कहा है, कारण कहा है, हेतु कहा है। सब बातें हैं, सुन न अब! **श्रुतज्ञान के प्रमाण उर जानिये...** हृदय—ज्ञान प्रमाण से आत्मा को पकड़ना, ऐसा कहते हैं। अखण्ड वस्तु जो अभेद, उसे श्रुतज्ञान से पकड़ना। क्यों भाई, नहीं वजुभाई?

मुमुक्षु : आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक। कहो, समझ में आया? यह माल कैसे पकड़ना, उसकी विधि कहते हैं। हलुवा कैसे बनाना, उसकी विधि जानते हैं या नहीं? आहाहा! इसी प्रकार आत्मा का कार्य शान्ति का, अनुभव का कैसे करना? प्रथम में प्रथम यह करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

तामैं प्रभु चेतन,... लो। है न? अखण्ड आत्मा... लो, विराजमान है। प्रभु (शब्द) निकाल दिया। **उस भेदविज्ञान में अखण्ड आत्मा विराजमान है। वहै श्रुतग्यानके प्रवांन...** भावश्रुतज्ञान ऐसे प्रमाणज्ञान से उसे पकड़ना। **वाहीकौ विचार करि...** उस ओर का—सन्मुख का ही विचार करके, **वाहीमै मगन हूजै...** भाषा तो बहुत थोड़ी, भाव (गहरे)। आहाहा! **वाहीकौ विचार करि वाहीमैं मगन हूजै...** अखण्ड आनन्दस्वरूप प्रभु चैतन्य का विचार करके उसमें लीन होना, वही आत्मा को प्राप्त होने की पद्धति है। वह धर्म प्राप्त करने की यह पद्धति है।

मुमुक्षु : संक्षिप्त में कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें ?

मुमुक्षु : आपने संक्षिप्त में डाला, इस बात में कुछ समझ में नहीं आया।

मुमुक्षु २ : यह कहते हैं प्रभु! संक्षिप्त बात की, जरा लम्बा चले तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : संक्षिप्त कही यह।

मुमुक्षु : संक्षिप्त कही। इसमें तो लम्बा हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा हो नहीं परन्तु इसमें। यह अन्दर विकल्प से भी भिन्न करना, वह संक्षिप्त में संक्षिप्त पद्धति है। आहाहा!

विकल्प और निर्विकल्प कहा है न? कि भाई! यह तो भूतनैगमनय से कहा है, सुन न! लिखा न, तुमने लिख दिया है। परमात्मप्रकाश में आता है। परमात्मप्रकाश में १४वीं गाथा। है न? वह तो पृष्ठ अन्दर पड़ा है। पृष्ठ लिखा हुआ पड़ा है। भाई ने–पण्डितजी ने लिखा हुआ है। भूतनैगमनय को याद किया था न हमारे चेतनजी ने।

मुमुक्षु : चेतनजी को सब याद रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना कैसे मिलाना उसमें जरा....

मुमुक्षु : तो अब आपको कहना पड़ेगा न!

पूज्य गुरुदेवश्री : ले। इन्होंने कहा समकित का, तुमने कहा मोक्षमार्ग का। दोनों (में) अन्तर था। मोक्षमार्ग की बात है वहाँ।

मुमुक्षु : परन्तु ऐसा कि उस मोक्षमार्ग में समकित आ गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ऐसे नहीं आता।

मुमुक्षु : वह तो जैन .... यही कहते।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते ही नहीं।

यहाँ तो तीनों की एकता की एक साथ बात है। निश्चयमोक्षमार्ग, स्वरूप का अभेदपने का अनुभव—वह विकल्प से कहना, वह आस्रववाला तत्त्व है, ऐसा कहा वहाँ। और उससे भिन्न पड़कर अभेदरूप परिणमन हो, वह निरास्रव है। आहाहा! भारी

कठिन, भाई! परन्तु जिसे आत्मा की शान्ति चाहिए हो, उसे यह करना ही पड़ेगा। क्यों हेमचन्दजी? यह अभी कहते थे कि यह समझना ही पड़ेगा। यह कहीं किसी से मिले, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....ऐसा कुछ होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बातें।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य की टीका में भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आवे, सब आवे। आप्त अर्थात्... श्रुतज्ञान हो और श्रुतज्ञान से... है न, आता है न उसमें? आप्त का परोपकार, नहीं? ऐई! ज्ञान से प्राप्ति होती है। द्रव्यश्रुतज्ञान भगवान से होता है और भगवान आप्तपुरुष से होता है। उनकी मेहरबानी का फल मुक्ति है, लो, ऐसा आवे।

मुमुक्षु : है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से, किस नय के कथन से यह बात है?

मुमुक्षु : परन्तु यह है ऐसी तो हाँ करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, किसने इनकार किया? नहीं ऐसा कुछ?

यह तो अभी एक कच्छी आये थे। बहुत आगे पड़ते। श्रीमद् की पुस्तक लेकर (आये थे)। 'देखो इसमें, भगवान से ऐसा होता है, भगवान से ऐसा होता है, गुरु से ऐसा होता है।' कहा, सब होता है, एकबार सुनो। यह गुरु से होता है, इसका अर्थ (यह कि) तू स्वयं गुरु हो अन्दर। अन्दर के समझण के पिण्ड को समझण से पकड़। अब तू गुरु हो, तब बाहर के गुरु को व्यवहार कहा जाता है। ऐसा है, भाई! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! गुरु के सन्मुख देखकर आत्मा में जाया जाता होगा? भगवान के सन्मुख देखकर अन्दर जा।

मुमुक्षु : अन्दर में तो ऐसा है, गुरु के सामने बैठना, उनकी चेष्टा देखना, ऐसा करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखना, वह सब व्यवहार की बातें।

वाहीकौ विचार करि वाहीमैं मगन हूजै... आहाहा! भाई! तेरा कार्य तो तुझसे

होगा न, ऐसा कहते हैं। विकल्प है, वह पर है, तेरा कार्य कहीं उससे होगा? पर से तेरा कार्य होगा? आहाहा! **वाकौ पद साधिबेकौं ऐसी विधि ठानिये...** ऐसा है। यह पद साधने की यह विधि **ठानिये**—स्थापिये, लो। **ऐसी रीति है... मोक्षपद पाने की निरन्तर ऐसी ही रीति है।** अनादि वीतरागमार्ग में सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के पंथ में यह मार्ग प्राप्त करने की पद्धति है। उसमें आया नहीं था अपने? हे जगवासी जीव! जगत से तुझे क्या काम है? आहाहा! आया था न वह?

मुमुक्षु : पद ४५।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४५।

ए जगवासी यह जगत्, इन्हसौं तोहि न काज,... आहाहा!

मुमुक्षु : अपने ज्ञान में भासे, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तैंरै घटमैं जग बसै, तामैं तेरौ राज। परद्रव्य के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है? आहाहा! दुनिया महिमा करे या दुनिया निन्दा करे, उसके साथ तुझे क्या काम है? आहाहा! **ए जगवासी यह जगत्, इन्हसौं तोहि न काज, तैंरै घटमैं जग बसै।** सब तेरे घट में है सब अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : स्व-पर का ज्ञान सब बसता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसी पद्धति है, लो। अब ५६। **आत्मानुभव से कर्मबन्ध नहीं होता।**

★ ★ ★

काव्य - ५६

आत्मानुभव से कर्म बंध नहीं होता (चौपाई)

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जानै।
रागादिक निज रूप न मानै।।
तातैं ग्यानवंत जगमांही।
करम बंधकौ करता नांही।।५६।।

अर्थः-संसार में सम्यग्दृष्टि जीव ऊपर कहे अनुसार आत्मा का स्वरूप जानता है और राग-द्वेष आदि को अपना स्वरूप नहीं मानता, इससे वह कर्मबन्ध का कर्ता नहीं है।।५६।।

काव्य-५६ पर प्रवचन

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जानै।
रागादिक निज रूप न मानै।।
तातैं ग्यानवंत जगमांही।
करम बंधकौ करता नांही।।५६।।

मुमुक्षु : बन्ध अधिकार में कर्ता नहीं, ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। **इहि विधि वस्तु व्यवस्था...** देखो, ऊपर कहा न! इस प्रकार से वस्तु व्यवस्था जाने। **रागादिक निज रूप न मानै...** बन्धभाव है न राग का, उसे अपना न जाने। वह पर है, आहाहा! राग आदि, द्वेष आदि को अपना स्वरूप नहीं जानता। **तातैं ग्यानवंत...** धर्मी तो अपने ज्ञान और आनन्द के स्वरूप को अपना जानता है। ऐसे **ग्यानवंत जगमांही, करम बंधकौ करता नांही...** उसे कर्मबन्धन का भाव ही नहीं जहाँ उसमें, वहाँ बन्ध का कर्ता वह है नहीं। राग के परिणाम से भी जहाँ भगवान आत्मा भिन्न है। अबन्धस्वरूपी प्रभु के अनुभव में उसे कर्मबन्धन होता नहीं। आहाहा! **करम बंधकौ करता नांही...** लो। विशेष १६ कलश अब आया। अभी तक तो बनारसीदास के बनाये हुए वैराग्य आदि के (पद थे)। अब १६वाँ कलश।

इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बलात्,
तन्मूलां बहुभाव-सन्तति-मिमा-मुद्धर्तुकामः समम्।
आत्मानं समुपैति निर्भर-वहत्पूर्णैक-सम्विद्युतं,
येनोन्मूलित-बन्ध एष भगवा-नात्मात्मनि स्फूर्जति।।१६।।

भेदज्ञानी की क्रिया। देखो, यह क्रिया आयी।

★ ★ ★

काव्य - ५७

भेदज्ञानी की क्रिया (सवैया इकतीसा)

ग्यानी भेदग्यानसौं विलेछि पुदगल कर्म,
आतमीक धर्मसौं निरालो करि मानतौ।
ताकौ मूल कारन असुद्ध राग भाव ताके,
नासिबेकौं सुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतौ।।
याही अनुक्रम पररूप सनबंध त्यागि,
आपमांहि अपनौ सुभाव गहि आनतौ।
साधि सिवचाल निरबंध होत तिहूं काल,
केवल विलोक पाइ लोकालोक जानतौ।।५७।।

शब्दार्थ:-विलेछि=जुदा जानना। निरालौ=भिन्न। अनुक्रम=सिलसिला। साधि= सिद्ध करके। सिवचाल=मोक्षमार्ग। निरबंध=बन्धरहित। विलोक=ज्ञान।

अर्थ:-ज्ञानी जीव भेदविज्ञान के प्रभाव से पुद्गलकर्म को जुदा जानता है और आत्मस्वभाव से भिन्न मानता है। उन पुद्गल कर्मों के मूल कारण राग-द्वेष-मोह आदि विभाव हैं, उन्हें नष्ट करने के लिये शुद्ध अनुभव का अभ्यास करता है और ५४वें कवित्त में कही हुई रीति से पररूप तथा आत्मस्वभाव से भिन्न बन्धपद्धति को हटाकर अपने ही में अपने ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करता है। इस प्रकार वह सदैव मोक्षमार्ग का साधन करके बन्धन रहित होता है और केवलज्ञान प्राप्त करके लोकालोक का ज्ञायक होता है।।५७।।

काव्य-५७ पर प्रवचन

ग्यानी भेदग्यानसौं विलेछि पुदगल कर्म,
आतमीक धर्मसौं निरालो करि मानतौ।
ताकौ मूल कारन असुद्ध राग भाव ताके,
नासिबेकौं सुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतौ।।

देखो, '**तन्मूलां**' शब्द है न। इसका मूल राग-द्वेष, मोह इतना लिया। वे कहे, '**तन्मूल**' (अर्थात्) कर्म है। भटकने का मूल कर्म है। उसमें कहा कि मूल अर्थात् उसका स्वामी होता है, वह मूल कारण है। समझ में आया?

याही अनुक्रम पररूप सनबंध त्यागि,
आपमांहि अपनौ सुभाव गहि आनतौ।
साधि सिवचाल निरबंध होत तिहूं काल,
केवल विलोक पाइ लोकालोक जानतौ।।५७।।

आहाहा! **ग्यानी भेदग्यानसौं विलेछि पुद्गल कर्म...** पुद्गल के कर्म से भिन्न आत्मा को जाने, भेदज्ञान करके, ऐसा कहते हैं। कर्म का सम्बन्ध ही मुझे नहीं। **ग्यानी भेदग्यानसौं... (भेदविज्ञान के) प्रभाव से पुद्गल कर्म को जुदा जानता है।** भेदविज्ञान के प्रभाव से, ऐसा कहा। **और आत्मस्वभाव से भिन्न मानता है,...** लो। **आतमीक धर्मसौं निरालौ करि मानतौ...** भगवान आत्मा जानन, आनन्द—ऐसा स्वभाव, उससे राग आदि का भाव अत्यन्त भिन्न है, ऐसा जाने। **आतमीक धर्मसौं निरालौ करि मानतौ...** व्यवहार के विकल्प हैं, उन्हें आत्मा के स्वभाव से भिन्न करके जाने, ऐसा कहते हैं। वे तो अनात्मा हैं। भारी सूक्ष्म बातें! अन्दर धीरज हुए बिना और अन्तर्मुख हुए बिना वस्तु प्राप्त नहीं होती, ऐसी चीज़ है, उसे बाहर से खोजना। यहाँ से मिलेगी और यहाँ से मिलेगी और यहाँ से मिलेगी। सम्मेदशिखर जायें तो वहाँ से मिलेगी, लो।

शत्रुंजय और सिद्धगिरि। उसका नाम सिद्धगिरि है। उसका नाम कदम्बगिरि। तीसरी क्या कहा तुमने? हस्तगिरि। सब गिरि।

मुमुक्षु : अन्तर में गिरि है....

पूज्य गुरुदेवश्री : गिरि में कहाँ वहाँ भगवान था? भगवान तो यहाँ है। आहाहा! **आतमीक धर्मसौं निरालौ करि मानतौ, ताकौ मूल कारन... 'तन्मूलां'** है न! **असुद्ध रागभाव ताके,...** लो। विकारीभाव, वह उसका मूल कारण है। **नासिबेकौं सुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतौ...** अशुद्ध राग को... चाहे तो.... शुभ-अशुभ दोनों आये अशुद्ध राग में। शुभ-अशुभ दोनों। प्रशस्त-अप्रशस्त दोनों राग। **नासिबेकौं सुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतौ...**

उसे नाश करने के लिये शुद्ध आत्मा के आनन्द का अनुभव **अभ्यास ठानतौ...** यह अभ्यास करता हुआ। अभ्यास करता है, लो।

याही अनुक्रम पररूप सनबंध त्यागि... उसे अनुक्रम से ५४वीं कवित्त में कहा, उस प्रकार से, ऐसा कर डाला। **पररूप तथा आत्मस्वभाव से भिन्न बंधपद्धति को हटाकर...** देखो। **अनुक्रम पररूप सनबंध त्यागि...** बन्धभाव और स्वभाव—दोनों भिन्न है। स्वभाव में आरूढ़ होने पर बन्धभाव छूट जाता है। उसे **सनबंध त्यागि, आपमांहि अपनौ सुभाव गहि आनतौ...** अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसमें अपने को लाता हुआ। **आनतौ** है न? उसे लाता हुआ, ऐसा। **...अपने ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करता है।** वह ज्ञानस्वभाव त्रिकाल ध्रुवस्वरूप, उसे ग्रहण करता हुआ, रागभाव को बन्धपद्धति से पृथक् करता हुआ। कितनी धीरज चाहिए इसमें? उतावल करे तो वहाँ कहीं आम पके, ऐसा नहीं है। आम बोवे और तुरन्त कहे, लाओ आम आज। चक्रवर्ती को (ऐसा) हो, वह अलग बात है।

चक्रवर्ती को होता है न? सवेरे वोवे और दस बजे तैयार। लाखों मण गेहूँ सवेरे वोवे और दस बजे तैयार। वहाँ उसका आटा और वहाँ उसकी रोटी और आम तथा रोटी (सैनिक) खाये दस बजे, लो। परन्तु ऐसे तुरन्त हो सवेरे और ऐसे दस बजे तैयार, लो। उसमें सात दिन युद्ध में गये थे न भरत। भरत गये थे न उसमें—म्लेच्छ देश में। म्लेच्छ देश में गये थे सात दिन। म्लेच्छ राजा आया। वह कहे, यह कौन और हमारा... ? हमारे सिर पर राजा कौन? म्लेच्छ में.... क्योंकि पूरे दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम में कोई था नहीं चक्रवर्ती। जुगलिया थे न सब। उसमें वे भरत आये। यह कौन? इसलिए बुलाया अपने देव को। भाई, यह कौन आये? अब करो लड़ाई। परन्तु सात दिन और सात रात वर्षा बरसाई। अब... ९६ करोड़ सैनिक। सिर पर छत्र.... वह सवेरे वोवे और दस बजे खाये। चारों ओर पानी। सुना है या नहीं माँगीलालजी?

भरत... भरतजी, वे गये थे न सामने साधने। वहाँ वह उनका परिवार का कुलदेव था न कुलदेव। उससे कहा कि अपने कौन आया है यह? सात रात और सात दिन वर्षा। फिर सात दिन में खबर पड़ी कि अरे, यह है क्या? ऐसी वर्षा प्रकृति की नहीं होती।

सात दिन और सात रात एकधारा। कोई कृत्रिम है। भरत को खबर पड़ी। अरे, कोई देव है, यह देव। अब सात दिन और सात रात क्या किया होगा? गाँव में कहीं गये नहीं।

मुमुक्षु : खाये बिना रहे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाये बिना रहे नहीं। आहाहा! कितने, ९६ करोड़ सैनिक, हों! आहाहा! अरे, उसे ऐसी पुण्य की सामग्री है, तो यहाँ आत्मा में तो पवित्रता की सामग्री है। एक क्षण में अन्दर में एकाग्र हो और आनन्द का अनुभव करे। उसे तो देरी लगे। सवेरे वोवे और दस बजे (मिले)। आहाहा! लो। **आपमांहि अपनौ सुभाव गहि आनतौ...** यहाँ तो स्वयं अपने में—ज्ञान के, आनन्द के स्वभाव में जहाँ एकाग्र होता है, वहीं का वहीं उसे आनन्द आता है, ऐसा कहते हैं। आनन्द का अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव का पाक होता है। आहा!

साधि सिवचाल... निर्मलानन्द प्रभु मोक्ष के मार्ग को साधता हुआ अन्दर में, **निरबंध होत तिहूं काल...** बन्धरहित तीनों काल। था तो बन्धरहित, परन्तु वर्तमान सम्बन्ध था, वह छूट गया। अन्तर्मुख की दृष्टि से स्वरूप के साधन में जहाँ मोक्ष की चाल में आया, **निरबंध होत तिहूं काल...** लो। **वह सदैव मोक्षमार्ग का साधन करके बन्धनरहित होता है।** आहा! यह करने की क्रिया। यह क्रिया कहा न? क्या कहा ऊपर? भेदज्ञानी की क्रिया। धर्मी की यह क्रिया है। आहाहा! क्षण-क्षण में देह मृत्यु के समीप जाती है। अवसर चला जाता है। अन्तर में एकाग्र हुए बिना कहीं शान्ति और भिन्नता नहीं हो सकती। शिवचाल चलता अन्दर... अन्तर में मोक्ष के छूटे मार्ग में पहुँचता... राग से पृथक् ऐसे मार्ग में प्रवर्तता **निरबंध होत तिहूं काल, केवल विलोक पाइ...**

आहाहा! लो, क्रम कहा एकदम... केवलज्ञान एक समय में पाकर लोकालोक जानता। हो गयी पूरी दशा। लोकालोक से बात की है। लोगों को ज्ञान की पर्याय का पूर्ण माहात्म्य बतलाने के लिये। बाकी तो पर्याय पूर्ण होती है, उसे पाता है, बस। उसमें सब ज्ञात होता हे, ऐसा कहना, वह सब व्यवहार है। स्वयं अपनी पूर्ण पर्याय और आनन्द की पर्याय, ज्ञान की पर्याय, उसमें पूरा आत्मा और गुण सब ज्ञात हो जाते हैं। ऐसी एक समय की पर्याय को प्राप्त करता है। लोकालोक जाने। पर्याय को जानते हुए सब ज्ञात हो

जाता है। देखो, यह बन्धरहित होने की कला और बन्धरहित होने पर दशा में क्या होता है... आहाहा! अन्तिम कलश। **भेदज्ञानी का पराक्रम। 'रागादीनामुदयमदयं।'** १७वाँ कलश।

रागादीना-मुदय-मदयं दारयत्कारणानां,
कार्यं बन्धं विविध-मधुना सद्य एव प्रणुद्य।
ज्ञानज्योतिः क्षपित-तिमिरं साधु सन्नद्ध-मेतत्,
तद्वद्यद्वत्प्रसर-मपरः कोऽपि नास्यावृणोति।।१७।।

लो, यह बन्ध निकल गया। **इति बन्धो निष्क्रान्तः**

★ ★ ★

काव्य - ५८

भेदज्ञानी का पराक्रम (सवैया इकतीसा)

जैसैं कोऊ मनुष्य अजान महाबलवान,
खोदि मूल वृच्छकौ उखारै गहि बाहूसौं।
तैसैं मतिमान दर्वकर्म भावकर्म त्यागि,
ह्वै रहै अतीत मति ग्यानकी दशाहूसौं।।
याही क्रिया अनुसार मिटै मोह अंधकार,
जगै जोति केवल प्रधान सविताहूसौं।
चुकै न सकतीसौं लुकै न पुदगल मांहि,
धुकै मोख थलकौं रुकै न फिर काहूसौं।।५८।।

शब्दार्थः-अतीत=रीता। सविताहू=सूर्य। लुकै=छिपै। धुकै=चलता है।

अर्थः-जिस प्रकार कोई अजान महाबलवान मनुष्य अपने बाहुबल से किसी वृक्ष को जड़ से उखाड़ डालता है, उसी प्रकार भेदविज्ञानी मनुष्य ज्ञान की शक्ति से द्रव्यकर्म और भावकर्म को हटाकर हलके हो जाते हैं। इस रीति से मोह का अन्धकार नष्ट हो जाता है और सूर्य से भी श्रेष्ठ केवलज्ञान की ज्योति जागती है, फिर कर्म-

नोकर्म से नहीं छिप सकनेयोग्य अनन्त शक्ति प्रगट होती है, जिससे वह सीधा मोक्ष को जाता है और किसी का रोका नहीं रुकता।।५८।।

काव्य-५८ पर प्रवचन

जैसे कोऊ मनुष्य अजान महाबलवान, खोदि मूल वृच्छकौ उखारै गहि बाहूसौ। पुरुषार्थ से करता है, ऐसा। **अजान महाबलवान,...** महा पुरुषार्थ है, कहते हैं। अजान शब्द प्रयोग किया है अन्दर। **खोदि मूल वृच्छकौ उखारै गहि बाहूसौ।** आहाहा! खोदकर मूल—वृक्ष को खोदकर, **उखारै गहि...** बाहुबल से, लो। **किसी वृक्ष को जड़ से उखाड़ डालता है।** ऐसा पराक्रम है न मनुष्य को। बहुत वर्ष की ७०-७१-७२ वर्ष पहले की बात है। बरामदे में नीम था। .... नीम था बड़ा। फिर एक तेली आया। मुझे खबर थी, उस समय छोटी उम्र। परन्तु वह जरा ऐसे हाथ छुआया नीम को। ऐसे... जरा सा हिल गया पूरा नीम। बहुत पुराना नीम था और ऊपर बड़ा... बड़ा नीम। बरामदे में था। वह बरामदा है न।

याद है। तेली आया तेल का कुछ उगाहने। माँगने आया होगा पैसा-बैसा। उसने ऐसे हाथ छुआआ मानो। जरा बहुत पुराना हो गया ठेठ मूल में... ऐसे नीम हिल गया। कहो, तब याद है... पूरा ऐसे... ऐसे। फिर कहे, अब तो यह पुराना हुआ लगता है। फिर नीम निकाल दिया। हाथ पूरा बड़ा, थड़ इतना बड़ा, हं, जोरदार नीम। पूरा नीम ऐसा का ऐसा खड़ा। ऐसा खड़ा था, ऐसा जरा सा धक्का दिया। अरे, पूरा थड़ हिल गया। टूटने की तैयारीवाला था तो हिल गया। इसी प्रकार एकबार स्वरूप में जहाँ स्थिर हुआ, कर्म का वृक्ष उखड़कर छूट गया। आहाहा! नीम था कड़वा। यह कर्म का वृक्ष, वह विषवेल है न। कर्म है, उसे विष कहा है न? विष... विषवृक्ष। जहर का वृक्ष है, ऐसा कहा है। समयसार में पीछे।

खोदि मूल वृच्छकौ उखारै गहि बाहूसौ... मरोड़कर ऐसे खींच डाले जैसे वृक्ष को, उसी प्रकार **तैसें मतिमान दर्वकर्म भाव कर्म त्यागि,...** लो। मतिमान उसे कहते हैं कि जो जड़कर्म और भावकर्म को छोड़ देता है। आहा! मूल में से छोड़ दे और भगवान

आत्मा चैतन्य प्रभु के मूल को पकड़े। **व्है रहै अतीत मति ग्यानकी दशाहूसौं,...** लो। **ज्ञान की शक्ति से द्रव्यकर्म और भावकर्म को हटाकर हलके हो जाते हैं।** लो। हल्का हो जाता है हल्का, ऐसा कहते हैं। **अतीत मति ग्यानकी दशाहूसौं। याही क्रिया अनुसार मिटै मोह अंधकार,...** लो। यह क्रिया के अनुसार मोह का अन्धकार मिटे। अन्दर के राग से भी भिन्न करके स्वरूप की क्रिया करने से भेदज्ञानी के पराक्रम से यह मुक्ति का मार्ग होता है, ऐसा कहते हैं।

जगै जोति केवल प्रधान सविताहूसौं जोति, जगै केवल प्रधान सविता। सविता कहा न (अर्थात्) सूर्य। **सविताहूसौं...** सविता सूर्य को कहते हैं न! है न अन्दर लिखा है। खाली—अतीत कहा उसको। खाली—कर्म से खाली होकर मतिज्ञान की दशा, उस मतिज्ञान की दशा से केवलज्ञान को प्राप्त करे। **याही क्रिया अनुसार मिटै मोह अंधकार।** अन्तर के आनन्द की क्रिया से मोह का नाश हो। **जगै जोति केवल प्रधान सविताहूसौं...** जैसे सूर्य प्रकाशित हो, वैसे श्रेष्ठ केवलज्ञान की ज्योति जगे। आहाहा!

बनारसीदास को भी देखो न कितना प्रमोद है अन्दर! ऐसा भगवान आत्मा... उसे करने का तो यह है। कहो, समझ में आया? यह समझाना आवे—न आवे, कहना आवे—न आवे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। कि दूसरे को समझाना आवे तो उसका ज्ञान सच्चा कहलाये, ऐसा होगा?

मुमुक्षु : व्याकरण, न्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय क्या? शास्त्र का जानपना हो तो... क्या कहते हैं यहाँ, वह कुछ वस्तु नहीं, वह तो परसन्मुख की वृत्ति है। अन्दर में पर से भिन्न करके विज्ञान प्रगट करना, वही ज्ञान है। शान्ति और आनन्द प्रगट करना, वह ज्ञान है। जंगल में सिंह हो, समकित पावे। वहाँ कहाँ उसे समझाना आता है, लो। सिंह.... सिंह! अन्तरस्वरूप में सन्मुख जाकर नजर की ध्रुव के ऊपर, मोह का नाश (हो) और केवल प्रधान सूर्य उगे।

एक समय में केवलज्ञान तीन काल—तीन लोक। अरे, ऐसा ज्ञान! ऐसी दशा का धारक जिसे तीन काल—तीन लोक जानने में आवे। उसमें के किसी अंश को करे नहीं, किसी का हाथ ले नहीं, किसी को तोड़े नहीं और किसी को तोड़े नहीं, ऐसा कहते हैं।

'जाने।' आहाहा! अध्यात्म की बात अन्तर की कैसी होगी! यह न बैठे तो फिर दूसरे रास्ते चढ़ जाये। या तो अपने दूसरों को बहुतों को समझायेंगे तो अपने को लाभ हो जायेगा। इसलिए ऐसा समझाने दौड़ा जाता है। शास्त्र बहुत रचें तो अपने को ज्ञान हो जाये। और ऐसा आवे भी, हों! उन दशलक्षण पर्व में। दूसरे को (देना) सूत्र का—पुस्तक का त्याग करे तो उसे केवलज्ञान होता है। आहाहा! ऐई! अब इसका क्या मेल करना?

मुमुक्षु : आकिंचन्यभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल कोई मार्ग नहीं। 'मैं तो एक आनन्द और ज्ञानस्वभाव, ऐसा मेरा स्वरूप है, उसमें मैं और वह मैं हूँ'—ऐसा एकाग्र होने से सूर्य उगता है।

चूकै न समकीतसौं... अपने आनन्द और गुण की शक्ति से चूके नहीं अब। जो कुछ आत्मदशा प्रगट हुई, उससे चूके नहीं अब। **न लुकै पुद्‌गलमांहि...** लूकै न पुद्‌गल में वह अब, लो। ....**जिससे वह सीधा मोक्ष को जाता है और किसी का रोका नहीं रुकता।** आहाहा! बरसों बरस ... और ऊपर जैसा आकाश में। कितनी वर्षा होगी? कभी आयेगी? कभी नहीं? एक बार आत्मा में देखे कि कब यह केवलज्ञान होगा, ऐसा एकाकार हो। आहाहा!

मुमुक्षु : वर्षा बरसी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अब यह तनावे—खींचे तो भी दिक्कत उठे। बहुत अधिक बरसात हो तो भी दिक्कत उठे। ऐई! राजमलजी कहे, एक रात्रि में १४ इंच वहाँ।

मुमुक्षु : जयपुर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : जयपुर। सर्वत्र बहुत वर्षा। इस पूरे चातुर्मास में एक जगह चौदह आवे, उसके बदले एक रात्रि में चौदह (इंच वर्षा)। कितने ही जगह चौदह हो। कहो, एक रात्रि में १४ इंच।

अब उसे अधिक आवे तो भी उकताहट, न आवे तो उकताहट।

मुमुक्षु : अब स्टेशन पर जाना हो और वर्षा हो तो उकताहट।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाय, हाय, अब वहाँ जाना, एक थोड़ी देर रह न! वह स्टेशन पहुँचने के बाद चाहे जितनी (आवे)। डिब्बे में बैठ जायें फिर जितनी (आवे)। आहाहा! दबैल व्यक्ति वर्षा बिना भिखारी। यह अन्दर वर्षा बरसे बरसात। आया था न उसमें आया था। आनन्द की धारा बरसे, प्रभु! तू अन्दर में देख। आहाहा! कोई तुझे रोकनेवाला नहीं, हों, ऐसा कहते हैं। कर्म का उदय रोके कि यह है नहीं। **लुकै न पुद्गल मांहि, धुकै मोख थलकौ**। मोक्ष के स्थल की दशा पूर्ण .... धुके है... धुके है। आहाहा!

लो। **रुकै न फिर काहूसौं...** किसी से वह रोका जाये नहीं। धर्मास्ति से भी रोका जाये नहीं? आगे जाता नहीं वह? उसकी दिशा ही ऐसी हो गयी है। **रुकै न फिर काहूसौं...** वह रोकने से रुकता नहीं। आहाहा! जिसकी बात सुनने से भी प्रमोद (आवे), उसके अनुभव के आनन्द की क्या बातें, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, उसे करने का हो तो यह है। बाकी सब थोथेथोथा हैरान होकर भटक मरने के हैं। भले बाहर में इज्जत बढ़ गयी हो, बड़ा मांधाता कहलाता हो। वह कवि— शीघ्र कवि, लो। सुनकर तुरन्त कविता बनावे। उसमें क्या हुआ? उसमें तेरा क्या हुआ? तेरा तो अन्दर के स्वरूप में स्थिर हो और शीघ्र कवि हो। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान ले। वह शीघ्र कवि है। **आठवें अधिकार का सार,** लो। अब सबका सार कहते हैं।

★ ★ ★

आठवें अधिकार का सार

यद्यपि सिद्धालय में अनन्त कार्माण वर्गणाएँ भरी हुई हैं तो भी सिद्ध भगवान को कर्म का बन्ध नहीं होता, अरहन्त भगवान योगसहित होने पर अबन्ध रहते हैं, प्रमत्तरहित हिंसा हो जाने पर मुनियों को बन्ध नहीं होता, सम्यग्दृष्टि जीव असंयमी होने पर भी बन्ध से रहित हैं। इससे स्पष्ट है कि कार्माण वर्गणाओं, योग, हिंसा और असंयम से बन्ध नहीं होता, केवल शुभ-अशुभ अशुद्धोपयोग ही बन्ध का कारण है। अशुद्ध उपयोग राग-द्वेष-मोहरूप है, और राग-द्वेष-मोह का अभाव सम्यग्दर्शन है, अत: बन्ध का अभाव करने के लिये सम्यग्दर्शन को सम्हालना चाहिए, इसमें प्रमाद करना

उचित नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष – चारों पुरुषार्थों का दाता है। यह सम्यग्दर्शन विपरीत अभिनिवेष रहित होता है, मैंने किया, मेरा है, मैं चाहूँ सो करूँगा, यह मिथ्याभाव सम्यग्दर्शन में नहीं होता, इसमें शरीर-धन-कुटुम्ब वा विषय-भोग से विरक्तभाव रहते हैं और चंचल चित्त को विश्राम मिलता है। सम्यग्दर्शन जगने पर व्यवहार की तल्लीनता नहीं रहती, निश्चयनय के विषयभूत निर्विकल्प और निरुपाधि आत्मराम का स्वरूप-चिन्तवन होता है, और मिथ्यात्व के आधीन होकर संसारी आत्मा जो अनादि काल से कोल्हू के बैल के समान संसार में चक्कर काट रहा था, उसे विलक्षण शान्ति मिलती है। सम्यग्ज्ञानियों को अपना ईश्वर अपने ही में दिखता है और बन्ध के कारणों का अभाव होने से उन्हें परमेश्वरपद प्राप्त होता है।

आठवें अधिकार के सार पर प्रवचन

यद्यपि सिद्धालय में अनन्त कार्मण वर्गणाएँ भरी हुई है तो भी सिद्ध भगवान को कर्म का बन्ध नहीं होता। वह कहीं कर्म की वर्गणा बन्ध का कारण नहीं। पहले का बोल स्मरण करते हैं। ... है न पहला। कर्म की वर्गणा पड़ी है, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं। बन्ध का कारण हो तो सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ कर्मवर्गणा बहुत है। भगवान विराजते हैं, वहाँ कर्म होने के योग्य (वर्गणा) बहुत है, हों! वहाँ निगोद के जीव भी है, लो। जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, उनके पेट में निगोद है। अरे! पेट में निगोद होगा?

मुमुक्षु : वहाँ के आकाश में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आकाश है, जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, उस आकाश में अनन्त निगोद हैं वहाँ। उसकी पर्याय उसमें और सिद्ध की पर्याय सिद्ध में। सिद्ध आनन्द की पर्याय अनुभव करते हैं और निगोद का (जीव) उसी क्षेत्र में रहा हुआ अनन्त दु:ख को अनुभव करता है। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि कर्मवर्गणा कुछ दु:ख का कारण नहीं है, बन्ध का कारण नहीं है।

अरहन्त भगवान योगसहित होने पर अबन्ध रहते हैं... लो। इन्द्रियाँ काम करती

हैं बाहर की और योगसहित हैं, तथापि अबन्ध हैं। इसलिए योग भी बन्ध का कारण नहीं। **प्रमत्तरहित हिंसा हो जाने पर मुनियों को बन्ध नहीं होता।** जीव मरे शरीर की क्रिया से। प्रमत्त जीव की क्रिया निमित्त है, ऐसा आया था न सवेरे (नियमसार) ६८ गाथा में। प्रमत्त जीव की क्रिया निमित्त है, ऐसा कहा छेदन में। कहते हैं कि प्रमत्तरहित मुनि अपनी सावधानीरूप से चलते हैं। प्रमत्तदशा नहीं है... ऐसे तो प्रमत्तदशा है परन्तु सावधानरूप से है, ऐसा। उसमें **हिंसा हो जाने पर मुनियों को बन्ध नहीं होता।** पर की हिंसा से बन्ध हो तो उन्हें भी बन्ध होना चाहिए।

सम्यग्दृष्टि जीव असंयमी होने पर भी... आहाहा! देखो, ऐसा सुनकर .... कितनों को ऐसा हो जाता है कि लो, कोई बन्ध नहीं अपने, अब चाहे जैसे चलें। ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी को बन्ध नहीं। हम जानते हैं ज्ञान को। बस अपने बन्ध नहीं। जाने क्या धूल, सुन न! अन्तर आत्मा के आनन्द का अनुभव करके आत्मा को जाने, वह जानना कहलाता है। मात्र शब्दों के ज्ञान से कण्ठस्थ आया कहते....

मुमुक्षु : मुख किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाब देना आवे। इसका ऐसा है,... इसका ऐसा है,... इसका ऐसा है। ओहोहो! भारी भाई ज्ञान, हों! धूल भी नहीं ज्ञान, सुन न! वह ज्ञान कहाँ कहलाता है? ज्ञान तो जो अन्तर में से आनन्द लेकर आवे, वह ज्ञान बन्ध का कारण नहीं।

सम्यग्दृष्टि जीव असंयमी होने पर भी बन्ध से रहित है। असंयम भाव है, परन्तु उससे भिन्न है। सम्यग्दृष्टि को असंयम भाव है, परन्तु अन्दर भिन्न अनुभव करता है। हमारे चाहे जैसा असंयम हो और हमारे कुछ हो तो भी हमारे बन्ध नहीं। मर जायेगा ....। आहाहा! यह कोई पोपाबाई का राज नहीं वहाँ। यह तो असंयतभाव—अव्रतभाव से भी जिसकी दृष्टि उथल गयी है—उठ गयी है और आनन्द के धाम में जिसकी दृष्टि गयी है। आहाहा! ऐसे आनन्द के अनुभवी जीव को असंयम से पृथक् दशावन्त को बन्ध नहीं। समझ में आया?

इससे स्पष्ट है कि कार्मणवर्गणाओं, योग, हिंसा और असंयम से बन्ध नहीं होता। कठिन पड़े लोगों को। असंयम से बन्ध नहीं होता? वह दृष्टि की अपेक्षा से है। आहाहा! असंयत भाव दु:खरूप, उससे (विरुद्ध) आनन्द सुखरूप आत्मा, ऐसे आनन्द

की दशा प्रगट हुई है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया है, उसे असंयत से बन्ध नहीं होता, ऐसा कहते हैं। परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया नहीं, वर्तमान अनुभव नहीं और कहे कि हमारे असंयत से कुछ बन्ध है नहीं। परन्तु असंयत के साथ एकताबुद्धि (है तो) बन्ध नहीं, (ऐसा) कहाँ से लाया? राग ऐसा असंयम भाव, उससे एकताबुद्धि है। एकताबुद्धि है, वहाँ बन्ध ही है। एकताबुद्धि टूट गयी है, उसे बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

केवल शुभ-अशुभयोग ही बन्ध का कारण है,... लो, ठीक। इसका अर्थ—यह शुभ-अशुभ उपयोग चैतन्य के स्वभाव के साथ एकत्व करना, वह बन्ध का कारण है, ऐसा। शुभ-अशुभ उपयोग, वह बन्ध का कारण नहीं। शुभ-अशुभ (भाव) वह भी बन्ध का कारण नहीं। क्योंकि यह तो आ गया उसमें असंयम में। परन्तु शुभ-अशुभ परिणाम है, उसे चैतन्यगंज के आनन्द के साथ एकत्व किया है। अपने ज्ञानानन्द उपयोग में जिसने राग को मिलाया है, उपयोग भूमिका में अशुद्धता को लाया है, वह मिथ्यादृष्टि को बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? **अशुद्ध उपयोग राग-द्वेष-मोहरूप है।** अशुद्ध उपयोग तो राग-द्वेष और मोह है।

राग-द्वेष-मोह का अभाव सम्यग्दर्शन है,... लो। राग-द्वेष और मोह का अभाव, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन अर्थात् शुद्ध आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान का स्वच्छरूप से परिणमना, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, वह मोह-राग-द्वेष से रहित है। कहो, समझ में आया? क्या कहा? **राग-द्वेष-मोह का अभाव सम्यग्दर्शन है,...** ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष तो विकल्प है। मोह पर में सावधानी है। उसे अपना (माने), वह तो मिथ्यादृष्टि है। राग के विकल्प से चैतन्य भगवान पूर्ण स्वभाव अन्तर्मुख होने पर राग भिन्न पड़ जाता है, इसलिए ज्ञानी को राग है नहीं। उस भाव के कारण राग नहीं। बोले कि हमारे राग नहीं, ऐसा कहीं चले? समझ में आया? **राग-द्वेष-मोह का अभाव सम्यग्दर्शन है,...** देखा? आत्मा और आत्मा का गुण और आत्मा की सम्यग्दर्शन पर्याय—तीनों ही राग-द्वेष-मोह रहित है, चौथे गुणस्थान में। राग से रहित न हो तो वह सम्यग्दर्शन नहीं। रागसहित हूँ, वह तो मिथ्यादर्शन है। आहाहा!

अत: बन्ध का अभाव करने के लिये सम्यग्दर्शन को सम्हालना चाहिए। लो।

राग-द्वेष और मोह के अभाव कारण से स्वरूप का दर्शन, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप में स्थिरता—ऐसा प्रगट करना चाहिए। उसकी सम्हाल करना। इस विधि से उसमें ध्यान रखना, वह नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्तर की बात है। ऐसी बात, बापू! पहले यह करने का है। बन्ध का अभाव करने के लिये सम्यग्दर्शन को सम्हालना चाहिए। **इसमें प्रमाद करना उचित नहीं है।** आहाहा! प्रमाद हो, वह अलग चीज़ है। परन्तु प्रमाद को अपने स्वरूप में ऐसे मिलाकर अकेला प्रमादमय आत्मा मानना, वह तो मिथ्यात्व है। उसमें मिलावे कब? कि वर्तमान पर्याय अन्तर्मुख हुई है, इससे राग बहिर्मुख की वृत्ति भिन्न रह जाती है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—चारों पुरुषार्थों का दाता है,... लो! सम्यग्दर्शन धर्म अर्थात् पुण्य का भाव वहाँ ही होता है। अर्थ भी वहाँ (होता है)। अर्थ अर्थात् द्रव्य; धर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव। अर्थ अर्थात् द्रव्य, काम—निस्पृहता और मोक्ष। चार लिये हैं न।

मुमुक्षु : चारों ही अपने में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने में है वह धर्म। सम्यग्दर्शन, वह धर्म अपना स्वभाव है। भले उसे शुभ कहो, परन्तु वह है शुद्ध। शुभ कहा है न वहाँ पुण्य-पाप (अधिकार में)। मोक्षमार्ग शुभ है। शुभ का अर्थ वह शुद्ध है। शुभ का अर्थ भला। शुभ का अर्थ वह पुण्य नहीं। सम्यग्दर्शन, वह आत्मस्वभाव है; सम्यग्दर्शन, वही आत्मद्रव्य है; सम्यग्दर्शन, वही निस्पृहता है और सम्यग्दर्शन, वही मोक्ष का कारण है। चारों ही सम्यग्दर्शन में समाहित हो गये। चारों पुरुषार्थ का दाता है। चारों पुरुषार्थ का दाता सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन विपरीत अभिनिवेश रहित होता है। यह सम्यग्दर्शन विपरीत मान्यता—उल्टी श्रद्धा—उल्टा अभिप्राय रहित होता है। मैंने किया, मैंने दया पालन की, मैंने हिंसा की, मैंने पर को जिलाया, मैंने पर को मारा, पर को सुखी किया, दु:खी किया—यह सब मिथ्यात्वभाव अज्ञान है। वह मिथ्यात्वभाव सम्यग्दर्शन होने नहीं देता। मैं चाहूँ सो करूँगा। आहाहा! इसे अभिमान है। चाहूँ तो करूँ, ऐसा करूँगा, वैसा करूँगा। **यह मिथ्याभाव सम्यग्दर्शन में नहीं होता,...** लो। ऐसा मिथ्याभाव सम्यग्दर्शन में नहीं होता। क्या करता है भाई तू! विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०३, आषाढ़ कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक १३-०७-१९७१
बन्ध द्वार का सार तथा मोक्ष द्वार, काव्य - १ से ४

आठवें अधिकार का सार

यद्यपि सिद्धालय में अनन्त कार्माण वर्गणाएँ भरी हुई हैं तो भी सिद्ध भगवान को कर्म का बन्ध नहीं होता, अरहन्त भगवान योगसहित होने पर अबन्ध रहते हैं, प्रमत्तरहित हिंसा हो जाने पर मुनियों को बन्ध नहीं होता, सम्यग्दृष्टि जीव असंयमी होने पर भी बन्ध से रहित हैं। इससे स्पष्ट है कि कार्माण वर्गणाओं, योग, हिंसा और असंयम से बन्ध नहीं होता, केवल शुभ-अशुभ अशुद्धोपयोग ही बन्ध का कारण है। अशुद्ध उपयोग राग-द्वेष-मोहरूप है, और राग-द्वेष-मोह का अभाव सम्यग्दर्शन है, अतः बन्ध का अभाव करने के लिये सम्यग्दर्शन को सम्हालना चाहिए, इसमें प्रमाद करना उचित नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष - चारों पुरुषार्थों का दाता है। यह सम्यग्दर्शन विपरीत अभिनिवेष रहित होता है, मैंने किया, मेरा है, मैं चाहूँ सो करूँगा, यह मिथ्याभाव सम्यग्दर्शन में नहीं होता, इसमें शरीर-धन-कुटुम्ब वा विषय-भोग से विरक्तभाव रहते हैं और चंचल चित्त को विश्राम मिलता है। सम्यग्दर्शन जगने पर व्यवहार की तल्लीनता नहीं रहती, निश्चयनय के विषयभूत निर्विकल्प और निरुपाधि आत्मराम का स्वरूप-चिन्तवन होता है, और मिथ्यात्व के आधीन होकर संसारी आत्मा जो अनादि काल से कोल्हू के बैल के समान संसार में चक्कर काट रहा था, उसे विलक्षण शान्ति मिलती है। सम्यग्ज्ञानियों को अपना ईश्वर अपने ही में दिखता है और बन्ध के कारणों का अभाव होने से उन्हें परमेश्वरपद प्राप्त होता है।

★ ★ ★

आठवें अधिकार के सार पर प्रवचन

यह समयसार नाटक। बन्ध अधिकार का अन्तिम सार। **यह सम्यग्दर्शन विपरीत अभिनिवेश रहित होता है।** यह आ गया है कल। सम्यग्दर्शन अर्थात् राग और विकल्प

से पृथक् पड़कर आत्मा की पवित्र दशा प्रगट हो, और अनुभव में उसकी प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन प्रगट होने से विपरीत अभिप्राय नहीं रहता। आत्मा में सुख है, अन्यत्र कहीं सुख नहीं। पुण्य और पाप के भाव में भी सुख नहीं। बाहर की इज्जत-कीर्ति में भी सुख नहीं। सम्यग्दर्शन में ऐसा आनन्द भासित होता है, वह आनन्द उसे कहीं दिखता नहीं। कहो, समझ में आया?

मैंने किया, मेरा है, राग मेरा है, शरीर मेरा है, मैं चाहूँ सो करूँगा। क्या करे यह? ऐसी जो मान्यता, वह मिथ्याभाव सम्यग्दर्शन में नहीं होता। ऐसी विपरीत मान्यता सम्यग्दर्शन में नहीं होती। यहाँ तक आया था। **इसमें शरीर-धन-कुटुम्ब वा विषय-भोग से विरक्तभाव रहते हैं।** सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा के आनन्द का स्वीकार। और उस आनन्द की भूमिका में धर्मी को शरीर, धन, परिवार और विषयभोग से विरक्त भाव है। राग आदि में रक्तभाव मिथ्यात्व है।

(ज्ञानी) विरक्त है। शरीर में, धन, परिवार में... कि यह हमारे परिवारी हैं, यह हमारी लक्ष्मी है, हमारा यह शरीर है, विषय के भोग में यह भोग मुझे ठीक लगते हैं—ऐसे अभिप्राय से (ज्ञानी) विरक्त है। **और चंचल चित्त को विराम मिलता है।** कुछ करूँ, कुछ कराऊँ, कुछ ऐसा हो—ऐसा चंचल चित्त, उसे आत्मा की प्रतीति और अनुभव में विश्राम मिलता है। है, वहाँ स्थिर होना। बाहर में कहीं है नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन जगने पर व्यवहार की तल्लीनता नहीं रहती। यह अध्यवसान की बात है.... ज्ञानी व्यवहार से मुक्त है। आहाहा! शुभभाव दया-दान-व्रत के परिणाम से भी सम्यग्दृष्टि तो विरक्त है, मुक्त है। यहाँ तो व्यवहार शुभभाव जो है, उससे तल्लीनता नहीं। राग में एकता, वह मिथ्यात्व है और राग से भिन्नता (अर्थात्) तल्लीनता नहीं, ऐसा आत्मानुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। **निश्चयनय के विषयभूत निर्विकल्प...** निश्चयनय का विषय जो आत्मा निर्विकल्प.... **और निरुपाधि आत्माराम का स्वरूप-चिन्तवन होता है।** चिन्तवन का अर्थ एकाग्रता। धर्मी को तो अन्तरस्वरूप आनन्द और ज्ञान में एकाग्रता होती है। राग में एकाग्रता होती नहीं। तो फिर शरीर, वाणी और मन तथा इज्जत-कीर्ति, वे सब जड़ हैं। जड़ में उसकी आकांक्षा और एकता होती नहीं।

और मिथ्यात्व के आधीन होकर संसारी आत्मा जो अनादि काल के कोल्हू के

बैल के समान संसार में चक्कर काट रहा था। मिथ्यात्वभाव से... मिथ्यात्व के असंख्य प्रकार कहे थे न! जितने शुभाशुभभाव, उन्हें अपने मानना, वह सब मिथ्यात्वभाव है। ऐसे मिथ्यात्वभाव से चौरासी में चक्कर लगाता हुआ... कहीं कुत्ते का भव और कहीं कीड़े का भव और कहीं कौवे का (भव)। ओहोहो! यह **कोल्हू के...** अर्थात् घाणी के बैल की भाँति **संसार में चक्कर काट रहा था, उसे विलक्षण शान्ति मिलती है।** चार गति में मिथ्यात्वभाव से भटकता था; सम्यग्दर्शन में शान्ति... शान्ति... शान्ति... कहो, समझ में आया? अकषाय शान्ति। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय गयी, वह आकुलता थी, उतनी शान्ति मिली। उतनी शान्ति... स्वरूप में अकषाय का परिणमन, वह शान्ति।

सम्यग्ज्ञानियों को अपना ईश्वर अपने ही में दिखता है। यह आया था न, 'कोई प्रणाम करे गढि मूरति।' मूर्ति गढै, वहाँ कहाँ भगवान है मूर्ति में? वह तो स्थापनानिक्षेप है। वह शुभभाव होवे तो लक्ष्य वहाँ जाये। ईश्वर तो यहाँ है। आहाहा! तेरा ईश्वर तो तुझमें है। सम्यग्ज्ञानियों को अपना ईश्वर अपने में दिखता है। **बन्ध के कारणों का अभाव होने से...** क्योंकि स्वरूप शुद्ध आनन्द की दृष्टि होने से बन्ध के भाव का तो जिसमें अभाव है।

इस कारण से **उन्हें परमेश्वरपद प्राप्त होता है।** लो। पर्याय में परमेश्वर होता है। प्रभुरूप से परमेश्वर स्वयं है, वह शक्तिरूप से—स्वभावरूप से—द्रव्यरूप से। भान होनेवाले आत्मा में अबन्ध परिणाम होने से बन्ध परिणाम का उसे अभाव है। इसलिए अबन्ध की परिणाम उत्कृष्ट दशा जो परमेश्वर दशा, वह उसे प्रगट होती है। देखो, यह सार, बन्ध (अधिकार) का सार।

मुमुक्षु : बन्ध का सार अबन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह अधिकार पूरा हुआ। (अब) मोक्ष अधिकार।

●●●

९. मोक्ष द्वार

प्रतिज्ञा (दोहा)

बंधद्वार पूरौ भयौ, जो दुख दोष निदान।
अब बरनौं संक्षेपसौं, मोखद्वार सुखथान।।१।।

शब्दार्थ:-निदान=कारण। वरनौं=वर्णन करता हूँ। संक्षेपसौं=थोड़े में।

अर्थ:-दु:खों और दोषों के कारणभूत बन्ध का अधिकार समाप्त हुआ। अब थोड़े में सुख का स्थानरूप मोक्ष अधिकार का वर्णन करता हूँ।।१।।

काव्य-१ पर प्रवचन

बंधद्वार पूरौ भयौ, जो दुख दोष निदान।
अब बरनौं संक्षेपसौं, मोखद्वार सुखथान।।१।।

दु:ख और दोष का कारण, वह बन्ध का अधिकार पूरा हुआ। बन्धभाव तो दोष और दु:ख का कारण है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, वह बन्ध का कारण, वह दोषरूप और दु:खरूप है। दु:खरूप शुभ-अशुभभाव। आहाहा! वह निदान है। निदान अर्थात् दोष और दु:ख का ही कारण है, ऐसा। बन्धभाव—शुभ-अशुभभाव वह दोष—दु:ख का ही निदान है, कारण है। **अब बरनौं संक्षेपसौं**। संक्षिप्त में मोक्षद्वार सुख का स्थान, लो। यह सुख के स्थानरूप मोक्ष—परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष का अधिकार कहता हूँ।

मंगलाचरण, अमृतचन्द्राचार्य का मंगलाचरण। पहला श्लोक।

द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बन्धपुरुषौ,
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतम्।
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं,
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते।।१।।

'**इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं**' लो, सरस शब्द तो संस्कृत में भी आता है।

अपने गुजराती में आता है। सरस है, यह सरस है। ऐई! गुजराती में सरस आता है। हिन्दी में आता है सरस?

मुमुक्षु : आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी में... हिन्दी में भी आता है। यह किसी जगह आया था। हिन्दी में भी आता है। यह सेठिया कहते हैं न, दीपचन्द सेठिया। गुजराती का सरस शब्द, कहे, गजब, ऐसा कहते थे। इसलिए कहता हूँ। हिन्दी में आता है, हिन्दी में आता है।

मुमुक्षु : सरस अर्थात् रससहित। अपने यहाँ 'सारुं' इसके अर्थ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आहाहा! यह तो रससहित, ऐसा लिया। ऐसा सरस। बहुत-बहुत जगह... हिन्दी में भी आता है। परन्तु अपना ऐसा मानो सरस एक शब्द मानो गुजराती हो न, ऐसा साधारण। यह सेठिया कहे, दीपचन्द सेठिया, नहीं? सरस है। सरस है, गुजराती सरस शब्द। रसवाला।

'इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं'
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते।

अब इसका मंगलाचरण का पद... पद।

★ ★ ★

काव्य - २

मंगलाचरण

(सवैया इकतीसा)

भेदग्यान आरासौं दुफारा करै ग्यानी जीव,
आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै।
अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै,
करम भरमकौ खजानौ खोलि खरचै।।
यौही मोख मुख धावै केवल निकट आवै,
पूरन समाधि लहै परमकौ परचै।

भयौ निरदौर याहि करनौ न कछु और,
ऐसौ विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै।।२।।

शब्दार्थ:-चरचै=जाने। खरचै=हटावे। परचै=पहिचाने। निरदौर=स्थिर। विश्वनाथ =संसार का स्वामी। अरचै=बन्दन करता है।

अर्थ:-ज्ञानी जीव भेदविज्ञान की करौंत से आत्मपरिणति और कर्मपरिणति को पृथक् करके उन्हें जुदी-जुदी जानता है और अनुभव का अभ्यास तथा रत्नत्रय ग्रहण करके ज्ञानावरणादि कर्म वा राग-द्वेष आदि विभाव का खजाना खाली कर देता है। इस रीति से वह मोक्ष के सन्मुख दौड़ता है। जब केवलज्ञान उसके समीप आता है, तब पूर्ण ज्ञान प्राप्त करते परमात्मा बन जाता है और संसार की भटकना मिट जाती है तथा करने को कुछ बाकी नहीं रह जाता अर्थात् कृतकृत्य हो जाता है। ऐसे त्रिलोकीनाथ को पण्डित बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।।२।।

काव्य-२ पर प्रवचन

भेदग्यान आरासौं दुफारा करै ग्यानी जीव,
आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै।
अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै,
करम भरमकौ खजानौ खोलि खरचै।।
यौही मोख मुख धावै केवल निकट आवै,
पूरन समाधि लहै परमकौ परचै।
भयौ निरदौर याहि करनौ न कछु और,
ऐसौ विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै।।२।।

लो। यहाँ खजाना कहा है उसे। करम और भरम। आहा! खोलकर खर्च करे तो नाश करे, ऐसा।

विश्व का नाथ कहा, लो, यह आत्मा। **भेदज्ञान आरासौं,** लो, भेदज्ञानरूपी करवत... करवत... विकल्प और निर्विकल्प के बीच प्रज्ञाछैनीरूपी करवत। अरे, यह

करने का, लो। करके यह करने का और इसके फल में मोक्ष। दूसरी सिरपच्ची एक ओर रही उसके घर में। आहाहा! **भेदज्ञान आरासौं...** राग से, शरीर से, कर्म से भिन्न हूँ, ऐसा जो स्वरूप भेदज्ञान द्वारा.... भेदज्ञानरूपी करवत द्वारा... **आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै... चरचै** अर्थात् जाने। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप और विकल्प आदि, वह कर्मस्वरूप कर्मधारा। राग आदि की वृत्ति उठे, वह कर्मधारा, चैतन्य आनन्दस्वभाव धारा—दोनों को भिन्न जाने। भिन्न-भिन्न चरचै। **चरचै** अर्थात् भिन्न जाने।

अनुभौ अभ्यास लहै... धर्मी दोनों को भिन्न करके आत्मा के आनन्द का अनुभव करे। आहाहा! देखो, यह धर्मी का कर्तव्य। **अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै...** परम धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ग्रहे। **करम भरमकौ खजानौ खोलि खरचै...** कर्म और भ्रमणा का खजाना खोलकर टाले। लो। है न उसमें? खाली कर देना। **...विभाव का खजाना खाली कर देता है, ज्ञानावरणादि कर्म वा राग-द्वेष आदि विभाव का खजाना खाली कर देता है। करम भरमकौ खजानौ खोलि खरचै, यौही मोख मुख धावै।** अपनी परम पवित्रतारूपी मोक्ष के प्रति धावे—दौड़े—अन्तर में गति करे, ऐसा कहते हैं। उसे नाश करे तो इस ओर गति करे, ऐसा। है न?

इस रीति से वह मोक्षसन्मुख दौड़ता है... लो। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान का स्पर्श करके, वेदन करके पूर्ण आनन्दरूपी मुक्ति की ओर दौड़े। आहाहा! अर्थात् उसका परिणमन उग्र करे, ऐसा कहते हैं। अरे, धर्मी की बातें गजब! ग्रीक लेटिन (अद्भुत अटपटा) जैसा लगे नये लोग हों उन्हें। यह वह ऐसा धर्म कैसा? कुछ सामायिक करना, प्रौषध करना कुछ... वह तो सब राग का (विषय) है। यह तो भगवान के समीप एक शुद्ध आनन्दधाम उसके उप अर्थात् समीप में बसना, वह उपवास है। उसके बिना सब लंघन है। यहाँ की बात अब बहुत जाती है, गड़बड़ मचा दी है।

आज विद्यानन्दजी का आया है। जो कोई ऐसा माने कि... हम समकिती और ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि। मिथ्यादृष्टि है जाओ।

मुमुक्षु : सब स्वयं निर्णय करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा है न। पहले उसमें नहीं आया था। यह दूसरा उसका।

ऐसी प्ररूपणा मंगलायतन में गयी है न। बहुत दूर बात है। आहाहा! खटकती है खटकती है। यहाँ तो शास्त्र स्पष्ट बात करते हैं कि जो आत्मा राग का, पर का कर्ता हो, वह मिथ्यादृष्टि है। ईश्वर कर्ता हो जगत का, ऐसी वह बात सत्य नहीं है, मिथ्यात्व है। इसी प्रकार जो छह काय के जीवों की रक्षा कर सकता हूँ, यह उत्पन्न करूँ कहो या रक्षा करूँ कहो, उत्पन्न किया उसने (अर्थात्) रखा, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! लोगों को यह अन्तर में मेरा क्या होगा? और यह तो बाहर में कुछ अच्छा करे, दुनिया प्रसन्न हो। हाँ, प्रसन्न हो उसमें तुझे क्या हुआ?

श्रीमद् में आता है न एक पत्र में, नहीं? 'जगत को अच्छा दिखाने के लिये अनन्त बार प्रयत्न किया, परन्तु भला हुआ नहीं।' दुनिया ऐसा कहे कि वाह! परन्तु इस वाह में तुझे क्या हुआ? आहाहा! दुनिया तो पागल है। जिसे कुछ दिखाई दे बाहर का त्याग और... आहाहा! बोलना आवे कुछ तो ऐसा माने कि हम कुछ ज्ञानी हैं। दुनिया भी मानती है न हमको। परन्तु पागल दुनिया माने, उसमें क्या हुआ? अन्दर आत्मा मानना चाहिए न अन्दर। '**मोख मुख धावै**' ऐसा कहते हैं। यह परमात्मा स्वयं विकल्प से भिन्न पड़कर निर्विकल्प धारा में आगे दौड़े, ऐसा कहते हैं।

केवल निकट आवै... उसे क्षपकश्रेणी माँडकर केवल... केवलज्ञान नजदीक आवे। आहाहा! पहले से ठेठ तक लिया है कर्म। राग और आत्मा को भिन्न करे। आतम और कर्मधारा भिन्न-भिन्न जाने, अनुभव अभ्यास करे, परम धर्म ग्रहे, परम आनन्दस्वरूप को ग्रहे। **करम धरमकौ खजानौ खोलि खरचै...** इसका अर्थ यह कि उदय आवे वह खिर जाता है। आनन्द की ओर है, इसलिए खाली हो जाता है वह। **पूरन समाधि लहै परमकौ परचै...** लो। परम शान्ति... अकषायभाव की धारा से वह परम समाधि... **पूरन समाधि लहै...** पूर्ण शान्ति... शान्ति... शान्ति... **परमकौ परचै...** परम केवलज्ञान को परचै (अर्थात्) केवलज्ञान प्रगट करे, लो। **पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा बन जाता है।** है न?

भयौ निरदौर याहि करनौ न कछु और... संसार की भटकना मिट जाती है। यह तो वीतरागभाव में ही ऐसा होता है, अन्यत्र होता नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा ने पूर्ण केवलज्ञान प्रगट किया, वह इस विधि से किया है। इस विधि से जो करे, उसे केवलज्ञान होता है।

परन्तु इस विधि से होता है। राग और आत्मा को भिन्न करके, पृथक् आत्मा उसमें अनुभव में रहे और परम धर्म को पकड़े, आगे बढ़े, मोक्षसुख में जाये। **मोख धावै...** वह दु:ख का खजाना खाली हो, केवल (ज्ञान) निकट आवे। आहाहा! एक-एक गाथा में सब बात भर दी है। **पूरन समाधि लहै परमकौ परचै, भयौ निरदौर याहिं करनौ न कछु और...** कृतकृत्य हो गया आत्मा केवलज्ञान पाकर। अब करना कुछ रहा नहीं। आहाहा! **ऐसौ विश्वनाथ,** लो। कृतकृत्य हो गया।

ऐसे त्रिलोकीनाथ को पण्डित बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं। ऐसा भगवान पूर्णानन्द प्रभु, विश्व का नाथ अर्थात् साक्षी—जाननेवाला, ऐसा भगवान अपनी पूर्णदशा से प्रगट हुआ। भेद पाड़कर अनुभव करने से स्थिर होकर आगे बढ़ा, पूर्ण हुआ—ऐसा कहते हैं। ऐसे आत्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। लो, यह मंगलाचरण। मोक्ष के द्वार का यह मंगलाचरण। स्वयं कहते हैं न!

ऐसौ विश्वनाथ ताहि बनारसी अरचै। 'परं पूर्ण ज्ञानं कृतसकलकृत्यं' है न उसमें? **विजयते...** उसकी विजय हुई। यह मांगलिक कहा। भगवान आत्मा अपने घर में पूर्णानन्द की प्राप्ति की, वही मंगलाचरण और वह विजय। राग में पराजित हो जाता था, उसकी—विकार की जय होती थी। आत्मा के आनन्दस्वभाव की ओर पुरुषार्थ से झुकने पर निर्मलदशा हुई, उसकी विजय हुई। वह विजय हुई सो हुई (अब) सादि-अनन्त (रहेगी)। यह सब बातें, परन्तु फिर करना क्या, करना क्या? चल, यह बताऊँ। परन्तु हमारे धर्म में....

भेदग्यान आरासौ दुफारा करै... करे नहीं। परन्तु यह अपवास करना और यात्रा करना और दान (में धन) खर्च करना...।

मुमुक्षु : अपवास, सामायिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब यह आत्मा में है सब। राग से भिन्न पड़कर स्वरूप के अनुभव में रहे, अनुभव में आने पर मुक्त के पास जाये, उसका नाम मुक्ति। उसमें सब आया। आहाहा! क्या हो? अरे! अनादि का दु:खी है। दु:ख से छूटने का पंथ—रास्ता तो यह है। दु:ख है, वह दु:ख से छूटने की सहायता में आवे? पुण्य-पाप के भाव, वह

तो दु:ख है। दोष नहीं कहा? दोष और दुर्गुण, दोष और दु:ख। दोष और दु:ख—दो कहे। आहाहा! लोगों को कठिन पड़े। शुभाशुभभाव को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि। कहो, अब करना क्या? भगवान! तू कौन है? भाई! आहाहा! दोष में और दु:ख में तू है? तो दोष और दु:खरूप हो गया वह तो।

मुमुक्षु : शुभ में कहाँ दु:ख है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ तो... शुभ क्या है? सुख है अन्दर का सुख? सवेरे लड़के को पूछा था। लड़के उलझन में आ गये जरा। पहले शुभाशुभ को हेय माने। हेय माने अच्छा हुआ कहलाये? शुभ हेय? भगवान की भक्ति और पूजा? हाँ। फिर वह बेचारा (उलझन में आया)। क्या सुनते थे अभी तक? ऐई! अतुल को कहा।

मुमुक्षु : ....लड़के तो उलझन में आये ही न!

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें पूछा न, शुभाशुभभाव हेय करने की दिक्कत क्या? शुभभाव को हेय करना? हाँ।

मुमुक्षु : शुभ में भी जोर मारा हो तो मानो कि महाराज कुछ खोटा बोले?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारा अतुल भी था। दूसरे वे थे, यह पुष्प... पुष्प कुछ गाता एक नरेन्द्र।

बापू! भगवान है न तू! यह शुभाशुभ को हेय करना अर्थात् वह तो टालना है। टालना कहो या हेय करना कहो। जिसकी श्रद्धा में यह नहीं आवे तब तक स्वरूप में अनुभव होगा कैसे? और अनुभव बिना स्थिर कैसे होगा? और स्थिर हुए बिना वीतरागता और केवलज्ञान आयेगा कहाँ से? आहाहा! ऐसा है। कठिन काम कठिन!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत इसमें भी कहा है, लो। ऐसा है और वैसा है और फलाना है। ...की दृष्टि, वह समकिती है। परन्तु हो तब कि... ऐई! ऐसा नहीं। फिर किसी को मिथ्यादृष्टि कहना नहीं, लो। यह गजब बात! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो पर्याय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यदृष्टि, वह समकिती, परन्तु द्रव्यदृष्टि करे तब न? कुछ किये बिना द्रव्यदृष्टि, वह समकिती, द्रव्यदृष्टि... द्रव्यदृष्टि, वह समकिती है, परन्तु वह तो द्रव्यदृष्टि हुई उसे कि द्रव्य है अकेला, इसलिए हो गयी है दृष्टि और समकित हो गया? आहाहा!

वस्तु त्रिकाली है, उसकी अन्तर अनुभव में दृष्टि करे, वह सम्यग्दर्शन है। जिसे राग और पर्याय की बुद्धि छूट जाये। पूरा भगवान पूर्णानन्द का नाथ विश्वनाथ, लो। भगवान के नाम नहीं आते? विश्वनाथ, अन्यमति में बहुत आता है। यह विश्वनाथ तू स्वयं है, ऐसा कहते हैं। कहो, एक समय में तीन काल—तीन लोक (जाने)। आहा! यह वह कुछ बात है! यह कहीं बातों से वडा हो, ऐसा है? सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा एक विकल्प का कर्ता नहीं, ऐसा ही उसका स्वरूप है। ऐसे स्व-स्वरूप की स्थिति को जाने बिना जो कुछ करने लगे, वह सब कर्ताबुद्धि में मिथ्यात्व पोषित होता है। आहाहा! तब कोई कहे, 'परन्तु यह ऐसा शुद्धभाव तो अभी होता नहीं।' तो फिर धर्म नहीं होता, ऐसा कह। मुफ्त की किसकी लगायी है तूने यह? आहाहा! धर्म नहीं तो धर्मगुरु... और धर्म अर्थात् चारित्रवन्त... धर्म अर्थात् चारित्र.... दूसरा श्लोक।

प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः,
सूक्ष्मेऽन्तःसन्धिबन्धे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य।
आत्मानं मग्नमन्तःस्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे,
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ।।२।।

अभितः का अर्थ सर्वथा किया है। **अभितः** का अर्थ सर्वथा होता है? सर्वथा होता है। उसमें क्या अर्थ किया है? अभितः नहीं उसमें, शब्दार्थ में नहीं। अन्दर में होगा। उसमें एक में सर्वथा किया है। वह कलश... कलश में, हों!

मुमुक्षु : सर्वथा है, सर्व ओर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व ओर से। सर्वथा, ऐसा कहा है, लो। कलश में ऐसा है। इसमें दो-तीन जगह सर्वथा... सर्वथा....

मुमुक्षु : सर्वथा ही हो न! मिथ्यादर्शन में संसार में।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कथंचित् चाहिए, वरना अनेकान्त होता नहीं, ले।

मुमुक्षु : अब यही अनेकान्त है। है और यह नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! सर्वथा राग से भिन्न। कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न, ऐसा है?

मुमुक्षु : होवे तब तो दो वस्तु हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ३

सम्यग्ज्ञान से आत्मा की सिद्धि होती है

(सवैया इकतीसा)

काहू एक जैनी सावधान ह्वै परम पैनी,
ऐसी बुद्धि छैनी घटमांहि डार दीनी है।
पैठी नो करम भेदी दरव करम छेदि,
सुभाउ विभाउताकी संधि सोधि लीनी है।।
तहां मध्यपाती होय लखी तिन धारा दोय,
एक मुधामई एक सुधारस-भीनी है।
मुधासौं विरचि सुधासिंधुमैं मगन भई,
ऐती सब क्रिया एक समै बीचि कीनी है।।३।।

शब्दार्थ:-सावधान=प्रमाद रहित। पैनी=तैज। पैठी=घुसी। संधि=मिलाप। मध्यपाती=विचोही। मुधामई=अज्ञानमीय। सुधारस=अमृतरस। विरचित=छोड़कर।

अर्थ:-जैन-शास्त्र के ज्ञाता एक जैनी ने बहुत ही सावधान होकर विवेकरूपी तेज छैनी[1] अपने हृदय में डाल दी, जिसने प्रवेश करते ही नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म और

१. शास्त्र विशेष।

निजस्वभाव का पृथक्करण कर दिया। वहाँ उस ज्ञाता ने बीच में पड़कर एक अज्ञानमय और एक ज्ञानसुधारसमय ऐसी दो धारा देखीं, तब वह अज्ञानधारा छोड़कर ज्ञानरूप अमृतसागर में मग्न हुआ। इतनी सब क्रिया उसने मात्र एक समय में ही की।।३।।

काव्य-३ पर प्रवचन

काहू एक जैनी... देखो, यह जैनी नाम लिया है। भले इसमें शब्द न हो, परन्तु बात तो उसकी ही है न! जैनी। **काहू एक जैनी सावधान ह्वै परम पैनी... काहू एक जैनी सावधान ह्वै परम पैनी**—तीक्ष्ण। पैनी अर्थात् तीक्ष्ण।

ऐसी बुद्धि छैनी घटमांहि डार दीनी है।
पैठी नो करम भेदी दरव करम छेदि,
सुभाउ विभाउताकी संधि सोधि लीनी है॥

आहाहा! स्वभाव और विभाव की सन्धि है, कहते हैं। निःसन्धि है (नहीं)। है न उसमें? है उस कलशटीका में। निःसन्धि हुई नहीं। स्वभाव आनन्दमूर्ति प्रभु, विभाव राग और दुःख—दोनों की सन्धि है। अर्थात् सांध है, भिन्न है। निःसन्धि अर्थात् एक हुए नहीं। एक हुए हों तो भिन्न पड़े कहाँ से? आहाहा! **संधि सोधि लीन है।**

तहां मध्यपाती होय लखी तिन धारा दोय... तिन अर्थात् उसने। **एक मुधामई एक सुधारस-भीनी है।**

मुधासौं विरचि सुधासिंधुमैं मगन भई,
ऐती सब क्रिया एक समै बीचि कीनी है।

एक समय में क्रिया। ऐसे लक्ष्य बदलकर यहाँ जहाँ लक्ष्य किया, एक समय में बदल गया पूरा। दिशा बदली, दशा बदली, फल बदला—सब बदला। एक समय। आहाहा!

काहू एक जैनी... जैन स्वरूप को माननेवाला, ऐसा। **जैन शास्त्र के ज्ञाता,...** ऐसा लिखा है न! वीतरागमार्ग का जाननेवाला। यह ऐसा स्वरूप अन्यत्र हो नहीं सकता। परमेश्वर तीर्थंकरदेव के शासन में यह वस्तु है। यह दूसरे में नहीं, इसलिए

मिथ्यादृष्टि है, ऐसे तो स्पष्ट आया नहीं उसमें?

मुमुक्षु : आ जाये, परन्तु बोला जाये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो। वे लालन कहते थे लालन कि इसका नाम धर्म, इससे दूसरा... स्वयं न बोले अधर्म। वे बोले, अधर्म। हाँ, वे।

मुमुक्षु : वह तो यही हुआ न।

मुमुक्षु २ : प और कानो पा और प और काने पी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में बोले फिर यह। पा... प। प और कानो पा तथा प और पी.... ऐसा कहे। परन्तु वह सामने वहाँ तो बोल डाले वह।

मुमुक्षु : पाप शब्द न बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

ऐसा कहे, धर्म से विरुद्ध वह क्या? वे कहे, अधर्म। हाँ, वे। स्वयं न बोले अधर्म। भाषा... लगे। पण्डित लालन थे न। बहुत होशियार। पढ़े हुए यह खोटा। नब्बे वर्ष की उम्र में गुजर गये न! यहाँ बारह महीने रहे थे। यहाँ रहे थे इस मलूकचन्दभाई के घर में, नहीं? .... बारह महीने रहे थे यहाँ। बहुत बार व्याख्यान सुनने भी यहाँ आते थे।

मुमुक्षु : प्रतिदिन आते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ठिकाना नहीं कुछ। पढ़ा हुआ बहुत तो गड़बड़ करे फिर आड़ी-टेढ़ी। सच्चा जहाँ कहें, फिर रोने लगे, रोने लगे, हों! और आँसू... पण्डितजी! उसमें कुछ माल नहीं बहुत। दूसरे को खिचड़ा करना।

परन्तु उसका व्याख्यान सुनने दो डॉलर (खर्च करे)। सात रुपये तब, हों! अभी तो महँगा हुआ कुछ १४ रुपये का। एक डॉलर १४ का हो गया। ऐसे सात?

मुमुक्षु : साढ़े सात।

पूज्य गुरुदेवश्री : साढ़े सात।

मुमुक्षु : दो के पन्द्रह रुपये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो के पन्द्रह। तब दो के सात थे। बीस-बीस हजार लोग सुनने

आते। गप्पा मारे आड़े-टेढ़े तो आहाहा! दुनिया को भान कहाँ है? सुनने आवे बहुत २०-२० हजार (लोग)। सात-सात रुपये देकर, हों! खर्च भी उतना हो। वह बाँधे न वह (पाण्डाल आदि)।

मुमुक्षु : आज तो मुम्बई में १०० रुपये देकर आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आते हैं। मुम्बई वह लेख है। अब क्या होता है? रजनीश का है न। १०० रुपये, १८ दिन के। आठ दिन श्वेताम्बर के और दस दिन दिगम्बर के। महावीर की वाणी। अब उसे भान ही नहीं होता कि महावीर की वाणी किसे (कहना)? सर्वज्ञ परमात्मा थे। एक समय में तीन काल का ज्ञान था। उनकी वाणी अर्थात् परमागम। अब उसकी श्रद्धा बिना बातें करने लगे, अब उसे क्या कहना? दुनिया भी लिती है परन्तु जैन में भी ऐसे भानरहित होते हैं न! भाषा की एक छटा हो, दिखाव ऐसा हो अन्दर। महावीर की वाणी, भाई! किसे कहना, बापू! आहाहा! परमागम। जिस परमागम में आत्मा की मुख्यतासहित छह द्रव्य का वर्णन है। ऐसा वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं होता। वह यहाँ कहते हैं।

काहू एक जैनी... जैनी अर्थात् जो अज्ञान और राग को जीतने को तैयार हुआ और शास्त्र का—वीतराग के शास्त्र का जाननेवाला। **सावधान ह्वै परम पैनी...** तीक्ष्ण छैनी। **पैनी** अर्थात् तीक्ष्ण छैनी। **ऐसी बुद्धि छैनी। बुद्धिरूपी छैनी...** राग और आत्मा को भिन्न करके स्वभाव सन्मुख हो, ऐसी बुद्धि को तीक्ष्ण बुद्धि कहा है। भले जानपना कम हो और दूसरे को कहना भी न आता हो।

मुमुक्षु : कहना कहाँ है जीव के अधिकार में?

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर दूसरे को कहना आवे तो मनुष्य वह (होशियार) कहलाये...

मुमुक्षु : कहना आता है, वह जीव का स्वभाव ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहना (आवे), भाषा भाषा बोले, छटा से बात करे, वह सब अभिमान है। भाषा से मैं बोलता हूँ और समझाता हूँ। मार डाले मीठा जहर। पीता हो मीठा जहर और माने कि हम जगत को धर्म प्राप्त कराते हैं। आहाहा!

ऐसी बुद्धि छैनी घट मांहि डार दीनी,... लो। भगवान आत्मा और राग के बीच

अन्दर में भिन्न करके... भिन्न करके। आहाहा! **एक जैनी ने बहुत ही सावधान होकर...** ऐसा वापस। सावधान शब्द है न। अर्थात् बहुत सावधान शब्द रखा फिर। **विवेकरूपी तेज छैनी,...** लो। **शस्त्र विशेष। अपने हृदय में डाल दी।** अन्तर में... 'शस्त्र' (शब्द) है न कहीं? सम्यग्ज्ञानरूपी शस्त्र राग से भिन्न करके अन्तर में डालकर। कहो, समझ में आया?

पैठी नो करम भेदि... शरीर से शुरु किया पहले। अन्दर में छैनी—ज्ञान की तीक्ष्ण धारा, जो पहले धारा था शास्त्र से, उसे अन्तर में प्रयोग में रखा। नोकर्म से भिन्न किया आत्मा को। द्रव्यकर्म को छेद डाला। जड़कर्म भी मुझमें नहीं। **सुभाउ विभाउताकी संधि...** अब भावकर्म आया। स्वभाव और भावकर्म—विभाव, उनकी सन्धि। एक नहीं, उसे अनेकपने शोधकर... **सोधि लीनी है।** आहाहा! कितना काम है इसमें! वह करने का यह है, वह तो अब सूझता नहीं। यह करना और यह करना, बाहर दौड़ा-दौड़। स्वभाव आत्मा आनन्दस्वरूप, विभाव दुःखरूप विकार—दोनों को पृथक्करण कर दिया, लो। **निजस्वभाव का पृथक्करण कर दिया।** नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म—तीनों ही, ऐसा लिया है अर्थ में। यही हुआ न। तीनों आ गये न!

तहां मध्यपाती होय... मध्य में पड़ी हुई प्रज्ञाछैनी बीच में पड़कर... एक अज्ञानमय और एक ज्ञान। है न? **लखी तिन धारा दोय...** उसने दो धारा जान ली। एक चैतन्य ज्ञानधारा और एक विकल्प की रागधारा। शुभराग के तीन प्रकार वर्णन किये हैं न शास्त्र में। एक क्रिया का राग दया-दान-व्रत का; एक भक्ति का राग और एक गुण-गुणी भेद का राग विकल्प। आत्मा वस्तु है और उसमें आनन्द आदि गुण है, ऐसा जो भेदरूप विकल्प उठता है, उसे और आत्मा के स्वभाव को भिन्न करके दो धारा की। दोनों एक थी, वह दो भिन्न की। एक मानी थी, हों! थी तो भिन्न-भिन्न। आहाहा! जानन स्वभाव... रागभाव, वह अज्ञान है और यह तो ज्ञान है। रागभाव—अज्ञानभाव, आत्मभाव—जाननभाव। दोनों को... उसने दो धारा भिन्न की। **लखी** अर्थात् जानी।

एक मुधामई। एक अज्ञानमय, देखो! यह राग है, वह अज्ञानमय मूढ़भाव है। है न? शुभाशुभ विकल्प है, वह अज्ञानमय धारा है, ऐसा कहते हैं। यह तो आ गया है न पुण्य-पाप (अधिकार) में, नहीं? वह कहे, शुभ भिन्न और अशुभ भिन्न। यह कहे,

दोनों अज्ञान। आत्मा के ज्ञान का—चैतन्य का जिसमें अंश नहीं, ऐसा चाहे तो दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम, वह अज्ञान है। उसमें ज्ञान है नहीं। आहाहा! **एक मुधामई एक सुधारस-भीनी...** एक धारा अमृत के आनन्द से भीनी है। क्या कहा है अज्ञान को? **मुधामई** है न। सुधा अमृतरस, ज्ञान सुधारसमय। अन्तर की धारा आत्मा की, वह तो आनन्दमय धारा है, कहते हैं। राग, वह अज्ञानमय धारा है। दोनों को भिन्न करके **सुधारस-भीनी,** ऐसा। ज्ञान सुधारसमय, ऐसा किया 'भीनी' का अर्थ। यहाँ उसका अर्थ ऐसा किया।

मुधासौं विरचि,... लो, व्रत-नियम-भक्ति ऐसा विकल्प शुभराग, उससे विमुख होकर, **विरचि—**छोड़कर, ऐसा। **सुधासिंधुमैं मगन भई...** अमृत की धारा भगवान की... अरे, पर के साथ वाद-विवाद की इसमें आवश्यकता कहाँ है? भगवान आत्मा अमृत का सागर है। राग है, वह दु:खरूप अज्ञानमय है। दोनों को भिन्न करके, **सुधासिंधुमैं मगन भई...** छैनी—प्रज्ञाछैनी। अमृतरूपी समुद्र भगवान आत्मा में **मगन भई।** लो, लीनता हुई।

ऐती सब क्रिया एक समै बीचि कीनी... एक समय में यह सब क्रिया हो गयी। कहो, 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं। एक समय... क्योंकि ऐसे जहाँ फिरा, आनन्द द्रव्य की धारा में आया, एक समय देरी लगी, कहते हैं। आहाहा! एक समय में ज्ञान को रूपान्तर कर डाला। परसन्मुख के लक्ष्यवाला ज्ञान, उसका लक्ष्य छोड़कर स्वसन्मुख के चैतन्य अमृतसागर में डाला। प्रज्ञाछैनी को जोड़ा, एक समय लगा, कहते हैं। समझाने में देरी लगे, क्रम पड़े। वहाँ कहाँ क्रम पड़ता है? आहा! दो धारा और उसमें एक में आया और एक को छोड़ा—यह सब एक समय में है, कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन काम, इसलिए लोगों को... परन्तु सत्य तो यह है। यह करने से ही जन्म-मरण का अन्त आयेगा। इसके बिना आनेवाला नहीं। बाहर में यह ऐसी लगे धमाधम। क्या कहा?

मुमुक्षु : धूमधाम से...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'धूमधाम से धमाधम चली ज्ञानमार्ग रहा दूर रे।' लो। यह

यशोविजय कह गये तो भी उसी और उसी में वापस। धूमधाम से धमाधम चली। बस यह बनाओ, मन्दिर बनाओ। यह पूजा करो, भक्ति करो, फूल चढ़ाओ। विधि से करना और ऐसा करना। रागरागिनी में उतारो और हारमोनियम में उतारो सब। पूजा पढ़े तो ऐसी पढ़े। यह तो आया था न हमारे एक यहाँ सूरतवाला, नहीं? चिमन। आया था यहाँ (संवत्) १९९२ में। सुनने गये थे। दि... दि... किया करे।

मुमुक्षु : दिवाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिवाली। दि... दि... करे। वाली फिर बोले बाद में।

और भाई थे वहाँ देवशीभाई। शिवजी... शिवजी... शिवजीभाई थे। ९२ में मढीया। आहाहा! उसमें तीर्थंकरगोत्र बाँधे, कहे। मैंने कहा, तीतर बाँधे उसमें। मन में... उसे कुछ बाहर कहा जाये उस समय वहाँ? परन्तु उसमें क्या? ऐसा कहे, ऐसे रस चढ़ जाये, तीर्थंकरगोत्र बाँधे। वह तो राग है और देह की क्रिया, वह मैं करता हूँ। बराबर ऐसे धुन लगा दो। परन्तु वह धुन तो जड़ की है। आहाहा! वे बोले तब, हों! (संवत्) १९९२... ९२। ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी न? मन्दिर का मुहूर्त... ९२। ३५ वर्ष हो गये। धुन चढ़ावे धुन। धूल में भी नहीं धुन। आत्मा अन्दर आनन्द और ज्ञान का स्वभाव, उसे शान्तरस द्वारा पकड़ना और पकड़ा तो राग से भिन्न पड़ गया। उसका अनुभव, उसमें मग्न होना। ऐसा कहते हैं, देखो न! राग में और क्रिया जड़ में बोलने में मग्न होना?

मुधासौं विरचि सुधासिंधुमैं मगन भई, ऐती सब क्रिया एक समै बीचि कीनी। उसका अर्थ ऐसी गुलाँट जहाँ खायी, राग की रुचि थी, वह रुचि गुलाँट खाकर आत्मा की अन्तर अनुभव की करी। एक समय का काम है। आहाहा! एक समय का मिथ्यासंसार, उसे त्रिकाली द्रव्य के ऊपर दृष्टि देने से एक समय में भिन्न पड़ गया। संसार स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! साधारण समाज को यह मार्ग कठिन लगे न!

अब तो वहाँ बहुत सुनते बेचारे सब। तीन-तीन हजार लोग। गाँव से दूर। वह हुंकार नहीं देते थे? फिर हमारे राजमलजी देते थे। वहाँ हुंकार का रिवाज नहीं न, इसलिए होगा। इस हिन्दुस्तान में रिवाज नहीं न? यह हमारे गुजराती में ही जरा रिवाज है। परन्तु यह ... करते। **ऐती सब क्रिया एक समै बीचि कीनी है,...** लो। आहा! एक समय में। एक समय सम्यग्दर्शन उत्पन्न करने में लगता है। अरे, उसके अनन्त काल

उसमें—राग और रुचि में उसके गये। निरर्थक दु:खी होने के काल में गये।

जैनी—जिसे शास्त्र का ज्ञान है। तो शास्त्र के ज्ञान में ऐसा आया कि राग से यह भगवान आत्मा भिन्न है, ऐसा। ऐसा जो ज्ञान किया था, वह अन्दर भिन्न करके अनुभव किया। एक समय में उसका अनुभव है, कहते हैं। कहो, इसका नाम सम्यग्दर्शन और यह मोक्ष का मार्ग। मोक्षद्वार है न यह? भिन्न करके... राग से भिन्न करके (अर्थात्) व्यवहार से भिन्न करके, ऐसा हुआ या नहीं? व्यवहार है, वह मुधाधारा है। नहीं? यह ज्ञानधारा है। कहो, रागादि की क्रिया दया-दान-व्रत-भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा—यह सब राग, वह मुधा—अज्ञानधारा है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये न ....।

अज्ञान का अर्थ (यह कि) उसमें ज्ञानस्वभाव नहीं, ऐसा अज्ञान है। राग में ज्ञानस्वभाव कहाँ आया? उससे तो, व्यवहार जिसे कहते है, उससे तो विरचा—पृथक् पड़ा। अब जिससे पृथक् पड़ना है, उसके साधन द्वारा आत्मा पृथक् पड़े? व्यवहार साधन और व्यवहार कारण, आता है न? छहढाला में आता है। यहाँ तो इनकार करते हैं, देखो! वह व्यवहार से भिन्न पड़े—राग से। उसमें बन्ध में भी आ गया। ... आया था न निर्विकल्प। निश्चयनय के विषयभूत निर्विकल्प... निरुपाधि आत्मराम का स्वरूप एकाग्र होता है। राग से तो भिन्न पड़ता है। आहाहा! पूरा व्यवहार का राग। निश्चय का अराग, ऐसे स्वभाव को पकड़ने से राग से भिन्न पड़े, तब भान होता है। व्यवहार की सहायता से होता है? **इतनी सब क्रिया उसने मात्र एक समय में ही की,** लो। **पुनः**

★ ★ ★

काव्य - ४

पुनः (दोहा)

जैसै छैनी लोहकी, करै एकसौं दोइ।
जड़ चेतनकी भिन्नता, त्यौं सुबुद्धिसौं होइ।।४।।

अर्थ:-जिस प्रकार लोहे की छैनी काष्ठ आदि वस्तु के दो खण्ड कर देती है, उसी प्रकार चेतन-अचेतन का पृथक्करण भेदविज्ञान से होता है।।४।।

काव्य-४ पर प्रवचन

जैसै छैनी लोहकी, करै एकसौं दोइ।
जड़ चेतनकी भिन्नता, त्यौं सुबुद्धिसौं होइ।।४।।

लो। जैसे लोहे की छैनी, लकड़े आदि वस्तु को दो खण्ड कर देती है। अभी तो बड़े लोहे को खण्ड करती है, लो। ऐसे हाथियार निकले हैं न। लोहे के दो टुकड़े एकदम। बड़े-बड़े ऐसे चार-चार गाउ आठ-आठ गाउ के दल हों, हों। ऐसा मारे। वह हीरा की कणी नहीं रखते काँच के लिये? काँच हो न, काँच को तोड़ना हो न काँच। हीरा की कणी। काँच टूट जाये एकदम। ऐसे काँच का दल हो न इतना बड़ा ऐसा। दस-दस हाथ, है न? हीरा की कणी हो ऐसी। लोटियावोरा यहाँ हमारे रखते थे। .... ऐसे जहाँ रखे वहाँ काँच के दो टुकड़े। देखी है या नहीं? हीरा की कणी होती है। हथियार होता है न? उसमें हीरा की कणी डाली हो। काँच इतना बड़ा हो। दो टुकड़े करना हो, वह कहीं ऐसे तोड़ने से होंगे? ऐसा करे तो। लोटियावोरा हमारा पड़ोसी था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। लाईन खींची, साथ में दो टुकड़े। अब काँच का दल तो कैसा हो, देखो। इसी प्रकार भगवान आत्मा प्रज्ञाछैनीरूपी हीरा की कणी। वह ऐसा क्या कहलाये वह सब? फोटो-बोटो मढ़ा न यह। अब काँच उसके प्रमाण में चाहिए हो तो काँच तो बड़ा हो। २०-२० हाथ का लम्बा काँच आता है। २०-२० हाथ। अब उसमें से टुकड़े करने हों तो वह हीरा बिना कहीं टुकड़े नहीं होते। इसी प्रकार राग और पुण्य से आत्मा को भिन्न करना, वह सम्यग्ज्ञान की छैनी बिना भिन्न हो नहीं। आहाहा! **उसी प्रकार चेतन-अचेतन का पृथक्करण भेदविज्ञान से होता है।** भेदविज्ञानरूपी हीरा की कणी। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०४, आषाढ़ कृष्ण ७, बुधवार, दिनांक १४-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य - ५ से ८

समयसार नाटक। मोक्षद्वार। मोक्ष होनेवाले को सुबुद्धि का विलास, उसका वर्णन है। **सुबुद्धि का विलास।** सम्यक् ज्ञान, वह मोक्ष का कारण है और सम्यक् ज्ञान कैसा हो, उसकी बात बताते हैं। **सर्व वर्ण लघु, चित्रकाव्य धनाक्षरी। धरती धरम फल...** देखो, धर्मी का सम्यक् ज्ञान ऐसा होता है कि.....

★ ★ ★

काव्य - ५

सुबुद्धि का विलास सब वर्ण लघु
(चित्रकाव्य घनाक्षरी)

धरति धरम फल हरति करम मल,
मन वच तन बल करति समरपन।
भखति असन सित चखति रसन रित,
लखति अमित वित करि चित दरपन।।
कहति मरम धुर दहति भरम पुर,
गहति परम गुर उर उपसरपन।
रहति जगति हित लहति भगति रति,
चहति अगति गति यह मति परपन।।५।।

शब्दार्थ:-भखति=खाती है। असन=भोजन। सित=उज्ज्वल। अमित=अप्रमाण। दहति=जलाता है। पुर=नगर। उपसरपन=स्थिर। अगति गति=मोक्ष।

अर्थ:-सुबुद्धि धर्मरूप फल को धारण करती है, कर्ममल को हरती है, मन-वचन-काय तीनों बलों को मोक्षमार्ग में लगाती है, जीभ से स्वाद लिये बिना उज्ज्वल ज्ञान का भोजन खाती है, अपनी अनन्त ज्ञानरूप सम्पत्ति चित्तरूप दर्पण में देखती है, मर्म की बात अर्थात् आत्मा का स्वरूप बतलाती है, मिथ्यात्वरूप नगर को भस्म करती

है, सद्गुरु की वाणी ग्रहण करती है, चित्त में स्थिरता लाती है, जगत की हितकारी बनकर रहती है, त्रिलोकनाथ की भक्ति में अनुराग करती है, मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न करती है; ऐसा सुबुद्धि का विलास है।।५।।

काव्य-५ पर प्रवचन

धरति धरम फल हरति करम मल,
मन वच तन बल करति समरपन।
भखति असन सित चखति रसन रित,
लखति अमित वित करि चित दरपन।।
कहति मरम धुर दहति भरम पुर,
गहति परम गुर उर उपसरपन।
रहति जगति हित लहति भगति रति,
चहति अगति गति यह मति परपन।।५।।

ऐसा आता है तुमको यह सब?

मुमुक्षु : आता नहीं, एक-दो लाईन....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कवि किसके यह?

मुमुक्षु : कवि कहने के।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिम्मतभाई कवि है न।

मुमुक्षु : कहने के।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहने के। इस प्रकार के नहीं, भाई कहते हैं। इस प्रकार के नहीं, ऐसा कहना है। जोरदार कवि, हों! **धरती धरम फल...** धर्मी की सुबुद्धि ऐसी होती है कि जो धर्मरूपी फल को धारण करे। राग को और पुण्य को धारण करे नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्ज्ञान—चैतन्य की सुबुद्धि होने से सुबुद्धि का कार्य क्या? सुबुद्धि क्या करे? सुबुद्धि धर्मरूप फल को धारण करे। राग और पुण्य रहित निर्मल धारा धर्म की,

उसे धारण करे, उसका नाम सुबुद्धि कहा जाता है। **हरति करम मल...** धर्म को धारे और कर्ममल को हरे। रागादि जो मल है, वह सुबुद्धि—सम्यग्ज्ञान उसे टालता है। **हरति** अर्थात् टाले। देखो, यह सम्यग्ज्ञान।

मन वच तन बल करति समरपन... मन-वच-काय तीनों बलों को मोक्षमार्ग में लगाती है। स्वभाव चैतन्यस्वभाव सम्यक् बुद्धि स्वरूप-सन्मुख के झुकाव को प्रगट करती है। मोक्ष का मार्ग, वह मन, वचन और काया—उसका अर्पण सब मोक्षमार्ग की ओर है, ऐसा कहते हैं। ऐसी सुबुद्धि को सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। **भखति असन सित...** शीतलता को स्वादता है। शीतल आनन्दस्वभाव, उज्ज्वलस्वभाव, वह ज्ञान का भोजन है। ज्ञान का भोजन खाती है। आहाहा! सम्यग्ज्ञान, वह पुण्य-पाप के राग को खाता नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा... गुजराती समझते हैं न थोड़ा-थोड़ा? आत्मा आनन्दस्वरूप, वह सुबुद्धि आनन्द का भोजन करती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे लड्डू, रोटियों का तो नहीं, परन्तु पुण्य-पाप के राग का भी भोजन नहीं। नित्यानन्द भोजी भगवान आत्मा है। पुण्य-पाप के विकल्प उसका भोग (का) भोक्ता आत्मा नहीं। सम्यक्ज्ञानी आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं।

भखति असन सित... सित.. अर्थात् उज्ज्वल भोजन। **चखति रसन रित...** परन्तु जीभ के स्वाद बिना आत्मा के आनन्द को अनुभवता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? **रित** अर्थात् रहित। **चखति रसन रित...** जीभ के स्वाद बिना सम्यग्ज्ञान अकेला... आहाहा! स्वस्वभाव के आनन्द को चखता है, भोगता है। **लखति अमित वित...** और सुबुद्धि ऐसी होती है कि **अमित वित...** मर्यादा रहित आत्मा की लक्ष्मी को जानती है। आहाहा! है न? **अपनी अनन्त ज्ञानरूप सम्पत्ति चित्तरूप दर्पण में देखती है,...** लो। **लखति अमित वित...** अपना अनन्त ज्ञान, आनन्द ऐसा स्वभाव, उसे जानती है। किसमें? **करि चित दरपन...** चित्तरूपी दर्पण में अर्थात् ज्ञानरूपी दर्पण में अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द को देखती है। लो, यह सुबुद्धि।

कहति मरम धुर... सम्यक् बुद्धि—सुबुद्धि ऐसी होती है कि वह **कहति मरम...** आत्मा के मर्म को अनुभव करती है। आत्मा का आनन्दस्वरूप, उसे वह अनुभव करती है। मर्म को बताती है। आहाहा! आत्मा के स्वरूप को बताती है। देखो, यह सुबुद्धि।

अरे, गजब! इसका नाम सम्यक् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **कहति मरम धुर...** मूल बात को बताती है, ऐसा। धुर अर्थात् मूल। आत्मा का आनन्द और ज्ञान स्वभाव, उसे वह बताती है। **दहति भरम पुर...** मिथ्यात्वरूपी भ्रमणा के नगर को तो जलाकर राख करती है। देखो, यह बनारसीदास पहले शृंगारी कवि थे और शृंगारी पुस्तकें बनायी। गंगा नदी में डाल दी। गंगा न? गोमती... गोमती। गंगा और गोमती दूर है, नहीं? गोमती में डाल दी। यह बनाये आत्मधर्म के (कवित्व)।

कहति मरम धुर दहति भरम पुर... भ्रम का पुर—नगर। मिथ्यात्व की भ्रमणायें—जहाँ-तहाँ सुखपना मानना, पर की सहायता से मुझे कुछ धर्म की मदद मिलेगी—ऐसी मान्यता मिथ्यात्व का नगर-पुर है, उसे तो **दहति** अर्थात् सम्यग्ज्ञान जला डालता है। आहाहा! **गहति परम गुरु उर उपसरपन...** ज्ञानी गुरु की वाणी जानता है, वाणी पकड़ता है। है न उसमें? **सद्गुरु की वाणी ग्रहण करती है।** सत्य बात हो, उसे सम्यग्ज्ञान ग्रहण करता है, ऐसा कहते हैं। **गुरु उर उपसरपन...** उपसरपन है न? स्थिर करता है, ऐसा होगा। परमगुरु की वाणी को ग्रहण करता है, अन्दर में पकड़ता है और जानता है। **रहति जगति हिय...** सम्यग्ज्ञान जगत के हित के लिये काम करता है। है न? चित्त में स्थिरता लाती है। **जगत की हितकारी बनकर रहती है।** हितकारी का अर्थ किसी को अहित नहीं होता, ऐसा। इसका नाम सम्यग्ज्ञान। वह जगत की हितकारी बनकर रहता है।

लहति भगति रति... त्रिलोकीनाथ की भक्ति में अनुराग करती है। सम्यग्ज्ञान, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञपद के धारी में उसका प्रेम होता है। सम्यग्ज्ञानी का प्रेम परमात्मा त्रिलोकनाथ के प्रति उसका प्रेम होता है। विकल्प हो तो वहाँ जाता है, ऐसा कहते हैं। **चहति अगति गति...** सुबुद्धि कैसी है? कि **अगति गति...** जहाँ से वापस नहीं फिरे, ऐसी गति को इच्छता है। है न? ब्रह्मचारीजी! पुस्तक है न? **चहति अगति गति...** उसमें से वापस न फिरना पड़े, ऐसी अगति गति अर्थात् मोक्ष, उसे सम्यग्ज्ञान चाहता है। वह राग को नहीं, स्वर्ग को नहीं, व्यवहार को नहीं (चाहता), वह तो अगति गति को चाहता है।

यह मति परपन, लो। ऐसे बुद्धि सुबुद्धि का (विलास)। **परपन** अर्थात् विलास। ऐसा लिया। ज्ञानी की वाणी ग्रहता है, तीर्थंकर आदि जगत गुरु की भक्ति करता है।

सम्यग्ज्ञान दुनिया को समझाता है, (इसलिए) जगत को हितकारी, इतना। वह ज्ञान जगत को हितकारी है। देखो, यह बनारसीदास का कवित्व का विलास। सुबुद्धि का विलास। कवित्व के विलास में डाल दिया, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। **ऐसा सुबुद्धि का विलास है... परपन** अर्थात् विलास। सम्यग्ज्ञान चार गति को इच्छता नहीं। ज्ञान इच्छता नहीं। राग को इच्छता नहीं, व्यवहार को इच्छता नहीं। व्यवहार आवे अवश्य सुनने का, ऐसा कहते हैं, परन्तु उसे इच्छता नहीं। इच्छता है अकेली मुक्ति को। वीतराग परिणति से मेरी मुक्ति होगी, ऐसी ज्ञानी की बुद्धि ऐसा काम करती है। यह तो शान्ति का काम है, भाई! यह कहीं दौड़ा-दौड़ से मिले, ऐसी चीज़ नहीं है।

सम्यग्ज्ञानी का महत्व। उसमें सर्व वर्ण लघु थे, इसमें सर्व वर्ण गुरु। कवि है न? आत्मा बादशाह है, अब उसकी उपमा देते हैं। सम्यग्ज्ञानरूपी आत्मा बादशाह। छठवाँ पद।

★ ★ ★

काव्य - ६

सम्यग्ज्ञानी का महत्त्व

(सब वर्ण गुरु, सवैया इकतीसा)

राणाकौसौ बाना लीनै आप साधै थाना चीनै,
दानाअंगी नानारंगी खाना जंगी जोधा है।
मायाबेली जेती तेती रेतैमैं धारेती सेती,
फंदाहीकौ कंदा खौदै खेतीकौसौ लोधा है।।
बाधासेती हांता लोरै राधासेती तांता जोरै,
बांदीसेती नाता तोरै चांदीकौसौ सोधा है।
जानै जाही ताही नीकै मानै राही पाही पीकै,
ठानै बातैं डाही ऐसौ धाराबाही बोधा है।।६।।

शब्दार्थः-राणा=बादशाह। बाना=भेष। थाना=स्थान। चीनै=पहिचाने। दानाअंगी=

प्रतापी। खाना जंगी जोधा=युद्ध में महा शूरवीर। कंदा=कांस की जड़ें। खेतीकौसौ लोधा=किसान के समान। बाधा=क्लेश। हांता लोरै=अलग करता है। तांता=डोर। बाँदी=दासी। नाता=सम्बन्ध। डाही=होश्यारी। बोधा=ज्ञानी।

अर्थ:-भेदविज्ञानी ज्ञाता, राजा जैसा रूप बनाये हुए हैं। वह अपने आत्मरूप स्वदेश की रक्षा के लिये परिणामों की सम्हाल रखता है और आत्मसत्ता भूमिरूप स्थान को पहिचानता है; प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आदि की सेना सम्हालने में दाना अर्थात् प्रवीण होता है, शाम, दाम, दण्ड, भेद आदि कलाओं में कुशल राजा के समान है; तप, समिति, गुप्ति, परीषहजय, धर्म, अनुप्रेक्षा आदि अनेक रंग धारण करता है; कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने में बड़ा बहादुर होता है। मायारूपी जितना लोहा हे, उस सबको चूर-चूर करने को रेती के समान है, कर्म के फंदेरूप फांस को जड़ से उखाड़ने के लिये किसान के समान है, कर्मबन्ध के दु:खों से बचानेवाला है, सुमति राधिका से प्रीति जोड़ता है, कुमतिरूप दासी से सम्बन्ध तोड़ता है, आत्मपदार्थरूप चाँदी को ग्रहण करने और पर पदार्थरूप धूल को छोड़ने में रजत-सोधा (सुनार) के समान है। पदार्थ को जैसा जानता है, वैसा ही मानता है, भाव यह है कि हेय को हेय जानता और हेय मानता है। उपादेय को उपादेय जानता और उपादेय मानता है[१] ऐसी उत्तम बातों का आराधक धाराप्रवाही ज्ञाता है।।६।।

काव्य-६ पर प्रवचन

राणाकौसौ बाना लीनै आप साधै थाना चीनै,
दानाअंगी नानारंगी खाना जंगी जोधा है।
मायाबेली जेती तेती रेतैमैं धारेती सेती,
फंदाहीकौ कंदा खौदै खेतीकौसौ लोधा है।।

भाषा भी सब कैसी, देखो न! एक बार एक बाई बोलती नहीं, वह? पतासीबाई नहीं एक? पतासीबाई। गया की थी? गया की। यहाँ आयी थी। बहुत समय रही थी।

१. आत्मा उड़द का मास (भीतरी गूदा) मगज आदि समान उपादेय है, और छिलका फोक आदि के समान शरीरादि हेय हैं।

पतासीबाई थी, नहीं ? गया की। वह यह बोलती थी पहले। यहाँ रह गयी थी।

बाधासेती हांता लोरै राधासेती तांता जोरै,
बांदीसेती नाता तोरै चांदीकौसौ सोधा है।
जानै जाही ताही नीकै मानै राही पाही पीकै,
ठानै बातैं डाही ऐसौ धाराबाही बोधा है।।६।।

हिम्मतभाई इनकार करते हैं कि मुझे यह रचना नहीं आता।

मुमुक्षु : यह तो महाकवि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाकवि है। थोड़े कवि रखे हैं। इस जाति का क्षयोपशम हो। परन्तु उस क्षयोपशम को अन्तर में प्रयोग किया। क्षयोपशम अनेक प्रकार का होता है। सम्यग्दृष्टि क्षायिक लेकर जुगलिया में जाये। उसे भाषा-बाषा का ऐसा कुछ नहीं। कवित्व जोड़ सके ऐसा हो सकता नहीं। क्षायिक समकित पाया... मनुष्य का आयुष्य बँध गया, फिर क्षायिक समकित पावे तो जुगलिया में जाये। भोगभूमि। भद्रिक हो भद्रिक। तीन-तीन पल्योपम की आयुष्य। दो पल्य की आयुष्य, एक पल्य की आयुष्य। असंख्य अरब वर्ष की आयुष्य हो। ओहो! तीन कोस का ऊँचा शरीर हो, दो गोस का, एक कोस का। एक पल्योपमवाले को एक कोस (का शरीर), दो पल्योपमवाले को दो कोस का। ऐसा मनुष्य क्षायिक समकित लेकर वहाँ उपजे। भद्रिक... भद्रिक... भद्रिक... और वह मरकर स्वर्ग में ही वापस जाये। वापस उसकी स्थिति हो, उससे अधिक में न जाये। ऐसा है, नहीं ? भाई! उसकी जितनी स्थिति है न, उससे अधिक स्थिति में न जाये। ऐसे क्षायिक समकिती। ऐसा है न ?

जितना आयुष्य है, उसका यहाँ इतने आयुष्य से अधिक वहाँ न उपजे। ... ऐसे क्षायिक समकिती तीन पल्योपम तक रहे। उसे दूसरी कोई उपाधि नहीं। कल्पवृक्ष है। इच्छा निपटी, पश्चात् वहाँ स्वाध्याय करते होंगे इकट्ठे होकर। ऐसा तो नहीं आता ? ऋषभदेव भगवान का। छह व्यक्ति वहाँ थे। फिर मुनि आये। छह व्यक्ति वहाँ थे न साथ में जुगलिया में ? मुनि ऊपर से उतरे। 'तुम्हारा समकित प्राप्त करने का काल है यह' मुनि ने कहा। आहाहा! ऊपर जाते थे, वे नीचे उतरे। नीचे उतरे ऊँचा चढ़ाने के लिये, ले जाने के लिये। 'भाई! सम्यक्त्व ग्रहण करो। तुम्हारे सम्यक्त्व का काल है।' आहाहा!

गजब है न! कितनी पात्रता, कितनी योग्यता और कितनी सरलता और भद्रिकता!

जुगलिया तो ऐसे होते हैं न! मनुष्य। जुगलिया समझते हो न? एक साथ। बहिन-भाई उपजे और फिर पति-पत्नी हो। तथापि कषाय की बहुत मन्दता। बहिन-भाई, वे पति-पत्नी हों तो भी कषाय की बहुत मन्दता होती है। आहाहा! यहाँ यदि ऐसा हो तो कषाय तीव्र होती है। मनुष्य में यदि ऐसा हो, तब तो तीव्र कषाय होती है। वह भोगभूमि.. ... स्वर्ग में गये, लो। आहाहा! कहते हैं, **राणा कौसौ बाना लीनै...** यह तो ऐसा कविता आदि न आवे, इसके ऊपर से विचार आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहा न... ऐसे भद्रिक हैं। तीन-तीन पल्योपम, तीन-तीन कोस ऊंचे, सरल भद्रिक। क्षायिक समकिती कितने ही तो। यह तो प्राप्त करने के लिये योग्य, ऐसा कहा। पूर्व में लेकर नहीं आये, ऐसा हुआ न? कितने ही तो क्षायिक समकित लेकर जाते हैं। आहाहा!

राणा कौसौ बाना लीनै... कैसा है भगवान आत्मा? सम्यग्ज्ञानी का महत्त्व। **भेदविज्ञानी ज्ञाता, राजा जैसा रूप बनाये हुए है।** बादशाह है। आहाहा! सम्यग्ज्ञानी ने बादशाह का रूप धारण किया है। **राणा कौसौ बाना लीनै... 'बाना'** अर्थात् वेश। लीनै। वेश लिया। **आप साधै थाना चीनै... वह, अपने आत्मरूप स्वदेश की रक्षा के लिये परिणामों की सम्हाल रखता है,...** लो। **आपा साधै...** अपने स्थान में ज्ञान करे अथवा अपनी सत्ता में, ऐसा कहते हैं। उसके परिणाम को साधे। **आपा साधै थाना...** अर्थात् अपना स्थान। उसमें अपने को पहिचाने। अपने शुद्ध परिणाम को देखे। **आत्मसत्ता भूमिरूप स्थान को पहिचानता है।** आया न स्थान?

दानाअंगी-प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आदि की सेना सम्हालने में दाना अर्थात् प्रवीण होता है। दानाअंगी... इसका अर्थ है। सम्यग्ज्ञानी का महत्त्व। बादशाह है अपने स्वरूप का। भगवान आनन्दस्वरूप उसका—बादशाह का वेश धारण किया है और आत्मसत्तारूपी स्थान को पहिचानता है। **दानाअंगी** अर्थात् प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आदि की सेना सम्हालने में प्रवीण है, दाना है, होशियार है। कमाने में होशियार है, ऐसा

नहीं लिया। यह पैसा... ऐई! पैसे कमाने में होशियार है, उसकी नोंध नहीं ली। यहाँ तो स्वयं दानाअंगी—शान्ति, संवेग, अनुकम्पा आस्था, ऐसी सेना सम्हालने में प्रवीण है। अपने राग की सेना है, वह सब, उसे सम्हालने के लिये प्रवीण है।

नानारंगी का अर्थ है, **शाम, दाम, दंड, भेद आदि कलाओं में...** नानारंगी है न? **कुशल राजा के समान है।** नानारंगी—शाम, दाम, भेदादि कुलों में कुशल राजा के समान है। **तप, समिति, गुप्ति, परिषहजय, धर्म, अनुप्रेक्षा आदि अनेक रंग धारण करता है।** नानारंगी का अर्थ यहाँ किया। लो, दानाअंगी को ... प्रवीण होता है। शाम, दाम में कुशल राजा के समान, ऐसा। राजा जैसे शाम, दाम में कुशल है, यह भी अपने उपशम आदि में कुशल है। और तप, समिति, गुप्ति, परीषहजय, (दस प्रकार के) धर्म और (बारह) अनुप्रेक्षा—संवर के बोल आते हैं न? उसके अनेक रंग धारण करता है। मुनिपने में समिति का, गुप्ति का, (२२ प्रकार के) परीषहजय का, १० प्रकार के धर्म, १२ प्रकार की भावना—अनुप्रेक्षा (आदि) अनेक रंग धारण करता है बादशाह। इसी प्रकार ज्ञानी बादशाह ऐसे अनेक गुणों के रंग को धारण करता है।

खाना जंगी जोधा है,... लो। खानाजंगी। **कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने में बड़ा बहादुर होता है।** खानाजंगी—जंग करनेवाले योद्धा। किसके साथ? कर्मरूपी शत्रु। देखो, यह तो शत्रु लिखा, भाई! वे अरिहन्त और अर्हंत का विवाद करते हैं न? अरिहन्त का नाम नहीं लेना। अरि तो दुश्मन कहलाते हैं। अरे, परन्तु नाम में क्या दिक्कत है? इसलिए अरिहन्त नहीं, अर्हंत लेना। ऐसा पत्रिका में आता है। अरे, यहाँ कहते हैं कि अरिहन्त कहो या अर्हन्त कहो या अर्हम् कहो, सब एक ही भाव है, सुन न! **कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने में बड़ा बहादुर होता है।** अरिहन्ता, ऐसा सम्यग्ज्ञान बादशाह शत्रु को नाश कर अपनी राजधानी को सम्हालेगा। आहाहा!

मायाबेली जेती जेती रेतैमैं धारेती सेती... मायारूपी जितना लोहा है,... लोहा... लोहा... उसे जो जंग लगा हो, जेती तेती—जितने प्रमाण में। वह रेती से उसे साफ करते हैं। रेती होती है न रेती बारीक। **उन सबको चूर-चूर करने को रेती के समान है।** धर्मात्मा बादशाह ज्ञान का... लोहे को जैसे रेती साफ करती है न? बारीक रेती, नहीं? आता है न! लीमडी से ले जाये बोरियों की बोरियाँ। यहाँ बोरियाँ आयी थीं। करना था

कुछ मानस्तम्भ में। मानस्तम्भ में रेती की बोरियाँ आयी थीं लीमड़ी से, नहीं? लाल बारीक घिसे। इसी प्रकार आत्मा सम्यग्ज्ञानी बादशाह समकिती धर्मी मायारूपी जितना लोहा—मायारूपी लोहा, उसे रेती से जैसे चूर-चूर करे, लोहे को साफ करे। ऐसे रेती के समान ज्ञानी हैं। आहाहा! हिन्दी है अन्दर, परन्तु समझ में आये ऐसी हिन्दी है।

फंदाहीकौ कंदा... यह घासपूस को निकाल डालने के लिये **कर्म के फन्देरूप कांस—**घास... **जड़ से उखाड़ने के लिये किसान के समान है।** उखेड़े घास हाथ से, खेती में मूल (जड़) निकाल डाले। साफ करते हैं न? ....तक खोदे खेत को। मूल और घास निकालकर खेती करे। नहीं तो बोरडी निकले बाहर। **जड़ से उखाड़ने के लिये किसान के समान है। फंदाहीकौ कंदा खौदै खेतीकौसौ लोधा है,...** लो, किसान के समान है। **कर्मबंध के दुःखों से बचानेवाला है। खेतीकौसो लोधा...** खेती होती है न? अपनी खेती की सम्हाल करता है, इसी प्रकार धर्मात्मा अपनी आनन्द आदि खेती की सम्हाल करता है। लोधा है। बड़ा लोधा। है न? **खेतीकौसो लोधा है...** किसान के समान है।

बाधासेती हांता लौरै... वह विघ्न को तोड़ डाले। **सुमति राधिका से प्रीति जोड़ता है। बाधासेती हांता लौरै...** बाधा और विघ्न हो, क्लेश-क्लेश, क्लेश हो, उसे तोड़ डाले, अलग करे। सम्यग्ज्ञानी बादशाह क्लेश को अलग कर डाले। समझ में आया? **राधासेती तांता जौरै...** सुमति—सम्यग्ज्ञानरूपी राधा के साथ नाता जोड़े। है न? **राधासेती तांता जौरै...** तांता अर्थात् डोर। नाता अर्थात् सम्बन्ध। सम्यग्ज्ञान में सम्यग्ज्ञानी सुमति के साथ प्रेम बाँधे। **बांदीसेती नाता तौरै...** दासी से तो नाता तोड़ डाले। कुमतिरूपी दासी से सम्बन्ध तोड़ डाले। सुमतिरूपी राधिका से कुमतिरूपी दासी को तोड़ डाले, ऐसा कहते हैं। देखो, राधा को रखा।

चांदीकौसौ सोधा है... यह धूलधोया जैसा है बादशाह। चाँदी और सोना के (लिये) धूल धोते हैं न? धूल निकाल डाले और सोना-सोना ले लेवे। धूलधोया—धूल को धोनेवाला। सोना-सोना ले लेवे। ऐसा आत्मा के आनन्द को ले लेवे और पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़ दे। है न? चाँदी को तो ग्रहण करे (और) परपदार्थरूप धूल को छोड़ दे। **आत्मपदार्थरूप चांदी को ग्रहण करते हैं।** शुद्ध आनन्द, ज्ञानस्वरूप आत्मा को

तो ग्रहण करे, **परपदार्थरूप धूल को छोड़ने से रजत सोधा (सुनार) समान है।** सुनार समान। यह तो शब्दार्थ में जरा ध्यान रखे तो....

जानै जाही ताही नीकै... सम्यग्ज्ञान से जो जाने, उसे बराबर नीके—माने। **जानै जाही ताही नीकै मानै...** जिस बात को बराबर सम्यग्ज्ञान से जाने... **(पदार्थ को) जैसा जानता है वैसा ही मानता है, भाव यह है कि हेय को हेय जानता है और हेय मानता है।** पुण्य-पाप का भाव, उसे हेय जाने और हेय माने। शुभ-अशुभभाव हेय है, ऐसा जाने। सम्यग्ज्ञानी बादशाह, पुण्य-पाप के भाव हेय है, उसे हेय जाने और माने। इस प्रमाण माने कि यह हेय है। कहो, समझ में आया? अभी तो ऐसा कहते हैं कि पुण्य-पाप के भाव को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। लो, यहाँ तक बात आयी। शुभ-अशुभभाव हेय? मिथ्यादृष्टि। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, शुभ-अशुभभाव हेय जाने और उसे माने कि यह हेय है। शुद्ध आत्मा ही उपादेय है और उसे (उपादेय) जाने और उपादेय माने। **उपादेय को उपादेय जानता है और उपादेय को उपादेय मानता है।** लो। एकड़ा है। एकड़ा है परन्तु दूसरा डाला है। नीचे लिखा है न?

उत्तम बातों का आराधक धाराप्रवाही ज्ञाता है,... लो। **ठानै बातैं डाही...** डाही... डाही बातें करे, **ऐसो धारावाही बोघा है।** 'ऐसी डाही' को कहा न उत्तम। उत्तम बात का आराधक है। धारावाही योद्धा है। यहाँ एकड़ा किया वापस नीचे डाला। हेय, उपादेय का लिखा है। **आत्मा उड़द का मास (भीतरी गूदा) मगज आदि के समान उपादेय है।** यह शुद्ध ज्ञान का आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा उपादेय है। **और छिलका फोक आदि के समान शरीरादिक हेय है।** पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, विकल्प आदि सम्यग्ज्ञानी को हेय है। समझ में आया? **भेदविज्ञानी ज्ञाता, राजा जैसा रूप बनाये हुए है।** यह सब सामग्री होती है।

ज्ञानी जीव ही चक्रवर्ती है। पहले बादशाह कहा, सुबुद्धि का विलास कहा, अब स्वयं चक्रवर्ती है धर्मी। सम्यग्ज्ञानी, वह चक्रवर्ती है धर्म का। ज्ञानी जीव ही चक्रवर्ती है।

★ ★ ★

काव्य - ७

ज्ञानी जीव ही चक्रवर्ती है

(सवैया इकतीसा)

जिन्हकै दरब मिति साधन छखंड थिति,
बिनसै विभाव अरि पंकति पतन हैं।
जिन्हकै भगतिको विधान एई नौ निधान,
त्रिगुनके भेद मानौ चौदह रतन हैं।।
जिन्हकै सुबुद्धिरानी चुरै महा मोह वज्र,
पूरै मंगलीक जे जे मोखके जतन हैं।
जिन्हके प्रमान अंग सौहै चमू चतुरंग,
तेई चक्रवर्त्ती तनु धरैं पै अतन हैं।।७।।

शब्दार्थ:-अरि पंकति=शत्रु समूह। पतन=नष्ट होना। नव निधान=नव निधि। मंगलिक=मंडल चौक। चमू=सेना। चतुरंग=सेना के चार अंग-हाथी घोड़े रथ पैदल। अतन=शरीररहित।

अर्थ:-ज्ञानी जीव चक्रवर्ती के समान हैं - क्योंकि चक्रवर्ती छह खण्ड पृथ्वी साधते-जीतते हैं, ज्ञानी छह द्रव्य को साधते हैं; चक्रवर्ती शत्रु समूह को नष्ट करते हैं, ज्ञानी जीव विभाव परिणति का विनाश करते हैं; चक्रवर्ती को नवनिधि[१] होती हैं, ज्ञानी नवभक्ति[२] धारण करते हैं; चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं, ज्ञानियों के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेदरूप[३] चौदह रत्न[४] होते हैं; चक्रवर्ती की पटरानी दिग्विजय को जाने

---

१. महाकाल असि मसि के साधन, देत कालनिधि ग्रंथ महान।
मानव आयुध भांड नसरप, सुभग पिंगला भूषन खान।।
पांडुक निधि सब धान्य देत है, करै शंख वाजित्र प्रदान।
सर्व रतन रत्नों की दाता, वस्त्र देत निधि पद्म महान।।

२. नव भक्ति के नाम आगे के दोहे में कहे हैं।

३. चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में सात सजीव रत्न होते हैं, और सात अजीव होते हैं। ये इस प्रकार हैं :-
(दोहा) सेनापति ग्रहपति थपित, प्रोहित नाग तुरंग।
बनिता मिलि सातौं रतन, हैं सजीव सरवंग।।१।।

के अवसर पर चुटकी से वज्ररत्नों का चूर्ण करके चौक पूरती है, ज्ञानी जीवों की सुबुद्धिरूप पटरानी मोक्ष जाने का शकुन करने को महा–मोहरूप वज्र को पूर्ण करती है; चक्रवर्ती के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल ऐसी चतुरंगिनी सेना रहती है, ज्ञानी जीवों के प्रत्यक्ष, परोक्ष, प्रमाण, नय और निक्षेप होते हैं। विशेष यह है कि चक्रवर्ती के शरीर होता है, पर ज्ञानी जीव देह से विरक्त होने के कारण शरीररहित होते हैं – इसलिए ज्ञानी जीवों का पराक्रम चक्रवर्ती के समान है।।७।।

काव्य-७ पर प्रवचन

जिन्हकै दरब मिति साधन छखंड थिति,
बिनसै विभाव अरि पंकति पतन हैं।
जिन्हकै भगतिको विधान एई नौ निधान,
त्रिगुनके भेद मानौ चौदह रतन हैं॥

दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

जिन्हकै सुबुद्धिरानी चुरै महा मोह वज्र,
पूरै मंगलीक जे जे मोखके जतन हैं।
जिन्हके प्रमान अंग सौहै चमू चतुरंग,
तेई चक्रवर्त्ती तनु धरैं पै अतन हैं॥७॥

जरा सुननेवाले का मन एकाग्र हो तो... उसमें वार्ता जैसा हो साधारण... ऐसे शब्द ही प्रयोग करे वे। कहीं मन न जाये, तब मुश्किल से उसे समझ सके। देखो, यह आत्मा धर्मी हो, वह चक्रवर्ती समान है, ऐसा कहते हैं। धर्म का चक्री। 'धम्मवर

चक्र छत्र असि दंड मणि, चर्म कांकणी नाम।
ये अजीव सातौं रतन, चक्रवर्ति के धाम।।२।।

४. कवि ने चौदह रत्नों की संख्या को त्रिगुण के भेदों में गिनाया है, सो सम्यग्दर्शन के उपशम, क्षयोपशम, क्षायक ये तीन, ज्ञान के मति, श्रुत, अवधि, मन-पर्यय, केवल ये पाँच, और चारित्र के सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात और संयमासंयम – ये छह ऐसे सब मिलकर चौदह जान पड़ते हैं।

चाउरंत चक्कवट्टिणं', आता है न लोगस्स में? नमोत्थुणं में। नमोत्थुणं। आता है? 'धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टिणं।' चार गति का अन्त करने के लिये चक्रवर्ती समान है। नमोत्थुणं में आता है। अर्थ की किसे खबर हो? भगवान जाने अर्थ। नमोत्थुणं किया था या नहीं नमोत्थुणं? ऐ बाबूभाई! नमोत्थुणं किया था पहले? अर्थ आते थे पहले? 'धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टिणं।' धर्म में प्रधान चार गति का अन्त करने में चक्रवर्ती है, वीतराग (प्रभु)। यहाँ तो सम्यग्ज्ञानी को चक्रवर्ती की उपमा दी है। समझ में आया?

जिन्हकै दरब मिति साधन छखंड थिति,
बिनसै विभाव अरि पंकति पतन हैं।
जिन्हकै भगतिको विधान एई नौ निधान,
त्रिगुनके भेद मानौ चौदह रतन हैं॥

आहाहा!

जिन्हकै सुबुद्धिरानी चुरै महा मोह वज्र, उपमा कैसी दी है!

पूरै मंगलीक जे जे मोखके जतन हैं।
जिन्हके प्रमान अंग सौहै चमू चतुरंग,
तेई चक्रवर्त्ती तनु धरैं पै अतन हैं॥

अब अर्थ : **जिन्हकै दरब मिति साधन... ज्ञानी जीव चक्रवर्ती के समान है क्योंकि चक्रवर्ती छह खण्ड पृथ्वी साधने-जीतते हैं, ज्ञानी छह द्रव्यों को साधते हैं।** लो! चक्रवर्ती छह खण्ड को साधते हैं। सम्यग्दृष्टि छह द्रव्य को साधता है। छह द्रव्यों को साधते हैं। भाई ने डाला है न! सोगानी निहालचन्दभाई। उन्होंने कहा कि लोग कहते हैं कि चक्रवर्ती छह खण्ड को साधता है। तो कहे, नहीं, अखण्ड को साधता है। छह खण्ड को नहीं, अखण्ड को (साधता है)। आया है या नहीं? ऐई मनसुख! सोगानी निहालभाई। चक्रवर्ती छह खण्ड को साधता है। कहे, चक्रवर्ती का आत्मा समकिती है, वह अखण्ड वस्तु को साधता है, छह खण्ड को नहीं। आहाहा! अपना अखण्ड स्वरूप अभेद चिदानन्द प्रभु को साधे, उसे चक्रवर्ती कहते हैं। आहाहा! **छ खंड थिति... बिनसै विभाव। चक्रवर्ती शत्रु-समूहको नष्ट करते हैं।**

ज्ञानी जीव विभाव परिणति का विनाश करते हैं। चक्रवर्ती उसके विरोधियों का नाश करता है। धर्मी (के लिये) विभाव, वह विरोध है। पुण्य और पाप—दोनों विभाव, वह विरोध है। विरोधी है। विभाव परिणति का विनाश करते हैं, देखो! विभाव में अशुभभाव ही अकेला आवे? शुभ और अशुभ दोनों भाव—विभाव परिणति अशुद्ध है, उसका विनाश करता है, रखता नहीं। समझ में आया? व्यवहार को पाले, व्यवहार को रखे। यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार का नाश करे, ऐसा कहते हैं। सम्यग्ज्ञानी चक्रवर्ती विभाव परिणति का विनाश करता है। **अरि पंकति पतन हैं....** चक्रवर्ती को नवनिधि होती है। फिर से यहाँ लिया... **विभाव अरि पंकति पतन हैं।** विभावरूपी शत्रु। अरि आया इसमें। अरि... अरि... ऐई! विभावरूपी अरि की पंक्ति की धारा का पतन करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धर्मी जीव विभावरूपी अरि—वैरी, ऐसी पंक्ति—धारा का नाश करता है।

जिन्हकै भगतिको विधान एई नौ निधान... भक्ति का निधान, वह नव (निधान)। नौ भक्ति के नाम आयेंगे। फिर गाथा (पद) चलेगी आठ। यह नौ भक्ति, यह नौ निधि। यह उसे नव निधि है। नीचे सब अर्थ किये हैं।

महाकाल असि मसिके साधन, देत कालनिधि ग्रंथ महान।
मानव आयु भांड नसरप, सुभग पिंगला भूषन खान॥
पाँडुक निधि सब धान्य देते है, करै शंख वाजित्र प्रदान।
सर्व रतन रत्नों की दाता, वस्त्र देत निधि पद्म महान॥

यह नवनिधान। **नवभक्ति के नाम आगे के दोहे में कहे हैं,....** लो। बाद में है देखो।

★ ★ ★

काव्य - ८

नव भक्ति के नाम (दोहा)

श्रवन कीरतन चिंतवन, सेवन बंदन ध्यान।
लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रवान।।८।।

शब्दार्थ:-श्रवण=उपादेय गुणों का सुनना। कीरतन (कीर्तन)=गुणों का व्याख्यान करना। चिंतवन=गुणों का विचार करना। सेवन=गुणों का अध्ययन करना। वंदन=गुणों की स्तुति करना। ध्यान=गुणों का स्मरण रखना। लघुता=गुणों का गर्व नहीं करना। समता=सब पर एकसी दृष्टि रखना। एकता=एक आत्मा ही को अपना मानना, शरीरादि को पर मानना।

अर्थ:-श्रवण, कीर्त्तन, चिन्तवन, सेवन, वन्दन, ध्यान, लघुता, समता, एकता - ये नव प्रकार की भक्ति हैं, जो ज्ञानी जीव करते हैं।।८।।

काव्य-८ पर प्रवचन

श्रवन—उपादेय गुणों का सुनना। यह नवधाभक्ति नव रत्न नव निधान। धर्मी जीव को उपादेय गुणों का सुनना-देखना। आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप, वह उपादेय है, उसे सुनने का विकल्प है, उसे यहाँ निधान में गिनने में आया है। आहाहा! अर्थ ऐसा किया है, देखा? उपादेय गुणों का सुनना।

कीर्तन—गुणों का व्याख्यान करना। यह एक निधान है। गुणों की व्याख्या करना। यह सब भक्ति है।

चिंतवन—गुणों का विचार करना। यह भी एक निधि है, निधान। नौ भक्तिरूपी नव निधान।

सेवन—गुणों का अध्ययन करना। लो! गुणों का अध्ययन करना, यह सेवन।

वंदन—गुणों की स्तुति करना। गुण की स्तुति करना। अनन्त आनन्द आदि की स्तुति करना, यह नवधाभक्ति, नवनिधान।

ध्यान—गुणों का स्मरण रखना। अनन्त गुणों का निधान भगवान, उसका स्मरण करना। ध्यान, वह निधान। ध्यान, वह निधान। लो!

लघुता—गुणों का गर्व नहीं करना। किसका गर्व करे? गुणों का गर्व न करे।

समता—सब पर एकसी दृष्टि रखना।

एकता—एक ही आत्मा ही को अपना मानना,... लो! **शरीरादि को पर मानना।** व्यवहार आदि। इस प्रकार की नौ भक्ति, उसे नव निधान कहा जाता है। सम्यग्ज्ञानी के नव निधान। सम्यग्ज्ञानी चक्रवर्ती के नव निधान। आहाहा! यह पैसा-बैसा के निधान और इतने लड़के और इतने मकान, वह कहीं ज्ञानी के निधान नहीं, वे जड़ के हैं। धर्मी—ज्ञानी के ये नव निधान हैं। नवधाभक्ति प्रमाण, है न? **श्रवण, कीर्तन, चिन्तवन, सेवन, वन्दन, ध्यान, लघुता, समता, एकता ये एक नव प्रकार की भक्ति है, जो ज्ञानी जीव करते हैं।** ऐसा भाव—विकल्प होता है, उसे नव निधान (कहा जाता है)। पद है न? **जिन्हकै भगतिको विधान एई नौ निधान... जिन्हकै भगतिको विधान एई नौ निधान।** विधान और निधान।

त्रिगुनके भेद मानौ चौदह रतन हैं,... लो। **त्रिगुण तो भेदों में गिनाया हैं, सम्यग्दर्शन के उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक ये तीन...** + ज्ञान के पाँच=आठ; चारित्र के छह। **सामायिक, छेदोस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, संयमासंयम—** यह छह लो। ये सब मिलकर चौदह जान। चौदह रत्न। यह चौदह रत्न में डाला। वह नव निधान में डाला। यह सम्यग्ज्ञानी चक्रवर्ती को ऐसे चौदह रत्न होते हैं। नौ निधान और ऐसे चौदह रत्न, ऐसे। दर्शन, ज्ञान और चारित्र के भेद है न यह चौदह? दर्शन, ज्ञान, चारित्र के चौदह भेद, यह चौदह उसके रत्न। क्योंकि रत्नत्रय कहा है न! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को रत्नत्रय कहा है। बस, रत्नत्रय के भेद चौदह, तो यहाँ चौदह रत्न कहे।

जिन्हकै सुबुद्धिरानी चूरे महा मोह वज्र... आहाहा! चक्रवर्ती जब गद्दी पर बैठनेवाला हो... उसकी एक रानी ऐसी होती है, हीरा हो करोड़ रुपये का हीरा, (उसे मसलकर) आटा करे ऐसे। वज्रनाराचसंहनन होता है रानी को। मांगलिक करते हैं न तुम्हारे? करते हैं यह पत्र में डालकर। क्या कहलाता है? रंगोली। पत्र में ऐसे छिद्र करके ऐसे करे। यह तो कहे, हाथ से ऐसे हीरा मसलकर रंगोली पूरे। .... मानना भी कठिन पड़े। हाथ से ऐसे हीरा तोड़ डाले एकदम। है न? **जिन्हकै सुबुद्धिरानी चूरे महा मोह वज्र...** समकिती की रानी सम्यग्ज्ञान क्या करे? मोहरूपी वज्र को तोड़ डाले। आहाहा! मिथ्यात्व तो नहीं, परन्तु चारित्रमोह को भी चूर-चूर कर दे। आहाहा! ऐसा सम्यग्ज्ञान चैतन्यरत्न... उसका यह चौदह रत्न में से किया वह बाद में आयेगा। सुबुद्धिरानी चूरे।

अरे, समकिती की सुबुद्धिरानी, वह तो मोहरूपी वज्र को चूर डालती है।

पूरै मंगलीक जे जे मोखके जतन है... यह मांगलिक करे मांगलिक, लो। सुबुद्धि रानी वज्ररत्नों का चूर्ण करके चौक पूरती है। है न? **चक्रवर्ती की पटरानी दिग्विजय को जाने के अवसर पर चुटकी से वज्ररत्नों का चूर्ण करके चौक पूरती है,...** रंगोली। **ज्ञानी जीवों की सुबुद्धिरूप पटरानी मोक्ष जाने का शकुन करने को महा-मोहरूप वज्र को चूर्ण करती है।** महामोह मिथ्यात्व और रागादि को चूर्ण कर डालती है। यह मांगलिक है। यह स्वस्तिक किया। **पूरै मंगलीक जे जे मोख के जतन है...** मोक्ष के जो उपाय हैं, उसे यहाँ मांगलिकरूप से कहा गया है। जतन करे जतन। जतन-रतन, ऐसा जरा। ...**शकुन करने को महा-मोहरूप वज्र को चूर्ण करती है।**

जिन्हकै प्रमान अंग,... लो। **चक्रवर्ती के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल ऐसी चतुरंगिनी सेना रहती है। प्रमान अंग सौहै चमू चतुरंग—**हाथी, घोड़ा, पैदल, रथ। **ज्ञानी जीवों के प्रत्यक्ष, परोक्ष, प्रमाण, नय और निक्षेप होते हैं,...** लो। चतुरंग हो गया। प्रमाण, नय, निक्षेप। प्रमाण के दो भेद हो गये प्रत्यक्ष और परोक्ष। नय और निक्षेप होते हैं, लो। **जिन्हकै प्रमान अंग सौहै चमू चतुरंग...** यह चतुरंग सेना उसे—ज्ञानी को शोभती है। आहाहा! स्वयं स्वतन्त्र बनाया है यह (पद)। **तेई चक्रवर्ती तनु धरैं पै अतन है...** सम्यग्दृष्टि शरीरसहित दिखता है, परन्तु शरीररहित ही है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव, उसे शरीर दिखता है, कहते हैं। परन्तु वह शरीरसहित है (नहीं)। वह तो शरीररहित आत्मा है। आहाहा! शरीरसहित तो नहीं, परन्तु व्यवहार के रागसहित का नहीं ज्ञानी। आहाहा!

तेई चक्रवर्ती तनु धरैं पै अतन है... लो! ऐसा चक्रवर्ती शरीर धारे... **पर ज्ञानी जीव देह से विरक्त होने के कारण शरीररहित होते हैं,...** लो। **इसलिए ज्ञानी जीवों का पराक्रम चक्रवर्ती के समान है...** लो। पहले बादशाह समान कहा, फिर चक्रवर्ती समान। बादशाह तू है। यह चक्रवर्ती। नीचे लिखे हैं चौदह रत्न के नाम। सात जीव और सात अजीव। है न? **सेनापति गृहपति थपित प्रोहित नाग तुरंग...** नाग अर्थात् हाथी। **बनिता मिली सातौं रतन है सजीव सरवंग...** यह सात सजीव हैं। **चक्र छत्र असि—**तलवार, **दंड मणि चर्म कांकणी नाम...** कांकणी मणिरत्न है। **ये अजीव सातौं रतन चक्रवर्ती के धाम।** चक्रवर्ती का धाम है। ठीक मिलाया है।

भगवान आत्मा चक्रवर्ती के समान सम्यग्ज्ञानी है। वह छह खण्ड को साधता है, यह अखण्ड को साधे। अथवा छह द्रव्य का ज्ञान करे, ऐसा आया था न? एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान करे, वह छह द्रव्य का साधना कहलाता है। छह खण्ड को जानता है न? वास्तव में साधना का अर्थ यह है छह खण्ड यह... यह... है, ऐसा जानता है, इसी प्रकार यह भी छह द्रव्य को जानता है, बस। छह द्रव्य का जाननेवाला आत्मा। सप्तम हो जाता है। छह द्रव्य से भिन्न जाननेवाला। छह द्रव्य परज्ञेय सब, उनसे भिन्न अकेला चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा का अन्तर में एकाग्रपना, वही समकिती का कर्तव्य है, धर्मी का वह कर्तव्य है। वाणी का, मन का, वह कुछ कर्तव्य नहीं। राग के विकल्प का भी उसका कर्तव्य नहीं। वह विभाव है। स्वभाव का साधन, वह उसका कर्तव्य है।

तीसरा कलश है। अब तीसरा कलश आया। दो कलश हो गये थे न?

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते,
चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम्।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि,
भिद्यन्तां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति।।३।।

देखो '**विभौ**' आया। भक्तामर में आता है न '**विभौ**'? भाई ने पूछा था (संवत्) १९८३ में। बरवाळा में भाईलालभाई। कहाँ गये पदमशीभाई? ८३, ८३। कितने वर्ष हुए? १७ और २७ = ४४। तब पूछा था। यह विभु आता है भक्तामर में? उसे वेदान्त की लाईन थी न... वेदान्त की लाईन का बहुत परिचय। विभु आता है भक्तामर में। आता है, वह क्या हो गया? विभु अर्थात् सर्वव्यापक नहीं। आत्मा के अनन्त गुणों में सब गुण व्यापक हैं, इसका नाम विभु है। विभु अर्थात् पर में (व्यापक) है, ऐसा विभु है नहीं। विभु का शब्द आया। आता है न उसमें कुछ शब्द? भगवान परमात्मा विभु है। उसका अर्थ—तीन काल और तीन लोक को जानने के स्वभाव में विभु है। क्षेत्र से सबमें विभु है, ऐसा नहीं। विभु की व्याख्या ऐसी है (नहीं)। वेदान्ती कहते हैं न? एक आत्मा सर्वव्यापक। ऐसा है नहीं। शरीर व्यापक है, वह परन्तु सबको जानने की अपेक्षा से विभु कहा जाता है। अब ज्ञानी जीवों का मन्तव्य। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०५, आषाढ़ कृष्ण ८, गुरुवार, दिनांक १५-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य - ९ से १२

यह समयसार नाटक, मोक्षद्वार। नौवाँ (पद) है न? तीसरे कलश का अर्थ है। तीसरा कलश बोला गया है। नीचे। फिर से देखो तीसरा कलश।

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते,
चिन्मुद्राङ्कितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहम्।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि,
भिद्यन्तां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति।।३।।

इसका पद। **ज्ञानी जीवों का मन्तव्य**। धर्मी जीवों की विचारधारा।

★ ★ ★

काव्य - ९

ज्ञानी जीवों का मन्तव्य

(सवैया इकतीसा)

कोऊ अनुभवी जीव कहै मेरे अनुभौमैं,
लक्षन विभेद भिन्न करमकौ जाल है।
जानै आपा आपुकौं जु आपुकरि आपुविषैं,
उतपति नास ध्रुव धारा असराल है।।
सारे विकलप मोसौं न्यारे सरवथा मेरौ,
निहचै सुभाव यह विवहार चाल है।
मैं तौ सुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारी,
प्रभुता हमारी एकरूप तिहुं काल है।।९।।

अर्थः-आत्म-अनुभवी जीव कहते हैं कि हमारे अनुभव में आत्मस्वभाव से विरुद्ध चिह्नों का धारक कर्मों का फंदा हमसे पृथक् है, वे आप[1] अपने को[2] अपने द्वारा[3]

१. यह कर्तृरूप है। २. यह कर्मरूप है। ३. यह करणरूप है।

अपने में[1] जानते हैं। द्रव्य की उत्पाद, व्यय और ध्रुव यह त्रिगुण धारा जो मुझमें बहती है, सो ये विकल्प, व्यवहारनय से हैं, मुझसे सर्वथा भिन्न हैं; मैं तो निश्चयनय का विषयभूत शुद्ध और अनन्त चैतन्यमूर्ति का धारक हूँ, मेरा यह सामर्थ्य सदा एकसा रहता है – कभी घटता–बढ़ता नहीं है।।९।।

काव्य-९ पर प्रवचन

कोऊ अनुभवी जीव कहै मेरे अनुभौमैं,
लक्षन विभेद भिन्न करमकौ जाल है।
जानै आपा आपुकौं जु आपुकरि आपुविषैं,
उतपति नास ध्रुव धारा असराल है।।
सारे विकलप मोसौं न्यारे सरवथा मेरौ,
निहचै सुभाव यह विवहार चाल है।
मैं तौ सुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारी,
प्रभुता हमारी एकरूप तिहुं काल है।।९।।

सम्यग्दर्शन में सम्यग्दृष्टि को अनुभव में ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। **कोऊ अनुभवी जीव...** आत्मा के आनन्द का अनुभवी। अनादि से जो दुःख का अनुभवी था, विकार का—विभाव का, वह मिथ्यादृष्टि था। **कोऊ अनुभवी जीव कहै मेरे अनुभौमें...** स्वरूप के अनुभव में **लक्षन विभेद भिन्न करमकौ जाल है...** मैं तो चैतन्य लक्षण हूँ, पुण्य–पाप के विकल्प आदि, वह कर्म की जाल है। भेद जानता है। '**भित्वा**' है न? **सर्वमपि स्वलक्षण बलात् भेत्तुं**। अहो! भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव से अनुभव में आवे, ऐसा वह मैं और रागादि विकल्प, वह मेरी चीज़ नहीं। इतना अर्थ हुआ कि व्यवहार का राग, वह भी मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! वह कर्म की जाल है। समझ में आया? पुण्य और पाप के विकल्प रागादि विभाव, वह कर्म की जाल है। मैं तो ज्ञानानन्दस्वभाव, वह मेरी चीज़ और रागादिभाव, वह कर्म की जाल है। यह धर्मी के मन्तव्य और धर्मी का अन्तर हृदय!

१. यह अधिकरण है।

जानै आपा... कहते हैं कि 'मैं'.... आपा अर्थात् मैं, कर्ता मैं, **आपुकौ...** कार्य मेरा। आत्मा आत्मा को जाने। आत्मा, वह कर्ता; आत्मा को जाने, वह कर्म—यह भेद भी मुझमें है नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! **आपा आपुकौं जो आपुकरि...** राग द्वारा, पुण्य द्वारा तो नहीं, परन्तु मैं आत्मा मेरे स्वभाव द्वारा कारण होकर कार्य उपजाता हूँ, ऐसा भेद भी ज्ञानी को दृष्टि में अनुभव में होता नहीं। आहाहा! **आपुकरि आपुविषै...** लो, यह अधिकरण है, आधार। मैं कर्ता, वीतरागी परिणाम, वह मेरा कार्य; वीतरागी स्वभाव द्वारा कारण होकर होता है और वीतरागभाव के आधार से, त्रिकाली स्वभाव के आधार से परिणाम होता है, ऐसे छह कारक ले लेना। मुझमें से होता है और होकर मैं रखूँ—यह (दो) ले लेना। चार है, उसमें दो (इकट्ठे ले लेना)। छह कारक। समझ में आया?

यह सब व्यवहारचाल है, ऐसा कहते हैं। दया, दान के व्रत के विकल्प, वह तो विभावजाल, कर्मचाल। आहाहा! परन्तु मुझमें षट्कारक पड़े... ७३ गाथा में आता है, ७३। षट्कारक की अनुभूति से भी भिन्न हूँ। वह अपने षट्कारक, हों! आहाहा! राग से और विकल्प से मेरा कार्य होता है, यह बात तो (अलग रही)। क्योंकि विकल्प, वह तो कर्मजाल है। वह मुझमें है नहीं और मुझसे हुई नहीं, विकल्पदशा। यह तो आत्मार्थी की बात है, भाई! जिसे आत्मा सिद्ध करना है, उसे इस प्रकार से सिद्ध हो सकता है। सिद्ध अर्थात् मोक्ष। मोक्ष अधिकार है न? कि जिसमें, मैं तो आनन्द और ज्ञानलक्षण से लक्षित हूँ, विकार, दुःख और अज्ञानलक्षण से लक्षित है—ऐसे दो भेद हैं। और षट्कारक—आत्मा स्वभाव कर्ता, स्वभाव द्वारा करण, स्वभाव कार्य, स्वभाव में से होता है, स्वभाव के आधार से होता है और स्वभाव स्वभाव से होकर स्वभाव में रहे—यह सब छह प्रकार की जाल व्यवहार है, कहते हैं।

कहो, अब जहाँ यहाँ व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को हेय मानने में पसीना उतरता है। यहाँ तो षट्कारक, उसका स्वभाव अभेदस्वरूप भगवान में जितने छह प्रकार पड़े हैं, वह व्यवहार हेय है। है या नहीं उसमें? व्यवहार वह तो कहीं रह गया। विधि से यह करना, अविधि होने देना नहीं। आहाहा! मोक्ष का अधिकार है। मोक्ष के कारण में जो व्यवहाररत्नत्रय का विभाव, वह कर्मजाल है। आहाहा! और षट्कारक की भेद प्रवृत्ति, वह व्यवहारचाल है। है न? उस कलश के अर्थ में यह सब भरा है। उसमें

से आया है। षट्कारक, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय—ऐसा लिया है न उसमें।

भेद है, परन्तु वह मैं नहीं। यहाँ कहेंगे, देखो, अभी विशेष। **आपा आपुकौ जु आपुकरि आपुविषै...** एक बोल षट्कारक। वह मैं नहीं। आहाहा! छह प्रकार के भेद, वह मैं नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, विकल्प, वह तो कहीं रह गये। सौभागमलजी! ऐसा मार्ग, भाई! साधारण को बेचारे को तो ऐसा लगे कि यह सब उत्थापते हैं। भाई! चैतन्य के अभेद अनुभव बिना सब उत्थापने योग्य है। आहाहा! बापू! मोक्ष का कारण अभेद चैतन्य भगवान, वह मोक्ष का कारण है। ऐसे भेद पड़ना, वह भी मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया?

फिर कहते हैं, **उत्पत्ति नास ध्रुव धारा असराल है...** एक समय में अनन्त गुण की पर्याय निर्मल उत्पन्न हो, पूर्व की पर्याय का व्यय हो और ध्रुव—ऐसी धारा बहे, वह भी व्यवहार है। आहाहा! तीनों ही व्यवहार। भेद हो गया न? तीनों इकट्ठे, तीन भाग आ गये न। उत्पाद-व्यय-ध्रुव—तीन हो गये, वह भेद। अकेला (सामान्य) ध्रुव है, वह तो अभेद है। आहाहा! उत्पत्ति, नाश, ध्रुवधारा बहती है। तीन प्रकार। तीन भेद हैं न भेद? 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' यह भी व्यवहार है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! पर्यायदृष्टि से तीन लक्ष्य में आवे, वस्तुदृष्टि से तीन न जाये। आहाहा!

मार्ग तो देखो! जिसमें से परमात्म धारा आवे, ऐसा जो अभेदतत्त्व भगवान आत्मा उसमें तीन भेद हैं, वह तो व्यवहार है, कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का विभाव तो कर्मजाल कहा। व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार पंच महाव्रत आदि के परिणाम, वह तो कर्मजाल है, वह तो आत्मा के अनुभव में है (नहीं), परन्तु षट्कारकों के भेद भी अनुभव में नहीं। भगवान आत्मा अकेला नित्यानन्द परम स्वभाव ध्रुव, उसका आश्रय लेने से जो अनुभव होता है, उसमें तीन के भेद और षट्कारक होते नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग!

मुमुक्षु : यह तो दृष्टि का विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यही बात चलती है न! अनुभव का विषय चलता है न! अनुभवी का मन्तव्य यह है। ऊपर है न, ऊपर लिखा है न। **ज्ञानी जीवों का**

मन्तव्य। आहाहा! उसकी विचारधारा, उसका अन्तर हृदय। यह सब मोक्ष के कारण की व्याख्या है। मोक्ष के कारण में व्यवहाररत्नत्रय तो नहीं, परन्तु आत्मा के स्वभाव के षट्कारक के भेद पड़ें, भेद पड़े, वह भी विकल्प है, वह भी नहीं। आहाहा!

और तीसरी बात। **उतपति नाश ध्रुव धारा...** आहाहा! तीन। तीन में एक नहीं आया। तीन है, वह बहती है धारा, वह सब व्यवहार है। आहाहा! तीन होकर व्यवहार है। अकेला... तीन भेद आये न। यह अपेक्षा से तीन भेद लिये। तीन अंश ले लिये। ध्रुव भी एक अंश है (बाकी) दो की अपेक्षा से, ऐसा कहते हैं। यहाँ है, देखो! **असराल...** ध्रुवधारा। उत्पाद-व्यय-ध्रुवधारा। उत्पाद ने नाश किया व्यय का। **उतपति नाश ध्रुव धारा असराल है, सारे विकल्प मोसौं न्यारे सरवथा मेरौ**। आहाहा! यह सब भेद, विकल्प अर्थात् भेद **मोसौं न्यारे** आहाहा! अभेद का अनुभव होने पर यह सब भेद मुझसे न्यारे-भिन्न हैं। आहाहा!

सारे विकल्प मोसौं न्यारे सरवथा मेरौ,... सरवथा मेरौ, निहचै सुभाव यह विवहार चाल है... मेरा सर्वथा निश्चय स्वभाव एकरूप त्रिकाल, उसके अतिरिक्त यह सब व्यवहार चाल। देखो, यह व्यवहार चाल। आहाहा! षट्कारक के भेद और उत्पाद-व्यय और ध्रुव—यह सब व्यवहारगति, व्यवहार चाल। उसका आश्रय अथवा उसका लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। आहाहा! अभेद भगवान नित्यानन्द परमपारिणामिकस्वभाव यह द्रव्य का स्वरूप और अस्ति है। इसके आश्रय और अनुभव में भेद नहीं होते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही उपाय है। उसके निर्णय में तो यह आना चाहिए पहले। गड़बड़ करे, इससे होगा और इससे होगा। धूल से भी नहीं होगा। ऐसा मार्ग वस्तु के स्वरूप का है, ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा!

न्यारे सरवथा मेरौ, निहचै सुभाव यह विवहार चाल है... मेरा स्व-स्वरूप तो उससे निश्चय भिन्न है। **मुझसे सर्वथा भिन्न है। मैं तो निश्चयनय का विषयभूत शुद्ध और अनन्त चैतन्यमूर्ति का धारक हूँ। मैं तो सुद्ध चेतन अनन्त चिनमुद्रा धारी...** आहाहा! चिन् में जिन आ गया। अकेला वीतराग का पिण्ड ही मैं तो हूँ। आहाहा! **मैं सुद्ध चेतन...** आहाहा! **अनंत चिनमुद्राधारी...** अनन्त चैतन्यमूर्ति का धारक हूँ। इस व्यवहार

को रखूँ—धारूँ, ऐसा मैं नहीं—ऐसा कहते हैं। रागादि विकल्प व्यवहाररत्नत्रय को रखूँ—धारूँ, वह मैं नहीं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव—तीन भेद को धारूँ, वह मैं नहीं। षट्कारक की स्वाभाविक क्रिया हों, स्वाभाविक छह कारक के भेदरूप क्रिया, परन्तु भेद पड़ने से विकल्प उठते हैं, वह मैं नहीं। आहाहा!

प्रभुता हमारी एकरूप तिहुं काल है... कर्मजाल, व्यवहार चाल अलग, छह कारक अलग, उत्पाद-व्यय अलग। मैं तो **प्रभुता हमारी एकरूप...** दो नहीं, द्वैत नहीं। इस प्रकार से द्वैत नहीं, हों! सब होकर एक आत्मा, ऐसा अद्वैत नहीं। परन्तु मैं अद्वैत चैतन्य एकरूप, उसमें यह द्वैतपना आत्मा के अभेद स्वभाव में नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे, इसे आँगन में जाना और उसका अनुभव, वह तो अनन्त पुरुषार्थ है। बाहर के सब... यही बात है, उपाय यही है। दूसरा कोई उपाय ही नहीं। आहाहा! सरल कहो, जैसा है वैसा कहो, यथार्थ कहो, यह है। आहाहा! भाषा क्या ली उन सबके लिये? भेद और व्यवहार और अनेकता थी। व्यवहार विकल्प अनेक, षट्कारक अनेक, उत्पाद-व्यय-ध्रुव अनेक। तब **प्रभुता हमारी एकरूप तिहुं काल...** यह उसका योगफल। आहाहा!

मेरी महत्ता—मेरी प्रभुता—मेरी महिमा... एकरूप त्रिकाल, वह मेरी महिमा है। आहाहा! भेद, वह मेरी महिमा—महत्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? नये लोगों को ग्रीक-लेटिन (अटपटा) जैसा लगे। यह क्या कहते हैं? बापू! तेरे घर की बात है, भाई! तू कितना है, तेरी महिमा कहाँ है? एक स्वरूप में तेरी महिमा है। भेद में तेरी महिमा नहीं। आहाहा! यह तो लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति से बड़ा हो गया। धूल भी बड़ा नहीं, भटककर मरनेवाले हैं। आहाहा! क्या कहते हैं?

प्रभुता हमारी... मेरा यह सामर्थ्य सदा एकसा रहता है। अभेद एकरूप, वह मेरी महत्ता और प्रभुता है। आहाहा! मेरा सामर्थ्य तो एकरूप है, वह मैं हूँ। **कभी घटता-बढ़ता नहीं है,...** लो। ध्रुव में क्या घटे? एकरूप त्रिकाल में घटना-बढ़ना (है ही नहीं)। केवलज्ञान हो तो भी यहाँ अन्दर में कुछ बढ़ जाता नहीं। और अक्षर के अनन्तवें भाग (उघाड़) निगोद में रहे तो भी वहाँ ध्रुव में कुछ घटता नहीं। आहाहा! समझ में आया या नहीं? भैया! सिरोही। यह सिरोही के हैं, हम गये थे वह। आबू के पास सिरोही है न सामने। घेसल है। घेसल है न? पहले दो-तीन बार आये हैं ये यहाँ। जाना

था न जावा। जावा आवे न वहाँ से? सिरोही से जावा, ऐसा।

जावा में गये थे। जावा में वापस आये थे। फिर एक बार अपने आबू से गये थे, नहीं? सिरोही में तीन बार गये हैं। यह घेसल है न! आहाहा! वहाँ सब श्वेताम्बर बहुत। दिगम्बर होंगे कोई। वाड़ा बाँधकर मार डाला। हम दिगम्बर हैं और श्वेताम्बर (हैं) ऐसा करके सुनना रोक दिया। भाई! दिगम्बर, श्वेताम्बर.... यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वस्तु की स्थिति की मर्यादा ऐसी है। ऐसा भगवान आत्मा अभेद का अनुभव करे, उसमें भेदपना हेयरूप से रहता है, उपादेयरूप से रहता नहीं। आहाहा!

मेरा यह सामर्थ्य सदा एकसा रहता है। एकरूप त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु ध्रुव अभेद वस्तु की अस्ति त्रिकाली एकरूप, वह मेरी प्रभुता है। आहाहा! यह उसमें दृष्टि करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। लोगों ने बाहर से ऐसा कर डाला है न! देव-गुरु-शास्त्र को माने, वह समकित; नौ तत्त्व को माने, वह समकित। सवेरे आया था अपने, नहीं? स्वाध्याय में। छह द्रव्य और नौ तत्त्व व्यवहार से जानना प्रयोजनवान है। परन्तु यह व्यवहार है। सवेरे आया था। क्या कहलाता है? योगसार (उसमें आया था) छह द्रव्य और नौ तत्त्व को यत्न से जानो, परन्तु वह व्यवहार है। आहाहा! नौ तत्त्व, वह व्यवहार है; छह द्रव्य, वह व्यवहार है।

तब एक बार एक सेठ आये थे। कहे कि तब क्या हमारे दवा-बवा नहीं करनी, व्यवहार है इसलिए? अरे, भगवान! कहाँ बात? मंगलभाई-मंगलदास सेठ। मालिक तब ६०-७० लाख थे। अब तो ८-१० करोड़ हो गये लड़के को। ८-१० करोड़। तब यहाँ आये हुए। आवे तो सही सब सेठिया सब एक बार देखने आवे। वहाँ भी आये थे हीराभाई के मकान में। 'महाराज! जब व्यवहार छोड़नेयोग्य है, तब हमारे रोग हो तो दवा नहीं करना?' लो, अब यह कहाँ व्यवहार की बात है? यह व्यवहार की बात कहाँ है? भाई! यहाँ तो षट्कारक के भेद हैं, उस विकल्प को यहाँ व्यवहार कहते हैं। अरे! तुझे दवा करना, यह वस्तु ही कहाँ है यहाँ? आहाहा! समझ में आया? यह नौवाँ पद हुआ, लो। है न प्रकाश? अन्धकार अधिक है। कुछ दिक्कत नहीं। दिखता है, यहाँ प्रकाश तो है। अब चौथा कलश नीचे।

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्,
तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ।।४।।

इसका पद है। **आत्मा के चेतन लक्षण का स्वरूप**। क्या कहते हैं ? आत्मा वस्तु है, उसका चेतन लक्षण। अब चेतन लक्षण के भी दो प्रकार अन्दर में करने से, अद्वैत चेतनलक्षण होने पर भी उसका द्वैतपना ज्ञान और दर्शन—ऐसे दो भेद हैं। आहाहा !

★ ★ ★

काव्य - १०

आत्मा के चेतन लक्षण का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

निराकार चेतना कहावै दरसन गुन,
साकार चेतना सुद्ध ज्ञान गुनसार है।
चेतना अद्वैत दोऊ चेतन दरब मांहि,
सामान विशेष सत्ताहीकौ विसतार है।।
कोऊ कहै चेतना चिहन नांही आतमामैं,
चेतनाके नास होत त्रिविध विकार है।
लक्षनकौ नास सत्ता नास मूल वस्तु नास,
तातै जीव दरबकौ चेतना आधार है।।१०।।

शब्दार्थ:-निराकार चेतना=जीव का दर्शनगुण जो आकार आदि को नहीं जानता। साकार चेतना=जीव का ज्ञानगुण जो आकार आदि समेत जानता है। अद्वैत=एक। सामान्य=जिसमें आकार आदि का विकल्प नहीं होता। विशेष=जो आकार आदि सहित जानता है। चिह्न (चिह्न)=लक्षण। त्रिविध=तीन तरह के। विकार=दोष।

अर्थ:-चैतन्यपदार्थ एकरूप ही है, पर दर्शन गुण को निराकार[१] चेतना और ज्ञान

१-२. पदार्थ को जानने के पहले पदार्थ के अस्तित्व का जो किंचित् भान होता है, वह दर्शन है, दर्शन यह नहीं जानता कि पदार्थ किस आकार व रंग का है, वह तो सामान्य अस्तित्व मात्र जानता है, इसी से

गुण को साकार[२] चेतना कहते हैं। सो ये सामान्य और विशेष दोनों एक चैतन्य ही के विकल्प हैं, एक ही द्रव्य में रहते हैं। वैशेषिक आदि मतवाले आत्मा में चैतन्यगुण नहीं मानते हैं, सो उनसे जैनमतवालों का कहना है कि चेतना का अभाव मानने से तीन दोष उपजते हैं, प्रथम तो लक्षण का नाश होता है, दूसरे लक्षण का नाश होने से सत्ता का नाश होता है, तीसरे सत्ता का नाश होने से मूल वस्तु ही का नाश होता है। इसलिए जीव द्रव्य का स्वरूप जानने के लिये चैतन्य ही का अवलम्बन है।।१०।।

काव्य-१० पर प्रवचन

निराकार चेतना कहावै दरसन गुन,
साकार चेतना सुद्ध ज्ञान गुनसार है।
चेतना अद्वैत दोऊ चेतन दरब मांहि,
सामान विशेष सत्ताहीकौ विसतार है।।
कोऊ कहै चेतना चिहन नांही आतमामैं,
चेतनाके नास होत त्रिविध विकार है।
लक्षनकौ नास सत्ता नास मूल वस्तु नास,
तातै जीव दरबकौ चेतना आधार है।।१०।।

द्रव्य को चेतना आधार है। चेतना को चेतनद्रव्य (का) आधार, ऐसा नहीं यहाँ तो। सिद्ध करना है न! ऐई! द्रव्य को चेतना आधार है। प्रवचनसार में भी आता है। पर्याय आधार, द्रव्य आधेय। आता है न? पर्याय कर्ता, द्रव्य कर्म। सिद्ध करना है न! पर्याय कर्ता और द्रव्य कर्म। प्रवचनसार (गाथा १०) में शुरुआत के अधिकार में आता है। ओहोहो! द्रव्य कार्य और पर्याय कारण, ऐसा भी आता है। जिस अपेक्षा से वस्तु को साबित करनी—सिद्ध करनी है, तो ऐसा (कथन) होता है। राग है, वह कारण और

दर्शनगुण निराकार और सामान्य है। इसमें महासत्ता अर्थात् सामान्य सत्ता का प्रतिभास होता है। आकार रंग आदि का जानना ज्ञान है, इससे ज्ञान साकार है, सविकल्प है, विशेष जानता है। इसमें अवान्तर सत्ता अर्थात् विशेषसत्ता का प्रतिभास होता है। (विशेष समझने के लिये 'बृहद्द्रव्यसंग्रह' की जं सामण्णं ग्रहणं, आदि गाथाओं का अध्ययन करना चाहिए।)

द्रव्य है, वह कार्य—ऐसा नहीं है। चेतना वह कार्य और द्रव्य, वह कारण। चेतना, वह कारण और द्रव्य, वह कार्य। यहाँ तो चेतना का आधार है द्रव्य को। आहाहा! भगवान का आधार नहीं, ऐसा कहते हैं। चेतना आधार है, लो। द्रव्य को चेतना आधार है।

इसका अर्थ। **निराकार चेतना कहावै दरसन गुन...** कहते हैं कि चेतना नाम का गुण है, उसके भी दो भेद हैं। एक निराकार चेतना कि जो दर्शन में भेद बिना महासत्ता का उपयोग होता है, उसे निराकार चेतना कहते हैं। निराकार अर्थात् भेद नहीं, विशेष नहीं, अनेकता नहीं। एकरूप चेतना में निराकारपना परिणमे, उसे दर्शनगुण कहते हैं। आहाहा! **साकार चेतना सुद्ध ज्ञान गुनसार है...** उसी चेतना में साकार अर्थात् रंग, आकार आदि भेद, सर्व गुण—जिसके जो गुण हों, उसके उन सब गुणों के भेद, पर्याय के भेद, भूत-भविष्य-वर्तमान के भेद—उसे जो जाने, उसे साकार चेतना कहा जाता है। आहाहा!

एक ही समय में निराकार चेतना, वह भेद बिना देखती है। एक ही समय में भेदसहित एक-एक गुण, एक-एक द्रव्य, एक-एक कालभेद से एक-एक पर्याय, सबको भेदसहित जाने, उसका नाम साकार चेतना। है नीचे है। अर्थ है, देखो! **निराकार चेतना = जीव का दर्शन गुण जो आकार आदि को नहीं जानता। साकार चेतना = जीव का ज्ञानगुण जो आकार आदि समेत जानता है।** अर्थ में, **चैतन्य पदार्थ एकरूप ही है, पर दर्शनगुण को निराकार चेतना और ज्ञानगुण को साकार चेतना कहते हैं।**

इसके नीचे नोट। **पदार्थ को जानने के पहले...** किसी भी पदार्थ को जानने से पहले... छद्मस्थ की अपेक्षा से बात है इसमें। पहले-पश्चात् कहीं केवली को होता नहीं, परन्तु यह तो दर्शन की व्याख्या साधारण लोगों को समझाने के (लिये है)। **पदार्थ को जानने के पहले पदार्थ को अस्तित्व का जो किंचित् भान होता है, वह दर्शन।** वस्तु है। यह है, ऐसा भेद भी नहीं। ऐसा दर्शन का व्यापार निराकार—आकार अर्थात् विशेषता जिसमें नहीं, भेद जिसमें नहीं, उसे निराकार दर्शनचेतना कहते हैं। **दर्शन यह नहीं जानता कि पदार्थ किस आकार व रंग का है,...** ऐसा। किस प्रकार का आकार है और किस प्रकार का रंग है। **यह तो सामान्य अस्तित्वमात्र जानता है।** जानता है अर्थात् देखता है। है, बस। अस्तित्वमात्र है। यह है, ऐसा भी नहीं। है, बस इतना।

अस्तित्वमात्र जानता है, इसी से दर्शनगुण निराकार और सामान्य है। इसमें

महासत्ता अर्थात् सामान्यसत्ता का प्रतिभास होता है। सामान्य महासत्ता। है सब, बस ऐसा दर्शन में—देखने में आवे। भेद नहीं। **आकार, रंग आदि का जानना ज्ञान है।** प्रत्येक द्रव्य में आकार, प्रदेश, रंग आदि का जानना, वह तो ज्ञान है। **इससे ज्ञान साकार है।** अर्थात् कि सविकल्प है, अर्थात् कि स्व-पर को सब जानता है। सविकल्प का अर्थ यहाँ राग नहीं। सविकल्प अर्थात् भेद। भेदसहित जानना, इसका नाम सविकल्प। यह तो ज्ञान का स्वरूप है।

विशेष जानता है... ज्ञान सब भेद करके जिसके अस्तित्व के एक-एक अंश, एक समय की एक पर्याय और उसके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद—सबको विशेषरूप से जाने। **इसमें अवांतरसत्ता...** उसकी अपनी पर्याय से ज्ञात होता है। आहाहा! अरेरे! इसमें भी विवाद। उपादान-निमित्त में विवाद, निश्चय-व्यवहार में विवाद। क्रमबद्ध में विवाद। क्रमबद्ध नहीं होता, ऐसा नहीं होता। अरे भगवान!

साकार चेतना सुद्ध ज्ञान गुनसार है... साकार है, इसलिए अशुद्ध है—ऐसा नहीं, ऐसा वापस। क्या कहा, समझ में आया? ज्ञान में सब विविध और भिन्नता ज्ञात हो, इसलिए वह ज्ञान अशुद्ध है—ऐसा नहीं है। इसलिए डाला देखो न उसमें? शुद्ध... क्या डाला? **साकार चेतना सुद्ध ज्ञान गुनसार है...** वह ज्ञान का स्वभाव है। सब चीजों को पृथक्-पृथक् अनेक को अनेकरूप से जाने, तथापि वहाँ अशुद्धता होती नहीं, वह तो उसका स्वभाव ही ऐसा है।

चेतना अद्वैत दोऊ चेतन दरब मांहि,... लो। चेतनद्रव्य में **चेतना अद्वैत दोऊ चेतन दरब मांहि,...** अद्वैत में दो चेतना। **चेतना अद्वैत दोऊ चेतन दरब मांहि,...** दोनों चेतना एक अद्वैत में दोनों है, ऐसा कहते हैं, देखो! **ये सामान्य और विशेष दोनों एक चैतन्य ही के विकल्प हैं...** ऐसा कहते हैं। एक चैतन्य के दो भेद हैं, ऐसा। चेतना अद्वैत एक, उसके दो भेद हैं। **सामान-विशेष सत्ताही को विसतार है।** यह सामान्य, वह दर्शन; विशेष, वह ज्ञान। दोनों एक चेतना का भेद हैं।

कोऊ कहै चेतना चिहन नांही आत्मामैं... कोई ऐसा कहे कि आत्मा में चेतना चिह्न नहीं, चेतना लक्षण नहीं। **चेतना चिहन नांही आत्मामैं...** ऐसा कोई कहे तो उसमें तीन बड़े दोष आते हैं। **चेतनाके नास होत त्रिविध विकार है...** चेतन भगवान आत्मा की

चेतना यदि उसमें न हो तो, चेतना न हो तो तीन दोष आते हैं। त्रिविध विकार अर्थात् तीन दोष। चेतना न हो तो **लक्षनकौ नास...** चेतन भगवान आत्मा में यदि चेतना न हो तो उसके लक्षण का नाश होता है। एक बात। चेतना न हो तो द्रव्य का-सत्ता का भी नाश होता है। समझ में आया? **लक्षनकौ नास सत्ता नास मूल वस्तु नास...** मूल चीज़ ही रहती नहीं। आहाहा! लक्षण का नाश, सत्तानाश—उसके अस्तित्व का अभाव, ऐसा। पहले लक्षण का नाश और अस्तित्व का अभाव और मूल वस्तु का ही अभाव हो जाता है। है न अर्थ में?

(वैशेषिक आदि मतवाले आत्मा में) चैतन्यगुण नहीं मानते, सो उनसे जैनमतवालों का कहना है कि चेतना का अभाव मानने से तीन दोष उपजते हैं; प्रथम तो लक्षण का नाश होता है। दूसरे, लक्षण का नाश होने से सत्ता का नाश होता है। तीसरे, सत्ता का नाश होने से मूल वस्तु ही का नाश होता है। मोक्ष अधिकार में सूक्ष्म बात डाली है। वस्तु है। अद्वैत आत्मा एकरूप कहा था पहले। उसमें कहा था न? **एकरूप तिहुंकाल है...** एकरूप तीनों काल। अब एकरूप में भी वापस दो प्रकार अन्दर में—दर्शन और ज्ञान। चेतना एक और उसके दो भेद हैं।

तातैं जीव दरबकौ चेतना आधार है,... लो। व्यापक... व्यापक लिया है न उसमें? चेतना को व्यापक कहा है और आत्मा को व्याप्य कहा है। चेतना को व्यापक कहा है। व्यापक बिना व्याप्य आत्मा का भी नाश (हो जाता है)। आत्मा को व्याप्य कहा है यहाँ। वरना आत्मा व्यापक और गुण-पर्याय व्याप्य है, वह दूसरी बात है। यहाँ तो गुण-पर्याय व्यापक और आत्मा व्याप्य। क्या कहा इसमें? उल्टा है। ऐसा नहीं, ऐसा है। दूसरी जगह आत्मा व्यापक—विस्तार करनेवाला और व्याप्य उसकी पर्याय आदि। वह यहाँ अभी नहीं लेना। यहाँ तो चेतना, वह व्यापक; चेतन आत्मा, वह व्याप्य। व्यापक बिना व्याप्य होता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है न। आहाहा! नहीं होता। ऐसा नहीं, लो।

तातैं जीव दरबकौ चेतना आधार है,... देखो, ऐसा कि वह व्याप्य-व्यापक में... व्यापक कहकर आधार कहा और व्याप्य कहकर आधेय कहा। तो चेतना, वह व्यापक—आधार और द्रव्य, वह आधेय—व्याप्य। आहाहा! भारी सूक्ष्म आया भाई! समझ में आया? भगवान आत्मा... कहते हैं कि व्यापक ऐसी चेतना, यदि चेतना व्यापक कायम

रहनेवाली न हो तो व्याप्य—आत्मा ही नहीं रह सकता। व्यापक कहो, आधार कहो। व्याप्य कहो, आधेय कहो। यह तो कुछ सूक्ष्म पड़े, ऐसा है। परन्तु सूक्ष्म पड़े, (वह) समझ में आता है या नहीं?

ऐसे आत्मा व्यापक और उसकी पर्याय व्याप्य, यह तो चलता ही है। यह तो चलता ही है। परन्तु यहाँ तो चेतना जो गुण है, वह व्यापक और आत्मा द्रव्य है, वह व्याप्य, ऐसा सिद्ध करना है। आधार है न यहाँ! वस्तु को सिद्ध करना है न! वह तो आत्मा व्यापक, उसकी पर्याय कार्य-व्याप्य होती है। तो कर्ता व्यापक और व्याप्य हो, वह उसका कर्म—कार्य है। परन्तु यहाँ तो वस्तु को सिद्ध करना है कि चेतना जो है, एक होने पर भी दो है। और दो (रूप से) उसका लक्षण यदि न हो तो चेतना बिना द्रव्य का नाश होता है। **लक्षनकौ नाश सत्ता नास...** सत्यानाश हो जाता है, लो। ऐसा कहते हैं न, भाई वे कहते थे न, पण्डितजी बंसीधरजी। और मूल वस्तु का नाश। चैतन्य की अस्ति का—चेतना की अस्ति का नाश अर्थात् चेतन का भी नाश हो गया।

इसलिए **तातै जीव दरबकौ...** द्रव्य जीवपदार्थ को चेतना आधार है। है न अन्दर? **तत्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका।** देखो, तीसरी लाईन है। संस्कृत। **व्याप्यो विना व्यापका।** अर्थात् बिना व्याप का व्याप्य रह सकता नहीं, ऐसा। यह वस्तु की स्थिति है। उसकी मर्यादा की हद बताते हैं। उसमें विकार नहीं, कर्मजाल नहीं, यह तो ठीक। अद्वैत चेतन, उसकी चेतना अद्वैत। तथापि उसके दो भाग हैं—निराकार दर्शनचेतना, साकार ज्ञानचेतना। यदि यह लक्षण न हो तो लक्षण बिना वस्तु का नाश हो जाये। उसका नाश होने से उसकी सत्ता भी चैतन्य की रहती नहीं। चेतना के लक्षणवाली सत्ता भी रहती नहीं। तो फिर सत्तावान जो यह आत्मा, वह भी रहता नहीं। आहाहा! कठिन बात भाई! भारी सूक्ष्म!

ऐसी विचारणा में रहे तो भी सब झगड़े खड़े न हो कोई, लो। वे झगड़े खड़े होते हैं न जहाँ-तहाँ। मेरापना होकर जहाँ अधिकपने मनवाना हो तो सब झगड़े खड़े होते हैं। आहाहा! हमारा मार्ग सच्चा, वह कहे हमारा मार्ग सच्चा। विद्यानन्दजी कहते हैं न, मेरा विश्वधर्म है। ऐ... ब्रह्मचारीजी! विद्यानन्दजी कहते हैं न विद्यानन्दजी। साधु नहीं? वह कहते हैं, हमारा विश्वधर्म है और विश्वधर्म ही हमारा धर्म है। परन्तु कौनसा

विश्वधर्म ? स्पष्ट कह सकते हैं नहीं। स्पष्ट कहे तो .... में रहा जाये नहीं। सब विश्वधर्म, वह हमारा धर्म, लो। परन्तु विश्वधर्म का अर्थ क्या ?

सर्वज्ञ भगवान ने विश्वधर्म आत्मा का कहा, वह सर्व को—तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला तत्त्व, उसका नाम विश्वधर्म है। दुनिया अपनी कल्पना से माने, एक आत्मा है और पर्याय है और द्रव्य है और वह सब माननेवाले विश्वधर्म (नहीं), वे सब झूठे धर्म हैं। क्या हो ? उसमें भी सब पक्ष हैं। यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त कहीं होती नहीं। वीतरागमार्ग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं होती। क्योंकि वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, ऐसा कहते हैं।

चेतना लक्षण, द्रव्य लक्ष्य। अब यदि चेतना न हो तो लक्षण का अभाव होने से लक्ष्य का अभाव होता है। और चेतना की सत्ता जहाँ नाश हो, वहाँ वह स्वयं चेतना ही रहती नहीं। तो चेतना न रहने से द्रव्य का भी नाश हो जाता है। उसके अर्थ में डाला है जरा। डाला है न ? **वैशैषिक आदि मतवाले आत्मा में चैतन्यगुण नहीं मानते हैं।** गुण और कैसा ? ऐसा कहे। **सो उनसे जैनमतवालों का कहना है...** कहना है, (ऐसा) नहीं, वस्तु ऐसी है। जैनमत का कहाँ मत है यह ? वस्तु की स्थिति ही ऐसी है।

चेतना का अभाव मानने से तीन दोष उपजते हैं। प्रथम तो लक्षण का नाश होता है, लक्षण का नाश होने से सत्ता का नाश होता है। कारण सत्ता सिद्ध करनी है लक्षण से। लक्षण नहीं तो सत्ता का नाश हो जाये। **तीसरे सत्ता का नाश होने से मूल वस्तु का नाश होता है।** लक्षण और लक्ष्य दोनों का नाश हो जाये। यह किसलिए समझाते हैं ? कि वस्तु जो आत्मा है, वह चेतनद्रव्य है और उसमें चेतना उसका गुण और उसकी पर्याय है। वह गुण-पर्याय अद्वैत चेतना होने पर भी उसके दो प्रकार हैं। विशेषरूप से जानना और सामान्यरूप से देखना, ऐसे उसके दो प्रकार हैं। उसमें से एक भी प्रकार निकाल दे तो लक्षण रहता नहीं। सत्ता का नाश हो जाता है और वस्तु भी रहती नहीं। दोनों का अभाव हो जाता है। लक्षण का नाश होता है, सत्ता का नाश होता है और दोनों का अभाव हो जाता है। समझ में आया ?

इसलिए जिसे आत्मा को साधना हो, उसे सामान्य-विशेष गुणवाला आत्मा है, एकरूप होने पर भी दो शक्तिवाला है—ऐसा उसे जानना चाहिए। एकरूप भगवान का

आश्रय करना चाहिए। उसमें भी भेदरूप दो है, यह दो है, इसलिए दोनों का आश्रय करना, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : प्रमाण....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण नहीं, अभेद में तो निश्चयदृष्टि....

मुमुक्षु : आधार....

पूज्य गुरुदेवश्री : आधार... यहाँ आधार पर्याय को लेना है। क्योंकि उसके आधार से द्रव्य रहता है न ऐसे। व्याप्य-व्यापक ऐसा पाठ में है न!

व्याप्य आत्मा और व्यापक चेतना, ऐसा लेना है यहाँ। आत्मा व्यापक और चेतना व्याप्य, यह अभी नहीं लेना है। यह कर्ता-कर्म में। यह कर्ता-कर्म हो, तब कर्ता वह व्यापक है और कर्म उसका व्याप्य है। व्याप्य अर्थात् कार्य है और व्यापक अर्थात् कर्ता है। यहाँ ऐसी बात है। वह बात अलग है, यह बात अलग है। यहाँ तो आधार चेतना है; आधेय, वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया या नहीं मनसुख? आहाहा! चेतना है, उसे कायम रहनेवाली गिनकर उसे व्याप्य कहकर और वह व्यापक न हो तो व्याप्य हो सकता नहीं। इसलिए व्यापक के आधार से व्याप्य है, ऐसा कहना है। यहाँ ऐसा है। समझ में आया? ११ पद... पद... ११ है न!

★ ★ ★

काव्य - ११

(दोहा)

चेतन लक्षन आतमा, आतम सत्ता मांहि।
सत्तापरिमित वस्तु है, भेद तिहूंमैं नांहि।।११।।

अर्थ:-आत्मा का लक्षण चेतना है, और आत्मा सत्ता में है, क्योंकि सत्ता धर्म के बिना आत्मपदार्थ सिद्ध नहीं होता, और अपनी सत्ता प्रमाण वस्तु है, सो द्रव्य अपेक्षा तीनों में भेद नहीं है, एक ही है।।११।।

काव्य-११ पर प्रवचन

चेतन लक्षन आतमा, आतम सत्ता मांहि।
सत्तापरिमित वस्तु है, भेद तिहूंमैं नांहि।।११।।

यह तीन भेद नहीं, ऐसा कहा न। परिणामी—द्रव्य, परिणाम—पर्याय, क्रिया—परिणति। वस्तु एक त्रय नाम। यह आता है न भाई। वस्तु एक त्रय नाम। **करता परिनामी दरव, करम रुप परिणाम।** (कर्ता-कर्म द्वार, पद ७)। वहाँ कर्म—कार्य पर्याय को कर्म लिया है। और परिणति बदले **किरिया परजयकी फिरनी, वस्तु एक त्रय नाम।** वहाँ क्रिया अर्थात् परिणमना, पर्याय, परिणाम, परिणमना, बदलना, क्रिया, परिणाम और परिणामी, ऐसा बतलाना है न! आहाहा!

चेतन लक्षन आतमा... आत्मा का लक्षण तो चेतना है। **और आत्मा सत्ता में है। आतम सत्ता मांहि।** आत्मसत्ता में चेतना है, ऐसा। चेतना कोई अलग नहीं। **चेतन लक्षन आतमा...** इससे **आतम सत्ता मांहि।** चेतना आत्मा मांही सत्ता में है। कहीं अलग सत्ता है उसकी? समझ में आया? **सत्ता परिमित वस्तु है...** सत्ता के प्रमाण में वस्तु है। जितनी चेतना सत्ता, तत्प्रमाण चेतन और उस प्रमाण उसकी वस्तु की स्थिति है। ऐसा यह स्थूल बुद्धिवाले को नहीं बैठे न, (इसलिए) फिर बेचारे चढ़ गये व्रत पालना, तपस्या करना, यात्रा करना और दान करना, जाओ। सवेरे नहीं आया था निमित्तवाले का? दया, दान, पूजा, उसमें जगत का सुख मिले। उपादान-निमित्त का आया था न! तीन नाम आये थे। दया-दान और पूजा भली सुख....

उत्तर दिया कि संसार के सुख के लिये दया, दान, पूजा है। आत्मा के लिये है (नहीं)। वह सुख कहाँ? वह तो धूल में भी सुख नहीं। उससे पुण्य है और पुण्य से संयोग मिले, वह कहीं सुख नहीं। सुख तो आत्मा में है। सुख की सत्ता आत्मा में है। चेतना की सत्ता आत्मा में है। सुख की सत्ता आत्मा में है। आहाहा! और सुख यदि न माने तो सत्तावाला आत्मा भी उसने माना नहीं, ऐसा कहते हैं। सुख और आत्मा दोनों एक चीज़ है। दो नाम होने पर भी सत्ता परिमित वस्तु है। सत्ता के प्रमाण में वह पदार्थ है। **भेद तिहुमैं नाहि,...** लो। तीन में भेद है नहीं। लक्षण में, आत्मसत्ता में रहता है

इसलिए आत्मा में और उसका सत्ता प्रमाणमय वस्तु—इन तीन में भेद नहीं। वस्तु एक ही है। अब यह तो स्वयं डालते हैं बनारसीदास। आत्मा नित्य है।

★ ★ ★

काव्य - १२

आत्मा नित्य है (सवैया इकतीसा)

ज्यौं कलधौत सुनारकी संगति,
भूषन नाम कहै सब कोई।
कंचनता न मिटी तिहि हेतु,
वहै फिरि औटिकै कंचन होई।।
त्यौं यह जीव अजीव संजोग,
भयौ बहुरूप भयौ नहि दोई।
चेतनता न गई कबहू,
तिहि कारन ब्रह्म कहावत सोई।।१२।।

शब्दार्थ:-कलधौत=सोना। भूषन=गहना। औंटत=गलाने से। ब्रह्म=नित्य आत्मा।

अर्थ:-जिस प्रकार सुनार के द्वारा गढ़े जाने पर सोना गहने के रूप में हो जाता है, पर गलाने से फिर सुवर्ण ही कहलाता है; उसी प्रकार यह जीव-अजीवरूप कर्म के निमित्त से अनेक वेश धारण करता है, पर अन्यरूप नहीं हो जाता, क्योंकि चैतन्यगुण कहीं चला नहीं जाता; इसी कारण जीव को सब अवस्थाओं में ब्रह्म कहते हैं।।१२।।

काव्य-१२ पर प्रवचन

ज्यौं कलधौत सुनारकी संगति,
भूषन नाम कहै सब कोई।
कंचनता न मिटी तिहि हेतु,
वहै फिरि औटिकै कंचन होई।।

त्यौं यह जीव अजीव संजोग,
भयौ बहुरूप भयौ नहि दोई।
चेतनता न गई कबहू,
तिहि कारन ब्रह्म कहावत सोई।।१२।।

आहाहा! **कलधौत—सोना। भूषण—गहना। ज्यों कलधौत सुनारकी संगति...** सोना सोनी के संग से, ऐसा। सोना सोनी के संग से... **भूषन नाम कहै...** गहने हों। गहने कहाँ कहते हैं? जेवर। सोनी के संग से सोने के गहने होते हैं। नहीं लिखा उसमें? **कंचनता न मिटि तिहि हेतु...** यहाँ तो दूसरा सिद्ध करना है कि सोना भूषण में—आभूषण में आवे, तो भी कहीं कंचन मिटता नहीं। ऐसा सिद्ध करना है। सोना है, वह उसके गहनों के आकार में भले आवे, तो भी वह सोना मिटकर आया है, ऐसा है नहीं। **कंचनता न मिटि तिहि हेतु, वहे फिर औरिके कंचन होई...** यह भूषण—गहने को गलावे (तो) सोना है, सोना ही है। गलाने से... लो।

त्यौं यह जीव अजीव संजोग... वह सोना सोनी के संग से गहने आदि होते हैं, ऐसे जीव को अजीव के संग से **भयौ बहुरुप भयौ नहि दोई...** तथापि दो हुए नहीं कहीं। सोना तो सोना ही रहा है। भले गहनेरूप हुआ, परन्तु सोना (सोना ही रहता है)। **उसी प्रकार यह जीव अजीवरूप कर्म के निमित्त से अनेक वेश धारण करता है, पर अन्यरूप नहीं हो जाता।** रागरूप या शरीररूप आत्मा हो नहीं जाता। आहाहा!

चेतनता न गइ कबहूँ... चाहे तो राग में और शरीर में दिखे, परन्तु उसकी चेतनता कहीं गयी नहीं। सोने के गहने होकर सोनापना गया नहीं, इसी प्रकार चेतनता तो ऐसी की ऐसी रही है। **तिहि कारन ब्रह्म कहावत सोई... इसी कारण जीव को सब अवस्था में ब्रह्म कहते हैं।** ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा... ब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा... चाहे जो दूसरी अवस्था हो, परन्तु वह तो ब्रह्मानन्द चेतनस्वभाव उसका टला नहीं। ऐसा चेतना-स्वभाव धारक चेतन, उसका अनुभव करना, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा इसमें सिद्ध करना है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०६, आषाढ़ कृष्ण ९, शुक्रवार, दिनांक १६-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य - १३ से १७

यह समयसार नाटक, मोक्षद्वार। १३वाँ पद है। **सुबुद्धि सुखी को ब्रह्म का स्वरूप समझाते हैं।** अनुभूति—आत्मा का अनुभव सुमति सखी को कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - १३

सुबुद्धि सखी को ब्रह्म का स्वरूप समझाते हैं (सवैया तेईसा)

देखु सखी यह ब्रह्म विराजित,
याकी दसा सब याहीकौ सोहै।
एकमैं एक अनेक अनेकमैं,
दुंद लियैं दुविधामह दो है।।
आपु संभारि लखै अपनौ पद,
आपु विसारिकै आपुहि मोहै।
व्यापकरूप यहै घट अंतर,
ग्यानमैं कोन अग्यानमैं को है।।१३।।

शब्दार्थ:-विराजित=शोभायमान। दसा=परणति। विसारिकैं=भूलके।

अर्थ:-सुबुद्धिरूप सखी से कहते हैं कि हे सखी देख; वह अपना ईश्वर सुशोभित है, इसकी सब परिणति इसे ही शोभा देती है, ऐसी विचित्रता और दूसरे में नहीं है। इसे आत्मसत्ता में देखो तो एकरूप है, और परसत्ता में देखो तो अनेकरूप है, ज्ञानदशा में देखो तो ज्ञानरूप, अज्ञानदशा में देखो तो अज्ञानरूप, ऐसी दोनों दुविधाएँ इसमें हैं। कभी तो सचेत होकर अपनी शक्ति को सम्हालता है और कभी प्रमाद में पड़कर निज स्वरूप को भूलता है, पर यह ईश्वर निजघट में व्यापक रहता है, अब विचार करो कि ज्ञानरूप परिणमन करनेवाला कौन है और अज्ञान दशा में वर्तनेवाला कौन है? अर्थात् वही है।।१३।।

काव्य-१३ पर प्रवचन

देखु सखी यह ब्रह्म विराजित,
याकी दसा सब याहीकौ सोहै।
एकमैं एक अनेक अनेकमैं,
दुंद लियैं दुविधामह दो है।।
आपु संभारि लखै अपनौ पद,
आपु विसारिकै आपुहि मोहै।
व्यापकरूप यहै घट अंतर,
ग्यानमैं कोन अग्यानमैं को है।।१३।।

अनुभूति—आत्मा का अनुभव, वह सुमति को कहते हैं। है तो उसे वह सखी, परन्तु उसे सखीरूप से कहते हैं। सम्यग्ज्ञान—अनुभव। **सुबुद्धिरूप सखी से कहते हैं।** उसमें नहीं लिखा परन्तु वह अनुभूति अनुभव सखी है। **हे सखी! देख, यह अपना ईश्वर सुशोभित है।** अपना ब्रह्म आनन्द भगवान सुशोभित है। अनन्त गुण की निर्मल पर्याय से सुशोभित है। **देखु सखी यह ब्रह्म विराजित...** ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा, पूर्ण ज्ञान-आनन्द का स्वरूप उसका, उसका अनुभव करके अनुभूति पर्याय सुबुद्धि को कहती है, देखो! यह उसकी दशा तो उसे शोभे। सुल्टी और उल्टी दशा उसे होती है, ऐसा कहते हैं। देखो, इसमें पर का कारण कुछ नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। कर्म के कारण से उल्टा है और कर्म के हटने से सुल्टा—ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

याकी दशा सब याहीकौ सोहै... इसे शोभा पावे। **इसे ही शोभा देती है, ऐसी विचित्रता और दूसरे में नहीं है।** परमाणु आदि में क्या यह विचित्रता? यह तो स्वयं सुल्टा पड़े और अनुभव करे (तो) आनन्द से शोभे, उल्टा पड़े तो राग आदि से दिखाई दे और जाननेवाला जाने। समझ में आया? अब फिर अज्ञान और ज्ञान के (विषय में...) लेंगे। **एकमैं एक अनेक अनेकमैं...** स्वरूप की दृष्टि से देखें तो एक है, अभेद है। गुणभेद और पर्यायभेद से देखें तो अनेक है। ऐसा उसका—चैतन्य का साम्राज्य है। **दुंद लियै दुविधामह दो है...** ज्ञानदशा में देखो तो ज्ञानरूप, अज्ञानदशा में देखो तो अज्ञानरूप,

ऐसा। **दुंद लियै दुविधामह...** दोनों प्रकार से, सुल्टी दशा तो उसकी और उल्टी (दशा) तो भी उसकी।

देखो, इसमें तो कहीं करम–बरम को याद भी किया नहीं (कि) कर्म निमित्त हो तो उल्टा होगा। उसकी स्वतन्त्र सत्ता में अपने स्वरूप को अनुभव करे तो सुखरूप शोभा हो। उसमें से हट जाये अथवा अस्थिर हो, सराग से भी राग होता है, ऐसा देखे। अकेला ज्ञान से हट जाये तो अकेला अज्ञानमय हो जाये। समझ में आया? आहाहा! पर की सत्ता और पर के अस्तित्व के साथ आत्मा को सम्बन्ध नहीं। निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध अर्थात् कुछ नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। अपना भगवान ब्रह्मानन्द प्रभु का अनुभव करे तो इसकी शोभा सच्ची है। और द्विधा करे, स्वरूप को भूलकर राग में—विकार में जाये तो वह भी उसके अज्ञान के कारण दशा है, परन्तु पर के कारण से नहीं। आहाहा!

आप संभारि लखै अपनौ पद... ज्ञान और आनन्द ऐसा निजपद—अपने को याद करे अन्तर में तो अपने को शोभे। अपना पद सम्हारे तो जाने अपना पद। निजपद आनन्द और ज्ञान, उसे अन्तर (में) याद करे तो वह प्रगट हो। **आप विसारिकै आपुहि मोहै...** सच्चिदानन्द प्रभु ब्रह्म–ईश्वर अपने को भूले तो राग–द्वेष में जाये, मोह में जाये। यह समझ में आया? पर के कारण से कुछ है आत्मा में, ऐसा नहीं। ऐसा सिद्ध करके उल्टी–सुल्टी दशा अपने में अपने कारण से है। **व्यापकरूप यहै घट अंतर...** निज घट में अन्दर स्वयं भिन्न व्यापक है। शरीर, वाणी और कर्म से अत्यन्त भिन्न।

व्यापक रूप यहै घट अंतर, ग्यानमैं कौन अग्यानमैं को है... सम्यग्ज्ञान में भी यह आत्मा और अज्ञान में भी यह आत्मा, कोई दूसरा है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! अपने निज स्वरूप को याद करके अनुभव करे तो वह स्वयं और स्वरूप को भूलकर राग को अनुभव करे अज्ञान में, वह भी स्वयं। उसे कोई पर के कारण से कुछ है (ऐसा नहीं है)। यह सब बड़े पण्डित विवाद उठाते हैं न! कर्म के कारण से होता है, सिद्ध को कर्म नहीं, इसलिए विकार नहीं। यहाँ कर्म है, इसलिए विकार है, यह प्रश्न यहाँ स्मरण ही नहीं किया यहाँ तो। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म भिन्न करने....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष ही है। उसका स्वरूप मुक्त ही है, ऐसा अनुभव करे तो

उसे मुक्त ही दिखाई दे और उसे भूलकर रागवाला देखे तो बन्ध हो। वह उसके कारण से है, पर के कारण से कहाँ है ? यह यहाँ ऐसा कहते हैं। रागवाला, बन्धवाला देखे तो उसे वह दिखाई दे अज्ञान में। समझ में आया ?

ग्यानमैं कौन अग्यानमैं को है... ऐसा कहते हैं। अज्ञान में कोई दूसरा नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई ! अज्ञान में, वह स्वयं ही अज्ञान में आकर खड़ा रहता है। आहाहा ! कोई किसी के कारण से अज्ञान में दूसरा आकर वहाँ रहता है अज्ञान में, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा ब्रह्मानन्द प्रभु... सखी सुमति को अनुभूति कहती है, देख तो सही यह आत्मा प्रभु ! उल्टा पड़े तो भी यह, सुल्टा पड़े तो भी यह। और उल्टे में दूसरा कोई है तथा सुल्टे में स्वयं है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? १३वाँ पद हुआ।

अब, **आत्म अनुभव का दृष्टान्त**। यहाँ अनुभव आया न ! वह अनुभव अनुभूति सखी को कहता है। **ज्यों नट एक धरै बहु भेख... ज्यों नट एक धरै बहु भेख... 'क'** और **'ख'**। यह तो .... कवि हैं न। हमको आता नहीं परन्तु यह क्या करते हैं, यह तो देखते हैं न। समझ में आया ?

★ ★ ★

काव्य - १४

आत्म अनुभव का दृष्टान्त

(सवैया तेईसा)

ज्यौं नट एक धरै बहु भेख,
कला प्रगटै बहु कौतुक देखै।
आपु लखै अपनी करतूति,
वहै नट भिन्न विलोकत भेखै।।
त्यौं घटमैं नट चेतन राव,
विभाउ दसा धरि रूप विसेखै।
खोलि सुदृष्टि लखै अपनौं पद,
दुंद विचारि दसा नहि लेखै।।१४।।

अर्थः-जिस प्रकार नट अनेक स्वांग बनाता है, और उन स्वांगों के तमाशे देखकर लोग कौतूहल समझते हैं, पर वह नट अपने असली रूप से कृत्रिम किये हुए वेश को भिन्न जानता है, उसी प्रकार यह नटरूप चेतन राजा परद्रव्य के निमित्त से अनेक विभाव पर्याय को प्राप्त होता है, परन्तु जब अन्तरंगदृष्टि खोलकर अपने सत्य रूप को देखता है, तब अन्य अवस्थाओं को अपनी नहीं मानता।।१४।।

काव्य-१४ पर प्रवचन

ज्यौं नट एक धरै बहु भेख,
कला प्रगटै बहु कौतुक देखै।
आपु लखै अपनी करतूति,
वहै नट भिन्न विलोकत भेखै।।
त्यौं घटमैं नट चेतन राव,
विभाउ दसा धरि रूप विसेखै।
खोलि सुदृष्टि लखै अपनौं पद,
दुंद विचारि दसा नहि लेखै।।१४।।

अब इसका अर्थ : **ज्यौं नट एक धरै बहु भेख...** एक नट... दृष्टान्त दिया है, यह तो, हों! एक है परन्तु वेश धरे अलग-अलग—स्त्री के, उस पुरुष के, लड़के के, बालक के, गरीब के, धनवान के ऐसे नट वेश धरे न। एक, परन्तु बहुत वेश, ऐसा। एक है तो भी वेश धरे। **कला प्रगटै बहु कौतुक देखे...** कला के कारण अनेक प्रकार से कौतुक बतावे। दूसरा जाने कि यह ऐसा है, यह ऐसा है। परन्तु वह तो जानता है कि यह (सब) कृत्रिम मैं नहीं। मैं तो हूँ वह हूँ। मैं तो आदमी हूँ, वह हूँ। आहाहा! अभी नाचता था नहीं कहीं? अहमदाबाद में कहीं एक बाई-लड़की नाचती थी। २०-२५ वर्ष की थी। अहमदाबाद में या भावनगर में? अहमदाबाद में। निकले थे तब।

दो लकड़ी के ऊपर पैर थे दो ऊँचे। एक हाथ में लकड़ी ऐसे। २०-२५ वर्ष की लड़की थी। वह यह लड़के ... बजाणिया... बजाणिया... बजाणिया थे। ... ऐसा भारी

लगे दूसरों को ऐसा लगे। बहुत लोग इकट्ठे हुए न देखने। दो लकड़ियों के ऊपर पैर एक-एक पर। छोटी लकड़ी के ऊपर और वह पैर और हाथ में लकड़ी एक उस ओर। हट न जाये इसलिए एक लकड़ी बड़ी रखी हुई ऐसे। यह वेश तो आत्मा कर सकता होगा न?

मुमुक्षु : कौन करे? अन्दर राग करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार यह राग का वेश धरे। ऐसी क्रिया ऐसे-ऐसे करे और ऐसे-ऐसे करे, वह आत्मा की है नहीं। आहाहा! भूलकर भ्रम में ऐसा लगे कि बराबर ऐसे ध्यान रखता हूँ न, इसलिए शरीर ऐसा रहता है, हों! फिर से ऐसे निकले थे, वहाँ जरा दिखता था। गजब परन्तु कछोटो बाँधकर बराबर ऐसे करती थी। बजाणिया की लड़की होगी। इसी प्रकार यह बजाणिया है नट। नट को बजाणिया (कहा) है न?

कला प्रगटै बहु कौतुक देखे... कला दिखाये, ऐसा कहते हैं। **उन स्वांगो के तमाशे देखकर लोग कौतूहल समझते हैं।** ओहो! गजब यह! परन्तु वह तो ऐसा समझता है कि मैं तो जो हूँ, वह हूँ। मैं कहीं सब वेशधारी, वह कुछ मैं हूँ नहीं। **आपु लखै अपनी करतूति,...** देखो। **वह नट अपने असली रूप से कृत्रिम किये हुए वेश को भिन्न जानता है।** आहाहा! शरीर, वाणी, क्रियायें सब रागादि वेश है सब। धर्मी तो अपने स्वभाव से उसे भिन्न जानता है। लोग ऐसा देखते हैं कि यह रागवाला है, यह शरीरवाला है, और क्रियावाला है। **वहै नट भिन्न विलोकत भेखै...** है न? यह वेश अनेक प्रकार के, परन्तु भिन्न देख रहे हैं।

त्यौं घटमैं नट चेतन राव... इस देह के पिंजर में प्रभु भिन्न है। **त्यौं घटमैं नट चेतन राव...** चेतन को नट सिद्ध करना है न? **विभाउ दसा धरिरूप विसेखै...** अनेक प्रकार के विकार, राग-द्वेष, पुण्य-पाप असंख्य प्रकार के वेश धारे। **यह नटरूप चेतनराजा परद्रव्य के निमित्त से अनेक विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है।** स्वभाव से तो नहीं, निमित्त के आधीन होकर अनेक प्रकार के राग-द्वेष, पुण्य-पाप की वृत्तियाँ, वासनायें—विभाव पर्यायें प्राप्त होती हैं। विकारी अवस्था को प्राप्त होता है।

परन्तु **खोली सुदृष्टि लखै अपनौं पद...** निजपद को अनुभव करके, देखकर, खोलकर देखे तो 'मैं तो आनन्द और ज्ञान हूँ।' **खोली सुदृष्टि लखै अपनौं पद...** जाने,

ऐसा। **अन्तरंग दृष्टि खोलकर अपने सत्य स्वरूप को देखता है। दुंद विचारि दसा नहि लेखै... तब अन्य अवस्थाओं को अपनी नहीं मानते।** दुंद अर्थात् भिन्न प्रकार की राग, शरीर, वाणी, मन—वह मेरी अवस्था नहीं। तो फिर यह धन्धा कौन करता होगा? बाबूभाई! जवाहरात का धन्धा। जवाहरात का धन्धा जवाहरात करे? बाबूभाई क्या करे तब यहाँ बैठे-बैठे? राग-द्वेष करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह हिम्मतभाई करते होंगे या नहीं यह सब लकड़ी का? क्या कहलाता है? एक लकड़ी जल गयी तो दूसरा करे। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि पर का करते हैं, (ऐसा) सम्बन्ध है नहीं। सुल्टा पड़े तो आनन्द और अवलोकन और आनन्द करे। उल्टा पड़े तो आनन्द को भूलकर राग, द्वेष और कषाय करे, बस। इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ कर नहीं सकता। आहाहा!

उसकी सत्ता—अस्तित्व में उल्टा-सुल्टा करे, परन्तु जहाँ पर की सत्ता में स्वयं नहीं, वहाँ करे क्या? पर के अस्तित्व में अपना अस्तित्व तो नहीं। उसमें क्या करे? उसे क्या टाले? उसे क्या रचे? उसे कैसे बनावे? स्वरूप को खोलकर देखे तो शान्ति और ज्ञान है। भूलकर देखे तो राग और द्वेष है। परन्तु वह अन्य अवस्था को अपनी नहीं मानते, ऐसा कहते हैं। हो राग ज्ञानी को, तथापि वह अपनी दशा का (कर्ता) मानता नहीं। आहाहा! सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन, वह चीज़ ऐसी है कि जिसमें राग के विकल्प से वह छूट गया है। आहाहा! यह मोक्ष का अधिकार है न! मुक्त अवस्था मुक्तस्वरूप है, ऐसा जहाँ खोलकर देखा तो पर्याय मुक्त ही है। आहाहा! राग और द्वेष, पुण्य और पाप, व्यवहार के विकल्प से उसे भिन्न देखता है। **दुंद विचारी दसा नहि लेखै...** भिन्न प्रकार के भाव को अपनी दशा में जाने नहीं। आहाहा! उसमें ऐसा कहा था कि वह का वह अज्ञान में और ज्ञान में आवे। यहाँ ज्ञान में दुंद दशा हो, उसे अपनी जाने नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! **हेय-उपादेय भावों पर उपदेश।** नीचे पाँचवाँ कलश है।

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषाम्।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः।।५।।

बहुत संक्षिप्त बात है।

★ ★ ★

काव्य - १५

हेय उपादेय भावों पर उपदेश

(छंद अडिल्ल)

जाके चेतन भाव, चिदानंद सोइ है।
और भाव जो धरै, सौ औरौ कोइ है।।
जो चिनमंडित भाउ, उपादे जाननैं।
त्याग जोग परभाव, पराये माननैं।।१५।।

शब्दार्थ:-चिदानंद=चेतनवन्त आत्मा। उपादे (उपादेय)=ग्रहण करने के योग्य। हेय=त्यागनेयोग्य। पराये=दूसरे। मानने=श्रद्धान करना चाहिए।

अर्थ:-जिसमें चैतन्यभाव है, वह चिदात्मा है, और जिसमें अन्यभाव है, वह और ही अर्थात् अनात्मा है। चैतन्यभाव उपादेय हैं, परद्रव्यों के भाव पर हैं-त्यागनेयोग्य हैं।।१५।।

काव्य-१५ पर प्रवचन

जाके चेतनभाव चिदानंद सोइ है... हेय-उपादेय भावों पर उपदेश। **जाके चेतनभाव—**ज्ञानभाव और **चिदानंद सोइ है...** परन्तु उसमें—अर्थ में चिदात्म लिया है। दोनों सही है। **जाके चेतनभाव चिदानंद सोइ है...** ज्ञान (है), परन्तु ज्ञान (वह) आनन्दस्वरूप है, ऐसा। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप और आनन्दमूर्ति है, उसे आत्मा कहते हैं। **और भाव जो धरै, सो औरौ कोइ है...** इसके अतिरिक्त जितने पुण्य और पाप असंख्य प्रकार के शुभाशुभभाव **और भाव जो धरे...** परन्तु वे अन्य हैं, और कोई है। **वह और ही अर्थात् अनात्मा है...** देखो, व्यवहार अनात्मा है। यह धर्म के बहाने हुआ विकल्प, वह तो अनात्मा है। आहाहा! पीछे है। और है, वह और ही है। **और भाव जो धरै सो औरौ कोई है**। पर का है, आत्मा का नहीं। आहाहा!

जो चिनमंडित भाउ उपादे जाननै... अब उपादेय और हेय की व्याख्या करते हैं।

वह तो दोनों स्वरूप बताया। **जो चिनमंडित भाउ...** ज्ञान से शोभित, आनन्द से शोभित ऐसा भाव, वह उपादेय। ज्ञानानन्दस्वभाव, वही आदरणीय है। आहाहा! **त्याग जोग परभाव पराये माननै...** उसमें विवाद उठता है। पुण्यभाव त्यागनेयोग्य? हेय? शुभाशुभभाव हेय? छोड़नेयोग्य? (ऐसा माने वह) वह मिथ्यादृष्टि है। लोग तो विचारते ही नहीं। भाई! विभाव है, शुभभाव हो या अशुभ हो। देखो, त्यागयोग्य है, वह परभाव। और **पराये माननै...** वह परद्रव्य का भाव है, जीवद्रव्य का नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यद्रव्य का भाव तो ज्ञान और आनन्द का भाव, वह उसका है। और पुण्य के भाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—यह भाव पराये जानना। यह कर्म के निमित्त से हुए और कर्म के हैं। आहाहा!

लोग पढ़ते नहीं, विचारते नहीं अन्तर में मिलान करके। ऐई, शुभभाव हेय कहते हैं। फिर शुद्ध तो अभी है नहीं। अरे! परन्तु सुन न! नहीं कौन कहता है? पूरा आत्मा है न! पूर्णानन्द प्रभु... अन्तर की पर्याय में जहाँ पूर्ण का स्वीकार, ऐसा पूरा शुद्ध ही है। उपादेय कब होता हो? जहर, वह कभी अमृत होता होगा? किसी काल में होता है या नहीं? बहुत भूख लगी हो और रोटी में गरळ पड़ा गरळ। गरळ अर्थात् क्या? जहर। सर्प डाल गया हो जहर। पहले छींके होते थे न छींके। उनमें ठण्डी रोटी रखे। लड़के को सवेरे विद्यालय जाना हो न। प्रात: सुबह गर्म कौन कर देता था? इसलिए वह रोटी रखे। उसमें कोई सर्प आकर गरळ—जहर डाल गया। वह कहे, भूख बहुत लगी है। अब अभी रोटी नहीं होगी। न हो तो यह खाने दो। खाने दे?

गरळ समझते हैं? जहर। सर्प होता है न! छींका हो और जहर डाल जाये रोटी में। वह छींका होता है न, लम्बा लटकता हो। लोहे का क्या कहते हैं उसे? क्या कहते हैं? छींका। ऊपर लटका हुआ हो और फिर उसमें रोटी ऐसी रखे। रोटी शाम की। सवेरे फिर रोटी और दही खाकर लड़का स्कूल जाये। पहले था, हों। अब तो बस... उसमें वह कुछ वहम पड़ गया कि सर्प डाकली बोलती थी कुछ, हों! डाकली समझे? सर्प आवे न, वह बजावे। यह तो सब हमने... वहाँ घर के अन्दर बातें चलती थीं। तब की बात है, हों! ७० वर्ष पहले की। डाकली बजती थी। एक सर्प आया था। निश्चित सर्प आया होगा। ऐसे देखे तो वहाँ ... कुछ सर्प आया लगता है। वह रोटी नहीं खायी जाती। तब भूखा रहे अभी। जहर नहीं खाया जाता।

इसी प्रकार राग जहर है। आहाहा! व्यवहार की क्रिया के परिणाम सब जहर हैं। आहाहा! वह तो हेय है, ऐसा कहा न! **त्याग जोग परभाव,** लो। **चैतन्यभाव उपादेय हैं, परद्रव्यों के भाव पर है।** उसमें शुभभाव... शुभ-अशुभ दोनों हेय आवे या शुभ उपादेय और अशुभ हेय, ऐसा आता है? यह शुभभाव हेय? उपादेय (नहीं)? व्यवहार से उपादेय कहो, निश्चय से हेय कहो। परन्तु यहाँ तो व्यवहार का ही इनकार किया है, लो। सवेरे तो कहा है न, संसारी, वह व्यवहारी है। धर्मी, वह व्यवहारी नहीं, संसारी ही नहीं। आहाहा! आया था न सवेरे, नहीं? भगवान आत्मा... नारकी का आत्मा... नारकी का आत्मा। पहला श्लोक यह है, संसारी वह व्यवहारी है, नारकी है। यह संसार नहीं? कि, नहीं, नहीं। उदयभाव को हेय जाननेवाला, चैतन्य को उपादेय जाननेवाला, वह रागरूप है ही नहीं। आहाहा! व्यवहार से मानता है....

यहाँ तो दूसरा कहना है। जो वह व्यवहारनय (अपना) मानता है, वह व्यवहारी है। ज्ञानी तो व्यवहार को अपना मानता ही नहीं, ऐसा। समझ में आया? ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, वह उपादेय है। राग आदि का विकल्प हो, वह छोड़नेयोग्य है, चौथे गुणस्थान से। आहाहा! क्या हो? लोगों को इस शुभभाव का प्रेम बहुत है न, या उसके फल का प्रेम। धूल मिले और कुछ पैसा और शरीर ठीक... प्रेम है, उसके कारण शुभभाव को हेय मानने में उसे पसीना उतर जाता है। अन्तरात्मा का भाव, वह शुद्ध चैतन्यमय, वह उपादेय है। बहिर् के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ भाव हेय है। उसे अपना माने, वह बहिरात्मा है। आहाहा! गजब! नारकी है, वह व्यवहार से नारकी है, हों! कौन? वह अज्ञानी व्यवहार से नारकी हो। समकिती तो व्यवहार से भी नारकी नहीं। व्यवहार उसका नहीं, उसमें नहीं, फिर उसका है—ऐसा व्यवहार कहाँ से आया?

मुमुक्षु : व्यवहार से तो मुक्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुक्त है। आहाहा! गजब बात है।

चैतन्य भगवान ज्ञायकभाव जहाँ आया अर्थात् रागभाव व्यवहार से उसका है, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? व्यवहार उसका है, इसका अर्थ क्या हुआ? कि आस्रव उसका है। व्यवहार तो उसका था न? परन्तु व्यवहार से भी नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहार तो परद्रव्य है। पररूप से ज्ञेय—परज्ञेयरूप से जानता है।

मेरे स्वज्ञेय का द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप वह नहीं। इसमें पुरुषार्थ तो अनन्त चाहिए। भाई कहते थे सर्वज्ञभाई ऐसा कि 'पुरुषार्थ उठता नहीं।' मैंने कहा, 'परन्तु वह तो अभ्यास करे न पहले।' भाई आये थे जवान... ऐसा कहे, पुरुषार्थ ... पहले अभी यह आत्मा ऐसा है और यह राग है और यह स्वभाव है, उसे पहले जानने में भाव ले, तब उसे उत्साह आवे कि ओहो! चैतन्यस्वभाव शाश्वत् है, वह आदरणीय है। कृत्रिम रागादि हैं, वे आदरणीय नहीं। नित्यानन्द भगवान आत्मा, वह उपादेय है। क्षणिक की अवस्था रागादि की, वह आदरणीय नहीं।

त्याग जोग परभाव... वह अशुभभाव ही परभाव होगा? निश्चय से तो अशुभ ही है दोनों। शुभ-अशुभभाव निश्चय से अशुभ है और मोक्ष का मार्ग है, वह निश्चय से शुभ है। पुण्य-पाप अधिकार में तो ऐसा लिया है। मोक्ष का मार्ग जो है—सहज शुद्ध चैतन्य ऐसी जो दृष्टि निर्विकल्प और उसका ज्ञान और उसमें रमणता, उसे यहाँ शुभ कहा है। शुद्ध परिणति को शुभ कहा है। पुण्य-पाप का अधिकार। शुभ मोक्षमार्ग, अशुभ वह बन्धमार्ग। शुभ का अर्थ सच्चा, भला, अच्छा। ज्ञानानन्दस्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति वही शुभ है, वही अच्छा है और पुण्य-पाप के भाव को अशुभ (कहा)। शुभ-अशुभ की व्याख्या ऐसी कर डाली पुण्य-पाप के अधिकार में। इससे जरा फेरफार करते हैं न वे। मोक्षमार्ग के आश्रय शुभ है। मोक्षमार्ग के आश्रय शुभ... ऐसा कि शुभ मोक्षमार्ग है ही नहीं, वह शुभ ही नहीं। कहा न, **त्याग जोग परभाव, पराये माननै...** वह परद्रव्य है।

ज्ञानी जीव चाहे घर में रहें चाहे वन में रहें मोक्षमार्ग साधते हैं,... देखो। घर में रहे। परन्तु समझाना कैसे? घर में रहे। घर में है ही कहाँ ज्ञानी? ज्ञानी तो आत्मा में है। परन्तु समझाना कैसे? व्यवहार से समझाया जाये, वहाँ पकड़े (कि) देखो, घर में रहते हैं या नहीं? सम्यग्ज्ञानी राग और निमित्त से मुक्त तत्त्व, अजीव ऐसे परद्रव्य—कर्म, शरीर, वाणी और पर—उनसे भगवान मुक्त और पुण्य-पाप के आस्रवतत्त्व से चैतन्यतत्त्व मुक्त। मुक्त न हो तो दोनों एक हो जाये तो बन्ध में आ जाये। बन्धभाव उसका स्वभाव नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - १६

ज्ञानी जीव चाहे घर में रहें चाहे वन में रहें मोक्षमार्ग साधते हैं
(सवैया इकतीसा)

जिन्हकैं सुमति जागी भोगसौं भये विरागी,
परसंग त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमैं।
रागादिक भावनिसौं जिनिकी रहनि न्यारी,
कबहू मगन ह्वै न रहैं धाम धनमैं।।
जे सदैव आपकौं विचारैं सरवांग सुद्ध,
जिन्हकै विकलता न व्यापै कहू मनमैं।
तेई मोख मारगके साधक कहावैं जीव,
भावै रहौ मंदिरमैं भावै रहौ वनमैं।।१६।।

शब्दार्थ:-सुमति=अच्छी बुद्धि। जागी=प्रगट हुई। परसंग त्यागी=देह आदि से ममत्व का त्यागना। त्रिभुवन=तीनलोक-ऊर्ध्व, मध्य, पाताल। सरवांग (सर्वांग)= पूर्णतया। विकलता=भ्रम। भावै=चाहें तो। मंदिरमैं=घर में। वनमैं=जंगल में।

अर्थ:-जिन्हें सुबुद्धि का उदय हुआ है, जो भोगों से विरक्त हुए हैं, जिन्होंने शरीर आदि परद्रव्यों से ममत्व हटाया है, जो राग-द्वेष आदि भावों से रहित हैं, जो कभी घर और धन-सम्पत्ति आदि में लीन नहीं होते, जो सदा अपने आत्मा को सर्वांग शुद्ध विचारते हैं, जिन्हें मन में कभी आकुलता नहीं व्यापती, वे ही जीव त्रैलोक्य[१] में मोक्षमार्ग के साधक हैं, चाहे घर में रहें, चाहे वन में रहें।।१६।।

काव्य-१६ पर प्रवचन

जिन्हकैं सुमति जागी भोगसौं भये विरागी,
परसंग त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमैं।

१. चाहे ऊर्ध्वलोक अर्थात् देवगति में हों, चाहे मध्यलोक अर्थात् तिर्यंच जाति में हों चाहे पाताललोक अर्थात् भवनवासी व्यंतर वा नरकगति में हों।

रागादिक भावनिसौं जिनिकी रहनि न्यारी,
कबहू मगन ह्वै न रहैं धाम धनमैं।।
जे सदैव आपकौं विचारैं सरवांग सुद्ध,
जिन्हकै विकलता न व्यापै कहू मनमैं।
तेई मोख मारगके साधक कहावैं जीव,
भावै रहौ मंदिरमैं भावै रहौ वनमैं।।१६।।

आहाहा! क्या कहते हैं, देखो। **जिन्हकै सुमति जागी...** भगवान आत्मा... राग के अनुभव से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसे अनुभव की सुमति जगी। **भौगसौं भये विरागी...** अन्तर में राग के भोग से वैराग्य हुआ है। समझ में आया? ऐसा जहाँ भोग का आवे, वहाँ (माने कि) यह सब थूक डाले भोग को, तब वैरागी कहलाये, ऐसा नहीं है। अन्दर के भोग की विकल्प की वृत्ति, वह जहर है। ऐसा जाना है, वह उससे विरक्त है, वैरागी है। विरक्त है—रक्त नहीं। राग में रक्त नहीं, भोग में रक्त नहीं। आहाहा! **जिन्हकै सुमति जागी, भौगसौं भये विरागी...** शुभ-अशुभराग से तो वैरागी हुआ है। पुण्य-पाप में आता है न? शुभाशुभभाव का वैराग्य, उसे वैराग्य कहते हैं। शुभाशुभभाव से रहित भाव, उसे वैराग्य कहते हैं। स्त्री-पुत्र को छोड़कर भागा, वह वैरागी है, ऐसा नहीं है। शुभ-अशुभराग... है न? पुण्य-पाप (अधिकार) में है। कितनी गाथा? पुण्य-पाप, नहीं? कर्ता-कर्म के बाद है न पुण्य (पाप अधिकार)। देखो, **रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो...** १५० (गाथा)। परन्तु यह (पराश्रित) वैराग्य नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प से हट गया, उसका नाम वैराग्य। आहाहा! समझ में आया?

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥१५०॥

वीतराग भगवान का यह उपदेश है। पुण्य-पाप के राग से हट गया, पूर्णानन्द की प्रतीति में आया और यहाँ से हट गया, इसका नाम वैराग्य कहा जाता है। हट गया... हट गया। पुण्य-पाप के विकल्प से, शुभाशुभ से हट गया, उसे वैराग्य कहते हैं। बाकी सब (कहने के) वैरागी कहलाते हैं। १५०वीं है, हों! 'रागी अवश्य कर्म बाँधता और विरक्त—वैरागी ही कर्म से छूटता है, ऐसा आगमवचन है।' लो। 'सामान्यरूप से

रागीपने के निमित्तपने के कारण शुभ और अशुभ दोनों कर्म को अविशेषरूप से बन्ध के कारण रूप से सिद्ध करते हैं, इसलिए उन दोनों कर्मों का निषेध करते हैं', लो। यह शुभराग और अशुभराग का वैराग्य। उसके वैराग्य का अर्थ (यह कि) उसमें से हटकर वीतराग—रागरहित परिणति (हो), उसे वैराग्य कहा जाता है। आहाहा!

कहते हैं, **जिन्हकै सुमति जागी, भोगसौं भये विरागी...** भोग से विरक्त हुआ है। उसकी व्याख्या ऐसी नहीं कि उसकी—जड़ की क्रिया भोग से छूट गयी हो। ऐसा नहीं। क्रिया, क्रिया का काम करती है। उसमें जो राग है, वह राग का काम करता है। धर्मी तो राग और क्रिया से भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? **भोगसौं भये विरागी...** उसका वे अर्थ करे, भोग छोड़ दे। परन्तु भोग की व्याख्या ही क्या है? राग का अनुभव, वह भोग है। कहीं शरीर का अनुभव, उसे तो वह कर सकता नहीं। वह भोग है, उससे विरक्त, वह वैरागी है। कहो, समझ में आया?

परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवनमैं,... लो। **जिन्होंने शरीर आदि परद्रव्यों से ममत्व हटाया है।** त्यागी है, ऐसा कहते हैं। परसंग—शरीर, वाणी, मन—उनसे वैराग्य है अथवा ममत्व हटाया है। परद्रव्यों से... लो। **जे पुरुष त्रिभुवनमैं,...** तीन लोक में से जिसने राग-द्वेष का संग छोड़ दिया है, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ नहीं आया इसमें। अन्त में 'त्रिलोक में'। **जीव त्रैलोक्य में मोक्षमार्ग के साधक हैं।** वह चाहे जिस लोक में हो, ऐसा। नरक में हो। है न नीचे? **चाहै उर्धालोक अर्थात् देवगति में (समकिती) हों, चाहे मध्यलोक अर्थात् मनुष्य तिर्यंच जाति में हों, चाहे पाताल लोक अर्थात् भवनवासी, व्यंतर वा नरकगति में हो।** परन्तु उनसे छूटा हुआ है वहाँ। आहाहा!

परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवनमैं... तीनों लोक में वह त्यागी है। नारकी समकिती भी भोग के त्यागी हैं। यह आया या नहीं तीन लोक में? वहाँ व्यन्तर हो समकित नीचे, वह भी भोग का त्यागी है। स्वर्ग में देव हो, वह भोग का त्यागी है। मनुष्य में समकिती हो, वह भोग का त्यागी है। तिर्यंच में हो हजार-हजार योजन का मच्छ। परन्तु वह तो परद्रव्य की सत्ता है, मच्छ आदि (शरीर) तो। कर्म की परसत्ता है और रागादि की सत्ता भी पर है। आहाहा! **परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवनमैं...** तीन लोक में जहाँ हो, वहाँ वह परद्रव्य के संग का तो त्यागी है। आहाहा! देखो न, कैसा वस्तु का स्वरूप! जहाँ जहाँ

'मैं' हूँ, वहाँ वह परसंग है ही नहीं। परसंग का तो धर्मी को त्याग है।

वापस कहते हैं कि घर में रहे या वन में रहे। इसका अर्थ कि उस घर का संग ही नहीं उसे, वन का भी संग नहीं। आहाहा! घर में भी कहाँ है और वन में भी कहाँ है वह? वह तो आत्मा में है। आहाहा! ऐसा वैराग्य और ऐसा ज्ञान! तीन लोक में जहाँ हो, वहाँ भोग से तो पृथक् है, ऐसा कहते हैं। **रागादिक भावनिसौं जिनिकी रहनि न्यारी,...** लो। पुण्य-पाप के विकल्प की परिणति, उससे न्यारी उसकी करणी। रहणी... रहणी... यह रहणी—कहणी ज्ञानी की राग से भिन्न है। रागादि—राग आदि हास्य कुतूहल इत्यादि। ऐसे भावनिसौं—ऐसे भाव से जिसकी रहणी न्यारी है। रहित इतना संक्षिप्त अर्थ किया। राग-द्वेष आदि भाव से रहित। चैतन्यद्रव्य का अनुभव—भान हुआ, वहाँ राग-द्वेष से ज्ञानी रहित ही है। चाहे रहो घर में, इसका अर्थ क्या? घर है, तो भी उस संयोग में है नहीं। उससे रहित कहा, देखो न।

कबहूं मगन व्है न रहै धाम धनमैं,... लो। धर्मी की रहणी ही अलग प्रकार की है। **कबहूं मगन व्है न रहै धाम धनमैं,...** धाम अर्थात् मकान और धन, उसमें मग्न कभी एक समय होता नहीं। आहाहा! चक्रवर्ती का राज हो और धन की लक्ष्मी का पार न हो। नवनिधान आदि, देखो न! **कबहूं मगन व्है न...** किसी समय भी धाम और धन में एकाकार है नहीं। वह तो परवस्तु है। राग से तो भिन्न तत्त्व है। उससे भिन्न है। यह पहले कह गये थे।

रागादिक भावनिसौं जिनिकी रहनी न्यारी,
कबहू मगन व्है न रहे धाम धनमें।
जे सदैव आपकौं विचारैं सरवांग सुद्ध,

जिस आत्मा को सदा ही... सदा ही, ऐसा है न? **जे सदैव आपकौं विचारैं सरवांग सुद्ध,...** दो शुद्ध है, सदैव और सर्वांग। त्रिकाल आत्मा को शुद्ध ही स्वयं जानता है। सर्वांग शुद्ध विचारते हैं। विचारते अर्थात् अनुभव करते हैं। विचार कहो या अनुभव कहो। यह विकल्प की बात नहीं। चिदानन्दस्वभाव भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप, वह मेरा, ऐसे त्रिकाल अपने को पूर्ण शुद्ध जानता है। सर्वांग शुद्ध, ऐसा। सभी पहलुओं से शुद्ध जानता है। द्रव्य से—गुण से शुद्ध है और पर्याय से अशुद्ध है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। अशुद्ध का तो त्यागी है, शुद्धता का भोगी है। अरे, गजब धर्म! **जे सदैव**

आपकौं विचारैं सरवांग सुद्ध, जिन्हकै विकलता न व्यापै कहूं मनमैं... विकलता—आकुलता। आकुलता व्यापती नहीं। क्योंकि आकुलता, वह राग है और उससे भिन्न है, इसलिए धर्मी को आकुलता नहीं होती। आहाहा! लो, आकुलता से तो भिन्न है।

जिन्हकै विकलता न व्यापै कहूं मनमैं... मन में अन्दर कभी आकुलता नहीं व्यापती। शान्ति व्यापती है। अकषायभाव व्यापता है। कषायभाव व्यापता नहीं। क्योंकि वह तो आकुलता है और पर है। आहाहा! **तेई मोख मारगके साधक...** यह मोक्षमार्ग के साधक हैं। कहो, समझ में आया? **तेई मोख मारगके साधक कहावै जीव, भावै रहौ मंदिरमैं भावै रहो वनमैं... वे जीव त्रैलोक्य में मोक्षमार्ग के साधक है, चाहे घर में रहें, चाहे वन में रहें।** अर्थात् गृहस्थाश्रम हो, परन्तु धर्मी तो उससे भिन्न है। समझ में आया? गृहस्थाश्रम का जो विकल्प उठे, उससे वह भिन्न है। फिर गृहस्थाश्रम में हो या वन में हो, भिन्न ही है। आहाहा! ऐसा तत्त्व पूर्णानन्दस्वरूप... वह घर में हो तो भी राग से भिन्न है, वन में हो तो भी राग से भिन्न है। घर में है, इसलिए घर का संग है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। वन में गया तो असंग हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! मोक्षमार्ग के साधक चाहे घर में रहें, चाहे वन में रहें, लो। छठवाँ कलश।

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि।।६।।

यह श्लोक नियमसार में आया है, नहीं? नियमसार। वह परद्रव्य कहा वहाँ। ५० (गाथा में)। लो, परद्रव्य कहा है, पर्याय को परद्रव्य कहा है, लो। आहाहा! इसलिए फिर यह दृष्टान्त (रूप से) श्लोक वहाँ रखा है।

मोक्षमार्गी जीवों की परिणति। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी की अवस्था। **चेतन मंडित अंग अखंडित।** लो, बहुत तो इसमें इकतीसा सवैया है और तेईसा।

★ ★ ★

काव्य - १७

मोक्षमार्गी जीवों की परिणति (सवैया तेईसा)

चेतन मंडित अंग अखंडित,
सुद्ध पवित्र पदारथ मेरो।
राग विरोध विमोह दसा,
समुझै भ्रम नाटक पुदगल केरो।।
भोग संयोग वियोग बिथा,
अवलोकि कहै यह कर्मज घेरौ।
है जिन्हकौ अनुभौ इह भांति,
सदा तिनकौं परमारथ नेरौ।।१७।।

शब्दार्थ:-मंडित=शोभित। अखंडित=छिद भिद नहीं सकता।

अर्थ:-जो विचारते हैं कि मेरा आत्मपदार्थ चैतन्यरूप है, अछेद्य, अभेद्य, शुद्ध और पवित्र है, जो राग-द्वेष-मोह को पुद्गल का नाटक समझते हैं, जो भोग सामग्री के संयोग और वियोग की आपत्तियों को देखकर कहते हैं कि ये कर्मजनित हैं-इसमें हमारा कुछ नहीं है, ऐसा अनुभव जिन्हें सदा रहता है, उनके समीप ही मोक्ष है।।१७।।

काव्य-१७ पर प्रवचन

चेतन मंडित अंग अखंडित,
सुद्ध पवित्र पदारथ मेरो।
राग विरोध विमोह दसा,
समुझै भ्रम नाटक पुदगल केरो।।
भोग संयोग वियोग बिथा,
अवलोकि कहै यह कर्मज घेरौ।
है जिन्हकौ अनुभौ इह भांति,
सदा तिनकौं परमारथ नेरौ।।१७।।

भिन्न परमार्थ है। दुनिया से ज्ञानी की पद्धति ही अलग है, आहाहा! **चेतन मंडित अंग अखंडित...** धर्मी विचारता है कि **मेरा आत्मपदार्थ चैतन्यरूप है,...** अखण्डित है। **अछेद्य अभेद्य....** ऐसा। अछेद, अभेद और शुद्ध। अखण्ड का अर्थ इतना किया, अछेद और अभेद। शुद्ध और पवित्र। **सुद्ध पवित्र** यह शब्द पड़े हैं। **चेतन मंडित...** मैं तो चैतन्य ज्ञानानन्दस्वभाव से सहित हूँ। **अंग अखंडित...** यह चैतन्य का अंग है, वह अभेद है। अछेद है, अभेद है।

सुद्ध पवित्र पदारथ मेरौ। शुद्ध और पवित्र वह मेरी चीज़ है। अशुद्ध और अपवित्र वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! **राग विरोध विमोह दसा...** राग, विरोध अर्थात् द्वेष और विमोह अर्थात् मिथ्यात्व—भ्रान्ति। **समुझै भ्रम नाटक पुद्गल केरौ...** आहाहा! यह भ्रमणा—नाटक पुद्गल की है, मेरी नहीं। **विमोह दसा, समुझै भ्रम नाटक...** ऐसा। विमोह भी डाला। यह तो आया न, अतत्त्वश्रद्धा—मिथ्यात्व, उससे भिन्न है। अतत्त्वार्थ श्रद्धान से भिन्न—उससे भिन्न है। अर्थ में भी है न। यह तो २९वें बोल में अतत्त्वार्थ श्रद्धान—विपरीत भाव से भिन्न है। आहाहा! ऐसा कि भ्रम होता है और भ्रम से भिन्न है, ऐसा यहाँ तो प्रश्न उठा। भ्रम होता ही नहीं। समझाना है न!

राग विरोध विमोह दसा, समुझै भ्रम नाटक पुद्गल केरौ... शब्द तो ऐसा आवे मानो मिथ्यात्व है और वह कर्म का नाटक है। परन्तु वह भ्रम है ही नहीं। राग-द्वेष आदि पर तत्त्व के झुकाववाला विभाव हो, वह **भ्रम नाटक पुद्गल केरौ...** भगवान आत्मा का वह स्वरूप नहीं। वह पुद्गल का नाटक है।

भोग संयोग वियोग बिथा... भोगसामग्री के संयोग और वियोग की आपत्तियों को देखकर कहते हैं। आपत्तियाँ देखे, उसका वियोग हुआ। **वियोग बिथा...** वह तो मुफ्त का नाटक है पुद्गल का। वह तो पुद्गल का नाटक वृथास्वरूप है। वह कर्मजनित है, देखो! मेरे स्वरूप की जाति नहीं, ऐसा इतना। हुआ है उसके पुरुषार्थ की कमजोरी से, परन्तु कमजोरी और वह सब आत्मा का स्वरूप ही नहीं है।

भोग संयोग वियोग बिथा,... मुफ्त, **अवलोकि कहै यह कर्मज घेरौ...** यह कर्म का घेरा है। मेरी चीज़ में यह है नहीं। **है जिन्हकौ अनुभौ इह भांति...** जिसे इस प्रकार का अनुभव है, यह भांति, लो। **इसमें हमारा कुछ नहीं, ऐसा अनुभव जिन्हें सदा रहता**

है। 'सदा' शब्द है न। **सदा तिनकौं परमारथ नेरौ**। ओहोहो! उसके समीप मोक्ष है। उसका परमार्थ ही अलग है, ऐसा कहते हैं। 'नैरो' अर्थात् नजदीक, ऐसा कहा। **सदा तिनकौं परमारथ नेरौ...** नजदीक है, ऐसा। न्यारा नहीं कहकर नजदीक है, ऐसा। मोक्ष नजदीक है, कहते हैं, अल्पकाल में उसे केवलज्ञान होगा। ऐसी दशावन्त को धर्मात्मा और मोक्षमार्ग का साधक कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०७, आषाढ़ कृष्ण १०, शनिवार, दिनांक १७-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य - १८ से २२

समयसार नाटक। मोक्ष अधिकार। १८-१९ पद है। ७-८ कलश नीचे।

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान्।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो यतिः।।७।।

अनवरतमनन्तैर्बध्यते सापराधः,
स्पृशति निरपराधो बंधनं नैव जातु।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो,
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी।।८।।

ऊपर उपोद्घात है। सम्यग्दृष्टि जीव भला है। साधु अर्थात् भला। है न उपोद्घात? सम्यग्दृष्टि, वह साधु है। साधु अर्थात् जैसा है, वैसे स्वरूप को जाननेवाला—अनुभव करनेवाला। इसलिए वह साधु अर्थात् भला है। मिथ्यादृष्टि जीव चोर है।

★ ★ ★

काव्य - १६

सम्यग्दृष्टि जीव साधु हैं और मिथ्यादृष्टि जीव चोर हैं

(दोहा)

जो पुमान परधन हरै, सो अपराधी अग्य।
जो अपनौ धन व्यौहरै, सो धनपति सरवग्य।।१८।।
परकी संगति जौ रचै, बंध बढ़ावै सोइ।
जो निज सत्तामैं मगन, सहज मुक्त सो होइ।।१९।।

शब्दार्थः-पुमान=मनुष्य। परधन हरै=परद्रव्य को अंगीकार करते हैं। अग्य=मूर्ख। धनपति=साहूकार। रचै=लीन होवे।

अर्थः-जो मनुष्य परद्रव्य हरण करता है वह मूर्ख है, चोर है; जो अपने धन का उपयोग करता है, वह समझदार है, साहूकार है।।१८।।

जो परद्रव्य की संगति में मग्न रहता है, वह बन्धसन्तति को बढ़ाता है और जो निज सत्ता में लीन रहता है, वह सहज ही मोक्ष पाता है।।१९।।

भावार्थ : लोक में प्रवृत्ति है कि जो दूसरे के धन को लेता है उसे अज्ञानी, चोर वा डांकू कहते हैं, वह गुनहगार और दण्डनीय होता है, और जो अपने धन को वर्तता है, वह महाजन वा समझदार कहलाता है, उसकी प्रशंसा की जाती है। उसी प्रकार जो जीव परद्रव्य अर्थात् शरीर वा शरीर के सम्बन्धी चेतन-अचेतन पदार्थों को अपना मानता है, वा उनमें लीन होता है, वह मिथ्यात्वी है, संसार के क्लेश पाता है। और जो निजात्मा को अपना मानता वा उसी का अनुभव करता है, वह ज्ञानी है, मोक्ष का आनन्द पाता है।।१८-१९।।

काव्य-१८-१९ पर प्रवचन

जो पुमान परधन हरै, सो अपराधी अग्य।
जो अपनौ धन व्यौहरै, सो धनपति सरवग्य।।१८।।
परकी संगति जौ रचै, बंध बढ़ावै सोइ।
जो निज सत्तामैं मगन, सहज मुक्त सो होइ।।१९।।

जो पुरुष परद्रव्य हरे... दृष्टान्त दिया है। परधन हरे, वह अपराधी-चोर है। अज्ञ है—अज्ञानी है, लोक में मूढ़ है। **जो अपनौ धन व्यौहरे...** अपनी लक्ष्मी हो उसे प्रयोग करे (खर्च करे) **सो धनपति सरवग्य...** सज्जन है। वह साहूकार है (कि जो) अपनी लक्ष्मी प्रयोग करे, पर की नहीं। पर की प्रयोग करे और अपनी नहीं, वह चोर है। **पर की संगति जो रचै...** अब आत्मा में घटित करते हैं। इसी प्रकार पर की संगति... भगवान आत्मा चैतन्य शुद्ध आनन्द की संगति—एकाग्रता छोड़कर रागादि विकल्प का संग करके एकाग्र हो, वह **बंध बढ़ावै सोई...** आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप को भूलकर राग के भाव को, विकल्प को, व्यवहार को, शरीरादि को अपना माने, वह तो चोर है, गुनहगार है। इसलिए वह अपराधवान है।

अपराधी उसे कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप, वह स्वयं

अपना आश्रय—सेवन—एकाग्रता भूलकर और अशुद्ध रागादि व्यवहारभाव का आश्रय करे, उसे सेवन करे और उसे अपना (मानकर) उसका स्वामी हो। राग का—पुण्य का स्वामी हो, वह चोर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दया-दान-व्रत-भक्ति—ऐसे जो शुभभाव, उनका स्वामी हो, वह पर का संग करता है, ऐसा कहते हैं। चैतन्यस्वरूप राग का संग करे, वह चोर है और **बंध बढ़ावै...** इसलिए वह गुनहगार है और बन्ध को बढ़ाता है। मिथ्यात्व मोहनीय को बाँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **जो निज सत्तामैं मगन...** अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप में जो एकाग्र है, वह साहूकार है। वह अपने धन को खर्च करता है। किसी का खर्चता नहीं। समझ में आया?

एक बार दृष्टान्त दिया था। एक व्यक्ति नौकर था। पैसा-बैसा आवे संस्था के, जेब में डालकर जाये। कोई रास्ते में मिले, माँगे तो दे देवे। जब नामा करने लगा, तब वे कहे, पैसा? पैसा तो मैं जेब में लेकर जाता था, कोई माँगे तो मैं तो दूँ। ऐ, परन्तु तेरे कहाँ थे वे (कि) तू दे? संस्था का नौकर था। पैसे तो आवे संस्था में। जेब में पड़े हों नोट.. नोट... ऐसे गिनकर। कोई माँगे भिखारी कि अरे, माँ-बाप... कितने? २-३-४ हजार। दे दिये। दान में दिये न उसने?

मुमुक्षु : चोरी का माल दान में दिया जाता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वापस बोला तब.... नामा लिखने लगा, तब कहा, इसमें मिलान खाता नहीं। इसमें तीन हजार चाहिए। तीन हजार मैंने लिये हैं और मैंने दान में दिये हैं। मेरे पास जेब में हो और कोई माँगे तो मैं कैसे रह सकूँ? कहो, ठीक। यह उसका जवाब वापस।

इसी प्रकार अज्ञानी निमित्त के संग में रहे और रागादि हो, उन्हें अपना माने, वह तो चोर है। किसी के माल को अपना माना। यह शरीर मेरा, परिवार मेरा, स्त्री-पैसा-लक्ष्मी मेरे। वह तो परद्रव्य है। कहीं भी परद्रव्य का स्वामीपना और संग करके एकाग्र हो (तो) मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। भला नहीं अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। मूर्ख है, ऐसा कहा है न इसमें? परद्रव्य हरण करे, वह मूर्ख है। यह बाहर का नोट देखना। चोर है। **अपने धन का उपयोग करता है, वह समझदार है, साहूकार है। जो परद्रव्य की संगति**

में मग्न रहता है। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वभाव जानन, दर्शन, आनन्द, वह राग में मग्न हो, व्यवहार का विकल्प है, उसमें मग्न हो (तो) चोर है, अपराधी है, गुनहगार है। उसे मिथ्यात्व का बन्धन पड़ता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

निज सत्तामैं मगन... अपनी सत्ता तो शुद्ध है। शुभ-अशुभराग से भी आत्मा की सत्ता भिन्न है। ऐसी निज सत्ता में जो एकाग्र हो, मग्न रहे, स्वभाव में ही साधन जानकर स्वभाव में ही एकाग्र रहे। राग का साधन जानकर राग में एकाग्र रहे, वह मिथ्यादृष्टि है। **निज सत्तामैं मगन सहज मुकत सो होइ... सहज ही मोक्ष पाता है।** वह साहूकार है, वह घर का धन खर्च करता है। चोर है, वह किसी का खर्च करता है। इसी प्रकार अज्ञानी रागादि के भाव को अपना मानता है, अशुद्ध रागादि, वह गुनहगार है, चोर है, अपराधी है और बन्ध में पड़ता है। वह जेल में पड़े, यह बन्धन में पड़ता है।

धर्मी जीव—सम्यग्दृष्टि जीव अपने शुद्धस्वभाव में एकाग्र होता है। राग में एकाग्र नहीं होता। इसीलिए वह निरपराधी है। वह सहज मोक्ष पाता है, ऐसा कहते हैं। अर्थ साधारण किया है। फिर इसका भावार्थ किया है न! दो पेज। इतना कहकर भावार्थ किया है वापस। **लोक में प्रवृत्ति है कि जो दूसरे के धन को लेता है, उसे अज्ञानी चोर व डाकू कहते हैं,...** लो। **वह गुनहगार और दण्डनीय होता है।** दण्ड के योग्य है। **और जो अपने धन को वर्तता है, वह महाजन वा समझदार कहलाता है।** महाजन है, लोक का सज्जन व्यक्ति है। **उसकी प्रशंसा की जाती है,...** लो।

उसी प्रकार जो जीव परद्रव्य अर्थात् शरीर वा शरीर के सम्बन्धी चेतन-अचेतन... शरीर के सम्बन्धवाले स्त्री-पुत्र-परिवार-पैसा-मकान-कीर्ति **पदार्थों को अपना मानते हैं,...** लो। रागादि भाव, ऐसा सब ले लेना। रागादि, शरीर आदि, शरीर के सम्बन्धी, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, वे सब मेरे हैं, मुझे उनके साथ सम्बन्ध है, सम्बन्ध है। ऐसे जो परद्रव्य के साथ राग से लेकर शरीर आदि, शरीर के सम्बन्धवाले चेतन-अचेतन (पदार्थों को अपने मानता है) वे सब अपराधी हैं, मिथ्यात्वी हैं। उसको मूर्ख कहा था लौकिक में। यह मिथ्यात्वी। **संसार के क्लेश पाता है...** इसे संसार में भटकने का मिले चार गति में। आहाहा! दया पाले, व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे—इस भाव में एकाग्र हो और ये मेरे हैं (ऐसा माने), वह चार गति में भटकता है। क्लेश पाता है।

और जो निजात्मा को अपना मानता... निज आत्मा तो शुद्ध चैतन्य आनन्द है, उसे अपना जानकर और **उसी का अनुभव करता है, वह ज्ञानी है।** साधु कहा न, साधु? साधु अर्थात् भला। जैसा है, वैसा स्वरूप, रागरहित परमात्मस्वरूप अपना, उसे जो अनुभव करता है और अपना मानता है, वह तो कहते हैं कि साहूकार है, सज्जन है। **मोक्ष का आनन्द पाता है...** है न अन्तिम? **सहज मुकत सो होई...** स्वाभाविक वह मुक्तदशा को प्राप्त करता है। मोक्ष अधिकार है न, इसलिए राग की एकता वह बन्ध का कारण है और स्वभाव की एकता, वह मुक्ति का कारण है, ऐसी संक्षिप्त बात वर्णन की है। विकल्प है दया-दान-व्रत आदि—उसमें जिसकी एकताबुद्धि है, वह अपराधी—गुनहगार चार गति में भटकेगा। और जिसकी एकता स्वभाव अन्तर्मुख है और अन्तर्मुख एकता है, वह सहज मुक्ति के आनन्द को पाता है। उसे स्वाभाविक आनन्द मिलेगा, ऐसा कहते हैं।

अब, द्रव्य और सत्ता का स्वरूप।

★ ★ ★

काव्य - २०

द्रव्य और सत्ता का स्वरूप[१] (दोहा)

उपजै विनसै थिर रहै, यह तो वस्तु वखान।
जो मरजादा वस्तुकी, सो सत्ता परवांन।।२०।।

शब्दार्थ:-उपजै=उत्पन्न होवै। विनसै=नष्ट होवे। वस्तु=द्रव्य। मर्यादा=सीमा क्षेत्रावगाह। परवांन (प्रमाण)=जानना।

अर्थ:-जो पर्यायों से उत्पन्न और नष्ट होता है, परस्वरूप से स्थिर रहता है, उसे द्रव्य कहते हैं, और द्रव्य के क्षेत्रावगाह को सत्ता कहते हैं।।२०।।

१. 'पंचास्तिकायजी' की 'सत्ता सव्व पयत्था' आदि गाथाओं का स्वाध्याय करके यह विषय अच्छी तरह से समझना चाहिए।

काव्य-२० पर प्रवचन

उपजै विनसै थिर रहै, यह तो वस्तु वखान।
जो मरजादा वस्तुकी, सो सत्ता परवांन।।२०।।

जो पर्याय से उपजता है और पर्याय से नष्ट होता है... **पर स्वरूप से स्थिर रहता है**। ऐसा। 'परन्तु' के बदले 'पर' डाला है। परन्तु स्वरूप से स्थिर रहता है, ऐसा।

'उपजे-विनसै तबही....
स्थिरता एक समय में ठानै, उपजे-विनसै तबही।
उलट-पुलट ध्रुव सत्ता राखै, या हम सुनी ना कब ही।
अवधु नट नागर की बाजी।'

भगवान लोक के नगर के नाटक का नट। एक समय में अवस्था से उपजे, उसी समय में पुरानी अवस्था से व्यय पावे, उसी समय में ध्रुवरूप स्थिर रहे। यह वस्तु की मर्यादा है। **द्रव्य के क्षेत्रावगाह को सत्ता कहते हैं**। अपना द्रव्य जहाँ है, वह उसका क्षेत्र है, वह उसका भाव है, वह उसकी सत्ता, ऐसा। **जो मरजादा वस्तुकी सो सत्ता परवांन...** सत्ता प्रमाण उसकी मर्यादा है। उपजे, विनसे (और) ध्रुव। उसकी सत्ता प्रमाण उसकी मर्यादा है। बाह्य में वह जाता नहीं।

अब, **षट्द्रव्य की सत्ता का स्वरूप**।

★ ★ ★

काव्य - २१

षट् द्रव्य की सत्ता का स्वरूप (सवैया इकतीसा)

लोकालोक मान एक सत्ता है आकाश दर्व,
धर्म दर्व एक सत्ता लोक परमिति है।
लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व,
कालके अनू असंख सत्ता अगनिति है।।

पुदगल सुद्ध परवानुकी अनंत सत्ता,
जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी छिति है।
कोऊ सत्ता काहूसौं न मिलि एकमेक होइ,
सबै असहाय यौं अनादिहीकी थिति है।।२१।।

शब्दार्थः-लोकालोक=सर्व आकाश। परमिति=बराबर। परवान (प्रमाण)=बराबर। अगनिति=असंख्यात। न्यारी न्यारी=जुदी जुदी। थिति (स्थिति)=मौजूदगी। असहाय= स्वाधीन।

अर्थः-आकाशद्रव्य एक है, उसकी सत्ता लोक-अलोक में है, धर्मद्रव्य एक है, उसकी सत्ता लोक-प्रमाण है, अधर्मद्रव्य भी एक है, उसकी सत्ता भी लोकप्रमाण है, काल के अणु असंख्यात हैं, उनकी सत्ता असंख्यात है, पुद्‌गल द्रवय अनन्तानन्त हैं, उनकी सत्ता अनन्तानन्त है, जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं, उनकी सत्ता अनन्तानन्त है, इन छहों द्रव्यों की सत्ताएँ जुदी जुदी हैं, कोई सत्ता किसी से मिलती नहीं, और न एकमेक होती है। निश्चयनय में कोई किसी के आश्रित नहीं सब स्वाधीन हैं। ऐसा अनादि काल से चला आ रहा है।।२१।।

काव्य-२१ पर प्रवचन

लोकालोक प्रमाण सत्ता आकाश की है। आकाश की लोकालोकप्रमाण सत्ता है। वह एक द्रव्य है। **धर्म दर्व एक सत्ता लोक परमिति है...** यह धर्मास्ति लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है। **लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व...** अधर्मद्रव्य की भी लोकप्रमाण एक सत्ता है। **काल के अनु असंख सत्ता अगनिति है...** काल के अणु असंख्य हैं, उनकी सत्ता है अस्तित्वरूप से। दिगम्बर सम्प्रदाय में, उसके असंख्य अणु हैं, ऐसा कहा है। थोड़ी बात ली है उसने—हेमचन्द्राचार्य ने योगशास्त्र में। इसमें यह डाला है, रूपचन्दजी ने डाला है। योगशास्त्र में यह कहा है ऐसा। दिगम्बर सम्प्रदाय में और योगशास्त्र में—दोनों का नाम रूपचन्दजी ने डाला है। इन्हें तो अभ्यास था न सबका। कालाणु की बात है न! यह कथन दिगम्बर सम्प्रदाय में से है और योगशास्त्र में... यह डाला है। हेमचन्द्राचार्य हो गये हैं श्वेताम्बर में, उसमें उन्होंने जरा डाला है।

परन्तु उनके शास्त्र में ऐसा है नहीं, अद्धर से लेकर डाला है। (श्वेताम्बर) शास्त्र में, काल, वह जीव-अजीव की पर्याय कहते हैं। श्वेताम्बर शास्त्र में, जीव-अजीव की पर्याय, वह काल। असंख्य अणु काल अलग हैं। उन्होंने पढ़ा हुआ, वह डाला है। उन्होंने भी डाला है रूपचन्दजी ने।

कालके अनू असंख सत्ता अगनिति है... गिनती का पार है, असंख्य है उसमें कहते हैं। काल के अणु असंख्य हैं, सत्ता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला तत्त्व है। अनन्त गुण और अनन्त पर्यायवाला एक-एक ऐसे असंख्य कालाणु ऐसी सत्ता है। श्रीमद् कितनी ही जगह ऐसा कहते हैं कि श्वेताम्बर ऐसा कहते हैं और दिगम्बर ऐसा कहते हैं। कालाणु असंख्य अनादि-अनन्त है, वस्तु है। नहीं है, ऐसा नहीं। एक समय की पर्याय जीव की ऐसे छह द्रव्य को बराबर जाने, तब उसे एक पर्याय की पूर्णता की प्रतीति यथार्थ कहलाती है। क्योंकि एक समय की ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य को जाने और छह द्रव्य है, ऐसी सत्ता का स्वीकार है, तब उसे एक समय की पर्याय का स्वीकार हुआ। छह द्रव्य में भी कम माने और विपरीत माने, उसे तो आत्मा की एक समय की पर्याय की सत्ता का स्वीकार यथार्थ नहीं है। समझ में आया?

आत्मा ज्ञानस्वरूप त्रिकाल, उसकी एक समय की पर्याय में छह द्रव्य जाने, ऐसी ही उसकी सत्ता का सामर्थ्य है। एक पर्याय का, एक समय का। छह द्रव्य में कम-अधिक माने तो एक समय की पर्याय जितनी बड़ी है, उतनी अभी उसने मानी नहीं। द्रव्य तो ऐसी अनन्त पर्याय के अनन्त गुणों का पिण्ड और अनन्त गुणों का रस है। ऐसी बात है। असंख्यात लोकप्रमाण सत्ता अगिनती है। **पुद्गल शुद्ध परवानुकी अनंता सत्ता...** एक-एक रजकण को भिन्न गिनो तो अनन्त सत्ता पुद्गल की है। अनन्त है। अनादि की है। किसी की सत्ता में किसी की मिलावट नहीं है और किसी को स्पर्शता नहीं और छूता भी नहीं। सब स्वतन्त्र। आहाहा!

अनन्त परमाणुओं में एक-एक परमाणु स्वतन्त्र है। अनन्त आत्माओं में... एक क्षण में एक अंगुल के असंख्यवें भाग में निगोद के असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव। सब स्वतन्त्र और सत्ता भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? एक अंगुल के असंख्य भाग का राई जितना टुकड़ा हो टुकड़ा, उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर है।

आलू, काई, कन्दमूल। एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुने जीव हैं। इतना सब ज्ञान प्रमाण ज्ञेय है। यहाँ तो, ज्ञेय प्रमाण ज्ञान है। इतना ज्ञेय है, उतना यहाँ ज्ञान है। इतने ज्ञेय का स्वीकार न हो तो उसके ज्ञान की पर्याय का भी स्वीकार नहीं है। और जिसे पर्याय का इतना स्वीकार नहीं, उसे द्रव्य का स्वीकार तो होता नहीं। आहाहा!

एक ही आत्मा माननेवाला, जीव और पुद्गल दो ही माननेवाले, पाँच द्रव्य मानकर काल को नहीं माननेवाले—वे सब ही द्रव्य की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य नहीं मानते। **पुद्गल शुद्ध परवानुकी अनंता सत्ता...** ओहोहो! एक-एक जीव के पास, अनन्त-अनन्त परमाणु अनन्तगुने एक जीव के पास (नजदीक) हैं। निगोद में जीव गया हो, एकेन्द्रिय शरीर में... शरीर अनन्त रजकणों का पिण्ड है। कार्मण (शरीर) के अनन्त रजकण हैं, तेजस अनन्त रजकण। सब अनन्त रजकण हैं। जीव एक और अनन्त रजकण हैं। अनन्त की प्रत्येक की सत्ता भिन्न है। किसी सत्ता के अस्तित्व में किसी सत्ता के अस्तित्व का प्रवेश नहीं। आहाहा! ऐसी स्वतन्त्र वस्तु का कोई कर्ता-हर्ता नहीं। उस वस्तु की सत्ता के साथ अनादि से ही परिमित है। .... कर्ता, आता है न? छहढाला में आता है। लोक का कोई कर्ता नहीं।

मुमुक्षु : किनहू न करौ न धरै को....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धरे कोई। कोई कर्ता नहीं, उसे किसी ने धारण कर नहीं रखा, उसे कोई नाश करनेवाला नहीं। छहढाला में आता है।

इसी प्रकार यहाँ अनन्त परमाणुओं की सत्ता... **जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी छिती है,...** लो। प्रत्येक जीव की स्थिति भिन्न-भिन्न है। आहाहा! एक-एक आत्मा अपने परिणमन की पर्याय, द्रव्य-गुण में है। वह भले स्थूल में हो, काई हो। लीलफूग अर्थात् काई। उसमें एक कण में असंख्य शरीर और एक-एक शरीर में अनन्त जीव अपनी सत्ता से वहाँ काम कर रहे हैं। परसत्ता को कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! एक कार्मणशरीर है, उसमें अनन्त रजकण हैं। एक-एक प्रकृति के अनन्त रजकण हैं। प्रत्येक रजकण अपनी सत्ता से वहाँ रहा है। पर के कारण से नहीं और पर की अपेक्षा से नहीं और पर को स्पर्शता नहीं।

जीव की अनंत सत्ता न्यारी न्यारी छिति है। कोऊ सत्ता काहूसौं न मिलि एकमेक होइ... आहाहा! एक शरीर में इतने अधिक अनन्त जीव इकट्ठे (हों तो) पिण्ड एकमेक नहीं हो जाते होंगे? सत्ता भिन्न है तो एकमेक कहाँ से हों? सबके उसमें... एक अभव्य जीव हो और एक भव्य हो, लो। एक शरीर में इकट्ठे हों। श्वास, आयुष्य और उनके रजकण-रजकण भिन्न। आहाहा! एक निगोद का जीव निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जाये और एक निगोद में से निकलकर वापस निगोद में जाये। सत्ता भिन्न-भिन्न है। ऐसे अनन्त आत्मायें, उनसे अनन्तगुने परमाणु। जितने पुद्‌गल हैं, उससे अनन्तवें भाग के जीव। जीव की संख्या से अनन्तगुने परमाणु अपनी सत्ता से विराजमान हैं। स्कन्ध में भी परमाणु अपनी सत्ता से रहे हुए हैं। अनन्त रजकणों का दल है।

कोऊ सत्ता काहूसौं न मिलि एकमेक होइ... लो, यह परमाणु रजकण दूसरे के साथ मिलें, ऐसा नहीं, तथापि वहाँ वे परमाणु स्थूलरूप से परिमित हैं। यहाँ सूक्ष्म रहे हुए नहीं हैं और स्थूलरूप से रहा हुआ है, वह अपनी सत्ता से रहा है। स्थूल का निमित्तपना है, इसलिए स्थूलता आयी है, ऐसा नहीं है। यह एक-एक रजकण स्थूलरूप से परिणमा है। सूक्ष्म रहा नहीं, वह परमाणु। एक परमाणु स्थूलरूप से नहीं हो तो दूसरा न रहे, दूसरा न रहे तो अनन्त स्थूलपने है ही नहीं। स्थूल के परिणमन की वह सत्ता स्वयं से है। स्थूल सत्ता के संयोग में आया, इसलिए स्थूल परिणमन है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कोऊ सत्ता काहूसौं न मिलि एकमेक होइ... कभी तीन काल में... भाई! सिद्ध हो वहाँ तो ज्योति में ज्योत मिल गयी। सिद्ध हो, वहाँ भी चबूतरे अलग? सबकी रसोई अलग होगी वहाँ? खाने-पीने का भाव? आहाहा! खाने-पीने का भाव, ऐसा कहते हैं, सब का अलग होगा न? खाने-पीने का अर्थात् अनुभव का भाव सबका अलग ही है। किसी के कारण अनुभव किसी का है नहीं। आहाहा! सिद्ध भगवान हैं, वहाँ अनन्त निगोद है, उसके पेट में—उसके क्षेत्र (प्रदेश) में अनन्त निगोद है। उस प्रत्येक की एक-एक सत्ता अपनी निराली है। आहाहा! इतना तो उसके ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। इतना बड़ा भगवान आत्मा... आत्मा की संख्या अनन्त, उसे ज्ञान की पर्याय जाने, इससे अनन्तगुणे परमाणुओं को जाने, इससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश को जाने।

इतनी बड़ी सत्ता एक समय के ज्ञान की है।

कोऊ सत्ता काहूसौं न मिलि एकमेक होइ... कोई संयोग में तो एकमेक होगा या नहीं? व्यंजनपर्याय हो, तब एकमेक नहीं? उसमें आता है, पंचाध्यायी में। दोनों का पलटा होता है। दो इकट्ठे मिले तो दोनों का पलटा होता है, मूल द्रव्य रहता नहीं। आता है? खबर नहीं। प्रत्येक वस्तु संयोग... इससे हमारे बंसीधरजी कहते हैं न जरा कि वहाँ संयोग हो, तब द्रव्य दूसरेरूप हो गया है। दूसरे का आकार उसमें आ गया है। कुछ है नहीं। तीन काल में पर का आकार इसमें आता नहीं। आहाहा! संयोगी चीज़। विभाव से संयोग हो तो विभाव हो। संयोग में विभाव हो तो संयोग हो। इसलिए अधिक हो तो संयोग हो। ऐसा है नहीं। प्रत्येक द्रव्य अपनी सत्ता से स्थूलरूप से (या) सूक्ष्मरूप से, परन्तु जिस प्रकार से परिणमा है, वह अपनी सत्ता से रहा है। आहाहा! कर्म के कारण से बिगाड़ होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। जीव की अपनी सत्ता से वहाँ बिगाड़ उसकी दशा में होता है। बिगाड़ अर्थात् अशुद्धता, अशुद्धता। दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। अपनी सत्ता निराली... निराली।

यह कहते हैं, देखो, **सबै असहाय...** किसी तत्त्व को किसी तत्त्व की सहायता नहीं। आहाहा! स्वसहायं आता है पंचाध्यायी में। आठवाँ श्लोक। आठवाँ श्लोक पंचाध्यायी। '**स्वसहायं निर्विकल्पश्च**'। लोग पढ़े परन्तु अन्दर बैठना चाहिए न, भाव बैठना चाहिए न। ऐसे के ऐसे अद्धर से हाँक रखे, ऐसा चले कहीं? यह तो वस्तु का स्वभाव उसकी सत्ता में है। उसकी सत्ता के बाहर दूसरी सत्ता में उसका कुछ है नहीं।

सबै असहाय... सबै असहाय... में सिद्ध भी पर से असहाय। धर्मास्ति आगे नहीं है, इसलिए आगे नहीं जाते, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। **सबै असहाय...** लकड़ी ऊँची करनी हो तो अँगुली के बिना ऊँची होगी? इतनी तो इसकी सहायता है या नहीं? यह सहायक है या नहीं? कहे, नहीं। अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपनी सत्ता में है। पर की सहायता उसे है (नहीं)। आहाहा! बाल है, देखो न! सिर है तो बाल रहते हैं न ऊपर? नहीं तो अकेले रहें बाल? यहाँ तो कहते हैं, एक-एक रजकण को दूसरे की सहायता बिल्कुल नहीं। आधार-आधेय की नहीं, कर्ता-कर्म की नहीं। कोई (सहाय) है ही नहीं। आहाहा!

ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। इस प्रकार से बराबर जाने एक समय की पर्याय में और फिर अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य। ऐसे द्रव्य की दृष्टि करे, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। मार्ग ऐसा है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। वह कहीं भगवान ने बनायी नहीं। भगवान ने तो जानी, वैसी कही है। भगवान ने कुछ बनायी नहीं। भगवान हो तो यह द्रव्य हुआ, लोक हुआ, ऐसा है नहीं। यह तो लोकालोक ऐसा का ऐसा है। अभी कोई पूछता था। परन्तु यह बना कहाँ से? ऐसा हो कहाँ से? ले, ठीक। कोई पूछता था न जयपुर में? कोई दिगम्बर। अरे! कहा, अभी यहाँ तक तुमको शंका? ऐसे बाहर में धर्मी नाम धरावे, बड़े पढ़े हुए। परन्तु यह कोई वस्तु बिना हुआ कहाँ से यह? कहो, यह सब लोकालोक हुआ कहाँ से? परन्तु हुआ है कहाँ? है। अपनी सत्ता से प्रत्येक पदार्थ है।

सबै असहाय यौं अनादिहीकी थिति है,... देखो, यह अनादि की स्थिति मर्यादा है। अनादि की यह मर्यादा है। आहाहा! किसी परमाणु के कारण, किसी आत्मा के कारण दूसरे आत्मा में कुछ भी सहाय हो तो होता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। लिखा है इसमें। **छहों द्रव्यों की सत्ताएँ जुदी-जुदी हैं, कोई सत्ता किसी से मिलती नहीं और न एकमेक होती है। निश्चयनय में कोई किसी के आश्रित नहीं।** वस्तुस्थिति से कोई किसी के आश्रय से नहीं। **सब स्वाधीन है।** सब सिद्ध स्वाधीन, निगोद का जीव स्वाधीन, परमाणु स्वाधीन। कर्मरूप से परिणमना परमाणु को, वह आत्मा ने राग किया, इसलिए परिणमना पड़ता है, ऐसा नहीं है। और कर्म का उदय आया, वह सत्ता जड़ की है। इसलिए चैतन्य को रागपने परिणमना पड़े, दोष पड़े तो, ऐसा है नहीं। कोई किसी सत्ता को किसी की सहायता नहीं। भाई! कर्म बिना विकार नहीं होता और विकार बिना कर्म के रजकण कर्मरूप नहीं परिणमते।

—एक बार यह प्रश्न हुआ था। (संवत्) २००६ के वर्ष में राजकोट। कहो, आत्मा राग न करे तो कर्म के परमाणु परिणमे? इतनी तो पराधीनता है या नहीं? क्या कहा यह? यह राग करे तो कर्म परमाणुपने परिणमे, राग न करे तो? अरेरे! कहीं वस्तु की स्थिति की खबर नहीं होती। कर्मपने परमाणु की सत्ता परिणमती है, वह भी राग की सहायता बिना अपने स्वभाव से परिणमती है। आहाहा! और आत्मा भी रागादिरूप परिणमता है, वह परद्रव्य की सहायता, कर्म के उदय की सहायता बिना परिणमता है।

आहाहा! कर्म बिना परिणमता हो तो सिद्ध क्यों विकारपने नहीं होते ? कर्म नहीं इसलिए (नहीं होते)। आहाहा! ऐसे के ऐसे (अज्ञानी भ्रम में पड़े हैं)।

तीनों सत्ता का तत्त्व 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' है। नयी अवस्था उपजे, पुरानी जाये, ध्रुव रहना—यह स्वयं अपने से है। पर का कुछ है नहीं। आहाहा! लोगों को भी सुहाता नहीं। कुछ न कुछ, कुछ चाहिए पर, कुछ चाहिए पर में, थोड़ी तो सहायता-सहारा हो। पुस्तक उठाकर रखनी हो तो थोड़ी सी तो सहायता चाहिए या नहीं ? अँगुली की सहायता बिना किस प्रकार से यह रहेगी ? लो। और यह इसके बिना है कि पुस्तक रहेगी ? किसने रखी है ? कहाँ रखी है ? उसका रजकण उससे वहाँ रहा हुआ है। कहो, किसी के अस्तित्व में.... किसी के अस्तित्व में किसी के अस्तित्व की सहायता है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु की स्थिति अभी व्यवहार है, वह बैठती नहीं। यह तो पर का व्यवहार है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा... इसमें विवाद उठाया। उसमें आया है जैनगजट में। जैनसन्देशवाले ने कहा है कि पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। कहे, नहीं, पर्यायबुद्धि मिथ्या हो तो यह तत्त्वार्थश्रद्धान में संवर-निर्जरा और मोक्ष की श्रद्धा को समकित कहा है। यह बड़ा विवाद सब। जैन गजट में तो यही सब बातें आती हैं। आहाहा! एक समय के अंश की बुद्धि, उसे पर्यायबुद्धि कहते हैं। पूरा त्रिकाल ज्ञायकरूप द्रव्यदृष्टि होने पर पर्याय है, उसका ज्ञान होता है। द्रव्यदृष्टि होने पर पर्याय है, उसका ज्ञान होता है, परन्तु इससे पर्याय की अंश दृष्टि में रहे, रुके, वह तो मिथ्यादृष्टि है। 'पर्यायमूढा परसमया।' पर्याय के अंश में मूढ़ हुआ, (वह तो) परद्रव्य को अपना मानता है। पूरे द्रव्य को मानता (नहीं)। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल निकाली, बस, ऐसी ही भूल निकालते हैं। उसमें आता है न ? यह सब श्वेताम्बर की शैली से दिया है, जहाँ हो वहाँ। आहाहा! अरे भगवान! ऐसे में ऐसा विवाद नहीं होता, बापू!

सत्ता, ऐसा कहना; अस्तित्व कहना और उस अस्तित्व को पर की सहायता हो

तो वह अस्तिपने हो, यह कैसा अस्तित्व होगा ? अरे ! अभी तो पर्याय का अस्तित्व स्वतन्त्र स्वीकारे नहीं, उसे द्रव्य का अस्तित्व स्वतन्त्र पर्यायरहित है, (ऐसा कैसे बैठे) ? पर्याय है, इसलिए द्रव्य है—ऐसा नहीं। आहाहा ! उत्पाद, उत्पाद के कारण से; व्यय, व्यय के कारण से; ध्रुव, ध्रुव के कारण से। तीन बोल हैं। प्रवचनसार। आहाहा !

इसके बिना एक समय का भगवान पूर्ण सत्तावाला सामर्थ्य, जिसके क्षेत्र में अनन्त जीव सत्ता में रहे होने पर भी, वह सत्ता मेरी नहीं और मेरी पूर्ण सत्ता में पर्याय का प्रवेश नहीं। वह हो, हो, उसके बिना बात कौन करे ? जाने कौन ? वह अस्तित्व एक समय का तत्त्व, त्रिकाल तत्त्व को माने, तब उसने तत्त्व को ऐसा जाना कहलाता है। कहो, समझ में आया ? बड़ी चर्चा चली। यह दोपहर में सब पढ़ा। अपने सवेरे आया था न ? पर्यायबुद्धि ऐसी होती है। न माने तो मिथ्यादृष्टि है। अरे, पर्याय... के ऊपर लेख आयेगा न वह जयसेन आचार्य का। भाई का डाला है—टोडरमलजी का डाला है।

ऐसा कहे, पर्याय को जाना अर्थात् पर्याय है, ऐसा जानकर वह द्रव्य की श्रद्धा करे तो सच्ची कहलाये। कथंचित् पर्याय भी है। पर्याय नहीं, ऐसा मानकर द्रव्य की सत्ता का स्वीकार करे, वह तो अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। परन्तु पर्याय स्वीकारती है, वह तो पर्याय है। यह तो बात आयी नहीं ? आहाहा! कठिन काम... एक ओर पर्याय को परद्रव्य कहना और फिर परद्रव्य से स्वद्रव्य ज्ञात हो, ऐसा कहना। आहाहा ! समझ में आया ? पर्याय है वह, (नियमसार) ५०वीं गाथा के हिसाब से तो परद्रव्य कहा है। तब ज्ञात होता है, वह कहीं ध्रुव से ध्रुव ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग है। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। कहो, परद्रव्य से स्वद्रव्य ज्ञात हो, ऐसा आया या नहीं ? तथापि परद्रव्य परद्रव्य में रहकर स्वद्रव्य की श्रद्धा करता है। बहुत बात सूक्ष्म बात है ! वस्तुस्थिति ऐसी है, हों ! इस प्रकार से न हो तो किसी प्रकार से वस्तु के भाव का स्वरूप है, वह सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ?

हेयवाले तत्त्व से उपादेयतत्त्व ज्ञात होता है। ऐ देवानुप्रिया ! पर्याय हेय है, परन्तु उससे—हेय से द्रव्य ज्ञात होता है, लो। ...... इसमें जरा आया है न नया-नया लेख। अरे, भगवान ! शान्ति से भाई ! यह वाद और विवाद का विषय नहीं होता। आहाहा ! यह तो चौरासी (लाख योनियों) में से उभरने के अवसर के काल में यह भाव नहीं होते।

वाद में रुकना, वह भी अन्दर क्लेश है। आहाहा! रागी प्राणी सत् को स्थापित करे तो वह राग है। असत् को डत्थापित करे तो जरा द्वेष का अंश है। यह गजब बात है। राग है सही न। राग बिना के परमात्मा को तो कुछ है नहीं। वह तो वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। आहाहा!

ऐसा कोई जीव का स्वभाव है। असहाय, ऐसा कहा न अपने यहाँ। **सबै असहाय... कोई किसी के आश्रित नहीं, सब स्वाधीन हैं, ऐसा अनादिकाल से चला आ रहा है,...** लो। ऐसा अनादि से चला आता है। और वर्तमान है, ऐसा कहाँ कुछ है? हो जाने था एक ही क्या कहा? उपादान सों काज... नहीं आया? बनारसीदास। गुरु उपदेश बिन... न चले पवन बिना जहाज नहीं चलते। पवन बिना जहाज नहीं चलते, लो। आया या नहीं वहाँ? शिष्य का प्रश्न है, यह सच्चा है और उत्तर खोटा है, लो। और ऐसा कहे। यह प्रश्न रूप से... अजितकुमार ऐसा कहता था। बेचारे चले गये। अरे! ऐसा अवतार! ऐसा कहे कि निमित्त की दलील है, वह बराबर है। उपादान की उटपटांग दलील है। अब गजब किया!

अरेरे! अभी तो शास्त्र के व्यावहारिक भाव के अर्थ करने की भी जहाँ दिक्कत। आहाहा! उसे द्रव्यदृष्टि में जाना, ऐसी अटपटी बातें सुनकर। आहाहा! पर्याय, वह हेय है, परभाव है, परद्रव्य है और काम हो तो सब परद्रव्य में होता है। ओय...! ऐई चेतनजी! बात आवे तो सब आवे तो सही न! वस्तुस्थिति ऐसी है। वास्तव में तो उसकी—पर्याय की सत्ता भिन्न है, द्रव्य की सत्ता भिन्न है। यहाँ तो परसत्ता भिन्न है, इतना। यह भी न बैठे, उसे यह बैठे किस प्रकार? आहाहा! एक समय की पर्याय भी स्वत:सिद्ध है। द्रव्य के कारण से है, ऐसा भी नहीं।

द्रव्य को रहने के लिये पर्याय की सहायता की आवश्यकता नहीं।

मुमुक्षु : आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय का अर्थ? आश्रय अर्थात् उसका लक्ष्य, इतना। ऐसे जो लक्ष्य है, वह ऐसे लक्ष्य करना, वह आश्रय। सेवना करने का अर्थ आश्रय करना। आश्रय करने का अर्थ? सेवना है न, सेवनयोग्य सेवना। सेवा का अर्थ ही आश्रय करना। देव को सेवे स्वयं को अर्थात् क्या? अपना आश्रय करे। आहाहा! आँखें मींच

जायेंगी बापू! आहाहा! ....के भव हो जायेंगे। यह तत्त्व यदि अन्दर न बैठा, अन्तर समझण नहीं और उल्टा घूमा, वह परद्रव्य की सेवा करनेवाला है। **ऐसा अनादिकाल से चला आ रहा है**। लो, ठीक।

छह द्रव्य ही से जगत की उत्पत्ति है। छह द्रव्य से है, ऐसा। **छह द्रव्य ही से जगत की उत्पत्ति है**। यह स्वयं बनारसीदास ने डाला है।

★ ★ ★

काव्य - २२

छह द्रव्य ही से जगत की उत्पत्ति है

(सवैया इकतीसा)

एई छहौं दर्व इनहीकौ है जगतजाल,
तामैं पांच जड़ एक चेतन सुजान है।
काहूकी अनंत सत्ता काहूसौं न मिलै कोइ,
एक एक सत्तामैं अनंत गुन गान है।।
एक एक सत्तामैं अनंत परजाइ फिरै,
एकमैं अनेक इहि भांति परवान है।
यहै स्यादवाद यहै संतनिकी मरजाद,
यहै सुख पोख यह मोखकौ निदान है।।२२।।

शब्दार्थ:-जगतजाल=संसार। सुजान=ज्ञानमय। संतनकी=सत्पुरुषों की। मरजाद= सीमा। पोख=पुष्टि करनेवाला। निदान=कारण।

अर्थ:-ऊपर कहे हुए ही छह द्रव्य हैं, इन्हीं से जगत उत्पन्न है। इन छह द्रव्यों में पाँच अचेतन हैं, एक चेतन द्रव्य ज्ञानमय है। किसी की अनन्त सत्ता किसी से किसी मिलती नहीं है। प्रत्येक सत्ता में अनन्त गुण समूह हैं, और अनन्त अवस्थाएँ हैं, इस प्रकार एक में अनेक जानना। यही स्याद्वाद है, यही सत्पुरुषों का अखण्डित कथन है, यही आनन्दवर्धक है और यही ज्ञान मोक्ष का कारण है।।२२।।

काव्य-२२ पर प्रवचन

एई छहों दर्व इनहीकौ है जगतजाल,
तामैं पांच जड़ एक चेतन सुजान है,
काहूकी अनंत सत्ता काहूसों न मिलै कोइ,

लो, आहाहा! यह तो ऐसा हो तो ऐसा हो और ऐसा हो तो ऐसा हो। अरे, एक की पर्याय की सत्ता हो तो दूसरे की पर्याय की सत्ता हो, यह कहाँ से आया? आहाहा! कर्म का उदय हो तो... उदय है, वह परसत्ता है, तो वह इस आत्मा में विकार की सत्ता हो। इसका अर्थ क्या? आहाहा! दो द्रव्य की एकताबुद्धि, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! भारी काम परन्तु कठिन बहुत। इसमें उसे अन्दर में उतरना अभी तो... अभी तो धारणा में न बैठे, उसे अन्तर में अनुभव में बैठना... आहाहा! माता-पिता, परिवार सब आज्ञाकारी परिवार इकट्ठा हुआ हो, लो। यह छोड़कर जाना पड़े भाई को एक क्षण में।

(संवत्) १९८२ में एक बात थी। ८२ में वहाँ, नहीं? क्या कहलाता है? दादभावाला। चुनीभाई का इस ओर घर और चुनीभाई की उस ओर भाई थे। वे नहीं, वह दूसरा था। उसका बाहर घर है। यह तो उसका घर ... के अन्दर है। दादभावाला नहीं। उसे यह सब हुआ है यह सब। परिवार सब इकट्ठा हुआ। निश्चित अब निपट जायेगा। ... ने महाराज को बुलाओ। चुनीभाई है न उनके उस कोने में वह रहता था। बहुत वर्ष हो गये। (संवत्) ८२। १७ और २७—४४ (वर्ष) हो गये। पूरा परिवार इकट्ठा हुआ... कोई है? किसकी सत्ता, किसकी सत्ता में प्रवेश करे? आहाहा! अशरणं शरण। अशरणं शरण। पर का शरण कहाँ है? भाई!

भरे घर में से... फिर महिलायें रोवे। भरे घर में से भाई! निकलना कैसे सुहाया? परन्तु किसे सुहाया? ऐसा बोलते हैं या नहीं? सुना होगा। महिलायें रोती हों न उसमें। बोलती है। आहाहा! बापू! भरा घर तो तेरा आत्मा आनन्दघन है। उसमें से निकलना तुझे कैसे सुहाया? भाई! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु को पर की कोई सहायता—मदद की कुछ आवश्यकता नहीं। ले, एक ओर कहना कि गति करने में धर्मास्ति की सहायता और यहाँ कहते हैं कि नहीं सहायता। ऐई! वह तो निमित्त कौन है, उसका ज्ञान कराने

के लिये बात है। आहाहा! कठिन काम, भाई!

काहूकी अनंत सत्ता काहूसौं न मिले कोइ, एक एक सत्ता में अनन्त गुन गान है... लो। आहाहा! एक-एक सत्ता में अनन्त गुण हैं। **एक एक सत्तामैं अनंत परजाइ फिरै...** एक रजकण की सत्ता या आत्मा की सत्ता अनन्त गुण और अनन्त पर्याय बदले। फरे अर्थात् बदले। वह स्वयं के कारण से बदलती है। पर के कारण से फिरे और बदले नहीं। आहाहा! **परजाइ फिरै,** लो। **एक एक सत्तामैं अनंत परजाइ फिरै...** ऐसा लिखा है। पर्याय फिरे, परन्तु वह अपनी सत्ता से बदलती है। पर की सत्ता के कारण बदलती है, ऐसा नहीं है।

एक में अनेक इहि भांति परवान है... वस्तु एक और गुण और पर्याय अनेक—इस प्रकार वस्तु की सत्ता विराजमान है। **यही स्याद्वाद है।** लिखा है न? **यही सत्पुरुषों का अखण्डित कथन है।** अनादि सनातन सत्पुरुष धर्मात्मा सर्वज्ञ और सन्त, उनका यह कथन है। अज्ञानियों के कथन सुनकर उसमें (वीतरागवाणी में) सन्देह करना नहीं। एक ही आत्मा है और व्यापक ही है और ढींकणा ही है और अनन्त आत्मा नहीं और अनन्त रजकण नहीं होते और... सन्तबाल कहते हैं न उनके वेश में रहकर। हिन्दुस्तान का वास्तविक अद्वैत धर्म था। एक ही है, दूसरे का निषेध करनेवाला है। अररर! मुँह पर मुँहपत्ति और कांख में रजोळा। जैन के चिह्न और ऐसा कहना।

मुमुक्षु : वाड़ बेल को खाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाड बेल के खाये, दामोदार सेठ कहते थे। ऐसा वेश .... गृहस्थ व्यक्ति न बड़े। दस लाख (की पूँजी) और चालीस हजार की आमदनी। तब ६०-७० वर्ष पहले कब थी? ऐई! तुम्हारे वृद्ध के पास कहाँ है? पैंतीस हजार रुपये थे वहाँ। नारणसेठ के पास। कहलाते बड़े।.... कहते कि नारणसेठ करोड़पति ... क्योंकि गाँव में पचास-पचास, पच्चीस-पच्चीस कर्ज दे और कितने ही गाँव में फैलाव हो, इसलिए ओहोहो! करोड़ किसे कहा जाता है, उसकी खबर नहीं होती। दूसरे साधारण व्यक्ति को... उसके पिता के पिता थे। पैंतीस हजार कहते... आमदनी। आमदनी क्या? पूँजी। हमने देखा नहीं। (संवत्) १९७० के पहले। वृद्धा थी और ऐसा कहे, ओहोहो! कितना फैलारा! परन्तु कितना फैलारा (उसकी कीमत क्या?)

यहाँ कहते हैं कि कोई किसी को कुछ नहीं। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य का फैलाव गुण और पर्याय अपनी सत्ता में है। परसत्ता के कारण कुछ नहीं। आहाहा! **एकमैं अनेक यह भांति परवान है...** वस्तु एक तथा गुण और पर्याय अनन्त। एक—अनेक, दोनों प्रमाण वस्तु यथार्थ है। **यहै स्यादवाद यहै संतनिकी मरजाद...** सन्तों की यह मर्यादा है। आहाहा! **यहै संतनिकी मरजाद, यहैं सुख पोख...** सुख के पोषण का कारण और मोक्ष का कारण यह है। प्रत्येक सत्ता अपनी भिन्न-भिन्न, किसी की सहायता बिना। आहाहा! (सन्तों की) ... मर्यादा है। साधु सन्तों की यह मर्यादा और स्थिति है। और **यहैं सुख पोख,...** है न? यह आनन्द का वर्धक है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भ्रमणा अभी, एक आत्मा और उसमें भारी भ्रमणा बहुतों की घुस गयी। जैन में भी घुस गयी है। आहाहा!

अरे! ऐसी चीज़ स्वतन्त्र वस्तु—चीज़। वह अनन्त है, उसे जानने की पर्याय कितनी बड़ी है! इतना बड़ा तो एक पर्याय में आत्मा है। उसे खण्ड-खण्ड मानना, वह बड़ा अपराध है। आहाहा! समझ में आया? यह मोक्ष का निधान तो यह है। प्रत्येक सत्ता भिन्न-भिन्न, मेरी सत्ता भी भिन्न, मेरे गुण-पर्याय भी पर से भिन्न। मेरे कारण से गुण है और पर्याय बदलती है। गुण रहते हैं और पर्याय बदलती है। ऐसा दृष्टि में लेना। उसे पर्यायदृष्टि छूटकर द्रव्यदृष्टि होती है। यह उसे सम्यक्त्व होता है और उसे सुख का साधन होकर मोक्ष होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०८, आषाढ़ कृष्ण ११, रविवार, दिनांक १८-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य - २३, २४

समयसार नाटक, मोक्षद्वार। २३वाँ पद है न! २३वाँ है न? क्या कहना चाहते हैं इसमें? कि यह आत्मा एक वस्तु—सत्ता है। सत्ता को सिद्ध करते हैं। सत्ता अर्थात् अस्तित्व। जो है, था और रहेगा—ऐसी आत्मा की सत्ता अनादि-अनन्त ध्रुवसत्ता है। उस ध्रुवसत्ता का साधन करना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। भगवान आत्मा चैतन्य सत्ता अस्तिपने पदार्थ है। वह ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर अनादि-अनन्त तत्त्व है। जिसे धर्म करना हो और सुखी होना हो, उसे स्वसत्ता को साधना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

★ ★ ★

काव्य - २३

पुनः (सवैया इकतीसा)

साधी दधि मंथमैं अराधी रस पंथनिमैं,
जहां तहां ग्रंथनिमैं सत्ताहीकौ सोर है।
ग्यान भान सत्तामैं सुधा निधान सत्ताहीमैं,
सत्ताकी दुरनि सांझ सत्ता मुख भोर है।।
सत्ताकौ सरूप मोख सत्ता भूल यहै दोष,
सत्ताके उलंघे धूम धाम चहूं वोर है।
सत्ताकी समाधिमैं बिराजि रहै सोई साहू,
सत्ताते निकसि और गहै सोई चोर है।।२३।।

शब्दार्थः-दधि=दहीं। मंथमैं=विलोवने में। रस पंथ=रस का उपाय। सोर (शोर) =आन्दोलन। सत्ता=वस्तु का अस्तित्व, मौजूदगी। धूम धाम चहुं ओर=चतुर्गति भ्रमण। समाधि=अनुभव। साहु=भला आदमी। गहै=ग्रहण करे।

अर्थः-दहीं के मथने में घी की सत्ता साधी जाती है, औषधियों की हिकमत में रस की सत्ता है, शास्त्रों में जहाँ-तहाँ सत्ता ही का कथन है, ज्ञान का सूर्य सत्ता में है, अमृत का पुंज सत्ता में है, सत्ता का छुपाना सांझ[1] के अन्धकार के समान है, और सत्ता को प्रधान करना सबेरे[2] का सूर्य उदय करना है। सत्ता का स्वरूप ही मोक्ष है, सत्ता का भूलना ही जन्म-मरण आदि दोषरूप संसार है, अपनी आत्मसत्ता का उल्लंघन करने से चतुर्गति में भटकना पड़ता है। जो आत्मसत्ता के अनुभव में विराजमान है, वही भला आदमी है और जो आत्मसत्ता को छोड़कर अन्य की सत्ता को ग्रहण करता है, वही चोर है।।२३।।

काव्य-२३ पर प्रवचन

आहाहा! कहते हैं, दही के मंथन में घी की सत्ता साध जाती है। दही का मंथन करे, तब घी की सत्ता सध जाती है। उसमें से घी हो, वह बाहर आता है। घी की सत्ता दही में है, ऐसा कहते हैं। घी का अस्तित्व दही में है। है तो साधकर बाहर घी आता है। **दही के मथने में घी की सत्ता साधी जाती है**। पहले सब दृष्टान्त देते हैं। **औषधियों की हिकमत में रस की सत्ता है**। यह औषधियाँ निकलती हैं न? उसमें शक्ति हो उसमें से (निकले न)।

जैसे कि अभ्रक। अभ्रक में... अभ्रक में हजार कोटि होने की शक्ति है। सत्ता है उसमें। वह अभ्रक, नहीं? क्षय (टीबी) में देते हैं न यह। अभ्रक... अभ्रक... एकदम लाल हो। हजार कोटि अग्नि दे ऐसे। एक बार, दो बार, तीन बार, चार... हजार बार। तब हजार कोटि अभ्रक होती है। परन्तु वह सत्ता में थी, वह होती है, ऐसा कहते हैं। उसका अस्तित्व अन्दर है। कंकड़ को सेंके और उसे हजार बार कोटि दे तो कंकड़ राख हो जाये। उसमें वह सत्ता है नहीं।

ऐसी सत्ता अर्थात् अस्तित्व। जैसे मोर की पिच्छी में... मोर की पिच्छी होती है न! उसमें लाल-लाल दिखता है, उसमें तांबापने का अस्तित्व है। उसमें अस्तित्व है

१-२. सांझ के अन्धकार से भाव यह दिखता है कि अज्ञान का अन्धकार बढ़ता जावे। प्रभात के सूर्योदय से यह भाव दिखता है कि ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जावे।

उसमें से निकालकर ताँबा की भस्म होती है। समझ में आया? यह मोर... मोर की पिच्छी होती है न उसमें ताँबा है। उसमें से ताँबा का वैभव निकाले। उसमें सत्ता थी तो निकालते हैं और उसकी भस्म बनाकर यह टीबीवाले को दे। साता का उदय (हो तो) मिटे नहीं वरना तो मर जाये। उसमें कुछ... यह तो एक सत्ता को सिद्ध करना है। उसमें अस्तित्व था तो बाहर आया। **औषधियों की हिकमत में रस की सत्ता है।** देखो, यह सब निकालते हैं न, देखो न! तुम्हारे यह क्या कहलाता है? प्लास्टिक का सब करते हैं न? वह कहीं कुछ होगा और कहीं वृक्ष-बृक्ष में कुछ ऐसा रस का... रस, उसमें से सब निकालते हैं।

यह बलुभाई करते हैं न भाई, नहीं? दवायें नहीं, दवायें? वैद्य। दवा डॉक्टर राजकोटवाला। बड़ी दवायें घर में बनाये। बड़ा दस-बीस लाख का है न? बलुभाई दस लाख अपने और दस लाख सरकार ने दिये। बीस लाख का है वहाँ, नहीं? गये थे न, साथ में रामजीभाई थे। वहाँ बोरीवली नहीं, कांदीवली न? कांदीवली में है जंगल में। गये थे। सब औषधि यह जो विलायती कहते हैं, वह सब आप स्वयं बनाते हैं। घर में बीस लाख रुपये का बड़ा एक है कांदीवली में। भाई का कांदीवली में था न सुमनभाई के रहने का स्थान, नहीं? दूसरा नहीं?

मुमुक्षु : चैंबूर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चैंबूर। परन्तु वहाँ नजदीक था.... वहाँ गये थे न आहार करने।

यहाँ तो कहना है कि कोई भी रस बाहर आता है तो उसकी शक्ति में उस रस की सत्ता थी। अस्तित्व था तो बाहर आता है। **शास्त्रों में जहाँ-तहाँ सत्ता ही का कथन है।** भगवान की वाणी में जहाँ-तहाँ अस्तित्व... अस्तित्व... अस्तित्व... जड़ का जड़रूप से अस्तित्व, चैतन्य का चेतनरूप से अस्तित्व, धर्मास्तिकाय का धर्मास्तिकायरूप से अस्तित्व है, ऐसा कहते हैं। छहों द्रव्यों का अस्तित्व स्वयं से है, पर से कुछ है नहीं, ऐसा उसका अस्तित्व है।

ज्ञान का सूर्य सत्ता में है... अब आया। भगवान आत्मा के अस्तित्व में ज्ञानसूर्य

है। ज्ञान का प्रकाश सत्ता में पड़ा है पूरा। तो केवलज्ञान आदि प्रगट होते हैं, ऐसा कहते हैं। सत्ता में से बाहर आता है। कोई क्रियाकाण्ड करे (तो) केवल (ज्ञान) हो या मोक्षमार्ग हो, ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। मोक्ष अधिकार है न! आहाहा! यह अस्तित्व में—चैतन्य के अस्तित्व में अन्दर ज्ञानसूर्य सत्ता में है। वह चैतन्य के प्रकाश का नूर... परन्तु किसे खबर (है कि) उसमें भगवान आत्मा कहाँ होगा? बाहर में शोधने जाये, खोजने जाये, मर गया अन्दर मरकर। अन्दर में चैतन्यसूर्य है, कहते हैं। तेरा ज्ञान का अस्तित्व, ज्ञानरूपी सूर्य चैतन्य के असंख्य प्रदेश में सत्तारूप से है, अस्तिरूप से है। आहाहा! उसमें अन्तर एकाग्र होकर ज्ञान की दशा, धर्म की दशा प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान का सूर्य सत्ता में है... प्रभु अपने अस्तित्व में ही ज्ञान भरा है। वह ज्ञान कहीं बाहर से आता नहीं। यह शास्त्र के पढ़ने से ज्ञान नहीं आता, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। ऐई! ज्ञान सत्ता में है। उसमें एकाग्र हो तो उसमें से ज्ञान आता है। ज्ञान कहीं सुनने से मिलता नहीं, देव-गुरु-शास्त्र से ज्ञान मिलता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ जो हुए, सर्वज्ञ सूर्य हुए पर्याय में, वे कहाँ से हुए? कहते हैं। अन्दर चैतन्य की अस्ति सूर्य चैतन्य है, उसमें से हुए हैं। आहाहा! मोक्ष है न? केवलज्ञान अर्थात् मोक्ष। मोक्ष कहाँ से हुआ? किसके आश्रय से हुआ? कि अपनी सत्ता में सर्वज्ञस्वभाव सत्ता में अस्तिरूप से है, है और है। आहाहा!

यह सत्ता का सूर्य भगवान आत्मा, चैतन्य सत्ता का, उसके ऊपर नजर करने से, एकाग्र होने से मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है, उसमें पूर्ण एकाग्र होने से मोक्ष होता है। यह मोक्ष और मोक्ष का मार्ग कोई बाहर निमित्त से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? कठिन बात है। कोई ऐसा माने कि अब सुनने—सुनते हमको सच्चा ज्ञान हो जायेगा। कोई ऐसा माने कि गुरुदेव की कृपा से अपने को ज्ञान हो जायेगा। वह तो सब व्यवहार के कथन हैं। सत्ता (वहाँ) नहीं। सत्ता यहाँ है, इसमें से आता है, ऐसा कहते हैं। यह बात सिद्ध करने के लिये तो यह बात ली है।

तेरा चैतन्य सत्ता सूर्य तेरे अस्तित्व में है। उसके ऊपर नजर करने से, ऐसे ध्रुव तत्त्व को पकड़ने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, पूर्ण रीति से एकाग्र होने पर केवल

(ज्ञान) होता है। उस सत्ता में अस्तिरूप से पूर्ण भरपूर भगवान है। आहाहा! बात कैसे बैठे? समझ में आया? उसके अस्तित्व में ज्ञान का अस्तित्व पूर्ण भरा है तुझमें। उस सत्ता की शोर सर्वत्र है। ऐसा कहते हैं। है न, देखो न!

मुमुक्षु : सत्ता का ही शोर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शोर है। आहाहा! लो! **ग्रंथनिमैं सत्ताहीकौ सोर है।** आवाज यह है, ऐसा कहते हैं। सत्ता है... है... है... है... ऊपर (अर्थ) किया है, आन्दोलन। सत्ता का ही जहाँ हो वहाँ आन्दोलन है। कहो, समझ में आया?

यह भगवान आत्मा, इसके अस्तित्व में चैतन्यसूर्य पूर्ण भरपूर है, यह उसका अस्तित्व है। सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। उसकी सत्ता में सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। आहाहा! यह रागरूप, द्वेषरूप, पुण्यरूप तो नहीं, परन्तु यह अल्पज्ञ पर्यायरूप भी नहीं। आहाहा! ऐसी सत्ता में रहा हुआ भगवान ज्ञानसूर्य है। वह चैतन्य के नूर का पूर प्रभु है। वह परिपूर्ण प्रभु आत्मा है। उसमें अन्दर एकाग्र होने से, स्वसन्मुख की सत्ता में देखने से, अपने स्वभाव का अस्तित्व, उसके सन्मुख देखने से उसे मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन वहाँ से प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। कोई बाहर से होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अन्दर से ऐसा माने कि यह मुझे मुझमें से प्रगट होगा और बाहर से ऐसा माने कि यह तो कुछ भी शास्त्र पढ़ने से मिलेगा, सीखने से, रटने से, सुनने से (मिलेगा) तो आत्मा में चैतन्यसूर्य परिपूर्ण है, उसकी इसे श्रद्धा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जिसमें हो, उसमें से आवे। पीपर का दृष्टान्त देते हैं न छोटी पीपर। चौंसठ पहरी चरपराई—तीखाश उसमें सत्तारूप से है।

मुमुक्षु : प्राप्त की प्राप्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राप्त की प्राप्ति। है, वह आती है बाहर। छोटी पीपर छोटी, रंग में काली, कद में छोटी, परन्तु अन्दर चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया अर्थात् सोलह आना। सत्ता में, उसकी सत्ता में सोलह आने चरपरा रस तीखा पड़ा है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा में—उसकी सत्ता में—उसके अस्तित्व में पूर्ण ज्ञान

का सूर्य स्वयं भरपूर है। आहाहा! उस सत्ता का साधन अन्तर में एकाग्र हो, तब उसका साधन होकर मोक्ष का साधक होता है। कहो, समझ में आया? अरे, गजब बातें यह! वीतराग का मार्ग क्या है, यह लोगों को मिला नहीं। दूसरे प्रकार से कहा गया है। है, उससे उल्टे प्रकार से कहा गया है। भगवान तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं, साक्षात् समवसरण में जाये तो भी (वे कहते हैं) कि हमारे सन्मुख देखकर हमको सुनने से तुझे ज्ञान नहीं होगा, ले। ऐसा कहे। आहाहा! क्योंकि ज्ञानस्वभाव से सूर्य से भरपूर तू है। तेरे सन्मुख देख तो तुझे ज्ञान होगा। हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे तो।

मुमुक्षु : बहुत गम्भीर बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें गम्भीर कहाँ?

जिसमें है, उसमें देख। सोने की खान हो, जहाँ सोने की खान हो, वहाँ खोदे तो सोना निकले या लोहे की खान में खोदे तो सोना निकले? सोने की खान में सोने की सत्ता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... यह (शरीर) तो मिट्टी धूल जड़ है। यह कहीं आत्मा नहीं। यह तो हड्डियाँ और चमड़ी है, धूल की—अजीव की, वह भी अजीव की सत्ता से अजीव सत्ता है। उसके अस्तिरूप से है, वह अजीव। आत्मा के कारण उसका अस्तित्व है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह बोला जाये—चला जाये, वह सब क्रियायें आत्मा के कारण से हैं, ऐसा नहीं है। जड़ की सत्ता में वह शक्ति है, इसलिए उसके कारण हिलना-चलना जड़ के कारण होता है। आहाहा! समझ में आया?

अमृत का पुंज सत्ता में है... लो। आहाहा! कहते हैं भगवान! तू सुन न, प्रभु! अमृत अतीन्द्रिय आनन्द का सुख, वह सत्ता में है, तेरी सत्ता में है। अतीन्द्रिय आनन्द का सुख, वह तेरी सत्ता—तेरे अस्तित्व में है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द का सुख बाहर से खोजने जाये (तो) मिले, ऐसा नहीं है, क्योंकि बाहर में है नहीं। यह दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा के विकल्प में भी आनन्द नहीं, ऐसा कहते हैं। आनन्द तो तेरी सत्ता में है। आहाहा! ऐसे तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ इन्द्रों के समक्ष में ऐसा कहते थे। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **अमृत का पुंज सत्ता में है...** वह तो अमृत का समुद्र है। अतीन्द्रिय

आनन्द का जो आंशिक स्वाद आता है, वह सब अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति पूरा आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यक्‌श्रद्धा और ज्ञान होने पर, जो सम्यग्दर्शन में... जो मिथ्यादर्शन में अनन्त-अनन्त दुःख था। चाहे तो राग हो शुभ या अशुभ, परन्तु वह दुःख है, भट्टी है। आहाहा! भगवान की भक्ति और भगवान का स्मरण ऐसा शुभराग भी कषाय की भट्टी है। 'राग आग दहे सदा' आता है न छहढाला में। 'राग आग दहे सदा।' कषाय की भट्टी है भाई! आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अग्नि है, कषाय है। वह तेरी सत्ता में नहीं। प्रभु का मार्ग ऐसा है। दुनिया को सुनने को मिला नहीं और कहीं न कहीं बेचारे भटककर जिन्दगी पूरी करे पशु की भाँति।

देखो न, यह बेचारे ढोर को दुष्काल में... छप्पनिया के दुष्काल में गायें देखी थीं छप्पनिया में (संवत् १९५६ में)। तब दस वर्ष की उम्र थी। तब तो बहुत कुकर्म वर्तता था न! गायें पचास-पचास गायें हों, खड़ी-खड़ी रोती थीं। ऐसे रोवे आँसू। पाँच-पाँच छह-छह दिन तक घास का तिनका नहीं। ढोर और गाय... पूछे वह... हमारे ग्वाले बहुत। यहाँ अपने रबारी है। वहाँ ग्वाले। तुम्हारे ग्वाले, नहीं? ऐसा खड़ा हो बेचारा ग्वाल, हों गायें २५-५० और कम्बल हो, गाय के ऊपर डालकर रोता हो। गायें रोती हों। रोज ऐसे... छह-छह दिन में घास का तिनका नहीं। परन्तु था नहीं वहाँ। बांटा हुआ था। वह खा गये पहले तुरन्त। बांटा समझ में आया?

मुमुक्षु : तिनका।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़े पाँच-छह इंच वर्षा आयी। छप्पनिया में छह इंच आयी।

दस वर्ष की उम्र थी, वह सब खबर है। वह बांटा खा लिया गया, पश्चात् छह-छह दिन तक नहीं मिलता, हों! और उन गायों के आँसू सब यहाँ सूख गये। एक के बाद एक आँसू। देखो, यह दशा! वह दुःख की दशा अन्दर में है। राग और विकार की एकता है न, वह दुःख है। यह सेठिया साहूकार जो दिखते हैं, राजा या देव, वे सब बेचारे दुःखी हैं।

मुमुक्षु : दुखिया भले परन्तु वापस बेचारा किसलिए कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : बेचारे हैं और भिखारी हैं, ...। बेचारे की अपेक्षा भिखारी वापस आया। बाहर में माँगते हैं यहाँ। यहाँ से, यहाँ से सुख यहाँ से सुख। रंक!

तेरा सुख तो अन्दर से भरा हुआ है। यहाँ तो पुकार करते हैं। सहज सुख अतीन्द्रिय आनन्द का अमृत। अमृत का समुद्र भगवान उछालता है अन्दर। आहाहा! अरे, यह वह विश्वास कैसे आवे? विकल्प है शुभ-अशुभ दोनों, वह तो कषाय की अग्नि है, वह तो विपरीत भाव है। परन्तु भगवान आत्मा में तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछलता है। आहाहा! छलाछल। उसका गुण है न! प्रत्येक गुण से छलाछल भरपूर भगवान आत्मा है। आहाहा! परन्तु इसे श्रद्धा में बैठे तब। ऐसा 'मैं' हूँ—ऐसी सत्तावाला, ऐसी उसकी श्रद्धा में ऐसी सत्ता की श्रद्धा आनी चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

अमृत का पुंज सत्ता में है। ढगलो है वह तो।

मुमुक्षु : ढगलो अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ढ़ेर। हमारी काठियावाड़ी भाषा है न! ढ़ेर होता है तुम्हारे, नहीं? अमृत का ढ़ेर। आहाहा! भाई! तेरी सत्ता में—अस्तित्व में, यह देह-वाणी-मन तो तेरे अस्तित्व में है ही नहीं। वे तो जड़ के अस्तित्वपने है। पुण्य-पाप के—दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम और हिंसा-झूठ-चोरी-विषय के परिणाम, वे कुछ तेरी सत्ता में नहीं हैं। आहाहा! वह तो विकार की सत्ता में आस्रवतत्त्व में रहे हुए हैं। आहाहा! वह तो आस्रवतत्त्व है। उसमें आत्मसत्ता नहीं। वह तो अनात्मसत्ता है। आहाहा! उस आस्रव से भिन्न भगवान जिसमें अमृत का समुद्र भरा है, कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर उसे अतीन्द्रिय आनन्द का एक नमूना पर्याय में आवे, उस नमूना द्वारा पूरा आत्मा अतीन्द्रिय है, ऐसा प्रतीति में लेता है। समझ में आया? आहाहा!

अमृत का (पुंज है), परन्तु कैसे बैठे? डिब्बी एक छींकणी इतनी हो जरा, उसे सूँघता है। मस्तिष्क तर हो जाये और गहल-पागल हो जाये, मानो। आहाहा! छींकणी... छींकणी... छींकणी समझते हैं?

मुमुक्षु : तम्बाकू।

पूज्य गुरुदेवश्री : तम्बाकू, आहाहा! बीड़ी, सिगरेट पीता हो तो ऐसे मानो

ओहो! अब ऐसे अँगुलियाँ रखता होगा या ऐसे रखता होगा। ऐसा कुछ रखे। कितने ही और ऐसे रखते होते हैं। फटे हुए मस्तिष्क के पागल जैसे देखना हो तो तुम्हारे। ऐसे दो-तीन बार जब बीड़ी पीवे, तब तो इसे दस्त उतरे पाखाने में। ऐसे तो व्यसन की माला। मूर्ख के गाँव कहीं अलग होते हैं? आहाहा!

वे बेचारे सब दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं। कल्पना पाप की या पुण्य की जो हो, वह सब दुःखरूप दशा है। वह दुःख स्वरूप में नहीं। अनजान होकर, मिथ्यादृष्टि होकर दुःख को प्रगट करता है। यह तो सत्ता में अमृत आनन्द है, ऐसा सिद्ध करना है यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया? अमृत का सागर भगवान, उसके सन्मुख देखे बिना और राग के विकल्प से परान्मुख हुए बिना, उसे ऐसी सत्ता श्रद्धा में बैठती नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ कहते हैं कि हम भी उस सत्ता की श्रद्धा कराने में समर्थ नहीं। तेरा आत्मा उस सत्ता की श्रद्धा कराने में समर्थ है। क्योंकि तेरी सत्ता में वह है। आहाहा! गजब धर्म भाई! ऐसा यह धर्म! आहाहा!

अमृत का पुंज सत्ता में है, देखो आया न! **ग्यान भान सत्तामैं, सुधा निधान सत्ता ही मैं...** देखो! ज्ञानरूपी सूर्य सत्ता में प्रभु विराजता है। **सुधा निधान सत्ता ही मैं...** सुधा अर्थात् अमृत का निधान आत्मा, वह तेरी सत्ता में निधान है। आहाहा! वह अमृत का निधान है। आहाहा! वह दुःख और राग का निधान नहीं। ऐसा सत्ता का आन्दोलन भगवान ने प्रसिद्ध किया है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव ने सत्ता के अस्तित्व का आन्दोलन ही जगत में रखा है। सुन रे सुन, प्रभु! तेरे पास सब है। आहाहा! समझ में आया?

सत्ता की दुरनि सांझ,... लो। **सत्ता का छुपाना सांझ के अन्धकार के समान है।** आहाहा! ऐसा अस्तित्व भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का, उसे ढँक देना (कि) वह मैं नहीं, इतना नहीं, इतना नहीं। मैं तो राग और पुण्य की क्रिया करनेवाला। कहते हैं, सत्ता का छिपाना है यह तो। यह शाम के अन्धकार के समान है। आहाहा! समझ में आया? शाम का अन्धकार होता है, यह सन्ध्या के समय में अन्धकार पुंज। भगवान अपनी सत्ता—ऐसा ज्ञान और अमृत के अस्तित्ववाली उसकी सत्ता, उसे 'नहीं' कहकर

और राग में है, पुण्य में है, व्यवहार में कुछ है, उससे निश्चय होगा—ऐसा माननेवाला सत्ता के सूर्य को शाम के अन्धकार की भाँति ढंक देता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पराश्रय यही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही होता है। यह बहुत संक्षिप्त में इन्होंने—बनारसीदास ने चैतन्य के अस्तित्व की सत्ता का भाव प्रसिद्ध किया है।

भाई! तू है या नहीं? तो तेरे अस्तित्व में तो ज्ञान और आनन्द तथा शान्ति और प्रभुता भरी है न! उस प्रभुता का धनी तू स्वयं प्रभुता की सत्तावाला तेरा तत्त्व है। पामरता की सत्ता वह तुझमें है नहीं। आहाहा! ऐसी प्रभुता के अस्तिवाला प्रभु स्वयं उसका नकार करके, जिसे राग में, पुण्य में प्रभुता—अधिकता भासित होती है, वह अज्ञानरूपी अन्धकार प्रसिद्ध करता है, कहते हैं। समझ में आया? कहो, यह व्यवहार दया-दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सब राग है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, वह राग है। उसे राग से मुझे लाभ होगा, ऐसा माननेवाला चैतन्य के सूर्य को अन्धकार की भाँति अस्त कर डालता है। जागती ज्योति का नकार करके, जिसमें राग का अन्धकार है उससे मिलेगा, (ऐसा माननेवाले को) अन्धकार है, वह ज्ञान का नकार करता है।

सत्ता का छुपाना सांझ के अन्धकार के समान है। आहाहा! 'छुपाना' का अर्थ कि उसका स्वीकार नहीं। उसे तो यह पुण्य-पाप के विकल्पों का स्वीकार (है कि) उनमें सुख है, वह सुख का कारण है। आत्मा को अन्तर में प्राप्त होने का कारण वह रागभाव है, वह सत्ता के सूर्य को ढँक देता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ढँक देता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ढँक देते हैं। पर्याय में स्वयं ढँक देता है न। मैं ऐसा नहीं, ऐसा (मानकर ढँक देता है)। मुझसे मैं प्रगट होऊँ, ऐसा मैं नहीं। मैं तो पर से प्रगट होऊँ ऐसा हूँ, इस प्रकार आत्मा को ढँक देता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह वस्तु तो है वह है। परन्तु दृष्टि में जहाँ राग और पुण्य का स्वीकार आया, उसने वह वस्तु (आत्मा) नहीं है, ऐसा स्वीकार किया। विद्यमान को अविद्यमान किया और नहीं, उसे विद्यमान किया। आहाहा! विद्यमान, विद्यमान चीज़ है न सत्ता, उसको

अविद्यमान किया और अविद्यमान है—राग आदि है नहीं अपने में, उसको विद्यमान किया। समझ में आया? बापू! मार्ग तो ऐसा है। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने यह फरमाया है। समझ में आया?

और सत्ता मुख भोर है... सत्ता को प्रधान करना सबेरे का सूर्य उदय करना है। आहाहा! 'सत्ता पूर्णानन्द प्रभु मैं हूँ। पूर्णानन्द पूर्ण मैं हूँ'—ऐसी सत्ता का स्वीकार... आहाहा! कहते हैं, सत्ता को प्रधान करना, मुख्य करना। राग, निमित्त और पर्याय को गौण करना है। पर्याय है, राग है (उसे) गौण करके (और) वह सत्ता ज्ञानानन्द का अस्तित्व पूर्णस्वरूप की मुख्यता करके, कहते हैं कि सवेरे का सूर्य उदय करना है। प्रकाश का पुंज जैसे सूर्य उदय हो, वैसे त्रिकाल सत्ता का स्वीकार होने से ज्ञान के प्रकाश की पर्याय मति-श्रुत आदि की प्रगट हो। आहाहा!

मुमुक्षु : करना नहीं पड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे करना (क्या), वह तो अन्दर से आती है। करे कौन?

परिणाम... परिणाम तो होते हैं। अपरिणामी चीज़ ध्रुव का स्वीकार होने से परिणाम के काल में परिणाम होते हैं। आहाहा! परिणमना, वह उसका—पर्याय का धर्म है। परिणमना, वह तो पर्याय का धर्म है। वस्तु का धर्म, त्रिकाल आनन्दरूप रहना, वह वस्तु का धर्म है। समझ में आया? ऐसा धर्म लोग नहीं करते। दूसरा कोई सस्ता है दूसरे प्रकार से? परन्तु सस्ता पड़ेगा महँगा। रुल जायेगा सस्ते में। मर जायेगा उसमें। यह तेरा अवतार चला जायेगा। समझ में आया? सोंघा समझते हैं न? सस्ता। सस्ता... सस्ता... यह मार्ग तो महँगा पड़ता है। सस्ता कोई मार्ग है? दूसरा है नहीं। आहाहा!

सत्ता मुख.... सत्ता की मुख्यता करना, वह भोर है, वह प्रकाश का पुंज है। आहाहा! अकेला भगवान 'मैं' मुख्य हूँ, बाकी सब गौण है। देव-गुरु-शास्त्र तो गौण है, उनकी ओर की भक्ति का राग गौण है, परन्तु वर्तमान एक समय की पर्याय भी जिसकी दृष्टि में गौण है। आहाहा! क्या कहा, देखो! **सत्ता मुख...** ऐसा है न? सत्ता को मुख्य करना, वह भोर है। वह प्रकाश मति और श्रुतज्ञान का प्रकाश है। सत्ता को मुख्य किये बिना मति और श्रुतज्ञान का प्रकाश हो, (ऐसा) तीन काल में (होता) नहीं। समझ में आया?

बहुत पढ़े, बहुत सीखे, बहुत याद रखे, इसलिए ज्ञान हो—ऐसा इनकार करते हैं यहाँ। यह सत्ता की मुख्यता करे तो ज्ञानदशा होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं, **सत्ता मुख भोर...** प्रकाश सवेरे का सूर्य है। उगा वह। पूर्ण सत्ता आनन्दकन्द का जहाँ दृष्टि में स्वीकार होता है, (तो) सवेरा हुआ, सूर्य उगा, वह अब पूर्ण रहेगा। पूर्णता को प्राप्त करके सादि अनन्त (रहनेवाला है)। आहाहा! उस सूर्य का अस्त होना होगा नहीं। सत्ता है, उसका अस्त होना क्या हो?

यह बनारसीदास हैं, देखो! गृहस्थाश्रम में थे। गृहस्थाश्रम में वे नहीं थे, थे तो आत्मा में। धर्मी आत्मा में होता है। धर्मी गृहस्थाश्रम में या उसमें होता नहीं। गृहस्थाश्रम का विकल्प भी वे जानते हैं। आहाहा! उस जानने के काम में हैं वे, विकल्प में नहीं। वह (विकल्प) तो आस्रवतत्त्व है। समझ में आया? ऐसा मार्ग इतना कठोर लगे न! मुश्किल से अभी निवृत्त हो नहीं, इसके धन्धे और व्यापार के कारण। थोड़ा-बहुत समय मिले, उसमें लुट जाये अन्यत्र। श्रीमद् कहते हैं न, 'कुगुरु लूट ले।' आहाहा! एक धन्धे में जाये, खाने में जाये और भोग में जाये, थोड़ा नींद में जाये। थोड़ा सा बाकी रहे वह कुगुरु के पास जाये, वहाँ लुट जाये। आहाहा!

भगवान तो ऐसा फरमाते हैं। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमारी श्रद्धा से भी तुझे कल्याण नहीं होगा। ऐ हिम्मतभाई! क्या कहा?

मुमुक्षु : ऐसा तो आप ही कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्या कहते हैं? **सत्ता मुख...** क्या कहा? सत्ता को मुख्य करने से सम्यक्त्व का प्रकाश प्रगट होता है। किसी दूसरी चीज़ को मुख्य करने से प्रकाश प्रगट नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! कितना डाला है, देखो न!

सत्ताकौ सरुप मोख सत्ता भूल यहै दोष... यह सत्ता का स्वरूप, वही मोक्ष। कहो। अपना अस्तित्व आनन्द और प्रभुता से भरपूर, ऐसा जो भान होता है, वही मोक्ष है। समझ में आया? ऐसा स्वरूप है ऐसा। मार्ग ऐसा है अनादि का, ऐसा भगवान कहते आये हैं। यह कहीं किसी के घर की बात (नहीं है)। कल्पना नहीं, ऐसा।

मुमुक्षु : भगवान के घर की तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर की है। आहाहा!

लोगों को ऐसा हो जाता है। देखो, हमारे से तुमको कुछ लाभ न हो तो वह फिर बहुमान नहीं देगा। दुनिया से गिनवाना है न जरा। भाई! हमारे से तुमको लाभ होगा। निमित्त से कुछ लाभ नहीं होगा? अकिंचित्कर है निमित्त? अरे भगवान! वह बीच में होता है। परन्तु उससे आत्मा को ज्ञान हो, ऐसा नहीं। बापू! ऐसा है। पण्डितों को पठन में बाधा आवे कि हम कुछ समझावें तो हमारे से कुछ तुमको लाभ नहीं होगा? तो फिर तुम हमको किसका मान दोगे? आहाहा!

यहाँ तो भगवान सत् का... सत् का सत्पना प्रसिद्ध करते हैं। ऐसा तेरा सत् है प्रभु! आहाहा! सत्ता का स्वरूप, वही मोक्ष है। अपना अस्तित्व पूर्णानन्द का स्वरूप, ऐसी सत्ता का स्वीकार जहाँ दृष्टि में सन्मुख होकर हुआ, मोक्ष है। और सत्ता का भूलना... है न भूल... सत्ता का भूलना, यह दोष है। आहाहा! भगवान ज्ञान और आनन्द का धाम, उसे भूलकर दूसरी चीज़ से कुछ लाभ होगा, यह सत्ता का भूलना, वही दोष है। कहो, समझ में आया? ले, अपनी सत्ता को भूलकर देव-गुरु-शास्त्र की सत्ता का स्वीकार करे, तो कहते हैं कि यह दोष है। ऐसा है। वस्तु ऐसी है। तीन काल-तीन लोक में यह चीज़ है। आहाहा! कहते हैं कि **सत्ता भूल यही दोष...** यह संसार है। अपनी सत्ता पूर्णानन्द प्रभु को भूलकर जो कुछ करना, वह सब दोष संसार के खाते भटकने का है। आहाहा!

सत्ताके उलंघे धूमधाम चहूं वोर है,... लो। अपनी महासत्ता प्रभु अमृत का सूर्य, चैतन्य का सूर्य और अमृत का पुंज—उसके सन्मुख न देखकर, दूसरे के सन्मुख देखने से लाभ होगा। **सत्ताके उलंघे धूमधाम चहूं वोर है,...** उसे चार गति में भटकना है, कहते हैं। जाओ चार गति के चक्कर में। आहाहा! कठिन बातें भाई यह!

भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरी महासत्ता प्रभु आनन्द की और चैतन्यसूर्य की, उसे भूलकर दूसरे का स्मरण करना, वह सब चार गति में भटकने का (मार्ग) है। अपना प्रभु है, उसे याद न करके, पर प्रभु को याद करना, वह विकल्प संसार में भटकने का काम है, ऐसा कहते हैं। भारी कठिन बात! ऐई चेतनजी! वहाँ अपने क्या चलेगा? माल होगा वह चलेगा।

मुमुक्षु : माल ही चले न! खोटा माल नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! सत्य तो इस प्रकार से अनादि का है। उससे विपरीत करेगा, उसे विपरीत होगा।

यह कहते हैं, देखो न। **सत्ताके उलंघे धूमधाम चहूं वोर है...** यह है? आहाहा! **सत्ता को भूलना ही जन्म-मरण आदि दोषरूप संसार है, अपनी आत्मसत्ता का उल्लंघन करने से चतुर्गति में भटकना पड़ता है।** आहाहा! गजब बात है न! भगवान आत्मा का स्मरण, अन्तर चिदानन्दस्वरूप के ओर की सन्मुखता भूलकर पर की सन्मुखता का भाव, वह चार गति में भटकने का कारण है। चिल्लाहट मचाये न वे बेचारे अररर... मार डाला! कहो, समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि तेरी सत्ता को पकड़। हमारा अस्तित्व वह तेरे कारण से नहीं और हमारे अस्तित्व के कारण से तू (नहीं)। आहाहा!

मुमुक्षु : .... गुरु बिना नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु बिना ही होता है। गुरु से जो सुना है, उस ज्ञान से भी नहीं होता। (बाह्य) ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। ऐई! गुरु ने कहा कि तेरी सत्ता शुद्ध आनन्द है। ऐसा उसे ख्याल आया, उस ख्याल से भी आत्मा को ज्ञान नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ तो स्वसत्ता के आश्रय से ज्ञान होता है। बात ऐसी है। आज माने, कल माने, बाद में माने अनन्त (काल में), परन्तु यह मानने से ही चौरासी के अवतार का अन्त आयेगा, वरना अन्त नहीं आयेगा। यह घानी में पिलेगा। थोड़ा मनुष्य का भव मिला हो और जरा साता का उदय हो, खाने-पीने का कुछ हो, आहाहा! दो-पाँच, दस लाख की पूँजी हो, उस साधारण के लिये, हों! मलूकचन्दभाई! यह तो साधारण का कहा। इनके लड़के की बात नहीं, वह तो फिर करोड़पति कहलाये। बड़ा दुःखी।

मुमुक्षु : उसके कारण से दुःखी?

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता है न (कि) हमारी (पूँजी), उसके कारण से दुःखी है। हम करोड़पति हैं।

मुमुक्षु : अपनी सत्ता को उल्लंघकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी सत्ता का स्वीकार.... यह आयेगा अन्दर आयेगा। वहाँ आयेगा न!

माटी भूमि सैलकी सो संपदा बखानै निज... है न २८ में आता है। मिट्टी भूमि पत्थर की यह सम्पदा बखाने निज। हम ऐसे लक्ष्मीवाले हैं, ऐसी कीर्तिवाले हैं। मूर्ख है, कहते हैं। ऐई! २८वाँ बोल है। सोना-चाँदी पहाड़ों की मिट्टी है। उसे निजसम्पत्ति कहते हैं। हमारी लक्ष्मी है, हम करोड़पति हैं। करोड़पति न? करोड़ पैसा, उसका पति न? जड़, जड़ है। समझ में आा? ऐसा है। बहुत कठिन बात है जगत को भारी। अभी आयेगा अभी। आहाहा!

सत्ताके उलंघे धूमधाम चहूं वोर है... चहूं वोर,... कहा न, चार गति। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी श्रद्धा और ज्ञान में सन्मुख होकर स्वीकार बिना, राग आदि, पुण्य आदि का स्वीकार और वह सत्ता मेरी... जिससे लाभ हो, उसे अपनी सत्ता माने न! व्यवहार दया-दान-व्रत-भक्ति राग है। उसकी सत्ता मेरी है, ऐसा मानता है। वह चार गति में भटकने का है। प्रवीणभाई! ऐसी बात तो वीतराग करे, हों! वीतराग कहते हैं कि हमारे को पूजने से तुझे राग होगा। ऐई शान्तिभाई! आता है भले, परन्तु वह हेय है। उस सत्ता का स्वीकार करके लाभ होता है, (ऐसा माने, उसे) चार गति है, कहते हैं। आहाहा!

सत्ताकी समाधिमैं विराजि रहै सोई साहू... अपनी आनन्द और ज्ञान सत्ता में जो रहे, वह भला। वह भला आदमी है, लो। अपना ज्ञान और आनन्द ऐसे स्वभाव में जो रहे, वह जगत को भला-अच्छा कहा जाता है। बाकी दूसरे को भला-अच्छा नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सत्ताकी समाधिमैं विराजि रहै...** है न? **जो आत्मसत्ता के अनुभव में विराजमान है, वही भला आदमी है।** आहाहा!

निर्विकल्प... साधु अर्थात् भला। साधु का अर्थ भला और वह (अज्ञानी) चोर—दोनों सामने लेना है न। सज्जन है। सत् जन है। 'ज' डबल है न! तेरे पूर्ण सत्ता का स्वीकार करनेवाला और रागादि का स्वीकार नहीं करनेवाला, वह सत् जन है, सज्जन है। 'ज' डबल है न। 'ज' डबल है। सज्जन। दो 'ज'। एक 'ज' का 'त' होता है। सत् जन। वह सत् जन है, वह हरिजन है। आज गुरुवार है।

पर की दया पालने के भाव को वह सत्ता को भूलकर करता है। ज्ञानी को होता है, परन्तु हेयबुद्धि से होता है। परन्तु जिसे यह भाव उपादेयबुद्धि से हुआ, कहते हैं कि वह सत्ता को भूला। वह सत्ता में नहीं। **सत्तातैं निकसि और गहै सोई चोर है...** आहाहा! ज्ञानानन्द भगवान सहजानन्दस्वरूप अपना, उसे भूलकर, **निकसि**—उसमें से निकलकर। **गहै**—पुण्य-पाप के विकल्प को अपना माने, उनकी सत्ता को ग्रहण करे। वह राग के पुण्यभाव को अपना है, ऐसा ग्रहे, (वह) चोर है, गुनहगार है, अपराधी है। यह २३वाँ हुआ, लो। अब २४।

आत्मसत्ता का अनुभव निर्विकल्प है... भगवान आत्मा का पूर्ण अस्तित्व, वह तो निर्विकल्प में स्वीकार होता है, सविकल्प में होता नहीं। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप और पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, उसकी सन्मुखता में—निर्विकल्पता में वह अनुभव होता है। यह कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - २४

आत्मसत्ता का अनुभव निर्विकल्प है (सवैया इकतीसा)

जामैं लोक वेद नांहि थापना उछेद नांहि,
पाप पुन्न खेद नांहि क्रिया नांहि करनी।
जामैं राग दोष नांहि जामैं बंध मोख नांहि,
जामैं प्रभु दास न अकास नांहि धरनी।।
जामैं कुल रीत नांहि जामैं हारि जीत नांहि,
जामैं गुरु सीष नांहि, वीष नांहि भरनी।
आश्रम बरन नांहि काहूकी सरन नांहि
ऐसी सुद्ध सत्ताकी समाधिभूमि बरनी।।२४।।

शब्दार्थ:-लोक वेद=लौकिक ज्ञान। थापना उछेद=लौकिक बातों का खण्डन। जैसे मूर्ति के ईश्वर कहना यह लोक व्यवहार है और मूर्तिपूजा का खण्डन करना लोक

स्थापना का उच्छेद करना है, सो सत्ता में दोनों नहीं हैं। खेद=कष्ट। प्रभु=स्वामी। दास =सेवक। धरनी=पृथ्वी। वीष भरनी=मंजिल पूरी करना। बरन आश्रम (वर्ण आश्रम) =ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार।

अर्थ:-जिसमें लौकिक रीतियों की न विधि है न निषेध है, न पाप-पुण्य का क्लेश है, न क्रिया की मनाही है, न राग-द्वेष है, न बन्ध-मोक्ष है, न स्वामी है न सेवक है, न आकाश[1] है न धरती[2] है, न कुलाचार है, न हार-जीत है, न गुरु है न शिष्य है, न चलना-फिरना है, न वर्णाश्रम है, न किसी का शरण है। ऐसी शुद्धसत्ता अनुभवरूप भूमि पर पाई जाती है।।२४।।

काव्य-२४ पर प्रवचन

आहाहा! सन्तों की वाणी में से निकालकर बनाया है, हों! बनारसीदास ने कहीं घर का बनाया नहीं। वे कहे, बनारसीदास गृहस्थी थे। वे गृहस्थी नहीं थे। आहाहा! चाहे तो चौथे गुणस्थानवाला कहे, पाँचवेंवाला कहे, छठेवाला मुनि कहे या केवली कहे, वस्तु के सिद्धान्त में तीनों में अन्तर नहीं होता, स्थिरता में अन्तर होता है।

मुमुक्षु : चारित्र्य की प्राप्ति...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चारित्र्य की प्राप्ति में अन्तर होता है, परन्तु वस्तु की दृष्टि और वस्तु के कथन में—ज्ञान में अन्तर जरा भी नहीं होता। लो, प्रास में तीन आ गये न!

लोक-वेद नांहि... आत्मा के अनुभव में... राग से रहित, मन से रहित ऐसा भगवान का अनुभव—उसे अनुसरकर होना, उसमें लौकिक ज्ञान नहीं। उसमें लौकिक ज्ञान नहीं। लोकवेद है न। **जिसमें लौकिक रीतियों की न विधि है न निषेध है,...** ऐसा। उसमें व्यवहार की विधि यह है और इस विधि से नहीं करना और इस विधि से करना—ऐसा है नहीं। जहाँ आत्मा स्वभाव—स्वरूप का जहाँ अनुभव है, उसमें यह सब लौकिक की पद्धति, शास्त्र में व्यवहार की पद्धति कही, वह पद्धति भी वहाँ है नहीं। आहाहा!

१-२. ऊंच-नीच का भेद नहीं है।

थापना उछेद नांहि... वहाँ मूर्ति को स्थापना, वह भी नहीं और मूर्ति को उत्थापना, वह भी नहीं। आत्मा के आनन्द के अनुभव का मार्ग, वह मोक्ष का मार्ग है। उसमें यह प्रतिमा है और प्रतिमा नहीं—ऐसा वहाँ विकल्प है नहीं। आहाहा! है न, उसमें अर्थ किया है या नहीं? **न विधि है न निषेध है,...** ऐसा लिखा है। उसमें किया है। रूपचन्दजी में।

मुमुक्षु : शब्दार्थ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शब्दार्थ में है। हाँ, शब्दार्थ में है। यह बराबर है।

मूर्ति को ईश्वर कहना यह लोक व्यवहार है। भगवान की प्रतिमा को भगवान कहना, वह तो लोकव्यवहार है। शुभभाव का निमित्त है, उसमें कुछ वह वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया? होता है शुभभाव, परन्तु भगवान की (प्रतिमा) को ईश्वर मानना, वह लोकव्यवहार है शुभभाव। अकेला शुभभाव है। वह अनुभव में आता नहीं। आहाहा! उस मूर्ति के दर्शन से अनुभव होता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! अरे, गजब बात! है न!

मूर्तिपूजा का खण्डन करना लोक-स्थापना का उच्छेद करना है, सो सत्ता में दोनों नहीं है। अनुभव में कहाँ है दोनों? आहा! अनुभव तो निर्विकल्प है। सविकल्प हो वहाँ होता है। स्थापना करके प्रतिमा है, उसकी पूजा होती है, वह शुभभाव है। परन्तु वह व्यवहार है, धर्म नहीं। अरे, गजब बात है न!

उन्होंने उत्थापित कर डाला कि मूर्ति और मूर्ति की पूजा नहीं है। यह खोटी बात है। और मूर्ति तथा मूर्तिपूजा से धर्म होता है, यह भी खोटी बात है। समझ में आया? अरे, यह गजब! कस लिया है यह तो, कहे भाई। ऐसा कहे तो भी ऐसा और ऐसा कहे तो... वह प्रतिमा परवस्तु है, परद्रव्य है। वह भगवान कहीं सच्चे नहीं और सच्चे हों तो भी मानना, वह तो राग है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर समवसरण में विराजते हों और उनकी श्रद्धा करना, वह परद्रव्य है और परद्रव्य की श्रद्धा, वह विकल्प है, राग है। निर्विकल्प अनुभव में वह विकल्प (कि) यह भगवान है—यह राग भी नहीं और उनकी पूजा का निषेध, वह भी नहीं। विधि-निषेध उसमें नहीं, ऐसा। स्थाप—उत्थाप नहीं।

पाप पुन्न खेद नांहि,... लो। पुण्य और पाप दोनों खेद है, वह अनुभव में नहीं। खेद... खेद... दु:ख। **पुण्य-पाप क्लेश है,...** ठीक। कष्ट है। है न अन्दर लिखा है। खेद का अर्थ कष्ट है। यह पुण्यभाव और पापभाव दोनों कष्ट है। अनुभव में यह है नहीं। अन्तर की दृष्टि में भगवान आत्मा को लेने से निर्विकल्पदशा में वह वस्तु है नहीं। अब वस्तु स्वयं निर्विकल्प, गुण निर्विकल्प और पर्याय निर्विकल्प हुई, उसमें यह स्थाप—उत्थाप यह कुछ है ही नहीं। यह पुण्य-पाप का क्लेश ही नहीं। आहाहा! पुण्य के भाव को क्लेश कहा। आत्मा की जो अनुभव दशा, उसमें यह (क्लेश) नहीं। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०९, आषाढ़ कृष्ण १२, सोमवार, दिनांक १९-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य - २४, २५, २६, २७

मोक्ष द्वार। **आत्मसत्ता का अनुभव निर्विकल्प है।** कहते हैं कि आत्मा का धर्म निर्विकल्प है। आत्मा शुद्ध आनन्द के अस्तित्व में जिसकी अन्तर्दृष्टि पड़ी, वह निर्विकल्प होता है। उसमें कोई पुण्य-पाप के विकल्प या मन का सहारा होता नहीं। मोक्ष अधिकार है न। चैतन्य के स्वभाव का अन्तर शरण जहाँ है, उसे पर के—परद्रव्य के सहारे की आवश्यकता नहीं। ऐसा आत्म अनुभव निर्विकल्प है। राग का, विकार का अनुभव, वह दुःखरूप है, वह संसार है और भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी का अनुभव... राग के वेदनरहित आनन्द का वेदन, ऐसा निर्विकल्प अनुभव होता है।

जामैं लोक वेद नांहि... जिसमें लोक का ज्ञान भी नहीं। तथा जिसमें लोक के सुख-दुःख का वेदन भी नहीं। जो यह लौकिक सुख-दुःख की कल्पना है, वह निर्विकल्प आत्मा के अनुभव में—धर्म में नहीं है। क्या कहा, समझ में आया? **जामैं लोक वेद नांहि...** लौकिक सुख-दुःख का वेदना नहीं अथवा लौकिक का जिसमें ज्ञान नहीं। अकेला चैतन्य वीतरागी स्वरूप का अनुभव, उसमें दूसरा ज्ञान है (नहीं)। **थापना उछेद नांहि...** दो अर्थ किये है इसमें। लोक का वेदन, इसका स्थापन या उत्थापन उसमें नहीं। अथवा **थापना—**मूर्ति स्थापना या उत्थापना, जो अनुभव में है नहीं। आहाहा! राग, मन के संग बिना आत्मा का अनुभव, वह धर्म है, उस धर्म से मुक्ति होती है। वह धर्म वीतरागी पर्याय है, इसलिए वह निर्विकल्प है। '**थापना उछेद नांहि...**' मूर्ति का स्थापना कि हाँ और ना—उसकी विधि-निषेध जिसमें है नहीं। आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा नहीं—ऐसा विधि-निषेधपना भी जहाँ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

पाप-पुन्य खेद नांहि... जिसमें पाप-पुण्य का क्लेश नहीं। पाप-पुण्य के भाव तो क्लेश हैं। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, वह तो दुःख और क्लेश है। आत्मा के अनुभव में वह दुःख—क्लेश है नहीं। आहाहा! आत्मशान्ति—आत्मा का अनुभव। 'अनुभव रत्नचिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप।' ऐसा जो भगवान आत्मा आनन्द का पूर और चैतन्य का नूर—ऐसा त्रिकाली स्वरूप,

उसके सन्मुख की दशा में—भाव में ऐसे पुण्य-पाप के भाव के क्लेश—दु:ख है नहीं। समझ में आया? **क्रिया नांहि करनी...** तथा कोई क्रिया करनी है कि ऐसी विधि से यह करना पड़ेगा, ऐसी सामायिक करनी पड़ेगी और सवेरे ऐसा करना पड़ेगा और दोपहर में ऐसा करना पड़ेगा—ऐसा अनुभव में है नहीं। आहाहा! **क्रिया नांहि करनी...**

जामैं राग दोष नांहि... राग और द्वेष भी जिसमें नहीं। स्व-सन्मुख के अनुभव में राग-द्वेष कहाँ से आया? राग-द्वेष से तो भिन्न पड़ गया है। निरावलम्बी तत्त्व के अनुभव में राग के या द्वेष के विकल्प, उनका सहारा भी नहीं और अनुभव में वह भी नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसा धर्म है। अरे, गजब! **जामैं बंध मोख नांहि...** उसे बन्ध है या मोक्ष है—यह विकल्प वहाँ है ही नहीं। भेद है ही नहीं वहाँ। बन्ध-मोक्ष है, वह तो पर्याय में है। वस्तु की दृष्टि के अनुभव में बन्ध-मोक्ष का भाग है नहीं। आहाहा! गजब! अब मुझे मोक्ष करना है, ऐसा भी अनुभव में नहीं और बन्ध टालना है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है सम्यग्दर्शन के अनुभव का।

जामैं प्रभु दास न... जहाँ प्रभु बड़े और दास—(ऐसा) दोनों सेवक और स्वामीपना उसमें कुछ नहीं। छोटा-बड़ापना नहीं अथवा प्रभु (और) दास (अर्थात्) सेवक और सेव्य। भगवान आत्मा सेवक है और परमात्मा सेवनेयोग्य है, ऐसा उसमें है नहीं। स्वयं प्रभु सेवनयोग्य और स्वयं पर्याय उसकी सेवक। आहाहा! **जामैं प्रभु दास न अकास नांहि धरनी...** ऊँच-नीचपना उसमें नहीं। स्वरूप में अन्तर्मुख होकर, मन और राग से भिन्न पड़कर स्वरूप के साधन में अनुभव में पड़ा है, उसमें छोटा-बड़ापना नहीं है। आकाश अर्थात् बड़ा। धरती यह नीचे, ऐसा है नहीं, कहते हैं।

जामैं कुल रीत नांहि,... लो। जिसमें कुल की रीति—कुलाचार नहीं। कि भाई! अपने कुल का आचार ऐसा है, ऐसा पालना चाहिए, ऐसा उसमें नहीं है। यह तो अभी सम्यग्दर्शन के अनुभव की बात चलती है। आहाहा! जिसमें कुलाचार नहीं। है न? **जामैं हारि जीत नांहि...** वाद-विवाद से हार-जीत होती है, ऐसा उसमें नहीं। आहाहा! हार-जीत हो न! यह चर्चा में ऐसा हो जाये। बराबर पहुँच सके नहीं तो हार हुई। अरे! बराबर पहुँच सके, अपनी जीत हुई। यह हार-जीत, ऐसा आत्मा में नहीं है। यह

तेरापंथी के बाईस चोरा है न, उसमें एक चर्चा चली थी बहुत वर्ष पहले। स्थानकवासी के तेरापंथी में। यह तुलसी। और बाईस चोरावाला स्थानकवासी।

भगवान को मोक्ष प्राप्त से पहले दस स्वप्न आये थे। उसमें आता है लोगों में श्वेताम्बर में। दस स्वप्न, फिर केवलज्ञान हुआ। उस स्वप्न की चर्चा दो के बीच चलने पर... तेरापंथी कहे कि स्वप्न, वह दोष है। वे कहे कि स्वप्न वह गुण है क्योंकि पीछे केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान होने से पहले भगवान महावीर को अन्दर दस स्वप्न आये। सूरज दिखा, चन्द्र दिखा इत्यादि-इत्यादि। तब उन दो की... एक यह शब्द है शास्त्र में, उसकी चर्चा एक महीने चली। जब यह तर्क दे तेरापंथी बराबर कि यह स्वप्न है, स्वप्न गुण नहीं हो सकते, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये तेरापंथीवाले। वे कहें, अरे महाराज!...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ! वे कहते थे न, भाई लीलाधरजी कहते थे। हमारे साथ रहे थे न। लीलाधर कहे, चर्चा में एक महीने खून उबला, कहे, साधु को। खून उबला अर्थात् समझे? अपनी काठियावाड़ी भाषा में। आकुलता, आकुलता। आहार लेने जाना सुहावे नहीं। आहार लेने जाना रुचे नहीं।

वे कहे, नहीं, भगवान को दस स्वप्न आये हैं। दस स्वप्न समझे? उन श्वेताम्बर में ऐसा है। केवलज्ञान होने से पहले दस स्वप्न आये, फिर केवलज्ञान हुआ। अब उसकी एक चर्चा एक महीने। यह तुलसी के... तुलसी तो अभी हुए। इसके पहले दूसरे थे। आचार्य दूसरे थे और यह लोग... एक महीने तक चर्चा, कहे। खाना सुहावे नहीं, आहार लाना सुहावे नहीं। उनकी दलील सच्ची लगती है कि ऐसा लोगों को ऐसा हो जाये कि हाँ, बात सच्ची लगती है....। हम दलील दें या नहीं, केवलज्ञान हुआ इसलिए उनका स्वप्न गुणकारी है। उसके पीछे कार्य आया गुण का, इसलिए वह स्वप्न गुण का कारण है। ऐसा करते महीने भर चर्चा चली। फिर अन्त में तेरापंथी जीते। क्योंकि वेदान्ती साथ में रखे थे साक्षी। वेदान्ती तो स्वप्न को दोष ही मानते हैं। स्वप्न है, वह दोष आता है। फिर वे जीते। कहो, ऐसी चर्चा।

मुमुक्षु : दोनों हारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हारे।

स्वप्न से गुण भी होता नहीं और स्वप्न से... वह तो स्वप्न है, वह तो कल्पना है। मन की सृष्टि, मन की कल्पना है। आहा! केवलज्ञान उससे हुआ है? अपने स्वभाव सन्मुख आत्मा एकाकार हुआ—जम गया, ऐसा व्यापक (तो) केवलज्ञान (हुआ)। स्वप्न के कारण से या पूर्व के चार ज्ञान हैं, उनके कारण से कहाँ है? चार ज्ञान हो पूर्व में, फिर केवल (ज्ञान) हो भगवान को। परन्तु वह चार ज्ञान है, इसलिए केवल (ज्ञान) होता है, ऐसा भी नहीं है। चार ज्ञान का तो व्यय—नाश होता है। चार ज्ञान नहीं है? उनका नाश होता है, तब केवलज्ञान होता है। चार ज्ञान हुए, उनसे केवलज्ञान नहीं होता है। चार (ज्ञान का) नाश होता है।

मुमुक्षु : ....होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश (होने पर) होता है, उससे नहीं होता। आत्मा के आश्रय से होता है। आहाहा! चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णस्वरूप का पूर्ण एकाग्रता से आश्रय, वह केवलज्ञान है। आहाहा! मोक्षमार्ग से भी मोक्ष होता नहीं, यहाँ तो यह बात है। मोक्ष का मार्ग, वह नाश हो जाता है, पश्चात् ही केवल(ज्ञान)—मोक्ष होता है। अब ऐसी चर्चा।

यहाँ कहते हैं कि अनुभव में यह खेद-बेद है नहीं। यह चर्चा ही नहीं यहाँ हाँ-ना की। **हारि जीत नांहि, जामै गुरु सीष नाहि...** अन्तर के अनुभव में यह गुरु और मैं शिष्य हूँ—ऐसा है नहीं। गुरु आत्मा और पर्याय शिष्य, ऐसा भेद भी कहाँ है वहाँ? आहा! और मैं अनुभव करता हूँ, ऐसा भी कहाँ है वहाँ? वह तो विकल्प है। आहाहा! अन्तर चैतन्य के ध्रुव के अवलम्बन में अकेला निर्विकल्प अनुभव होता है। उसमें गुरु-शिष्य नहीं। **वीष नांहि भरनी...** हलन-चलन नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं उसमें। **वीष भरनी...** अर्थात् मंजिल पूरी करना। अर्थात् हिलना-चलना, ऐसा। अर्थात् इतनी गति करनी पड़ेगी, इतना चलना पड़ेगा उसमें। है न अनुभव है सही न! इतना भाई, इतना चलना पड़ेगा। दो कोस चलना पड़ेगा, चार कोस चलना पड़ेगा (ऐसा) उसमें कुछ नहीं है। आहाहा! अन्तर के अनुभव में वह गति करने का कुछ है नहीं।

आश्रम बरन नांहि... उसमें चार आश्रम—वर्ण नहीं, ब्राह्मण या क्षत्रिय (आदि),

आत्मा के अनुभव में कुछ नहीं, वह तो है वह है। आहा! देखो, यह मोक्ष का कारण अनुभव। अनुभव अर्थात् आत्मा के आश्रय से आनन्द का अनुभव आनन्द का करना, उसका नाम मोक्ष का कारण। उसमें यह वर्णाश्रम आदि नहीं। **काहूकी सरन नांहि...** आहाहा! आत्मा के अन्तर अनुभव में शरण तो आत्मा है। तीर्थंकर और केवली भगवान का भी जहाँ शरण नहीं। आता है न मांगलिक में? 'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि।' यह सब विकल्प की बातें, व्यवहार की बातें। निर्विकल्प में किसी की शरण है नहीं। आहाहा! यह भगवान को याद किया और शुभभाव हुआ, इसलिए अनुभव हुआ ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है जिन की। **काहूकी सरन नांहि...** लो। किसी की उसमें शरण नहीं। 'अरिहंता... सिद्धा... साहु सरणं, केवली पण्णतं धम्मं सरणं' यह भी नहीं यहाँ तो। धर्म, वह पर्याय है, उसकी भी शरण नहीं। शरण त्रिकाली ध्रुव की।

ऐसी सुद्ध सत्ताकी समाधिभूमि बरनी... ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उसे अनुभव में लिया, कहते हैं कि वहाँ तो समाधि है। समाधि, वह तो शान्ति की भूमि है। शुद्ध सत्ता। **ऐसी शुद्ध सत्ता का अनुभवरूप भूमि पर पाई जाती है,...** लो। अनुभव में तो शुद्ध सत्ता का ही अनुभव है। सम्प्रदाय में कितनों को तो अनुभव अर्थात्... अनुभव अपने नहीं होता, कहे। वह वेदान्त को होता है, लो। (संवत) १९८० के वर्ष में बोटाद में प्रश्न हुआ। अनुभव और विभाव... अनुभव अपने को—जैन को नहीं होता, वेदान्त को होता है। कहो, ऐसे .... पाबारी तुम्हारे। ऐई! अनुभव (अर्थात्) तो आत्मा आनन्दस्वरूप चैतन्यमूर्ति को अनुसरकर निर्मल परिणमन होना, वह अनुभव। वह जैन में ही होता है, अन्यत्र होता नहीं। आहाहा!

जैन के अतिरिक्त किसी जगह वह हो नहीं सकता क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही जैन है। 'जिन सो ही आत्मा।' भगवान वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। उसका अनुभव, वह वीतरागी दशा है। एक वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त किसी में यह बात है ही नहीं। सबने कल्पना से बातें की हैं। कठिन काम परन्तु! **अनुभवरूप भूमि पर पाई जाती है,...** यह शुद्ध सत्ता, ऐसा कहे। शुद्ध सत्ता है, ऐसा अनुभव में आवे। विकल्प में वह कुछ शुद्ध सत्ता का भान होता (नहीं)। अब, **आत्मसत्ता को नहीं जानता, वह अपराधी है।**

अब नीचे कलश है न। नौवाँ कलश है नीचे अमृतचन्द्राचार्य का।

अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां,
प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालम्बनम्।
आत्मन्येवालानितं च चित्तमा-
सम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ।।९।।

★ ★ ★

काव्य - २५-२६-२७

जो आत्मसत्ता को नहीं जानता वह अपराधी है

(दोहा)

जाकै घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जानई, सो अपराधी जीव।।२५।।

अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध।
परकौं मानै आतमा, करै करमकौ बंध।।२६।।

झूठी करनी आचरै, झूठे सुखकी आस।
झूठी भगति हिए धरै, झूठे प्रभुकौ दास।।२७।।

शब्दार्थः-समता=राग द्वेष रहित भाव। ममता=पर द्रव्यों में अहंबुद्धि। रमता राग=अपने रूप में आनन्द करनेवाला आतमराम। अपराधी=दोषी। निरदै (निर्दय)=दुष्ट। हिरदै (हृदय)=मन में। आस (आशा)=उम्मेद। भगति (भक्ति)=सेवा,पूजा। दास=सेवक।

अर्थः-जिसके हृदय में समता नहीं है, जो सदा शरीर आदि परपदार्थों में मग्न रहता है और अपने आतमराम को नहीं जानता वह जीव अपराधी है।।२५।। अपने आत्मस्वरूप को नहीं जाननेवाला अपराधी जीव मिथ्यात्वी है, अपनी आत्मा का हिंसक है, हृदय का अन्धा है। वह शरीर आदि परपदार्थों को आत्मा मानता है और कर्म-बन्ध को बढ़ाता है।।२६।। आत्मज्ञान के बिना उसका तपाचरण मिथ्या है, उसकी मोक्षसुख की आशा झूठी है, ईश्वर को जाने बिना ईश्वर की भक्ति वा दासत्व मिथ्या है।।२७।।

काव्य-२५-२६-२७ पर प्रवचन

जाकै घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जानई, सो अपराधी जीव।।२५।।

अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध।
परकौं मानै आतमा, करै करमकौ बंध।।२६।।

झूठी करनी आचरै, झूठे सुखकी आस।
झूठी भगति हिए धरै, झूठे प्रभुकौ दास।।२७।।

जाकै घट समता नहीं... अर्थात् ? पुण्य और पाप तथा इष्ट-अनिष्टपना कुछ है ही नहीं। जहाँ अकेली समता... ! जहाँ समता अर्थात् स्वभाव की एकता नहीं, ऐसे समतारहित प्राणी **ममता मगन सदीव...** वे तो पुण्य और पाप के विकल्प की ममता में सदैव लीन है। समता अर्थात् वीतरागता। जिसे वीतरागता अन्तर्दृष्टि में नहीं, वे ममतावाले हैं। ममता अर्थात् पुण्य के-पाप के विकल्प शुभ-अशुभ वे मेरे, वह मिथ्यादृष्टि ममता में सदैव मग्न है। आहाहा! चैतन्यस्वभाव, वीतरागस्वभाव की जिसे दृष्टि और अनुभव नहीं अर्थात् कि उसे वीतरागता नहीं, समता नहीं, वह ममता में मग्न है। यहाँ मग्न नहीं, इसलिए राग में मग्न है। **ममता मगन सदीव...** ऐसा। '**सदीव**' अर्थात् सदा उसे राग की ही ममता है। व्यवहार का विकल्प है, उसकी ही उसे ममता है, वही मैं हूँ। उसी को ममता और मिथ्यात्व कहा जाता है। समझ में आया ?

रमता राम न जानई... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द में रमता प्रभु ऐसा आत्मा उसको जाने नहीं। **रमता राम न जानई...** आहाहा! पुण्य-पाप के रागरहित भगवान आत्मा (जो) अपने आनन्द में रमनेवाला है, ऐसे रमते राम को जो जाने नहीं अर्थात् कि जिसे आत्मज्ञान नहीं, ऐसा। आहाहा! **सो अपराधी जीव** है। 'निज पद रमे सो राम कहिये।' अपना शुद्ध आनन्द पद, उसमें रमे, उसे आत्माराम कहते हैं। उसे तो जाने नहीं और माथाकूट पुण्य और पाप की क्रिया, व्रत, नियम और यह और वह... वह अपराधी जीव है, ऐसा कहते हैं। वह व्यवहार की क्रिया चुस्त करता हो दया-दान-व्रत-पूजा, तो

भी वह अपराधी जीव है, गुनहगार है। भारी कठिन पड़े तुम्हारे वहाँ वह... कैसा कोटडिया कहलाये न?

मुमुक्षु : कपिल कोटडिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कपिल कोटडिया को बेचारे को....

बापू! तेरा स्वभाव भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! अकेली पुण्य की व्यवहार की क्रिया में मग्न है तो मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात। स्वरूप ही ऐसा है। भगवान आत्मा आनन्द में रहनेवाला त्रिकाली आनन्दस्वभाव ऐसा आतमराम, उसका ज्ञान नहीं, उसका अनुभव नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं। **रमता राम न जानई...** वह अपराधी जीव है। वह मिथ्यादृष्टि अपराधी है, ऐसा कहते हैं। एक शुभ विकल्प—दया का, दान का, व्रत का, भगवान की भक्ति का—उस विकल्प से मुझे लाभ होगा, उस शुभराग से मुझे लाभ होगा, उस शुभराग को अपना माननेवाला, वह अपराधी गुनहगार मिथ्यादृष्टि जीव है। कहो, समझ में आया इसमें?

अपराधी मिथ्यामती... देखो, अब अपराधी कहा, परन्तु वापस अकेला अपराधी, ऐसा नहीं। वह **अपराधी मिथ्यामती...** है। आहाहा! शुभराग की क्रिया जो है अन्दर की विभाविक-उदयभाव, उसे अपनी माननेवाला और उसे करते-करते आगे मेरा कल्याण होगा, वह मिथ्यामति अपराधी जीव है, गुनहगार है, चोर है। यह सब चिल्लाहट मचाते हैं, देखो! महाव्रत पाले, ऐसा-ऐसा करे और उसे तुम मुनि नहीं कहो। महाव्रत पाले, राग को पाले? राग को पाले वह तो मिथ्यादृष्टि अपराधी है। रागरहित शुद्ध चैतन्य भगवान को पाले, वह निरपराधी आतमराम है। आहाहा! भीखाभाई! ऐसा मार्ग अब, लो। वह विवाद, विवाद करते हैं, देखो! उसकी महिमा बहुत आयी है उसमें। वोहरा थे न वोहरा, नहीं? हीराचन्द वोहरा।

मुमुक्षु : जयपुर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका भाई....

कोटावाले जुगलकिशोर। व्यक्ति बहुत उघाड़ ऐसा उसका। बोले तो ऐसा मानो धारावाही। साहित्यकार भी, हों! उम्र तो ४५-४६ की होगी कुछ अब। परन्तु बोले,

प्रसन्न-प्रसन्न हो गये स्वयं बहुत। लेख आया है उसमें सन्मति सन्देश में। बहुत महिमा। लोग प्रसन्न होते थे कि ऐसा तो हमने कोई ऐसा हिन्दुस्तानी भाषा में ऐसी छटादार धारावाही बात किसी पण्डित के पास सुनी नहीं। बहुत प्रसन्न... बहुत प्रसन्न... अभी सुना था, हों हमने वहाँ। बहुत विद्वान व्यक्ति है। ऐसा कहे, लाखों लोगों के सामने भी रखना चाहिए। ऐसा करके बहुत महिमा की है। भाई वोहरा, नहीं? शान्तिलाल का छोटा भाई। अपने यहाँ आया था। वहाँ भी पूरे विषय की... यह बात अब धारावाही बोले, इसलिए आत्मा है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते। धारावाही अनुभव करे, वह आत्मा है। बोलना बहुत आवे, लोग रंजन हो जाये। परन्तु वह वाणी तो जड़ है, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? और वह तो विकल्प है उपदेश में तो। आहाहा!

अपराधी मिथ्यामती... कितने विशेषण देते हैं! भगवान आत्मा... यह शुभराग से भिन्न अपने आनन्द का अनुभव करनेवाला, उसे आतमराम और आत्मा कहते हैं। उससे विरुद्ध राग के एक कण को भी, शुभराग हो, उसे अपना मानकर, उससे मुझे... शुभ करते-करते (शुद्ध होगा) और शुभ उपयोग, वह शुद्ध का कारण है—ऐसा माननेवाला अपराधी है, मिथ्यामति है, निर्दयी है। ऐई! आत्मा की हिंसा करनेवाला है। आता है न एक पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) में, नहीं? राग, वही हिंसा है। चाहे तो शुभराग हो। यह भगवान की भक्ति क्या, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह राग भी हिंसा है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। कहते हैं कि निर्दयी है। अरे, अहिंसा, रागरहित चैतन्यस्वरूप से विरुद्ध राग से धर्म और राग से कल्याण, (ऐसा माननेवाला) निर्दयी है, कहते हैं। बनारसीदास ने भी... यह '**अतो हता:**' लिया है, हों! नौवाँ श्लोक है न। एक वह किया है। कुछ कम लगा है उसमें? उसे नौ के बाद कोष्ठक में किया है न। अर्थात् क्या परन्तु? उसका होगा कलश का? वह खोटा है, ऐसा। ठीक। ऐसा ठीक। निकाल दिया है, भाई ने कहा। नहीं चाहिए। बराबर है। ऐसा है न भाई?

यहाँ तो कहते हैं, अरे! अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान, जिसका स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्दमय वीतरागमय स्वरूप है। उसका आश्रय न लेकर जिसकी श्रद्धा में उस राग का आश्रय और राग कारण और वीतराग निश्चय कार्य है...

शास्त्र में कहा है न? निश्चय साध्य-साधन और व्यवहार साध्य-साधन, दो नहीं कहा? पंचास्तिकाय में कहा है, लो। ऐई! यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। उस समय कैसी राग की मन्दता (होती है, उसका ज्ञान कराया है)। उससे होता है (ऐसा) बिल्कुल नहीं। अब उसे यही कहेंगे। एक तो अपराधी है, मिथ्यामति है, निर्दयी है, हृदय का अन्ध है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छे विशेषण दिये। स्पष्ट दे न। आहाहा! है न अन्दर, देखो न। **जिसके हृदय में समता नहीं है, जो सदा शरीर आदि परपदार्थों में...** राग आदि सब उसमें आ गया, **मग्न रहता है**। यह राग, यह पर शरीर है वास्तव में तो।

अपने आतमराम को नहीं जानता, वह जीव अपराधी है। अपने स्वरूप को नहीं जाननेवाला अपराधी जीव मिथ्यात्वी है, ऐसा। है न, स्पष्टीकरण किया है अन्दर। **अपनी आत्मा का हिंसक है,...** देखो! अर्थ में ही है। ज्ञाता-दृष्टा जिसका स्वभाव, उसे भूलकर राग से मुझे लाभ होता है, (ऐसा माने वह) हिंसक है, कहते हैं। भारी गले उतरना कठिन। उसमें पकड़ हो गयी हो, बाहर में प्ररूपणा बोलने में आया हो, उसे बदलना भारी कठिन। दुनिया में मान (समाप्त) हो जाये, महिमा जाये, ...का अपमान हो। आहाहा! **निरदै हिरदै अंध...** आहाहा! वह हृदय का अन्ध है, लो। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध सत्ता चैतन्य, उसे राग की अपेक्षा नहीं, ऐसे अनुभव में नहीं आता और राग की अपेक्षा हो तो धर्म हो, यह अन्ध—ज्ञान के अन्ध हैं, कहते हैं। आहाहा!

अलिंगग्रहण में आया है न? छठवाँ बोल। अलिंगग्रहण, प्रवचनसार। १७२ गाथा। बीस बोल है, उसमें छठा बोल आया है। 'अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है।' अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। यह बीस बोल में छठवाँ बोल है। अलिंगग्रहण। राग से ग्रहण हो ऐसा आत्मा ही नहीं। अलिंगग्रहण है न शब्द। इन्द्रिय से जाने, ऐसा आत्मा ही नहीं। इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा नहीं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष का वह विषय नहीं। आहाहा! दूसरों के द्वारा अनुमान से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं। आत्मा स्वयं अनुमान से अकेले पर को जाने, ऐसा भी आत्मा नहीं। आहाहा! और

आत्मा उसे कहते हैं कि प्रत्यक्ष स्वभाव... अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष जाने ज्ञाता, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन जगत को। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो! **परकौं मानै आतमा,...** देखो! **करै करमकौ बंध... परकौ मानै आतमा...** शुभराग को आत्मा माने, उससे लाभ होता है, इसका अर्थ ही (यह) कि उसे अपना स्वभाव माना है। **परकौं मानै आतमा, करै करमकौ बंध...** बन्ध अर्थात् मिथ्यात्व का बन्ध करे, ऐसा। यहाँ उसे ही बन्ध कहते हैं। करे मिथ्यात्व का बन्ध और माने कि हम कुछ रास्ते में हैं। उल्टे रास्ते में है और सुल्टे रास्ते है, ऐसा मानता है। अब उसकी दिशा कब बदले? यह नौवें श्लोक का ही विस्तार किया है।

झूठी करनी आचरै,... लो ठीक। आत्मा के ज्ञान बिना, अन्तर अनुभव बिना, स्व की शरण बिना यह तपस्या-बपस्या विपरीत करे सब। मुनिपना और महाव्रत और बालव्रत, वह **झूठी करनी आचरै**। आहाहा! है न अन्दर? **आत्मज्ञान के बिना उसका तपाचरण मिथ्या है**। शुभराग की क्रिया महाव्रत की, मुनिपने की व्यवहार... व्यवहार की। मुनि कहो या तपस्या कहो। तपकल्याणक को मुनिपना कहते हैं न? मुनिपने को तपकल्याणक कहते हैं। क्योंकि मुनिपना, वही तप है। इसलिए जितनी व्यवहार क्रिया पंच महाव्रत आदि की, आत्मा के भान बिना, वह सब क्रिया मिथ्या है।

झूठी करनी आचरै, झूठे सुखकी आस। गहरे-गहरे पुण्य का जिसे प्रेम है, उसे इन्द्रिय सुख की ही गहराई में आशा है। पुण्य के भाव का जिसे प्रेम है, उसे पुण्य के फलरूप से इन्द्रिय के सुख का ही प्रेम है। आहाहा! समझ में आया? ... ऐसी वीतराग की धर्मकथा होगी! कहो, मेघाणी! इसमें सुना था कभी? प्रसन्न हो, उसमें प्रसन्न हो। लगता है अच्छा, कहे, मार्ग ऐसा है, भाई! अन्तर आत्मा का मार्ग ही ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यहाँ व्यवहार की-विभाव की बात ली है। यहाँ विभाव पुण्य....

झूठे सुख की आस... झूठे सुख की आश अर्थात् पुण्य के.... पुण्य और शुभभाव को जो भला मानता है, उसे इन्द्रिय के सुख की ही अभिलाषा है। यह कहा है न बन्ध

अधिकार में, नहीं ? भोग... भोग... भोग के लिये करता है। हाँ, धर्म है, वह भोग के लिये करता है। क्योंकि जिसे पुण्य का—शुभभाव का प्रेम है, उसे पुण्य के सुख की ही अन्दर आशा है। अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा की उसे रुचि नहीं। ऐसी बात भारी सूक्ष्म पड़े। ओहोहो! ऐसा धर्म परन्तु... शुरुआत में ऐसा धर्म ? आगे हो तो ठीक, परन्तु यह तो पहला ऐसा धर्म। पहला ही ऐसा स्वरूप है।

झूठी भगति हिए धरै... आहाहा! आत्मज्ञान और आत्मा के आश्रय बिना राग का आश्रय लेकर, जो भक्ति करे, वह सब उसकी झूठी है। भगवान के निकट टोकरी बजाये और भजन करे, स्तुति करे, कण्ठ करे ऐसे। जय भगवान... जय भगवान... जय भगवान... बराबर लगावे भगवान की भक्ति.... जय प्रभु... जय प्रभु... अल्या! तेरा जयप्रभु तो जगा नहीं। तेरी झूठी भक्ति है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **झूठी भगति हिए धरै...** है न उसमें ? ईश्वर को जाने बिना '**हिए**' अर्थात् भगवान स्वयं, ऐसा। मोक्षसुख की आशा झूठी है, ऐसा लिखा है। हाँ, **झूठे सुख की आस...** ऐसा इकट्ठा किया। सुख की आशा ही झूठी है उसे। मोक्ष के सुख की आशा, वह सब झूठी है, ऐसा। आहाहा! यह है परन्तु ठीक।....

यह आता है, बन्ध अधिकार में यही आता है न! भोग के लिये आता है न ? भोग के लिये ही पुण्य को करता है वह। (इन्द्रिय) सुख का (लक्ष्य) है पर में। अतीन्द्रिय सुख का भाव नहीं, उस सुख की अभिलाषा है अन्दर गहराई में। जो वस्तु देखी नहीं उसकी भावना उसे कहाँ से होगी ? ऐसा कहते हैं। भाया है, उसकी ही भावना है। पुण्य जड़ है... उसमें आता है न! जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ की रुचि है, उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं। अनेकान्त है। स्व-रूप से है, होता है और राग से होता नहीं। अभी एक दृष्टान्त आया आज ही उसमें। प्रकाश... प्रकाश न ? सन्मति सन्देश।

एक था जैन सम्प्रदाय का व्यक्ति। उसने अपना जो पूर्व का धर्म था, वह छोड़ दिया और सच्चा धर्म अंगीकार किया सप्तभंगी का अनेकान्त मार्ग। जो स्व से है और पर से नहीं, ऐसा अनेकान्त सप्तभंगी का मार्ग अंगीकार किया। तब दूसरे ने व्यंग किया कि अरे! बाप-दादा का धर्म छोड़कर यह सप्तभंगियों के साथ गया। सप्तभंगी। मूलचन्दभाई! सप्तभंगी उसमें है। तब उसने कहा कि मैंने कचरा इकट्ठा किया था न, उसे एक-दो भंगी

से नाश हो, ऐसा नहीं था। सप्तभंगी से उसका नाश हो, ऐसा था, इसलिए मैंने बदला है। है या नहीं पुस्तक कहाँ? पत्रिका है न? सन्मति सन्देश है, उसमें आया है। यह सब इकट्ठा करे थोड़ा-थोड़ासा इसलिए लोगों को जरा ठीक पड़े। आहा! तुमने तो यह मूल धर्म अपने बाप-दादा का छोड़ दिया और तुम सप्तभंगियों के साथ में गये। भंगियों के साथ में। भंगी है न वह सप्तभंगी। वह कहीं है अवश्य कहीं। नीचे है नीचे। बड़े अक्षर में नीचे। ऐसे सब डाले हैं।

एक और वृद्ध का डाला है। मरणासन। एक था पिता। मरने की तैयारी। कहा, 'बड़ा लड़का कहाँ है?' यहाँ है। ऐसा कि मरने की तैयारी हो तो सबको बुलावे। उत्तर मिला, यहाँ। 'मझला?' मझला अर्थात् बीचवाला। यहाँ है। 'और फिर छोटा?' आपके पास खड़ा है। सुनकर उनका मरणासन पिता चीखकर बोला। 'अरे, कमबख्तों फिर दुकान पर कौन होगा? दुकान में क्या आग लगायेगा?' अब मरना है इसे। वे बेचारे मरण (शय्या पर) है, वे सब इकट्ठे हो न। ऐई! ऐसा है। वह कहीं है अवश्य। नीचे है नीचे, हों! उसका—लड़के का बताया था। सप्तभंगी। ....का मार्ग अनेकान्त। अनेकान्त है न! स्वपने है, परपने नहीं। शुद्धता शुद्धता से होती है, अशुभ से होती (नहीं)। अशुभ अर्थात् शुभ-अशुभ परिणाम से नहीं होती।

एक प्रसिद्ध विद्वान ने अपने कुलधर्म को छोड़कर... प्रसिद्ध विद्वान ने कुलधर्म छोड़ दिया। जैनधर्म स्वीकार किया। इस प्रसंग में समाज में उनके एक मित्र ने उन पर व्यंग करते हुए कहा—'महोदय! आश्चर्य की बात है। आप इतना श्रेष्ठ धर्म और समाज को छोड़कर सात भंगियों को मिलने जा रहे हैं।' सप्त भंगियों में मिलने जा रहे हैं। विद्वान ने व्यंग का उत्तर व्यंग से देते हुए कहा—'क्या करें भाई! आपके समाज में रहते हुए आत्मा पर इतना कचरा इकट्ठा हो गया है। उसे साफ करने के लिये एक-दो भंगियों से काम नहीं चल सकता। सात भंगियों की आवश्यकता पड़ी है हमारे।' ऐसा उसने व्यंग किया। आहाहा! अब अपना बाप-दादा का... बहुत से ऐसा कहते हैं न इसमें यह वे। ऐई! तुमको कहते होंगे या नहीं?

मुमुक्षु : दो बाप के।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो बाप के, हं, ऐसा। वहाँ मूलचन्दजी ऐसा कहते थे, बदले

अर्थात् दो बाप के हो गये। अपना यह सम्प्रदाय छोड़कर... आहाहा! भाई! परन्तु ऐसा है, तुम्हारे सम्प्रदाय में रहकर, इतना मिथ्यात्व का कचरा घुस गया है कि एक-दो भंगियों से चले ऐसा नहीं। सप्तभंगी से चले ऐसा है। कहो। आहाहा! यह तो वह व्यंग किया इसलिए उत्तर ऐसा दिया।

और बाई का नहीं आया था एक? पहले नरक का नाम रत्नप्रभ है या नहीं? पहला नरक। क्या नाम है?

मुमुक्षु : रत्नप्रभा।

पूज्य गुरुदेवश्री : रत्नप्रभा। तो एक साधु कहे एक बुढ़िया को। कहे, माँ, वृद्धा माँ! तुम्हारे रत्नप्रभा जाना है? 'अरे महाराज! हम पामर जैसे रत्नप्रभा कैसे जायें? आप जैसे जायें।' वह रत्नप्रभा है न। आहाहा! ... कुछ भान नहीं होता। मजाक करने गया वह।

मुमुक्षु : अपने को .... मानती है। मुझे कहाँ रखा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हम रत्नप्रभा...

मुमुक्षु : उसे तो कुछ खबर नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे बेचारे को कुछ खबर नहीं थी। रत्नप्रभा अर्थात् क्या? पहले नरक का नाम है। वृद्धा को कहे, 'रत्नप्रभा जाना है?' 'अरे महाराज! हम पामर व्यक्ति। रत्नप्रभा आप जैसे जायें।' अरे, अरे! नरक में जाने को तुम योग्य हो, हम नहीं। उसे बेचारी को खबर नहीं, ऐसा। इस प्रकार ऐसा का ऐसा चला है जगत में। आहाहा!

तो अपना कुलधर्म सम्प्रदाय धर्म छोड़कर दूसरा धर्म अंगीकार करे तो, ऐई! तुम भ्रष्ट हुए। ऐई! तुम दो बाप के हुए। जिन्दगी में दो बाप किये, ऐसा कहते हैं। कहते हैं न? यह तुमको तो सब खबर है। आहा! अरे भाई! बाप तो एक ही होता है। भगवान तीन लोक का नाथ आत्मा, उस आत्मा की दृष्टि का पिता है। उसकी प्रजा का पिता आत्मा है। उसकी प्रजा, निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान निर्विकल्प पर्याय, वह उसकी प्रजा है। शुभराग, वह कहीं आत्मा की प्रजा नहीं। उस शुभराग का पिता आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। लोगों ने इसे मजाक में उड़ा दिया है कहीं।

झूठी भगति हिए धरै, झूठे प्रभुकौ दास... ठीक। यह भगवान का दास होता है, (परन्तु) मिथ्यादृष्टि खोटा है। वह तो राग का दास है और प्रभु का दास कहना चाहता है। झूठा है। आहाहा! समझ में आया? देखो, किसमें रखा है यह सब? मोक्ष में। मोक्षमार्ग में राग, वह बिल्कुल कारण है नहीं। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में, सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने में, सम्यक्चारित्र प्राप्त करने में राग बिल्कुल कारण नहीं है। वह तो दु:खरूप और विघ्न करनेवाला है। उसके बदले जो ऐसा माने, वह प्रभु का दास नहीं, झूठा है। क्योंकि प्रभु ने ऐसा कहा है कि रागरहित तेरा स्वरूप है, उसका अनुभव कर तो मोक्ष होगा। तो यह कहता है कि नहीं, नहीं। परन्तु यह राग है, वह कहीं मदद तो करे। प्रभु का दास, व्यवहार से भी प्रभु का दास नहीं हुआ तू तो। भगवान की आज्ञा है, उसका वह दास (नहीं हुआ)। **झूठे प्रभुकौ दास...** लो।

मिथ्यात्व की विपरीत वृत्ति। यहाँ इसका विशेष स्पष्ट करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - २८

मिथ्यात्व की विपरीत वृत्ति

(सवैया इकतीसा)

माटी भूमि सैलकी सो संपदा बखानै निज,
कर्ममैं अमृत जानै ग्यानमैं जहर है।
अपनौ न रूप गहै औरहीसौं आपौ कहै,
साता तो समाधि जाकै असाता कहर है।।
कोपकौ कृपान लिए मान मद पान कियैं,
मायाकी मरोर हियैं लोभकी लहर है।
याही भांति चेतन अचेतनकी संगतिसौं,
सांचसौं विमुख भयौ झूठमैं बहर है।।२८।।

शब्दार्थ:-सैल (शैल)=पर्वत। जहर=विष। औरहीसौं=पर द्रव्य से। कहर=आपत्ति।

कृपान=तलवार। बहर है=लगा हुआ है।

अर्थः-सोना-चाँदी जो पहाड़ों की मिट्टी है, उन्हें निज-सम्पत्ति कहता है, शुभक्रिया को अमृत मानता है और ज्ञान को जहर जानता है। अपने आत्मरूप को ग्रहण नहीं करता, शरीर आदि को आत्मा मानता है, साता वेदनीय जनित लौकिक-सुख में आनन्द मानता है और असाता के उदय को आफत कहता है, क्रोध की तलवार ले रक्खी है, मान की शराब पी बैठा है, मन में माया की वक्रता है और लोभ के चक्कर में पड़ा हुआ है। इस प्रकार अचेतन की संगति से चिद्रूप आत्मा सत्य से परान्मुख होकर झूठ ही में उलझ रहा है।।२८।।

काव्य-२८ पर प्रवचन

माटी भूमि सैलकी सो संपदा बखानै निज,
कर्ममैं अमृत जानै ग्यानमैं जहर है।
अपनौ न रूप गहै औरहीसौं आपौ कहै,
साता तो समाधि जाकै असाता कहर है।।
कोपकौ कृपान लिए मान मद पान कियैं,
मायाकी मरोर हियैं लोभकी लहर है।
याही भांति चेतन अचेतनकी संगतिसौं,
सांचसौं विमुख भयौ झूठमैं बहर है।।२८।।

आहाहा! कितना डाला! देखो। क्या कहते हैं? **माटी भूमि सैलकी...** सोना-चाँदी तो पहाड़ों की मिट्टी है। ऐई मलूकचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसका कहलाये न, इनका लड़का... इतनी हूंफ तो रहे न थोड़ी। वह एक व्यक्ति नहीं कहता था? कि भाई, हमारे साला की रोकटोक अच्छी हो तो भी हूंफ तो रहे न हमको, ऐसा कहता था। भाई को खबर है, नहीं? नाम (नहीं दिया जाता)। एक व्यक्ति कहता था। अरे, साले की बहू परन्तु कहाँ से? अब साले की

बहू में तुझे क्या? कि उसका वह रहे, हमको हूंफ रहे। अब ऐसे के ऐसे मूर्ख है।

यहाँ कहते हैं, **सोना-चाँदी जो पहाड़ों की मिट्टी है, उन्हें निज संपत्ति कहता है।** आहाहा! धूल के ढ़ेर। हम पैसेवाले हैं। चाँदी और सोना इतना हमारे पास में है। इतने पैसे तो हमारे सामने नगद पड़े हैं। परन्तु वह तो जड़, मिट्टी, धूल पहाड़ है। उसका स्वामी कहाँ से हो गया तू? आहाहा! ऐसी लक्ष्मी जो पत्थर की है, उसे मिथ्यादृष्टि निज मानता है। अपनी सम्पदा मानता है। वह मूढ़ है, ऐसा कहते हैं, देखो। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी तो ऐसा ही कहे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। कहे उसे क्या? वस्तु ऐसी है या नहीं? अब वह तो जड़ की चीज़ है मिट्टी। पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति जड़ है। और कहे, तुम्हारी इज्जत है, हम इज्जतदार हैं, हमारे खानदान में इज्जतदार कुल के हैं। अब इज्जत भी तेरी कहाँ से आयी? इज्जत तो जड़ है।

माटी भूमि सैलकी सो संपदा बखानै निज, कर्ममैं अमृत जानै... यह पुण्यभाव को धर्म माने। आहाहा! शुभभाव करके वह ऐसा मानो कि, आहाहा! हमने कितना त्याग किया? हमने कितना किया? अज्ञानी की यह मान्यता है, कहते हैं। मिथ्यादृष्टि की ऐसी विपरीत वृत्ति है। **कर्ममैं अमृत जानै...** लो। **शुभक्रिया को अमृत मानता है।** है न अन्दर? शुभ क्रिया को अमृत जाने, लो। **ग्यानमैं जहर है...** अरे, ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान करते हो, यह तो वह जहर है। ज्ञान... ज्ञान... क्या करते हो? आत्मा ज्ञान है और उसे जानना है। अब यह राग करे, वह (वस्तु) नहीं? शुभराग, वही अमृत है। आहाहा!

लो, कुछ करना नहीं और ज्ञान करो, आनन्द में रहो। ऐसा करके आत्मा के ज्ञान को जहर बताता है। उसकी विमुखता बताता है, ऐसा। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है। उसमें एकाकार हो तो ज्ञान की एकता से धर्म हो। 'अब ऐसे तो बहुत ज्ञान किये।' यह नहीं किया तूने, सुन न!

मुमुक्षु : नौ पूर्व का ज्ञान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ पूर्व का ज्ञान, वह ज्ञान ही कब था? नौ पूर्व का ज्ञान, वह ज्ञान ही कब था? वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है, अज्ञान है। आहाहा! यदि ज्ञान हो तब तो

शुद्धि होनी चाहिए और साथ में सुख होना चाहिए। सुखरहित ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो पहले कलश में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न।

कर्ममें अमृत जानै ग्यानमैं जहर मानै... जहर का अर्थ यह निषेध करे। अब ऐसा पहले नहीं होता। पहले यह तो करो। फिर करते-करते... बाह्य त्याग करो, पंच महाव्रत पालन करो, बारह व्रत पालन करो, प्रतिमा लो। जाओ।

मुमुक्षु : करके तो देखो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, और ऐसा कहे। करके तो देखो, और ऐसा कहे कितने ही। यह सब क्रिया करके क्या उसमें... ? धूल में थी। आहाहा! **अपनौ न रूप गहै,...** लो। मोक्ष का अधिकार है न, इसलिए अपना निजस्वरूप शुभ-अशुभ विकल्प से रहित है, उसे तो पकड़ता नहीं और उसे अनुभवता नहीं। **औरहीसौं आपौ कहै...** राग और विकल्प और देह की क्रिया, वह हमारी और हमको लाभ करती है (ऐसा मानता है)। विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११०, आषाढ़ कृष्ण १३, मंगलवार, दिनांक २०-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य-२८, २९, ३०

नाटक (समयसार), मोक्षद्वार। मोक्ष आत्मा के स्वभाव के आश्रय से होता है, ऐसा अज्ञानी मानता नहीं। यह अधिकार चलता है। है न? **मिथ्यात्व की विपरीत वृत्ति।** २८। २८। मिथ्यादृष्टि, जिसकी दृष्टि विपरीत है, अज्ञानी है, वह वास्तविक तत्त्व को मानता (नहीं)। उल्टा मानता है। किस प्रकार, कहते हैं, देखो।

माटी भूमि सैलकी जो संपदा बखानै निज... जो लक्ष्मी है सोना, चाँदी, हीरा, माणेक—वह तो सब पहाड़ की मिट्टी है, पर्वत की मिट्टी है। उसे, अज्ञानी कहता है कि मेरी लक्ष्मी है। अपनी लक्ष्मी तो अन्तर अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और शान्ति—ऐसा उसका त्रिकाली स्वभाव, वह उसकी निज लक्ष्मी है। उसे मानता नहीं। यह लक्ष्मी धूल को मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो वह सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण, बाहर के अपवास करता हो, परन्तु वह लक्ष्मी जड़ है, वह मेरी है, ऐसा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। वह धर्मी नहीं। उसे धर्म होता नहीं। वह लक्ष्मी तो जड़ की अवस्था है। हमारे पास इतने पैसे हैं, हमारे पास इतने पैसे हैं।

कर्ममैं अमृत जानै... शुभभाव की जो क्रिया है—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का नाम स्मरण—वह सब शुभभाव है, राग है, कर्मभाव है। उसे वह (मिथ्यादृष्टि) अमृत जाने, उसे वह धर्म माने।

मुमुक्षु : शास्त्र में अमृत कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा है कहाँ? वह तो व्यवहार कहा है। अमृत तो आत्मा है, उसका अनुभव हुआ है, उसे व्यवहार परिणाम में आरोप देकर अमृत कहा गया है। यहाँ तो यह अकेले शुभभाव को ही अमृत मानता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव से भरपूर पिण्ड तत्त्व, ऐसा जिसे अन्तर में आनन्द के स्वाद सहित अनुभव हुआ है, ऐसे जीव को वह अमृत दशा—वीतरागी दशा, वह अमृत है। उसे जो यह राग की मन्दता का भाव आता है दया, दान आदि, उसे व्यवहार अमृतरूप से आरोप करके कहा है। है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि राग को धर्म माने। वीतरागभाव को धर्म माने, वह तो आत्मा का आश्रय करके माने। यह तो राग है। दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, करुणा, कोमलता—यह सब भाव तो शुभ है, विकल्प है, राग के भाग—अंश हैं। उसे वह धर्म माने, अमृत माने, वह तो अमृत है (ऐसा माने)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई गया नहीं जरा भी। मिथ्यादृष्टि शुभ को अपना माने, उसे अशुभ कहाँ गया है? जिसे आत्मा का ज्ञान है कि शुभ-अशुभभाव, वह मैं नहीं। मैं तो चैतन्य अमृत आनन्दस्वरूप पूर्णानन्द, जैसा सर्वज्ञ भगवान को पर्याय में प्रगट हुआ, वैसा मैं द्रव्य से हूँ। ऐसा जहाँ अन्तर में निर्विकल्प भान वर्ते, उसे जो कुछ राग की मन्दता का भाव आवे, उसे व्यवहार अमृतरूप से, निश्चय अमृत प्रगट हुआ है, इसलिए उसका आरोप (दिया जाता है)।

अमृत तो एक ही प्रकार का है। परन्तु अमृत का कथन दो प्रकार का है। व्यवहार से अमृत, समकिती जीव को—आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदनी जीव को जो कोई राग की मन्दता के भाव होते हैं, उन्हें आरोप से अमृत कहा जाता है। है जहर। अरे, भारी विवाद। जितना दया पालो, व्रत पालो, यह करूं—यह सब विकल्प है, जहर। आहाहा! गजब बात! क्योंकि आत्मा तो अमृत आनन्दस्वरूप है। उससे उल्टी वृत्ति है। ऐसा करूँ, ऐसा करूँ (वह) बहिर्बुद्धि है। वह सब जहर है। परन्तु ज्ञानी को आत्मा का भान है (इसलिए) ऐसे जीव के शुभभाव को व्यवहार से अमृत (कहा जाता है)। कथन से निमित्त से अमृत है; वस्तु से नहीं। यह मिथ्यादृष्टि की विपरीत वृत्ति का स्वरूप है। कहो, समझ में आया?

कर्ममैं अमृत जानै ग्यानमैं जहर... माने। यह ज्ञान, वह क्या परन्तु? ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... यह जानपना ज्ञान, आनन्द के साथ का ज्ञान, वह ज्ञान, वह वस्तु है। क्या कहते हैं यह? ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा में एकाग्र होना, वह आनन्द है, उसे वह जहर जैसा मानता है। वह नहीं होता अभी। अभी यही होता है। शुभभाव की क्रिया, वह

धर्म। ऐसा मिथ्यादृष्टि का लक्षण ऐसी विपरीत वृत्ति में होता है। अनन्त काल से भटका, इसने यह सच्ची वस्तु और खोटी क्या, इसकी खबर की ही नहीं। साधु हुआ तो क्रियाकाण्ड में मर गया उसमें। अपवास किये और व्रत पालन किये और तपस्यायें कीं, वह तो सब राग की मन्दता है। और मैंने आहार का त्याग किया और मैंने व्रत पालन किये—यह अभिमान मिथ्यात्व है। आहाहा!

और **ग्यानमैं जहर है...** आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका ज्ञान करो, उसे पहिचानो, उसका ध्यान करो। यह क्या सिरपच्ची है, कहता है। अज्ञानी को आत्मा का ज्ञान करना, वह जहर जैसा लगता है। प्रतिकूल लगता है, ऐसा। आहाहा! अन्तर चैतन्य भगवान आत्मा अकेला समझण और चैतन्य का पिण्ड है। उसमें एकाग्र होना, उसे—अज्ञानी को सुहाता नहीं। राग में एकाग्र होना सुहाता है। इसलिए कहते हैं, वहाँ सुहाता नहीं अर्थात् कि ज्ञान में उसे जहर मानता है। कल एक गाथा में कितना अर्थ हो गया पुरुषार्थसिद्धि उपाय में।

अब आज आया वापस जैन सन्देश में। समकिती का बन्धभाव—कर्म का बन्धभाव, वह मोक्ष का कारण है। कहो, आता है न वह मोक्ष बंधो... ? इसका अर्थ जैन सन्देश में किसी ने डाला है। स्वयं कैलाशचन्दजी इसका निषेध करते हैं। उसमें वापस यह डाला। क्षुल्लक है, कोई है। नहीं, समकिती का बन्धभाव है, वह मोक्ष का कारण है। अर्थ ही खोटा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय (में कहा है कि) समकिती का रागभाव, वह बन्ध का ही कारण है। मिथ्यादृष्टि का राग बन्ध का (कारण) और समकिती तथा मुनि को (भी राग बन्ध का कारण है।) सच्चे सन्त आत्मज्ञानी ध्यानी, उन्हें भी पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह बन्ध का ही कारण है। अन्तर आश्रय वस्तु बिना बाह्य आश्रय की यह जो वृत्ति हुई है, वह सब जहर है। कठिन काम, भाई! समझ में आया?

अपनौ न रूप गहै और ही सौं आपौ कहै... स्वयं चैतन्य आनन्द का रूप और स्वरूप शुद्ध वीतराग है, ऐसे आत्मा के स्वरूप को तो स्वयं अनुभव करता नहीं, ग्रहण करता नहीं, मानता नहीं, जानता नहीं, **और ही सौं आपौ कहै...** और शरीर, पुण्य-पाप के भाव शुभभाव, वे सब हमारे हैं। **और ही सौं आपौ कहै...** अन्य को अपना मानता है। आहाहा! वहाँ तक तो चला था कल। **साता तो समाधि जाकै...** पूर्व का सातावेदनीय

का उदय हो, शरीर निरोग, पैसा, इज्जत-कीर्ति, मकान—उसे वह साता—समाधि मानता है। हम सुखी हैं। लड़के हों चार-पाँच अच्छे बड़े, पाँच-पाँच हाथ के लम्बे, पैसे हों करोड़-दो करोड़। करोड़-दो करोड़ नहीं, तुम्हारे तो अधिक होंगे।

परन्तु उसको अधिक हैं न दूसरे को अपने शान्तिलाल खुशाल। उसके पास... दशाश्रीमाली बनिया अपना। गोवा-गोवा। दो अरब चालीस करोड़। मैंगनीज निकले तो ऐसा हो जाये कि आहाहा! मुझे मैंगनीज निकला। अब धूल निकलती है। वह तो लोहा है। स्टील-स्टील। उसमें से निकालते हैं न मैंगनीज। गोवा में है न? पाणसणा के। ... अभी जमीन ली है न, जमीन (उसमें से) एक अरब का एल्युमिनीयम निकला। प्रतिदिन १५-१५ बड़े (ट्रक निकलते हैं), कहते हैं। कितने ही पन्द्रह हजार या ऐसा कुछ है न? उसके बहनोई पोपटभाई नहीं आये थे? ट्रक इतने निकलते हैं, कहते हैं। हमारे इतने ट्रक... परन्तु तू कौन और वह कौन? वह तो जड़ मिट्टी है। आहाहा! हमारे ऐसी लक्ष्मी है, हम ऐसे हैं, हम सुखी हैं। सुखी अर्थात् समाधि नहीं, ऐसा। साता के उदय की सामग्री मिले, उसे मूढ़ साता और समाधि मानता है। बहुत सुखी हैं, ऐसा मानता है, मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है।

ऐ मलूकचन्दभाई! तुम्हारा न्यालचन्दभाई कहता था कि हमारे रहना पड़े ऐसा है वहाँ। तुम स्वीट्जरलैण्ड जा आये न? हमारे वहाँ रहना पड़े उस प्रमाण। मैंने कहा, ऐसी ऋद्धि तेरी? बड़ा बँगला, ... दो करोड़ रुपये। .... तुम्हारा मास्टर कहता था कि पूनमचन्द को नहीं, ऐसा वैभव उसे है। कहे, महाराज! हमारे इस प्रकार से सबको रहना पड़ता है, कहे। ऐसा कहता था। यहाँ आया था न। अरे, अरे! मार डाला। कौन रहे? इस प्रकार रहना पड़ता है अर्थात् उस चीज़ से रहना पड़ता है? ऐसा वैभव तो साधारण लोगों को होता ही है वहाँ, ऐसा कहे। स्वीट्जरलैण्ड। आहाहा!

कहते हैं, **साता तो समाधि जाकै...** शरीर निरोग हो, हम सुखी हैं। अब धूल शरीर निरोगी, उसमें तुझे क्या? स्त्री अच्छी, आज्ञाकारी लड़के अच्छे, मकान अच्छे हों, अच्छे (हैसियत) प्रमाण, लो न। चालीस लाख का मकान है वहाँ गोवा में। चालीस लाख का एक मकान। पैसा हो, उसे कुछ थोड़े रुचे? उसमें तुम्हारे क्या कहलाता है

वह ? सर्दी में गर्म और गर्मी में ठण्डा... अपनी भाषा, लो न। (**मुमुक्षु :** एयरकंडीशन में दोनों आ गये।)

सुखी है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि साता के उदय की सामग्री (मिलने से) सुखी हैं, ऐसा मानता है। मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है, पापी है। आहाहा! कहो, गुणवन्तभाई! यह तुम्हारे सब भाई तीन भाई, छह भाई लो तुम, तुम्हारे पिता और वे सब। वे सब सुखी हैं, ऐसा लोग कहते हैं। पाँच-पाँच, छह-छह, सात-आठ लाख रुपये एक-एक को। छह भाई। लोग बातें करे। धूल भी नहीं वहाँ सुख। पैसे से सुख कहाँ आया था वहाँ ? सुख तो आत्मा में है। ऐसा न मानकर सामग्री में सुख माना, वह मूढ़ जीव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जाकै असाता कहर है... और शरीर में रोग आवे, निर्धनता हो, लड़के मर जाये, पुत्री विधवा हो, लड़का मरे। लड़की मर जाये उसकी दिक्कत नहीं, परन्तु लड़की विधवा हो और लड़का मरे। लड़की मर जाये ठीक, परन्तु लड़की विधवा हो और लड़का मरे। परन्तु लड़की की बहू मरे तो लड़का फिर से (विवाह करे), और उस समय चारों ओर का... बीमावाला भागे, यहाँ दुकान सुलगे। असाता के उदय हाय... हाय... रोवे। अरेरे! जहर है यह सब। लो, ठीक। विष—जहर है। यह तो वह कहर... क्या है भाषा ? आपत्ति... आपत्ति आयी। आहाहा!

बाहर की सामग्री न हो, उसमें आपत्ति क्या आयी ? उसमें आपत्ति कहाँ आयी ? आपत्ति तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष का भाव करे, वह आपत्ति है। आपत्ति तो वह है और मानता है कि यह प्रतिकूलता... रोग घिर गया, शरीर में ऐसा हो गया। छह महीने से खाट तो घर में से उठती नहीं। एक जहाँ उठे वहाँ दूसरा पड़े, दूसरा उठे वहाँ तीसरा पड़े। घर में आठ व्यक्ति हैं। छह महीने हुए परन्तु खाट हटती नहीं, ऐसा कहे। क्या है परन्तु ? आपदा बापू! उसमें आपत्ति कहाँ आयी ? वह तो परवस्तु है। बाबूभाई! बराबर होगा ? आपदा माने प्रतिकूलता को। आहाहा!

देखो न, एक-एक घर में तब वह था न! बुखार था प्लेग का। एक-एक घर में बीस-बीस व्यक्ति। उन्नीस मर गये और एक रहा।

मुमुक्षु : प्लेग में बहुत लोग मर गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत लोग मर गये थे .... बहुतों के घर में से बहुत मर गये थे। आहाहा! (संवत्) १९६६ या उसके पहले की बात है। इतने लगातार मर गये थे, हों! हम निकले थे एक बार (संवत्) १९७४ में। ... रास्ते में छोटा गाँव। २०-२५ घर। परन्तु रास्ते में निकले वहाँ दो मुर्दे पड़े थे। श्मशान में लाकर पड़े थे। घर २०-२५। (संवत्) १९७४ की बात है न। इन्फ्लूलेंसा ७४ में। प्लेग नहीं।

हीराजी महाराज विहार में थे। छोटा गाँव, वहाँ निकले रास्ते में। श्मशान में दो अर्थियाँ पड़ी थीं। परन्तु ... घर २५ और यह? सब फट... फट... फट मरते हैं, कहे। प्लेग हुआ, चिल्लाहट मचाये। ....निकली। बस एक-दो-तीन दिन, वह समाप्त। ऐसी आपत्ति पड़ी। क्या है परन्तु वह आपत्ति? उसके कारण आपत्ति कहाँ थी? तेरी मूर्खाई के माप हैं यह सब। मूर्खाई के माप हैं यह सब। आपदा तो अन्दर विकार और दु:खदशा, मिथ्यात्व और राग-द्वेष हो—वह आपदा है। इसे आपदा मानता है, मूढ़ है, कहते हैं। आहाहा!

यह पहले की बात है। (संवत्) १९६६ की। ६६ की नहीं, ५९ की। प्लेग था न प्लेग। उमराला में प्लेग हुआ। प्लेग में... हम पुराने स्कूल में पढ़ते थे। ग्यारह वर्ष की उम्र होगी। तेली के तीन बड़े लड़के, हों! जहाँ दीक्षा हुई थी। लोहे जैसे पच्चीस-पच्चीस वर्ष के जवान। एक पच्चीस और एक अट्ठाईस और एक तीस (वर्ष का)। एक के बाद एक, एक के बाद एक, ऐसा जनाजा निकले। जनाजा होता है न? निकले उसका पिता पीछे। परन्तु रोवे नहीं। ऐसा बुरा न रोवे। 'ओय मारा बापला...' बनिया ऐसा बहुत करे। ऐसा वह न रोवे परन्तु आँखों में धारा बह जाये। स्कूल में खड़े हुए। एक जनाजा निकले। दूसरे दिन दूसरा निकले, तीसरे दिन तीसरा निकले। आहाहा! तेली है तेली (मुसलमान)। गाँव में मस्जिद है, वहाँ ले जाये। लोग कहे आहाहा! फलाना भाई को आपदा।

परन्तु वह आपदा कहाँ आयी? वह तो बाहर का संयोग है। समझ में आया? आपदा तो स्वरूप का भान भूलकर... आहाहा! यह मुझे आपदा आयी, ऐसी तेरी मान्यता, वह तुझे आपदा है। आहाहा! यह सब लोग नहीं कहते? हमारे सब व्यवस्थित

है। किसकी व्यवस्थितता? मूढ़ है। किसकी व्यवस्थितता है? बाहर के स्त्री, पुत्र, परिवार, वह व्यवस्थितता हो गयी? वह व्यवस्थितता तो परवस्तु है। परवस्तु उसके कारण से रही है और उसकी होकर रही है। क्या तेरी होकर रही है? बराबर है मेघाणी? यह जड़ शरीर, शरीर का होकर रहा है जड़ या आत्मा का होकर रहा है? यह तो अजीव है। यह अजीव, अजीव होकर रहा है। आत्मा की—जीव की दशा होकर रहा नहीं। इसी प्रकार पैसा अजीव होकर रहता है। तेरा होकर रहा है? वह यहाँ कहते हैं, असाता को तो आपदा मानता है।

कोपकौ कृपान लिए... क्रोध की तो तलवार हाथ में रखता है। जरा-सा प्रतिकूल स्वयं हं। पत्थर आड़े आवे। चलते हुए ऐसा पड़ा हो न पत्थर। ठेस लगे वहाँ पत्थर के ऊपर (रोष करे)। क्या है परन्तु? ऐसे पत्थर हो न जमीन में चिपका हुआ और चलते हुए ठोकर लगे। ध्यान स्वयं न रखे। ध्यान रखने से कहीं रहे, ऐसा कुछ नहीं। वह ठोकर लगे वहाँ दुःखे और अँगूठा ऐसे बराबर... गिर जाये, हों! गिर जाये। आहाहा! पत्थर यहाँ किसने रखा? परन्तु क्या है तुझे? क्रोध की तो तलवार लेकर बैठा है मूढ़ जीव। आत्मा के स्वभाव को रौंद डालता है, ऐसा कहते हैं।

कोपकौ कृपान लिए मानपद पान कियैं... मान की मदिरा पी है। आहाहा! जहाँ-तहाँ हम सेठिया हैं, हमारा बड़ा घर है, हमारे (अच्छे कुल से) कन्या आवे, हम (अच्छे कुल में) कन्या दें, हम ऐसे हैं। क्या है परन्तु अब? मान की मदिरा पी है तूने। ऐ कालीदासभाई! क्या है यह? अरे, गजब! हमारे सात पीढ़ी से खानदानी घर है। कहीं हमको कलंक लगा नहीं। हमारी माँ तो अच्छे कुल की थीं। परन्तु तेरी माँ ही कहाँ है और कुल भी कहाँ है? सुन न अब! तेरा कहाँ था वह? मानरूपी मदिरा पीकर पड़ा है। जहाँ-तहाँ मैं... मैं... मैं... मैं... मैं... मुझे आगे करो, मुझे सेठिया करो, मुझे प्रमुख करो, मुझे संघवी करो। कहते हैं, मान की तो मदिरा पी है मूढ़ मिथ्यादृष्टि ने। आहाहा!

मायाकी मरोर हियैं... कपट की तो वक्रता है। माया की वक्रता सेवन करता है। सरलता की तो गन्ध भी नहीं, कहते हैं। आहाहा! आता है, रामायण में आता है। सीताजी आये न वहाँ से। रावण के यहाँ से लाकर। रामचन्द्रजी जीतकर आये और उन पर रामचन्द्रजी को बहुत प्रेम। वह शत्रु को सुहाया नहीं। शत्रु थीं न बहुत सी रानियाँ।

रामचन्द्रजी को इनके प्रति—सीताजी के प्रति प्रेम, महासती, महाब्रह्मचारी। मन में रामचन्द्रजी के अतिरिक्त स्वप्न में भी दूसरा विकल्प नहीं। भले वहाँ रही छह महीने या ऐसा कुछ... एक जगह बहुत लिखा है लाख वर्ष कुछ। एक जगह छह महीने लिखा है। छह महीने होगा। एक जगह ऐसा लिखा है कि लाख वर्ष वहाँ रही। ऐसा कुछ लिखा है। इतना अधिक नहीं होगा। लाख वर्ष नहीं रहती। छह महीने रही होगी।

मुमुक्षु : वनवास....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बारह वर्ष का ही था। आहाहा!

फिर शत्रु को सुहाया नहीं। सौतनें इकट्ठी होकर सीताजी के पास गयीं। 'तुमने रावण को देखा है माँ?' नहीं, मैंने तो रावण को देखा नहीं। 'कुछ देखा नहीं तुमने?' 'भाई! आता था और जाता था, उसमें पैर का अंगूठा दिखता था किसी समय,' सीताजी कहे। 'तब इतना तो चित्रित कर दो न।' कपट से.... फिर बताया रामचन्द्रजी को कि देखो यह रावण की पूजा करनेवाली है। अरे, ऐसे शत्रु! शत्रु को सुहाया नहीं इनका बहुमान। पटरानी और बहुत सती महा भगवती स्वरूप सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी थीं सीताजी। गर्भ में दो पुत्र थे। तो भी ज्ञानी धर्मात्मा थीं। विकल्प का भी त्याग है अन्दर दृष्टि में। आहाहा! विषय की वासना थी, उसका भी त्याग है अन्दर दृष्टि में। आदर है नहीं। आहाहा!

सौतन ने अंगूठा (लिखाया)। इन्हें खबर नहीं। यह तो बेचारी भद्रिक सरल। अंगूठा लिखाकर फिर चित्र बनाया स्वयं ने। तैलचित्र कहते हैं या क्या कहते हैं तुम्हारे? टुं चित्र बनाया। एक जगह रखा। सामने सामग्री रखी पूजा की। रामचन्द्रजी आये तो कहे, यह क्या है? कहे, सीताजी रावण को पूजती थीं, वह यह सब है। ऐसा चित्र बनाकर किया है। अरे, गजब है न! रामचन्द्रजी के समय में उनके घर में ऐसा हो। मोक्षगामी, रामचन्द्रजी मोक्षगामी हैं। अन्तिम देह थी चरमशरीरी। राम को शंका हो गयी। वह भी शंका पड़ने का कारण था। धोबी बोला, वह भी शंका पड़ने का कारण। लोग आये, वह शंका पड़ने का कारण .... ऐसी सीता? आहाहा!

शत्रु ने कपट करके चित्र रखाया, लो। मिथ्यादृष्टि के लक्षण तो देखो। किसी प्रकार से सत्य को दबाना और असत्य की प्रसिद्धि करना। आहाहा! कहते हैं कि यह

तो माया की मरोड़ है, वक्र है मायावी। मरोड़ गया है माया में, कपट में एकाकार हुआ है कि ऐसा करूँ... हृदय हाथ न आवे ऐसी माया। भगवान तो कहते हैं कि मायावी कपटी मरकर ढोर होता है। क्योंकि तिर्यंच है न ढ़ोर, यह आड़ा शरीर ऐसे आड़ा। हाथी, घोड़ा और ऐसे आड़े होते हैं न, तिर्यंच आड़े। पूर्व में आडोडाई—माया और वक्रता—आडोडाई बहुत की हो। वहाँ उसके फल में ढोर हुए हैं। समझ में आया? ऐसा मिथ्यादृष्टि, माया में कलेजा हाथ नहीं आता, कहते हैं। आहाहा!

लोभ की लहर है... लोभ के चक्र में पड़ा है, लहर अर्थात्। लहर उठे न! लोभ के चक्र में मिथ्यादृष्टि पड़ा है। आत्मा की भावना की खबर नहीं। शुद्ध आनन्दस्वरूप हूँ, उसकी मुझे दृष्टि करके स्थिर होना चाहिए, उसके बदले लोभ के चक्र में... इतना मिले तो ठीक, इतना मिले तो ठीक, इतना मिले तो ठीक, कहीं सन्तोष ही नहीं होता। मिथ्यादृष्टि को लोभ के चक्र में... आहाहा! राग के, लोभ के (चक्र में)। राग का भाग है न वह। क्रोध और मान, वह द्वेष का भाग है तथा माया और लोभ, वह राग का भाग है। आहाहा!

जिसे आत्मा की खबर नहीं। अरे, मैं तो अनन्त आनन्द का स्वामी हूँ। मैं नहीं लक्ष्मी का स्वामी, नहीं शरीर का, नहीं पत्नी का। संसार में समकिती रहा होने पर भी किसी को अपने अन्तर में मानता नहीं। आहाहा! मेरा हो, वह मुझसे भिन्न नहीं होता। भिन्न हो, वह मेरा नहीं। आहाहा! उसे दृष्टि में सम्यक्ता प्रगट हुई है। गृहस्थाश्रम में हो, राज हो चक्रवर्ती का। राग का कण मेरा नहीं तो फिर राज कहाँ से आया? आहाहा! लोभ के चक्र में पड़ा है, कहते हैं।

याही भांति चेतन... इस प्रकार से भगवान आत्मा **अचेतनकी संगतिसौं**। देखो, यह मोक्ष अधिकार में मिथ्यादृष्टि कैसा होता है, उसकी व्याख्या की है। उसे मोक्ष का मार्ग हो सकता नहीं। आहाहा! **यह भाँति....** भगवान अचेतन के संग से। यह दया, दान, विकल्प, वह भी अचेतन—राग है। शरीर लक्ष्मी भी अचेतन जड़ है। उसके संग से **सांचसौं विमुख भयौ...** भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप से विमुख हुआ। **झूठमैं बहर है...** झूठ में लगा है। कहो, बराबर है यह? बहुत अच्छी बात ली है मोक्ष अधिकार में।

२९। यह दामोदरभाई बहुत बोलते थे। दामोदर चक्रवर्त। यह २९ वाँ है वह। ...वाले। मूलजीभाई के भाई। लाखाणी। यह २९वाँ बोल बहुत... दिगम्बर की पुस्तकें बहुत उनके पास। बहुत पढ़ी हुई पहले से।

अब कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि के लक्षण अधिक स्पष्ट करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - २९

पुनः (सवैया इकतीसा)

तीन काल अतीत अनागत वरतमान,
जगमैं अखंडित प्रवाहकौ डहर है।
तासौं कहै यह मेरौ दिन यह मेरी राति,
यह मेरी घरी यह मेरौही पहर है।।
खेहकौ खजानौ जोरै तासौं कहै मेरौ गेह,
जहां बसै तासौं कहै मेरौही सहर है।
याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतिसौं,
सांचसौं विमुख भयौ झूठमैं बहर है।।२९।।

शब्दार्थः-अतीतकाल=भूतकाल। अनागत=भविष्यत। खेह=कचरा। गेह=घर। सहर (शहर)=नगर।

अर्थः-संसार में भूत, वर्तमान, भविष्यत् काल का धारा प्रवाह चक्र चल रहा है, उसे कहता है कि मेरा दिन, मेरी राति, मेरी घड़ी, मेरा पहर है। कचरे का ढेर इकट्ठा करता है और कहता है कि यह मेरा मकान है; जिस पृथ्वीखण्ड पर रहता है, उसे अपना नगर बतलाता है। इस प्रकार अचेतन की संगति से चिद्रूप आत्मा सत्य से परान्मुख होकर झूठ में उलझ रहा है।।२९।।

काव्य-२९ पर प्रवचन

तीन काल अतीत अनागत वरतमान,
जगमैं अखंडित प्रवाहकौ डहर है।
तासौं कहै यह मेरौ दिन यह मेरी राति,
यह मेरी घरी यह मेरौही पहर है।।
खेहकौ खजानौ जोरै तासौं कहै मेरौ गेह,
जहां बसै तासौं कहै मेरौही सहर है।
याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतिसौं,
सांचसौं विमुख भयौ झूठमैं बहर है।।२९।।

देखो, बनारसीदास ने स्वतन्त्र मोक्ष के विरुद्ध की बात रखी है। **तीन काल।** भूतकाल—अतीत अर्थात् गया काल, अनागत—भविष्य और वर्तमान। **जगमैं अखंडित प्रवाहकौ डहर है...** चलता है अखण्ड प्रवाह। **तासौं कहै यह मेरौ दिन...** अभी तो हमारा दिन है, हों! कहते हैं या नहीं? हमारी अभी पुकार है? हमारी हमारी प्रधानता है शहर में, देश में, गाँव में, फलाना में, ढींकणा में। किसकी प्रधानता? मूर्ख! क्या कहता है तू यह? समझ में आया? हमारा दिन है, ऐसा कहता है न? **काल का धाराप्रवाह चक्र चल रहा है, उसे कहता है कि मेरा दिन है...** लो। दामोदरभाई बहुत बार कहते थे। काल तो चला जाता है परन्तु यह कहे कि यह मेरा दिन है, यह हमारी रात्रि। रात्रि में हमारे निवृत्ति से काम लेना हो, वह हमारी रात्रि है। रात और दिन तो काल जगत का है, तेरा कहाँ से आया? आहाहा!

यह मेरी घरी... यह मेरी घड़ी है। एक घण्टा मुझे जो दिया है, वह मुझे है। घण्टा था, वह तो काल प्रवाह है, तेरा कहाँ से आया घण्टा? वह मेरा काल है घड़ी का। **यह मेरौ ही पहर है...** पहर... पहर... सवेरे का क्या कहलाता है? एक पहर कहलाता है न। **मेरौ ही पहर है...** सवेरे में हम उठें और एक पहर तो मजा करें, फिर दुकान खोलें। दही और रोटी खायें उठकर। पहले यह था। यह तो अब चाय और नाश्ता हो गया। पहले यह दही रखा हो न, सवेरे उठकर दही और रोटी खाये। शाम को खिचड़ी, रोटी और

दही। बीच में फिर कुछ मुरमुरा-मुरमुरा। भूँगड़ा बहुत हल्की चीज़ कोई ऐसी। पहले ऐसा ही था। उसे कहते हैं कि देखो, सवेरे का एक पहर हमारा, फिर तुम्हारा काम। पहर कहाँ से आया परन्तु तेरा? वह तो जगत का काल है। एक पूरा पहर मेरे लिये। एक पहर मेरा नाम लेना नहीं। वह पहर हमारा है, फिर तुम्हारी नौकरी। ऐसा कहते हैं न? मानते हैं न? हमारी हाँक बजे ऐसा काल हमारा है।

उसमें आता है न गायन, नहीं? 'समय बदलता है, तब सब बदलता है।' ऐसा आता है। बहुत वर्ष पहले सुना था। पालियाद में ७५ का चातुर्मास था न। पालियाद में ७५ का चातुर्मास। कितने वर्ष हुए? ५२। उसमें यहाँ उपाश्रय में घुसते हुए सामने लिखा हुआ है। 'समय बदलता है, तब सब बदल जाता है।' सब बदलता है, यह स्त्री बदल जाये, लड़के (बदल जाये)। पैसा—लक्ष्मी न हो, तब सब बदल जाये। यह और होगा कुछ, परन्तु लम्बा था। ७५ में नहीं? दरवाजे के सामने... लिखा हुआ। समय बदले, तब सब बदल जाता है। परन्तु तू कहाँ बदल गया उसमें? यह हमारा काल था और हमारे पिता की मौजूदगी में हमारी इज्जत और हमारी लक्ष्मी। हमारे घर सन्देश आवे अच्छे-अच्छे घर के। वह हमारा काल था, वह थे। तेरा काल कब था? परन्तु मूढ़ और मिथ्यादृष्टि में ऐसी भूल पड़ती है। आहाहा!

खेहकौ खजानौ... लो, ठीक। यह **कचरे का ढेर इकट्ठा करता है।** यह पैसा-पैसा खेह को खजाना है, राख का खजाना है कचरे का। **और कहता है कि यह मेरा मकान है।** लो, खजाना खड़ा करे न मकान। यह पत्थर इकट्ठे किये। यह मेरा मकान। कैसा किया, देखो! अच्छे कारीगर को बुलाया था। पाँच लाख का हुआ है और हम खड़े-खड़े काम लेते थे, तब हुआ है। वरना तो... यह सब बातें पर की करे न, वह तो पागल देख लो पागल। बाबूभाई! हमारी देखरेख में हुआ है। ऐसे खड़े रहो ऐसे। तेरी देखरेख... देखरेख तो वजुभाई बहुत रखते थे मकान की। यह करते न वहाँ दस-दस लाख के मकान। उनका दरबार ऐसा था इसे पी जाये ऐसा। उसे सब आता है, ऐसा करो और ऐसा करो। बुरा। उसे सब आता हो। उसे सब आता हो।

व्याख्यान में आये थे वांकानेर, नहीं? दोनों आये थे, राजकुमार और वह स्वयं। रात-दिन लोग... परन्तु जब यह (राज) लिखना पड़ा था, तब रोये थे। जब राज

लिखना पड़ा। आँसू की धारा। व्याख्यान में आये थे। तब मोहनभाई थे न अपने। लोग तो समाय नहीं इतने लोग आवे न। दरबार आवे। वांकानेर का पुराना आवास था। आवास क्या? उपाश्रय। अभी नया बनाया है। (संवत्) १९७७ की बात है, हों! यह त्राग नीचे बारह बजे बैठा था, तब ओम ध्वनि आयी अन्दर से। शुरुआत यहाँ से हुई थी। वांकानेर त्राग था न। वहाँ अकेला बैठा था। कोई नहीं था। शुरुआत में .... वहाँ से आया था। वांकानेर।

यह कहते हैं कि देखो, यह हमारे मकान। क्या कहलाते हैं तुम्हारे? संगमरमर— आरसपहाण। संगमरमर के मकान देखो। सागर में है न अपने भगवानदास का मकान, छह लाख का मकान। वहाँ सागर में है। हम उतरे थे २० दिन यह गोदिका का तीन लाख का संगमरमर का मकान (जयपुर में)। बीस दिन वहाँ रहकर आये न अभी वह। ... कोई कहे कि उसने पचास लाख पैदा किये हैं। वहाँ से यह सब आया। यह किया न सब, ऐसा कोई कहता था। एक व्यक्ति दो-तीन करोड़ कहता था। इतना अधिक तो नहीं हो। यह पैदा करे तो यह धूल है। यह कहाँ आत्मा की थी? दो-तीन लाख खर्च किये न। उसे पैदा किया है हमने, इसलिए पैसा खर्च किया। आज ही कोई कहता था।

किसका पैसा और किसकी बात, बापू! आहाहा! हमने खर्च किये यहाँ। वह जड़ तेरा था, (कि) तूने दिया? वह तो जड़ है। वह तो जब उसकी गति जाने की हो तब जाता है। तुझसे ऐसे पैसे जाये, यह बात तीन काल में सच्ची नहीं। वह तो जड़ है। मैंने पाँच लाख खर्च किये। तू कौन है? तू तो आत्मा है। पाँच लाख जड़ को तू खर्च कर सकता है? जड़ को तू दे सकता है दूसरे को? नोट दे सकता है? यह नोट ले, यह दस रुपया ले, पच्चीस ले। पाँच लाख ले। वह जड़ है। अजीव का स्वामी होकर तू दे, मूढ़ है। आहाहा! खेह का खजाना साथ में है। जोड़े अर्थात् इकट्ठा करे पत्थर।

तासौं कहै मेरौ गेह... यह मेरा घर है।

मुमुक्षु : ऐसा कहे कि पत्थर का घर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पत्थर का ही है। यह तो अन्दर मानता है कि यह मेरा है, ऐसा कहना है। बोलने में तो ऐसा आवे। परन्तु अन्तर में माने कि मेरा घर है। मैंने बनाया है।

कुर्सी डालकर बैठता था आठ महीने, तब यह मकान बना है। एक व्यक्ति कहता था। हमको तो बहुत मिले हों न। यह मकान हमारा है, ऐसा मानता है। यहाँ तो बात यह है। चक्रवर्ती बड़े देवों ने बनाये हुए मकानों में रहता है, परन्तु अन्तर में मेरा कुछ नहीं। एक राग का रजकण भी मेरा है नहीं। मैं जहाँ हूँ, वहाँ राग नहीं; मैं जहाँ हूँ, वहाँ मकान नहीं। मैं जहाँ हूँ वहाँ तो ज्ञान और आनन्द और शान्ति है। यह बात है। मैं जो हूँ वहाँ तो राग भी नहीं, वहाँ मकान-फकान कैसा? आहाहा!

यह ९६ हजार रानियाँ हैं न साहेब आपको? कहो, भाई! रानी हमारे (लिये) दूसरा आत्मा और दूसरा आत्मा हमारा आत्मा होगा? दूसरे का आत्मा हमारा आत्मा होगा? यह रानी मेरी है? उसके शरीर के रजकण जड़ के हैं, वह शरीर के हैं, वे मेरे होंगे? वह तो अजीव है। आहाहा! जीव और अजीव के भान बिना अज्ञानी अचेतन के संग में यह मेरा... मेरा... मेरा... ऐसा मान रहा है। वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। चाहे तो साधु नाम धरावे और माने कि यह मेरे शिष्य, हमने इतने शिष्य बनाये। मूढ़ है। शिष्य-शिष्य। मुंड़े... मुंड़े... शिष्य नहीं समझते? चेला। शिष्य, हमारे शिष्य हैं। ऐ... शिष्य कैसे तेरे? वह तो आत्मा है, शरीर पर है। आहाहा!

जहां बसै तासौं कहै मेरौ ही सहर है... हमारा पोरबन्दर, हमारा सावरकुंडला, हमारा आंकडिया। गाँव। जहाँ बसे वहाँ वह गाँव मेरा। परन्तु गाँव तेरा कहाँ है? वह तो जगत की चीज़ है। जहाँ बसे वहाँ गाँव हो न! वह गाँव हमारा है। हमारा गाँव है। परन्तु गाँव तो परवस्तु है, उसमें तेरा कहाँ आया? .... मूढ़ की कोई व्याख्या ही अलग होगी? गाँव-गाँव में मूढ़ भरे हैं, कहते हैं। मूढ़ के गाँव कहीं अलग बसते होंगे? आहाहा! **जहां बसै तासौ कहै मेरौ ही सहर है**। लो, ठीक! **जिस पृथ्वीखण्ड पर रहता है, उसे अपना नगर बतलाता है।**

याहि भांति चेतन... यह तो इतने दृष्टान्त कहे, कहते हैं। इस प्रकार से भगवान को भूलकर—मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ, ऐसा अपना अस्तित्व, उसे भूलकर और जिसमें वह स्वयं नहीं, ऐसे राग में और शरीर में और मकान में 'मेरा' मानता है, वह अचेतन के संग से मिथ्यादृष्टि भ्रम में पड़ा है। आहाहा! मेरी वाणी। ऐसी वाणी बोलूं कि

आहाहा! अरे, परन्तु वाणी जड़ है न? आहाहा! बहुतों की वाणी कितनी ही ऐसी हो न! वह लड़की नहीं आयी थी? तुम नहीं थे। आदर्शभवन में वह छोटी लड़की थी पन्द्रह-सोलह वर्ष की, परन्तु कण्ठ.... बोले तो लोग एक बार ऐसे सुने तो चकित हो जाये। आदर्शभवन में गये थे न! आदर्शभवन क्या? आदर्शनगर। वह लड़की पहले स्तुति बोली थी। पन्द्रह-सोलह वर्ष की होगी। परन्तु वह तो अक्षर बोले, वहाँ रणकार बजे। .... कोई भी भाषा बोले न, वह दूसरे प्रकार की निकले। परन्तु वह तो जड़ की दशा है। उस भाषा का प्रकार करना, वह आत्मा है? आत्मा वह प्रकार कर सके? कण्ठ को आत्मा ध्रुजा सके?

मुमुक्षु : वाणीभूषण नाम रख दे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणीभूषण भी जड़ का भूषण? वक्ता बहुत हो तो उसे कहे कि वाणीभूषण है। जड़ का भूषण है तुझे? आहा! अरे, अरे, गजब! **याही भांति चेतन अचेतनकी संगतिसौं....** संगति स्वयं ने की है, हों, ऐसा कहते हैं। **सांचसौ विमुख भयौं...** भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप अपनी जाति में तो राग भी नहीं, शरीर नहीं, लक्ष्मी नहीं, मकान नहीं। ऐसी सत्य वस्तु को भूलकर विमुख होकर **झूठमैं बहर है...** झूठी बात में गति कर रहा है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि की बात की। अब सम्यग्दृष्टि के विचार सुनो। धर्मी जीव के भाव कैसे होते हैं?

★ ★ ★

काव्य - ३०

सम्यग्दृष्टि जीवों का सद्विचार

(दोहा)

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ग्यान कला घट मांहि।
परचै आतमरामसौं, ते अपराधी नांहि।।३०।।

शब्दार्थ:-मिथ्यामति=खोटीबुद्धि। परचै (परिचय)=पहिचान।

अर्थः–जिन जीवों की कुमति नष्ट हो गई है; जिनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है और जिन्हें आत्मस्वरूप की पहिचान है, वे भले मनुष्य हैं।।३०।।

काव्य-३० पर प्रवचन

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ग्यान कला घट मांहि।
परचै आतमरामसौं, ते अपराधी नांहि।।३०।।

जिन्हके मिथ्यामति नहीं... खोटी बुद्धि न हो। यह शरीर मेरा, लक्ष्मी मेरी, मकान मेरे, कीर्ति मेरी, पुत्र मेरे, स्त्री मेरी—ऐसी बुद्धि समकिती को होती नहीं। आहाहा! क्योंकि वह चीज पर है, उसमें तेरी कहाँ से आयी? मैं तो इस जगत की चीज़ का जाननेवाला—देखनेवाला मुझमें रहकर मैं हूँ। उस चीज़ को जानना, वह भी व्यवहार है। मैं तो मेरे स्वभाव को जाननेवाला—देखनेवाला ऐसा मैं आत्मा हूँ। ऐसा वह सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यामति नहीं। **...कुमति नष्ट हो गई है...** लो। **ग्यानकला घटमांहि...** जिसके हृदय में ज्ञान की प्रकाश कला उगी है। मैं तो राग से भिन्न सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीर्थंकर भगवान ने जो पर्याय में प्रगट किया, उतना आत्मा वह मेरा स्वरूप है। इसके अतिरिक्त मुझमें राग और शरीर ..... फलाना मेरा, मैं तुम्हारा गुरु—ऐसा स्वरूप में है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : संघपति....

पूज्य गुरुदेवश्री : संघपति होता है। यह झूठ है, संघपति कहाँ से आया? संघपति कहाँ से हो गया? संघ अलग चीज़ है, उसका पति कहाँ से आया? मूढ़ है। नृपति—नर अर्थात् मनुष्य का पति राजा। मनुष्य अलग का राजा तू कहाँ से आया? पत्नी का पति, आता है न? स्वामी—पति। वह कहाँ पति है तू उसका? वह तो भिन्न आत्मा है, उसका शरीर भिन्न। उसका पति कहाँ से हो गया तू? पूरी दुनिया मूढ़ है।

'अकेला भूल्या, दोंनो भूल्या, भूल्या सकल संसार; दास कबीरो एक न भूल्यो जेने अलखनो आधार।' आता है न उसमें? वह भूले हुए थे, उसे कहाँ भान था? अपने साधु नहीं था प्रकाशदास? कहता था कि कबीर तो ऐसा कहते हैं कि देखो परमार्थ

टुकड़ो.... देते हैं। किसी को टुकड़ा दें तो प्रभु नजदीक। रोटी का टुकड़ा दें। किसी को दें टुकड़ा, प्रभु नजदीक। धूल में भी नहीं नजदीक। ढूंकडो अर्थात् नजदीक। किसी को दाल-भात खिलाये तो भगवान प्रसन्न हो जाये। भगवान कैसे तेरे ?

उसने लिखा है, कबीरा! दो बात करते हैं। ऐसा कहते हैं न ? कमाल की दो बात लिख ले, परमात्मा की बन्दी करना और भूखे को आहार देना। भूखे को आहार दे सकता नहीं आत्मा, वह तो जड़ की क्रिया है। भगवान का भजन करना, वह तो राग है। वस्तु ऐसी है। वस्तु ऐसी ही है। यह अब अलग हूँ। रोटियाँ अलग आवे। किसका हाथ और किसे ले ?

वह प्रकाशदासजी थे न, कबीर का साधु है वह। यहाँ रहे थे। मूल तो ब्राह्मण हैं लीमडी के, फिर कबीर के साधु हो गये। फिर स्थानकवासी में साधु होने की तैयारी थी। ....और रतिमलजी के निकट। उसमें से आत्मधर्म मिला कहीं लाईब्रेरी में। ओय... यह तो कुछ दूसरी बात करते हैं। यह तो हमने माना सब (व्यर्थ)। मुझे देखने तो जाना है एक बार। अभी गये। अभी रहते हैं दो-दो, दो-दो महीने। प्रकाशदास है। ओय... यह तो मार्ग दूसरा निकला, कहे। मुंडाकर बैठ जाना, साधु स्थानकवासी हो गये। थे कब साधु थे ? सुन न! सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसका भान नहीं होता। महाव्रत के परिणाम, वह धर्म। महाव्रत पालना। पालना राग को, ऐसा। महाव्रत तो राग है, विकल्प है। .... छोटी उम्र है उनकी ३५-३६ वर्ष की।

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ग्यानकला घट मांहि... घट अर्थात् आत्मा, हों! उस आत्मा में ज्ञान की कला है। आहाहा! मैं तो चैतन्य आनन्द और शुद्ध हूँ। राग का विकल्प उठे, वह भी मेरा नहीं। आहाहा! ऐसी ज्ञानकला जगी हुई है, वह मोक्ष का अधिकारी है। **परचै आतमरामसौं...** यह तो आत्मराम की पहिचान करे। अनुभव करे, ऐसा कहते हैं। उसमें संगति थी न अचेतन की। चेतन को अचेतन की संगति थी। यहाँ कहते हैं, चेतन को चेतन की संगति है, ऐसा। उसका परिचय करे, ऐसा। आहाहा! भगवान आनन्द और ज्ञानस्वरूप, वह तो सम्यग्दृष्टि परचो अर्थात् स्पर्श करे, अनुभव करे, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। मात्र राग का अनुभव करे, वह सम्यग्दृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि

है। जैसे राग है दया, दान, विकल्प, वह तो विकार है। विकार का वेदन अकेला, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! मार्ग कठिन। मार्ग है तो ऐसा का ऐसा। अनादि का है, वह यह है। लोगों को सुनने को मिला नहीं न, इसलिए ऐसा लगता है, ...ऐसा धर्म ऐसा?

बापू! तू तो चैतन्य है न, नाथ! राग भी कहाँ तेरी चीज़ है? राग तो अचेतन है। राग जानता है? अपने को जानता है? पर को जानता है? पर द्वारा ज्ञात हो ऐसा है। आत्मा द्वारा ज्ञात हो, ऐसा राग वह इसकी चीज़ नहीं। इसलिए **परचै आतमरामसौं...** अपना आत्माराम, उसे स्पर्श करे, **ते अपराधि नांहि....** वह गुनहगार नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात की है। है पाठ में है न? अपराधी, राग को अपना माननेवाला अपराधी, गुनहगार, कैदी मिथ्यात्वी है। परस्वरूप भिन्न है, उसे (अपना) माननेवाले की तो क्या बात करना? भगवान आत्मा जाननेवाला-देखनेवाला शान्त अनाकुल स्वभावी वस्तु—उसे स्वयं स्पर्शे—वेदन करे—अनुभव करे, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १११, आषाढ़ कृष्ण १४, बुधवार, दिनांक २१-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य-३१, ३२, ३३

यह समयसार नाटक। यह ३१वाँ पद है। मोक्ष अधिकार। धर्मी जीव का सद्विचार। सम्यग्दृष्टि—धर्मी जीव, उसके सच्चे विचार कैसे होते हैं, उसका वर्णन है।

★ ★ ★

काव्य - ३१

(सवैया इकतीसा)

जिन्हकै धरम ध्यान पावक प्रगट भयौ,
संसै मोह विभ्रम बिरख तीनौं डढ़े हैं।
जिन्हकी चितौनि आगे उदै स्वान भूसि भागै,
लागै न करम रज ग्यान गज चढ़े हैं।।
जिन्हकी समुझिकी तरंग अंग आगममैं,
आगममैं निपुन अध्यातममैं कढ़े हैं।
तेई परमारथी पुनीत नर अठौं जाम,
राम रस गाढ़ करैं यहै पाठ पढ़े हैं।।३१।।

शब्दार्थ:-पावक=अग्नि। बिरख (वृक्ष)=झाड़। स्वान=कुत्ता। रज=धूल। ग्यान गज=ज्ञानरूपी हाथी। अध्यातम=आत्मा का स्वरूप बतानेवाली विद्या। परमारथी (परमार्थी)=परम पदार्थ अर्थात् मोक्ष के मार्ग में लगे हुए। पुनीत=पवित्र। आठों जाम= आठों पहर-सदाकाल।

अर्थ:-जिनकी धर्मध्यानरूप अग्नि में संशय-विमोह-विभ्रम ये तीनों वृक्ष जल गये हैं, जिनकी सुदृष्टि के आगे उदयरूपी कुत्ते भोंकते-भोंकते भाग जाते हैं, वे ज्ञानरूपी हाथी पर सवार हैं, इससे कर्मरूपी धूल उन तक नहीं पहुँचती। जिनके विचार में शास्त्रज्ञान की तरंगें उठती हैं, जो सिद्धान्त में प्रवीण हैं, जो आध्यात्मिक विद्या के पारगामी हैं, वे ही मोक्षमार्गी हैं - वे ही पवित्र हैं, सदा आत्म-अनुभव का रस दृढ़ करते हैं और आत्म-अनुभव ही का पाठ पढ़ते हैं।।३१।।

काव्य-३१ पर प्रवचन

जिन्हकै धरम ध्यान पावक प्रगट भयौ... जिसे—धर्मी को—सम्यग्दृष्टि को धर्मध्यान अर्थात् आत्मा का आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव का ध्यान—एकाग्रतारूपी अग्नि जिसे प्रगट हुई है। धर्मध्यानरूपी अग्नि के कारण **संशै मोह विभ्रम बिरख तीनौं डढ़े हैं...** संशय, विभ्रम अथवा मोह, ये तीनों जिनके वृक्ष जल गये हैं। धर्मध्यान का अर्थ ध्यान में हो ज्ञाता—ज्ञायक तब ही धर्मध्यान (होता है), ऐसा नहीं। धर्मध्यान कायम होता है। धर्मध्यान समकिती को कायम होता है।

मुमुक्षु : निरन्तर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निरन्तर। इसका अर्थ कि ध्याता-ध्यान और ध्येय भूलकर ध्यान में रहे, तब ही धर्मध्यान है, ऐसा नहीं है। सदा भगवान शुद्ध चैतन्य वस्तु की अन्तर में एकाग्रता (और) राग से पृथक्, ऐसी ध्यान की श्रेणी तो सदा ही रहती है। आहा! समझ में आया ?

जिन्हकै धरम ध्यान पावक प्रगट भयौ... वहाँ ऐसा नहीं कहा कि उसे उपयोग में जब हो, तब ही धर्मध्यान है, ऐसा नहीं। वस्तु आत्मा शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण आनन्दसम्पन्न, उसमें अन्तर्मुख होकर जिसकी एकाग्रता है। अनादि से राग में एकाग्रता थी, वह मिथ्यात्वभाव था। वह भी ध्यान था, परन्तु आर्तध्यान और रौद्रध्यान। समझ में आया ? भगवान आत्मा पवित्र पूर्ण स्वरूप की जिसे सन्मुखता की एकाग्रता है, ऐसी जिसे अग्नि प्रगट हुई है, उसने संशय, विमोह और विभ्रम—इसके वृक्ष का तो नाश कर दिया है।

समकिती को संशय नहीं (कि) कैसे होगा ? केवलज्ञान कैसे होगा ? एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है, वह क्या होगा ? ऐसा संशय समकिती को होता नहीं। समझ में आया ? ऐसा मोह—पर में सावधानी की एकता, धर्मी को होती नहीं। विभ्रम—कुछ होगा, समझ में आता नहीं। कुछ होगा, समझ में नहीं आता—ऐसा धर्मी को होता नहीं। आहाहा! चैतन्य अग्नि धर्मध्यान की जहाँ प्रगट हुई है। सूक्ष्म संशय और विमोह भी जहाँ जल गये हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **संशै मोह विभ्रम बिरख तीनौं डढ़े हैं...** जल गये हैं।

जिन्हकी चितौनि आगे... जिसकी दृष्टि के समक्ष **उदै स्वान भूसि भागै...** उदयरूपी श्वान—कुत्ता भौंककर—भौंककर भागे। भौंकते-भौंकते भाग जाते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा वस्तु है पूर्ण ब्रह्म, उसके ऊपर जहाँ एकाग्रता हुई, उससे धर्मी को उदय जो कर्म का आवे, वह भौंकते-भौंकते भाग जाते हैं। खिर जाता है उदय। मुझमें राग है नहीं। विषय की वासना मुझमें नहीं। 'मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का सागर हूँ' ऐसा जहाँ प्रत्यक्ष अन्दर वेदन हुआ है, उसे यहाँ समकिती कहते हैं। उस समकिती को **उदै स्वान भूसि भागै...** आहाहा! हाथी को जैसे कुत्ते भौंकते हैं, वैसे। क्यों भाई आये नहीं? जल्दी तो निकले थे। ढाई बजे निकले थे वजुभाई।

मुमुक्षु : ऑफिस से।

पूज्य गुरुदेवश्री : हं, ऐसे निकले थे। ढाई बजे देखा। ऑफिस में गये होंगे। समझ में आया?

लागै न करम रज ग्यान गज चढ़े हैं,... देखो। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञानस्वरूप का ज्ञानरूपी हाथी के ऊपर जिसकी सवारी है। धर्मी को राग और पुण्य का स्वाद नहीं, वह सवारी उसे नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप अनन्त गुण का एकरूप, ऐसा जो आत्मा, उसके ऊपर चढ़ा हुआ होता है। उसकी आरूढ़ता स्वभाव के ऊपर होती है। ऐसा ज्ञानरूपी गज के ऊपर चढ़ा हुआ (है, इसलिए) उदयरूपी कुत्ते भौंककर भाग जाते हैं। आहाहा! **लागै न करम...** सम्यग्दृष्टि को कर्म ही लगता नहीं। आहाहा! जहाँ राग का स्वामी नहीं और अपने शुद्ध आनन्द का स्वामी धर्मी है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन का तो स्वामी नहीं, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, राज का तो स्वामी नहीं परन्तु राग का भी स्वामी नहीं। वह चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द शुद्ध द्रव्यस्वभाव के ज्ञान (रूपी) हाथी पर चढ़ा हुआ, उदयरूपी कुत्ते तो भाग जाते हैं। नये कर्म बँधते (नहीं)। आहाहा!

जिन्हकी समुझिकी तरंग अंग आगममैं... सम्यग्दृष्टि को आगम का ज्ञान ऐसा होता है कि जिसे न्याय की तरंग उठती है। आहाहा! **जिनके विचार में शास्त्रज्ञान की तरंगें उठती हैं।** सम्यक् ज्ञान की तरंगें उठती हैं अन्दर। आहाहा! ऐसा जो चैतन्यस्वरूप, उसके भान में है, इसलिए उसे आगम के ज्ञान की तरंगें उठती हैं। आहाहा! **आगममैं निपुन...** भगवान ने कहे हुए सिद्धान्त, उनके सिद्धान्त के ज्ञान में वह निपुण है।

अध्यातम में कढ़े हैं... आहाहा! आध्यात्मिकता में—अध्यात्म विद्या के पारंगत हैं, कढ़े हुए हैं। जैसे दूध कढ़ाई गया हो न, दूध। दूध समझते हैं दूध? वह कढते हैं।

मुमुक्षु : घट्ट बनावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खीर बनाने के लिये घट्ट बनाते हैं न घट्ट। यह हमारी गुजराती भाषा है। यहाँ हिन्दी (में) कढे है, कहा है। आहाहा! भगवान निर्विकल्प शुद्ध आनन्द ऐसा जो आत्मा, उसमें वह कढा हुआ है, उसका रस उसे चढ़ गया है, कहते हैं। आहाहा! यह दशा!

लो, चौथे गुणस्थान में अध्यात्म ज्ञान नहीं होता, फलाना ज्ञान नहीं होता, ढींकणा... ऐसी बात करे, लो। आहाहा! आत्मा का स्वभाव ही शुद्ध उपयोग स्वभाव है उसका। शुभ और अशुभराग, वह उसका स्वभाव ही नहीं। क्योंकि शुभ-अशुभराग, वह तो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! उसका स्वभाव ही शुद्ध उपयोग है। अब यहाँ कहते हैं न कितने ही कि चौथे गुणस्थान में शुद्ध उपयोग नहीं होता। परन्तु भाई! आत्मा ही शुद्ध उपयोगी है। आहाहा! जहाँ आत्मा को भान हुआ, वहाँ वह शुद्धपरिणति है, वह शुद्ध उपयोग ही है उसका। आहाहा! समझ में आया?

देखो न, यह चले जाते हैं मोहनभाई जैसे, लो। सवेरे ऐसा... एक लड़का आया था भाई, दिलीप। दिलीप आया है? आ गया है। उसके प्रति उन्हें बहुत प्रेम था। ....घड़ीक में क्षण में न मिले लो। ओहोहो! चार-पाँच दिन पहले तो यहाँ थे। सवेरे प्रतिदिन आवे। दो समय व्याख्यान में आवे, रात्रि में आवे। यह देह की स्थिति! कौन रखे और कब न टले। जिस समय टलने का हो, वह समय दूसरा बदले? आहाहा! धर्मी को ऐसी अन्दर श्रद्धा होती है कि जिस क्षण में देह छूटना है, वह उसका माल ऊपर का छूटे ही छुटकारा है। आहाहा! इन्द्र आवे, नरेन्द्र आवे और कोई उसे मदद करे... किसे करे? भाई! आहाहा!

उसका आयुष्य पूरा हो कि चले जाते हैं इन्द्र, बड़े देव। आहाहा! १८-१८ सागर के आयुष्यवाले देव मरकर पशु में जाये, पशु हो। आहाहा! देखो न, यह संसार की (विचित्रता)! तिर्यंच में जाये, लो। ऐसा है। सिद्धान्त कहता है। आठवें देवलोक के

कितने ही देव मिथ्यादृष्टि हैं। पूर्व में कोई पुण्य किया हुआ दया-दान आदि, वहाँ स्वर्ग में गये परन्तु वहाँ से मिथ्यात्व था और अन्दर में वासना की एकता तो थी, (इसलिए) मरकर पशु में जाये। आहाहा! गजब बात है न! यह संसार की लीला! भाई आये। नजदीक आओ ऐसे। ऐसे आओ ऐसे। आओ सामने। .... वह फोटो लेकर। सविताबेन का पुत्र। यहाँ सविताबेन थी न? गाँधी की पुत्री, नहीं? मकान बनाया है। शिवलाल गाँधी। यहाँ समाचार दिये थे न यह बहिन के फोटो के, वह लेकर आये हैं। यहाँ सामने संस्कार...

मुमुक्षु : कल तार आया था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तार आया था।

ओहो! सिद्धान्त में समकिती प्रवीण है। प्रवीण का अर्थ अन्दर आत्मज्ञान के सिद्धान्तों में प्रवीण है। दूसरे सिद्धान्त जाने—न जाने, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! यहाँ सिद्धान्त—सिद्ध+अन्त (अर्थात्) जिसकी वस्तु सिद्ध हो गयी है। शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु आत्मा, उसमें अशुद्धता नहीं, ऐसे जो सिद्धान्त, उसमें समकिती पक्के हो गये हैं, प्रवीण हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : निपुण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हं, निपुण है। **अध्यातम में कढ़े हैं....** आगम में निपुण है। **तेई परमारथी पुनीत नर आठौं जाम...** वे परमार्थ जीव हैं। आहाहा! पुनीत अर्थात् पवित्र है, वह मोक्षगामी है। आहाहा! लो, यहाँ तो समकिती को मोक्षमार्गी कहा।

मुमुक्षु : समकिती मोक्षमार्गी नहीं होगा तो कौन होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अमुक ऐसा कहे कि छठवें-सातवें में होता है, ऐसा कहे। भाई! वह तो पूर्ण चारित्र की अपेक्षा से है, भाई! वह मोक्षमार्गी है।

छहढाला में नहीं आता? छहढाला में आता है। (ढाल ३, छन्द ५)। '**तीनों शिवमगचारी**।' यह छहढाला में आता है न?

मुमुक्षु : अब व्यवहार मोक्ष....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह नहीं। '**तीनों शिवमगचारी**।'

मुमुक्षु : तीनों का विषय....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह नहीं। समकिती, पाँचवें गुणस्थानवाले और मुनि— तीनों शिवमगचारी (अर्थात्) तीनों ही मोक्ष के मार्ग में चलनेवाले हैं। आहाहा! ब्रह्मचारीजी! वह छहढाला में आता है। **तीनों शिवमगचारी,** आता है न? चौथा गुणस्थानवाला, पाँचवाँ और छठवाँ (वाला) **तीनों शिवमगचारी**। तीनों अन्तरात्मा हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं न, देखो न! **तेई परमारथी** हैं वह तो। मोक्षमार्गी है। आहाहा! शुद्ध चैतन्य के राग से भिन्न पड़ा हुआ भान, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का अंश उसमें है।

आज उसमें आया है। आया है न यह।

मुमुक्षु : धवल, धवल।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसका आधार दिया है भाई ने—कैलाशचन्दजी ने। अनन्तानुबन्धी की प्रकृति, दर्शनमोह और चारित्रमोह—दोनों को काटती है। और अनन्तानुबन्धी का नाश होने से चारित्र प्रगट होता है। धवल में है। आधार दिया है। वह कहे, नहीं। अरेरे! अनन्तानुबन्धी की प्रकृति ही चारित्रमोह की प्रकृति है और उसका नाश होने से स्वरूप आचरण की स्थिरता होती है। चौथे गुणस्थान में स्थिरता इतनी नहीं होती तो अनन्तानुबन्धी गयी, उसका फल क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : सभी गुणों में शुद्धि....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आता है, वह तो स्पष्ट पाठ में कहते हैं, हों! ऐसा आधार धवल का। कितनी ही चर्चा के बोल रखे हैं अलग परिशिष्ट बनाकर। ठीक किया है। किसी में और जरा, शुद्धनय में चौथा गुणस्थान नहीं होता और ऐसा फिर स्थापित किया है। वह तो दूसरी बात है। आता है न, **तत्त्व अशुद्धतरनयः**। यह तो व्याख्या... वह अलग बात है। है, यह खबर है न, यह सब बातें।

शुद्धनय, अशुद्धनय, अशुद्धतरनय। यह तीन प्रकार की बात, वह तो जानने की बात कही। वस्तु तो... गुणस्थान है, वह तो व्यवहारनय का विषय है। गुणस्थान ही व्यवहारनय का विषय है। परन्तु चौथा गुणस्थान उसका विषय पूर्ण अखण्ड है।

मुमुक्षु : वह पर्याय में विषय पूरा-पूरा आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! लोगों को तत्त्व क्या है, (इसकी खबर नहीं) और पकड़ लिया हो पूर्व में, फिर उसे बदलना ऐसा कठिन पड़ता है अन्दर। चौथे गुणस्थान का विषय शुद्धनय है, इसलिए पूर्ण भूतार्थ है। स्वयं व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न? पर्याय है न? चौदह गुणस्थान व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न, इस अपेक्षा से। परन्तु चौथे गुणस्थान का विषय जो है, वह तो पूर्ण ध्रुव शुद्ध है, पूर्ण है। आहाहा!

और यहाँ कहते हैं न, परमार्थी है, वह मोक्षमार्गी है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। अनन्तानुबन्धी के (नाश से) चौथे (में) अंश में आया है चारित्र। क्योंकि चारित्र की प्रकृति है। अनन्तानुबन्धी चारित्रमोह की प्रकृति है। उसका नाश होने से उसे क्या होता है? आंशिक स्थिरता, शान्ति, स्वरूप आचरण है अन्दर। आहाहा! आंशिक है न, परन्तु चारित्र अंश न हो तो अनन्त गुण शुद्ध किस प्रकार हुए? है, छटकना है उसे।

मुमुक्षु : वह दर्शनमोह से मान्यता ......

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी दोनों बदले। दोनों घात करने में निमित्त हैं।

मुमुक्षु : धवल में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न? धवल में आता है। आज आयी है न वह पुस्तक। कैलाशचन्दजी की ओर से यहाँ भेंट आयी है। उसमें यह पढ़ा थोड़ा सा। है उसमें लेख के परिशिष्ट में। आहाहा!

तेई परमारथी पुनीत नर आठौं जाम... देखो! यह आठों ही पहर—चार पहर दिन के और चार पहर रात्रि के, ऐसे रात-दिन। **राम रस गाढ़ करैं...** आहाहा! वह तो आत्मा के आनन्द का रस गाढ करता है। राग को गाढ करता है, ऐसा धर्मी को होता नहीं। आहाहा! अभी धर्म किसे कहना, (उसकी) खबर भी नहीं होती और यह बाहर के क्रियाकाण्ड दया, व्रत और भक्ति, वह धर्म। धूल भी धर्म नहीं। चैतन्य भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध अभेद वस्तु की अन्तर में एकाग्र होना, और आनन्द का रस आना, उसमें

(मुख्यता से) श्रद्धा—ज्ञान और शान्ति—तीन (साथ में) अनन्त गुणों के अंशों की प्रगट दशा है।

जितने गुण संख्या से हैं आत्मा में, उन सब गुणों के अंश की व्यक्तता—प्रगटता चौथे गुणस्थान में है। अमुक गुण का अंश प्रगटे और अमुक गुण का न प्रगटे तो गुण का परिणमन एक साथ (न हो तो) द्रव्य का (परिणमन) किस प्रकार हुआ? आहाहा! बात ऐसी है कि यह चर्चा से कहीं पहुँचे ऐसा नहीं। वाद-विवाद में चढ़े तो, इस पृष्ठ पर यह लिखा है और इस पृष्ठ पर... लिखा है सब अब। उसका सार क्या? वहाँ बैठ गये?

मुमुक्षु : देरी हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : देरी से आये इसलिए?

मुमुक्षु : आ जाओ अन्दर। बहुत जगह है, आ जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ बैठे थे कौने में सहारे से। ढाई बजे मैंने देखा था आते हुए। फिर गये होंगे कहीं। आहा!

तेई मोक्षमार्गी पवित्र हैं नर आठौं जाम। अब सोता कब होगा? खाता कब होगा? सूवे कौन और खाये कौन? आहाहा! शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप में एकाग्रता निरन्तर होती है। वह आठों याम यह रामरस गाढ़ करता है। आहाहा! व्यवहार को गाढ करे—दया, दान और व्रत को, ऐसा समकिती को होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : आठों पहर।

पूज्य गुरुदेवश्री : आठों पहर। वस्तु है, वह तो त्रिकाल है। अब उसका जहाँ अनुभव हुआ और दृष्टि हुई, कायम उस जाति का रस होता है। ज्ञानी को रागरस होता नहीं। आहाहा! भोग का विकल्प हो, परन्तु उसका रस नहीं। ज्ञानी को राग का राग नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग का राग नहीं। राग हो, परन्तु राग का राग नहीं। आत्मा का रस है। देखो, यह धर्म की स्थिति। आहाहा!

राम रस गाढ़ करै यहै पाठ पढ़े हैं,... लो। कहते हैं कि यह पाठ पढ़े शास्त्र के। पृष्ठ पढ़े, इसकी अपेक्षा रामरस को पढ़ता है, ऐसा कहते हैं। **राम रस गाढ़ करै यहै पाठ पढ़े हैं,...** लो। यह आत्मा के अनुभव का पाठ पढ़े। आहाहा!

मुमुक्षु : वह पाठ ही कब था?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र के पृष्ठ, वह पाठ कब था? वह तो पर है। उसका वाँचना-बाँचना, वह सब विकल्प है। आहाहा! ऐसी बात है। ३१ हुआ। अभी इसका विस्तार करते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ३२

पुनः (सवैया इकतीसा)

जिन्हकी चिहुंटि चिमटासी गुन चूनिबेकौं,
कुकथाके सुनिबेकौं दोऊ कान मढ़े हैं।
जिन्हकौ सरल चित्त कोमल वचन बोलै,
सोमदृष्टि लियैं डोलैं मोम कैसे गढ़े हैं।।
जिन्हकी सकति जगी अलख अराधिबेकौं,
परम समाधि साधिबैकौं मन बढ़े हैं।
तेई परमारथी पुनीत नर आठौं जाम,
राम रस गाढ़ करैं यहै पाठ पढ़े हैं।।३२।।

शब्दार्थः-चिहुंटि=बुद्धि। चूनिबेकौं=पकड़ने को-ग्रहण करने को। कुकथा=खोटी वार्ता-स्त्रीकथा आदि। सोमदृष्टि=क्रोध आदि रहित। अलख=आत्मा।

अर्थः-जिनकी बुद्धि गुण ग्रहण करने में चिमीटी[१] के समान है, विकथा सुनने के लिये जिनके कान मढ़े हुए अर्थात् बहरे हैं, जिनका चित्त निष्कपट है, जो मृदु भाषण करते हैं, जिनकी क्रोधादि रहित सौम्यदृष्टि है, जो ऐसे कोमल स्वभावी हैं कि मानो मोम[२] के ही बने हुए हैं, जिन्हें आत्मध्यान की शक्ति प्रगट हुई है और परम समाधि

१. जिस प्रकार चिमीटी से छोटी वस्तु भी उठा ली जाती है, उसी प्रकार सूक्ष्म तत्त्वों को भी उनकी बुद्धि ग्रहण करती है।

२. जैसे कि मोम सहज में पिघल जाता है वा मुड़ जाता है, वैसे वे भी थोड़े ही में कोमल हो जाते हैं, तत्त्व की बात थोड़े ही में समझ जाते हैं, फिर हठ नहीं करते।

साधने को जिनका चित्त उत्साहित रहता है, वे ही मोक्षमार्गी हैं, वे ही पवित्र हैं, सदा आत्म-अनुभव का रस दृढ़ करते हैं और आत्म-अनुभव का ही पाठ पढ़ते हैं-अर्थात् आत्मा ही की रटन लगी रहती है।।३२।।

काव्य-३२ पर प्रवचन

जिन्हकी चिहुंटि चिमटासी गुन चूनिबेकौं,
कुकथाके सुनिबेकौं दोऊ कान मढ़े हैं।
जिन्हकौ सरल चित्त कोमल वचन बोलै,
सोमदृष्टि लियैं डोलैं मोम कैसे गढ़े हैं।।
जिन्हकी सकति जगी अलख अराधिबेकौं,
परम समाधि साधिबैकौं मन बढ़े हैं।
तेई परमारथी पुनीत नर आठौं जाम,
राम रस गाढ़ करैं यहै पाठ पढ़े हैं।।३२।।

क्या कहते हैं? समकिती धर्मी की **चिहुटी—**यह अँगुली की अथवा चिमटी आवे न यह पकड़ने की। **चिमटासी गुन चुनिबेकौं...** गुण का चिमटा। वह भी चिमटा है, ऐसे पकड़ता है। बारीक चीज़ को पकड़ ले। मोती हो तो ऐसे पकड़े एकदम। जैसे चिमटा होता है लोहे का और (ऐसे पकड़े), इसी प्रकार धर्मी सच्चे अन्तर आनन्द आदि गुण को पकड़ लेता है। आहाहा! **जिनकी बुद्धि गुणग्रहण करने में चिमटी के समान है।** देखो, नीचे कहा है। **जिस प्रकार चिमटी से छोटी वस्तु भी उठा ली जाती है, उसी प्रकार सूक्ष्म तत्त्वों को भी उसकी बुद्धि ग्रहण करती है,...** सूक्ष्म भाव हो तो भी ज्ञानी पकड़ लेता है। यह बात है।

मुमुक्षु : चिमटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। शास्त्र का ज्ञान कम हो, संसार की चतुराई कम हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। अन्तर भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके गुण को पकड़ने में अथवा सूक्ष्म तत्त्व को जानने में जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण—सूक्ष्म हो गयी है।

आहा! उसे यहाँ समकिती और धर्मी कहा जाता है। आहाहा!

कुकथाके सुनिबेकौं दोऊ कान मढ़े हैं,... वह धर्म की विपरीत कथा—कुकथा सुनने को कान बन्द है। पुण्य से धर्म होगा, पाप में मजा है, संयोग अनुकूल हो तो आत्मा को धर्म हो—ऐसी कुकथा सुनने में ज्ञानी के कान बन्द हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : फुरसत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : फुरसत नहीं। वे उसको सुनते ही नहीं। आहाहा! **कुकथाके सुनिबेकौं...** कुकथा वास्तव में तो यह है कि शुभभाव पुण्य है, उससे धर्म होता है, यह कुकथा है। समकितध्वंस की कथा है। समकित को ध्वंस करनेवाली वह कथा है।

पच्चीस प्रकार की कथा आयी है न उसमें। सुदृष्टि तरंगिणी। सुदृष्टि तरंगिणी में पच्चीस प्रकार की कथा है, उसमें यह ली है। समकितभेदणी कथा। सब धर्म समान हैं, सब धर्ममार्ग भी सत्य है—यह सब कथायें, कुकथायें हैं। वहाँ भी सर्वत्र धर्म है (तो) उसमें कुछ होगा तो सही न?

मुमुक्षु : विभाव और....

पूज्य गुरुदेवश्री : विभाव से लाभ होता है और व्यवहार से लाभ होता है और निमित्त से लाभ होता है। वास्तविक कुकथा यह है, ऐसा कहते हैं। यह सुनने की नहीं। यह बात सुनना चाहते नहीं। कहो, समझ में आया?

जिन्हकौ सरल चित्त... धर्मी का हृदय सरल होता है, कोमल होता है। कोमल वचन बोले। आहाहा! नरम शान्त होता है। वाळयो वळे ऐसा होता है। यह बाद में कहेंगे। कोमल वचन बोले। है न उसमें? **जो मृदु भाषण करते हैं, जिनकी क्रोधादि रहित सौम्य दृष्टि है...** लो। **सौम्यदृष्टि लियै।** कषाय मन्द और शान्तिरस में पड़ा हुआ है। **डोलैं मोम कैसे गढ़े है...** वह मीण... मीण...

मुमुक्षु : पोचा

पूज्य गुरुदेवश्री : पोचा मीण का गढो होवे न, जैसे बादल (हो वैसे) वळे। मीण... मीण होता है न। मीण... मीण नहीं कहते?

मुमुक्षु : मोम।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोम... मोम... वह मीण। जैसे जलाना (हो), वैसे जले। उसी प्रकार धर्मी सत्य बात को समझने में जैसे मुड़ना हो वैसे मुड़े। उसे पकड़ और आग्रह होता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : नरम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नरम है।

बात तो भाई यह बराबर है। उसे स्वयं को पहले ख्याल में न आयी हो, वस्तु (का) भले भान हो, परन्तु वह बात ख्याल में यथार्थ आवे (तो स्वीकार करे कि) बात बराबर है। वस्तु तो ऐसी ही है। उसे मुड़ने में कठिनाई नहीं होती। वह कोमल होता है। आहाहा! **मोम कैसे गढ़े हैं,...** लो। मोम का कहा न। क्या कहा यह? **मानो मोम के ही बने हुए हैं**। मानो मोम। नीचे है। **जैसे कि मोम सहज में पिघल जाता है**। मोम... मोम... **या मुड़ जाता है**। मोड़ना हो तो मुड़ सकता है। **वैसे वे भी थोड़े ही में कोमल हो जाते हैं। तत्त्व की बात थोड़े ही में समझ जाते हैं, फिर हठ नहीं करते**। ऐसे समकिती धर्मी उसे कहा जाता है, जिसे आत्मा का दर्शन है, उसमें ऐसे भाव विकल्प आदि के होने पर भी वह कोमल है, कहते हैं। आहाहा!

जिन्हकी सकति जगी अलख आराधबैकौ। सम्यग्दृष्टि—धर्मी जिसे आत्मा के आराधन की शक्ति प्रगट हुई है। **जिन्हकी सकति जगी अलख...** इन्द्रियों से जानी नहीं जाती (अर्थात्) इन्द्रियों से ज्ञात नहीं होती, विकल्प से ज्ञात नहीं होती—ऐसा जो भगवान आत्मा उसे आराधना की जिसे शक्ति प्रगट हुई है। आहाहा! चक्रवर्ती छह खण्ड के राज में पड़ा हो... आहाहा! उसमें आया है न भरत चक्रवर्ती? भगवान मोक्ष पधारे वहाँ कैलाश... कैलाशपर्वत के ऊपर भगवान मोक्ष पधारे। भरत को खबर पड़ी। समकिती है, तीन ज्ञान है, उसी भव में मोक्ष जानेवाला है। गये भगवान के पास। आँसुओं की धारा बहे।

अरे, समकिती ज्ञानी तीन ज्ञान, उसी भव में मोक्ष है। अन्तिम देह है। छह खण्ड का राज, ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ गाँव, ४८ हजार पाटन, ७२ हजार नगर। हम किसी के नहीं, यहाँ हमारी कोई चीज़ नहीं, हों! आहाहा! 'देखो, यह भगवान मोक्ष

पधारे और तुम क्यों रोते हो?' इन्द्र कहता है। इन्द्र... इन्द्र... साथ में आये न जब। भगवान मोक्ष पधारे हैं। अब फिर यहाँ... 'भाई! क्यों रोते हो तुम? तुम तो एकावतारी हो, इस भव में मोक्ष जानेवाले हो', इन्द्र कहता है। 'हमारे तो अभी एक मनुष्य का भव करना पड़ेगा। तुम्हारी तो यह अन्तिम देह है अब। समाप्त।' 'इन्द्र! जानने में है, सब खबर है। परन्तु हमको धर्मात्मा परमात्मा गये, उनका जरा हमको राग आता है। यह राग है, वह हमारी चीज़ नहीं, ऐसा हम जानते हैं।' आहाहा!

और इस भव में हमारा अन्तिम देह है। हम मोक्षगामी हैं इस भव के। हमको खबर है। कहो, उसने तो यह स्वीकार किया वापस, लो। इन्द्र जैसे मित्र। यह विकल्प है, वह हमारा नहीं। परन्तु उसके काल में आया है। हम वीतराग नहीं, इसलिए आया है। इसलिए यह क्रियायें रुदन आदि की तुझे दिखती है। हम उसमें नहीं। रुदन की क्रिया में भी नहीं और विकल्प में भी हम नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे समकिती होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिन्हकी सकति जगी अलख आराधबैकौ। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप अपना, उसे सेवने... विकल्प से सेवन—आराधन नहीं किया जा सकता। वह स्वयं (स्वयं से) आराधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **अलख आराधबैकौ।** अन्तर द्रव्यस्वभाव चैतन्यगंज पड़ा है महाप्रभु, उसकी एकाग्रता की सेवना जिसे जगी है, वह कला जगी है, वह शक्ति जगी है। कमाने की शक्ति जगी है और दूसरे को सम्हालने की शक्ति है, समझाने की शक्ति है—वह शक्ति आत्मा की (नहीं)। आहाहा! अपना भगवान, उसे सेवन की—आराधना की शक्ति धर्मी को जगी है। धर्मी हो तो होशियार हो तो कमाना भी जाने बहुत, ऐसा नहीं होगा? ऐसा नहीं होगा? कौन कमावे? कौन लावे?

यह गाँधीजी ने लिखा है न श्रीमद् के लिये लिखा है। उसमें आया था, गाँधी (ने) दोष निकाला है। राग हो वहाँ रोग हो इसलिए... यह बात ही खोटी है। वह तो शरीर का रोग होता है, धर्मी को, मुनि को होता है। वह रागी है, इसलिए रोग है, ऐसा कुछ नहीं। यह बात एक अपेक्षा से बराबर है कि जब तक अपने को राग होता है, तब उसे रोग....

मुमुक्षु : सम्भव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सम्भव है, बस इतनी बात। परन्तु वह रागी है, इसलिए रोग होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु उनका कहने का आशय ऐसा है। कहने का आशय तो ऐसा है गाँधीजी का। ऐसे रोग हों। शरीर की अवस्था (है), मुनि को भी होता है।

मुमुक्षु : समताभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अन्तर में... रोग... कहा जाता है। यह शरीर की अवस्था है।

यह सनतकुमार... सनत (चक्रवर्ती)। सात सौ वर्ष तक गलितकोढ़, अँगुलियाँ गले, वह तो जड़ का स्वभाव है। अपनी पवित्रता के प्रेम में पड़े हैं अन्दर आनन्द के धाम में। शरीर लो या रहो, वह तो उसकी स्थिति है। सनतकुमार चक्रवर्ती। और कसाई पापी हो और निरोगी हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! पापी पूरा अभव्य हो और अनन्त संसार करनेवाला हो, तथापि निरोगी शरीर है। देखो (तो) सांढ़ जैसा हो, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? धर्मात्मा उस भव में मोक्ष जानेवाले और रोग शरीर में। कहते हैं, शक्ति अलख आराधना की हुई है। रोग को मिटाने की हुई है, ऐसा नहीं। ऐसा कहते थे, ऐसा धर्म हो न (तो) आशीर्वाद दे तो दूसरे का रोग मिट जाये। भाई! यह वस्तु आत्मा में नहीं। समझ में आया?

एक नहीं कहता था तुम्हारे? ऐई छोटाभाई! तुम्हारा था न कोई, नहीं वह मन्दिरमार्गी? (संवत्) १९९९ में नहीं था एक मन्दिरमार्गी? वकील। लीमड़ी में आया था। लीमड़ी में आया था ९९ में। ९९ में, नहीं? कमरे के ऊपर। रात्रि में बोलता था। ऐसा धर्मी हो, उसे तो रोग मिटा दे, ऐसी शक्ति प्रगटे, फलाना प्रगटे। क्या नाम था कुछ उसका? वकील था।

मुमुक्षु : अमृतलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृतलाल वकील। बोलता, ९९ में बोलता था।

मुमुक्षु : ऐसा मजा भी करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ आया था। ऐसे प्रेम था। परन्तु ऐसे भरावे किसी का कुछ। आत्मा का ज्ञान हो, धर्म हो तो उस शक्ति (से) लोगों के रोग मिटा दे, आशीर्वाद दे तो ऐसा हो जाये। अरे, सुन न, भाई! अपना अलख है, उसे आराधे, वह शक्ति है।

आहाहा! लोगों को बाहर की भ्रमणा ऐसी है।

परम समाधि साधिबेकौं मन बढ़े हैं,... लो। मन वहाँ बढ़ा हुआ है अन्दर परम शान्ति में जाना। परम समाधि में बढ़ना। लो ठीक। **आत्म अनुभव का ही पाठ पढ़ते हैं।** यह तो आ गया है पीछे। समाधि में उत्साहित रहता है... **परम समाधि साधने को जिनका चितत उत्साहित रहता है।** राग करने के और विषयसुख भोगने में उत्साहित नहीं। आहाहा! उत्साहित तो स्वरूप को साधने का उत्साह है। आहा! पर के साथ मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। स्वतन्त्र जगत के पदार्थ हैं। मैं कहाँ और वे कहाँ? सब सबकी सत्ता में है। अपना स्वरूप साधने में जो उत्साहित है। **वे ही मोक्षामार्गी है।** 'परमार्थी' आया न परमार्थी, उसमें वही लिया था। **तेई परमारथी पुनीत नर आठौं जाम।** आहाहा! **राम रस गाढ़ करैं यहै पाठ पढ़े है।** यह आत्मा के शान्तरस को स्थिर करे, बढ़ाये, यह पाठ पढ़े। दूसरे पाठ आवे—न आवे, उसके घर में रहे। आहाहा! प्रयोजनभूत यह है। पाँच समिति और तीन गुप्ति का ज्ञान हो, लो। मुनि हो, नौ पूर्व पढ़ा हुआ हो और फिर भी मिथ्यादृष्टि अभव्य हो। आहाहा! समाधिवर्णन, लो। ३३वाँ बोल। यह तो उसका है नीचे का, हों! १०वाँ कलश है न, उसका है।

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः।।१०।।

सब व्याख्या इस प्रमाण नहीं की। थोड़ी की है। पद में भी डाला है न थोड़ा।

★ ★ ★

काव्य - ३३

समाधि वर्णन (दोहा)

राम-रसिक अर राम-रस, कहन सुननकौं दोइ।
जब समाधि परगट भई, तब दुबिधा नहि कोइ।।३३।।

शब्दार्थ:-राम-रसिक=आत्मा। राम-रस=अनुभव। समाधि=आत्मा में लीन होना। दुबिधा=भेद।

अर्थ:-आत्मा और आत्म-अनुभव ये कहने सुनने को दो हैं, जब आत्मध्यान प्रगट हो जाता है तब रसिक और रस का, वा और कोई भेद नहीं रहता।।३३।।

काव्य-३३ पर प्रवचन

कलश का अर्थ तो इतना है अन्दर कि जहाँ '**प्रतिक्रमणमेव विष प्रणीतम्**' जहाँ प्रतिक्रमण करना, ऐसा शुभराग भी जहर कहा। आहाहा! यहाँ तो रामरस। राम और रामरस—ये दो भिन्न नहीं। भिन्न माने, वह राग, वह जहर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भेद पाड़कर रहना, वह तो राग है। '**यत्र प्रतिक्रमणमेव विष प्रणीतम्**'। भगवान ने तो प्रतिक्रमण को जहर कहा है। 'मिच्छामिदुक्कडं'। यह पाप को मिच्छामि दुक्कडं, वह सब शुभराग है। आहाहा! मेघाणी! ऐसी बातें सुनी नहीं होगी वहाँ। जमशेदपुर में वहाँ... आहाहा! शाम-सवेरे प्रतिक्रमण किसका? आत्मा के भान बिना। मिच्छामि दुक्कडं... मिच्छामि दुक्कडं। शुभराग। उस शुभराग को भगवान ने तो जहर कहा है। आत्मा के अमृत सागर में से उल्टी दशा वह तो है।

'**तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्**।' फिर उसके दो अर्थ किये, समझो। जहाँ पुण्य को जहर कहा, वहाँ पाप को अच्छा कौन कहे? समझ में आया? जहाँ शुभभाव को जहर कहा, वहाँ हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोगवासना, पाप—उसे कौन अच्छा कहे? महा जहर में जहर है। समझ में आया? अथवा दूसरा एक अर्थ किया है। '**अप्रतिक्रमणं सुधा कुतः**' वह अमृत का सागर अप्रतिक्रमण है, ऐसा कहते हैं। अर्थ किया है। जहाँ शुभराग दया-दान-व्रत-पूजा-भक्ति, उस शुभराग को जहर कहा, वहाँ अमृत कौन? कि उस शुभराग से हटकर अन्तर स्वभाव में एकाग्रता करना, वह सुधा, वह अमृत है। वह सुधा का कूट है।

मुमुक्षु : कूट....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। दिया है। लिखा है सब।

यह चर्चा आयी थी न वहाँ से।

मुमुक्षु : टीकमगढ़।

पूज्य गुरुदेवश्री : टीकमगढ़ से। टीकमगढ़, नहीं ? पपौरा के पास गाँव है, वहाँ से आयी थी। एक पण्डित थे। गुजर गये बेचारे। उन्हें ठीक था। वहाँ हम गये थे न! उन्हें रुचता था, सुहाता था। वृद्ध व्यक्ति था पण्डित। गुजर गये। वह पपौरा और उसमें टीकमगढ़ है न, टीकमगढ़ ? टीकमगढ़ (वहाँ) एक वृद्ध पण्डित थे। गुजर गये। गुजर गये पण्डित।

मुमुक्षु : चुनीलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नाम होगा। उसे यह बात सुहाती थी, रुचती थी। उन्होंने ऐसा अर्थ किया कि भाई! इसमें तो ऐसा आता है कि शुभभाव जहाँ जहर है, वहाँ शुद्धभाव वह अमृत है। आत्मा अखण्ड आनन्द का अनुभव का शुद्ध का परिणमन, वह अमृत है। आहाहा!

यहाँ तो शुभराग को विष्टा कही, वहाँ लोग चिल्लाहट मचा गये। यह शुभभाव है न, उसको विष्टा कहा था एक बार यहाँ। तो फिर उसकी बहुत चर्चा चली। विष्टा तो अभी सूकर भी खाता है, यहाँ तो जहर कहते हैं।

मुमुक्षु : मर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! मर जाये। आहाहा! लोगों को उसका प्रेम है न। आहाहा! प्रभु बड़ा परमात्मा शुद्धस्वभाव का सागर महा प्रभु बड़ा, उसका तो प्रेम और रुचि नहीं होती। और इस राग की रुचि, उसका क्या फल है, उसकी इसे खबर नहीं।

मुमुक्षु : उसमें कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें कहा है।

मुमुक्षु : छहढाला में कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहढाला में कहा है। उसकी ही तो बात है।

मुमुक्षु : बीठसौ वखत मानै।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। **बीठसौ वखत मानै।** यह पाठ है। उसमें आया है। उसमें आ गया है। समयसार नाटक। पूर्व में आ गया है। अपने आ गया न?

मुमुक्षु : अभी ही आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने अनुकूल समय को विष्टा जैसा देखता है ज्ञानी। **बीठसौ वखत मानै।** कहाँ है? आ गया अपने। यह रहा। यह आया। यह १९ (पद, बन्धद्वार) १८५ पृष्ठ। १८५ पृष्ठ। १८४ से शुरु होता है, १८५ है। ऐसा **बीठसौ वखत मानै...** विष्टा जैसा भाग्योदय माने। आहाहा! है? १८५ पृष्ठ। तीसरी लाईन बड़े अक्षरों की।

सीठसौ सुजसु जानै बीठसौ वखत मानै।
ऐसी जाकी रीति ताहि वंदत बनारसी॥

समकिती भाग्योदय को विष्टा समान मानता है। अरे, चिल्लाहट मचाये। है अन्दर? देखो! **भाग्योदय को विष्टा के समान जानत है (वह उत्तम पुरुष है)।** आहाहा! पुण्य के बड़े ढ़ेर आये, इसलिए भला क्या हुआ परन्तु तुझे? वह तो सब जहर है, जड़ है। कहो, कामदार! भाग्य का उदय आवे बड़ा। बारह लाख इकट्ठे हुए, लो। फिर सरकार को दे दिया। फिर ढाई लाख आये, कहे, बारह लाख में से। यह भाग्योदय कहलाये या नहीं? इन कामदार को पैदा हुए थे एक बार। फिर सरकार को कहा, भाई! तुम्हारा हक हो उतना ले लो, फिर मुझे निश्चिन्तता से दिक्कत नहीं। फिर बारह लाख में से ढाई लाख आये, क्या ऐसा कुछ था। सब ले लिया सरकार ने। ले ले, जा न! अभी के कानून ऐसे हैं न जरा। परन्तु वह रहे तो भी भाग्योदय (नहीं, परन्तु) ज्ञानी तो विष्टा समान मानता है। आहाहा! हमारे तो लड़के अच्छे पके हैं, दुकान बहुत अच्छी चलती है, पाँच-पाँच लाख की तो महीने-महीने में आमदनी है। धूल भी नहीं अब, सुन न! वह तो सब विष्टा है। आहाहा!

लो, **कीचसौ कनक जाकै...** लो! कादव जैसा सोना माने धर्मी तो। है न पहले वहाँ इस ओर। **नीचसौ नरेश पद...** राजपद तो हल्का विष्टा के ढ़ेर में बैठने जैसा है, कहते हैं। आहाहा! और यह तो प्रसन्न हो जाये कि आहा! अपने को राजपद मिला। पाँच हजार वेतन महीने में। दुनिया में बड़े। बग्घी में बैठें। चार घोड़े चलें सामने। सामने

एक व्यक्ति चले, वापस उस घोड़े को व्यवस्थित चलाने के लिये। पहले ऐसा था। हमारे गारियाधार में मानसिंह थे न। अभी गुजर गये न बहादुरसिंह, उनका पिता था मानसिंह। वहाँ आते भैरवनाथ। गारियाधार। मैंने बराबर देखा हुआ है। मोरबी का ऐसा तो कारखाना था वहाँ। ऐसे ऊपर बैठे बग्घी के ऊपर। दो घोड़े बड़े ऊँचे। एक व्यक्ति सामने आगे चले। गाँव में क्या ?

मुमुक्षु : स्वयं हांके।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वयं बैठे। स्वयं बैठते सामने आगे। मानसिंह। ऐसा-ऐसा होता था। यह फड़क-फड़क बहुत होता था।

यह बहादुरसिंह गुजर गये न, उनका पिता। हाँ। यह (संवत) १९५९ के वर्ष की बात है। संवत् ५९। वहाँ थे, गाँव में आते थे। दो बड़े घोड़े ऐसे लेकर घोड़ागाड़ी में बैठे। आहाहा! कितनी साहिबी! जिसे घोड़े तो चले, परन्तु मनुष्य सामने दौड़ता चले। घोड़े ऐसे हों कि जिनकी चपेट में लोग न आ जायें। ऐसे पागल जैसे घोड़े हों। उद्धत हो न। उसमें बैठे हों। सामने बग्घी के ऊपर बैठते। सामने ऐसे, हों! नीचे अन्दर नहीं। सामने दो हाथ में घोड़े की लगाम ऐसे लेकर... लगाम लेकर बैठे। लोग ऐसा माने कि आहाहा! धूल भी नहीं अब, सुन न!

यह भाग्योदय को विष्टा माने। गाँधी! गजब बात यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मैल है और विष्टा है। .... मैल है। आहाहा! लो, विष्टा समान कहा न यहाँ। यह बन्ध अधिकार में है। ऐसा अधिकार अपने आ गया है पहले।

यहाँ कहते हैं... इस गाथा का अर्थ किया है पहले, हों! जहाँ शुभभाव को जहर कहते हैं, वहाँ शुद्धभाव ही अमृत हो सकता है। उसे हम चढ़ाना चाहते हैं अन्दर में। और यह लोग शुभभाव छोड़कर पाप करते हैं, नीचे-नीचे उतरते हैं। कहे, यह क्या करते हैं इसमें ?

मुमुक्षु : ऊपर-ऊपर चढ़ाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। '**किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति।**' आहाहा! शुभभाव छोड़कर

शुद्ध में जा, ऐसा हम कहना चाहते हैं। शुभभाव छोड़कर अशुभ में जाये, ऐसा कहना चाहते हैं? आहा! पाप में जाना? समझ में आया? अब इसे संक्षिप्त में बनारसीदास ने लिया है।

राम-रसिक अर राम-रस... रामरसिक आत्मा और रामरस अनुभव। **कहन सुननकौं दोई...** वेदान्ती तो ऐसा कहे कि अनुभव और आत्मा अनुभव करे—वह दो क्या यह? परन्तु उसे भान नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय का भेद....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद को जानता नहीं। परन्तु यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि आत्माराम रामरसिक—आनन्द का रसीला (और) अनुभवरस, दो भेद डालना—वह भी उसमें नहीं। **कहन सुननकौं दोई...** कहना और सुनने में दो है। बाकी वस्तु तो वह की वह है। आनन्दरस का रसिया भगवान आनन्द में रमे, वह वस्तु एक ही है। आहाहा! गजब बातें, भाई! रामरसिक अर्थात् आत्मा। राम का रसिक रसभाव, वह आनन्द और उसका रसिक, वह आत्मा। आत्मा और अनुभव—दो कहनेमात्र और सुननेमात्र है। वस्तु तो एक की एक ही है। आहाहा!

जब समाधि परगट भई,... लो। आत्मा में शान्ति... सम्यग्दर्शन और ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई, वहाँ **दुविधा नहि कोई...** दो नहीं वहाँ। ऐसा कहते हैं। वह तो एक का अनुभव है। वह एक ही आत्मा है। यहाँ तो अनुभव और आत्मा रसिक—ऐसे दो भेद भी जहाँ नहीं अनुभव में, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : विकल्प नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! मैं आत्मा को अनुभव करता हूँ, ऐसा भी भेद वहाँ नहीं। आहाहा! **अलख नाम धुनि लगी गगनमें मगन भया मन मेरा, आसन मारी दृढ सुरताधारी लिया अगम धर डेरा।** अन्तर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु परमात्मा जिनेन्द्रदेव ने कहा हुआ वह। आहाहा! उस आत्मा की समाधि में जाये।

लोगस्स में आती है भाषा। परन्तु अर्थ किसे आता है? लोगस्स में नहीं? **'समाहिवरमुत्तम दिंतु'...** अर्थ किसे आवे? गुणवन्तभाई! लोगस्स तो किया होगा?

मुमुक्षु : नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह किया नहीं। ठीक किया। उसका पद... पुराने में गये नहीं और अभी यह नया चला, वह यह आया। बाबूभाई, तुमने किया था?

मुमुक्षु : थोड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा किया थोड़ा। लाठी। लोगस्स आता है। वह तो यहाँ आता है, दिगम्बर में भी आता है। '**समाहिवरमुत्तम दिंतु**' सामायिक पाठ में आता है। परन्तु यह लोगों को परिचय नहीं न! सामायिक पाठ में आता है अपने दिगम्बर में। **एवंमये अभिथुआ विहुरयमला पहिणजरमरणा चउविसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसिअन्तु।** आता है। अर्थ की भी खबर नहीं होती तो तत्त्व और भाव की तो कहाँ खबर रहे?

कहते हैं, कि **तब दुविधा नहि कोई...** आहाहा! वहाँ विकल्प तो नहीं, राग तो नहीं, परन्तु जहाँ सम्यग्दर्शन के अनुभव काल में, कहते हैं कि मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ और मैं आनन्द का रसीला—ऐसे (दो भेद नहीं)। आहाहा! **आत्मा और आत्म अनुभव, ये कहने सुनने को दो है, जब आत्मध्यान प्रगट हो जाता है, तब रसिक और रस का...** रसिक अर्थात् आत्मा और रस अर्थात् अनुभव। **वा और कोई भेद नहीं रहता।** उसमें कोई भेद रहता नहीं। ऐसे अभेद का अनुभव, उसका नाम निर्विकल्प ध्यान, उसका नाम समाधि, उसका नाम शुद्ध उपयोग। परन्तु मैं आत्मा शुद्ध उपयोग करनेवाला और यह शुद्ध उपयोग—ऐसा भेद वहाँ है नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसी दृष्टिवन्त समकिती को ज्ञानी कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११२, आषाढ़ कृष्ण अमावस्या, गुरुवार, दिनांक २२-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य-३४ से ३९

३४ वाँ पद है ३४वाँ।

★ ★ ★

काव्य - ३४

शुभ क्रियाओं का स्पष्टीकरण

(दोहा)

नंदन बंदन थुति करन, श्रवन चिंतवन जाप।
पढ़न पढ़ावन उपदिसन, बहुविधि क्रिया-कलाप।।३४।।

शब्दार्थ:-नंदन=रसिक अवस्था का आनन्द। बंदन=नमस्कार करना। थुति (स्तुति)=गुण गायन करना। श्रवन (श्रवण)=आत्मस्वरूप का उपदेश आदि सुनना। चिंतवन=विचार करना। जाप= बार बार नाम उच्चारण करना। पढ़न=पढ़ना। पढ़ावन= पढ़ाना। उपदिसन=व्याख्यान देना।

अर्थ:-आनन्द मानना, नमस्कार करना, स्तवन करना, उपदेश सुनना, ध्यान करना, जाप जपना, पढ़ना, पढ़ाना, व्याख्यान देना आदि सब शुभ क्रियाएँ हैं।।३४।।

काव्य-३४ पर प्रवचन

नंदन बंदन थुति करन, श्रवन चिंतवन जाप।
पढ़न पढ़ावन उपदिसन, बहुविधि क्रिया-कलाप।।३४।।

मोक्ष अधिकार है। उसमें कहते हैं कि शुभभाव मुनि को आता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है। **नंदन...** रसिक अवस्था में आनन्द मानना, धर्म श्रवण आदि हो, उसमें आनन्द आवे। आनन्द है तो विकल्प, शुभभाव है। कहते हैं न कितने ही कि भाई, हमको भक्ति में, श्रवण में बहुत आनन्द आता है। उस आनन्द का अर्थ, वह विकल्प

राग है। ऐसा भाव आता है, वह शुभाचार है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। बीच में आवे अवश्य। अरे, गजब बात! नन्दन।

मुमुक्षु : हजार नेत्र से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी सब विकल्प—राग है। हजार नेत्र से भगवान को देखे तो वह शुभराग है। इन्द्र। यहाँ तो कहते हैं... यहाँ तो मुनि की प्रधानता से बात कही है। यहाँ मुनि की प्रधानता से कथन है। कि '**विष प्रणीतम।**' यह शुभभाव जहर है। आता है, ऐसा नीचे कहेंगे। **सुभाचारसौं काजा...** '**काजा**' का अर्थ होता है। ऐसी बात है जरा।

स्वरूप की दृष्टि होने पर भी, स्वरूप की स्थिरता आंशिक कितनी ही होने पर भी, प्रमत्तभाव में छठवें गुणस्थान में ऐसा भाव होता है, इतनी बात करते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा न हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं तो शुद्ध उपयोग हो।

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग न हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो तो शुभ हो। तीसरा नहीं होता वहाँ। आहाहा! मुनि किसे कहते हैं! छठवें गुणस्थान में जहाँ स्वरूप के ऊपर जहाँ दृष्टि पड़ी और अनुभव हुआ है, उसके उपरान्त अन्तर शान्ति की वृद्धि हुई है, प्रचुर स्वसंवेदन है। उसमें उपयोग जमा न हो शुद्ध उपयोग... शुद्ध परिणति है। वह शुद्ध परिणति संवर और निर्जरा का कारण है। परन्तु उसके साथ यह शुभभाव हो, वह बन्ध का कारण है। कर्म का मार्ग है, शिवमार्ग नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग तो ऐसा है। उसे स्वीकार करना पड़ेगा पहले। (भले) कठिन पड़े, परन्तु वस्तुस्थिति ही ऐसी है। आगे कहेंगे।

इस विधि वस्तु व्यवस्था जैसी, कही जिनंद कही मैं तैसी... भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसी वस्तु की स्थिति कही, ऐसी मैंने कही है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे, चौरासी के अवतार में जन्म-मरण के दुःख, देखो न, कितने? कोई

कहता था आज कि मोहनभाई यहाँ आते थे अहमदाबाद से। काम करके आते थे वापस। उसमें वे बस आगे आये और उल्टी हुई और वापस गये। ऐसा कोई कहता था।

मुमुक्षु : ....भाई ने कहा था, बस आगे आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी हुई। वे वापस गये।

मुमुक्षु : भाई को राजकोट हुई थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, वह तो यहाँ भाई राजकोट। भाईलालभाई को।

भाईलालभाई तब तो उन्हें हार्ट हो गया था न राजकोट। आधे घण्टे हिला... पक्षघात जैसा हिलते-हिलते हो गया। और दो घण्टे में... यह शरीर के लक्षण हैं ऐसे। इस प्रकार से...

मुमुक्षु : उल्टी हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बात हुई। बात हुई। उल्टी हुई। वहाँ आये और उल्टी हुई। वापस गये। यह बात हो गयी। यह तो दूसरी बात थी, उसमें तुमने यह बात कही। यह तो भाईलालभाई की बात थी।

मुमुक्षु : पक्षघात की बात चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म सुनते हैं न अन्दर इसलिए। बीच में भाईलालभाई की बात रखी परन्तु....

यहाँ कहते हैं कि आहाहा! देखो न ऐसी दशा! यह वह कहीं आत्मा की दशा है? आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु। आहा! उसका भान होना महादुर्लभ है। उसका अनुभव होना... वह शान्तमूर्ति प्रभु चैतन्य का स्वभाव वीतरागीस्वरूप है अन्दर। उसका अनुभव होकर दृष्टि होना, वही महादुर्लभ और अलौकिक बात है। यहाँ तो बाद की बात करते हैं कि मुनिपना प्रगट हुआ है, जिसे अन्तर में स्वरूप की रमणता, प्रचुर संवेदन, आत्मा की वीतरागी शान्तदशा बहुत प्रगट हुई है। तथापि वह मुनि प्रमत्तदशा में है, तब तक उसे ऐसे शुभभाव होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह भी बन्ध का कारण और आस्रव है। जीव को नुकसान का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहा! **नन्दन।**

वन्दन... नमस्कार करना। परमात्मा को नमस्कार। समवसरण में भगवान साक्षात्

हों, उन्हें नमस्कार। 'णमो अरिहंताणं' ऐसा कहना, वह भी शुभराग है। आहाहा! नमस्कार करना। **थुति करन...** स्तुति करना स्तुति। भगवान की, गुरु की, गुणी की, ज्ञानी की स्तुति करना, वह भी विकल्प शुभराग है। समन्तभद्राचार्य ने तो २४ तीर्थंकर की स्तुति की है और ऐसा भी कहा (कि) मुझे तो स्तुति का व्यसन हो गया है। उसमें ऐसा कहा है। वह भाव शुभ होता है, ऐसा। आहाहा! उसकी भूमिका प्रमाण शुभभाव होता है, परन्तु वह शिवमार्ग नहीं, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। शान्ति के पंथ में पड़ने से बीच में वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

श्रवन... यह वीतरागी वाणी सुनना। ऐई! आहाहा! उपदेश सुनना, शुभभाव है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सुनना, वह भी शुभभाव है। मुनि भी सुनें, गणधर सुनें, परन्तु भाव शुभ है। आहाहा! **श्रवन... चिंतवन...** ध्यान करना, वह चिन्तवन... चिन्तवन लिया है न! आत्मा ऐसा है, आत्मा ऐसा है, ध्रुव शुद्ध है—ऐसा घोलन करना। घोलन करना, वह भी एक शुभ विकल्प और राग है। आहाहा! कहो, समझ में आया? शुभ चिन्तवन करना आत्मा का कि 'आत्मा अखण्ड परिपूर्ण ध्रुव... ध्रुव हूँ।' उस ध्रुव के घोलन में जो विकल्प उठता है... वह आत्मा का चिन्तवन भी विकल्प-शुभभाव है। आहाहा!

जाप करना। 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' ऐसा जाप करना। आनुपूर्वी करते हैं न लोग। आनुपूर्वी समझते हो तुम? तुम्हारे नहीं इसलिए। श्वेताम्बर में आता है। पाँच बोल है न, आड़े-टेढ़े लिखे हों।

मुमुक्षु : श्रीमद् में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रीमद् में भी आता है। यह तो मूल श्वेताम्बर में। णमो अरिहंताणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, फिर णमो सिद्धाणं, पश्चात् णमो उवज्झायाणं, णमो अरिहंताणं, आयरियाणं, ऐसे आड़े-टेढ़े।

मुमुक्षु : बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब विकल्प शुभभाव है, कहते हैं। आहाहा! धर्म नहीं। संवर और निर्जरा का रूप नहीं। आहाहा!

चिंतवन... जाप... पढ़ना... शास्त्र पढ़ना। शास्त्र वाँचना, वह शुभराग है। यहाँ तो कहते हैं कि (भाव) आवे, परन्तु है शुभराग।

मुमुक्षु : निर्णय करना चाहिए न। (मात्र) पढ़ा करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ना नहीं स्थिर हो जाये तो।

मुमुक्षु : यह तो शर्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस। अन्तर में आनन्द में स्थिर हो जाये तो फिर वाँचना है ही नहीं कुछ। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि मुनि को भी ऐसा भाव आता है, परन्तु वह निषेध है। आहाहा! निषेध है, इसलिए नहीं आता—ऐसा नहीं है। तब तो प्रमत्त गुणस्थान ही नहीं रहता।

मुमुक्षु : आवे उसका निषेध हो या न आवे उसका निषेध हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! मोक्षद्वार है न!

पढ़ना और पढ़ाना। यह दूसरे को सुनाना। उपदेश बाद में आयेगा फिर। पढ़ाना—वाँचणी देते हैं न दूसरे को कि भाई यह वाँचना। श्वेताम्बर में बहुत देते हैं। आहाहा! अरे भगवान! बापू! कहते हैं कि वाँचणी देना, वह भी एक शुभ विकल्प है और उसमें तो ऐसा आवे .... कर्म निर्जरी। २९वाँ अध्ययन उत्तराध्ययन ७३ ...में। नहीं, नहीं। वाँचणी में तो शुभ विकल्प है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परद्रव्य आश्रित वृत्ति उठती है। वे आठ बोल लिये हैं न मोक्ष में। आठ यह लिये ऐसे दूसरे। आहाहा! प्रतिक्रमण और प्रतिशरण आता है न परिहार और... हाँ, वे। यह शैली ऐसी।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो दूसरी अपेक्षा से विशेष स्पष्ट।

व्याख्यान देना। आहाहा! उपदेश करना, वह शुभभाव है। वाणी नहीं, परन्तु वह विकल्प उठता है वह (शुभभाव है)। वाणी तो जड़ है। आहाहा! मीठालालजी! यह भाव यह कहते हैं। उपदेश देने में धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। ले! वे तेरापंथी तो कहते हैं कि उपदेश देने में निर्जरा है। स्थानकवासी में तेरापंथी है न। उसमें भीखनजी का

अधिक है। उसने सब बदल डाला तुलसी ने तो। उपदेश देना, वह निर्जरा है। कोई मुनि है... वह तो श्वेताम्बर सही न। आहार लाये हों और खाया नहीं गया हो और थोड़ा (बढ़ा) हो वह दूसरा खा जाये तो उसे निर्जरा होती है। निर्जरा अर्थात धर्म हो।

मुमुक्षु : नहीं तो उपवास हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ यह और अलग रखो। भाई, अपने को बहुत लम्बी (खबर) नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है परन्तु ऐसा है शास्त्र में।

मुमुक्षु : इतने तक तो रखो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना है।

हमारे हीराजी महाराज ऐसे थे जरा। शास्त्र में ऐसा लेख है। एक व्यक्ति था कोई साधु, नहीं? तुम्हारा था गोंडल का।

मुमुक्षु : वीरजी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई वीरजी.... आहाहा! लापसी-बापसी कोई ले आया। पहले रोटियाँ मिलीं और फिर लापसी अधिक मिली। अब लापसी तो इतनी अधिक खायी नहीं जाये। रोटियाँ डाल दे। ऐसे के ऐसे। फिर हीराजी महाराज थे। हमारे सम्प्रदाय के गुरु। अब बढ़ा हुआ... भाई! खा लेना, अपने खा लेना। लापसी तो खाकर बैठे थे परन्तु ऐसे धार्मिक। और वह फिर खाना कैसे? छाछ डालकर... छाछ समझते हैं? मठ्ठा। मठ्ठा होता है न, तो उसमें... डालकर पी गया। उसे निर्जरा मानते थे। यह सम्प्रदाय में ऐसा है, इसलिए बेचारे क्या करे?

मुमुक्षु : छापी हुई बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, ऐसा भगवतीसूत्र में है। आहाहा! कहते हैं, वह सब शुभभाव है। मुनि को आहार करने का भाव, वह भी शुभ है। निर्दोष लेकर आहार करना, वह भी शुभभाव है। आहाहा!

लो। यह आठ बोल। **बहुविधि क्रियाकलाप....** पश्चात् समाहित कर दिया। ऐसे बहुत प्रकार के क्रियाकलाप में... कलाप अर्थात् समूह कहलाता है। वह सब विकल्प है। आहाहा! राग है, ऐसा कहते हैं। वह वीतरागभाव नहीं। आहाहा! वीतरागभाव तो आत्मा आनन्दस्वरूप के आश्रय से प्रगट होता है। पर के लक्ष्य से वीतरागभाव होता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है वीतराग का। वीतराग अर्थात् क्या? तेरा स्वरूप ही वीतराग है। 'जिन सो ही आत्मा।' वीतरागस्वरूप ही प्रभु अनादि-अनन्त है। उसमें से बाहर निकलना शुभराग है। चाहे तो धर्म के नाम की यह क्रिया हो। परन्तु सब है शुभराग, पुण्यबन्ध का कारण है, मोक्ष का घातक है। कहेंगे देखो। **शुद्ध उपयोग में शुभ उपयोग का निषेध।** ३५ (पद)।

★ ★ ★

काव्य - ३५

शुद्धोपयोग में शुभोपयोग का निषेध

(दोहा)

सुद्धातम अनुभव जहां, सुभाचार तहां नांहि।
करम करम मारग विषैं, सिव मारग सिवमांहि।।३५।।

शब्दार्थ:-शुभाचार=शुभ प्रवृत्ति। करम मारग (कर्ममार्ग)=बन्ध का कारण। सिव मारग (शिवमार्ग)=मोक्ष का कारण। सिवमांहि=आत्मा में।

अर्थ:-ऊपर कही हुई क्रियाएँ करते करते जहाँ आत्मा का शुद्ध अनुभव हो जाता है, वहाँ शुभोपयोग नहीं रहता। शुभ क्रिया कर्म बन्ध का कारण है और मोक्ष की प्राप्ति आत्म-अनुभव में है।।३५।।

काव्य-३५ पर प्रवचन

सुद्धातम अनुभव जहां, सुभाचार तहां नांहि।
करम करम मारग विषैं, सिव मारग सिवमांहि।।३५।।

सिव मारग सिवमांहि... सिव अर्थात् आत्मा, ऐसा सिवमांहि अर्थात्? मोक्ष में वहाँ....

मुमुक्षु : वहाँ मार्ग कहाँ था?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा! **सुद्धातम...** शुभ प्रवृत्ति। शुभभाव, वह शुभप्रवृत्ति। वह कर्ममार्ग है। **क्रियाएँ करते करते जहाँ आत्मा का शुद्ध अनुभव हो जाता है।** करते-करते... उसमें मनुष्य उलझता है। ऐसा (भाव) होता है, परन्तु उससे छूटकर जब स्थिर होता है, तब उसे धर्म होता है। करते-करते का अर्थ यह। यहाँ तो ऐसा कहते हैं, स्वरूप की दृष्टि है, शान्ति है थोड़ी, उसमें ऐसा भाव होता है। वह छूटकर स्थिर हो, तब निर्जरा कहा जाता है, ऐसा।

सुद्धातम अनुभव जहां शुभाचार तहां नांहि... जहाँ शुद्ध उपयोग की रमणता आत्मा के साथ हो, वहाँ शुभ उपयोग होता नहीं। सप्तम गुणस्थान की अपेक्षा से बात की। मुनि को सप्तम गुणस्थान होता है क्षण में और पल में। प्रमत्त में से छूटकर अप्रमत्त होता है, तब उसे शुभाचार की क्रिया के कलाप की आवश्यकता (होती नहीं)। उसे विकल्प होता नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा!

सुभाचार तहां नांहि करम करम मारग विषैं। यह शुभभाव तो कर्म के मार्ग में है, बन्ध के मार्ग में है। यह जो आठ बोल आदि क्रियाकलाप के विकल्प कहे, वह सब बन्धमार्ग है। कठिन काम! **सिव मारग सिवमाहिं...** लो। **मोक्ष की प्राप्ति आत्म अनुभव में है।** ऐसा **सिवमारग सिवमांहि...** शिवमांही अर्थात् आत्मा। शुद्ध आत्मा के अन्तर का अनुभव, वह आत्मा, **सिवमारग सिवमांहि...** मोक्ष का मार्ग आत्मा में है। रागमार्ग कर्ममार्ग में है।

वह बड़ा विवाद यह है न! अरे! व्यवहार तो सब बन्ध है, ऐसा कहते हैं। परन्तु बन्ध है (ऐसी) पुकार कौन करता है यह? आहाहा! शिवमार्ग तो शिवमाहीं है। आत्मा शिवस्वरूप ही है, उसमें उसका मार्ग है। उसके आश्रय से दृष्टि, ज्ञान और रमणता शुद्ध उपयोग की—वह मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया? तब यहाँ कहते हैं कि वह शुद्ध उपयोग होता नहीं अभी। वह आठवें (गुणस्थान) में होता है। तो (इसका अर्थ कि)

मोक्षमार्ग होता नहीं अभी। हो गया जाओ। आहाहा! बात भारी गजब करते हैं। दृष्टिविष—दृष्टि का जहर है यह। मार डालता है उसे, नुकसान करता है परन्तु अब वह उसे जानने में आता नहीं।

प्रभु स्वयं चैतन्य शुद्ध आनन्द का धाम, उसमें मोक्ष का मार्ग सधता है। कहीं राग की क्रिया में मोक्ष का मार्ग होगा?

मुमुक्षु : नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बन्ध का मार्ग है। 'बन्ध बन्धमार्ग विषे, मोक्ष मोक्षमार्ग विषे' आता है। दोनों भिन्न चीज़ है। भले हो, कहते हैं। मुनि को वह हो शुभभाव, परन्तु है बन्धमार्ग। कहो, वह कहता है कि मोक्षमार्ग से भी बन्ध होता है और वह बन्ध, वह मोक्ष का मार्ग है। कहो। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। पुरुषार्थसिद्धि उपाय है न, उसकी गाथा का अर्थ करते हैं। अनुभव। मोक्ष-बन्ध... समकिती को जो बन्ध नहीं होता, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! ऐसा अर्थ अभी ही आया है। वह तो पहले से करते लोगों को। रतनचन्दजी ऐसा करते हैं। मोक्षमार्ग है न? यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय है न? कितनी गाथा है यह?

असमग्रं भावयतो रत्नत्रयमस्ति कर्मबन्धो यः।
स विपृक्षकृतोऽवश्यं मोक्षोपायो न बन्धनोपायः॥२११॥

इन्होंने तो अर्थ बराबर किया है। अपूर्ण रत्नत्रय की भावना करनेवाले पुरुष को शुभकर्म का जो बन्ध होता है, वह बन्ध विपक्षकृत—रागकृत होने से अवश्य ही बन्ध का उपाय है। मोक्ष का उपाय नहीं। तब वे ऐसा अर्थ करते हैं कि जो कुछ राग से बन्ध होता है, वह '**मोक्षोपायो न बन्धनोपायः**' ऐसा उल्टा अर्थ करते हैं।

मुमुक्षु : इसलिए ही किया है उल्टा अर्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : किया है परन्तु उल्टा भाव है, कुछ मेल? स्वयं ही नीचे तो कहते हैं, इसके पहले कि जितने अंश में राग, वह बन्ध; जितने अंश में निर्विकल्प—स्थिरता, शान्ति, शुद्ध परिणति, उतने अंश में मुक्ति। आहाहा! उन्होंने ही कहा है उसमें यह डाला है। देखो, उसके पश्चात् तो यह है। २११ के बाद ही है यह। २१२, २१३

और २१४। वह २११ है यह। क्या हो? जीव को पकड़ होती है लोगों को। ऐसी वह सूझ पड़ती नहीं अन्दर की, इसलिए फिर कोई भी सूझ पड़े, ऐसा राग (हो), दे, राग मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

कोई कहीं शरण नहीं बापू! यह देह छूटे, यह अन्तड़ियाँ खिचे, ऐसे-ऐस हो। बापू! तेरा स्वरूप भिन्न है। किसकी शरण वहाँ लेगा? भगवान की शरण लेगा तो भी विकल्प है, कहते हैं। आहाहा! शान्ति से मरण कब होगा? कि निर्विकल्प चैतन्य भगवान का आश्रय ले तो शुभ मरण हो। तीन लोक के नाथ को भी याद करे तो विकल्प होगा। आहाहा! हे भगवान! हे भगवान! तिराना प्रभु! भगवान कहते हैं कि हे भगवान! तू तुझे तिराना। आहाहा!

ऐसा कठोर दर्द हो, लोगों को सहन हो सके नहीं, लो। यह २०-२० वर्ष की जवान कन्या छोड़कर छह महीने के विवाह में मर जाता है। दामोदर सेठ का पुत्र, नहीं? रायचन्द था बड़ा। गृहस्थ व्यक्ति दस लाख रुपये। यह तो तब, हों! ७५ के वर्ष में विवाह था उसके पुत्र का। वैशाख में विवाह और आसोज शुक्ल में मर गया। छह महीने में मर गया। दो महीने-तीन महीने पहले तो ऐसे खाट और पैसा... पैसावाला व्यक्ति। उस समय दस लाख कहाँ थे किसी के पास? चालीस हजार की आमदनी। यह तो (संवत्) १९७५ की बात है, हों! परन्तु इससे पहले से थे उसे पैसे... छह महीने का विवाहित, महल बड़ा पंजाधर। मर गया....

फिर उसका मामा। यहाँ लीमड़ी गाँव में। दीवान कोठारी। कोठारी न? कोठारी। वह कोठारी आया। लंघीयुं लेकर आया। लंघीयुं... लंघीयुं समझ में आता है? रोनेवाली, छाती कुटानेवाली महिलायें। ऐसी-ऐसी रोवे ऐसा। ७५ की बात है यह। २५ और २७=५२ वर्ष हुए। दामोदर सेठ कहते बेचारे, हों! कि रायचन्द मर गया तब हमको ऐसा नहीं होता था। परन्तु वह गाँव में ऐसा बड़ा परिवार और ऐसा बहुत गृहस्थ व्यक्ति और महिलायें, महिलायें बड़ी सामने लंघीयु—रोनेवाली। हे .... और सामने इस ओर बड़ा लश्कर। और वे रुलावे। ऐसा बोले, ऐसा बोले, वहाँ गाँव में बेचारा आँसुधार चले। अरे, परन्तु उसमें क्या था? जिस क्षण में देह छूटने का काल (है), किसकी शरण में जायेगा तू? आहाहा!

पैसा, इज्जत, कीर्ति कितनी थी, लो। आहाहा! पढ़ता था वह लड़का जब, वह उसके पिता अमुक पैसा भेजे। वह क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : खर्ची।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। खर्चे के और जेब (खर्च) के कुछ २५-५०, २५-५० भेजते थे (जेब) खर्च के महीने में। जेब (खर्च) के, हों! बाकी यह पढ़ने का क्या कहलाता है? पैसा देना तुम्हारे फीस के, वे अलग। एक बार पत्र लिखा उसके पिता को। पिताजी! हम पैसे (वाले) के घर में आये हैं, हों! गृहस्थ के घर में आये हैं। हम साधारण (के घर में) नहीं आये। हम को महीने में २०० रुपये जेबखर्च के चाहिए। फीस के, खाने के, पीने के वे अलग। २०० रुपये जेबखर्च के एक महीने के चाहिए। यदि काका को न पोसाता हो तो तुम्हारे नाम से लिखो। तीन (भाई) इकट्ठे थे।

यह तो ७५ के पहले की बात है, हों! ७५ में तो विवाह करके गुजर गया। वह लड़का ऐसा था .... आहाहा! तब पूना में पढ़ता था। दो सौ रुपये जेबखर्च के महीने के चाहिए। हम कहीं गरीब घर में नहीं अवतरे, ऐसा लिखा था। ऐसा लड़का था। तब तो रुपये थे न रोकड़ा। २५-५०, ५०-५० हजार आवे परन्तु थैलियाँ। लाख-लाख की हो। तो वह मजदूर को अन्दर पैसे रखने जाने न दे। वह घर के व्यक्ति इकट्ठे होकर, मजदूर रखे अमुक ठिकाने, फिर लेकर ऐसे रखे। बापू! हमारी कमर टूटती है, उस समय पैसे रखने में, कहे। ऐई कान्तिभाई! वह ऐसा लड़का। वह दो सौ रुपये तो खर्च के चाहिए। इसके अतिरिक्त फीस, खाना, किराया-बिराया, उसका वेतन, वह तो तुम देते हो पहले, कहा। मर गया बेचारा। लो, उसमें क्या हुआ धूल! आहाहा!

चैतन्य भगवान अन्दर आनन्द का धाम प्रभु, उसके स्वरूप की दृष्टि बिना, उसकी शरण बिना यह सब मरण कुत्ते और कौवे मरें, ऐसे मरण हैं यह तो। आहाहा! कोई शरण नहीं कहीं। यहाँ तो कहते हैं कि शुभराग भी शरण नहीं। इसलिए तो यहाँ बात चलती है। क्योंकि वह तो बन्ध का कारण है और पूर्व में कोई शुभ बहुत किया हो तो उसके परमाणु बँधे हों निमित्त होकर, वे कहाँ शरण हैं यहाँ? कि भाई! बहुत भाव किये थे। वे बहुत भाव किये तो बहुत परमाणु बँधे हों। परन्तु शरण किसकी वहाँ? चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन की शरण है। आहाहा! इसके अतिरिक्त

कोई शरण है नहीं। लो, कहते हैं न, **करम-करम मारग विषैं...** यह तो शुभभाव बन्ध में हैं। **सिवमारग सिवमांहि,** लो।

★ ★ ★

काव्य - ३६

पुनः

(चौपाई)

इहि बिधि वस्तु व्यवस्था जैसी।
कही जिनंद कही मैं तैसी।।
जे प्रमाद संजुत मुनिराजा।
तिनके सुभाचारसौं काजा।।३६।।

शब्दार्थः-वस्तु व्यवस्था=पदार्थ का स्वरूप। प्रमाद संजुत=आत्म-अनुभव में असावधान, शुभोपयोगी।

अर्थः-ग्रन्थकार कहते हैं कि इस प्रकार पदार्थ का जैसा स्वरूप जिनराज ने कहा है, वैसा हमने वर्णन किया। जो मुनिराज प्रमाददशा में रहते हैं, उन्हें शुभ क्रिया का अवलम्ब लेना ही पड़ता है।।३६।।

काव्य-३६ पर प्रवचन

इहि बिधि वस्तु व्यवस्था जैसी।
कही जिनंद कही मैं तैसी।।
जे प्रमाद संजुत मुनिराजा।
तिनके सुभाचारसौं काजा।।३६।।

मुमुक्षु : राजा, काजा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उस (पद) के साथ मिलाने को। मुनिराज को काजा,

मिलाना है न? काज कहाँ, उसके साथ कार्य कहाँ है? कार्य है ही कहाँ? परन्तु आता है, यह कहते हैं।

इहि बिधि वस्तु-व्यवस्था जैसी... ग्रन्थकार कहते हैं... बनारसीदास। **इस प्रकार पदार्थ का जैसा स्वरूप जिनराज ने कहा,...** जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें सर्वज्ञ और वीतरागता परिपूर्ण प्रगट हुई, ऐसे जिनराज वस्तु की स्थिति की व्यवस्था ऐसे कहते थे। ऐसी मैंने कही, ऐसा कहते हैं। हमने कहीं कल्पना से की (नहीं)। आहाहा! **पदार्थ का जैसा स्वरूप जिनराज ने कहा, वैसा हमने वर्णन किया।** भगवान यह वर्णन करते थे कि भाई! मुनि को सम्यग्दर्शन-चारित्र की दशा होने पर भी ऐसे प्रमत्त-शुभभाव में जब आते हैं, वह बन्धमार्ग है। आहाहा! जिनेनद्रदेव ने कहा, ऐसा मैंने कहा, ऐसा कहते हैं।

जे मुनिराज प्रमाददशा में रहते हैं। देखो, मुनि है और छठवें गुणस्थान में जब आते हैं, तब वह प्रमाददशा है। वह पंच महाव्रत का पालन और वह सब प्रमाददशा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! २८ मूलगुण मुनि के, एक बार आहार, छह आवश्यक, वह सब प्रमाद के भाव हैं। आहाहा! प्रमाद। पन्द्रह भेद वह सब प्रमाद ही है। राग-कषाय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में लेते हैं। राग आता है न! उतनी कषाय आती है।

मुमुक्षु : स्नेह.... स्नेह।

पूज्य गुरुदेवश्री : हं। स्नेह। राग आता है न स्नेह। परन्तु वह कषाय आती है न इकट्ठी।

उन्हें शुभ क्रिया का अवलम्ब लेना ही पड़ता है। यह तो अर्थ... आता है। क्या हो? भाषा तो ऐसी ही आवे न। पंचाध्यायी में लिखा है कि समकिती को भी अन्दर स्थिरता नहीं हो, तब शुभभाव का आश्रय लेना पड़ता है। आश्रय का अर्थ यह होता है, ऐसा। आहाहा! मार्ग ऐसा है। शान्ति का धाम प्रभु, उसमें अन्तर में गये बिना उसे शरण, शान्ति कहीं नहीं है। मुनि को भी शुभभाव में आवे तो बन्ध का कारण और अशान्ति का कारण है, कहते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ३७

जहां प्रमाद दसा नहि व्यापै।
जहां अवलंब आपनौ आपै।।
ता कारन प्रमाद उतपाती।
प्रगट मोख मारगकौ घाती।।३७।।

शब्दार्थ:-अवलंब=आधार।

अर्थ:-जहाँ शुभ-अशुभ प्रवृत्तिरूप प्रमाद नहीं रहता, वहाँ अपने को अपना ही अवलम्ब अर्थात् शुद्धोपयोग होता है, इससे स्पष्ट है कि प्रमाद की उत्पत्ति मोक्षमार्ग में बाधक है।।३७।।

काव्य-३७ पर प्रवचन

जहां प्रमाद दसा नहि व्यापै।
जहां अवलंब आपनौ आपै।।
ता कारन प्रमाद उतपाती।
प्रगट मोख मारगकौ घाती।।३७।।

जहाँ शुभ-अशुभ प्रवृत्तिरूप प्रमाद नहीं रहता। दसा नहि व्यापै... जहाँ शुभभाव नहीं, ऐसा जो भाव **अवलंब आपनौं आपै**। भगवान आत्मा का अवलम्बन है वहाँ। अन्तर में उतरने पर गहरे जाने पर आत्मा का अवलम्बन है उसे। उसे निमित्त और विकल्प तथा भगवान का भी अवलम्बन (होता नहीं)। आहाहा!

मरता हो न, कहा, भगवान के पास ले जाओ मुझे। देव में (हो) ऐसा आता है शास्त्र में। देव को मृत्यु का समय हो, फिर भगवान की प्रतिमा हो न शाश्वत्। ऐसे चरण के ऊपर हाथ रखकर... वहाँ देह छूट जाती है। परन्तु वह सब शुभभाव है। देव होते हैं न? देव का आयुष्य पूरा हो, वह ख्याल आ जाये उसे। समकिती हो, उसे तो ख्याल आ जाये कि ओहोहो! बस। भगवान की प्रतिमा, ऐसे मणिरत्न की शाश्वत् है देव में। वहाँ

जाकर चरण के ऊपर हाथ रखे और ध्यान में आ जाये। तथापि वह पर की ओर का भाव, वह तो शुभ विकल्प है। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का! आहाहा!

प्रभु ऐसा कहते हैं कि मेरी शरण में आ, तो भी तुझे राग होगा। ले! आहाहा! मुझे याद करेगा तो तुझे राग होगा। मेरा स्मरण करेगा तो तुझे राग होगा। वीतराग यह कहते हैं। दूसरे तो कहे कि मुझे याद करो, जाओ, मुक्ति होगी। हमारे साधु को लड्डू दो, जाओ बैकुण्ठ में वहाँ तुमको लड्डू मिलेंगे। इसलिए ... रखना और इसे बर्तन और इसे खाना... यह खोटे कर्म हैं न! आहाहा!

जहां प्रमाद दसा नहि व्यापै, तहां अवलंब आपनौ आपै। वहाँ अपने को अपना ही अवलम्बन शुद्ध उपयोग होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भूमिका प्रमाण में शुभराग होता है, परन्तु वह शरण नहीं। और उससे कल्याण होगा और शुद्ध उपयोग होगा, (ऐसा माने), वह तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, धर्मी को, आनन्द के अनुभव में नहीं होता, तब शुभराग होता है, तथापि उसे छोड़कर जब शुद्ध आत्मा के अवलम्बन में जाता है, तब उसे पर का शरण है (नहीं)। भगवान आत्मा का शरण है, उसका अवलम्बन है। देखो, यह विवाद उठते हैं न! वे कहें, देव की प्रतिमा का आलम्बन चाहिए। दूसरा कहे, भाई! आलम्बन-फालम्बन जड़ का नहीं। सुन न! वह शुभभाव होता है। तथापि वह वास्तव में आलम्बन नहीं। यह विवाद... विवाद... विवाद...

ता कारन प्रमाद उतपाती... आहाहा! यह सम्यग्दर्शनसहित अनुभवी जीव को और चारित्रसहित मुनि को प्रमाद जो आता है, वह उत्पात है, कहते हैं। प्रमाद की उत्पत्ति, वह प्रगट मोक्ष के मार्ग का घाति। आहाहा! मुनि को भी वह पंच महाव्रत का विकल्प, २८ मूलगुण का विकल्प प्रगट मोक्षमार्ग का घाति है। कहते हैं, यह तो बहुत ऊँची श्रेणी की बात है। ऊँची नहीं, अभी तो पहली श्रेणी की बात है यह तो। आहाहा! निर्णय तो कर। अभी निर्णय का ठिकाना नहीं हो, उसे समकित कैसा? उसे चारित्र कैसा? उसे व्रत कैसे? आहाहा! समझ में आया?

बहुतों को यही आवे ... बस, यात्रा और यह भगवान की भक्ति-पूजा बराबर विधि से करना। कल्याण हो जायेगा, कहते हैं। धूल भी नहीं होगा, सुन न! कहते हैं। ऐई! महाव्रत को विधि से पालना। तो कहते हैं, राग है। उससे धर्म माने, वह तो

मिथ्यादृष्टि है। आहा! सम्यग्दृष्टि को आता है, परन्तु वह बन्ध का मार्ग मानता है। वह प्रगट मोक्षमार्ग का घाति है, ऐसा मानता है। आहाहा! दृष्टि में बड़ा अन्तर। यह ३७वाँ बोल हुआ। ३८ (पद)।

★ ★ ★

काव्य - ३८

जे प्रमाद संजुगत गुसांई।
उठहिं गिरहिं गिंदुककी नांई।।
जे प्रमाद तजि उद्धत हौंहीं।
तिनकौं मोख निकट द्रिग सौंहीं।।३८।।

शब्दार्थः-गुसांई=साधु। गिंदुक=गेंद। नांई=तरह। द्रिग=नेत्र।

अर्थः-जो मुनि प्रमाद सहित होते हैं, वे गेंद की तरह नीचे से ऊपर को चढ़ते और फिर नीचे को पड़ते हैं, और जो प्रमाद छोड़कर स्वरूप में सावधान होते हैं, उनकी दृष्टि में मोक्ष बिलकुल पास ही दिखता है।

विशेष : साधुदशा में छट्ठा गुणस्थान प्रमत्त मुनि का है सो छट्ठे से सातवें में और सातवें से छट्ठे में असंख्यात बार चढ़ना गिरना होता है।।३८।।

काव्य-३८ पर प्रवचन

जे प्रमाद संजुगत गुसांई।
उठहिं गिरहिं गिंदुककी नांई।।
जे प्रमाद तजि उद्धत हौंहीं।
तिनकौं मोख निकट द्रिग सौंहीं।।३८।।

आहाहा! पहले समझण में तो ले कि मार्ग कैसा है ? समझण का ठिकाना नहीं, उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं और उसे अनुभव होता नहीं। आहाहा! मूल विवाद अनादि

(काल) का। पर की रुचि और पर के प्रेम से हटा नहीं। वह की वह दशा अनादि की है। **जे प्रमाद संजुगत...** जो प्रमादसहित... **संजुगत** अर्थात् सहित। **गुंसाई... गुंसाई** होते हैं न? **गुंसाई** अर्थात् साधु। परन्तु गुंसाई, उन लोगों के—वैष्णव के (साधु), उसे गुंसाई कहते हैं। हाँ, (वैष्णव) गुंसाई कहते हैं और वास्तविक गुंसाई—वास्तविक साधु हो न उनके—वैष्णव के। हमारे गुंसाई आये हैं, हमारे गुरु आये हैं, ऐसा कहे।

मुमुक्षु : उनका गुरु।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा साधु **प्रमाद संजुगत—**सहित साधु छठवें गुणस्थानवाले। आहाहा! पंच परमेष्ठी में मिले हुए और सम्मिलित।

परन्तु जो प्रमत्तसहित है। **उठहिं गिरहिं गिंदुककी नांई...** गेंद... गेंद। गेंद। **गिंदुक की तरह नीचे से ऊपर को चढ़ते हैं और फिर से नीचे को पड़ते हैं।** ऐसे। आहाहा! विकल्प है न? यहाँ ऐसे चले और ऐसे चले और ऐसे चले, कहते हैं। आहाहा! हल्कापन बताते हैं। गति करे ईर्यासमिति (सहित), तथापि वह गति हल्की है। ईर्यासमितिसहित हो।

मुमुक्षु : ऐसा होता है और शुद्ध उपयोग न हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो न ऐसा भाव, उस अपेक्षा से। **उठहिं गिरहिं...** उठे, खड़ा हो, और चले, और शरीर ऐसे हो जाये। शुभराग है। गेंद की भाँति, गेंद।

जे प्रमाद तजि उद्धत हौहीं,... लो। जो राग को—शुभभाव को छोड़कर, स्वरूप में सावधान होता है, वह उद्धत होता है उद्धत। राग छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है, वह मुनि **तिनकौं मोख निकट द्रग सौंही... उनकी दृष्टि में मोक्ष बिल्कुल पास ही दिखता है।** मोक्षस्वरूप ही है, ऐसा जहाँ निर्विकल्प अनुभव हुआ और निर्विकल्प चारित्र की दशा हुई, (तो) मोक्ष नजदीक ही है। अल्प काल में उसे मुक्ति होगी, ऐसा उसे भासित होता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग कठिन, कहे ऐसा महँगा। अभी तो एक संसार के साधारण धन्धे से छूटना हो तो छूट सकता नहीं। उसमें फँस-फँसकर ऐसा गहरा उतरा हुआ हो। आहाहा! जाना है कहाँ, उसकी खबर नहीं होती। अब यहाँ तो कहते हैं कि शुभभाव मुनि को आवे तो भी वह .... चलते-चलते उन्हें कहते हैं कि गेंद की भाँति चलते हैं। आहाहा!

तिनकौं मोख निकट द्रग सौंही... जो उद्धत जो शुभराग का प्रमाद छोड़कर अप्रमत्तदशा में आनन्द में जाते हैं, उन्हें मुक्ति निकट है। उन्हें मोक्ष नजर में निकट है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न वह तो। वह मोक्ष नजदीक है, ऐसा है। अल्प काल में केवल (ज्ञान) होगा, ऐसा। अप्रमत्तदशा है न यहाँ। अप्रमत्तदशा है, इसलिए केवल (ज्ञान) अल्पकाल में होगा। मुक्ति होगी और अल्पकाल में उसे केवलज्ञान है। जिसने पूरा केवलज्ञान का पिण्ड आत्मा के अनुभव में स्वरूप में लिया दृष्टि में, उसमें स्थिर हुआ है, उपयोग, वह शुद्ध उपयोग है, उसे मोक्ष अल्पकाल में है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह अस्ति है।

साधुदशा में छट्ठा गुणस्थान प्रमत्त मुनि का है, सो छट्ठे से सातवें में और सातवें से छठवें में असंख्यात बार चढ़ना गिरना होता है। यह असंख्यात बार लिया है, (परन्तु) संख्यात होता है। ऐसे मुनि को संख्यात बार—हजारों बार छठवाँ-सातवाँ (गुणस्थान) आता है।

मुमुक्षु : यह काल.... पौन सेकेण्ड की तो बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पौन सेकेण्ड के अन्दर। एक घण्टे में तो हजारों बार। आहाहा! असंख्य बार लिखा है इन्होंने। असंख्य बार खोटी बात है। संख्यात की बात है। असंख्यात बार नहीं। आयुष्य ही थोड़ा है मुनि का। बहुत तो करोड़ पूर्व। ३९ (पद)।

★ ★ ★

काव्य - ३९

घटमैं है प्रमाद तब ताईं।
पराधीन प्रानी तब ताईं।।
जब प्रमादकी प्रभुता नासै।
तब प्रधान अनुभौ परगासै।।३९।।

शब्दार्थ:-जब ताईं=जब तक। तब ताईं=तब तक। प्रभुता=बल। नासै (नाशै)= नष्ट होवे। प्रधान=मुख्य। परगासै (प्रकाशै)=प्रगट होवे।

अर्थ:-जब तक हृदय में प्रमाद रहता है, तब तक जीव पराधीन रहता है, और जब प्रमाद की शक्ति नष्ट हो जाती है, तब शुद्ध अनुभव का उदय होता है।।३९।।

काव्य-३९ पर प्रवचन

घटमैं है प्रमाद तब ताईं।
पराधीन प्रानी तब ताईं।।
जब प्रमादकी प्रभुता नासै।
तब प्रधान अनुभौ परगासै।।३९।।

मुमुक्षु : प्रमाद की प्रभुता बतायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। शुभभाव, वह प्रमाद की प्रभुता है, कहते हैं। आत्मा की प्रभुता नहीं। आहाहा! ओहोहो! **घटमैं है प्रमाद जब ताई... जब ताई... जब तक हृदय में प्रमाद रहता है, तब तक जीव पराधीन रहता है।** ओहोहो! देखो, शुभभाव पराधीन। पराधीन की व्याख्या—पर आधीन करे, ऐसा नहीं। स्वयं पर—शुभभाव के आधीन हो जाये, वह पराधीन है। आहाहा! मुनि को भी छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के विकल्प, वह पराधीन दशा है। पराधीन का अर्थ कर्म के कारण होता है, ऐसा नहीं। अपना प्रमाद है, (इसलिए) वह पर के आधीन हो जाता है। अप्रमाद है, वह स्व के आधीन है। राग, वह वास्तव में तो परवस्तु है, विभाव है, उसके आधीन (है, वह) पराधीन है।

मुमुक्षु : किसने किया पराधीन?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने (स्वयं ने)। राग में गया, वह पराधीन हुआ।

आता है न, वह ४७ नय आते हैं प्रवचनसार (में)। ईश्वरनय, अनीश्वरनय। ४७ नय हैं, (उसमें) ईश्वरनचय, अनीश्वरनय है। अपनी स्वतन्त्रता से राग में पराधीन होता है, पर के कारण से नहीं। आहाहा! स्वभाव की अप्रमत्तदशा छोड़कर राग में आता है,

वही पराधीन दशा है, विभाव है। आहाहा! शिष्य कहे, स्वाधीन या पराधीन। एक आता है उसमें। आज आयेग, नहीं? द्रव्यदृष्टि से स्वाधीन है और पर्यायदृष्टि से पराधीन है, नहीं? उसमें आता है कहीं।

मुमुक्षु : १४ बोल में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, १४ बोल में।

अब उस दिन तो यह बहुत चर्चा हुई हमारे (संवत्) १९९० के वर्ष में। मोरबी... मोरबी। मोरबी में थे न तब। यह सवाईलाल गाँधी भावनगर के, नहीं? सवाईलाल गाँधी, वे आये थे, यह उनकी बड़ी चर्चा हुई थी। वह पराधीन है। यह इसमें लिखा है। क्या लिखा है? कहा। पर्यायदृष्टि से पराधीन, द्रव्यदृष्टि से स्वाधीन। यह कहीं है अवश्य। है। यह तो सब चर्चा... यह सब तो ठेठ से पढ़ा हुआ है न। ९०। यह तो पहले से पढ़ा हुआ है। सवाईलाल गाँधी थे न वहाँ। उनके पिता थे, नहीं? ऊना में। सवाईलाल के पिता गाँधी थे।

मुमुक्षु : सवाईलाल भूधर...

पूज्य गुरुदेवश्री : भूधर नहीं, भूधर नहीं। कुबेर थे। कुबेर गाँधी। कुबेर गाँधी। यह नहीं पहिचानते। बेचारे छोटे हैं न। कुबेर गाँधी थे न, उनका पुत्र सवाईलाल था। वह जरा बाहर के बहुत आग्रही थे।

फिर (कहे), देखो! कर्म के कारण पराधीन है, ऐसा लिखा है बनारसीदास में। कहा, ऐसा नहीं लिखा, पढ़ो। भवानजीभाई थे वे कच्छी... कच्छी। उसमें कहीं है अवश्य। १४वें में है, कहीं है अवश्य। अब वह वहाँ सब खोजने जाये। वह कहीं है।

मुमुक्षु : स्याद्वाद अधिकार में।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद अधिकार में। कहाँ? कहाँ आया?

मुमुक्षु : ३१४ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३१४ पृष्ठ?

मुमुक्षु : शिष्य कहै स्वामी जीव स्वाधीन....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह, बस यह, लो यह। स्याद्वादद्वार में। हाँ, यह तो बहुत चर्चाएँ हुईं हैं। **शिष्य कहै स्वामी जीव स्वाधीन कि पराधीन**। यह पराधीन आया न? सब यही... पहले से ही हमारे ऐसी सबके साथ चर्चा चलती थी।

जीव एक है किधौं अनेक मानि लीजिए।
जीव है सदीव कीधौं नांही है जगत मांहि,
जीव अविनश्वर कि नश्वर कहीजिए॥
सतगुरु कहै जीव है सदीव निजाधीन,
एक अविनश्वर दरव-द्रिष्टि दीजिए।
जीव पराधीन छिनभंगुर अनेक रूप,
नांही जहां तहां परजै प्रवांन कीजिए॥

पर्यायदृष्टि में जाये, वह पराधीन होता है। क्या कहा? द्रव्यदृष्टि से देखो तो जीव सदाकाल है, स्वाधीन है, एक है, अविनाशी है। पर्यायदृष्टि से पराधीन... पर्यायदृष्टि से पराधीन। कर्म से पराधीन, ऐसा नहीं कहा। कर्म का बहुत चलता था न हमारे वहाँ ठेठ से। वे (कहे), कर्म के कारण से होता है, कर्म के कारण से होता है। अब छोड़... छोड़... ... परद्रव्य के कारण से हो तो तू जीवता है या नहीं वहाँ? मर गया है, वह कर्म के कारण होता है तुझे? पर्यायदृष्टि करे तो पराधीन होता है। आहाहा! तब भी भाषा देखो न! **परजै प्रवांन कीजिए...** अंश के ऊपर दृष्टि पड़ी, वह पराधीन है। द्रव्य के ऊपर दृष्टि, वह स्वाधीन है। यह पराधीन की व्याख्या है। पराधीन का अर्थ ऐसा नहीं कि कर्म उसे पराधीन कराता है। परद्रव्य, वह कहीं पराधीन कराता होगा?

उसमें आया न अपने यह? प्रवचनसार, वह ४७ नय। ईश्वरनय आता है न। वह बहुत बाहर आ गयी है एक-एक की बातें, लो। ईश्वरनय कहाँ गया? ईश्वरनय ३४। 'आत्मद्रव्य ईश्वरनय से परतन्त्रता भोगनेवाला है।' स्वयं परतन्त्र होता है, उसे भोगे, ऐसा कहते हैं। 'धाय की दुकान पर दूध पिलाये जानेवाले राहगीर के बालक की भाँति', लो। ऐसा उसका, स्वयं का पर्याय धर्म में पराधीन होता है, ऐसा उसका स्वभाव है। पर्याय स्वभाव, हों! यहाँ तो यह लेना है न? 'आत्मद्रव्य अनीश्वरनय से स्वतन्त्रता

भोगनेवाला है। हिरण को स्वच्छन्दता (स्वतन्त्रता, स्वेच्छा) पूर्वक फाड़कर खा जानेवाले सिंह की भाँति।' यह राग भी स्वतन्त्ररूप से करता है। समझ में आया? आहाहा! अभी तो समझने में ठिकाना न हो। विवाद। यह तो (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। मूणी में बहुत चर्चा भगवानजी के साथ हुई।

कहते हैं, **घटमैं है प्रमाद जब ताई, पराधीन प्रानी तब ताई...** क्या समझ में आया? जब शुभभाव करता है, वही पराधीन है। पर के आधीन होता है, राग के आधीन होता है। **जब प्रमादकी प्रभुता नासै...** देखो, भाषा भी कैसी! जब तक हृदय में प्रमाद रहता है, तब तक जीव पराधीन रहता है। ऐसा है न? कर्म रहते हैं, तब तक पराधीन है, ऐसा नहीं कहा। वह तो परद्रव्य है, उसके साथ सम्बन्ध भी क्या है? उसकी पर्याय उसमें, इसकी पर्याय इसमें एक समय में। आहाहा! अभी तो व्यवहार की समझण में अन्तर है, उसे तो सम्यक्त्व होने की योग्यता भी नहीं। आहाहा!

जब प्रमादकी प्रभुता नासै तब प्रधान अनुभौ परगासै,... लो। जब यह प्रमाद की शक्ति नष्ट हो जाये, नष्ट हो जाती है, तब शुद्ध अनुभव का उदय होता है। आहाहा! तब अन्दर में स्थिर होता है, कहते हैं। राग में आवे, तब पराधीन है। उसे प्रमाद का नाश होकर जब स्वरूप में आवे, तब स्थिर होता है, तब स्वाधीन है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान जो प्रगट हुए, वह तो स्वाधीन है। परन्तु जितना राग भाग था उतना पराधीन था। मुनि को भी। वह भाव पर है न, उसके आधीन हो गया। पूरा स्वरूप समझाना है न? वरना तो विभाव से समकिती तो मुक्त है। अरे! यहाँ चारित्र का अधिकार है न? वास्तव में तो सम्यग्ज्ञान होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर समकिती राग से तो मुक्त ही है। परन्तु यहाँ चारित्र का अधिकार है इसलिए, चारित्र में जितना प्रमादभाव है, उतना पराधीन (कहा) है। स्थिरता... स्थिरता की बात है न?

इसमें आया न वह चिट्ठी में। चारित्र स्थिर-अस्थिर शक्ति। चिट्ठी में आता है। स्थिर-अस्थिर। संक्लेश, विशुद्ध गति, ऐसा कुछ है। उपादान-निमित्त की चिट्ठी। यह है न। वह अपना काम है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है, भाई! देखो, क्या कहा यह? चारित्र है न उपादान। देखो, चारित्रगुण की संक्लेश, विशुद्धरूप गति। या शुद्धरूप या अशुद्धरूप परिणमना, वह उसकी गति-योग्यता है, स्वयं के कारण से है। और पीछे, स्थिरता-

अस्थिरतारूप शक्ति। स्थिरता होना या अस्थिरता होना, उसकी शक्ति उसकी अपनी है। कहो, कितना लिखा है यह बनारसीदास ने स्पष्ट! यह तो वह चिट्ठी मिलती नहीं थी पहले तब हों! (संवत्) १९८४ में। उस समय मिलती नहीं थी। अब ऐसा सब बाहर प्रकाशित हो गया। चारित्र के संक्लेश, विशुद्धगति; स्थिरता-अस्थिरता शक्ति; मन्द-तीव्ररूप जाति। मन्द और तीव्र। पाँचवें गुणस्थान तक तीव्र है। चौदहवें में मन्द है। भाई ने कहा है न उस पृष्ठ का—बनारसीदास का।

अपने तो यहाँ कहते हैं, **घटमैं है प्रमाद जब ताईं पराधीन प्रानी तब ताईं...** जब तक प्रमाद, तब तक पराधीन, ऐसा है। जब तक कर्म का उदय, तब तक पराधीन? ऐसा है नहीं। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं। आहाहा! **जब प्रमादको प्रभुता नासै तब प्रधान... शुद्ध अनुभव का उदय होता है।** देखो, भाषा उदय प्रयोग की है। **प्रधान परगसै** है न। श्रीमद् में आता है न उदय। उदय होय चारित्र का... आता है न उसमें? वीतराग... उदय होय अर्थात् उदय प्रगटे। राग की पराधीनता टाले, वहाँ स्वभाव की स्थिरता प्रगटे, वह स्वयं के आधीन है। इसलिए स्वभाव में स्थिरता हो, वह मोक्ष का मार्ग है। जितना प्रमाद है, उतना बन्ध का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११३, श्रावण शुक्ल १, शुक्रवार, दिनांक २३-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य-४० से ४४

यह समयसार नाटक है। समयसार अर्थात् आत्मा, उसका यह नाटक। यह मोक्षद्वार अधिकार है। ४०वाँ बोल है ४०।

★ ★ ★

काव्य - ४०

पुनः (दोहा)

ता कारन जगपंथ इत, उत सिव मारग जोर।
परमादी जगकौं धुकै, अपरमादि सिव ओर।।४०।।

शब्दार्थः-जगपंथ=संसार भ्रमण का उपाय। इत=यहाँ। उत=वहाँ। सिव मारग (शिवमार्ग)=मोक्ष का उपाय। धुकै=देखे। अपरमादि (अप्रमादी)=प्रमाद रहित।

अर्थः-इसलिए प्रमाद संसार का कारण है और अनुभव मोक्ष का कारण है। प्रमादी जीव संसार की ओर देखते हैं और अप्रमादी जीव मोक्ष की तरफ देखते हैं।।४०।।

काव्य-४० पर प्रवचन

ता कारन जगपंथ इत... भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वभावी शुद्ध वस्तु है। उसे छोड़कर जितना दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का भाव, वह सब प्रमादभाव है। इस कारण जगपंथ। उस राग की क्रिया से तो संसार के पंथ में पड़ा हुआ है। आहाहा! मोक्ष अधिकार है न? **ता कारन जगपंथ... इसलिये प्रमाद संसार का कारण है।** आहाहा! मुनि को भी आत्मध्यान, शान्ति, स्थिरता विशेष होने पर भी, जितने पंच महाव्रत के परिणाम, २८ मूलगुण का राग—विकल्प, वह सब प्रमादभाव है। यह उन्हें जगपंथ है—संसारपंथ है। संसारभ्रमण का उपाय, ऐसा कहकर यहाँ तो ऐसा लिखा है। यह राग है, वह संसार का—बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल परम्परा नहीं। बात सच्ची। ऐसा आता है। परन्तु उसका (अर्थ), उसका अर्थ—छोड़कर होता है, वह परम्परा। उसको रखकर होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! **ता कारन—**इस कारण से **जगपंथ इत...** आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप चैतन्य निर्मलानन्द प्रभु है। उसका अन्तर आचरण—स्वभाव-सन्मुख का आचरण निर्विकल्प वीतराग परिणति, वह मोक्ष का कारण है। जितना प्रमाद और रागभाव, व्यवहारभाव, वह सब बन्ध का कारण, संसारकारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उत सिव मारग जोर... और इस ओर भगवान आत्मा की ओर ढलने से शुद्ध चैतन्य के स्वभाव के सन्मुख परमानन्द का आचरण होने पर... परमानन्द का आचरण होने पर प्रमाद का आचरण टल जाता है, ऐसा कहते हैं। अरे! ऐसा स्वभाव, **सिव मारग जोर...** लो। शिवमार्ग—मोक्ष का मार्ग है। अनुभव मोक्ष का कारण, ऐसा। देखो, इसका अर्थ। शिवमार्ग का कारण। आहाहा! जितने अंश में अन्तर चैतन्यस्वभाव-अन्तर का आश्रय लेकर निर्विकल्प वीतराग परिणति करे, उतना भाव मोक्ष का कारण। और यह जितने महाव्रत—दया-दान-व्रत आदि के परिणाम, वह सब बन्ध का मार्ग है, राग का मार्ग है। आहाहा!

परमादी जगकौं धुकै... स्वरूप का (अनुभव), उसमें से छूटकर प्रमादभाव... दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम, वे सब प्रमादभाव हैं। आहाहा! गजब बात है! यह तो वीतरागमार्ग है। अन्तर प्रभु स्वयं पूर्ण आनन्द और वीतराग की मूर्ति आत्मा है। उसका स्व-आश्रय लेकर जो परिणाम प्रगट होते हैं, वह मोक्ष का मार्ग और पर के लक्ष्य से—आश्रय से जो परिणाम होते हैं, वह बन्ध का मार्ग। **परमादी जगकौं धुकै...** संसार को देखता है, ऐसा लिखा है। **धुकै** अर्थात् राग को देखता है वह। राग और पुण्य के परिणाम, उस ओर उसका आश्रय है, लक्ष्य है, वह संसारपंथ है।

अपरमादि सिव ओर... और स्वरूप में रागरहित अप्रमादी दशा, वह मोक्ष के मार्ग में स्थित है। अरे, अभी पहले समझना ही कठिन। क्या कहते हैं यह ? है न अन्दर, देखो न। **अप्रमादी जीव मोक्ष की तरफ देखते हैं।** उसके अन्तर... उसमें **धुकै** लिया

और यह 'देखे' लिया। आत्मा तो अनन्त ज्ञान और अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द (स्वरूप है)। जिसे कहीं पर में आनन्द भासित नहीं होता। पुण्य और पाप के भाव में या बाहर सामग्री में या शरीर में सुख कहीं भासित नहीं होता। जिसे सुख अन्तर में भासित होता है। आनन्द की मूर्ति प्रभु की सुखबुद्धि वहाँ है, (इसलिए) वह उसमें स्थिर होता है, ऐसा कहते हैं। वह अप्रमादी है। उसे मोक्ष का मार्ग है। वह मोक्ष के मार्ग का देखनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चिमनभाई! मार्ग बहुत ऐसा है तुम्हारा।

यह सब पैसे-बैसे खर्च करे तो जल्दी मोक्ष नहीं होगा?

मुमुक्षु : पैसा खर्च करे तब तो सब कर डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो-पाँच-दस लाख खर्च कर डाले, इतने सब खर्चे नहीं परन्तु कदाचित्....

मुमुक्षु : इसके थे ही कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो किसके थे? बँगले, पैसे और कीर्ति किसकी? ... की है?

मुमुक्षु : पुद्गल के हैं यह पैसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जड़ की दशा है। आहाहा! यह स्वयं ही मिट्टी का पुतला है यह शरीर। जड़... जड़... आहाहा! लक्ष्मी जड़, शरीर जड़, दाल-भात-रोटियाँ जड़, स्त्री का शरीर जड़, शक्कर-लड्डू जड़। आहाहा! उसमें सुख माने, वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कितने ही तो पैसे से सुख मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं। धूल में भी नहीं। उसकी खबर नहीं। ऐ.. फें हो गया था न थोड़ा। वह तो संसार में... वह कहाँ धूल में है? आनन्द तो आत्मा में है, उसके सन्मुख देखता नहीं। सम्यग्दृष्टि को सुख अन्तर में भासित होता है। मिथ्यादृष्टि को सुख बाहर में भासित होता है। इतना अधिक अन्तर है। आहाहा!

जिसे जैनधर्म की खबर नहीं। जैन अर्थात् क्या? राग को जीतना और स्वभाव में स्थिर होना—ऐसा जो वीतरागधर्म, उसकी खबर नहीं, उसे पर में सुखबुद्धि लगती है,

पर में आकर्षित हो जाता है। वह रागपंथ, वह सब संसारपंथ है। चाहे तो पाप के भाव हों, चाहे तो दया-दान-व्रत के भाव हों, परन्तु हैं दोनों बन्ध के कारण। अरे, गजब बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अबन्ध है। अबन्ध ही है।

मुमुक्षु : हानि क्या होगी बन्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : हानि क्या... पर्याय में माना कि राग से मैं हूँ तो वह हानि हो गयी न! राग से मुझे लाभ है (ऐसे) मिथ्यात्व से (स्वभाव की) हानि हो गयी। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का अभाव हुआ। यह तो वस्तु अबन्ध है। परन्तु अबन्धपरिणाम जब तक प्रगट न करे तब तक तो बन्ध है ही। आहाहा! समझ में आया?

वीतरागमार्ग ऐसा है। उसमें भी अलौकिक मार्ग हो, उसे कहीं लौकिक के साथ उसका मिलान होगा?

मुमुक्षु : होता ही नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, ऐसा जिसे अन्तर में परिणमा है। आहाहा! परिणमन में उसे अतीन्द्रिय आनन्द आया है, वह मोक्ष के मार्ग में है। भले गृहस्थाश्रम में राज में पड़ा हो, चक्रवर्ती के राज में दिखाई दे, तथापि उसमें है नहीं। आहाहा! आता है न, 'चक्रवर्ती भरत घर में वैरागी।' आता है न भक्ति में। ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ सैनिक, ९६ करोड़ ग्राम। 'अरे, यह हम नहीं, इनमें हम नहीं, जहाँ हम हैं, वहाँ ये नहीं।' आहाहा!

ऐसा अन्तर का स्वभाव ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु, ऐसी जिसे अन्तर्दृष्टि हुई है, ऐसा समकिती... वह शुद्ध परिणमन... यहाँ अभी कहेंगे। स्वरूपाचरण कहेंगे। शिवपंथ अर्थात् स्वरूपाचरण। आता है नीचे। इसमें भी लोगों को दिक्कत। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि को लागू पड़ता है यहाँ कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को। यहाँ चौथे गुणस्थान से लागू पड़ता है, ऐसा यहाँ

(कहते हैं)। कहते हैं, स्वरूपाचरण मुनि को होता है। छहढाला में आता है न? पीछे (छठवीं ढाल में)। हाँ, तो ऐसा कहे, मुनि को लागू पड़ता है। वह तो उत्कृष्टपने की बात की है। स्वरूपाचरण चौथे गुणस्थान से होता है। आहाहा!

अरे, तुझे तेरी चीज़ क्या है अन्दर (इसकी खबर नहीं)। सच्चिदानन्दस्वरूप है आत्मा तो। परमेश्वर तीर्थंकरदेव केवली ने जो पर्याय में प्रगट किया, वह सब पर्याय आयी कहाँ से? अन्दर में पड़ी है शक्तिरूप से।

मुमुक्षु : यहाँ चारित्र की अपेक्षा से कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की अपेक्षा से। यह श्रद्धा की अपेक्षा से स्वरूपाचरण होता है। हाँ, यही है। चारित्र की अपेक्षा से वह उत्कृष्ट बात की है। विशेष बात की है। लो, अप्रमादी फिर, ४१।

★ ★ ★

काव्य - ४१

जे परमादी आलसी, जिन्हकैं विकलप भूरि।
होइ सिथल अनुभौविषै, तिन्हकौं सिवपथ दूरि।।४१।।

शब्दार्थ:-आलसी=निरुद्यमी। विकलप (विकल्प)=राग-द्वेष की तरंगें। भूरि=बहुत। सिथल (शिथिल)=असमर्थ। सिवपथ=स्वरूपाचरण।

अर्थ:-जो जीव प्रमादी और आलसी हैं; जिनके चित्त में अनेक विकल्प होते हैं, और जो आत्म-अनुभव में शिथिल हैं, उनसे स्वरूपाचरण दूर ही रहता है।।४१।।

काव्य-४१ पर प्रवचन

जे परमादी आलसी, जिन्हकैं विकलप भूरि।
होइ सिथल अनुभौविषै, तिन्हकौं सिवपथ दूरि।।४१।।

लो, १७० गाथा में आता है न पंचास्तिकाय (में)। **जे परमादी आलसी...** जिसे

स्वरूप के अनुभव में प्रमाद है और आलस्य है। आहाहा! अन्तर के आनन्द के अनुभव से रहित है। वह प्रमादी और आलसी है। आहाहा! शुभभाव करे तो भी वह प्रमादी और आलसी है, ऐसा कहते हैं। ले! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य—ऐसा शुभभाव करे, उसे यहाँ आलस कहा है। उसे आलसी कहा है। आहाहा! स्वरूप में पुरुषार्थ करके स्थिर हो, उसे पुरुषार्थी कहा है। सुजानमलजी! आहाहा!

मुमुक्षु : गागर में सागर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! बराबर है। गागर में सागर, ऐसा कहे।

मुमुक्षु : थोड़े में बहुत बतावे।

कहते हैं, **जे परमादी आलसी...** निरुद्यमी। लो, ठीक। निरुद्यमी? उद्यम तो करता है। शुभभाव नहीं करता?

मुमुक्षु : परन्तु वह राग का उद्यम है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे यहाँ उद्यम गिना ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर सके? करता है, वह पुरुषार्थ नहीं। करना कुछ दया-दान-व्रत-भक्ति का परिणाम, वह पुरुषार्थ है ही नहीं। निरुद्यमी है। आहाहा! कठिन बात! परन्तु वीर्य की रचना और यह बात ली है न। वीर्य गुण में, नहीं? आत्मा का वीर्य गुण है अन्दर बल कि जो स्वरूप की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। राग की रचना करे, उसे वीर्य नहीं कहते, उसे नपुंसक कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

आ गया है 'आत्मवैभव' में। आत्मवैभव। गुणवन्तभाई! है या नहीं आत्मवैभव? आहा! कठिन बातें भाई! यहाँ तो आत्मा परम पवित्र शुद्ध आनन्दघन, उसका पुरुषार्थ करके, अन्दर की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता करे, उसे पुरुषार्थ कहा है। यह व्रत और तप का विकल्प उठे, उसे पुरुषार्थ (नहीं कहा), निरुद्यमी कहा है। कान्तिभाई! भारी कठिन बातें। आहाहा! तू महाप्रभु है अन्दर। जितने वीतराग परमात्मा हुए, वे सब आत्मा में से हुए हैं। कहीं बाहर से आये नहीं। आहा!

ऐसा भगवान अन्दर नजर करे निधान (हो), उसकी नजर प्राप्त करावे। इसने

स्वसन्मुख की नजर की ही नहीं। और स्वसन्मुख के अतिरिक्त परसन्मुख में जितना राग होता है, कहते हैं कि उसे तो हम निरुद्यमी कहते हैं। ले! महीने-महीने के अपवास करे, महीने-महीने के संथारा करे। यह संथारा समझ में आता है या नहीं? संलेखना। महीने तक खाये नहीं और पड़ा रहे, वह सब बालतप है, उसे निरुद्यमी कहा है। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु के सन्मुख में एकाग्रता हो, उसे यहाँ पुरुषार्थ और उद्यमी कहा है। व्यापार-धन्धे में बहुत उद्यम करता है।

मुमुक्षु : क्या करे? कुछ करता नहीं। राग करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उद्यम करे, उसे यहाँ निरुद्यमी कहा, आलसी कहा है। तेरे घर का उद्यम न हो और पर का उद्यम, वह उद्यम किसका? आहाहा! ऐई कामदार! लोहे में बहुत ध्यान रखे? पुरुषार्थ किया इसने।

मुमुक्षु : प्रमत्त कारण है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : दया-दान वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल कारण नहीं।

मुमुक्षु : निमित्तरूप से प्रमत्त कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, पाप का कारण है वह। योगीन्द्रदेव नहीं कहते हैं योगसार में? 'पाप, पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवी पुण्य को पाप कहते हैं।' आहाहा! भगवान निर्विकल्प आनन्दस्वरूप, कहते हैं कि उसका अनुभव छोड़कर प्रमादी और आलसी... आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, नौ तत्त्व की प्रीति-रुचि और राग तथा तीर्थंकर कहते हैं कि हमारे प्रति प्रेम का राग—वह सब प्रमाद है। निरुद्यमी हो। आहाहा! जहाँ अन्दर भगवान पड़ा है पूर्ण नाथ प्रभु, उसकी ओर का प्रयत्न और पुरुषार्थ नहीं, उसे तो यहाँ पुरुषार्थहीन कहा है, निरुद्यमी कहा है। आहाहा!

जिन्हकैं विकलप भूरि... जिसे पुण्य के, पाप के और राग-द्वेष की तरंगें बारम्बार हुआ ही करती है, वे सब निरुद्यमी हैं। पुरुषार्थ स्वरूप में करना चाहिए, वह करते

नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसे **विकलप भूरि...** भूरि अर्थात् बहुत। शुभ-अशुभ राग की वृत्तियाँ उत्पन्न करे कि जो स्वभाव में नहीं। ऐसे विकल्प के करनेवाले, शुभ-अशुभ परिणाम के करनेवाले आलसी हैं, कहते हैं। स्वरूप में आलसी है। आहाहा! आत्मा का वीर्य—बल, शुद्धता, पवित्रता, प्रमादरहितता को रचे, उसे यहाँ वीर्य कहा जाता है। आहाहा!

होइ सिथल अनुभौविषै... अन्दर आत्मा के अनुभव में जो शिथिल होते हैं, वे सब प्रमादी और आलसी हैं, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है न! अन्दर प्रभु है चैतन्य। यह शरीर तो मिट्टी-जड़-धूल है। पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वह राग है। उसका उद्यमी, वह अनुद्यमी है। निजघर में नुकसान होता है, ऐसा कहते हैं। कहो, चिमनभाई! अरे, अरे! परन्तु उसमें उत्साह कितना आता है, लो। पाँच-पाँच लाख पैदा होते हों, बारह महीने में पाँच लाख। महीने में पाँच लाख, लो न!

मुमुक्षु : हर्ष आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हर्ष आवे अन्दर से मानो। धूल भी नहीं, अब सुन न! मिट्टी-धूल है, अजीवतत्त्व है। उसकी ओर का हर्ष, कहते हैं कि अनुभव से शिथिल हो गया और पर में उद्यमी, उसे आलसी कहा (जाता है)। आहाहा! गजब!

होइ सिथल अनुभौविषै, तिन्हकौं सिवपथ दूर... उसे शिवस्वरूप शिवपंथ... नीचे किया है, स्वरूपाचरण। शब्दार्थ में भी किया है और नीचे अर्थ में भी किया है, दोनों जगह। स्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम, उसका आचरण अर्थात् स्थिर होना, ऐसा स्वरूपाचरण उसे दूर है। कहो, समझ में आया? १७० में भी यह शब्द है न, '**दूरतरं निर्वाणं**' पंचास्तिकाय १७० गाथा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, नौ तत्त्व की रुचि, सूत्र की—आगम की रुचि और तीर्थंकर भगवान की रुचि—यह जब तक उसे रुचती है, तब तक उसे निर्वाण दूर है। १७० गाथा पंचास्तिकाय। उसमें अर्थ कर डाला है कि उसे दूर नहीं। श्रीमद् में अर्थ किया है। और यह वाँचनेवालों को ऐसा होता है कि उसमें मोक्ष नजदीक है। अर्थ ऐसा कर डाला है। श्रीमद् ने क्या किया हो—क्या नहीं, परन्तु उसे किसी ने सुधार दिया होगा, सुधारकर उसमें। होगा कोई क्या खबर

पड़े ? यह तो दूर कहा है वहाँ। वह यहाँ दूर कहते हैं, देखो न! अनुभव में शिथिल, उसे मोक्ष दूर है। आहाहा!

आत्मा की अन्तर सम्यग्दृष्टि पूर्ण आनन्द का नाथ 'मैं वीतरागमूर्ति हूँ'—ऐसा जो अनुभव और उसमें स्थिर होना, ऐसा अनुभव जिससे नहीं और इस विकल्प के परायण है, उसे मोक्ष दूर है। अरे, समकिती—ज्ञानी और मुनि हो, उसे प्रमाद है तो उसे (मोक्ष) दूर है, ऐसा कहते हैं। उसकी बात है यहाँ। आहाहा! अरे! अटकता है, कहते हैं। भाई! अन्तर ज्ञान में जाकर रमना चाहिए। उसके बदले ऐसे विकल्प के जाल में अटकता है, उसे मोक्षपंथ दूर है। उसे मोक्ष दूर है। कहो, समझ में आया? अब वे कहें, नहीं, यह मोक्षपंथ है। बन्धभाव, वह समकिती का मोक्षमार्ग है। कहो, ऐसे भी निकले हैं सब। आहाहा!

है न शिवपंथ—स्वरूपाचरण। **उनसे स्वरूपाचरण दूर ही रहता है...** जितना विकल्प शुभ का उठे, उसे स्वरूपाचरण दूर है। वह तो विभाव आचरण है, बाधक है। आहाहा! स्वरूपाचरण। लो, अब वे स्वरूपाचरण से इनकार करते हैं। चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं होता। अब उसका स्वरूप ही शुद्ध उपयोग है। उसका स्वरूप ही शुद्ध उपयोगमय है। शुभ और अशुभराग (मय) उसका उपयोग, वह स्वरूप ही नहीं। तो स्वरूप का भान जहाँ हुआ, वहाँ उसे शुभ-अशुभ टल गया है और शुद्ध उपयोग का आचरण उसका दृष्टि में हुआ है, उसे स्वरूपाचरण कहा जाता है। अरेरे!

अब नीचे का कलश ११। उसका यह (पद) है अब। किया है न शून्य। क्या कहलाता है? फूल। फूल, फूल। फूल कहलाता है या फुदड़ी?

मुमुक्षु : फुदड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : फुदड़ी। ११वाँ कलश नीचे।

प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः,
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्,
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते वाऽचिरात्।।११।।

काव्य - ४२

यह मुनि का अर्थ समकिती करते हैं उसमें—कलश (टीका) में। ४२ (पद)।

★ ★ ★

जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव।
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव।।४२।।

शब्दार्थः-अभिमानी=अहंकार सहित। अविकलपी (अविकल्पी)=राग-द्वेष रहित।

अर्थः-जो जीव प्रमाद सहित और अनुभव में शिथिल हैं, वे शरीर आदि में अहंबुद्धि करते हैं और जो निर्विकल्प अनुभव में रहते हैं, उनके चित्त में सदा समता रस रहता है।।४२।।

काव्य-४२ पर प्रवचन

जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव।
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव।।४२।।

आहाहा! **जे परमादी आलसी...** मिथ्यादृष्टि है, वह राग का अभिमान करता है। ज्ञानी को राग का अभिमान नहीं, परन्तु परिणमन है। **जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव,...** ऐसा कहा है यहाँ तो। उसमें कहा है न वहाँ भी वह। कर्ताबुद्धि है... कोष्ठक में पण्डित जयचन्दजी ने। वह मोक्ष अधिकार। आठ-आठ में... कर्ताबुद्धि है। कर्ताबुद्धि ज्ञानी को नहीं। कर्तारूप परिणमन है, इतना जरा। वहाँ है कोष्ठक में। पण्डित जयचन्दजी। उसकी ही यह बात है। आहाहा! कहते हैं कि अन्दर कुछ शुभराग उठे, उसका यदि कर्ता हो, तब तो वह मिथ्यादृष्टि है। परन्तु उसका परिणमन है, वह दुःखदायक है, ऐसा ज्ञानी जानता है। अज्ञानी को उस शुभराग का परिणमन हितकर लगता है। इसलिए वह राग का ही अभिमानी है।

मुनि अभिमानी नहीं, परन्तु राग का परिणमन है, इतना जरा अन्दर आलस है। आहाहा! तीन कषाय का नाश है मुनि को। सच्चे सन्त हों उन्हें, हों! मुनि नग्न होते हैं। वस्त्र-पात्र होते नहीं। वे दिगम्बर मुनि होते हैं। वे जंगल में बसते हैं। आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का नाश और एक चौथा संज्वलन का थोड़ा राग रहा, उसमें पंच महाव्रत आदि के जो परिणाम आवे, कहते हैं कि उसका कर्तृत्व माने तो वह अज्ञानी है। परन्तु जितना परिणमन हुआ है, उतना उसे आलस और दोष है। आहाहा!

जे अविकलपी अनुभवी... परन्तु जो कोई विकल्प अर्थात् राग से भिन्न पड़कर और आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुभव करता है, तो वह तो अविकल्पी है। उसे राग होता नहीं। रागरहित दशा अन्तर के आनन्द के अनुभव में विकल्प का अभाव है। वह **समरसी सदीव...** यह समता, ज्ञाता-दृष्टारूप से रहता है। आहाहा! **सदीव... ते समरसी सदीव... 'मुच्यते वाऽचिरात'** राग से अल्प काल में छूट जाता है। भारी काम! दिगम्बर सन्तों की वाणी कठोर। वह कहे कि ऐसा करो, ऐसा करो तो होगा। यह बात तो इसमें आती नहीं। भाई, पहले व्रत पालो, अपवास करो, दान करो, भक्ति करो। कहते हैं कि वह तो सब विकल्प और राग है। सुन न! होता है अशुभ से बचने अथवा उस काल में होता है। उस काल में होता है, तथापि वह विकल्प उस अनुभव से भिन्न चीज़ है। आहाहा!

पुण्य-पाप (अधिकार) में तो यहाँ तक कहा कि व्यवहाररत्नत्रय, वह स्वरूप के अनुभव से पतित करता है, इसलिए पाप है। ऐसा (जयसेनाचार्य की) टीका में है। पुण्य-पाप अधिकार। व्यवहाररत्नत्रय विकल्प है, राग है। पहले जरा महिमा की है कि पवित्रता पवित्र है।

मुमुक्षु : वह तो व्यवहार से कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की ही बात है न, वहाँ कहाँ... ? आहाहा! भगवान आत्मा अमृतस्वरूप है। अतीन्द्रिय अमृत का सागर, उसे स्पर्श कर वेदन करे, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। वहाँ से हटकर विकल्प के जाल में रहे, कहते हैं कि वह अभिमानी है अर्थात् वह राग में जुड़ गया है, ऐसा।

'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे।' कहा था न एकबार। हमारे पड़ोसी थे ब्राह्मण। मूलजी भट्ट। हम मामा कहते थे। हमारी माँ का ननिहाल भुंगळी (गाँव के)। गृहस्थ थे वे लोग परन्तु विष्णु, हों! उस गाँव के थे, उन्हें मामा कहते थे। परन्तु वे नहाते (उस समय गाते) हमेशा। और हमारी छोटी उम्र १०-११ वर्ष की। नहाते-नहाते बोले। 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे, भजना परिब्रह्म को दूसरा कुछ न कहना रे।' देखो भाषा तो कैसी परन्तु उनकी। पर्याय क्या? अनुभव क्या? राग क्या? सत् द्रव्य क्या?

मुमुक्षु : अनुभव....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अनुभव क्या? अनुभव वह कोई पर्याय है? द्रव्य-वस्तु है? कोई गुण है? कोई राग है? वह पर में है या स्व में है?

मुमुक्षु : परन्तु वह तो .... द्वैत पर्याय में स्व-पर आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अद्वैत और अकेला लेते हैं। वहाँ उन्हें कहाँ... ? परन्तु वे बोलते। हमेशा वह फिर धोती पहने न नहाने का। क्या कहलाये ?—आबोटीयुं। ऊन की छोटी कम्बल। छोटी-छोटी ऐसे। ऐसे पहने और फिर नहाये और यह बोलते थे। मोरी में से पानी चलता जाये। पत्थर पड़ा होगा पत्थर बड़ा। ... वे नहाये। फिर मोरी में से पानी बाहर चला जाये कौने में। ऐसे बोलते थे। 'अनुभवी को इतना रे आनन्द में रहना रे।' यह आत्मा... उसमें—वेदान्त में यह भजन है। परन्तु वह अनुभव क्या? यह राग क्या? देव-गुरु किसे कहना? सच्चे शास्त्र किसे कहना—इसकी खबर (नहीं होती)। आहाहा!

ते समरसी सदीव... सदा ज्ञाता-दृष्टा में रहनेवाला वह जीव समतारस में रहा हुआ, उसे धर्मी, उसे मोक्षमार्गी कहते हैं। आहाहा! अर्थ में तो ऐसा किया है थोड़ा। **वे शरीर आदि में अहंबुद्धि करते हैं,...** ऐसा। लो। अभिमान शब्द है न? अहंबुद्धि क्या हो? अहंबुद्धि की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो अन्दर राग है, वह अनुभव से शिथिल हो गया है, बस इतनी बात है। राग का अहंपना करे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु ऐसा आवे अर्थ में, समझाना हो न तब। सदा समतारस रहता है। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ४३

जे अविकलपी अनुभवी, सुद्ध चेतना युक्त।
ते मुनिवर लघुकालमैं, हौंहि करमसौं मुक्त।।४३।।

शब्दार्थ:-सुद्ध चेतना=शुद्ध ज्ञान-दर्शन। लघुकाल में=थोड़े समय में।

अर्थ:-जो मुनिराज विकल्प रहित हैं, अनुभव और शुद्ध ज्ञान-दर्शन सहित है, वे थोड़े ही समय में कर्मरहित होते हैं, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं।।४३।।

काव्य-४३ पर प्रवचन

जे अविकलपी अनुभवी, सुद्ध चेतना युक्त।
ते मुनिवर लघुकालमैं, हौंहि करमसौं मुक्त।।४३।।

यह '**अचिरात्**' का लिया और वापस। उसमें (कलश में) है न '**अचिरात्**'। है न उसमें? उसके दोनों (पद) लगते हैं। **जे अविकलपी अनुभवी...** जो कोई राग के विकल्प से रहित, स्वरूप की दृष्टि सहित आनन्द के अनुभव में रहता है, वह शुद्ध चेतनायुक्त है। वह शुद्ध ज्ञानानन्द की परिणति सहित है। कहो, मेघाणी! यह सब सुना न हो वहाँ तुम्हारे। क्या कहलाता है वह? जमशेदपुर। वीतराग का मार्ग यह है, तीर्थंकर केवली परमात्मा (का), उसकी खबर नहीं होती और ऊपर से हाँक रखे।

कहते हैं कि जो कोई विकल्प अर्थात् राग रहित अपनी चीज़ जो आनन्दमूर्ति प्रभु, उसमें जो शुद्ध चेतना निर्मल वीतरागी पर्याय सहित है, ऐसा कहते हैं। वे बहुत फिर (कहे), सब धर्म समान है न। फिर यह शुभभाव में भी हो अभी इस काल में। ऐसा करके गड़बड़ की। आहाहा! यहाँ तो शुद्ध चेतनायुक्त कहा। **अनुभव और शुद्ध ज्ञान-दर्शन सहित है,...** ऐसा कहते हैं। शुद्ध ज्ञानचेतना अर्थात् ज्ञान में एकाग्रता। ज्ञानस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसमें एकता, राग से पृथक्ता, विकल्प से पृथक्ता और अपने निजज्ञान की एकता, वह चेतनासहित है। आहाहा! जागृत है, कहते हैं।

ते मुनिवर लघुकालमैं—वे सन्त आत्मज्ञानी अल्प काल में, **हौहिं करमसौ**

मुक्त—कर्म से थोड़े काल में वे मुक्त होगे। क्रियाकाण्ड करनेवालों को मुक्ति है (नहीं), ऐसा कहते हैं। आहाहा! आनन्दघनजी में आता है न, 'कोई कहे सेविये विविध क्रिया करी।' आता है? 'कोई कहे सेविये विविध क्रिया करी, फल अनेकांत लोचन न देखे।' परन्तु उसका फल तो अनेकान्त अर्थात् अनेक संसार गति है, ऐसा कहते है, चार गति। आनन्दघनजी कहते हैं, लो। श्वेताम्बर (थे परन्तु) माने नहीं उन्हें। वे अनुकूल नहीं इसलिए। वह भूतड़ा था, (ऐसा कहे।) यह सब बड़े पण्डित हो गये न, बाचाल हो गये बड़े। और दो-दो हजार, पाँच-पाँच हजार, दस हजार लोग इकट्ठे हों, उस समय, इसलिए बड़े हो गये। धूल भी नहीं।

आनन्दघनजी ने कहा न। 'कोई कहे सेविये विविध क्रिया करी, फल अनेकांत लोचन न देखे।' परन्तु जिसका फल अनेकान्त है अर्थात् एक नहीं। अनेक प्रकार के पुण्य के फल संसार है। फल अनेकान्त लोचन न देखे... पश्चात्? 'फल अनेकांत क्रिया करी बापडा, रळवळे चार गतिमांही लेखे।' जिसके पुण्य के फल तो अनेक हैं। बाहर का एकपना, स्वभाव की एकता, उसका फल नहीं। शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा में एकरूप वीतरागता—परिणति होनी चाहिए। वह एक फल तो उसमें नहीं। क्रिया करने के फल में अनेकपना—कोई सेठाई, कोई देव, कोई भूतड़ा, कोई शरीर की निरोगता—ऐसी बाह्यचीज़ की प्राप्ति है। उसमें कुछ मुक्ति की एकता नहीं। अनेकता में भटकता है वह तो, कहते हैं। आहाहा! देखो, यह श्वेताम्बर के आचार्य, मुनि हैं मुनि। फिर तो छोड़ दिया। जंगल में रहते थे।

हौंहि करमसौं मुक्त... वे थोड़े ही समय में कर्मरहित होते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं। है न अन्दर चेतना का अर्थ? शुद्ध ज्ञान-दर्शन। शुद्ध ज्ञान-दर्शन। स्वसंवेदनज्ञान और स्व का दर्शन और स्व में अनुभव अर्थात् स्थिरता। वह अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है। अब विशेष स्पष्ट करते हैं। समरसी है न? समता—ज्ञातादृष्टा। पुण्य-पाप से हटकर धर्मी.... **ज्ञान में सब जीव एक से भासते हैं।** अर्थात् कि वस्तुदृष्टि से परमात्मस्वरूप सब आत्मा है, ऐसा दृष्टि में भासे। पर्यायदृष्टि से देखो तो जिसकी जो स्थिति है, वैसा जाने।

★ ★ ★

काव्य - ४४

ज्ञान में सब जीव एक से भासते हैं (कवित्त)

जैसैं पुरुष लखै परवत चढ़ि,
भूचर-पुरुष ताहि लघु लग्गै।
भूचर-पुरुष लखै ताकौं लघु,
उतरि मिलैं दुहुकौ भ्रम भग्गै।।
तैसैं अभिमानी उन्नत लग,
और जीवकौं लघुपद दग्गै।
अभिमानीकौं कहैं तुच्छ सब,
ग्यान जगै समता रस जग्गै।।४४।।

शब्दार्थ:-भूचर=धरती पर रहनेवाला। लघु=छोटा। उन्नत लग=ऊँचा सिर रखनेवाला।

अर्थ:-जैसे पहाड़ पर चढ़े हुये मनुष्य को नीचे का मनुष्य छोटा दिखता है, और नीचे के मनुष्य को ऊपर पहाढ़ पर चढ़ा हुआ मनुष्य छोटा दिखता है, पर जब वह नीचे आता है, तब दोनों का भ्रम हट जाता है और विषमता मिट जाती है, उसी प्रकार ऊँचा सिर रखनेवाले अभिमानी मनुष्य को सब आदमी तुच्छ दिखते हैं, और सबको वह अभिमानी तुच्छ दिखता है, परन्तु जब ज्ञान का उदय होता है, तब मान कषाय गल जाने से समता प्रगट होती है। ज्ञान में कोई छोटा बड़ा नहीं दिखता, सब जीव एक से भासते हैं।।४४।।

काव्य-४४ पर प्रवचन

जैसैं पुरुष लखै परवत चढ़ि,
भूचर-पुरुष ताहि लघु लग्गै।
भूचर-पुरुष लखै ताकौं लघु,
उतरि मिलैं दुहुकौ भ्रम भग्गै।।

तैसैं अभिमानी उन्नत लग,
और जीवकौं लघुपद दग्गै।
अभिमानीकौं कहैं तुच्छ सब,
ग्यान जगै समता रस जग्गै।।४४।।

जैसैं पुरुष लखै परवत चढ़ि... पहाड़ के ऊपर एक व्यक्ति खड़ा हो, उसे तलहटी के मनुष्य छोटे लगते हैं। तलहटी में खड़े हों तलहटी में। ऊपर चढ़ा हो उसे, ओहो! इतने-इतने लगे। यह गिरनार चढ़े तब गाँव कितने लगे? छोटे-छोटे ऐसे लगे। कितने कोस (दूर हो)। छोटे-छोटे गाँव लगे। और यह प्लेन में तो बड़े-बड़े वृक्ष और बड़े वन हों, वे इतने-इतने छोटे-छोटे लगें। बड़े गाँव के गाँव .... आहाहा! गाँव सब लगे इतने-इतने लगे। बड़े तालाब आवे तो इतने छोटे लगें। ऐसे पर्वत के ऊपर चढ़ा हुआ व्यक्ति तलहटी के लोगों को छोटा माने।

भूचर पुरुष ताहि लघु लग्गै... पृथ्वी पर खड़े हुए मनुष्य को ऊपर चढ़ा हुआ मनुष्य छोटा लगे। इतना छोटा लगे। वामन जैसा लगे। **भूचर पुरुष लखै ताकौ लघु...** नीचे तलहटी में खड़ा हुआ भूचर ऊँचेवाले को छोटा माने। **उतरि मिलै दुहुकौं भ्रम भग्गै...** ऊपर से यदि उतरकर नीचे मिले उसे। **उतरि मिलै...** ऐसा है। वह यहाँ से चढ़े, ऐसा नहीं लिया। यहाँ से चढ़े तो वहाँ समान दिखाई दे। यहाँ से उतरकर मिले, ऐसा। यहाँ अभिमान का लेना है न।

उतरि मिलै दुहुकौं भ्रम भग्गे... ऊपर चढ़ा हुआ नीचे उतरे, उसे लगे कि यह तो सब अपने समान ही मनुष्य हैं। यह नीचेवाले को छोटा मानता था। वह छोटा है और हम बड़े। (नीचेवाला) ऊपर (वाले) को छोटा माने। इसी प्रकार मिथ्या दृष्टि में दूसरे प्राणियों को (तथा) ज्ञानी धर्मात्मा हों, उन्हें भी हल्का माने। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि तो उसे हल्का माने। ज्ञानी तो उसे बराबर जैसा है, वैसा माने। सम्यग्दर्शन में जिसकी जो दशा है, उसे बराबर जाने। तब उसे....

अथवा ऐसा यहाँ कहा है न, 'सर्व जीव है ज्ञानमय।' वह सामायिक चारित्र, नहीं? योग (सार)। योगीन्द्रदेव। 'सर्व जीव है ज्ञानमय।' भाई! समता... क्या कहा? 'जाने समता धार।' चारित्र लेना है न चारित्र। 'जाने समता धार', ऐसा। सब ज्ञानमय

स्वरूप है भगवान आत्मा। ऐसा समता से देखे तो सबका स्वरूप ज्ञानमय लगे। यह द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से बात है। परन्तु वापस ज्ञानी कहीं अज्ञानी को ज्ञानी मान ले, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो पर्याय की जितनी अवस्था जिस प्रकार से है, उसे ज्ञानी बराबर जानता है।

समभाव की व्याख्या की न श्रीमद् ने। 'वर्ते... वर्ते समभाव।' क्या कहा? वर्ते उदय प्रयोग, आता है न? 'आत्मज्ञान समदर्शिता विचरे उदयप्रयोग, अपूर्ववाणी (सम) परमश्रुत। वह सद्गुरुलक्षण योग।' उसमें समभाव की व्याख्या की है श्रीमद् ने स्वयं कि समभाव की ऐसी व्याख्या नहीं कि कुगुरु को सुगुरु मान ले और सुगुरु को कुगुरु माने, ऐसा है नहीं। आहाहा! श्रीमद् में यह लाईन है। 'आत्मज्ञान समदर्शिता विचरे उदयप्रयोग। अपूर्ववाणी (सम) परमश्रुत, वह सद्गुरुलक्षण योग।' उसमें लिखा है कि समभाव की व्याख्या ऐसी नहीं कि अज्ञानी को ज्ञानी मान ले। वह कहीं मूर्ख नहीं। यह तो मूर्खाई है, कहते हैं। यह समभाव नहीं। समझ में आया? कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की ऐसी श्रद्धा करे कि खोटे हैं। और माने, बतावे, जनावे, वह कहीं समभाव से विषमभाव नहीं। समझ में आया? आहाहा!

तैसैं अभिमानी उन्न लग, और जीवकौ लघुपद दग्गै... मिथ्यादृष्टि को सब मिथ्यादृष्टि लगते हैं और सम्यग्दृष्टि को सब समकिती लगते हैं। किस अपेक्षा? धर्मी जीव को अपना स्वरूप का भान है, इसलिए सब जीवों को द्रव्यदृष्टि से बराबर देखता है। परन्तु पर्यायदृष्टि में पर्यायदशा में जो-जो अवस्था हो, वैसे उसे जानता है। न जाने तो मूढ़ है। समता रखो सबके ऊपर, लो। स्वयंवरो वा... स्वयंवरो वा... आती है गाथा। ऐई, आती है या नहीं? श्वेताम्बर में। अपने रखी है उसमें छहढाला में। छहढाला में क्या? वह छह पाहुड़—षट्पाहुड़ में टीका में है। श्वेताम्बर हो या दिगम्बर हो, बुद्ध हो या अन्य हो, समभाव रखे उसे मुक्ति होती है। परन्तु वह ऐसा होता नहीं। वह गाथा है श्वेताम्बर में। वह कैसी? सम्भवसिद्धि, उसमें है।

मार्ग तो जो है, वह है। दूसरे मार्ग से (भी) होगा, ऐसा मार्ग है नहीं। परन्तु जिसकी दृष्टि विपरीत है, जिसका ज्ञान उल्टा है, उसके प्रति उसे (-ज्ञानी को) द्वेष नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। समझ में आया? यहाँ तो वहाँ तक कहा समकिती के लिये।

...में नहीं आया? केवली हो, उनके प्रति भी प्रेम नहीं उसे, तथा प्रतिकूलता में द्वेष नहीं। क्या आता है न एक श्लोक? आता है। इस ओर नीचे नियमसार। सब कहीं याद रहे? न्याय याद रह गया हो मस्तिष्क में। ऐसा है एक। परमात्मा के प्रति भी उसे राग नहीं कि यह मेरे हैं, ऐसा। तथा कुगुरु के प्रति द्वेष नहीं कि यह द्वेष करनेयोग्य है।

एक कलश है कलश। पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार। इस ओर है नीचे।....है। ऊँचे देव ऊँचे हैं, इसलिए मेरे हैं, ऐसा है (नहीं)। गुणी—अवगुणी का कुछ शब्द है। गुणी हो या अवगुणी हो, धर्मात्मा को दोनों के प्रति समभाव है। विकल्प होता है, वह अलग चीज़ है। जानता है (कि) यह है। उसमें आता नहीं? सर्वविशुद्ध (ज्ञान अधिकार, समयसार) में आता है। वह कहीं सामने गुणी के गुण को देखकर राग होता है, ऐसा नहीं है। (अवगुणी के) अवगुणों को देखकर द्वेष होता है, ऐसा नहीं है। गुणी को गुणरूप होता है, ऐसा जानता है।

यह आता है न। सर्वविशुद्ध में आता है यह। यह वे द्रव्य और गुण नहीं? गुण कहीं ऐसा कहता नहीं कि तू मुझे जान, ऐसा आता है न वहाँ? ऐसे केवलज्ञानी का ज्ञान ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे जानने में रोक। आहाहा! आती है ऐसी बात। वहाँ भाई ने रखी थी, नहीं? मनोहरलाल वर्णी ने रखी थी। जयपुर। आता है न वह? केवलज्ञानी को अनन्त गुणों (की) निर्मलपर्याय प्रगट हुई, परन्तु वह कहीं ऐसा नहीं कहते कि तू हमको जान। ऐसा भगवान का द्रव्य, ऐसा नहीं कहता कि हमको तू जानने में रोक। वह तो स्वतन्त्र जगत की चीज़ है। तू तुझे जान, उसमें वह ज्ञात हो जायेगा। वह सहज ज्ञात हो जायेगा। कहो, आता है न उसमें?

रूप तुझे नहीं कहता कि हमको जानने में रुक। शब्द ऐसा नहीं कहता कि तू हमको जानने में रुक और जाननेवाला यहाँ से हटकर वहाँ जानने जाये वहाँ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अपना ज्ञातास्वभाव यहाँ से छोड़कर जानने जाता नहीं, और जानने की चीज़ उसे कहती नहीं कि तू हमको जानने में रुक। आहाहा! सहज इन्द्रियज्ञान में ज्ञात हो जाता है।

मुमुक्षु : ज्ञान का स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव है उसका जानना ही, बस।

ऊपर से चढ़कर नीचे उतरे तो दोनों इकट्ठे समान दिखाई दें, कहते हैं। अज्ञान में अभिमान में चढ़ गया हो... भगवान... भगवान... करता है, बड़े साधु हो गये, इसलिए बड़े हो गये। नीचे उतर जा जरा अभिमान से, तो तुझे खबर पड़े। अज्ञानी हो, बोलना आता हो, व्याख्यान करना आता हो और उसको न आता हो, लो। वह ऊँचा कहलाये? एक को आज पूछा। खबर है? नाम नहीं लिया जाता। एक ने आज पूछा एक व्यक्ति को कि दूसरे को समझावे वह बड़ा या समझाये बिना स्वयं अकेला बैठकर समझे (वह बड़ा)? समझावे वह बड़ा कहलाये। बहुत वर्ष पहले हुआ था।

मुमुक्षु : उपकार करता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी उपकार नहीं। ऐसा अभिमान है न अन्दर। यह लो, अपना करना।

एक व्यक्ति आया था। खतरगच्छ का सुखसागर कोई। सुखसागर है कोई? हाँ। सुखसागर है, वह आया था। अब कुत्ते भी अपना पेट भरते हैं, कहे। अपना करना... करना, यह करने की अपेक्षा किसी का करे, वह ऊँचा कहलाये, लो। गजब बात भाई! कौन किसका करे? ऐसे के ऐसे हैं। वहाँ आये थे। हीराभाई के मकान में थे न? (संवत्) १९९२-९३ की बात है। कुत्ते भी अपना पेट भरते हैं, कहे। परन्तु..., यह दृष्टान्त किसके साथ मिलाता है तू? ऐसा कहे, आत्मा का करो आत्मा का। क्या आत्मा का करे? कुत्ते भी पेट भरते हैं। किसी का करे। अरे, करे कौन पर का? सुन न! आहाहा!

देखो न, स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात मच्छ पड़े हैं समकिती, पंचम गुणस्थानवाले। किसका करते हैं? वहाँ किसे उपदेश देते हैं? आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो प्रमाद है उपदेश देना वह (प्रमाद है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने स्वरूप का साधन करे। हजार-हजार योजन के बड़े मच्छ हों। पाँचवें गुणस्थान में। सर्वार्थसिद्धि के देव एकावतारी से (भी उनकी) शान्ति बढ़ गयी है अन्दर, कहो। अपने स्वरूप का अन्तर साधन करना, वह वस्तु है। पर को समझाना या कहना, वह तो विकल्प हो, तब वाणी होती है और वाणी आती है। परन्तु वाणी और विकल्प का स्वामी कहाँ है वह? और दूसरे को समझा दूँ, इसका अर्थ कि वह पर की पर्याय कर दूँ। पर की पर्याय की जा सकती है?

लो, **तैसैं अभिमानी उन्नत लग...** अभिमानी स्वयं को ऊँचा मानता है। **और जीवकौ लघुपद दग्गै...** और जीव को। दूसरे धर्मात्मा आदि को हल्का मानता है। देखो, हमारे जैसे पुण्य कहाँ है? देखो, हम आते हैं तो कितने स्वागत होते हैं। पाँच-पाँच हजार, दस हजार लोग आवे सामने, लो। यह तो कहे, हम धर्मी (हैं) और कुछ आता नहीं। बोलना आवे नहीं, फिर कहे, हम बड़े। सुन न अब! बोलना भी न आवे और भाषा भी न हो, उससे क्या अन्दर में गुण की दशा सब चली जाती है? समझाना भी न आवे। पशुओं में समकिती है, उसे नौ तत्त्व के नाम भी नहीं आते। तिर्यंच। नौ तत्त्व के नाम भी नहीं आते, उसमें क्या है? अन्तर आनन्द का साधन करते हैं, बस।

अभिमानीकौ कहैं तुच्छ सब,... लो। और **ग्यान जगै समता रस जगै... और जीव को लघुपद दगै, अभिमानकौ कहैं तुच्छ सब...** अभिमानी दूसरे को छोटा मानता है और छोटे उसे—बड़ों को हल्का मानते हैं। **ग्यान जगै समता रस जग्गै...** अनुभव ज्ञान का हुआ, सब जानते हैं। है, ऐसा जाने। कोई विषमभाव है नहीं। शत्रु या सज्जन कोई दुनिया में है ही नहीं। वह तो ज्ञेय है। परमेश्वर भी मेरे हैं, ऐसा नहीं। परमेश्वर ज्ञेय हैं। तीर्थंकरदेव ज्ञान का परज्ञेय है। मेरे कहाँ से आये परज्ञेय? आहाहा! **ग्यान जगै समता रस जग्गै...** है न?

तब दोनों का भ्रम हट जाता है और विषमत मिट जाती है। उसी प्रकार ऊँचा सिर रखनेवाले अभिमानी मनुष्य को सब आदमी तुच्छ दिखते हैं और सबको यह अभिमानी तुच्छ दिखता है परन्तु जब ज्ञान का उदय होता है, तब मान कषाय टल जाने से समता प्रगट होती है। ज्ञान में कोई छोटा-बड़ा नहीं दिखता, सब जीव एक से भासते हैं। दृष्टि की अपेक्षा से बात है। पर्याय में तो है ऐसा है, उसे जाने। पर्याय में ऐसा मानते हैं सिद्ध मानते हैं उसे? अज्ञानी को सिद्ध माने? जैसा स्वरूप है, वैसा जाने। विषमता किसी के प्रति नहीं, व्यक्ति के प्रति वैर नहीं, विरोध नहीं। व्यक्ति का अभिप्राय झूठा है, उसे जाने, परन्तु व्यक्ति के प्रति—उसके प्रति द्वेष (नहीं)। समझ में आया? लो, अब विशेष कहते हैं। **अभिमानी जीवों की दशा..**

★ ★ ★

अभिमानी जीवों की दशा (सवैया इकतीसा)

करमके भारी समुझैं न गुनकौ मरम,
परम अनीति अधरम रीति गहे हैं।
हौंहि न नरम चित्त गरम घरमहूतैं,
चरमकी द्रिष्टिसौं भरम भूलि रहे हैं।।
आसन न खोलैं मुख वचन न बोलैं,
सिर नाये हू न डोलैं मानौं पाथरके चहे हैं।
देखनके हाऊ भव पंथके बढ़ाऊ ऐसे,
मायाके खटाऊ अभिमानी जीव कहे हैं।।४५।।

शब्दार्थ:-करमके भारी=अत्यन्त कर्म बन्ध बाँधे हुए। मरम=असलियत। अधरम (अधर्म)=पाप। नरम=कोमल। चरम द्रिष्टि (चर्मदृष्टि)=इन्द्रिय जनित ज्ञान। चहे (चय)= चिने हुए। हाऊ=भयंकर। बढ़ाऊ=बढ़ानेवाले। खटाऊ=टिकाऊ-मजबूत।

अर्थ:-जो कर्मों का तीव्र बन्ध बाँधे हुए हैं, गुणों का मर्म[१] नहीं जानते, अत्यन्त अनुचित और पापमय मार्ग ग्रहण करते हैं, नरमचित्त नहीं होते, धूप से भी अधिक गरम रहते हैं और इन्द्रिय ज्ञान ही में भूले रहते[२] हैं, दिखाने के लिये एक आसन से बैठते वा खड़े हो रहते हैं, मौन से रहते हैं, महन्तजी जानकर कोई नमस्कार करे तो उत्तर के लिये अंग तक नहीं हिलाते, मानों पत्थर ही चिन रक्खा हो, देखने में भयंकर हैं, संसारमार्ग के बढ़ानेवाले हैं, मायाचारी में पक्के हैं, ऐसे अभिमानी जीव होते हैं।।४५।।

काव्य-४५ पर प्रवचन

करमके भारी समुझैं न गुनकौं मरम,... लो। अज्ञानी राग को, पुण्य को माननेवाला, कर्म का बाँधनेवाला, **समुझैं न गुनकौं मरम,...** वह रागरहित भगवान आत्मा के गुण को समझता नहीं। वह तो राग किया, हमने पुण्य किये, हम व्यवहार करते हैं। हम व्यवहार कितना करते हैं, देखो! ऐसे भक्ति आदि और दया-दान के परिणाम में अभिमान

१. दोष को ही गुण समझ जाते हैं। २. आत्मज्ञान नहीं होता।

करनेवाला कर्म का भारी है। **समुझैं न गुनकौं मरम,...** अरे, रागरहित प्रभु आत्मा शुद्ध चैतन्य के अनुभवी कौन है, उसे जाननेवाला कौन है, उसे समझता नहीं। गुण का मर्म नहीं समझता। वह तो पुण्य का फल हो, बड़ा पुण्यवन्त हो, उसे बड़ा माने। पुण्यवन्त हो, पुण्य के बड़े फल उसे हों, बड़ी इज्जत हो। जिसके सामने सभा में लाख-लाख लोग इकट्ठे होते हों तो, आहाहा! वह बड़ा। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा!

समुझैं न गुनकौं मरम,... लो। **कर्मों का तीव्र बन्ध बाँधे हुए हैं; गुणों का मर्म नहीं जानते।** दोष को ही गुण समझ जाते हैं, लो। दोष हो, उसे गुण समझे। पर का पुण्य हो, उसे बड़ा माने, पुण्यभाव बहुत करता हो, उसे बड़ा माने। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! पैसेवाले हों न, यह पाँच-पाँच लाख खर्च करे। भाई! धर्म हमारे कारण टिकता है। पैसेवाले के कारण टिकता है। नहीं चिमनभाई?

मुमुक्षु : नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। कहा था। वह मणियार है न, मणियार नहीं थे? केशवलाल मणियार।

मुमुक्षु : केशवलाल मोहनलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोहनलाल मणियार हों। वे मोहनलाल मणियार थे न ईंटवाले। यह सवाईलाल न। तुम्हारे... हाँ, वे। यह सवाईलाल के पिता थे मोहनलालभाई।

यह (संवत्) १९८१ में एक बार आये थे। तब पैसे दिये थे कुछ धर्मादा में ३०-३५ हजार। फिर तो एक बार आये। वहाँ व्याख्यान में आते वापस... हम अकस्मात उठ गये। राजा (कहे), इस समय मुझे आना है। यह दरबार थे न दादा। वे आये। व्याख्यान रखा। मैं कल आता हूँ। उसे कहाँ कहना, अवधि हमारी पूरी हुई, हमें जाना है। फिर आये, 'महाराज! पैसेवाले का धर्म में कितना अधिकार? पैसा खर्चनेवाला तब ३०-३५ हजार कुछ दिये थे पाठशाला में। (संवत्) १९८१ की बात है। कहा, पैसेवाले का कोई अधिकार नहीं। धर्म में उसकी कोई (हैसियत) नहीं। उसे ऐसा कि पैसा आवे तो यह धर्म शोभे, मन्दिर हो, धर्मशाला हो। धूल भी नहीं अब, सुन न! आत्मा का रागरहित स्वभाव प्रगट करे, उसकी शोभा है यहाँ तो। यह बड़े और सामने पैसेवाले हैं। बाहर के पैसे से कुछ होता (नहीं)। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११४, श्रावण शुक्ल २, शनिवार, दिनांक २४-०७-१९७१
मोक्ष द्वार, काव्य-४५ से ५०

यह समयसार नाटक। आत्मा का अधिकार। मोक्ष अधिकार। मोक्ष द्वार। **अभिमानी जीवों की दशा।** जिसे आत्मज्ञान और भान नहीं। 'मैं आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप हूँ। वह मेरी चीज़ है' ऐसी जिसे खबर नहीं। वह बाह्यचीज़ के अभिमान में तथा पुण्य-पाप के विकल्प के अभिमान में जिन्दगी व्यतीत करता है। अपना आत्मा का स्वभाव अत्यन्त राग और शरीर से भिन्न है। मोक्ष अधिकार है न? ऐसा अन्तरस्वरूप, उसका जिसे आश्रय, अवलम्बन, आधार नहीं और बाह्य के पदार्थों का जिसे आधार है, अन्तर में पुण्य के परिणाम का भी जिसे आधार है, वह मिथ्यादृष्टि अभिमानी जीव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसकी व्याख्या है, देखो।

करमके भारी समुझैं न गुनकौ मरम,
परम अनीति अधरम रीति गहे हैं।
हौंहि न नरम चित्त गरम घरमहूतैं,
चरमकी द्रिष्टिसौं भरम भूलि रहे हैं।।
आसन न खोलैं मुख वचन न बोलैं,
सिर नाये हू न डोलैं मानौं पाथरके चहे हैं।
देखनके हाऊ भव पंथके बढ़ाऊ ऐसे,
मायाके खटाऊ अभिमानी जीव कहे हैं।।४५।।

जो कर्मों का तीव्र बन्ध बाँधे हुए हैं... भगवान आत्मा कर्म, शरीर और राग से अत्यन्त भिन्न है, ऐसी दृष्टि करता नहीं, छूटने का मार्ग लेता नहीं, ऐसा कहते हैं। मोक्ष अधिकार है न? और बन्ध के मार्ग में पड़ा है। आहाहा! जिससे कर्म का बन्ध... **करमके भारी...** गुण के भारी नहीं परन्तु कर्म का भारी। **समुझै न गुनकौ मरम...** दोष को गुण समझता है वह। आत्मा में होनेवाले पुण्य-पाप के भाव, वह बन्ध का कारण है, वह दोषस्वरूप है, उसे वह गुणस्वरूप मानता है। मोक्ष अधिकार है न? आत्मा भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यदल का आश्रय (नहीं) अथवा उसे मानता नहीं, अनुभवता

नहीं। इसलिए उसे राग के और पुण्य-पाप के भाव का अनुभव है। वह दोष है, उसे गुण मानता है। समझ में आया?

परम अनीति... बहुत अनीति करता है। आहाहा! **अत्यन्त अनुचित और पापमय मार्ग ग्रहण करते हैं।** पाप के भाव और शरीर की एकताबुद्धि में अनीति... अत्यन्त अनीति करता है। समझ में आया? **परम अनीति अधरम रीति गहे हैं...** अधर्म को ही मानता है, अधर्म को ही ग्रहता है। जो आत्मा का स्वभाव नहीं, अविनाशी तीनों काल टिकाऊ तत्त्व नहीं—ऐसे तत्त्व को स्वयं दोषरूप न मानकर गुणरूप मानता है।

हौंहि न नरम चित्त... चित्त में कोमलता नहीं। 'अरे! मैं आत्मा, पर से भिन्न, मुझे और राग को भी कुछ सम्बन्ध नहीं', ऐसा न मानकर चित्त में नरम नहीं होता जरा भी। अभिमान... अभिमान... हम कमाते हैं, हम कमाते हैं, हम पैसेवाले हैं और हम बुद्धिवाले हैं। हम यह भटकाऊ बुद्धिवाले हैं।

मुमुक्षु : विशेषण बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकाऊ बुद्धि। चिमनभाई! बाहर में बुद्धि का जो हो बहुत विकास, उसका इसे अभिमान होता है। हम चतुर हैं, होशियार हैं। संसार में सामने कुर्सी पर बैठनेवाले हैं। हमारा पहला स्थान है वहाँ। आहाहा! (**मुमुक्षु :** अभिमान के...)

हौंहि न नरम चित्त गरम घरमहूतैं... गरम-गरम जैसे धूप। धूप होती है न धूप, तड़का। ऐसे गर्म मानो ऐसे बुलावे वहाँ। तुम क्या जानो? तुमको क्या खबर पड़े? ऐसा। मुँह चढ़ाया हुआ। तुमको क्या खबर पड़े धर्म-बर्म की? ऐसी कठोर भाषा बोले। नरमाई जरा भी न हो, ऐसा कहते हैं। **चरमकी द्रिष्टिसौं भरम भूलि रहे हैं...** इन्द्रियज्ञान से भ्रमणा में पड़कर भूल रहे हैं। बाहर की पाँच इन्द्रिय... है न देखो, चरमदृष्टि? इन्द्रियज्ञान पाँच इन्द्रिय से जाना, वह तो इन्द्रियज्ञान है। उसके अभिमान में चढ़ जाता है। आहाहा!

चरमकी द्रिष्टिसौं भरम भूलि रहे हैं... लो। **इन्द्रियज्ञान ही में भूले रहते हैं।** है न एक बगड़ो (२)? **आत्मज्ञान नहीं होता...** ऐसा कहते हैं। इन्द्रियज्ञान में ज्ञान मानकर अभिमान में चढ़ गया है। परन्तु आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उसकी इसे खबर नहीं। साधु

नाम धराकर भी अन्दर से इन्द्रियों के ज्ञान के अभिमान में हमको उघाड़ हुआ है, शास्त्र का उघाड़ है, ग्यारह अंग का उघाड़ है, पूर्व का उघाड़ है, लो न। पूर्व का होता है न? मिथ्यादृष्टि। वह उघाड़, वह तो बन्ध का कारण है। उसमें भूले रहते हैं। **दिखाने के लिये एक आसन से बैठते या खड़े हो रहते हैं।** मौन रहे, आसन में खड़ा रहे। है न? **आसन न खोलैं...** बैठा (हो) तो बैठा रहे। भान न हो कुछ। **आसन न खोलैं मुख वचन न बोलैं...** मुख से बोले नहीं। ओहोहो! हम तो ध्यान में हैं। आर्तध्यान में हो, रौद्रध्यान में हो और (माने कि धर्म) ध्यान में हैं। राग की आर्तध्यान की कल्पना हो और उसमें अधिकपने अपने को को माने।

सिर नाये हू न डोले... नमस्कार करने आवे तो उसके सामने जरा भी ढील न दिखाये ढीला। **मानौं पाथर के चहे हैं...** पत्थर से चिना हुआ मानो मकान हो, दीवार हो, इस प्रकार से बस। आहाहा! वस्तु की कुछ खबर नहीं होती। ठेठ तक लिया, साधु तक लिया है। साधु पंच महाव्रत के विकल्प में पड़े और ध्यान में बैठे और हम मानो, ओहोहो! क्या करते हैं। ऐसे अभिमानी जीव को **देखनके हाऊ...** देखने में तो बड़े भयंकर लगे हाऊ जैसा। है न? (भव) **पंथ के बढ़ाऊ... देखने के हाऊ भाव पंथ के बढ़ाऊ ऐसे...** आहाहा! चौरासी के अवतार जिसे मिलनेवाले हैं, ऐसे भव के पंथ को बढ़ानेवाले हैं। मोक्षपंथ के सामने है न यह? **महन्त जानकर कोई नमस्कार करे तो उत्तर के लिये अंग तक नहीं हिलाते, मानो पत्थर ही चित्त रखा हो।** पत्थर से चिने हों। **देखने में भयंकर हैं।**

पंथके बढाऊ.... संसारमार्ग के बढ़ानेवाले हैं। **मायाचारी में पक्के हैं...** है न? **मायाके खटाऊ....** माया में खटाऊ-मजबूत है। मायाचार कपट—दम्भ करना हो तो उसमें जोरदार हैं। आहाहा! **मायाके खटाऊ अभिमानी जीव कहे हैं...** यह मिथ्यादृष्टि के लक्षण की बात है। अब सम्यक्... **ज्ञानी जीवों की दशा।** है न? ४६, ४६।

धीरके धरैया भव नीरके तरैया भय, भीरकै हरैया बरवीर ज्यौं उमहे हैं। कवि है न कवि। शृंगारी कविता बनाते थे तब ऐसी बनायी थी। पहले शृंगार में थे यह बनारसीदास। जवान अवस्था में व्यभिचारी (शृंगारी कवि)। ऐसे जहाँ पलटा खाया, आत्मा का भान हुआ तब ऐसा बनाया, आत्मज्ञान होने के बाद यह बनाये हैं। शृंगार की पुस्तकें थीं, वे

सब पानी में डाल दीं, पानी में डाल दीं। कैसी नर्मदा? गोमती। गोमती नदी में (प्रवाहित कर दी)। ऐ लड़कों! बातें नहीं की जाती यहाँ, हों! सुनाई न दे तो सामने देखो अन्दर पुस्तक में। हो, बालक है न यह तो हो जाये। इसमें रस पड़े नहीं और मजा न आवे, इसलिए .... परन्तु सुन न इसमें। आहाहा! कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ४६

ज्ञानी जीवों की दशा

(सवैया इकतीसा)

धीरके धरैया भव नीरके तरैया भय,
भीरके हरैया बर बीर ज्यौं उमहे हैं।
मारके मरैया सुविचारके करैया सुख,
ढारके ढरैया गुन लौसौं लह लहे हैं।।
रूपके रिझैया सब नैके समझैया सब,-
हीके लघु भैया सबके कुबोल सहे हैं।
बामके बमैया दुख दामके दमैया ऐसे,
रामके रमैया नर ग्यानी जीव कहे हैं।।४६।।

शब्दार्थः-भव नीर=संसार समुद्र। भीर=समुदाय। बरबीर=महायोद्धा। उमहे=उमंग सहित-उत्साहित। मार=काम की वासना। लहलहे=हरे भरे। रूपके रिझैया=आत्मस्वरूप के रुचिया। लघु भैया=छोटे बनकर नम्रतापूर्वक चलनेवाले। कुबोल=कठोर वचन। बाम=वक्रता-कुटिलता। दुख दामके दमैया=दु:खों की सन्तति को नष्ट करनेवाले। रामके रमैया=आत्मस्वरूप में स्थिर होनेवाले।

अर्थः-जो धीरज के धरनेवाले हैं, संसार समुद्र से तरनेवाले हैं, सब प्रकार के भय नष्ट करनेवाले हैं, महायोद्धा समान धर्म में उत्साहित रहते हैं, विषय-वासनाओं को जलाते हैं, आत्महित का चिन्तवन किया करते हैं, सुख-शान्ति की चाल चलते हैं,

सद्‌गुणों की ज्योति से जगमगाते हैं, आत्मस्वरूप में रुचि रखते हैं; सब नयों का रहस्य जानते हैं, ऐसे क्षमावान् हैं कि सबके छोटे भाई बनकर रहते हैं वा उनकी खरी खोटी बातें सहते हैं, हृदय की कुटिलता छोड़कर सरल चित्त हुए हैं, दुःख सन्ताप की राह नहीं चलते, आत्मस्वरूप में विश्राम किया करते हैं, ऐसे महानुभव ज्ञानी कहलाते हैं।।४६।।

काव्य-४६ पर प्रवचन

धीरके धरैया भव नीरके तरैया भय,
भीरके हरैया बर बीर ज्यौं उमहे हैं।
मारके मरैया सुविचारके करैया सुख,
ढारके ढरैया गुन लौसौं लह लहे हैं।।
रूपके रिझैया सब नैके समझैया सब,-
हीके लघु भैया सबके कुबोल सहे हैं।
बामके बमैया दुख दामके दमैया ऐसे,
रामके रमैया नर ग्यानी जीव कहे हैं।।४६।।

कवि है न! **रामके रमैया नर ग्यानी जीव कहे हैं...** समकिती ऐसे होते हैं। कैसे होते हैं? कहते हैं। **धीरके धरैया...** धीरज धरे—धीरज रखे। शान्ति से धीरज रखे। उतावल करके ऐसे हो जाये, ऐसा कर दूँ, ऐसा कर दूँ—ऐसा ज्ञानी को होता नहीं। किसका करे? कौन धरे? धीरज के धरैया। है न? धीरज के धरनेवाले। आहाहा! **भव नीरके तरैया...** संसारसमुद्र के तिरनेवाले होते हैं धर्मी तो। ओहोहो! राग और पुण्य के परिणाम से भी भिन्न भगवान आत्मा, उसके स्वभाव की अन्तर लीनता में—एकाग्रता में तत्पर होते हैं। **भव नीरके तरैया...** भवरूपी नीर अर्थात् समुद्र। चैतन्य भगवान आनन्द का धाम। उसके सन्मुख में जाने से भवनीर को तिरनेवाले समकिती होते हैं। भव के भाव को रखनेवाले होते नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भव भीरके हरैया... सब प्रकार के भय नष्ट करनेवाले हैं। निर्भय होते हैं, ज्ञानियों को भय होता नहीं। आता है न आठ अंग में? निःशंक और निर्भय होते हैं। आहाहा!

जिसे इस लोक का भय नहीं। क्या होगा? क्या होता है? मैं कहाँ इस लोक में हूँ? मैं तो मेरे स्वरूप में हूँ। परलोक का भय नहीं। कहाँ जाऊँगा? कहाँ जाये? वह तो अपने स्वरूप में ही है। जाये कहाँ? देखो, यह मोक्ष के अधिकारी, धर्म के धारक, धीरज के धारक, भवनीर के तिरनेवाले और भयभीर के हरैया—भय का भी नाश करनेवाले। रोग आवे तो क्या होगा? मृत्यु आवे तो क्या होगा? प्लेग आवे तो क्या होगा? इसका डर धर्मी को होता नहीं। आहाहा!

भगवान आनन्दस्वरूप है, वह कहाँ जाये? उसमें हीनता कहाँ से आवे? ऐसा चैतन्यस्वभाव जिसने सम्यग्दर्शन में अनुभव किया है, जाना है, उसे भय का डर नहीं होता। आहाहा! **बरवीर ज्यों उमटे हैं,...** लो। **महायोद्धा समान धर्म में उत्साहित रहते हैं।** कहते हैं, **भीरके हरैया बरबीर ज्यौं उमटे हैं...** महायोद्धा की भाँति, आहाहा! अपने आत्मरस में उत्साहित होता है। अपना आत्मस्वभाव, उसमें उत्साहित होता है, पर में उत्साहित होता नहीं।

मारके मरैया... विषयवासनाओं को जलाते हैं... मार अर्थात् विषय। मार अर्थात् काम, विषय वासना। **मारके मरैया...** विषयरूपी **मार—**कामबाण, उसे मार डालते हैं। आहाहा! आनन्द का स्वादिया है धर्मी। विषय में कहीं सुख दिखता नहीं। आहाहा! स्त्री में, पैसे में, इज्जत में कहीं सुख ज्ञानी को भासित नहीं होता। सुख अपने में है। आहाहा! कहते हैं, **मारके मरैया...** मार ऐसा जो.... कामभोग—कामवासना, उसे मार कहा जाता है। उसे मारनेवाला होता है। आहाहा! ब्रह्मानन्द की आनन्द की दशा के अनुभव करनेवाले धर्मात्मा काम को तो मार डालते हैं। समझ में आया? छह खण्ड के राजवाले थे न समकिती? छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं न? नहीं थी, बापू! नहीं थी। उन्हें नहीं थीं, उनमें था वह उनमें था जड़ में, यह कहते हैं। अपना था वह अपने में है। ऐसा मार्ग है, भाई! कहते हैं, मार को तो मार डालनेवाले हैं। मार अर्थात् विषयवासना। काम को मार कहते हैं न?

सुविचारके करैया... लो। धर्मी आत्महित का चिन्तवन करनेवाले होते हैं। भगवान पूर्णानन्द प्रभु अभेद चैतन्यस्वरूप अनन्त ज्ञान और आनन्द मुझमें है, ऐसा आत्मचिन्तवन करनेवाले हैं। उसे मोक्षमार्गी और ज्ञानी कहा जाता है। वे पानाचन्दभाई

और शिवलालभाई नहीं थे? भाई! सिविल सर्जन हुए थे। बड़ी परीक्षा। (संवत्) १९७७ में आये थे वहाँ बोटाद। व्याख्यान हुआ था बोटाद में। सभा बड़ी न तब ७७ (के वर्ष)। नाम बड़ा। बहुत बड़ी सभा।

(सभा) पूरी हुई और तुरन्त आये। उनका गाँव में ननिहाल था। विशाश्रीमाली। वे और नागरभाई। गिरधरभाई का पिता आया उससे पूछा। इतनी उसकी बुद्धि थी कि पूरी अलमारी पढ़ जाये तो किस पृष्ठ में और किस पुस्तक में है, यह कहता। उससे ऐसा पूछा, 'यह आत्मा है, ऐसा तुमको जँचा है। आत्मा है?' तब तो सात सौ वेतन था। फिर तीन हजार वेतन। जयपुर में थे। कहे, 'पढ़ा है। आत्मा है, ऐसा कहते हैं लोग, परन्तु अभी मैंने निर्णय नहीं किया।'

बड़े कलेक्टर। तीन हजार-साढ़े तीन हजार वेतन होनेवाला। जयपुर के (कलेक्टर) हुए थे न। गुजर गये छोटी उम्र में। ४८ वर्ष की उम्र में। बड़ी परीक्षा। बड़ी जगह थी। परन्तु उसने वह परीक्षा देकर। ऐसे तो साथ में पास हुए। जॉर्ज था न, उसके साथ पास हुए। पहला नम्बर उसका और दूसरा नम्बर जॉर्ज का। हिन्दुस्तानवाले को पहला नम्बर दे नहीं सरकार इसलिए उसे दूसरा नम्बर दिया। इतनी तो बुद्धि। आत्मा है, इसका निर्णय अभी किया नहीं, कहे। ओय...! पढ़ा है, लोग कहते हैं। आहाहा! ७७ की बात है। ७७ के वर्ष। बोटाद में चातुर्मास था। तब सात सौ वेतन। शुरु हुआ मासिक सात सौ। बाद में तो आगे बढ़ गये। इतनी खबर नहीं होती। वस्त्र पहने हों तो बड़े राजा हों, दीवान हो, ऐसे वस्त्र, हों! देखा था तुमने उन्हें? ....

कपड़े में क्या कहलाये? बुस्की... बुस्की... बोस्की का कोट ऐसा लम्बा। ऐई चिमनभाई! यह जगत के प्राणी कहाँ जाते हैं? ४८ वर्ष में गुजर गये छोटी उम्र में। यहाँ कुछ हो गया था। हार्ट में कुछ हुआ था। बड़ी पदवी। क्या करे वहाँ? धूल में। साढ़े तीन हजार वेतन, तब साढ़े तीन हजार का, हों! तीस वर्ष पहले, पैंतीस वर्ष पहले। अभी तो तुम्हारी गिनती कम हो गयी। इसलिए भी सोलह गुने गिनो इतना अन्तर पड़ गया। उसकी बुद्धि ऐसी, भटकने की बुद्धि पड़ी थी। आहाहा!

आत्मा का निर्णय... अभी है या नहीं? उसका निर्णय मैंने अभी किया नहीं। आहाहा! ऐ मलूकचन्दभाई! नागनेश के तुम्हारे गाँव के मूलचन्दभाई के परिवारी।

आहाहा! अरे आत्मा! क्या करना है तुझे? कहाँ जाना है और कहाँ रहना है? खबर नहीं होती। यहाँ कहते हैं, धर्मी जीव तो क्या विचारणा करे। 'अन्दर त्रिकाली आत्मा हूँ, आनन्द(स्वरूप) हूँ। राग मुझमें है ही नहीं। किसी पदार्थ के साथ मुझे (कुछ) सम्बन्ध है ही नहीं।' ऐसी विचारणा हित की आत्मा की करनेवाले होते हैं।

सुख ढारके ढरैया... सुख शान्ति की चाल चलते हैं,... लो। सुख की ढार, उसमें ढल गये हैं। सुख आनन्द आत्मा में है, उसमें ढल गये हैं। भगवान आत्मा में आनन्द है, वहाँ वे ढ़ल गये हैं, कहते हैं। राग से विमुख हो गये हैं और आनन्द में ढल गये हैं। गुजराती और हिन्दी सब भाषा... लिया न तुमने शब्दकोश? तुम्हारे लिये लाये थे। तुमने नहीं लिया। कल लाया था यहाँ। मँगाया था, हों! फिर मैंने पढ़ लिया। शब्दाकोश है न हिन्दी? बहुत शब्द हैं, हों! तब पढ़ा नहीं था पूरा। आज समय मिला.... नेमिचन्द पाटनी और सब इकट्ठे होकर किया था न! नेमिचन्द पाटनी, हिन्दी। अच्छा रचा है गुजराती में। पढ़ा है तुमने? तुमने तो हिन्दी में.... आहाहा!

कहते हैं, **सुख ढारके ढरैया...** सुख के ढाले में ढल गये हैं, ऐसा कहते हैं। ढाल तो देखो न यह हिन्दी शब्द है। आत्मा आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्दस्वरूप है आत्मा। ऐसे सुख में जिसकी दृष्टि पड़ी है, उसमें ढल गये हैं, पुण्य-पाप के दु:खभाव से जो खस गये हैं, हट गये हैं। गुणवन्तभाई! देखो यह धर्म की पद्धति। आहाहा!

गुन लौसौं लहलहे हैं,... लो। **सद्गुणों की ज्योति से जगमगाते हैं।** आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति ऐसी अनन्त गुणों की प्रगट दशा जिसे हुई है। भले आंशिक हुई है और फिर आगे बढ़ते हैं। समझ में आया? जो सद्गुणों की ज्योति से जगमगाते हैं। जैसे दीपक जगमगाता है। आहाहा! दीपक, वह गया नहीं था? दुला काग का पुत्र यहाँ आया था। भावनगर... भावनगर। प्रतिष्ठा के समय भाई थे न? प्रतिष्ठा के समय भाई नहीं थे।

वैशाख शुक्ल दूज। वह गाया था रामभाई। दीवडो.... गाया था सही दीपक का। भावनगर में। दुला काग का पुत्र। कण्ठ, वे लोग तो चारण हैं न। यहाँ कहते हैं कि **गुन लौसौ लहलहे हैं...** ओहोहो! भगवान आत्मा अनन्त गुण की निधि, ऐसी प्रगट दशा से लहलहता है। लसलसता है। है न? जगमगाते हैं। लो, कैसी भाषा! हलुवा होता है न

बढ़िया हलुवा लसलसता। भूख लगी हो और लसलसता हलुवा आवे अन्दर से। सफेद-सफेद गेहूँ का। घऊं समझे न? गेहूँ... गेहूँ... सफेद गेहूँ और उसमें ताजा घी हो।

ऐसा कहते हैं कि आत्मा के अनन्त गुण उसकी पर्याय में जगमगाते हैं। आहाहा! जगमग दीपक, ऐसी भाषा थी कुछ? रामभाई बोलते थे। आहाहा! यह आत्मा ऐसी चीज़ है, भगवान सर्वज्ञ ने कही हुई और प्रगट की हुई। उसे धर्मी जीव अपने गुण की पर्याय में मजा मानता है। आहाहा! उसे मजा कहीं अन्यत्र नहीं लगता। इन्द्राणी के इन्द्र और वह इन्द्राणी के सुख जिसे जहर जैसे लगते हैं। आहाहा! वहाँ सुख कहाँ था? यहाँ करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़, दस करोड़ हो जाये, वहाँ ऐसा लगे, आहाहा! हम सुखी हैं। धूल में भी नहीं। दु:ख के ढ़ेर में पड़ा है। ऐसा क्यों होगा? मलूकचन्दभाई! देखो न, समय भी नहीं मिलता यहाँ आने का। आहाहा!

रुपके रिझैया... आत्मस्वरूप की रुचि रखता है, ऐसा कहते हैं। **रुपके रिझैया...** आत्मरूप भगवान आत्मा उसमें जो रिझता है, प्रसन्न होता है। आहाहा! उसकी रीझ उसमें है, पर में उसकी रीझ है नहीं। आहाहा! गजब! गूँथा है कैसा, देखो न! शब्द ऐसे सब मरैया, करैया और... **रुपके रीझैया...** यह रूप में रीझे हुए प्रसन्न हैं। आहाहा! है न? उसमें रुचि रखते हैं। वह धर्मी उसे कहते हैं कि आत्मा के आनन्द में जिसकी रुचि है। पुण्य-पाप और शरीर की सामग्री में उसकी रुचि होती नहीं। आहाहा! उसे धर्मी कहते हैं। ऐसे धर्मी, धर्मी कहलावे परन्तु.... क्या हो? आहाहा!

रूपके रिझैया सब नैके समसैया... सब नय को समझनेवाले होते हैं। व्यवहारनय व्यवहार के स्थान में; निश्चयनय निश्चय के (स्थान में)। सब प्रकार के नय का ज्ञान समकिती धर्मी को होता है। एक समय की पर्याय भी व्यवहारनय है। त्रिकाल द्रव्य, वह निश्चय है। रागादि, वह असद्भूतव्यवहारनय है। समझ में आया? नय का ज्ञान, वास्तविक स्वरूप ऐसा उसे होता है।

सब नय के समझैया, सब ही के लघु भैया... सबके छोटे भाई बनकर रहते हैं,... लो। कोई मानो गिनती ही दुनिया में न हो, इस प्रकार से रहते हैं। आहाहा! **सबके छोटे भाई बनकर रहते हैं,...** आहाहा! **सबके कुबोल सहे हैं...** उसकी खरी-खोटी कोई बातें करे, सहन करे। उसे बोलने की क्रिया का काल था तो भाषा आवे। मुझमें भाषा का

(तत्त्व) है नहीं। है ? क्या कहते हैं ? **खरी-खोटी बातें सहते हैं...** उसकी महिमा करे तो वह ज्ञातादृष्टा रहता है और कोई निन्दा करे तो भी ज्ञाता रहता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कोई महिमा करे तो यहाँ कहाँ घुस जाते हैं गुण? और निन्दा करे तो कहाँ हल्का हो जाता है आत्मा? समझ में आया?

वामके वमैया, लो ठीक। यह कुटिलता को छोड़ता है। वाम अर्थात् कुटिलता। **वामके वमैया...** वाम दशा—आड़ी दशा, उल्टी दशा, उसे तो वमन कर डालता है। आहाहा! वक्रता होती नहीं समकिती को, ऐसा कहते हैं। आडोडाई समझते हैं? वक्रता। उसमें कुछ शब्द तो आता है। आडोडाई, अवणाई का क्या आता है तुम्हारे हिन्दी? वक्रता, कुटिलता। अवणाई जैसा न आवे न। सब भाषा समान कहाँ से आवे? टेढाई। टेढाई है। **हृदय की कुटिलता छोड़कर सरल चित्त हुए हैं। दुःख दामके दमैया,...** लो। यह **दुःख संतापकी राह पे नहीं चलते।** उसे दमन कर डालते हैं। दुःख सन्ताप की राह पर नहीं चलता। संकल्प-विकल्प, वह दुःख की राह है। संकल्प-विकल्प, वह दुःख का पंथ है। आहाहा! ऐसी राह पर नहीं चलता। **दुःख दामके दमैया,...** (दुःख को) दमन करनेवाला है।

रामके रमैया... यह आत्माराम में रमनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? **रामके रमैया...** आतमराम चैतन्यस्वभाव... 'निजपद रमे सो राम कहिये।' अपना स्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा, उसके राम में रमैया... धर्मी तो आनन्द के राम में रमनेवाले हैं। आहाहा! उसकी रमणता आत्मा के साथ लगी होती है, ऐसा कहते हैं। राग और पुण्य के साथ उसकी रमणता होती नहीं। भाषा भी कैसी की है, देखो!

आत्मस्वरूप में विश्राम किया करते हैं। राम में रमे, कहा न यह। आत्मस्वरूप में विश्राम है। अरे! समकिती धर्मी जीव को आनन्द के धाम भगवान में उसका विश्राम है। उसे पुण्य और पाप में उसका विश्राम होता नहीं। आहाहा! **रामके रमैया नर ग्यानी जीव कहे हैं,...** लो। ऐसे महानुभाव ज्ञानी कहलाते हैं। उन्हें ज्ञानी कहा जाता है। उन्हें धर्मी कहा जाता है। आहाहा!

लो, बहुत सरस कवित्त! बहुत सरस कवित्त! करवट बदल गयी है धर्मी की। अज्ञानी की करवट राग और द्वेष और पर में अपनी एकत्वबुद्धि में है। धर्मी की करवट

गुलांट खा गयी है। आहाहा! वह राग के पक्ष में नहीं है, वह आत्मा के पक्ष में है। पडखे समझे ? बाजू। धर्मी—समकिती आत्मा की ओर है, अज्ञानी पुण्य-पाप और राग, शरीर की ओर है। दोनों की दशा में अन्तर और दशा भेद है। आहाहा! **ऐसे महानुभाव ज्ञानी कहलाते हैं,...** लो।

अब १२वाँ कलश है न ? यह कलश का (पद) है अब। १२वाँ कलश। मोक्ष अधिकार।

त्यक्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किल परद्रव्यं समग्रं स्वयं,
स्वद्रव्ये रति मेति यः स नियतं सर्वापराधच्युतः।
बन्धध्वन्समुपेत्य नित्यमुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-
च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धो भवन्मुच्यते।।१२।।

आहाहा! मोक्ष का अधिकार है न! उसका पद। **सम्यक्त्वी जीवों की महिमा।** मोक्ष के पंथ में पड़े हुए सम्यग्दृष्टि संसारपंथ से निवृत्त हुए हैं, उसकी बात है यह।

★ ★ ★

काव्य - ४८

सम्यक्त्वी जीवों की महिमा

(चौपाई)

जे समकिती जीव समचेती।
तिनकी कथा कहौं तुमसेती।।
जहां प्रमाद क्रिया नहि कोई।
निरविकलप अनुभौ पद सोई।।४७।।

परिग्रह त्याग जोग थिर तीनौं।
करम बंध नहि होय नवीनौं।।
जहां न राग दोष रस मोहै।
प्रगट मोख मारग मुख सोहै।।४८।।

पूरब बंध उदय नहि व्यापै।
जहां न भेद पुन्न अरु पापै।।
दरब भाव गुन निरमल धारा।
बोध विधान विविध विस्तारा।।४९।।

जिन्हकी सहज अवस्था ऐसी।
तिन्हकै हिरदै दुबिधा कैसी।।
जे मुनि छपक श्रेणि चढ़ि धाये।
ते केवलि भगवान कहाये।।५०।।

शब्दार्थः-समचेती=समता भाववाले। कथा=वार्ता। तुमसेती=तुमसे। प्रमादक्रिया= शुभाचार। जोग थिर तीनों=मन-वचन-काय के योगों का निग्रह। नवीनौं=नया। पुन्न (पुण्य)=शुभोपयोग। द्रव्यभाव=बाह्य और अन्तरंग। बोधि=रत्नत्रय। छपकश्रेणी=मोह कर्म नष्ट करने की सीढ़ी। धाये=चढ़े।

अर्थः-हे भव्य जीवों! समता स्वभाव के धारक सम्यग्दृष्टि जीवों की दशा तुमसे कहता हूँ, जहाँ शुभाचार की प्रवृत्ति नहीं है, वहाँ निर्विकल्प अनुभवपद रहता है।।४७।। जो सर्व परिग्रह छोड़कर, मन-वचन-काय के तीनों योगों का निग्रह करके बन्ध-परम्परा का संवर करते हैं, जिन्हें राग-द्वेष-मोह नहीं रहता, वे साक्षात् मोक्षमार्ग के सन्मुख रहते हैं।।४८।। जो पूर्व बन्ध के उदय में ममत्व नहीं करते, पुण्य-पाप को एकसा मानते हैं, अन्तरंग और बाह्य में निर्विकार रहते हैं[१], जिनके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र गुण उन्नति पर हैं।।४९।। ऐसी जिनकी स्वाभाविक दशा है, उन्हें आत्मस्वरूप की दुविधा कैसे हो सकती है? वे मुनि क्षपक श्रेणि पर चढ़ते हैं और केवली भगवान बनते हैं।।५०।।

काव्य-४७-५० पर प्रवचन

जे समकिती जीव समचेती।
तिनकी कथा कहौं तुमसेती।।

१. देखने में नेत्रों की लालिमा या चेहरे की वक्रतारहित शरीर की मुद्रा रहती है और अन्तरंग में क्रोधादि विकार नहीं होते।

जहां प्रमाद क्रिया नहि कोई।
निरविकलप अनुभौ पद सोई।।४७।।
परिग्रह त्याग जोग थिर तीनौं।
करम बंध नहि होय नवीनौं।।
जहां न राग दोष रस मोहै।
प्रगट मोख मारग मुख सोहै।।४८।।
पूरब बंध उदय नहि व्यापै।
जहां न भेद पुन्न अरु पापै।।
दरब भाव गुन निरमल धारा।
बोध विधान विविध विस्तारा।।४९।।
जिन्हकी सहज अवस्था ऐसी।
तिन्हकै हिरदै दुबिधा कैसी।।
जे मुनि छपक श्रेणि चढ़ि धाये।
ते केवलि भगवान कहाये।।५०।।

सम्यक्त्व से लेकर केवलज्ञान तक ले गये हैं। आहाहा! **हे भव्य जीवो! समता स्वभाव के धारक सम्यग्दृष्टि जीवों की दशा तुमसे कहता हूँ।** ऐसा कहते हैं न? **जे समकिती जीव समचेती...** जिसे सम्यक् श्रद्धा अनुभव हुआ है। आहाहा! आत्मा का अनुभव होकर जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, उस जीव की दशा **तिनकी कथा कहौं तुमसेती...** तुमको मैं, तुमसेती अर्थात् तुमको, सम्यग्दर्शन की वार्ता-कथा सुनाता हूँ। देखो, यह एक कथा। है न? कथा शब्द है। **जहाँ प्रमाद क्रिया नहि कोई...** आगे बढ़कर मुनि हुआ है। आत्मा राग से, पुण्य से भिन्न पड़कर अनुभव में समकिती हुआ, फिर आगे बढ़कर स्वरूप में शान्ति और आनन्द की वृद्धि हुई है, ऐसे जीव को प्रमाद नहीं होता। आहाहा!

जहाँ प्रमाद क्रिया नहि कोई... कहते हैं कि सम्यग्दर्शन उपरान्त जब स्वरूप की स्थिरता में गया है, तब उसे प्रमाद—पंच महाव्रत के विकल्प, वह प्रमाद है, वह होता

नहीं। आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय में जहाँ स्थिर हुआ है। पाठ है न उसमें? देखो न! '**परद्रव्यं समग्रं स्वयं त्यक्त्वा स्वद्रव्यं रतिमेति।**' देखो, ऐसा है। सिद्धान्त में यह शब्द है मूल श्लोक में। परद्रव्य की ओर के झुकाव के भाव को छोड़कर स्वद्रव्य भगवान आत्मा की रति को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! स्वद्रव्य आश्रय से ही मुक्ति का मार्ग है। परद्रव्य के आश्रय से मुक्ति का मार्ग नहीं। आहाहा! चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर हों समवसरण में, वे परद्रव्य हैं। उनका आश्रय करने जाये तो राग होता है, ऐसा है। भले पुण्य हो, परन्तु वह परद्रव्य आश्रित भाव, उसे '**त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायी**' वह अशुद्धता का कारण है। आहाहा! मोक्ष का अधिकार है न?

जितने आत्मा के अतिरिक्त शुद्धस्वभाव के अतिरिक्त परद्रव्य हैं, उन्हें '**त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायी तत्किल।**' पर के प्रति की ममता को छोड़कर '**स्वद्रव्य रतिमेति**' भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में जिसका प्रेम और एकाग्रता जमी है, वह मोक्ष के पंथ में पड़ा है, ऐसा कहते हैं। परन्तु जिसे स्वद्रव्य का प्रेम नहीं और परद्रव्य के प्रेम में फँस गया है, वह संसार के फन्दे में पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? **जहाँ प्रमाद क्रिया नहि कोई...** जहाँ पहले प्रमाद का भाव है, उससे तो समकिती भिन्न पड़ा हुआ है। ज्ञान में, दर्शन में (स्थित है)। परन्तु फिर प्रमाद के विकल्प हैं, उनसे छूटकर आनन्दस्वरूप में स्थिर है, उसे मुनि कहा जाता है।

निरविकलप अनुभौ पद सोई... सम्यग्दर्शन में निर्विकल्पता श्रद्धा और ज्ञान जितनी है, वह निर्विकल्पता तो चारित्र के राग से रहित, अन्तर की स्थिरता, वह निर्विकल्पता है। समझ में आया? यहाँ तो सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान में ले जाना है न! पहले ही परद्रव्य के झुकाववाला भाव छोड़कर, स्वद्रव्य के आश्रय में आकर जिसने अन्तर सम्यग्दर्शन प्रगट किया है। वह आगे जाकर प्रमाद के परिणाम को भी छोड़कर, ऐसा कहते हैं। निर्विकल्पता के अनुभवपद में आया है। आहाहा! जिसमें कहीं पंच महाव्रत का विकल्प का कर्ता(पना) नहीं। पर की दया और विकल्प, वह तो प्रमादभाव में था। उसे छोड़कर **अनुभौ पद सोई...** लो।

वहाँ निर्विकल्प अनुभवपद रहता है। जहाँ शुभाचार की प्रवृत्ति नहीं है। वह प्रमाद का अर्थ किया। यह अर्थ में आता है। मुनि—सच्चे सन्त वीतरागभाव का आश्रय

लेकर स्थित हैं अन्दर में, कहते हैं कि उन्हें पंच महाव्रत के विकल्प का शुभाचार भी होता नहीं। आहाहा! जहाँ तक शुभाचार का विकल्प है, वह आस्रव और बन्ध का कारण है, मुनि को भी। अज्ञानी की तो क्या बात करना? आत्मा अपने स्वभाव में जाता है, तब प्रमाद के विकल्प (ऐसे) जो पंच महाव्रत के भाव (वे) भी नहीं रहते। अप्रमत में आ जाता है। समझ में आया?

परिग्रह त्याग जोग, थिर तीनों,... लो, आया। फिर सम्यग्दृष्टि आगे बढ़कर परिग्रह का त्याग करता है। एक वस्त्र का टुकड़ा भी उसे होता नहीं। नग्नदशा, दिगम्बर दशा। अन्तर में तीन कषाय के अभाव की दशा। आहाहा! ऐसी दशा में, कहते हैं, **परिग्रह त्याग जोग, थिर तीनों,...** पर की ओर के परिग्रह का त्याग करके अन्तर स्वरूप में स्थिर हुए हैं। समझ में आया? **जो सर्व परिग्रह छोड़कर मन-वचन-काय के तीनों योगों का निग्रह करके बन्ध परम्परा का संवर करते हैं,...** लो। मन, वचन और काया की ओर से हट गया है, हट गया है और स्वरूप-सन्मुख की निर्विकल्पता में आ गया है। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

बीच में अट्ठाईस मूलगुण मुनि के होते हैं, वे सब बन्ध का मार्ग है। उसे कहा जाता है मूलगुण, अट्ठाईस मूलगुण, परन्तु है सब राग और आस्रव। समझ में आया? आहाहा! जहाँ ऐसी समझण और श्रद्धा में अन्तर है, उसे तो चारित्र होता नहीं। **परिग्रह त्याग जोग थिर तीनौं, करम बंध नहि होय नवीनौं...** सम्यग्दर्शन से लेकर आगे बढ़कर जहाँ प्रमाद के विकल्प छूटकर अप्रमत्तदशा में जहाँ स्थित है, वह मोक्ष का मार्गी (कि जिसे) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की तीन की एकता हुई है, उसे नवीन कर्मबन्ध होता नहीं।

जहाँ न राग दोष रस मोहै,... लो। जहाँ राग नहीं, द्वेष नहीं, मोह नहीं। आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, उसमें जिसकी जमवट... जाम... जाम... जम गया है अन्दर में। आहाहा! उसे राग-द्वेष, मोह होता नहीं। ऐसी दशावाला केवलज्ञान में जाता है, ऐसा कहते हैं। वह केवलज्ञान प्राप्त होने के योग्य है। आहाहा! मोक्ष अधिकार है न! **(जिन्हें राग-द्वेष-मोह नहीं रहता), वे साक्षात् मोक्षमार्ग के सन्मुख रहते हैं,...** लो। **प्रगट मोख मारग मुख सोहै...** प्रगट मोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, आत्मा के आनन्द की श्रद्धा, आनन्द का ज्ञान और आत्मा के स्वरूप में आनन्द का आचरण—ऐसा जो मोक्ष

का मार्ग, वह **प्रगट मोख मारग मुख सोहै...** मुख्य उसे शोभता है।

जिसे पंच महाव्रत और नग्नदशा का भी अभिमान नहीं, वह स्वरूप की रमणता में स्थिर हो गया है। अन्तिम पद है न यह मोक्ष (द्वार) के। **पूरव बंध उदय नहि व्यापै...** जहाँ स्वरूप के आनन्द में रमता है, उसे पूर्व के कर्म का उदय बन्ध में कारण नहीं होता। बन्ध व्यापता ही नहीं। अबन्धपरिणाम में चढ़ा हुआ होता है, उसे बन्ध होता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा गजब!

जो पूर्व बंध के उदय में ममत्व नहीं करते। पूर्व के कर्म का उदय हो, परन्तु उस उदय से तो मुनि विरक्त है। समकिती विरक्त है, परन्तु उन्हें तो अस्थिरता का जो उदय है, उससे भी विरक्त है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि धर्मी चौथे गुणस्थान में उदय सम्बन्धी का राग, उससे भी विरक्त है। परन्तु यहाँ तो अस्थिरता के भाव से भी विरक्त है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग है न? आगे जाते हैं न वे? समझ में आया?

पुण्य-पाप को एकसा जानते हैं। पुण्य। **जहाँ न भेद पुन्न अरु पापै...** आहाहा! शुभभाव और अशुभभाव में जहाँ भेद नहीं कि शुभभाव ठीक है और अशुभ अठीक है। ऐसा अस्थिरता में नहीं है। श्रद्धा में तो नहीं। शुभभाव वह आचरण करनेयोग्य है, अशुभभाव छोड़ने योग्य है—ऐसा अस्थिरता में भी है नहीं। स्थिरता में जम गया है और अस्थिरता ऐसी होती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात सुनना कठिन पड़े। आहाहा! ऐसा यह तत्त्व अन्दर भगवान देह से निराला, वाणी से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प के भाव, शुभाचार से भिन्न। आहाहा! ऐसा मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में मोक्ष होने के लिये... है तो मोक्षस्वरूप ही भगवान द्रव्यस्वरूप से, परन्तु पर्याय में मोक्ष होने के लिये जहाँ पुण्य और पाप का भेद नहीं। आहाहा!

प्रवचनसार में तो पहले से कहा है कि जो कोई पुण्य और पाप में भेद और अन्तर माने, (वह) घोर संसार में भटकेगा। प्रवचनसार में ऐसी गाथा है। प्रवचनसार गाथा कितनी? ७७वीं गाथा है। यह समयसार, नहीं? यह प्रवचनसार ७७ लो। '**ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णं पावाणं।**' जो कोई पुण्य-पाप के भाव में कुछ अन्तर नहीं (मानता), दोनों एक जाति के बन्ध के कारण हैं, ऐसा जो नहीं मानता...

शुभ और अशुभ दोनों भाव बन्ध के कारण हैं। **'ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो'** शुभभाव और (अशुभ) भाव... अशुभ और शुभ में कुछ अन्तर नहीं है, ऐसा जो नहीं मानता और अन्तर है, पुण्य में ठीक और पाप में अठीक, ऐसा अन्तर मानता है, वह **हिंडदी धोरमपारं संसारं**। ७७ गाथा है। ७७। सत्तर और सात। देखो न!

नहीं मानता इस रीति पुण्य-पाप में न विशेष है।
वह मोह से आच्छन्न घोर अपार संसार में भ्रमे॥

मिथ्यादृष्टि की बात है न। पुण्यभाव ठीक है और पापभाव ठीक नहीं—ऐसा जो दोनों बन्ध के कारण हैं, उनमें अन्तर मानत है, (वह) घोर संसार में भटकेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हिण्डति, लो। यह गुजराती भाषा आती है न? हेंडो... हेंडो नहीं आता? गुजराती में हेंडो आता है। हेंडो अर्थात् चलो। यहाँ कहते हैं कि **'हिंडदि घोरमपारं संसारं।'** अपार **'संसार मोहसंछण्णो।'** मिथ्यात्व से ढँक गया है। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है, तो भी अभी गड़बड़ करते हैं।

मुमुक्षु : मोह आच्छादनवाले जीव होते अवश्य हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जो मोह-मिथ्यात्व से ढँके हुए हैं, वे जीव पुण्य-पाप में विशेष / अन्तर मानते हैं। समकिती पुण्य-पाप में कुछ अन्तर नहीं मानता। दोनों बन्ध के कारण हैं।

ओहोहो! टीका में बहुत कहा है। 'शुभाशुभ उपयोग के द्वैत की भाँति और सुख-दुःख के द्वैत की भाँति, परमार्थ से पुण्य-पाप का द्वैत टिकता—रहता नहीं।' बन्ध का कारण है। शुभाशुभ उपयोग भी एक ही जाति का है। शुभाशुभ सुख-दुःख संयोग भी एक जड़ में मिले ऐसा है। परमार्थ से पुण्य-पाप के बन्धन में अन्तर नहीं। बन्धन का भाव में अन्तर नहीं, बन्धन में अन्तर नहीं, संयोग में भी अन्तर नहीं। सब जड़ की जाति है। आहाहा! समझ में आया? ७७ (गाथा, प्रवचनसार)। पहला ज्ञान अधिकार—ज्ञानतत्त्व (प्रज्ञापन)।

जहां न भेद पुन्न अरु पापै। दरव भाव गुन निरमल धारा... लो। जहाँ आगे अन्दर निर्मल गुण वर्तते हैं। **अन्तरंग और बाह्य में निर्विकार रहते हैं।** अन्तरंग और बाह्य में

निर्विकार। जिसे अन्तर में भी तीन कषाय के अभाव की वीतराग परिणति है, बाह्य में निर्विकार वेश है। वस्त्र और पात्र वेष विकारी है, ऐसा वेश मुनि को होता नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य और भाव दोनों।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। **अन्तरंग और बाह्य में निर्विकार रहते हैं।** लो। **बोध विधान विविध विस्तारा...** जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विधान का विविध विस्तार है। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा पूर्ण निधान निधि, उस ओर जिसने नजर (अर्थात्) द्रव्यस्वभाव का आश्रय लिया है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विविध विस्तार है। अनेक प्रकार का उसमें सम्यक् मोक्षमार्ग का ही विस्तार है। बन्धमार्ग का है नहीं। आहाहा!

जिन्हकी सहज अवस्था ऐसी... जिसकी ऐसी सहज दशा अन्दर होती है। **तिन्हकै हिरदै दुविधा कैसी...** उसके हृदय में पुण्य ठीक है और पाप अठीक है, शुभाचार करनेयोग्य है—ऐसी दुविधा होती नहीं। आहाहा! **जिन्हकी सहज अवस्था ऐसी तिन्हकै हिरदै दुविधा कैसी?'** क्या लिया है अन्दर? **ऐसी जिनकी स्वाभाविक दशा है, उन्हें आत्मस्वरूप की दुविधा कैसे हो सकती है?** दो भेद भी कहाँ हैं वहाँ? ऐसा कहते हैं। यह द्रव्य है और यह पर्याय है—ऐसा भेद भी वहाँ होता नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप को छुड़ा दिया। यह त्रिकाली द्रव्य हूँ और यह पर्याय है—ऐसे दो भेद भी निर्विकल्प अनुभव में होते नहीं। बहुत कठिन बात! ऐसा मार्ग! शुरुआत से ऐसा होगा? अनादि का यह मार्ग है।

जे मुनि छपक श्रेणि... यहाँ ऐसा कहते हैं, ऐसी दशा करनेवाला मुनि क्षपकश्रेणी चढ़ जाता है। स्वरूप में लीनता करने से उपयोग को अन्तर में जमाने से उसे स्थिरता की धारा बहती है। अन्तर में स्थिरता की धारा की श्रेणी, **श्रेणि चढ़ि धाये...** आहाहा! हाथी के हौदे बैठकर हाथी को दौड़ावे, इसी प्रकार शुद्ध स्थिरता की श्रेणी में चढ़ता धाता है—दौड़ता है, कहते हैं। केवलज्ञान लेने को प्राप्त है। आहाहा! **ते केवलि भगवान कहाये...** लो। जिसे आत्मद्रव्य स्वभाव की दृष्टि-ज्ञान और अनुभव तथा उसकी स्थिरता में जम गया है, उसने प्रमादभाव छोड़ दिया है। उसे श्रेणी में चढ़ता आठवाँ गुणस्थान में चढ़ता... लो।

सवेरे एक था कुछ रह गया था न! वह सुनिश्चय समकिती आया था न? सुनिश्चय समकिती और तो भी पंच महाव्रत के परिणामवाला लिया है। यहाँ तो कहना है कि छठवें गुणस्थान में निश्चय समकिती है। ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। शुद्ध निश्चयी। वे कहे न, निश्चय समकिती तो सातवें में होता है, आठवें में होता है और बारहवें में होता है। आया था न सवेरे? पंच महाव्रत। यह तो यहाँ वहाँ तक तो सिद्ध कर दिया है। विकल्प है, यहाँ निर्विकल्पदशा तीन कषाय के अभाव की बात है, वहाँ से उसे शुद्ध निश्चय समकित है मुख्यरूप से। गौणरूप से तो चौथे से है। ऐसा आया था। सवेरे बात रह गयी थी। बाद में दिमाग में विचार में आया। यह एक... निश्चय सम्यग्दृष्टि छठवें गुणस्थान में जहाँ तीन कषाय का अभाव और प्रमाद का विकल्प, भले व्यवहार पंच महाव्रत आदि का हो, तथापि उसे निश्चय समकिती कहा है। छठवें में निश्चय समकिती कहा, इतना अपने यहाँ स्थापित करना है। वह आगे बढ़कर श्रेणी स्थिर होकर केवली भगवान की (—केवलज्ञान की) प्राप्ति करे, उसे मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११५, श्रावण शुक्ल ३, रविवार, दिनांक २५-०७-१९७१
मोक्षद्वार, काव्य-५१, ५२, ५३, तथा मोक्षद्वार का सार

यह समयसार नाटक, मोक्षद्वार। १३वाँ कलश है। है न इस ओर? ५१वाँ पद है। १३वाँ कलश है उसका पद है।

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटित सहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।
एकाकार स्वरसभरतोऽत्यन्त गम्भीरधीरं,
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि।।१९२।।

सम्यग्दृष्टि जीवों की वंदना। पाठ तो ऐसा लिया है। बात तो सिद्ध परमात्मा की बात करते हैं। परन्तु ऐसे सिद्ध परमात्मा (हैं, ऐसा) जिसे सम्यग्दर्शन में भान में आया है, सम्यग्दर्शन होने पर उसे सिद्ध की महिमा ऐसी होती है... सिद्ध अर्थात् पूर्ण शुद्ध पवित्र जिसकी दशा। उसकी जिसे महिमा आयी है, ऐसे जीवों को यहाँ याद करके उनका आदर करते हैं। समझ में आया? संसार में तो चौरासी के अवतार में दुःख है। सुख तो मोक्ष में है और वह मोक्ष आत्मा के स्वभाव के आश्रय से होता है। अर्थात् स्वभाव का आश्रय करके जिसने सम्यग्दर्शन प्रथम निर्विकल्प अनुभव... चौथे गुणस्थान में जिसे सम्यग्दर्शन होता है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है कि जो आनन्द पूर्ण होकर मोक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

★ ★ ★

काव्य - ५१

सम्यग्दृष्टि जीवों को वन्दना

(दोहा)

इहि बिधि जे पूरन भये, अष्टकरम बन दाहि।
तिन्हकी महिमा जो लखै, नमै बनारसि ताहि।।५१।।

शब्दार्थ:-पूरन भये=परिपूर्ण उन्नति को प्राप्त हुए। दाहि=जलाकर। लखै=जाने।

अर्थ:-जो इस रीति से अष्टकर्म का वन जलाकर परिपूर्ण हुए हैं, उनकी महिमा को जो जानता है, उसे पण्डित बनारसीदासजी नमस्कार करते हैं।।५१।।

काव्य-५१ पर प्रवचन

इहि बिधि जे पूरन भये, अष्टकरम बन दाहि।
तिन्हकी महिमा जो लखै, नमै बनारसि ताहि।।५१।।

ऊपर क्रम कहा था पहले सब।५० (पद) में सम्यग्दर्शन से लेकर आया था न? **जे समकिती जीव समचेती...**

मुमुक्षु : ठेठ तक ले गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ठेठ तक ले गये हैं। प्रथम सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं कि जो परपदार्थ का कर्ता तो न हो, परन्तु व्यवहाररत्नत्रय का शुभ उपयोग, उसका भी कर्ता समकिती नहीं। समझ में आया? क्योंकि दया, दान, व्रत अथवा देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा अथवा पंच महाव्रत के परिणाम या शास्त्र का पढ़ना—वह सब राग है। और राग का कर्ता हो, वह स्वभाव को नहीं जानकर विभाव का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। और उस मिथ्यादृष्टि को संसार में चार गति में दुःख में भटकना पड़ता है। जिसे सम्यग्दर्शन होता है... मोक्ष का पहला वह (सोपान) है न! और कहेंगे, यह आगे कहेंगे।

यहाँ तो पहले लिया है न कि जिसे समकित पहले हो, पश्चात् उसे स्वरूप में चारित्र की दशा होती है। सम्यग्दर्शन ही जहाँ नहीं, आत्मा का अनुभव (नहीं), जहाँ अभी अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद ही आया नहीं, उसे चारित्रदशा होती नहीं और चारित्र बिना पूर्ण मुक्ति की दशा, आनन्द की दशा प्रगट नहीं होती। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, **इहि विधि जे पूरन भये...** ऊपर कहा था न ५० में? सूक्ष्म बात है, भाई! एक रजकण—परमाणु की क्रिया जड़ की होती है, उसका कर्ता आत्मा नहीं। आत्मा उसे—हाथ को हिला सकता नहीं। वाणी बोल सकता नहीं, हाथ हिला सकता नहीं और राग

होता है, उसका वह कर्ता धर्मी नहीं। आत्मा कर्ता नहीं अर्थात् कि आत्मा का जाननेवाला (धर्मी) कर्ता नहीं। आहाहा!

आत्मा तो ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसमें तो, पुण्य और पाप जो दया, दान, व्रत, भक्ति अथवा व्यवहार श्रद्धा या पंच महाव्रत, ऐसा राग है, वह तो राग है, उसका तो उसमें—आत्मा में अभाव है। परसों के दिन से हिन्दी चलेगा, हों! यह तो अभी दो दिन अधिक है न। एक दिन है कल। हिन्दी थोड़े आवे न, अधिक आवे। हिन्दी बहुत आये नहीं। जिसे मोक्ष अर्थात् सिद्ध परमात्मदशा, ऐसा जिसे अन्तर में माहात्म्य आया, वह तो सिद्धस्वरूप स्वयं है, उसका उसे माहात्म्य आया। सम्यग्दर्शन में... 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है न वह? 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मैं तो सिद्ध समान पूर्ण ज्ञान, दर्शन और शान्ति से भरपूर पदार्थ हूँ। ऐसा जहाँ अन्तर में स्व-स्वभाव-सन्मुख होकर प्रतीति और अनुभव होता है, उसे सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है, चौथे गुणस्थान में। कान्तिभाई!

समकित ऐसा नहीं (कि) देव, गुरु, शास्त्र को माना, नौ तत्त्व को माना, छह द्रव्य को माना, इसलिए समकित।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा ही अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है। समकित अर्थात् क्या? सम्यग्दर्शन, चौथा गुणस्थान। देखो, समकित की व्याख्या की थी न संक्षिप्त, श्रीमद् में व्याख्या आती है। 'सर्व गुणांश, वह समकित।' अपने आता है उसमें। ज्ञानादि अनन्त गुण का एक अंश निर्मलरूप से प्रगट हो, उसने पूरे आत्मा को आनन्दमूर्ति है, ऐसा प्रसिद्ध किया है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी साथ में होता है। लोगों को, समकित किसे कहना और कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती और सीधे व्रत, नियम और तपस्या ले लिये। ऐकड़ा शून्य बिना का है। अर्थात् कि शून्य पहले करे और फिर ऐकड़ा करे। आहाहा!

यह तो कहा नहीं? छहढाला में आया नहीं वह? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' नौवें ग्रैवेयक गया। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार पाले, व्रत में दोष न लगने दे। सम्यग्दर्शन के भान

बिना वह चार गति में भटकने का कारण हुआ। इसलिए यहाँ कहते हैं, **इह विधि...** यहाँ तो विधि शब्द पहला पड़ा है न! जिसे प्रथम धर्मदशा प्रगट होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर और सम्यग्ज्ञान का अंकुर फूटने पर उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द और अनन्तानुबन्धी के अभाव की शान्ति वहाँ होती है। आहाहा! समझ में आया? उस शान्ति और आनन्द के स्वाद को आगे बढ़ाते हुए पाँचवें गुणस्थान में विशेष शान्ति, आनन्द, छठवें में उससे विशेष शान्ति, आनन्द; सातवें में उससे विशेष शान्ति, आनन्द। ऐसा करते हुए बारहवें में शान्ति-चारित्र की पूर्ण दशा और आनन्द का पूर्ण प्रगट होना। अनन्त ज्ञान—केवलज्ञान होने पर अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द ऐसी दशा प्रगट होती है, उसे उस विधि से होती है, इस रीति से।

इस पद्धति के अतिरिक्त दूसरी करने जाये (कि) पहले व्रत पाले लें और महाव्रत करें और फिर होगा, वह सब मिथ्यादृष्टि, राग की क्रिया करने से धर्म होगा, ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। कहो, समझ में आया? इसलिए **इह विधि...** कल कहा था न? **जहां प्रमाद किया नहि कोई। जे समकिती जीव समचेती, तिनकी कथा कहौं तुमसेती...** आगे बढ़कर आत्मा का अनुभव होने पर शान्ति और आनन्द आता है। अनन्त काल में नहीं आयी हुई ऐसी शान्ति और आनन्द आता है। आगे बढ़ने पर प्रमाददशा में छठवें गुणस्थान में हो, तब जो कुछ महाव्रत आदि के परिणाम हैं, वे दुःखरूप और अनाचार है। समझ में आया? परन्तु जो रागरहित आत्मा के आनन्द का आश्रय लेकर शान्ति और अविकारी परिणाम उग्ररूप से प्रगट हुए हैं, उसे चारित्रदशा कहा जाता है। चारित्र, कोई पंच महाव्रत की क्रिया और देह का नग्नपना, वह चारित्र-फारित्र नहीं है। समझ में आया?

इहि विधि पूरन भये... यहाँ यह कहना है न उसमें से? **बंधछेदात्**। क्रम-क्रम से पहले मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का छेद किया और स्वभाव का समकित और स्वरूप की स्थिरता की। पश्चात् अव्रत का नाश हुआ और स्वरूप की शान्ति और आनन्द की वृद्धि हुई। पश्चात् बुद्धिपूर्वक जो राग था, उसे छोड़कर स्थिरता हुई। पश्चात् अबुद्धिपूर्वक राग था, उसे छोड़कर स्थिरता हुई। यह मोक्ष होने का क्रम है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से करने जाये (तो) धर्म नहीं होगा और मुक्ति नहीं होगी

उसे। इसलिए **इहि विधि पूरन भये...** ऐसा। इस विधि द्वारा जिसने आत्मा की पूर्ण दशा प्रगट की। **अष्ट करम वन दाहि...** आठ कर्मरूपी वन को जला डाला है उसने। समझ में आया?

तिन्हकी महिमा जो लखै... ऐसे सिद्ध भगवान की महिमा जिसकी दृष्टि में आयी हो, वह समकिती को ही आती है। क्योंकि सिद्धस्वरूप जैसा आत्मा का अनुभव होता है, तब उसे ज्ञात होता है कि ओहो! मेरा आत्मा सिद्ध समान है। ऐसा अनुभव में आया। ऐसी जिसे पूर्ण दशा प्रगट है, ऐसे सिद्ध भगवान का उसे—समकिती को माहात्म्य होता है। समझ में आया? **तिन्हकी महिमा जो लखै...** ऐसे सिद्ध भगवान की महिमा जो लखे अर्थात् जाने। **नमे बनारसि तांहि...** आहाहा! बनारसीदास कहते हैं, ओहोहो! मैं उन्हें नमन करता हूँ। है न अन्दर? देखो न! **जो इस रीति से अष्टकर्म का वन जलाकर परिपूर्ण हुए हैं, उनकी महिमा को जो जानता है, उसे पंडित बनारसीदास नमस्कार करते हैं।** अब मोक्ष प्राप्ति का क्रम। वापस उठाया विशेष।

★ ★ ★

काव्य - ५२

मोक्ष प्राप्ति का क्रम

(छप्पय छंद)

भयौ सुद्ध अंकूर,
गयौ मिथ्यात मूर नसि।
क्रम क्रम होत उदोत,
सहज जिम सुकल पक्ष ससि।।
केवल रूप प्रकासि,
भासि सुख रासि धरम ध्रुव।
करि पूरन थिति आउ,
त्यागि गत लाभ परम हुव।।

इह विधि अनन्य प्रभुता धरत,
प्रगटि बूंदि सागर थयौ।
अविचल अखंड अनुभय अखय,
जीव दरब जग मंहि जयौ।।५२।।

शब्दार्थ:-अंकूर (अंकुर)=पौधा। मूर (मूल)=जड़ से। सुकल पक्ष ससि (शुक्ल पक्ष शशि)=उजेले पक्ष का चन्द्रमा। अनन्य=जिसके समान दूसरा नहीं - सर्व श्रेष्ठ।

अर्थ:-शुद्धता का अंकुर प्रगट हुआ, मिथ्यात्व जड़ से हट गया, शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान क्रमश: ज्ञान का उदय बढ़ा, केवलज्ञान का प्रकाश हुआ, आत्मा का नित्य और पूर्ण आनन्दमय स्वभाव भासने लगा, मनुष्य आयु और कर्म की स्थिति पूर्ण हुई, मनुष्यगति का अभाव हुआ और पूर्ण परमात्मा बना। इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ महिमा प्राप्त करके पानी की बूंद से समुद्र होने के समान अविचल, अखण्ड, निर्भय और अक्षय जीवपदार्थ, संसार में जयवन्त हुआ।।५२।।

काव्य-५२ पर प्रवचन

भयौ सुद्ध अंकूर,
गयौ मिथ्यात मूर नसि।
क्रम क्रम होत उदोत,
सहज जिम सुकल पक्ष ससि।।
केवल रूप प्रकासि,
भासि सुख रासि धरम ध्रुव।
करि पूरन थिति आउ,
त्यागि गत लाभ परम हुव।।
इह विधि अनन्य प्रभुता धरत,
प्रगटि बूंदि सागर थयौ।
अविचल अखंड अनुभय अखय,
जीव दरब जग मंहि जयौ।।५२।।

अनुभय है न। भय रहित है। अनुभय शब्द से भयरहित, ऐसा। अनु इसलिए डाला है।

क्या कहते हैं? **भयौ सुद्ध अंकूर...** शुद्धता का अकुर प्रगट हुआ। जो शुभ और अशुभ परिणाम—दोनों अशुद्ध और मलिन हैं। चाहे तो पंच महाव्रत के परिणाम हों, दया-दान के हों, पूजा-भक्ति के हों। परन्तु वह शुभभाव है, वह अशुद्ध और मलिन है। उससे जिसे शुद्ध सच्चिदानन्द आत्मा निर्मलानन्द प्रभु की दृष्टि करके अनुभव हुआ, उसे **भयौ सुद्ध अंकूर...** शुद्ध अंकुर प्रगट हुआ। उस अंकुर में से केवलज्ञान होनेवाला है और पूर्ण होनेवाला है, ऐसा कहते हैं। संवर, निर्जरा—दोनों। चौथे गुणस्थान में शुभ-अशुभ राग से भिन्न अपना निर्मलानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव होने पर वहाँ संवर-निर्जरा और सम्यक्त्व और अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट होती है, उसे—समकिती को चौथा गुणस्थान कहते हैं। समझ में आया?

भयौ सुद्ध अंकूर... शुद्ध शब्द प्रयोग किया है न? शुभ और अशुभभाव तो सब अशुद्ध है। वह तो अनादि से करता है और अनादि से सेवन किया है। अशुद्धता का सेवन, वही मिथ्यात्वभाव है। शुद्ध चैतन्यमूर्ति का सेवन, उसका अनुभव और एकाग्रता, उसमें शुद्धता का अंकुर उत्पन्न हुआ, उसका नाम समकितदर्शन और धर्म और मोक्ष के मार्ग का अंकुर फूटा। आहाहा! समझ में आया? **भयौ सुद्ध अंकूर, गयौ मिथ्यात मूर नसि...** उसकी भ्रमणा तो जड़ में से (समूल) गयी। आहाहा! जड़मूल में से गयी भ्रमणा—मिथ्यात्व। है न? **मिथ्यात्व जड़ से हट गया।** सूक्ष्म भी अन्दर गुण-गुणी के भेद का जो विकल्प, वह भी राग और शुभ और पुण्यबन्धन है। उससे मुझे लाभ होगा—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... सम्यग्दर्शन में मूल में से मिथ्यात्व का नाश हो गया। समझ में आया?

क्रम क्रम होत उदोत... आत्मा का अनुभव होकर क्रम-क्रम से आगे बढ़ते हुए **होत उद्योत...** किसकी भाँति? **सहज जिम सुकल पक्ष ससि...** शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा, जैसे दूज के पश्चात् तीज, चौथ, पंचम, ऐसे प्रकाश बढ़ता जाता है। उसी प्रकार धर्मी को प्रथम धर्म की शुद्धता का अंकुर-दूज फूटती है। शान्तिभाई! भारी कठिन काम! यह सब ऐसा बाहर में खतौनी कर डाला है न? पंच महाव्रत पालन करो, यह ऐसा है और करते-करते शुद्ध होगा। मिथ्यात्वभाव का सेवन करनेवाला है। समझ में आया? यहाँ

तो **भयौ सुद्ध अंकूर...** भयौ और गयौ। **भयौ सुद्ध अंकूर, गयौ मिथ्यात मूर नसि...** भाषा है न वापस कवि की। भयौ और गयौ। शुद्ध पर्याय उत्पन्न हुई और मिथ्यात्व पर्याय का व्यय हो गया और क्रम-क्रम से चौथे गुणस्थान से जो द्रव्य का आश्रय है, उससे पाँचवें में द्रव्य का आश्रय विशेष हुआ। त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव का आश्रय बढ़ा, वह बढ़ते हुए क्रम... क्रम... क्रम से उद्योत हुआ।

सहज जिम सुकल पक्ष ससि... वापस ऐसा कि हठ से नहीं वहाँ। जैसे शुक्ल पक्ष का चन्द्र सहजरूप से दूज, तीज, चौथ, पंचम और पूर्णिमा होकर रहता है। उसी प्रकार धर्मी जीव को अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप के अनुभव से आगे बढ़ते हुए क्रम-क्रम से शुद्धता सहजरूप से बढ़ जाती है। आगे बढ़कर वे पंच महाव्रत के परिणाम किये, इसलिए सहजपना, शुद्धपना बढ़ता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? भारी कठिन काम भाई! लोगों को यह गले उतरना—बैठना ऐसा कठिन। बाहर में मानकर बैठा कि यह करना है। पहले व्यवहार चाहिए और व्यवहार से निश्चय होगा। परन्तु व्यवहार है ही कहाँ? निश्चयरहित व्यवहार हो सकता ही नहीं। समझ में आया? कान्तिभाई! मार्ग ऐसा है। आहाहा!

व्यवहार तो जहर है, यहाँ तो (ऐसा) कहते हैं। जितना व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और पंच महाव्रत के परिणाम—यह सब जहर है, राग है, आस्रव है, भावबन्ध है। उससे हटकर जिसने आत्मा के अबन्धस्वभाव की दृष्टि की और अबन्धपरिणाम जिसने प्रगट किये, उसमें अनन्त गुणों के अंश उस समय में प्रगट होते हैं। तो ज्ञान सम्यक्, श्रद्धा सम्यक्, चारित्र का अंश चौथे गुणस्थान से स्वरूपाचरण का अंश और आनन्द का अंश और कर्ता-कर्म आदि शक्तियाँ जो आत्मा में अनन्त हैं, उन सबका निर्मल अंश प्रगट होता है। यह आगे **सहज जिम सुकल पक्ष ससि...** जैसे शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा स्वाभाविक बढ़ता है। वापस दृष्टान्त कैसा दिया है, देखो न! इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने अवलम्बन और आश्रय से सहज बढ़ जाता है। बाहर का क्रियाकाण्ड है, इसलिए अन्दर में बढ़ता है—ऐसा नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा!

केवल रूप प्रकासि,... लो। **केवल रूप प्रकासि,...** शुद्धता बढ़ती-बढ़ती जैसे

दूज पूर्णिमापने को प्राप्त होती है। दूज... पूनम होती है पूनम—पूर्णिमा। इसी प्रकार आत्मा पूर्णता को पाता है। वह शुद्धता के आश्रय से शुद्धता प्रगट होकर पूर्ण शुद्धता के आश्रय से पूर्णरूप से केवलज्ञान होता है। समझ में आया? **केवल रूप प्रकासि, भासि सुख रासि धरम ध्रुव...** लो। वहाँ तो ज्ञान का उदय हुआ। केवलज्ञान का प्रकाश हुआ। **आत्मा का नित्य और पूर्ण आनन्दमय स्वभाव भासने लगा।** अर्थात् पूर्ण हो गया, ऐसा। ज्ञान और आनन्द... केवलज्ञान में (अनन्त) ज्ञान, पूर्ण आनन्द, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य—चतुष्टय प्रगट हो गये। **करि पूरन थिति आउ...** ठेठ (तक) ले जाना है न अब।

करि पूरन थिति आउ... आठ कर्म है न... मूल तो यहाँ **बंधछेदात्।** फिर अघातिकर्म का भी नाश होकर स्थिति, आयु पूर्ण हो जाने पर **त्यागि गत लाभ परम हुव...** लो। **मनुष्य आयु और कर्म की स्थिति पूर्ण हुई।** मनुष्यगति का अभाव हुआ। **इह विधि अनन्य प्रभुता धरत...** अपना भगवान पूर्ण आनन्द और ज्ञान का धनी, वह अन्तर के अवलम्बन के क्रम-क्रम से जहाँ पूर्ण दशा प्रगट हुई, वहाँ पूर्ण प्रभुता प्रगट हुई। **इह विधि अनन्य प्रभुता धरत...** इस विधि से आत्मा स्वयं पूर्ण प्रभुता को धरण-धारण करता है। हिम्मतभाई! समझ में आया इसमें? यह सब सुधारा और वधारा और निमन्त्रण से कुछ होता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा? आहाहा! बड़ा अस्पताल बना देना। लाख, दो लाख, पाँच लाख। मेहनत करे पाप की। मैं पैसा इकट्ठे कर देता हूँ और पैसे से यह होता है—यह सब कर्ताबुद्धि का मिथ्यात्व है। कहो, समझ में आया?

जगत से पैसा इकट्ठा करके मैं पाठशाला चलाऊँ, उसका काम करूँ और दूसरे को सुधारूँ—यह भाव सब मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : तो फिर जगत सुधरे कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सुधरे? वह उससे सुधरता है। किससे सुधरता है? पर की पर्याय को मैं बनाऊँ, यह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! **इह विधि अनन्य प्रभुता धरत...** देखो, इस प्रकार मनुष्यगति का भी अभाव करके पूर्ण परमात्मा बना। 'सादि अनंत अनंत समाधि...' आनन्द जहाँ पूर्ण प्रगट हुआ... समाधि का अंश तो चौथे से प्रगट हुआ। वह पूर्ण वहाँ हो गया अनन्त। आहाहा! समझ में आया?

प्रगटि बूंदि सागर थयौ,... लो। यह अनुभव का अंकुर प्रगट हुआ था एक बिन्दु,

उसमें से सागर—केवलज्ञान प्रस्फुटित हुआ। **प्रगटि बूंदि...** लो। **पानी की बूंद से समुद्र होने के समान...** अन्तर में वस्तुस्वभाव में केवलज्ञान और अनन्त आनन्द पड़ा है। उसमें से अनुभव होने पर जो अंकुर फूटा, वह पानी के बिन्दुओं में से जैसे समुद्र हुआ, वैसे सम्यग्दर्शन में से सिद्धपद प्राप्त हुआ। समझ में आया? कैसा हुआ? **अविचल...** अपनी पूर्ण दशा केवलज्ञान और आनन्द होने पर चलित न हो, ऐसी दशा प्रगट हुई। आहाहा! **अखंड...** खण्ड नहीं जहाँ, पर्याय की पूर्णता प्रगट हो गयी सिद्धपद... **अनुभय...** अनुभय—भयरहित हो गया। **अखय...** अब क्षय नहीं होता। सिद्धपद हुआ वह हुआ। उसका उत्पाद हुआ, वह व्ययरहित हुआ। सिद्धपद हो, पश्चात् व्यय नहीं पाता, ऐसा कहते हैं। संसार का व्यय हुआ, वह फिर से उत्पाद पाता नहीं। आहाहा!

जीव द्रव्य जगमांहि जयौ... ओहो! अहो! ऐसा जीव पदार्थ संसार में जयवन्त हुआ। जिसे सम्यग्दर्शन होकर, आगे आनन्द की वृद्धि करके मुनिपद-चारित्र हुआ। चारित्र में आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन होता है, उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? बाह्य की नग्न क्रिया और पंच महाव्रत, वह कहीं चारित्र नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन बढ़ा, बढ़कर पूर्ण दशा हुई। अहो! जयवन्त हो। ऐसी दशा जयवन्त रहती है। पहला मांगलिक है न यह अन्तिम कलश का। जयवन्त हो वह जीवद्रव्य। गति हुई सिद्ध। यह गति न रही। गति हुई पूर्ण दशा, परन्तु वापस फिर से आगति (अर्थात्) वहाँ से निकलना उन्हें होता नहीं।

अष्ट कर्मों के नष्ट होने से अष्ट गुणों का प्रगट होना। लो। आठ कर्म। आठ कर्म थे निमित्तरूप से। वे आठ कर्म उसे नुकसान नहीं करते थे। जड़ परद्रव्य आत्मा को नुकसान नहीं कर सकता तीन काल, तीन लोक में। निमित्त का अर्थ? स्वयं हीन दशा करे, तब ज्ञानावरणीय को निमित्त कहा जाता है। ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा को हीन करता है, आवरण कर्म ज्ञान का नाश करता है—ऐसा तीन काल में नहीं है। ज्ञान की अपनी पर्याय हीनरूप स्वयं करे, तब ज्ञानावरणीय कर्म को निमित्त कहा जाता है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय। दर्शन का उपयोग हीन स्वयं उल्टा पुरुषार्थ करके करे, तब दर्शनावरणीय कर्म को निमित्त कहा जाता है। ऐसे सुख-दु:ख की कल्पना स्वयं करे, तब उसे वेदनीय कर्म का निमित्त कहा जाता है। उसके साथ मोह इकट्ठा है।

इसी प्रकार मिथ्यात्व और राग-द्वेष का अचारित्र आदिरूप से परिणमे, उसे दर्शनमोह और चारित्रमोह का कर्म निमित्त है। वह उसे कुछ कर देता है, कर्म आत्मा को हीन कर देता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसी प्रकार अन्तराय कर्म का नाश करके... स्वयं स्वरूप का लाभ नहीं लेता था, तब उसे लाभान्तराय का निमित्त कहा जाता था। स्वरूप का भोग नहीं करता था, तब स्वरूप के भोग के अभाव में निमित्त अन्तरायकर्म था। उसी तरह स्वरूप का बारम्बार ही अनुभव करना चाहिए, वह नहीं करता था, तब अन्तराय कर्म निमित्त कहा जाता है। कर्म आत्मा को कुछ भी नुकसान कर सकता है, यह वस्तु के स्वरूप में तीन काल—तीन लोक में नहीं है। ऐसी वस्तुस्थिति है। इस स्थिति को अनुभव में लेकर जिसने केवलज्ञान प्रगट किया, देखो!

★ ★ ★

काव्य - ५३

अष्ट कर्मों के नष्ट होने से अष्ट गुणों का प्रगट होना

(सवैया इकतीसा)

ग्यानावरनीकै गयैं जानियै जु है सु सब,
दर्सनावरनकै गयैतैं सब देखियै।
वेदनी करमके गयैतैं निराबाध सुख,
मोहनीके गयैं सुद्ध चारित विसेखियै।।
आउकर्म गयैं अवगाहना अटल होइ,
नामकर्म गयैतैं अमूरतीक पेखियै।
अगुरु अलघुरूप होत गोत्रकर्म गयैं,
अंतराय गयैतैं अनंत बल लेखियै।।५३।।

शब्दार्थः-निराबाध रस=साता-असाता के क्षोभ का अभाव। अटल अवगाहना= चारों गति के भ्रमण का अभाव। अमूर्तीक=चर्म चक्षुओं के अगोचर। अगुरु अलघु=न ऊँच न नीच।

अर्थः-ज्ञानावरणीयकर्म के अभाव से केवलज्ञान, दर्शनावरणीयकर्म के अभाव

से केवल दर्शन, वेदनीयकर्म के अभाव से निराबाधता, मोहनीयकर्म के अभाव से शुद्ध चारित्र, आयुकर्म के अभाव से अटल अवगाहना, नामकर्म के अभाव से अमूर्तीकता, गोत्रकर्म के अभाव से अगुरुलघुत्व और अन्तरायकर्म के नष्ट होने से अनन्त वीर्य प्रगट होता है। इस प्रकार सिद्ध भगवान में अष्ट कर्म रहित होने से अष्ट गुण होते हैं।।५३।।

काव्य-५३ पर प्रवचन

ग्यानावरनीकै गयैं जानियै जु है सु सब,
दर्सनावरनकै गयैतैं सब देखियै।
वेदनी करमके गयैतैं निराबाध सुख,
मोहनीके गयैं सुद्ध चारित विसेखियै॥

लो। चारित्र लिया, ऐई! सिद्ध में। है न चारित्र नहीं कहाँ? सम्पूर्ण चारित्र, शान्ति यथाख्यात, जैसा चारित्रस्वरूप है, वैसा पर्याय में प्रगट हो गया। चारित्र—रमणता, वह सिद्ध में भी है। आहाहा!

आउकर्म गयैं अवगाहना अटल होइ,
नामकर्म गयैतैं अमूरतीक पेखियै।
अगुरु अलघुरूप होत गोत्रकर्म गयैं,
अंतराय गयैतैं अनंत बल लेखियै॥

ज्ञानावरणीय कर्म के अभाव में केवलज्ञान प्रगट होता है। निमित्त है, उसकी बात करते है न। ज्ञानावरणीय... परन्तु वह तो पहले कहा न! क्रम से शुद्धता का आश्रय करते-करते उसने सिद्धपद प्राप्त किया। ऐसा तो पहले ऐसे उपादान से तो लिया। अब उसे निमित्तपना जो था... शुद्धपने का आश्रय करने से निमित्तपना जो था, वह छूट जाता है। वह कहीं आत्मा छोड़ता है, ऐसा है नहीं। जड़ को क्या छोड़े आत्मा? जड़ को बाँधे कौन? ले कौन? छोड़े कौन? वह तो जगत के स्वतन्त्र पदार्थ हैं। ज्ञानावरणीय का आत्मा नाश करे, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। परन्तु आत्मा के आनन्द और ज्ञान की पूर्णदशा होने पर, ज्ञानावरणीय कर्म उसके कारण से कर्मपर्याय छूटकर अकर्मदशा

होती है, उसे आत्मा ने ज्ञानावरणीय का नाश किया, ऐसा कहा जाता है। ऐसा है, बात तो ऐसी है। वस्तुस्थिति की खबर नहीं होती और ऊपर गड़बड़... गड़बड़ सब चलावे। वह वस्तु में चले नहीं।

जानिये सु सब,... लो। केवलज्ञान। तीन काल-तीन लोक की बात केवलज्ञान में ज्ञात होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुरुषार्थ कौनसा पुरुषार्थ? केवलज्ञान में ज्ञात हो, ऐसा हो जगत में, परन्तु ऐसा जाननेवाला, केवलज्ञान को माननेवाला किसे कहते हैं? कि जिसने अखण्ड आनन्दमूर्ति आत्मा ऐसी प्रतीति—अनुभव किया, उसने केवलज्ञान को माना। वही पुरुषार्थ है। समझ में आया? एक प्रश्न हुआ था वहाँ जयपुर। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया था वहाँ। क्रमबद्ध का कुछ कहो न। दिन थोड़े रह गये अब। क्रमबद्ध। जगत के पदार्थ की क्रमसर अवस्था जिस काल में होनेवाली हो, उस काल में हुआ ही करती है। परन्तु उसे माननेवाला? उससे माननेवाला कौन होता है? कि जिसकी दृष्टि निमित्त के ऊपर से हटकर, राग के ऊपर से हटकर, एक समय की पर्याय के ऊपर से हटकर, त्रिकाल ज्ञायकभाव पर दृष्टि पड़े अनुभव में आवे, तब उसे क्रमबद्ध का ज्ञान सच्चा कहलाता है।

बात तो की थी वहाँ। थे या नहीं तुम? एक व्यक्ति ने नहीं पूछा था बीच में? क्रमबद्ध का कहो। बात सच्ची है। कठिन बात है। यह बात ऐसी है। क्रमबद्ध में कर्तापने का नाश होता है, ज्ञातापना उत्पन्न होना है। क्रम-क्रम से जिस समय में जहाँ राग हो, उस राग का भी क्रमबद्ध को जाननेवाला उसका कर्ता नहीं होता। मैं किसी का कर दूँ और राग का करूँ, यह क्रमबद्ध के माननेवाले को, स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होने से कर्ता नहीं होता, उसे क्रमबद्ध का यथार्थ ज्ञान है। यह क्रमबद्ध... क्रमबद्ध किया करे और कर्तारूप से मैं कर दूँ और इसका कर दूँ—यह तो कर्ताबुद्धि है। वहाँ उसने क्रमबद्ध कहाँ माना? समझ में आया?

केवलज्ञान, **दर्शनावरणीय कर्म के अभाव से केवलदर्शन...** पुरुषार्थ से स्वयं जब स्वभाव का आश्रय लेकर पूर्ण दर्शन प्रगट किया, तब केवलदर्शनावरणीय का नाश

हुआ। वह उसके कारण से, कर्म की अवस्था पलटी कर्म के कारण से। आत्मा उसे पलटावे और नाश करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! अभी तो राग का आत्मा नाश करे, ऐसा आत्मा में नहीं। तो कर्म का नाश तो परद्रव्य है। उसका नाश करे और बाँधे, यह आत्मा में है नहीं। राग का आत्मा नाश करे, यह भी आत्मा में नहीं। कहो, समझ में आया? राग का परमार्थ से नाश करनेवाला हो तो राग के ऊपर उसकी दृष्टि है। उसमें रागवाला है, तो रागवाला था, ऐसा मानते हैं हम। रागवाला आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो रागरहित है। राग, वह तो आस्रवतत्त्व है और आत्मा ज्ञायकतत्त्व है। दो तत्त्व एक माने, वह तो मूढ़ है। आस्रव का कर्ता माने, इसका अर्थ कि दो तत्त्व को एक माना। बहुत सूक्ष्म! परन्तु सूक्ष्म पड़े न लोगों को। वहाँ पुकार किया था व्याख्यान में। वहाँ तो बहुत लोग।

यहाँ तो दर्शनावरणीय के कर्म के अभाव में केवलदर्शन, लो। वेदनीय के अभाव में निराबाधता। सिद्ध भगवान को निमित्तरूप से जो कर्म था, वह हट गया। सम्यग्दर्शन में आ गया। मोहनीय के अभाव में... दर्शनमोहनीय का अभाव किया, इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ। यहाँ चारित्र प्रगट किया, इसलिए चारित्रमोह का नाश हो गया। वह पुरुषार्थ से होता है। अपने स्वरूप में रमणता... आनन्द में रमणता, वह चारित्र है। वह रमणता हुई, इसलिए चारित्रमोह का नाश हुआ। उसमें एक ही (मोह) लिया चारित्र (मोह), लो। **आयुकर्म के अभाव से अटल अवगाहना...** टले नहीं, ऐसी अवगाहना। ऐसे के ऐसे रहें असंख्य प्रदेश। नामकर्म के अभाव से अमूर्तिकपना... पर्याय में प्रगट अमूर्तपना हो गया। गोत्रकर्म के अभाव से अगुरुलघुत्व... छोटा-बड़ा है नहीं। ऐसी दशा सिद्ध भगवान को प्रगट हुई।

सम्यग्दर्शन होने पर आठों कर्म के अंश का नाश हुआ है। कहो, समझ में आया इसमें? आठों ही कर्म के अंश का नाश है वहाँ। पूर्ण नाश सिद्ध में। आहाहा! **अंतराय कर्म के नष्ट होने से अनन्तवीर्य प्रगट होता है।** आत्मा का जो स्वरूप अनन्त पुरुषार्थ है अन्दर, उसे प्रगट करने से अनन्त वीर्य—पुरुषार्थ, अन्तर पुरुषार्थ के आश्रय से अनन्त पुरुषार्थ प्रगट हुआ। अन्तराय नाश हो गया। **अनंत बल लेखियै...** जानिये। **इस प्रकार सिद्ध भगवान में अष्ट कर्म रहित होने से अष्ट गुण होते हैं।** ऐसे तो अनन्त गुण हैं, परन्तु कर्म के निमित्त में जितने गुणों की पर्याय हीन थी, वह गयी और आठ गुण व्यवहार से

कहे। बाकी तो है अनन्त गुण निर्मल। निश्चय से तो अनन्त गुण हैं। नौंवे अधिकार का सार।

★ ★ ★

मोक्ष (नववें) अधिकार का सार

प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्रव बन्ध है और मिथ्यात्व का अभाव अर्थात् सम्यक्त्व, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष है और मोक्ष आत्मा का निजस्वभाव अर्थात् जीव की कर्ममल रहित अवस्था है। वास्तव में सोचा जावे तो मोक्ष होता ही नहीं है, क्योंकि निश्चयनय में जीव बँधा हुआ नहीं है–अबन्ध है, और जब अबन्ध है, तब छूटेगा ही क्या? जीव मोक्ष हुआ यह कथन व्यवहार मात्र है, नहीं तो वह हमेशा मोक्षरूप ही है।

मोक्षद्वार के सार पर प्रवचन

प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्रव बन्ध है। जाहिर हो (कि) पुण्य के परिणाम, शुभराग, वह धर्म है और धर्म का कारण है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वही आस्रव और बन्ध है। समझ में आया? प्रगट प्रसिद्ध हो, उसमें ऐसा है गुजराती में, नहीं? गुजराती में ऐसा है—जाहेर हो। यह तो हिन्दी है न? गुजराती कहाँ है? यह तो हिन्दी ही है। **प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्रव बन्ध है।** यहाँ तो शब्द की विशिष्टता क्या है? कि **मिथ्यात्व ही आस्रव बन्ध है।** अव्रत, प्रमाद और कषाय को यहाँ गिनने में आया नहीं। वह तो साधारण बात है। अनन्तवें भाग का वह पाप है। मिथ्यात्व, वह महापाप है। जिसमें कसाईखाना खोलने के पाप से भी अनन्तगुना पाप है। ... क्या करे?

हम तो व्यवहार भी अच्छा करते हैं। व्यवहार था कब? सम्यग्दर्शन बिना व्यवहार होता ही नहीं। सम्यग्दर्शन अर्थात् एक भी रजकण और राग की क्रिया का मैं कर्ता नहीं और राग तथा जड़ की क्रिया का कर्ता हो, वह मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व आस्रव और बन्ध है। आहाहा! शुभभाव का कर्ता हो, वह मिथ्यात्व है, वही आस्रव और बन्ध है,

ऐसा कहते हैं। लोगों को बाहर में ऐसी महिमा घुस गयी है न बाहर की कि हम व्यवहार भी पालते हैं और निश्चय भी रखते हैं, यह हमारा अनेकान्त है। धूल भी अनेकान्त नहीं। व्यवहार पालते हैं। व्यवहार को पालना है इसे। व्यवहार अर्थात् राग और राग अर्थात् शुभभाव, उसे पालना है, रखना है, वही मिथ्यात्वभाव है। (मुमुक्षु : राग रखकर बड़ा किया।)

मार्ग वह तो वीतरागमार्ग वीतरागभाव से शुरु होता है। राग के भाव से मार्ग शुरु हो, वह वीतरागमार्ग नहीं। वह मिथ्यादृष्टि का मार्ग है। समझ में आया? प्रगट हो! अपने समयसार नाटक कुछ गुजराती में नहीं न? मिथ्यात्व 'ही'... 'ही' कहा है। एकान्त नहीं हो जाता होगा? आहाहा! भगवान ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव, अनन्त जिसमें जानना और देखना और आनन्द भरा है। उसे भूलकर जो कोई क्रियाकाण्ड में बन्धन होता है, क्रियाकाण्ड में स्वामित्वपना मनाया जाता है—वह सब मिथ्यात्वभाव और आस्रव और बन्ध का कारण है। फिर भले वह व्रत पालता हो, महाव्रत, ब्रह्मचर्य पालता हो शरीर से आजीवन। समझ में आया?

जिसे शुभभाव के ऊपर रुचि है और शुद्धस्वरूप भगवान में जिसकी रुचि नहीं। यहाँ रुचि है तो यहाँ नहीं। किसी से मुझे लाभ होगा, ऐसी मैं चीज़ नहीं, तथा दूसरे को मैं कुछ लाभ प्राप्त कराऊँ, ऐसी मैं चीज़ नहीं। कहो, समझ में आया? मुझे कोई नुकसान कर सके, ऐसा मैं नहीं, तथा दूसरे को नुकसान कर सकूँ, ऐसा मैं नहीं। ऐसा जो... नुकसान कर सकूँ पर को और पर से मुझमें नुकसान हो और पर को मैं लाभ दे सकूँ—यह (मान्यता) मिथ्यात्वभाव है। यह मिथ्यात्व, वह आस्रव और बन्ध है। आहाहा! कहो, यह वीतरागमार्ग के सिवाय अन्यत्र होगा यह? विश्वधर्म... विश्वधर्म की जय। विश्वधर्म कौन सा? यह तो वीतरागमार्ग है, वह विश्वधर्म है। दुनिया माने अनेक प्रकार का, वह विश्वधर्म नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : न करे तो कुछ नहीं। कहता है एक व्यक्ति, 'णमो लोए सव्वसाहूणं।' है न एक सुशील स्थानकवासी दिल्ली। 'णमो लोए सव्वसाहूणं।' वहाँ कहाँ कहा है कि जैन के साधु को नमस्कार करना? परन्तु सम्यग्दर्शन बिना कोई साधु

हो सकता नहीं तीन काल में। जैन अर्थात् तो वस्तु का स्वरूप है। 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही करम; ये ही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मरम।' आत्मा जिनस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा है, उसमें उसे राग कैसा? व्यवहार कैसा उसे? ऐसा जो वीतराग स्वभाव आत्मा का... ऐसा स्वभाव है तो वीतरागपर्याय प्रगट हुई। कहीं बाहर से आती है वह? ऐसा स्वभाव वीतरागमार्ग में ही होता है। अन्य में वह हो सकता नहीं।

प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही आस्त्रव बन्ध है। एकान्त हो जाता है, 'ही' कहने से। बन्ध के कारण तो पाँच गिने हैं न शास्त्र में? नहीं आता? मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग। मुख्य बन्ध का कारण तो मिथ्यात्व ही आस्त्रव और बन्ध है। वे सब चार कारण तो बाद में गौण हैं। गर्भित में थोड़े हैं। समझ में आया? और **और मिथ्यात्व का अभाव (अर्थात्) सम्यक्त्व, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष है।** मिथ्यात्व का नाश होने पर समकितरूपी संवरदशा और संवरपूर्वक शुद्धता के कारण से अशुद्धता का नाश होता है और पूर्ण शुद्धता होने से मोक्ष होता है। समकित, संवर-निर्जरा और मोक्ष है। क्या कहा? समकित स्वयं संवर-निर्जरा और मोक्ष है, ऐसा कहते हैं। जैसे मिथ्यात्व है, वह आस्त्रव और बन्ध है, (तथा) समकित स्वयं संवर-निर्जरा और मोक्ष है। समझ में आया?

और मोक्ष आत्मा का निज स्वभाव... मोक्ष तो आत्मा का निज स्वभाव है। **अर्थात् जीव की कर्ममलरहित अवस्था है।** मोक्ष तो कर्ममलरहित आत्मा की निर्मल पूर्ण दशा, वह मोक्ष है। **वास्तव में सोचा जावे तो मोक्ष होता ही नहीं क्योंकि निश्चयनय में जीव बँधा हुआ नहीं है।** निश्चयदृष्टि से बँधा हुआ हो तब तो आत्मा का अभाव हो जाये। निश्चय से तो अबन्धस्वरूप भगवान त्रिकाल मुक्तस्वरूप है। पर्याय में राग का बन्धन और पर्याय में राग का अभाव, वह मुक्ति है। वस्तु में बन्ध और मुक्ति है नहीं। आहाहा! भारी कमाल! ऐ दीपचन्दजी! यहाँ इनकार करते हैं, देखो। **निश्चयनय में जीव बँधा हुआ नहीं है।** बन्ध। राग का कहना वह तो व्यवहारनय है और राग का अभाव करना और मुक्ति होना, वह भी व्यवहार है। क्योंकि सिद्ध पर्याय स्वयं व्यवहार है। बन्धन का भाव राग है। (वस्तु में) रागबन्ध का अभाव है, जड़ का बन्धन नहीं। राग का विकल्प का बन्धन, वह भी व्यवहार है, पर्याय में है वह। वस्तु में कहाँ है? भारी कठिन काम!

निश्चयनय में जीव बँधा हुआ नहीं है-अबन्ध है, और जब अबन्ध है, तब छूटेगा ही क्या ? परमात्मप्रकाश में बहुत लिया है। **जीव का मोक्ष हुआ, यह कथन व्यवहारमात्र है।** वह मोक्षस्वरूप ही है भगवान आत्मा। पूर्णानन्द का नाथ मुक्तस्वरूप है। उसका आश्रय करने से पर्याय में मोक्ष होता है, वह तो व्यवहार है। पर्याय स्वयं व्यवहार है। समझ में आया ? गजब ! **जब अबन्ध है, तो छूटेगा ही क्या ? जीव मोक्ष हुआ यह कथन व्यवहारमात्र है। नहीं तो वह हमेशा मोक्षरूप ही है।** आहाहा ! यह बात !

श्रीमद् में भी आता है न ? दिगम्बर आचार्यों ने... नहीं आया ?

मुमुक्षु : मोक्ष समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष समझ में आता है, मोक्ष होता नहीं। है न ? कितने पृष्ठ पर है ? इसमें होगा। यह बात तो बहुत बार हो गयी है। याद नहीं ? यहाँ है। ८०वाँ बोल। ३२वें वर्ष में। है ? 'अमुक आचार्य ऐसा कहते हैं कि दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष होता नहीं...' श्रीमद् राजचन्द्र। वस्तुस्वरूप... दिगम्बर आचार्य ऐसा मानते हैं। देखो, क्या लिखा है ?

'अमुक आचार्य ऐसा कहते हैं कि दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है... यह तो निश्चय सिद्ध है। कि जीव का मोक्ष होता नहीं परन्तु मोक्ष समझ में आता है। वह इस प्रकार से कि जीव शुद्धस्वरूपी है। उसे बन्ध हुआ नहीं तो फिर मोक्ष होनापना कहाँ रहता है ? परन्तु इसने माना हुआ है कि मैं बँधा हुआ हूँ, वह माननापना विचार द्वारा समझ में आता है कि मुझे बन्धन नहीं। मात्र माना था, वह माननापना शुद्धस्वरूप समझने से रहता नहीं अर्थात् मोक्ष समझ में आता है। यह बात शुद्धनय की अथवा निश्चयनय की है। पर्यायार्थी नयवाले इस नय को लगकर आचरण करे तो उसे भटक मरने का है।' पर्याय से मुक्ति कहाँ है ? वस्तु तो वस्तु है। निश्चयनय से मुक्ति है। निश्चय से जो मुक्तस्वरूप है, उसका आश्रय करके जो मुक्त पर्याय होती है, वह तो व्यवहार है, पर्यायनय से। सूक्ष्म बात सूक्ष्म ! ८०वाँ बोल है। ३२, ३२ वर्ष। ३२वें वर्ष में।

यही यहाँ कहा, देखो न ! **जीव का मोक्ष हुआ, यह कथन व्यवहारमात्र है।**

भगवान विकल्प के व्यवहार से रहित त्रिकाली स्वरूप है। आया नहीं १४-१५ में? '**जो पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतम्।**' जो आत्मा को अबद्ध और अस्पृष्ट देखे, उसने जैनशासन देखा। अबद्ध कहो या मुक्त कहो। अबद्धस्पृष्ट आत्मा को जिसने देखा, माना, अनुभव किया, वह जैनशासन है। बहुत कठिन काम! लोगों को व्यवहार का पक्ष इतना घुस गया है कि उसमें से निकलना उन्हें ऐसा कठिन पड़ता है। ऐसा पालना चाहिए और ऐसा करना चाहिए। वरना एकान्त हो जाता है। क्या करे? पूर्णानन्द प्रभु... परमात्मप्रकाश में लिया है कि व्यवहार से बन्ध और व्यवहार से मुक्ति है, निश्चय में बन्ध-मुक्ति है नहीं। बन्धा हुआ न हो, उसे कहना 'बन्धा हुआ है' यह तो गाली है, कहते हैं। भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु वस्तुस्वभाव से तो मुक्त ही है। उसका अवलम्बन लेकर जो मुक्त पर्याय प्रगट हो, वह व्यवहार है। आहाहा! पर्याय है न वह? त्रिकाल वस्तु निश्चय है। यह बात फिर विशेष कहेंगे, लो। आगे विशेष बात लेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११६, श्रावण शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक २६-०७-१९७१
मोक्षद्वार का सार

मोक्ष (नववें) अधिकार का सार

यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि जो मनुष्य दूसरों के धन पर अपना अधिकार जमाता है, उस मूर्ख को लोक अन्यायी कहते हैं। यदि वह अपनी ही सम्पत्ति का उपयोग करता है, तो लोग उसे न्यायशील कहते हैं, इसी प्रकार जब आत्मा परद्रव्यों में अहंकार करता है, तब वह अज्ञानी मिथ्यात्वी होता है, और जब ऐसी बुरी आदत को छोड़कर आध्यात्मिक विद्या का अभ्यास करता है तथा आत्मीक रस का स्वाद लेता है, तब प्रमाद का पतन करके पुण्य-पाप का भेद हटा देता है और क्षपकश्रेणी चढ़कर केवली भगवान बनता है, पश्चात् थोड़े ही समय में अष्ट कर्मरहित और अष्ट गुणसहित सिद्ध पद को प्राप्त होता है।

मुख्य अभिप्राय ममता हटाने और समता सम्हालने का है। जिस प्रकार कि सुनार के प्रसंग से सोने की नाना अवस्थाएँ होती हैं, परन्तु उसकी सुवर्णता कहीं नहीं चली जाती। जलाने से फिर सुवर्ण का सुवर्ण ही बना रहता है; उसी प्रकार यह जीवात्मा अनात्मा के संसर्ग से अनेक वेश धारण करता है, परन्तु उसकी चैतन्यता कहीं चली नहीं जाती है - वह तो ब्रह्म ही बना रहता है। इसलिए शरीर से मिथ्या अभिमान हटाकर आत्मसत्ता और अनात्मसत्ता का पृथक्करण करना चाहिए। ऐसा करने से थोड़े ही समय में आधुनिक बूंद मात्र ज्ञान स्वल्प काल ही में समुद्ररूप परिणमन करता है और अविचल अखण्ड अक्षय अनभय और शुद्ध स्वरूप होता है।

मोक्षद्वार के सार पर प्रवचन

यह समयसार नाटक है। मोक्षद्वार अधिकार पूरा हुआ। नौवें अधिकार का सार और उसमें सार। पहला पेरेग्राफ आ गया है। फिर से लो। कल सेठ नहीं थे? शाम को आये न तुम? शाम को आये न तुम? नौवें अधिकार का सार। कल थोड़ा चल गया है। पाँच लाईन। फिर से लेते हैं।

मोक्ष अधिकार है। **प्रगट हो कि मिथ्यात्व ही** (संसार) **आस्रव बन्ध है।** प्रसिद्ध हो और प्रगट हो कि आत्मा में जो पुण्य, पाप और मिथ्यात्वभाव है, वही आस्रव है, वही बन्ध है, वही संसार है। समझ में आया? प्रगट हो, जाहेर है, प्रसिद्ध हो कि मिथ्यात्व ही (संसार है)। आत्मा आनन्दस्वरूप ध्रुव चैतन्य है, उसका आश्रय लिये बिना, निमित्त का आश्रय और पुण्य-पाप के विकल्प का आश्रय करना, वह मिथ्यात्वभाव है। वह मिथ्यात्व ही विकार है, आस्रव है, बन्ध है, संसार है।

और मिथ्यात्व का अभाव... (अर्थात्) पर्यायदृष्टि का अभाव, दूसरी रीति से कहें तो। दया-दान-व्रत आदि शुभाशुभ परिणाम, उसकी रुचि, निमित्त की रुचि और एक समय की पर्याय-अंश की रुचि, वह मिथ्यात्वभाव है। शुद्धपर्याय कहाँ निश्चय है? हो तो भी उसकी रुचि नहीं। अरे, समकिती को शुद्धपर्याय होती है, (परन्तु) उसकी रुचि नहीं है; रुचि द्रव्य की है। वस्तु सूक्ष्म है, भाई! निर्मल पर्याय प्रगट हो तो भी निश्चय से तो उसे परद्रव्य कहा गया है। पण्डितजी! आहाहा!

कहते हैं कि निमित्त संयोग चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो अथवा स्त्री-कुटुम्ब-परिवार हो अथवा सम्मेदशिखर या शत्रुंजय हो, उसकी रुचि और राग, दया, दान, व्रत आदि परिणाम हैं, उसकी रुचि और एक समय की पर्याय जो प्रगट है, वह अंश है उसकी रुचि—वही संसार, वही मिथ्यात्व, वही आस्रव, वही बन्ध। आहाहा! पर्याय तो निश्चय है नहीं, परन्तु (निर्मल पर्याय) हो तो भी उसकी रुचि नहीं। रुचि तो द्रव्य की होनी चाहिए, जिसमें (शक्ति की) खान पड़ी है। आहाहा! क्यों, पूनमचन्दजी! क्या यह जैन के अतिरिक्त दूसरे में होगा कहीं? उनके गाँव में कहाँ होगा? आहाहा!

अरे, सुन भाई! परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा ने एक समय में जो तीन काल-तीन लोक देखा-जाना, उसमें आत्मा एक समय में त्रिकाल आनन्दकन्द ऐसा देखा—देखने में आया। ऐसी चीज़ सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी को देखने में आती नहीं। तो सर्वज्ञ ने कहा हुआ आगम, वही प्रमाण और वाणी, वही प्रमाण है। इसके अतिरिक्त अज्ञानी की वाणी, अज्ञानी की दलील और कथन, वह सब प्रमाण नहीं है। समझ में आया?

परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर प्रभु जिन्होंने ऐसा कहा... आगम में कहो या उनके

ज्ञान में आया या वाणी में (आया) कि भाई! मिथ्यात्व, वही संसार, आस्रव और बन्ध है। एक समय की पर्याय की अंशबुद्धि, राग की रुचि, निमित्त की रुचि, मैत्री—निमित्त की मैत्री, राग की मैत्री और एक समय की (पर्याय की) रुचि—मैत्री एक द्रव्य साथ में—वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? देवीलालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागता की रुचि... वीतरागता प्रगट करने में रुचि तो द्रव्य की है। पर्याय की रुचि कहाँ आयी?

मुमुक्षु : रुचि नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। यह तो प्रगट होता है। परन्तु प्रगट किसके आश्रय से होता है? क्या वीतरागी पर्याय से वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है? सम्यग्दर्शन की पर्याय, त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की रुचि करने से, अनुभव से हुई। परन्तु क्या सम्यग्दर्शन की पर्याय में से चारित्र पर्याय आती है? वह दृष्टि का विषय तो अभेद ध्रुव ही है। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन आनन्दघन, उसका विश्वास नहीं है और यह विश्वास है कि शरीर मेरा है, वाणी मेरी है, राग मेरा है और एक समय का अंश ही मैं हूँ। आहाहा! वही मिथ्यात्वभाव, वही आस्रवभाव, वही बन्धभाव, वही संसारभाव है। आहाहा! ऐसी बात परमात्मा वीतरागी सर्वज्ञदेव के अतिरिक्त कहीं होती नहीं। आहाहा!

जाहेर हो, प्रगट हो.... 'मिथ्यात्व ही' ऐसा शब्द प्रयोग किया है न! एकान्त नहीं हो जाता? मिथ्यात्व ही संसार है? और दूसरे बन्ध के कारण अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग—चार हैं, क्या वह संसार नहीं? मिथ्यात्व ही संसार, आस्रव और बन्ध है? अव्रत और प्रमाद, कषाय, योग, वह आस्रव नहीं? ऐसे तो ऐसा (-एकान्त) हो गया उसमें तो? पण्डितजी! वह तो अल्प आस्रव है, उसकी कोई गिनती (नहीं)। अनन्त संसार का आस्रव तो होनेवाला मिथ्यात्वभाव ही है। वह मिथ्यात्व ही... 'ही' कहा है, देखो! वही दुःख है, वही आस्रव है, वही बन्ध है, वही संसार है।

और मिथ्यात्व का अभाव... वह एक समय की पर्याय की रुचि और राग की रुचि छोड़कर सम्यक् त्रिकाली भगवान आत्मा... सम्यग्दर्शन तो, सम्यक् त्रिकाली स्वभाव सम्यक् सत् है, उसका अनुभव और प्रतीति होना, वह मिथ्यात्व का अभाव है। उस मिथ्यात्व का अभाव, वह समकित। कहो, समझ में आया? यह समकित, संवर-निर्जरा और मोक्ष है। तीन लिये। उसमें दो लिये थे। वह तो ऊपर से तीन डाले— आस्रव, बन्ध और संसार। भाई! यह तो तीन हैं न पीछे। आहाहा!

अरे प्रभु! तेरी चीज़ में परम आनन्द, परम शान्ति, परम अनन्त शक्ति है। एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति है, ऐसा अनन्त शक्तिवान परमेश्वर आत्मा है। आहाहा! परमेश्वर आत्मा जिनस्वरूप आत्मा है। इस परमेश्वर की रुचि छोड़कर एक समय की पर्याय पामरता... राग-दया-दान के विकल्प, राग-पुण्य, उसकी रुचि, वह पामर की रुचि है। आहाहा! यह प्रभुता को लूट लेते हैं। अनन्त काल में (अपनी) चीज़ क्या है, उसकी उसने दृष्टि, आश्रय, अवलम्बन कभी लिया नहीं। अवलम्बन बाहर की चीज़ (का लिया)।

कहते हैं, मिथ्यात्व का अभाव, वह समकित। अर्थात् एक समय की पर्याय की रुचि का अभाव और व्यवहार की रुचि का अभाव और त्रिकाली ज्ञायकभाव की रुचि का सद्भाव, उसका नाम सम्यक्त्व है। उस सत् का शरण लिया तो सत्यभाव उत्पन्न हुआ, ऐसा कहते हैं। सम्यक् अर्थात् सत्। परम सत् त्रिकाली भगवान का आश्रय शरण लिया तो सम्यक्त्व हुआ। यह सम्यक्त्व ही संवर, निर्जरा और मोक्ष है, देखो! आहाहा! मूल बात ली है। सम्यग्दर्शन... आहाहा! क्या चीज़ है, (इसकी) लोगों को खबर नहीं। ऐसे-ऐसे अपने करो व्यवहार, व्रत करो, तप करो और संयम ले लो। बाहर में लटकते हैं बाहर के विषय। राग की मन्दता की, करते-करते धर्म हो जायेगा और आत्मा का आश्रय हो जायेगा उसमें से। मूढ़ है। मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहा है, देखो। समझ में आया?

कहीं आया अवश्य था, उसमें आया था। मूढ़ मिथ्यादृष्टि। सम्यक्त्व—सत्यपना तो सत्य वस्तु जो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु ज्ञायक, वह सत्य है, वह भूतार्थ है, वह यथार्थ है, वह सत्यार्थ है। उसके अन्तर सन्मुख होकर स्वद्रव्य का ज्ञान करके प्रतीति करना, वही सम्यग्दर्शन है, वही संवर, निर्जरा और मोक्ष है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यग्दर्शन में आ गया। स्वरूपाचरण भी उसमें आता है। सम्यग्दर्शन में अनन्त गुणों की पर्याय प्रगट होती है। सर्व गुणांश, वह समकित।

मुमुक्षु : मोक्ष चारित्र की वजह से होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मोक्ष ही है वहाँ। सुखरूप यहाँ कहते हैं न! आत्मा मोक्षस्वरूप है। उसकी अनुभव में प्रतीति हुई तो मोक्ष ही है। अस्थिरता का थोड़ा भाग है, वह तो गौण है, वह तो निकल जायेगा। मूल हाथ आया, (दोष) निकल जायेगा। आहाहा! सूक्ष्म बात! कठिन पड़े परन्तु बापू! मार्ग तो यह है, भाई!

भगवान—परमात्मा... स्वयं भगवान है, साक्षात् भगवान है, वस्तुरूप से। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी प्रतीति, अनुभव करना, उसका भान होकर ज्ञान होकर प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अनुभव में आनन्द का स्वाद आया, उसमें प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! खजाना। यह प्रभु महा खजाना है न, भाई! अरे, इसे विश्वास नहीं। परम सत्य अमृत का सागर! भगवान आत्मा अर्थात् परम अमृत का सागर। आहाहा! सेठ! सागर है यह। तुम्हारे सागर सब खोटे। मीठा हो जाये। आहाहा!

सम्यक्त्व... यहाँ तो इतना लिया। लोगों को एकान्त लगे, हों! बस, समकित, संवर, निर्जरा और मोक्ष? समकित हुआ तो मोक्ष? परन्तु चारित्र तो अन्दर त्रिकाली चारित्र की शक्ति है, उसके अनुभव में प्रतीति ली, सारा आत्मा कब्जे में कर लिया। सम्यग्दर्शन में सारा आत्मा (कि) जिसमें अनन्त चारित्रशक्ति पड़ी है, अनन्त वीर्य पड़ा है, अनन्त आनन्द पड़ा है—सबको कब्जे में कर लिया। आहाहा! समझ में आया? उसका वीर्य... सम्यक्त्व में वीर्य तो स्वसन्मुख की गतिवाला वीर्य हो जाता है। समझ में आया? अरे, क्या चीज़ है!

देखो, कितना स्पष्ट किया है! **सम्यक्त्व संवर, निर्जरा तथा मोक्ष है।** सम्यग्दर्शन संवर है, सम्यग्दर्शन निर्जरा है, सम्यग्दर्शन मोक्ष है। आहाहा! बापू! मोक्षस्वरूप आत्मा पूर्ण... कल कहा था न श्रीमद् में से? श्रीमद् में से। दिगम्बर के आचार्य ऐसा मानते हैं कि आत्मा में मोक्ष होता नहीं। ऐसा शब्द है। मोक्ष होता नहीं। कहा थे या नहीं?

(मोक्ष) समझ में आता है। रागादि थे तो माना था कि मैं बँधा हूँ। वे छूट गये, तो मैं बँधा नहीं, मैं तो अबन्धस्वरूप हूँ। ऐसे मोक्ष होता नहीं। मोक्षस्वरूप ऐसा समझ में आ जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! साधारण लोगों को तो... मूल मार्ग ऐसा है। मूल मार्ग समझे बिना ऊपर के पत्र-पत्ते तोड़े... मूल सुरक्षित। इमली का... इमली होती है न, इमली? मूल सुरक्षित और पत्ते तोड़ डाले। वह तो महीने में वापस पत्ते ऐसे हो जायेंगे।

इसी प्रकार जरा राग की मन्दता की क्रिया (तो जैसे) पत्ते तोड़ते हैं, पत्ता। मूल का तो नाश करते नहीं। मिथ्यात्वरूप मूल जो है, उसका नाश किया स्वभाव के आश्रय से, सब (नाश) हो जायेगा। इमली का मूल नाश किया तो पत्ते पन्द्रह दिन में सूख जायेंगे ही। पत्ते को पोषण मिले नहीं (तो) पत्ते रहेंगे ही नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु परमेश्वर साक्षात् प्रभु... आहाहा! ऐसा परमात्मा, उसके अनुभव में—उसको अनुसरकर होनेवाली दशा ऐसा सम्यग्दर्शन, वह ही संवर, निर्जरा और मोक्ष है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं न, व्रत लो, व्रत लो, यह संवर है। क्या व्रत? व्रत तो विकल्प है। सम्यग्दृष्टि का व्रत का विकल्प... वह विकल्प ही आस्रव और बन्ध है। मिथ्यादृष्टि का... व्रत ले लो, व्रत ले लो, छोड़ दो संसार, स्त्री, पुत्र छोड़ दो। क्या छोड़े? छूटा ही पड़ा है। उसे अजीव की श्रद्धा ही नहीं। अजीव मुझसे भिन्न ही है। मैंने अजीव को पकड़ा ही नहीं, तो मैं अजीव को छोड़ूँ, ऐसा आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया?

और मोक्ष आत्मा का निज स्वभाव... देखो! वह आता है न? अष्टपाहुड़ में आता है। सम्यक्त्व का ध्यान करने से अष्ट कर्म का नाश होता है। ऐसी गाथा आती है। अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़। '**सम्मत्तं जो जायइ**' (गाथा ८७) पूर्णानन्द मैं पूर्ण शुद्ध आनन्द हूँ, ऐसा ध्यान करने से आठ कर्म का नाश होता है। कहो, समझ में आया? **मोक्ष आत्मा का निज स्वभाव अर्थात् कर्ममलरहित अवस्था है।** भगवान आत्मा... कर्म अर्थात् मोह अर्थात् रागादि मल से रहित मोक्ष, वह आत्मा की निर्मल दशा है। पूर्ण आनन्ददशा है। आहाहा!

वास्तव में सोचा जावे तो मोक्ष होता ही नहीं। पण्डितजी! वास्तव में सोचा जाये... यथार्थ में सोचा जाये तो मोक्ष होता ही नहीं। कहते हैं न! दिगम्बर आचार्यों ने...

श्रीमद् ने ऐसा कहा है। कल तो बताया था न! कल तुम नहीं थे न सेठ? पण्डितजी पीछे आये न? सेठ और पण्डितजी दोनों ही नहीं थे। (वर्ष) ३२वाँ। ८० (बोल)। ३२ और ८० है न? कितना बोल, ८० न? क्या लिखा है?

श्रीमद् लिखते हैं ३२वें वर्ष में। अमुक आचार्य ऐसा कहते हैं कि दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि.... दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि... देखो सेठ! श्रीमद् कहते हैं। अमुक आचार्य ऐसा कहते हैं कि दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष होता नहीं। गुजराती है। जीवनो मोक्ष थतो नथी। थतो नहीं अर्थात् मोक्ष होता नहीं। ..... उसमें भी है, हों! कितने में होगा, उसमें किसी को खबर है? इसमें नहीं? उसमें कहीं होगा। है उसमें? कहीं सब याद रहता है? उसमें तो है... उसमें तो है। यहाँ तो श्रीमद् कहते हैं, 'दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष होता नहीं, परन्तु मोक्ष समझ में आता है—समझाय छे।' मैं त्रिकाल रागरहित ही हूँ। मुझे बन्धन है ही नहीं। आहाहा!

वहाँ १४-१५ गाथा में आया न? समयसार। '**जो पस्सदि अपाणं अबद्धपुट्ठं**' मैं तो अबद्ध—बन्ध है ही नहीं। अबद्ध अर्थात् मैं तो मोक्ष ही हूँ। आहाहा! इस प्रकार से कि... वह इस प्रकार से कि... इस प्रकार से है कि जीव शुद्धस्वरूप ही है। भगवान तो शुद्धस्वरूप ही है। आस्रव, बन्ध तो आत्मा में है ही नहीं। वह तो पर्याय में है, वस्तु में है ही नहीं। आत्मा शुद्धस्वरूप ही है। आत्मा इसको कहते हैं। क्या आस्रव, बन्ध को आत्मा कहते हैं? वह तो अनात्मा है। आहाहा! पुण्य और पाप, आस्रव और भावबन्ध, वह आत्मा है? आत्मा तो भावबन्ध और आस्रव से रहित शुद्धस्वरूप, वही आत्मा है। समझ में आया? शुद्धस्वरूपी है, उसको बन्ध हुआ ही नहीं। वस्तु में बन्ध कहाँ? वस्तु में बन्ध हो तो वस्तु का अभाव हो जाता है। समझ में आया? पर्याय में बन्ध का, राग का निमित्तपना है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! अन्तर में ऐसा अनुभव में प्रतीति आना (वह) अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया? उस पुरुषार्थ की गति की कीमत नहीं (और) बाह्य से यह करना, यह करना, यह करना।

होनापना कहाँ रहता है? बन्ध हुआ ही नहीं तो फिर मोक्ष हुआ कहाँ? जिसने माना हुआ है कि... उसने माना था कि मैं बँधा हुआ हूँ। रागसहित हूँ, ऐसा बँधा माना

था। वह माननापना विचार द्वारा समझ में आता है। वह मान्यता सम्यग्ज्ञान द्वारा समझ में आती है कि मैं राग से बँधा हुआ हूँ ही नहीं। द्रव्यबन्ध तो है ही नहीं, परन्तु राग का जो भावबन्ध (अर्थात् कि) रुकना, वह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा!

यह वीतरागमार्ग है बापू! सर्वज्ञ केवली तीर्थंकरदेव एक समय में तीन काल-तीन लोक (को जाने वह) किसे कहे? भाई! यह बात क्या है? यह वह कुछ बात है! ऐसे का ऐसा मान ले, वह अलग बात है। एक समय का ज्ञान अनन्त-अनन्त केवलियों को भी जान लेता है, तीन काल-तीन लोक भूत-भविष्य-वर्तमान को जाने। अरे, यह उस ज्ञान की सत्ता का माहात्म्य कितना! एक समय की इतनी सत्ता (उसका) कितना माहात्म्य! ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय जो द्रव्य में पड़ी है, (वह) मुक्त है।

मुझे बन्धन नहीं, (परन्तु) मात्र माना था। श्रद्धा में, 'राग मैं हूँ'—ऐसी मान्यता थी। वह मान्यता शुद्धस्वरूप समझने से रहती नहीं। मोक्ष समझ में आता है। यह बात शुद्धनय की अर्थात् निश्चयनय की है। पर्यायार्थिकनयवाले भी एक समय की पर्याय के प्रयोजन में पड़े हैं, उस नय को लगकर आचरण करे तो भटक मरने का है। राग मेरा है, पुण्य मेरा है, उसमें तो पड़ा है और आचरण करे कि 'मुझे कुछ है नहीं, मैं तो मोक्ष (स्वरूप) हूँ।' समझ में आया? पर्यायबुद्धि में पड़ा है और आचरण करे शुद्धनय जैसा। मुझे तो मुक्ति है। कहाँ से आया परन्तु तुझे? समझ में आया? ८०वाँ बोल है। ३२वाँ (वर्ष)। कल भाई ने निकाला था शशीभाई ने। उन्होंने निकालकर बताया था। हाँ, निकाला था। उन्होंने बताया था। चर्चित हुआ, वह याद रह जायेगा अब।

कहते हैं, **वास्तव में सोचा जावे तो मोक्ष होता ही नहीं है क्योंकि निश्चयनय में जीव बँधा हुआ नहीं है।** आहाहा! बन्ध तो... दो (वस्तु) हो तो बन्ध होता है। परन्तु अकेला आत्मा में बन्ध कहाँ? बन्ध द्वितीय है। आता है न प्रवचनसार में? राग विकल्प है भावबन्ध, वह द्वितीय (-दूसरी) चीज़ है, आत्मा की चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा अबन्धस्वरूपी शुद्धस्वरूपी मुक्तस्वरूप (ऐसा) ज्ञान में आया, (तो) मैं मोक्ष (स्वरूप) ही हूँ। निश्चय से जीव बँधा हुआ नहीं। अबन्ध है, लो। बन्ध, वह तो दो (-द्विधा) हुआ। एकड़े एक और बिगड़े दो। हमारी भाषा है न, गुजराती। दो... दो... दो हुआ तो बन्ध है। अकेले को बन्ध कहाँ आया? एक स्वरूप मैं शुद्ध हूँ, उसमें बन्ध

कहाँ आया ? समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव अबन्ध है, यह अलौकिक चीज़ है। आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, तो यहाँ कहते हैं कि तो संवर-निर्जरा-मोक्ष होगा ही। आहाहा! समझ में आया ? अबन्ध है, भगवान एकरूप स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, वह तो अबन्ध है। कहो, समझ में आया या नहीं कुछ ? शान्तिभाई! ऐसा वीतरागमार्ग है भैया! आहाहा! दृष्टि का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय ध्रुव, वह तो अबन्ध है। अनन्त पुरुषार्थ है। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी लोगों को कीमत नहीं। आहाहा!

अबन्ध चीज़ का भान हुआ, श्रद्धा हुई, तो परिणाम अबन्ध हुआ। अबन्ध चीज़ जो शुद्ध चैतन्यघन भगवान, ऐसी अन्तर दृष्टि हुई तो परिणाम भी अबन्ध हुआ। द्रव्य अबन्ध, गुण अबन्ध, ऐसे सम्यग्दर्शन परिणाम भी अबन्ध परिणाम हुआ। कहो, समझ में आया ? आहाहा! यह चीज़ तो मूल चीज़ है। मूल चीज़ की समझ बिना और दृष्टि बिना सब बिना एक के शून्य है। व्रत करे, तप करे और मर जाये, सूख जाये। समझ में आया ? रण में चिल्लाहट मचाने जैसी बात है। पोक क्या ? अरण्य रुदन। आहाहा! **जब अबन्ध है, तब छूटेगा ही क्या ?** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूपी प्रभु, वह तो अबन्ध ही है। कहो, समझ में आया ?

यह आया न १४वीं गाथा में, पुरुषार्थसिद्धि उपाय। अमृतचन्द्र आचार्य (कृत)। भगवान आत्मा... कर्म और कर्म के निमित्त से हुआ विकार, उससे तो '**असमाहितो**'— वस्तु तो उससे रहित है। दया-दान-व्रत-भक्ति और काम-क्रोध का विकल्प और कर्म... विकल्प, वह आस्रव है; कर्म, वह अजीव है। भगवान आत्मतत्त्व तो अजीव और आस्रवतत्त्व से रहित है। क्या हुआ उसका अर्थ ? समझ में आया ? रागरूपी आस्रव और कर्मरूपी अजीव—दो से रहित है। उसको सहित मानना, वह मिथ्यात्व और भव का बीज है। यह १४वीं गाथा में है, पुरुषार्थसिद्धि उपाय (में है)। समझ में आया ? '**भवबीजम्**' भव का बीज मिथ्यात्व है। आहाहा!

जीव का मोक्ष हुआ, यह कथन व्यवहारमात्र है। आहाहा! सिद्ध और संसार— दो पर्याय व्यवहार है। निश्चय में तो त्रिकाली ज्ञायकभाव वही है। वह भी परमात्मा वीतराग ने कहा, वह आत्मा, हों! दूसरा कोई कहे कि ऐसा आत्मा... आत्मा... (ऐसी)

बात तो सब करते हैं। ऐसा नहीं। वीतराग तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में एक-एक आत्मा जैसा देखा, ऐसा आत्मा अबन्ध और शुद्धस्वरूपी, उसको मोक्ष कहना, यह तो व्यवहार है, कहते हैं। आहाहा! पर्याय है। **नहीं तो वह हमेशा मोक्षस्वरूप ही है।** वस्तु तो मोक्षस्वरूप ही है। कल तो (यहाँ तक) आया था।

यह बात जगत प्रसिद्ध है... अब दूसरा अर्थ करते हैं। सारे मोक्षद्वार का सार लेते हैं न! **यह बात जगत प्रसिद्ध है। जो मनुष्य दूसरों के धन पर अपना अधिकार जमाता है...** दूसरे की लक्ष्मी पर अपना अधिकार जमाता है। **उस मूर्ख को लोग अन्यायी कहते हैं।** बराबर है? दूसरे की लक्ष्मी हो (और माने कि) वह हमारी है। यह माननेवाला मूर्ख, लोक में अन्यायी कहा जाता है। यह दृष्टान्त है, हों! सिद्धान्त दूसरा है। **यदि वह अपनी ही सम्पत्ति का उपयोग करता है...** लक्ष्मी जड़, धूल... भोगता तो कहाँ है? यह तो दृष्टान्त है न। **यदि वह अपनी ही सम्पत्ति का उपयोग करता है तो लोग उसे न्यायशील कहते हैं।** किसी की (सम्पत्ति) लूट करके अपनी मानता नहीं। उसकी (अपनी) लक्ष्मी है, वह भोगता है।

दृष्टान्त आया है न भाई अपने, नहीं? नियमसार (गाथा १५७) में। ऐसा कि कोई गृहस्थ अपनी निधि पाकर एकान्त में भोगता है... दृष्टान्त आया है नियमसार में। बाहर की निधि, हों! ऐसे धर्मी... यह तो बाहर की निधि का दृष्टान्त आया है सिद्धान्त में। नियमसार। लक्ष्मी मिले दो-पाँच-दस लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़। अपनी है वह पुण्य के कारण मिली और उसे भोगे तो वह चोर कहने में नहीं आता है, वह अन्यायी नहीं है, वह न्यायशील है। लौकिक अपेक्षा से, हों! यह धर्म की अपेक्षा से बात नहीं है। यह तो दृष्टान्त है। वह अपनी सम्पत्ति का उपयोग करता है, तो लोग उसे न्यायशील कहते हैं।

इसी प्रकार... वह तो दृष्टान्त हुआ। **इसी प्रकार जब आत्मा परद्रव्यों में अहंकार करता है,...** लो। आहाहा! वास्तव में तो एक समय की पर्याय और राग में अहंकार करता है, वह मिथ्यादृष्टि मूर्ख है। समझ में आया? जैसे किसी की लक्ष्मी अपनी मानकर भोगे, अधिकार जमाता है, वह मूर्ख है। ऐसे आत्मा परद्रव्य में अहंकार—यह मेरा है, यह पर्याय ही मैं हूँ, राग ही मैं हूँ—ऐसा जो अहंकार, अहं मेरी चीज़ है (ऐसा) मानता

है, **तब वह अज्ञानी मिथ्यात्वी होता है।** आहाहा! छह खण्ड का राज करता है न समकिती। भरत, भरत चक्रवर्ती। छह खण्ड... भगवान के पुत्र। ८६ हजार स्त्रियाँ। वे तो अखण्ड को साधते थे। छह खण्ड साधा नहीं। कौन साधे? किसको साधे? रजकण-रजकण परक्षेत्र परवस्तु उसे तो कभी आत्मा छूता ही नहीं। राग को छूता नहीं, उसका नाम आत्मा कहते हैं। आहाहा!

परद्रव्य को तो छूता नहीं... आहाहा! यह मार्ग भाई! भारी—बहुत कठिन लगे। बाह्य में कुछ करना हो—ऐसा करना, वैसा करना... करना, वह मरना है। निहालभाई लिखते हैं न! ऐ नवरंगभाई! आया है न उसमें? 'करना, वह मरना है।' पुस्तक जब पढ़ी जाती थी, तब रात्रि में नवरंगभाई बैठे थे। एक बार आया था। अरे, यह तो गजब! नवरंगभाई! खबर है? 'देव-गुरु-शास्त्र, वे अनायतन हैं।' ऐसा जहाँ आया... यहाँ समकित में आयतन देव-गुरु-शास्त्र कहे जाते हैं, वह तो व्यवहार की बात है। निश्चय से तो परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र तो अनायतन है। अपना आयतन तो आनन्दकन्द प्रभु, वह अपना आयतन है। आहाहा! लोगों को सहन नहीं हुआ। यह चीज़ ही ऐसी है।

आत्मा परद्रव्यों में अहंकार करता है, तब वह अज्ञानी मिथ्यात्वी होता है। चाहे तो पंच महाव्रत पालता हो, मुनि हो, नग्न दशा हो, परन्तु वह राग की क्रिया मेरी है और एक समय की पर्याय जितना मैं हूँ—(ऐसी मान्यतावाला) अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! **और जब ऐसी बद आदत को छोड़कर...** बद है न? बद... बद क्या है? फिर (ख्याल) आ गया। **ऐसी बद आदत को छोड़कर...** लो, यह बद-आदत है। क्या बद-आदत? क्या?—कि एक समय की पर्याय में अपना(पन) मानना और दया-दान-विकल्प में अपनापन मानना बद-आदत है। समझ में आया?

अरे! वीतराग भगवान ने जो सर्वज्ञपना प्राप्त किया, ऐसी प्राप्ति का उपाय कोई अलौकिक है। समझ में आया? **जब ऐसी बद आदत को छोड़कर...** यह बद-आदत है। राग और रजकण... एक भी परमाणु रजकण और एक भी राग का अंश अपना मानना,... उसमें लाभ मानता है तो उसे उसने अपना माना। आहाहा! निमित्त से अपने में लाभ होता है। पंच महाव्रत आदि की व्यवहार क्रिया से मुझे लाभ होता है। मिथ्यात्वभाव बद-आदत है। अरे, कठिन काम!

और जब ऐसी बद आदत को छोड़कर आध्यात्मिक विद्या का अभ्यास करता है,... देखो! आहाहा! अपना निजस्वरूप भगवान... यह तुम्हारी बैरीस्टर की विद्या... क्या कहलाती है वकील की? वकील की विद्या कहते हैं न? वकील। ऐई कानजीभाई! डॉक्टर की विद्या और वकील की विद्या, मूर्ख विद्या है। मूर्खाई बढ़ाने की विद्या है। ऐई वकील! ... आ गया। आहाहा! जब **आध्यात्मिक विद्या का अभ्यास करता है,...** मैं ज्ञानानन्द राग से भिन्न.... 'ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ' गाया था न भाई ने—गोदिकाजी ने। गोदिका नहीं बोलते थे? देखा है? पण्डितजी! तुम आये थे या नहीं जयपुर? नहीं आये थे। 'मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ।'

जब **आध्यात्मिक विद्या का अभ्यास करता है,...** राग से भिन्न और अपने स्वभाव से अभिन्न—ऐसा अन्तर का अभ्यास करता है। आहाहा! **तथा आत्मिक रस का स्वाद लेता है।** आहा! देखो। सम्यग्दर्शन में आत्मा का अतीन्द्रिय स्वाद आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसा सम्यग्दर्शन (पर की) प्रतीति करो, श्रद्धा करो, यह सम्यग्दर्शन है ही नहीं। क्या कहते हैं, देखो न!

आत्मिक रस का स्वाद लेता है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दरूप अमृतस्वरूप भगवान का अनुभव करना, उसका एकाग्र होकर अभ्यास करना, वह आध्यात्मिक विद्या है और आत्मा का आनन्द का रस आना, वह सम्यग्दर्शन की दशा है। आहा! तब **प्रमाद का पतन करके...** लो। आत्मा का आनन्द का अनुभव करते सम्यग्दर्शन से लेकर पंचम गुणस्थान में बहुत आनन्द, छठवें में बहुत, सातवें में बहुत, बारहवें में पूर्ण (चारित्र), तेरहवें में अनन्त (सुख)। समझ में आया?

और प्रमाद का पतन करके पुण्य-पाप का भेद हटा देता है। शुभभाव और अशुभभाव—दो में एक ठीक है और एक अठीक, ऐसा भाव उसको होता नहीं। आहाहा! **प्रमाद का पतन करके...** प्रमाद है, शुभभाव भी प्रमाद है। आत्मा का आनन्द आना, वह अप्रमादभाव है। आहाहा! भारी कठिन काम! कहे, ऐसा मार्ग भगवान ने कहा होगा? कन्दमूल नहीं खाना, चोविहार—रात्रि (भोजन) छोड़ना, व्रत पालना, पूजा करना, यात्रा करना—ऐसा भगवान ने (कहा है), अभी तक तो भाई ऐसा सुना था। ऐसा सुना है। भाई! यह तो विकल्प की क्रिया की बात है। स्वरूप की क्रिया... अन्तर्मुख

झुकना (और) बहिर्मुख से हटना, यह आध्यात्मिक विद्या है। और उसमें आनन्द का स्वाद आना, उस कारण से प्रमादभाव का नाश होता है। प्रमाद अर्थात् शुभ-अशुभ—दोनों।

और क्षपकश्रेणी चढ़कर.... इससे आगे बढ़कर स्थिरता अन्तर में बहुत हो जाती है, उसका नाम क्षपकश्रेणी है। स्थिरता की अन्दर धारा बहे। यह तो पहले से लिया है न! मिथ्यात्व का त्याग करके, प्रमाद छोड़कर मुनिपना आया... प्रमाद छोड़कर क्षपकश्रेणी चढ़ा, उसकी बात है। **...केवली भगवान बनता है।** अहो! अन्तर में एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन पहले प्रगट किया, पश्चात् प्रमाद छोड़कर अप्रमाद में आया और फिर शुक्लध्यान की धारा में केवलज्ञान प्राप्त किया। लो, यह परमात्मा होने की पद्धति।

पश्चात् थोड़े ही समय में अष्टकर्म रहित... लो। सिद्ध... सिद्ध... केवली हुआ तो चार कर्म का नाश हुआ और चार बाकी रहे। पश्चात् अष्ट कर्मरहित होकर अष्ट गुणसहित... **अष्ट गुणसहित सिद्धपद को प्राप्त होता है।** परमात्मा सादि-अनन्त-अनन्त समाधि आनन्द, यह सिद्धपद पाने का उपाय है। मोक्षमार्ग है न यह?

मुख्य अभिप्राय ममता हटाने और समता सम्हालने का है,... देखो, क्या कहा? आहाहा! मुख्य अभिप्राय राग आदि का अभिमान छोड़ना... रागादि मेरे हैं, यह ममता छोड़ना और वीतरागभाव में समता लाना। अभिप्राय तो मुख्य यह है कि पर रागादि मेरे हैं, (ऐसी मान्यता को) छोड़ना। यह ममता—मिथ्यात्व की ममता है। व्यवहार का रस बहुत है न लोगों को... देखो, हम तो व्यवहार भी करते हैं और हमारी श्रद्धा में निश्चय ऐसा है—ऐसे दोनों ही हैं। व्यवहार करते हैं, यही मान्यता ही मिथ्यात्व है। करे कौन? राग का करना? आहाहा! लौकिक में लोगों को पसन्द बहुत आये। सभा भरे पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार, पन्द्रह हजार। ऐ पूनमचन्दजी! देख आये हैं या नहीं? देखकर नहीं सुनकर। देखने नहीं जाया जाता। सुनकर देखा है न इतना कि ऐसा कुछ है।

भाई! मार्ग अलग है, प्रभु! सत्य की शरण कोई अलग चीज़ है। बाहर की प्रवृत्ति में ऐसा करूँ और ऐसा करूँ। तथा सब धर्म समान है, समन्वय करो। कभी नहीं होता। सुजानमलजी! आत्मधर्म, वह विश्वधर्म है। यह धर्म है, दूसरा धर्म है ही नहीं कहीं। आहाहा! क्या लगे? सबके साथ मिठास लगे? ओहोहो! कितनी विशालता ऐसा

वापस (कहे)। उदारता कितनी! सबको समान मानना। हमारे में भी है, तुम्हारे में भी है, तुम्हारे में भी है। कहीं है नहीं, भगवान आत्मा में है, उसके अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा! देखो, जिस प्रकार... सब संक्षिप्त में लिया है। मुख्य अभिप्राय... ममता (अर्थात् कि) परद्रव्य मेरा है, यह (मान्यता) छोड़ना और स्वद्रव्य की सम्हाल करना, यह मुख्य वस्तु है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

देखो न, उस लड़के की बात अभी बहुत याद आती है। चपेट में आ गया बेचारा, हों! लड़का परसों रात्रि को... २४-२५ वर्ष का एकदम जवान। दो वर्ष का विवाह। बस में दरवाजे के आगे बैठा था। ट्रक आया... ट्रक कहते हैं न! क्या कहते हैं? खटारा—ट्रक। तुम्हारा ट्रक है न। कपड़े भरे, यह मनुष्य भरे। उस ट्रक में कपड़ा भरे न, यह मनुष्य भरे। वह आया ट्रक लकड़ी भरके। ऐसे बाहर बेचारा आधा बाहर था। बाहर मनुष्य बहुत बैठे हुए न... क्या कहलाता है? ड्राईवर के साथ बहुत बैठे हुए, लोग बहुत। दरवाजा खुला। दरवाजा तोड़कर उसको साथ में लेकर दो बीच में से... आहाहा! यह दशा। उस समय में जड़ की पर्याय—दशा तो होने की ही थी। आहाहा! उसकी माता और पिता बेचारे....

मोह का दुःख है न? वस्तु का कहाँ है? मोह का दुःख है। कहते थे, नहीं? बारह बजे—साढ़े बारह बजे (लाश) आयी। बाई रोती निकली, बहुत रोती थी। बेटा! भाई! तुझ मैं अब कहाँ देखूँगी? कहाँ राह देखूँगी? कौन देखे? भाई! आहाहा! क्योंकि लड़के को लेकर तो न जाया जाये वहाँ का वहाँ। पुलिस आवे। क्या कहलाता है तुम्हारा? पंचनामा करे। पंचनामा करे न? वहाँ तक मुर्दा पड़ा रहा। डॉक्टर वहाँ सवेरे आये। आहाहा! २४ वर्ष का जवान। यह रात नहीं, वह रात बारह बजे। वह रात, दूसरी रात। सवेरे ग्यारह बजे लोग—मनुष्य बहुत... शान्तिभाई गये थे, नहीं? ... ऐसा त्रास गाँव में हड़ताल....

यह स्थिति अनन्त बार भोगी है, उसमें नवीन क्या है? समझ में आया? राग को अपना मानकर मिथ्यात्व में उसको घसीट दिया है, नाश हुआ है आत्मा का, वह बात कहते हैं। बाहर की तो एक ओर रखो। अपना भगवान पूर्ण शुद्धस्वरूप की रुचि छोड़कर कृत्रिम राग पुण्य दया-दान की एक समय की पर्याय में एकत्वबुद्धि है (तो)

अपनी शान्ति को दबाते हैं, नाश करते हैं। आहाहा! चपेट में आ जाता है... बेचारे कहते थे। दुनिया ऐसे देखती है कि उसको हुआ। परन्तु तुझे भी अनन्त बार हुआ है भगवान! आहाहा! तुझे पर में रस पड़ता है। धूल में भी है नहीं। यह—शरीर तो मिट्टी का—माँस का पुतला है। आहाहा! उसमें सुन्दरता कैसी? उसमें मजा कैसा? धूल में कहाँ मजा है? प्रभु! आहाहा! तेरा आनन्द तो तेरे पास है और पर में कुछ भी आनन्द की गन्ध आना, मिथ्यात्व में आत्मा नाश होत है। आहाहा!

कहते हैं कि... दृष्टान्त देते हैं। **जिस प्रकार सोनार के प्रसंग से सोने की नाना अवस्थाएँ होती हैं।** सोना... सोना... सुवर्ण की अवस्था। **परन्तु उसकी सुवर्णता कहीं नहीं चली जाती।** स्वर्णपना चला जाता है? चाहे जितने सोने के गहने... दागीना समझे न? जेवर। उसका जेवर बनाओ, परन्तु सोना तो सोना ही रहता है। आभूषण चाहे जो बनाओ, सोना (सुनार) उसमें घुस नहीं जाता। सोना, वह सोना ही है। आहाहा! उसी प्रकार... **सुवर्ण का सुवर्ण ही बना रहता है, उसी प्रकार यह जीवात्मा अनात्मा के संसर्ग से...** आहाहा! यह सोनी का दृष्टान्त। इसी प्रकार यह अनात्मा—राग के संसर्ग से... आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प के परिचय से **अनेक वेश धारण करता है।** एकेन्द्रिय और दो इन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा स्त्री और पुरुष। अन्दर पर्याय में हो। शरीर-बरीर तो जड़ है। अनेक वेश धारण करता है।

परन्तु उसकी चैतन्यता कहीं चली नहीं जाती है। चैतन्यपना जो ध्रुवस्वरूप है, वह कहाँ जाये? आहाहा! सोने के आभूषण हों, परन्तु सोनापना कहीं चला जाता है? उसी प्रकार पर्याय में एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय (आदि) अनेक (दशा) हो, इसमें चैतन्यपना कहीं चला नहीं जाता। चैतन्यपना तो ऐसा का ऐसा रहता है। **वह तो ब्रह्म का ही बना रहता है।** आहाहा! भगवान तो आनन्दस्वरूप है, तो आनन्दरूप ही त्रिकाल रहता है। आहाहा! यह दृष्टि में लेना। और उसका अनन्त पुरुषार्थ क्या है? आहाहा! राग में रहा, वह गुलांट खाकर आत्मा में आना, यह अनन्त पुरुषार्थ है। 'मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप त्रिकाल हूँ। ज्ञायक ही ज्ञायक रहा हूँ।' आता है न भाई! प्रवचनसार नहीं, २०० गाथा। चाहे जो तुझे मान, परन्तु ज्ञायक तो त्रिकाल ज्ञायक ही रहा है। प्रवचनसार की २०० गाथा। आहाहा! कभी ज्ञायक छोड़कर दूसरा

हुआ नहीं। ब्रह्म ही रहता है।

इसलिए शरीर से मिथ्या अभिमान हटाकर आत्मसत्ता और अनात्मसत्ता का पृथक्करण करना चाहिए। ऐसा करने से थोड़े ही समय में आधुनिक बूंद... यह सम्यग्दर्शन की बूँद **मात्र ज्ञान स्वल्प काल में ही समुद्ररूप परिणमन करता है।** केवलज्ञान हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्ज्ञान का कण—दूज उगी दूज, वह पूर्णिमा होगी। अपना शुद्ध चैतन्य ध्रुव के अनुभव में दृष्टि हुई है तो अल्पकाल में भी केवलज्ञान हो जायेगा। वह क्रिया अन्तर में एकाग्र होकर केवलज्ञान हो जायेगा। **...स्वल्प काल में ही समुद्ररूप परिणमन करता है। और अविचल अखण्ड अक्षय अनभय—**भयरहित **और शुद्धरूप होता है।** उसका नाम पर्याय में मोक्ष कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१०. सर्वविशुद्धि द्वार

प्रवचन नं. ११७, श्रावण शुक्ल ५, मंगलवार, दिनांक २७-०७-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-१, २

उसमें आत्मा का अधिकार है। सर्वविशुद्ध अधिकार। पहले प्रतिज्ञा है न?

★ ★ ★

प्रतिज्ञा (दोहा)

इति श्री नाटक ग्रंथमैं, कहौ मोख अधिकार।
अब बरनौं संछेपसौं, सर्व विसुद्धी द्वार।।१।।

अर्थः-नाटक समयसार ग्रन्थ के मोक्ष अधिकार की इति श्री की, अब सर्व विशुद्धि द्वार को संक्षेप में कहते हैं।।१।।

काव्य-१ पर प्रवचन

इति श्री नाटक ग्रंथमैं, कहौ मोख अधिकार।
अब बरनौं संछेपसौं, सर्व विसुद्धी द्वार।।१।।

आत्मा अन्तर में तो सच्चिदानन्द सुखस्वरूप है। अनादि से अपनी चीज़ को भूलकर, पुण्य और पाप जो विकारभाव है, शरीर आदि पर है—उसको अपना मानता है। इस मान्यता के कारण चौरासी में उसको रुलना पड़ता है। चौरासी के अवतार में भटकता है—रुलता है। आहा! आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द है... यह सर्वविशुद्ध अधिकार कहेंगे... यह देह तो मिट्टी-जड़ है, इससे वह भिन्न चीज़ है। उससे (भिन्न) है। अन्दर कर्म से भी पृथक् चीज़ है—भिन्न है। और अन्दर शुभ-अशुभ राग होता है पुण्य-पाप, वह भी विकार और दुःख है। उससे भी आत्मा तो भिन्न आनन्दकन्द है। आहाहा!

अनन्त काल में कभी अपनी चीज़ क्या है, उसकी पहिचान की नहीं, उसकी कीमत की नहीं। जगत की चीज़ की कीमत और महत्ता की। अपनी कीमत भूल गया तो उसमें—चौरासी के अवतार में भटकना—रुलना (हुआ)। अनन्त बार अवतार किया नरक में, पशु में—कीड़ा, कौआ, कुत्ता—ऐसे अनन्त भव किये, आत्मा अन्दर वस्तु क्या है, उसके भान बिना (भव किये)।

यहाँ तो कहते हैं, इस **ग्रंथमैं कहौ मोख अधिकार**। आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति प्रभु अरूपी वीतरागस्वरूप है। उसका आश्रय लेकर मुक्ति की परम आनन्द दशा प्रगट की, वह मोक्ष है। अब वह मोक्षदशा भी एक समय की अवस्था है, ऐसा कहते हैं। **कहौ मोख अधिकार, अब बरनौ संछेपसौं, सर्व विसुद्धी द्वार...** भगवान आनन्द, वह राग से तो भिन्न है, परन्तु बन्ध और मोक्ष की पर्याय से भी भिन्न है। आहाहा! इस चीज़ का अधिकार कहते हैं। चौरासी के अवतार में अनन्त-अनन्त अवतार कर चुके। यह कहीं पहला अवतार नहीं है। यहाँ तो मनुष्यपना अनन्त बार मिल, पशु अनन्त बार हुआ, नरक में नारकी अनन्त बार हुआ और स्वर्ग में देव... देव भी अनन्त बार हुआ। परन्तु वह तो चार गति का दुःख है। आहा! उस दुःख से रहित आत्मा का भान करके स्वरूप की श्रद्धा—ज्ञान करके अन्तर में लीन होने से मुक्ति होती है। तो मुक्ति का अधिकार कहा।

अब, **सर्व उपाधि रहित आत्मा का स्वरूप**। यह 'शुभ' भूल है थोड़ी। शुद्ध चाहिए। शब्द भूल है। भगवान आत्मा अन्दर चैतन्यस्वरूप भगवान स्वयं निज वह परम शुद्ध है, परम शुद्ध है। आहा! यह अधिकार। सर्व उपाधि रहित शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा, वह शुद्ध है—उस आत्मा का स्वरूप कहा जाता है।

★ ★ ★

काव्य - २

सर्व उपाधि रहित शुद्ध आत्मा का स्वरूप

(सवैया इकतीसा)

कर्मनिकौ करता है भोगनिकौ भौगता है,
जाकी प्रभुतामैं ऐसौ कथन अहित है।

जामैं एक इन्द्री आदि पंचधा कथन नांहि,
सदा निरदोष बंध मोखसौं रहित है।।
ग्यानकौ समूह ग्यान गम्य है सुभाव जाकौ,
लोक व्यापी लोकातीत लोकमैं महित है।
सुद्ध बंस सुद्ध चेतनाकै रस अंस भर्‌यौ,
ऐसौ हंस परम पुनीतता सहित है।।२।।

शब्दार्थ:-प्रभुता=सामर्थ्य। अहित=बुराई करनेवाला। पंचधा=पांच प्रकार की। लोकातीत=लोक से परे। महित=पूजनीय। परम पुनीत=अत्यन्त पवित्र।

अर्थ:-जिसकी सामर्थ्य के आगे कर्म का कर्ता है और कर्म का भोगता है ऐसा कहना हानिकारक[1] है, पंचेन्द्रिय भेद का कथन जिसमें नहीं है, जो सर्व दोष रहित है, जो न कर्म से बँधता है न छूटता है, जो ज्ञान का पिंड और ज्ञानगोचर है, जो लोक व्यापी है, लोक से परे है, संसार में पूजनीय अर्थात् उपादेय है, जिसकी जाति शुद्ध है, जिसमें चैतन्यरस भरा हुआ है, ऐसा हंस अर्थात् आत्मा परम पवित्र है।।२।।

काव्य-२ पर प्रवचन

कर्मनिकौ करता है भोगनिकौ भौगता है,
जाकी प्रभुतामैं ऐसौ कथन अहित है।
जामैं एक इन्द्री आदि पंचधा कथन नांहि,
सदा निरदोष बंध मोखसौं रहित है।।
ग्यानकौ समूह ग्यान गम्य है सुभाव जाकौ,
लोक व्यापी लोकातीत लोकमैं महित है।
सुद्ध बंस सुद्ध चेतनाकै रस अंस भर्‌यौ,
ऐसौ हंस परम पुनीतता सहित है।।२।।

१. व्यवहारनय जीव को कर्म का कर्ता-भोक्ता कहता है, परन्तु वास्तव में जीव कर्म का कर्ता-भोगता नहीं है, अपने ज्ञान-दर्शन स्वभाव का कर्ता-भोगता है।

नीचे इसका कलश है।

नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्,
दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः।
शुद्धः शुद्धः स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि-
ष्टङ्कोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः॥१॥

आहाहा! कहते हैं, **कर्मनिकौ करता है...** अरे, भगवान आत्मा ज्ञान का सागर है। चैतन्य का सागर अन्दर है। और अतीन्द्रिय आनन्द से आत्मा अन्दर भरा पड़ा है। ऐसा आत्मा कर्म को करता है। अरे, राग-द्वेष को यह आत्मा करता है, यह अहित है, कहते हैं। पण्डितजी! परवस्तु का तो कर्ता नहीं। यह शरीर तो जड़ है। शरीर की क्रिया जड़ की जड़ से होती है। यह वाणी है, वह भी जड़ है। उसकी क्रिया भी आत्मा कर सकता नहीं। आहाहा! परवस्तु मिट्टी, धूल है। उसका तो कर्ता आत्मा नहीं, परन्तु अन्दर राग और द्वेष के परिणाम का भी आत्मा वस्तुरूप से (कर्ता नहीं)। आत्मा, वह स्वभाव जिसको आत्मा कहते हैं... आहा! वह तो चैतन्य का पुंज, अतीन्द्रिय आनन्द का... अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति का सागर है। आहा! सुख है अन्दर में और शोधते हैं बाहर। बराबर है, पण्डितजी! आहा!

अनन्त गुण का पुंज आत्मा है। अन्तर में तो उसकी अनन्त शक्तियाँ, अनन्त गुण भरे हैं। तो जिसको शान्ति और गुण प्रगट करना हो, उसे तो अनन्त गुण के पिण्ड पर दृष्टि करने से शान्ति मिलेगी। आहाहा! उसमें ही शान्ति पड़ी है। पड़ी है आत्मा में शान्ति सुख और आनन्द और खोजता है बाहर में। यहाँ से मिले, पैसे में मिले, धूल में मिले, शरीर में मिले, स्त्री में मिले। धूल में ही सुख नहीं कहीं। प्रभु आत्मा तो सुख का सागर है, प्रभु! ऐसा आत्मा को कर्म का कर्ता (कहना), यह कथन अहित है। आहाहा! अरे, भगवान आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु ज्ञान का नेत्र जिसमें सारा भरा है। ऐसा आत्मा, मैं कर्म को करूँ, राग को करूँ, पुण्य-पाप के विकल्प को मैं करूँ, (ऐसे) संयोगीभाव का कर्ता होता है, यह कथन ही अहित है। आहाहा! धन्नालालजी! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

प्रभु आत्मा चैतन्यस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म है। ज्ञान का सागर आत्मा है, वह आत्मा क्या

करे ? राग को करे ? व्यवहार दया-दान-व्रत आदि के परिणाम को करे ? वह करे (ऐसी मान्यता), वह तो अज्ञानभाव है। आहा ! कहते हैं, **कर्मनिकौ करता...** आहाहा ! अरे प्रभु ! तू तो चैतन्यमूर्ति आनन्द का सागर अन्दर अनादि अविनाशी तत्त्व है। देह का नाश होता है, राग का नाश होता है। आत्मा का नाश होता है कभी ? आहाहा ! **कर्मनिकौ करता...** ऐसा अविनाशी प्रभु, उसको कर्म का और राग का कर्ता कहना, यह अहित बात है। आहाहा ! लालचन्दजी ! आहा ! यह व्यापार-धन्धा कौन करे ?

मुमुक्षु : कौन करे ? पुद्गल करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ माने। एक रजकण—पलक भी फिरती है, वह जड़ की दशा है। आत्मा क्या करे ? अज्ञानी मानते हैं। अपनी चीज़ की पहिचान किये बिना मानते हैं कि मैं ऐसा करूँ, ऐसा करूँ।

अरे प्रभु ! तुझमें राग का करना, (ऐसा) कोई गुण नहीं—स्वभाव नहीं। आहाहा ! और राग, शरीर आदि का कर्ता (होने) का गुण हो तो कभी राग से छूटकर आत्मा की शान्ति मिले नहीं। दरबार ! ऐसा मार्ग है। आहाहा ! ऐसा मनुष्यपना मिला अनन्त काल में, परन्तु वह आत्मा की चीज़ क्या है, उसकी पहिचान बिना हैरान... हैरान हो गया। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा को... आहाहा ! भाषा कैसी ली है ! शरीर, वाणी, मन पर का कर्ता कहना, पर की दया पाले, हिंसा करे—ऐसा कर्ता कहना, वह तो अहित है ही। आहाहा ! अन्दर चैतन्यबिम्ब प्रभु देह से निराला है, ऐसी चैतन्यशक्ति का तत्त्व, उसको राग और पुण्य-पाप के संयोगीभाव हैं, वे स्वभावभाव नहीं। शुभ-अशुभभाव जो होते हैं, वे आत्मा का स्वभाव नहीं। वह तो विकार—विभाव है। आहाहा !

कहते हैं कि यह आत्मा को विकार का कर्ता कहना, यह अहित है, प्रभु ! आहाहा ! व्यवहार का कर्ता कहना, यह अहित है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा; हिंसा-झूठ-चोरी-विषय-भोगवासना—यह पुण्य-पाप के भाव दोनों विकल्प—राग है। उस राग का कर्ता आत्मा को कहना... आहाहा ! अहित है। क्योंकि राग और पुण्य-पाप का विकल्प अर्थात् विकार, वह स्वरूप में नहीं है। नहीं है, उसको कर्ता कहने में अज्ञानभाव है। आहाहा !

देखो, इसमें भी अधिकार आया है, भाई! कर्ता-कर्म अधिकार। तुम्हारे यहाँ कर्ता-कर्म (अधिकार) चलता है। आहाहा! प्रभु! तू इस देह से तो निराला है न! यह तो मिट्टी है। अन्दर पुण्य और पाप का भाव जो विकार होता है। वह आर्तध्यान, रौद्रध्यान विकल्प जो होता है न राग, वह तो विकार है, विभाव है, दुःख है। वह आत्मा में नहीं। उस दुःख का कर्ता आत्मा को कहना, मानना, वह अहित की बात है। आहाहा! समझ में आया?

इन लोगों को... हित की बात रखी थोड़ी। ... याद तो रखो, कहा, घर में तो रखे। सब आये थे बेचारे बहुत प्रेम से (आये थे)। और अपने सवेरे याद किया था लड़के को। प्रतिदिन याद करते हैं। आहाहा! अरेरे! ऐसी स्थिति। छोटी उम्र। यह तो स्थिति उस समय पूरी होनेवाली थी, उसमें कोई ध्यान रखे अर्थात् ऐसा रखे तो न हो, भाई! ऐसा नहीं है, हों! आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यभव मिला। यह जिन्दगी। और अकस्मात में ऐसा हो गया न, इसलिए जरा लोगों को आघात हुआ है। गाँव के सब बहुत लोगों को, हों! अरे, होने के काल में हो (उसमें) किसका लगाना? आहाहा!

वह तो शास्त्र में एक दृष्टान्त है न। एक महिला थी। वे पति-पत्नी बाहर गये हुए। पति और पत्नी बाहर कोई शंकर का मन्दिर हो न दूर, वहाँ (गये हुए)। वह रूपवान महिला थी। शरीर में चमड़ी रूपवान होगी। दूसरी हड्डियाँ हैं यह तो। आहाहा! उस महिला के ऊपर एक राजा मोहित हुआ। और वह मोहित हुआ इसलिए... आगे गये हुए पति को रखकर—छोड़कर। दूसरा... उसमें राजा उसके... इसलिए अररर... कि यह राजा... अब यह क्या कोई न मिले जंगल में। वहाँ राजा को महिला ने मार डाला। मैं तो संसार में से कथा सुनी है सब। 'नृप को मार चली अपने पियुसे, पियु सर्प डंसे, गुणीका घरकुं।'

यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है। हम तो साठ वर्ष पहले से सब देखते हैं न, देखा है न। राजा को मार डाला। यहाँ जहाँ पति के पास आयी। पति को सर्प ने डंसा। पति को सर्प काटा, वह मर गया। आहा! उसमें आये चोर। अकेली रूपवान देखकर गणिका को दिया। गणिका, समझे?

मुमुक्षु : वेश्या।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेश्या (को) दिया। और वेश्या ने वहाँ उसका एक पुत्र था पहले, वह आया। खबर नहीं रही। विषय लिया। आहा! फिर खबर पड़ी कि यह तो मेरा पुत्र है। पच्चीस वर्ष का जवान। मैं हूँ ४५ वर्ष की उम्र मेरी छोटी। यह लड़का तो (मेरा है, ऐसे) बाद में खबर पड़ी, खबर पड़ी, समझे?

मुमुक्षु : मालूम हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मालूम हुआ। भाई! हमें तो सब हिन्दी नहीं आती है। हम तो काठियावाड़ी गुजराती हैं न! थोड़ी-थोड़ी आती है, थोड़ी-थोड़ी।

उस गणिका को बहुत खेद हुआ। अररर! यह? गयी जवान (महिला) जलने को श्मशान में। लकड़ी-लकड़ी (इकट्ठी) करके सुलगायी। ऐसा आया पानी। ऐसा पानी ऊपर से आया पूर। लकड़ियाँ बह गयीं। पाँच-सात कोस। गाऊ, समझे न?

मुमुक्षु : पाँच-सात कोस।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोस। पाँच-सात कोस (दूर) निकली। उसमें एक ग्वाला निकाला। कहे, यह कौन महिला? जीवित है यह तो। मर नहीं गयी। मर नहीं गयी है। उठा लिया। घर में लेकर अग्नि से (गर्मी दी)। शादी हो गयी। (उसे अपनी) स्त्री बनाया। और एक बार दही की छाछ बनाकर... दही... दही (की) छाछ बनाकर बेचने निकली।

मुमुक्षु : मठ्ठा बनाकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : मठ्ठा बनाकर बेचने निकली। आधे मण छाछ थी।

उसमें बाजार के बीच में बनिया की दुकान थी। ठेस (ठोकर) आयी। ठेस समझे न?

मुमुक्षु : ठोकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठोकर लगी। गिर गयी। (बर्तन) फूटा और दाँत निकाले। महिला ने दाँत निकाले—हँसी। वह बनिया पूछता है कि अरे, बहिन! हँसती क्यों हो? यह फूट गया न। अरे, भाई! किसकी लगाऊँ मैं। मेरा इतिहास बहुत लम्बा है। मैं मेरे पति को छोड़कर राजा के पास गयी। वहाँ राजा मोहित हो गया। उसका मारकर यहाँ आई तो सर्प डंसा। यहाँ वेश्या (के पास) ले गया चोर। वहाँ हमने रात्रि को पुत्र के पास

विषय लिया। मैं जलने को गयी वहाँ पानी आया। जल बहाकर ले गया। यह ग्वाला मुझे ले गया। और छाछ बेचने को आयी हूँ। किसकी लगाऊँ मैं। यह तो बहुत चली है हमारे ऊपर, कहे। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा को अनादि काल से... आहाहा! अपना भगवान चैतन्यस्वरूप आनन्द को भूलकर इतने भव किये। अब क्या भव की लगाना अब? आहा! नरक के भव, पशु के भव। वह कहते हैं, कैसे किया? कि अपने आत्मा को राग और पर का कर्ता मानकर ऐसे भव किये। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : एक भव में तीन भव होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत। अठारह भव, वह नाता की (सम्बन्ध की) बात है। वह अलग बात है। सूक्ष्म बात है। अपने तो चलती है न! १८, एक भव में १८ भव (सम्बन्ध)।

मुमुक्षु : कार्तिकेयानुप्रेक्षा (में आता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कार्तिकेयानुप्रेक्षा में (संसार अनुप्रेक्षा में अन्तिम) और उसमें भी आता है।

मुमुक्षु : एक भव में अठारह नाता (सम्बन्ध)।

पूज्य गुरुदेवश्री : अठारह नाता। आहाहा! यह तो अनादि का है न! शुं—क्या नहीं बना?

यहाँ कहते हैं कि अरे भगवान! तेरी चीज़ तो अनादि-अनन्त आनन्द और ज्ञान से भरी पड़ी है। ऐसा आत्मा, उसको राग और पुण्य और व्यवहार का कर्ता कहना, कर्ता बनाना, अरे, तेरे अहित की बात है, प्रभु! आहाहा! भारी कठिन! कहो, सेठ! कहो, यह सब बीड़ी... बीड़ी का व्यापार कर सकते हैं या नहीं? आहाहा! यह पक्षघात हो जाता है तो ऐसे चले। यह तो जड़ है। जड़ की दशा को आत्मा कर सकता है? यहाँ तो इससे आगे बढ़कर ऐसा कहते हैं, प्रभु! तेरी चीज़ तो शुद्ध है न! आहाहा! यदि तुझे पवित्रता प्रगट करना है तो यह पवित्रता तो अन्दर भरी है अन्दर में। आहाहा! यह पवित्रता का पिण्ड आत्मा है। आहाहा! खबर नहीं, खबर नहीं। ऐसे आत्मा को कर्म का कर्ता कहना... आहाहा! चिमनभाई! क्या होगा यह? अरेरे! इसे कुछ खबर नहीं। आहाहा!

'सरोवर कांठे रे मृगलां तरस्या रे।' भाई ने गाया था न! वह गाया न। वहाँ मुम्बई में एक (भजन) गाया। वह वींछिया का है। वहाँ मुम्बई में व्याख्यान चलता था। लोग दस-दस हजार सुनते थे। तो उसने यह बना दिया था। 'सरोवर कांठे रे मृगलां तरस्या रे लोल, अे दोडे झांझवा जळनी... हांफी दोडे झांझवा जळनी रे काज।' मृगतृष्णा। जहाँ रेतीली जमीन होती है, वहाँ सूर्य की किरण आती है तो मृग (को) पानी जैसा दिखता है। वहाँ पानी है नहीं। दरबार! पानी है वहाँ? वह दौड़े हांफे... दौड़े समझे?

मुमुक्षु : दौड़ लगाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दौड़ लगाते हैं।

भाई! हमारी सब काठियावाड़ी भाषा है। दोडे हांफी... हांफ—श्वास करते... करते... उस मृगजल के काज। यह वहाँ पानी नहीं होता, भगवान! उस मृगजल में पानी नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा अपने सुख के लिये पर में गति करे—दौड़ता है। पैसे में सुख है, कीर्ति में सुख है, शरीर में सुख है, स्त्री में (सुख है)। धूल भी नहीं, मृगजल है। आहाहा! यह राग का कर्ता होना, वह मिथ्यात्व का जल है। आहाहा! सच्ची बात है। पूनमचन्दजी! आहाहा!

कर्मनिकौ करता... कहना... प्रभु आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है न! आँख की पलक से बालू उठाना। बालू यह रेत...

मुमुक्षु : रेती, रेत।

पूज्य गुरुदेवश्री : रेती। वह उठा सकते हैं? इसी प्रकार भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु आत्मा, ज्ञान का समुद्र प्रभु आत्मा, वह तो जानने-देखनेवाला है। तीन काल-तीन लोक को जाने-देखे, ऐसी उसकी शक्ति है। आहाहा! राग का और पर का कर्ता हो, (ऐसा) उसमें कोई गुण है (नहीं)। आहाहा! समझ में आाय? आहा! ऐसे अवतार मिले और यदि यह नहीं किया, वह कुत्ता और कौआ जैसा अवतार है सब। कौआ, समझे? कागडा। कौआ... कौआ। पण्डितजी! **कर्मनिकौ करता...** अरे प्रभु! चैतन्य है न तू! ज्ञानसमुद्र है न! प्रज्ञाब्रह्म आनन्दकन्द है आत्मा। उसको राग का कर्ता (कहना) अहित की बात है।

अरे, **भोगनिकौ भोगता...** आहा! राग का भोगनेवाला कहना, वह अहित की बात है। शरीर को तो भोग सकता नहीं, वह तो मिट्टी-जड़ है। दाल-भात-रोटी-मौसम्बी-हलुवा—परिखाद्य भोग सकते हैं? वह तो जड़ है, मिट्टी है। यह खाने के काल में उसे राग आता है। वह राग... राग को भोगते हैं। परन्तु यहाँ कहते हैं कि आत्मा भगवान आत्मा को राग का भोक्ता कहना, यह अहित है। आहाहा! वह तो आनन्द का भोक्ता प्रभु आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द का। जैसे पर्वत में जैसे पानी झरता है। निर्झर—पानी झरता है न? वैसे चैतन्य प्रभु आनन्द से भरा (है, उसमें) तो आनन्द का धारावाही जल उसमें से निकलता है, ऐसी वह चीज़ है। समझ में आया? उसको छोड़कर... आहाहा! राग और द्वेष, संकल्प-विकल्प का भोक्ता माने। कहते हैं कि प्रभु! यह विकार-विष्टा का भोगना, वह अमृतसागर को शोभता है? आहा!

भगवान आत्मा अमृत का सरोवर है। उसे छोड़कर राग... पुण्य-पाप का राग—विकल्प भोगना... लोग नहीं कहते? भाई, हमारे पैसा पुण्य से मिला (तो) हम भोगते हैं? क्या भोगते हैं? धूल। पैसा तो जड़ है। जड़ भोगते हैं? जड़ भोगना... आत्मा तो अरूपी चैतन्यघन है। वह अरूपी चैतन्य क्या शरीर आदि रूपी को भोग सकता है? वह तो जड़ है। मात्र उस काल में उसको राग आता है, प्रेम आता है (तो) वह राग को भोगता है। और जब प्रतिकूलता आती है... बुखार आता है, रोग आता है, कोई छुरे से मारता है, तो उस समय द्वेषभाव आता है। बस, द्वेष और राग का वह भोक्ता है। परन्तु वह (कर्ता-भोक्ता) कहना, यह अज्ञान और अहित है, कहते हैं। आहाहा! चिमनभाई!

कहो, यह सब पैसेवाले तुम भोगते होंगे या नहीं पैसे को?

मुमुक्षु : नहीं, बिल्कुल नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? पैसावाला कब आत्मा हो? आहाहा! पैसावाला, स्त्रीवाला, पुत्रवाला। कितने वाळा? एक वाळा निकले तो चिल्लाहट निकल जाये। वाळा समझते हैं, वह वाळा... वाळा...

मुमुक्षु : शरीर में रोग होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ऐसा पानी पीने में आता है न, तो पैर में से वाळा निकलता

है, ऐसा। बहुत पीड़ा। वाळा नाम का वह प्राणी। यह तो कितना वाळा है? सेठ! बीड़ीवाला, पैसावाला, भाईवाला, स्त्रीवाला, पुत्रवाला, कीर्तिवाला। अररर! कितने वाळा?

मुमुक्षु : इस वाळा का अर्थ अलग और उस वाळा का अर्थ अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐई, मलूकचन्दभाई! हमारे पैसेवाले हैं वे। पण्डितजी! जानते हो न? उसके दो लड़के हैं। पाँच करोड़ रुपये हैं, पाँच करोड़। उसके नहीं, लड़के के हैं। उसका नहीं परन्तु लड़के का है।

मुमुक्षु : यह घड़ीक में फिर कहोगे, लड़के के नहीं, जड़ के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के का क्या है? मानता है मूर्ख। आहाहा!

जगत की चीज़ जड़-मिट्टी-धूल को अपना मानना, मूढ़ता है। अपनी सम्पदा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् आत्मा, ऐसे आनन्द और ज्ञान आत्मा में शाश्वत है, वह अपनी चीज़ है। उस अपनी चीज़ को जानकर अपना आनन्द और ज्ञान का कर्ता होना, वह भी व्यवहार है। आनन्द का भोक्ता होना, वह भी व्यवहार है। पर्याय है न। आहाहा! भाई! तेरी चीज़ का तुझे पता नहीं। प्रभु! तू कौन है? समझ में आया? श्रीमद् ने कहा न! श्रीमद् राजचन्द्र (ने) सोलह वर्ष में (कहा)।

जगत की चीज़ जड़—मिट्टी—धूल, उसे अपना मानना, मूढ़ है। अपनी सम्पदा अन्दर में सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् आत्मा, ऐसे आनन्द और ज्ञान आत्मा में शाश्वत् है। वह अपनी चीज़ है। अपनी चीज़ को जानकर अपना आनन्द और ज्ञान का कर्ता होना, वह भी व्यवहार है। आनन्द का भोक्ता होना, वह भी व्यवहार है। पर्याय है न! आहाहा! भाई! तेरी चीज़ क्या है, तुझे पता नहीं प्रभु! तू कौन है? समझ में आया? श्रीमद् ने कहा न! श्रीमद् राजचन्द्र, १६ वर्ष में। १६ वर्ष की उम्र। पूर्व का जातिस्मरण था।

आज तो लड़की आयी नहीं होगी न? अभी नहीं आवे न?

मुमुक्षु : स्कूल गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्कूल गयी। वह लड़की है न यहाँ अपने। उसके बड़े भाई की पुत्री—लड़की। पूर्व भव का ज्ञान है। जातिस्मरण है। पूर्वभव का ज्ञान है, उसे तो देखा है न भाई! वह लड़की है राजुल। यहाँ है। बहिन के बड़े भाई है न! आज (स्कूल)

गयी है। उनके लड़के की लकड़ी है। उसको पूर्वभव का ज्ञान है।

जूनागढ़ में लुहार की लड़की थी। लुहाणा समझते हो?

मुमुक्षु : जाति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक जाति है लुहार। हमारे काठियावाड़ में बहुत हैं।

मुमुक्षु : जातिस्मरण भी बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत (किस्से) आते हैं। अभी है। लड़की यहाँ है। पढ़ने को गयी है। यहाँ रहती है। तो पूर्व की लुहार की लड़की (थी, वह) यहाँ अपने नौ महीने सत्रह दिन में वह जन्मी। वहाँ देह छूट गयी। माता के गर्भ में आयी और नौ महीने सत्रह दिन में जन्मी। ढाई वर्ष में बोली, 'मैं तो गीता हूँ और मैं तो जूनागढ़ की लड़की हूँ। मेरे पिता है, माता, है सब। बहुत होशियार है।' ऐसे तो अनन्त भव किये, उसमें है क्या? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अरे! प्रभुता में... आहाहा! भाषा देखो न! भगवान आनन्दस्वरूप है न, प्रभु! वह तो ज्ञान का सरोवर है। ऐसे आत्मा को विकार का कर्ता और विकार का भोक्ता कहना... **जाकी प्रभुतामैं ऐसौ कथन अहित है।** आहाहा! अरे, आनन्द का नाथ तू है न, प्रभु! तुझे खबर नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द से यहाँ (भरा) पड़ा आत्मा है। कभी पूछा नहीं, सुना नहीं। ऐसे-ऐसे अनादि काल से... यहाँ तो कहते हैं, बनारसीदास। **जाकी प्रभुतामैं ऐसौ कथन अहित है।** आहाहा!

मुमुक्षु : कथन करना ही अहित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अहित है, उसका नाम भाव अहित है। आहाहा!

चैतन्यसूर्य प्रभु है न अन्दर। सूर्य में से क्या मलिन किरण निकलती है? कोयले की निकलती है कोयले की? सूर्य की किरण तो स्वच्छ है। उसी प्रकार चैतन्यसूर्य भगवान आत्मा अन्दर है। अरे! परन्तु खबर नहीं होती। ऐसे चैतन्यसूर्य में से क्या राग की—कोयले की किरण निकलती है? यह उसमें है नहीं। परन्तु नयी बनाता है। राग और पुण्य-पाप के विकल्प। आहाहा! मैं दुःखी हूँ। क्या दुःखी है? दुःख का अर्थ क्या? तेरी पर्याय में राग और द्वेष है, वह दुःख है। आत्मा दुःखी है नहीं। आत्मा तो

आनन्दस्वरूप है। उसको भूलकर, प्रभुताई में यह कहना कि राग का कर्ता और भोक्ता है, वह तो प्रभुताई में हीनता है, लांछन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान अविनाशी तत्त्व है। देह छूटता है तो आत्मा का नाश होता है? आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा तो अमर।

पूज्य गुरुदेवश्री : नित्य। रतिभाई! कहा था न तुम्हारे? शान्ताबेन ने, नहीं? अन्त में देह छूटते हुए... क्या कहा था?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, तब नहीं। देह छूटने के काल में। देह छूटने के काल में सुना था। शान्ताबेन बोली थीं। बोली थीं। यहाँ तो बात सब आवे न! तुमको खबर नहीं हो, लो। अन्तिम दिन... मैं तो ३६ घण्टे में (भाई) असाध्य थी तब आया था वहाँ। असाध्य हो गये। कुछ भान नहीं हो। अब पैसा करोड़ों थे। स्त्री, पुत्र, भाई थे। उनके पिता भी बैठे थे। क्या करे धूल? आहाहा!

छह दिन तक असाध्य। यह रतिभाई के बड़े भाई। फिर सुना था। शान्ताबेन यहाँ हैं? शान्ताबेन ने अन्त में कहा था (ऐसा) सुना था।

मुमुक्षु : रूबरू कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : रूबरू कहा था? बराबर खबर नहीं। ऐसे रूबरू कहा था, वह दूसरी बात की थी। ऐसा कि महाराज और मुझे कोई.... महाराज पधारे हैं तो शरीर निरोग हो जाये (ऐसा) हमारे सम्बन्ध नहीं। निरोग हो या सरोग हो, वह तो शरीर की अवस्था है। बाकी महाराज आये और ३६ घण्टे से असाध्य था, असाध्य। पाव घण्टे साध्य (हो) आया। चन्दुभाई डॉक्टर ने कहा न, प्रभुभाई! यह भाई थे, पिता थे, करोड़ों रुपये थे। क्या करे धूल? पर में क्या है परन्तु पर के कारण? आहाहा!

प्रभुभाई! महाराज सोनगढ़ से आये हैं, ऐसा कहा। ३६ घण्टे असाध्य। यह डाला वह... डालते हैं न कुछ?

मुमुक्षु : ऑक्सीजन की नली।

पूज्य गुरुदेवश्री : नली डाले ने वह सब यह... क्या कहलाता है? पाव घण्टे

साध्य (होश) आया। चरण छुए आँख में से आँसू आये। क्योंकि देह छूटने का काल था। आहाहा! यह सब भाई साथ में थे। कुछ डाला सहाय?

मुमुक्षु : अपने में न डाल सके वहाँ कहाँ डाले?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! पैसे करोड़ों थे। डाले क्या? धूल करे। करोड़, वह तो उसके घर में—जड़ मे रहे। आहाहा! यह तो शान्ताबेन ने अन्त में कुछ कहा था। उस समय कहा था, 'चला जा आत्मा। तू शाश्वत् है। यहाँ से जाने पर कहीं तेरा नाश हो... तेरा नाश होता नहीं। जाना हो तो जा।' ऐई! ऐसी बात सुनी थी, नहीं? किसी ने (कहा था)। शान्ताबेन ने कही। वरना यह पति मरता है और उसे कहना... 'अरे! तू आत्मा है। शाश्वत् है। जा।' देहस्थिति पूरी हो गयी। आत्मा का कोई नाश (है नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अरे! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय चैतन्य का नूर, पूर आत्मा अन्दर है। आहाहा! यह कैसे बैठे! यह अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है। भाई! तुझे खबर नहीं। अन्तर में तो अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा की प्रभुता में राग का कर्ता और राग का भोक्ता कहना, यह अहित की बात है। आहाहा! पूनमचन्दजी! वहाँ है दूसरे में है ऐसी बात?

मुमुक्षु : कलंक।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलंक है। आहाहा! प्रभु! तू तो आनन्द का नाथ आनन्द सरोवर है। आहाहा! तेरी शक्ति में—तेरे स्वभाव में तो मात्र आनन्द और ज्ञान भरा है। क्या पुण्य-पाप का राग और शरीर उसमें भरा है अन्दर में? आहाहा! यह कहते हैं कि अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि मैं पुण्य-पाप का करनेवाला, रचनेवाला और उसका भोगनेवाला (हूँ ऐसा) अज्ञानी मानते हैं।

जामैं एक इंद्री आदि पंचधा कथन नांहि... आहाहा! क्या कहते हैं? वनस्पति (काय) में भी आत्मा गया था। यह पीपल और नीम है न। नीम और पीपल। उसमें भी अनन्त बार गया था। यह एकेन्द्रिय जीव है। तो कहे, एकेन्द्रियपना उसको लागू पड़ता ही नहीं। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय एकेन्द्रियपना उसमें है ही नहीं। आहाहा! एकेन्द्रिय में जब था, तब भी तुम तो प्रभु पूर्णानन्द द्रव्यस्वभाव

था। लट हुआ। लट... लट दो इन्द्रिय है न। **इंद्री आदि पंचधा कथन...** दो इन्द्रिय। यह एकेन्द्रिय वनस्पति, पानी / जल आदि एकेन्द्रिय जीव है। पीपल, लीमडा—नीम और ईयल... ईयल। ईयल होती है न बारीक। वह दो इन्द्रिय है। उसको शरीर है और जीभ है। दो इन्द्रिय है। तो यह दो इन्द्रिय है, वह आत्मा की चीज़ नहीं। आहा! द्रव्य में दो इन्द्रिय (आदि) इन्द्रियपना है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा! यह तो अनीन्द्रिय भगवान आत्मा है। आहाहा!

एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय। यह बिच्छु, कीड़ी, यह तीन इन्द्रिय है। शरीर है, जीभ है और नाक है। और चार इन्द्रिय। यह मक्खी, पतंगिया, यह चार इन्द्रिय है। शरीर है, जीभ है, नाक है और आँख है। और यह मेंढ़क, मनुष्य और नारकी आदि पंचेन्द्रिय हैं। परन्तु कहते हैं कि यह एकेन्द्रियपना और पंचेन्द्रिय (पना) उसमें—द्रव्यस्वभाव में है ही नहीं। वह तो पर्याय में है। पर्याय उसकी चीज़ नहीं। आहाहा! अरे, ऐसी चीज़ की खबर नहीं। **जामैं एक इंद्री आदि पंचधा कथन नांहि...** उसमें कहा न, **ऐसौ कथन अहित है**। यह कथन उसमें है नहीं। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा ध्रुव अविनाशी, आदि और अन्त रहित चीज़ वह आत्मा है, उसका एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय यह कथन नहीं। वह अनीन्द्रिय भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

शरीर के रजकण में अन्दर चैतन्य भगवान चैतन्यसूर्य, उसको एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय (वाला) कहना। कहे, नहीं। वह आता है न। इच्छामि पडिक्कमणा। नहीं आता है? ऐंगिदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिदिया... यह सब पर्याय की बात है। आहाहा! भगवान अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्य द्रव्य—पदार्थ, उसमें एकेन्द्रिय आदि का कथन है नहीं। एकेन्द्रिय आदि का कथन करना, वह तो व्यवहारनय का विषय है। निश्चय का स्वरूप यह है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : जीव दो प्रकार का है—संसारी और सिद्ध। संसारी में तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : संसारी में नहीं, (उसके) द्रव्य में नहीं। वह तो बात चलती है। वस्तु है त्रिकाली ज्ञानानन्द ज्ञान का रसकन्द प्रभु, उसमें एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय है नहीं।

मुमुक्षु : संसारी आत्मा में....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसारी आत्मा में पर्याय में है, द्रव्य में नहीं।

मुमुक्षु : संसार स्वयं पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार स्वयं विकार पर्याय है। आहाहा! बात ऐसी बहुत गम्भीर... आहाहा!

भगवान आत्मा देहदेवल में भिन्न प्रभु है, प्रभु भिन्न है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पर्याय से भी भिन्न है। संसार में भिन्न है। संसार उसकी दशा है नहीं। संसार तो विकारीभाव है। उस विकारीभाव से भगवान तो अन्दर भिन्न है। भिन्न न हो तो विकार टलकर मुक्ति कभी होगी नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब भाई! साधारण बात भी सुनी न हो, उसको तो ऐसा लगे कि यह क्या है? अरे भगवान! तेरी चीज़ की बात चलती है। आहाहा! है... है... अनादि से हो तुम तो। नया आत्मा उत्पन्न होता है? और उसका नाश होता है कभी? अनादि-अनन्त है। आदिरहित, अन्तरहित चीज़ आत्मा है अन्दर। ऐसे द्रव्य स्वभाव में और द्रव्य-वस्तु को एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि कहना, यह कथन नांहि (अर्थात्) यह कथन झूठा है। आहाहा!

व्यवहार है न व्यवहार, वह अभूतार्थ है। कहो, यह अभूतार्थ आ गया। पंचेन्द्रिय जीव है और एकेन्द्रिय जीव है, यह व्यवहार है और व्यवहार अभूतार्थ है। अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ है। आहाहा! भगवान अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु, आहाहा! जिसमें शोक नहीं, उदासीनता नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं। आहाहा! ऐसी जो चीज़ है, उसको ऐसे कहना कि यह पंचेन्द्रिय मनुष्य है, पंचेन्द्रिय देव है। नहीं, वह वस्तु में—स्वभाव में नहीं। और वस्तु का स्वभाव ऐसा है, ऐसी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। जैसी सत्यार्थ चीज़ है, उसका अन्तर अनुभव दृष्टि करना, उसका नाम सच्चा धर्म और सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

सदा निरदोष बंध मोखसौं रहित है... आहाहा! कर्म का सम्बन्ध है और सम्बन्ध छूटा, ऐसा आत्मवस्तु—द्रव्य में है नहीं। अरे, राग था और राग छूटा, वीतराग हुआ, ऐसा भी द्रव्य में है नहीं। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु है, अनादि से है और अनन्त काल रहेगा। कभी आत्मा का नाश होता है? आहाहा! एक देह छोड़कर दूसरे देह में, दूसरा देह छोड़कर तीसरे देह में... अरे! परन्तु वह तो देह और देह की दशा या एकेन्द्रिय आदि कोई आत्मा की अन्दर की चीज़ है? अन्दर की हो तो छूटे नहीं कभी। आहाहा!

समझ में आया ? तो उसका अर्थ यह हुआ कि एकेन्द्रिय आदि जो पर्याय है, उसका भी कर्ता आत्मा को कहना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खण्ड-खण्ड है। यह कहाँ आत्मा—द्रव्य है ? कहो, समझ में आता है ? समझाय छे, यह हमारी गुजराती भाषा है। समझाय छे ? यह तुम्हारी, समझ में आता है, ऐसी। अब थोड़ी-थोड़ी गुजराती आ जाती है यहाँ। (क्योंकि) हम तो गुजराती हैं न!

मुमुक्षु : गुजराती सीखते जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो धीरे-धीरे आवे।

सदा निरदोष... क्या कहा ? भगवान आत्मा जो नित्य वस्तु है, वह तो सदा निर्दोष ही है। दोष और बन्धन आदि, राग आदि कहना, यह तो व्यवहार है, यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! सेठ! **सदा निरदोष...** तीन काल में द्रव्यस्वभाव सत्त्व ज्ञान का रसकन्द आत्मा, वह तो सदा निर्दोष ही है। आहाहा! **बंध मोखसौ रहित है...** राग का सम्बन्ध था और राग का सम्बन्ध छूटा—ऐसा द्रव्यस्वभाव में है नहीं। बन्ध—सम्बन्ध। सम्बन्ध, सम्बन्ध रहित—ऐसी दो दशा द्रव्य में नहीं। अरे, अरे! समझ में आया ? ऐसा आत्मा का अन्तर में अनुभव करना, ऐसी दृष्टि उसमें लगाना, उसका नाम जन्म-मरण नाश करने का उपाय है। बाकी तो जन्म-मरण करके मर गया। आहाहा! समझ में आया ? सदा निर्दोष कहा है न ? '**बंध मोखसौं रहित है**।' आहाहा!

है न पाठ में। '**बन्धमोक्षप्रकभृप्तेः दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रकभृप्तेः**' पाठ है। आहाहा! वस्तु जो भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का रसरूप प्रभु आत्मा, वह वस्तु बन्ध और मोक्ष की दशा से रहित है। समझ में आया ? अरे! व्यवहार से है सही, परन्तु यह तो व्यवहार से है। व्यवहारनय से है, ऐसा तो मानना चाहिए, (परन्तु) निश्चय वस्तु में है नहीं। समझ में आया ? आहाहा! अबद्धस्पृष्ट है न! १४वीं, १५वीं गाथा में कहा है। अबद्धस्पृष्ट १४वीं, १५वीं (गाथा समयसार)। भगवान आत्मा को राग और कर्म से बन्ध है ही नहीं, भिन्न पड़ा है। चैतन्यसूर्य ऐसा आत्मा... आहा! क्या चीज़

है, उसकी कीमत नहीं, उसको खबर नहीं। दुनिया की चतुराई करे, ऐसा... फैसा... वैसा... सब मूर्खता है। इसलिए कहते हैं न कि कीमत कर उसमें। पर की कीमत छोड़ दे। हम पैसेवाले हैं और हम शरीरवाले हैं और सुन्दर हैं न। यह तो धूल है। यह कहाँ तेरी थी? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हम बन्ध में हैं और हमें मोक्ष होगा, यह चीज़ द्रव्य में है नहीं। द्रव्य तो सदा मुक्त ही है। आहाहा! वस्तु... वस्तु। आहाहा! आनन्द के धाम में शोक है यह, राग है यह, दुःख है यह। वह चीज़ है नहीं अन्दर में। वह अज्ञानरूप से नया उत्पन्न करता है। आहाहा! **बंध मोखसौं रहित है।** अब, यह तो नास्ति से बात की। अब है क्या? है क्या? आत्मा अन्दर चैतन्य वस्तु है क्या?

ग्यानकौ समूह ग्यानगम्य है सुभाव जाकौ... आहाहा! भगवान तो चैतन्यसूर्य है अन्दर। चैतन्यसूर्य, वह ज्ञान का समूह है। वह तो आया न उसमें तुम्हारे। द्रव्य किसको कहते हैं? गुण के समुदाय को—गुण के समूह को द्रव्य कहते हैं। तो यहाँ तो ज्ञान के समूह को कहा आत्मा। ज्ञान के साथ अनन्त गुण (आ गये)। आहाहा! यह तो सिद्धान्तप्रवेशिका में आता है। आता है या नहीं? अनन्त गुण के समूह को भगवान आत्मा द्रव्य कहते हैं। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, **ग्यानकौ समूह ग्यानगम्य...** यह द्रव्य को ज्ञान का समूह कहा मुख्यरूप से। चैतन्य प्रकाश की मूर्ति प्रभु अन्दर... आहाहा! जिसके प्रकाश में जगत की चीज़ प्रकाशित हो, उस प्रकाश को भी प्रकाशित करे, ऐसी चीज़ आत्मा है। इसमें तो ऐसा लिया, ज्ञान का समूह। उसका अर्थ है कि तीन काल-तीन लोक को जानने का समूह है वह। किसी का कर्ता है यह....

मुमुक्षु : है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो क्रमबद्ध में उसमें आ गया यह। समझ में आया? वह तो टीका में लिया न, भाई!

मुमुक्षु : अकर्ता सिद्ध करने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका अर्थ यह। तीन काल-तीन लोक को जानने का

ज्ञान का पिण्ड प्रभु, वह राग का कर्ता नहीं, पर का कर्ता नहीं, ज्ञाता-दृष्टा है, उसमें क्रमबद्ध आ गया। जिस समय जहाँ जो होता है, उसको जाननेवाला आत्मा है। आहाहा! किसी को फेरफार कर दे, ऐसी चीज़ आत्मा में है नहीं। आहाहा! अपनी पर्याय भी जिस समय में जो होती है, उसको फेरफार करे, ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं। वह तो ज्ञान का समूह—पिण्ड है। आहाहा! पर्याय को आगे-पीछे करने की सामर्थ्य है, ऐसा उसमें है? आहाहा! गजब बातें, भाई! आहाहा!

कहते हैं, **ग्यानकौ समूह...** जैसे मिठास का समूह शक्कर—चीनी मिठास का समूह। शक्कर, गुड़ मिठास का पिण्ड है, ऐसे भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड है अन्दर। चैतन्यप्रकाश का नूर का पूर आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान का अवतार है। ज्ञानरूप ही है वह वस्तु। आहाहा! यह अपनी चीज़ ऐसी है, (ऐसा) उसको कभी सुना नहीं, जाना नहीं, रुचि की नहीं। भटकता राम चार गति में अवतार करता है। मरता और जन्मता है, पर्याय में, हों! आत्मा कहाँ मरे? पूर्व की पर्याय व्यय हुई, वह मरे। नयी पर्याय उत्पन्न हो, वह जन्म कहलाये। आहाहा! समझ में आया? **ग्यानकौ समूह...** भगवान आत्मा स्व और पर का जानने का समूह है। ज्ञानगम्य है, देखो। यह तो ज्ञान से जानने में आता है। कोई क्रियाकाण्ड, राग दया-दान-व्रत से जानने में आता नहीं। समझ में आया?

इस चीज में ज्ञान भरा है। समझण का पिण्ड है तो ज्ञानगम्य है वह। ज्ञान का कण प्रगट करके उससे गम्य होता है। कोई विकल्प, दया-दान-व्रत-भक्ति आदि के विकल्प से उस आत्मा का भान होता है, ऐसा है नहीं। कहो, कान्तिभाई! ऐसा है सब यह तो। गजब बात की है! यह तो बनारसीदास का कहा न! 'करनीका रस मिटि गयो, भयो न आतमस्वाद, भयी बनारसीकी दशा, जथा ऊंटका पाद।' ऊँट होता है न, ऊँट। ऊँट का पैर टूटे न पैर। बस समाप्त। चल सके नहीं। वहीं का वहीं मर जाये। ऊँट... ऊँट के तो टेढ़े होते हैं न सब अवयव? ऐसा पैर ऐसा टेढ़ा-वंका है।

मुमुक्षु : अठारह ही (अंग) टेढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अठारह ही टेढ़े। ऊँट के अठारह (अंग) टेढ़े।

एक बार ऊँट देखा था, बहुत वर्ष पहले। हमारे नागनेश जाना था। राणपुर से

नागनेश। उसका गाँव है। बीच में ऊँट पड़ा था। जवान ऊँट हों, जवान। हम निकले... बहुत वर्ष हो गये उसको। ५२-५५ वर्ष हो गये। राणपुर से नागनेश जाते थे विहार करके। तो एक ऐसी थोर की वाड में एक ऊँट पड़ा था। जवान ऊँट, हों! मैंने कभी सुना नहीं था। हम तो... मैंने कहा, यह ऊँट क्यों पड़ा है यहाँ? यह तो निरोगी है, जवान है। तो किसी ने कहा कि उसका पैर टूट गया है। अब चल नहीं सकता। तब? यहीं का यहीं मरनेवाला है। आहाहा! पानी नहीं, घास नहीं। कौन डाले, जंगल में कौन दे? यह सूखकर मर जायेगा। हिल सके नहीं। पैर... पैर का भाग है न, ऐसा टेढ़ा होता न, वह टूट गया है। ऐसा चलता था....

ऐसा पहले-पहले सुना था छोटी उम्र में। हमने कभी सुना नहीं था। ऐसा कहते हैं, जिसे यह राग की क्रिया का रस छूट गया, परन्तु आत्मा के आनन्द का भान नहीं किया, वह ऊँट के पैर जैसा है। ऊँट का पैर टूटा और अब वह निरोग हो नहीं। इससे ऐसा नहीं कहा उन्होंने कि शुभभाव में कुछ धर्म है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो ज्ञानगम्य है। **सुभाव जाकौ,** ऐसा है न? जिसका स्वभाव... स्व-भाव ज्ञानगम्य है। वह ज्ञान से जानने में आता है। राग और क्रिया पुण्य-पाप की क्रिया से यह आत्मा जानने में नहीं आता। समझ में आया? **ग्यानकौ समूह ग्यानगम्य है सुभाव जाकौ...** कितना बनाया है! आहाहा!

लोक व्यापी लोकातीत... कैसा है भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु? कि लोकव्यापी। जगत का जाननेवाला। तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला है। लोकव्यापी, परन्तु लोकातीत—जगत से भिन्न है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला भगवान आत्मा है, तथापि लोक और तीन काल से भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? यह सर्वविशुद्ध अधिकार चलता है। आहाहा! ऐसा सर्वविशुद्ध प्रभु है, ऐसी दृष्टि करना और अनुभव करना, वह धर्म है। यह जन्म-मरण से निकलने का यह उपाय है। बाकी तो मर जाये चौरासी के अवतार में। व्रत और नियम भी अनन्त बार किये, स्वर्ग में गये।

'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फेर पीछो पटक्यो।' वहाँ से पड़ा नीचे ... यह तो हम दुकान में यह पढ़ते थे, दुकान में। ६० वर्ष पहले की बात है। ६० वर्ष। दुकान में पुस्तक रखी थी, पुस्तक। हम तो पहले से ये (श्वेताम्बर) थे न, छोटी उम्र से। एक

सज्झायमाला है चार (भाग), श्वेताम्बर में। वह सब पुस्तकें हम दुकान में रखते थे। यहाँ है चार पुस्तक सज्झायमाला। एक-एक सज्झायमाला में २००-३०० सज्झाय है।

उसमें ऐसा आया था कि 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछो पटक्यो।' आत्मा के अनुभव और सम्यग्दर्शन बिना... यह जैसे कहा न वह, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार.... '

मुमुक्षु : छहढाला में।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस दिन वह कहाँ वाँचा था वहाँ? पुस्तक में आया था हमारे तो। द्रव्यसंयम... आत्मा का भान और अनुभव बिना यह पंच महाव्रत आदि द्रव्यसंयम लिया, स्वर्ग में गया, वहाँ से पटका नीचे। मनुष्य होकर, पशु होकर नरक में जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

जिसको भगवान आत्मा का अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, अपनी चीज़ का माहात्म्य से आनन्द का वेदन नहीं, उसको तो चौरासी का अवतार है। संयम पालन करे तो स्वर्ग में जाओ। उसमें क्या आया? स्वर्ग में—देव में गया तो धूल है वहाँ। इन्द्राणी आदि है, वह सब धूल है। और भोगने का भाव है, वह तो राग और कषाय अंगारा है। वहाँ कहीं सुख-बुख स्वर्ग में है नहीं। कहो, सेठ! यह पैसेवाले को सुख होगा या नहीं? नहीं? धूल का (सुख) हो तो बहुत सुख (होना चाहिए)। पैसावाला कहते हैं तुमको। बुन्देलखण्ड का बादशाह। यहाँ तो, राग का बादशाह मानना, वह मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

लोकव्यापी लोकातीत लोकमैं महित है... लो, ठीक। क्या कहते हैं? संसार में यह पूजनीय आत्मा... यह आत्मा पूजनीय है, उपादेय। त्रिकाल ज्ञायक चिदानन्द प्रभु, वह बन्ध, मोक्ष और राग से रहित है, वही उपादेय है। धर्मी को वही आदरणीय है, आदर करनेयोग्य है। है न पाठ? **लोकमैं महित है...** अर्थात् पूजनीय। इस जगत के अन्दर ऐसा प्रभु अपना निजस्वरूप शुद्ध आनन्दधाम, वही अंगीकार करनेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य है, बाकी सब चीज़ मिथ्या है फोगट है। आहाहा! समझ में आया? **लोकव्यापी लोकातीत लोकमैं महित है...** क्या कहते हैं? संसार में चार गति में यदि

उपादेय—आदरणीय हो तो एक आत्मा ही—द्रव्यस्वभाव (ही) है। पण्डितजी!

सुद्ध बंस सुद्ध चेतनाकै रस अंस भरयौ... यह तो शुद्ध का वंश आत्मा है, पवित्रता का वंश है। उसमें से—वंश में से पवित्रता प्रगट होती है। समझ में आया? **सुद्ध बंस,** चैतन्य ध्रुव और **सुद्ध चेतनाकै रस अंस भरयौ...** वह तो शुद्ध चेतना के रस से अंश भरा है। **ऐसौ हंस परम पुनीतता सहित है,...** लो। **ऐसौ हंस...** अर्थात् आत्मा त्रिकाल रहनेवाला भगवान **परम पुनीतता—**परम पवित्रसहित है। राग आदि है नहीं, परम पवित्रसहित है। यह आत्मा अन्तर में दृष्टि करनेयोग्य है, उसकी श्रद्धा करनेयोग्य है। उसका आचरण करनेयोग्य है, वही उपादेय है। उसका नाम धर्म है। बाकी धर्म-फर्म कोई दूसरे से होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११८, श्रावण शुक्ल ६, बुधवार, दिनांक २८-०७-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-३, ४, ५

कुन्दकुन्दाचार्य कृत (समयसार)। उसकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि। उसमें वह कलश लिया है। यह कलश की टीका राजमल्लजी ने हिन्दी में बनायी है। आता है न? उसमें से समयसार नाटक बनाया है। उसकी उत्पत्ति यह है। कुन्दकुन्दाचार्य ने श्लोक (गाथायें) बनाये। अमृतचन्द्राचार्य ने टीका की। उसमें कलश रचे। कलश की टीका हिन्दी में है न यहाँ? राजमल्ल टीका। उसमें से यह समयसार नाटक बनाया। इसमें सब लिखा है पीछे। सर्वविशुद्ध अधिकार चलता है।

मुमुक्षु : नाटक नाम क्यों धरा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परिणमन करता है न भिन्न-भिन्न। 'नट नागर की बाजी।' आत्मा नट है, वह अपने परिणमन में नाटक करता है—परिणमन करता है। अज्ञानरूप से विकाररूप परिणमन करता है। भानरूप से ध्यान और आनन्दरूप परिणमन करता है। इसलिए उसको नाटक कहने में आया है।

मुमुक्षु : यहाँ कोई नाटक के पाठ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नाटक। वह नाटक की व्याख्या पहले ऐसे करते थे। 'न टिके, वह नाटक।' भाई! बदले।

यह तो बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६८। गारियाधार में था एक वहीवटदार। तो उसका लकड़ा मोरबी का था। तो वह बड़ा नाटक करता था। मोरबी का। यह तो बहुत वर्ष की बात है। कोई ६० वर्ष पहले की बात है। हम तो दीक्षा लेने (वाले) थे न! तो (लोग) ख्याल रखते थे न। वहीवटदार था न। बहुमान से बुलाते थे। घर पर ले जाते थे। तो उस समय एकबार ऐसा नाटक का अर्थ किया था। ६० वर्ष पहले। 'न टिके, वह नाटक।' आत्मा में पर्याय एक समय टिकती है, कायम नहीं टिकती। अनेकरूप धारण करती है। वह तो उस समय... भाई! यह कहाँ समयसार तब देखा था? वह वहीवटदार था बड़ा। उसका पुत्र मोरबी के थे। बड़ा नाटक करता था। फिर उसे कहा। मैंने कहा, भाई! नाटक तो यह कहलाता है। जो जो बदले, बदले बिना न

रहे, पलटे, न टिके, उसका नाम नाटक। आत्मा पर्यायरूप से परिणमता है, उसका नाम नाटक।

यहाँ कहते हैं, सर्वविशुद्ध अधिकार में। आत्मा कर्ता नहीं, यह सिद्ध करना है। भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति निश्चय से सर्वविशुद्ध स्वभाव से भरा आत्मा राग का भी कर्ता नहीं, कर्म और शरीर का या पर का तो कर्ता है (नहीं)। ऐसा उसका स्वभाव है। आहा! ऐसे स्वभाव की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है। आहाहा! एक कलश तो आ गया। तीसरा... तीसरा है इसमें। तीसरा पद है न?

★ ★ ★

काव्य - ३

पुनः (दोहा)

जो निहचै निरमल सदा, आदि मध्य अरु अंत।
सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जयवंत।।३।।

शब्दार्थ:-निचहै=निश्चयनय से। निर्मल=पवित्र। चिद्रूप=चैतन्यरूप।

अर्थ:-जो निश्चयनय से आदि, मध्य और अन्त में सदैव निर्मल है, पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि वह चैतन्य-पिण्ड आत्मा जगत में सदा जयवन्त रहे।।३।।

काव्य-३ पर प्रवचन

जो निहचै निरमल सदा, आदि मध्य अरु अंत।
सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जयवंत।।३।।

ओहो! भगवान आत्मा... **निहचै निरमल सदा...** निश्चयनय से तो आदि-अन्त मध्य रहित चीज़ है। आहा! आदि... आदि तो पर्याय की होती है, वस्तु की आदि (नहीं)। नित्यानन्द भगवान शुरुआत, मध्य और अन्त—तीनों उसमें है (नहीं)। आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय। सम्यग्दर्शन ऐसे ध्रुव के आश्रय से उत्पन्न होता है। वह आत्मा राग और पर का कर्ता तीन काल में है नहीं। आहाहा! अभिमान है न कि मैं ऐसा करता हूँ, मैं ऐसा करता हूँ, मैं उपदेश करता हूँ, मैं कर्म बाँधता हूँ, मैं पर की व्यवस्था का काम व्यवस्थित करता हूँ और मेरे में राग आता है, वह राग मेरा कर्तव्य है, मेरा फर्ज है—यह अज्ञानभाव है, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! ऐसा है भगवान! आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है।

मुमुक्षु : बड़ी भूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी भूल है। बात है। पहले में पहले यह बड़ी भूल है।

यह पहले अधिकार तो आ गया है। कर्ता-कर्म दोपहर को चलता है तुम्हारे। वह ७६ गाथा है। ऐसा अधिकार दूसरे में तो नहीं, परन्तु दिगम्बर शास्त्र में भी ऐसा अधिकार समयसार और सर्वविशुद्ध के अतिरिक्त अन्यत्र (कहीं) है नहीं। और वह मुख्यकर बात (कही) है। कोई ईश्वर कर्ता है, उसने यह बनाया है, ऐसी चीज़ नहीं। ऐसे तो नहीं, परन्तु अपनी पर्याय में राग बनाता है, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा! भगवान आत्मा... **जो निहचै निरमल सदा...** भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु अन्दर आतमराम। परमेश्वर की शक्ति का पिण्ड प्रभु। ऐसा **निहचै निरमल सदा...** त्रिकाल निर्मल है वह तो। आहाहा! मलिन था और मलिनता का नाश हुआ, वह द्रव्यस्वभाव में नहीं। वह तो पर्याय में है। पर्याय द्रव्य में नहीं। आहा!

वह आता है न! पहले आ गया है नाटक का (पद)। **करै कर्म सौ ही करतारा, जो जानै सौ जाननहारा, जानै सौ कर्ता नहीं होइ करता सौ जानै नहीं कोई। करै कर्म सौ ही करतारा।** राग आदि विकल्प दया-दान-व्रत आदि का परिणाम मेरी रचना है, मेरा कार्य है, ऐसा (मानकर) कर्ता होता है। सूक्ष्म बात है। **करै कर्म सौ ही करतारा,...** विकल्प का कर्ता, वही अज्ञानी कर्ता है। आत्मा नहीं। जिसको आत्मा कहते हैं, वह नहीं। और सम्यग्दृष्टि को आत्मा दृष्टि में आया है तो सम्यग्दृष्टि भी राग का कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो निहचै निरमल सदा... भगवान ज्ञान की मूर्ति चैतन्यप्रकाश, आहाहा! ऐसा प्रभु सदा निर्मल... **आदि मध्य अरु अंत सो चिद्रूप।** वह तो ज्ञानरूप है। उसका कोई

रागरूप है, शरीररूप है—ऐसा नहीं। आहाहा! **सो चिद्रूप बनारसी, जगत मांहि जयवंत...** बनारसीदास कहते हैं कि अहो! ऐसा आत्मा अनादि-अनन्त जयवन्त वर्तता है। चाहे तो एकेन्द्रिय में, पंचेन्द्रिय में, दोइन्द्रिय आदि पर्याय में हो, परन्तु वह द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल जयवन्त वर्तता है। कहो, समझ में आया? **वास्तव में जीव कर्म का कर्ता-भोगता नहीं है।** नीचे चौथा पद है। दूसरा कलश नीचे है।

कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्।
अज्ञानादेव कर्तायं तदभावादकारका: ।।२।।

ओहोहो! मूल चीज़ यह है।

★ ★ ★

काव्य - ४

वास्तव में जीव कर्म का कर्ता-भोक्ता नहीं है

(चौपाई)

जीव करम करता नहि ऐसैं।
रस भोगता सुभाव न तैसैं।।
मिथ्यामतिसौं करता होई।
गएं अग्यान अकरता सोई।।४।।

अर्थ:-जीव पदार्थ वास्तव में कर्म का कर्ता नहीं है और न कर्मरस का भोगता है, मिथ्यामति से कर्म का कर्ता-भोगता होता है, अज्ञान हटने से कर्म का अकर्ता-अभोगता ही होता है।।४।।

काव्य-४ पर प्रवचन

जीव करम करता नहि ऐसैं।
रस भोगता सुभाव न तैसैं।।

मिथ्यामतिसौं करता होई।
गएं अग्यान अकरता सोई।।४।।

आहाहा! वस्तु का निचोड़ है, तत्त्व का। लाख बात की बात... आता है न वह छहढाला में। पण्डितजी!

मुमुक्षु : लाख बात की बात यहै निश्चय उर आनो, छोडी सकल द्वंद्व-फंद निज आतम ध्याओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय उर आनो... आतम ध्याओ। यह बात है, भगवान! आहाहा! तेरी चीज.... **जीव करम करता नहि ऐसैं...** रागादि के परिणाम का आत्मा कर्ता नहीं। अज्ञानभाव से कर्ता भासित होता है, ऐसा कहते हैं। ओहो! कितनी धीरज और कितनी स्वसन्मुखता आती है, तब राग का कर्ता भासता नहीं। सम्यग्दर्शन में पर्यायबुद्धि—रागबुद्धि हट जाती है और द्रव्यस्वभावबुद्धि होती है तो स्वभाव का ही परिणमन वहाँ है। राग का परिणमन वह ज्ञानी करे (नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

जीव करम करता नहि ऐसैं... भगवान चैतन्यज्योति। आँख—नेत्र जैसे पर की क्रिया करता नहीं। '**दिट्ठी जहैव**' ३२० गाथा में आता है न! '**दिट्ठी जहैव णाणं**' वह तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। त्रिकाल ज्ञान का रसकन्द आत्मा है। ऐसा भगवान आत्मा कर्म (का) कर्ता है नहीं। आहाहा! राग का कर्ता नहीं, व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा! व्यवहाररत्नत्रय—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प—राग, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र पढ़ने का विकल्प, वह कर्म है, विकार है, विभाव है। जीव (भाव)कर्म का कर्ता नहीं। ज्ञानमूर्ति, वह राग का कर्ता नहीं। ऐसी द्रव्यदृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

उसमें तो क्रमबद्ध लिया है न पहले। यह गाथा में क्रमबद्ध लिया है सर्वविशुद्ध अधिकार में (३०८-३११ गाथा) '**दवियं जं**' (अधिकार की) शुरुआत की पहली (गाथा)। उसमें वही है। सोना है, वह सोने के परिणाम से अभेद है। सुवर्ण। सुवर्ण में से कुण्डल होता है कुण्डल आदि, तो कुण्डल आदि पर्याय सुवर्ण से तो अभेद है। तो उसका कर्ता सुवर्ण है, दूसरा है (नहीं)। यहाँ क्रमबद्ध सिद्ध करना है इसमें। जिस

समय जो परिणाम होता है, वह समय—समय में... वह ज्ञायक चैतन्यमूर्ति कर्ता नहीं (ऐसा) यहाँ सिद्ध करना है न? वह कर्ता नहीं, वह तो ज्ञाता है। चैतन्यस्वभाव... लोकालोक का जाननेवाला ऐसा चैतन्यस्वभाव है। ऐसी दृष्टि में और द्रव्य में राग का कर्ता नहीं तो क्रमबद्ध हो गया। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली होती है, उसका कर्ता नहीं; उसका धर्मी ज्ञाता रहता है। आहाहा! .... पुण्य को हेय मानते हैं न? पूनमचन्दजी! कहाँ गये भैया? पण्डितजी! हाँ, यहाँ बैठे हैं। आया यहाँ। आहाहा!

भगवान! यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा! यह कोई सम्प्रदाय नहीं। समझ में आया? इसके अतिरिक्त दूसरे में ऐसी वस्तु कहीं है ही नहीं। समझ में आया? जिसमें अनन्त गुण... आहाहा! ऐसे गुण का पुंज ऐसा द्रव्यस्वभाव, वह राग का, व्यवहार का कर्ता नहीं (—ऐसा) कहते हैं। गजब बात है! यह व्यवहारनय से कथन आया है न शास्त्र में कि मुनि पंच महाव्रत पालते हैं और २८ मूलगुण पालते हैं और श्रावक बारह व्रत (पालते हैं)। वह तो व्यवहारनय का कथन है। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं। आत्मा राग को पालता है, राग की रक्षा करता है—यह वस्तु का स्वभाव नहीं। आहाहा! कठिन बातें भाई वीतराग मार्ग! समझ में आया? चैतन्यज्योति प्रभु, उसको राग का कर्ता (पना) सौंपना, यह अज्ञान है, कहते हैं। समझ में आया?

जीव करम करता नहि ऐसैं, रस भोगता सुभाव न तैसैं... आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द का रसील स्वरूप, वह राग का भोक्ता है नहीं। गजब तो देखो! शरीर, कुटुम्ब, स्त्री, इज्जत—उसका तो भोक्ता है ही नहीं। सेठ! यह मकान-बकान तुम्हारे काँच के। भोक्ता तो... आत्मा तो जड़ का और पर का, स्त्री के, शरीर का भोक्ता नहीं, अज्ञानभाव से भी। समझ में आया? अज्ञानभाव से भोक्ता हो तो राग और द्वेष विकारी का भोक्ता है। आत्मभाव से तो यह राग का भोक्ता भी आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

अरे, चौरासी के अवतार जन्म-मरण करते... करते भटकते हैं। दु:ख कितना, देखो! घानी में अनन्त बार पिला गया। आकुलता में अनन्त बार पिला गया। तो कहते हैं कि आकुलता का वेदन जीव का स्वभाव नहीं। यह आकुलता का वेदन अज्ञानभाव से है। आहा! अपना निजस्वभाव आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, ऐसी दृष्टि होने से... आत्मा

कहो या दृष्टिवन्त कहो, आत्मा कहो या दृष्टिवन्त कहो, दोनों ही राग का भोक्ता नहीं। आहाहा! पण्डितजी! बहुत कठिन बात है यह! ऐसा जैनधर्म! परम सत्य यही है। परम सत्य... परमात्मा के मुख से निकली बात, यही बात परम सत्य है। आहाहा! समझ में आया? जन्म-मरण के चौरासी के अवतार। आहाहा!

कल तो आये थे व्याख्यान में। आहाहा! लड़का गुजर गया न। सब आये थे व्याख्यान में। ओहो! २४ वर्ष का था। ऐसा दबाव आया। बस और ट्रक। वहाँ ही गुजर गया। आहा! वह दुःख नहीं, अन्दर एकत्वबुद्धि का दुःख है। आहा! अरेरे! अनन्त-अनन्त बार ऐसा किया। एक बार तो अब आत्मा क्या चीज़ है, उसे सुन और समझ ले। आहा! शरीर, वह धूल है, इज्जत धूल है, सब मिट्टी धूल है। उसकी तो पर्याय का कर्ता आत्मा है नहीं। समझ में आया? यह प्रश्न क्रमबद्ध का वहाँ किया था जयपुर में। धन्नालालजी! वह एक प्रश्न हुआ था।

मुमुक्षु : जयपुरवाले भाई ने....

पूज्य गुरुदेवश्री : जयपुरवाला भाई।

मुमुक्षु : बहुत बोलता था जोर-जोर से...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। उसने प्रश्न किया था। उसे समझने को कुछ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... उसने भाषण किया था, बाद में भाषण भी किया था।

उसने कहा, 'महाराज! क्रमबद्ध की बात रह जाती है। क्रमबद्ध का स्पष्टीकरण करो।' लोग तो बहुत थे। पाँच लाख का हॉल है न! तीन हजार लोग। बहुत तो बाहर बैठते थे। क्रमबद्ध की बात रह गयी है। मैंने कहा, सुनो भैया! दो दिन कहा था। भाई! क्रमबद्ध में तो यह लिखा है। शास्त्र में ऐसा है कि अकर्ता... '**अथात्मनोऽकर्तृत्वं दृष्टांतपुरस्सरमाआख्याति**' ऐसा शब्द है। पण्डितजी! समयसार है न! समयसार है न उसमें है। क्रमबद्ध को कहने में यह शब्द शास्त्र में लिया है। वह शब्द है न! '**अथ आत्मनो अकतृत्त्वं दृष्टांत पुरस्सर आख्याति**।'

अमृतचन्द्राचार्य के शब्द हैं। '**अथ आत्मनो अकतृत्त्वं**' यह जो चलती है वह

बात। '**दृष्टांत पुरस्सर आख्याति।**' उसमें क्रमबद्ध आया है। उसमें आ गया है, लिया है। उसमें लिया है वह क्रमबद्ध (कहने) के कारण से नहीं, परन्तु अकर्तृत्व (कहने) के कारण से। क्रमबद्ध सिद्ध करने के कारण से नहीं, अकर्तृत्व सिद्ध करने के कारण से क्रमबद्ध आ गया है। आहाहा! कि जब आत्मा अकर्ता है... और अकर्ता तो नास्ति से कहा, अस्ति से ज्ञाता है। '**दवियं जं**' है न, पाठ है न। मूल पाठ है न वह। '**जीवो हि तावत्क्रमनियमित आत्मपरिणमैरुत्पद्यमानो जीव एव क्रमनियमित।**' परिणाम से... यह जीव जिस समय में जो परिणाम होता है, उसी समय वही परिणाम होगा, तो (इस कारण से) वह अकर्ता है। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप ही ज्ञाता-दृष्टा है। यहाँ कहा न उसमें सर्वविशुद्ध में कि तीन काल-तीन लोक को देखनेवाला है, वह तो। देखनेवाला है, उसमें परिणाम करना, वह भी कहाँ रहा? राग का करना तो है नहीं, परन्तु सम्यक् चैतन्य का भान होने पर... परिणाम तो परिणमते ही हैं, उसको परिणमाना क्या? आहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा ध्रुव जो तीन काल-तीन लोक को देखने की शक्ति रखनेवाला भगवान है, ऐसी जब दृष्टि हुई तो क्रमबद्ध परिणाम होते हैं, उनको जाननेवाला रहा, करनेवाला नहीं रहा। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! अरे, तेरी महिमा! 'भगवान' कहते हैं न! भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी। उसमें तो... ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवान है वह। भग-वान। आहा! तुझमें तो ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवान तेरा स्वरूप है। कोई राग और शरीर तेरा स्वरूप है (नहीं)। आहाहा! कहते हैं... यह क्रमबद्ध में आया, देखो। 'प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...' आहाहा! उपजता हुआ—परिणाम से उत्पन्न होता हुआ, उसी समय में पर का अकर्ता है। वास्तव में तो अपना जो परिणाम उपजे, उस परिणाम का भी द्रव्य तो अकर्ता है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया?

यह चैतन्य की लीला! यह लोग कहते हैं कि ईश्वर की लीला। ईश्वर नहीं, यह आत्मा ही ईश्वर है। समझ में आया? यह ईश्वर की लीला अपने स्वभाव के भान बिना... ओहो! राग आदि पर्याय का मैं करूँ, मैं करूँ, मैं करूँ—ऐसी बुद्धि मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनवरदेव जिनवरेन्द्र की वाणी में ऐसा आया।

भगवान! आप तो तीन काल-तीन लोक को जाननेवाले हो न, या तीन काल-तीन लोक में कोई दशा के करनेवाले हो? समझ में आया? वह श्वेताम्बर में यह श्लोक है। श्वेताम्बर में स्तुति की है शीतलनाथ की, उसमें वह है। द्रव्य, क्षेत्र अरु काल भाव का राजनीति से चार। जड़-चैतन्य की प्रास बिना जड़ प्रभु चैतन्य की... ऐसा कुछ वहाँ शब्द रह गया है कुछ। प्रास बिना जड़ चैतन्यप्रभु की कोई न लोपे कार... ऐसा शब्द है। क्या कहते हैं, सुनो!

वह तो सब देखा है न! हमने तो श्वेताम्बर साहित्य भी देखा है। सब देखा है। करोड़ों श्लोक देखे हैं। करोड़ों श्लोक श्वेताम्बर के देखे हैं। एक भगवती (सूत्र) के सोलह हजार श्लोक हैं और वह सवा लाख की संस्कृत टीका है। तो एक और सात—१७ बार सब पढ़ा है। ७० नहीं, हों, १७। हमारे सत्तर एक और सात। सोलह-सोलह हजार श्लोक। एक भगवतीसूत्र बड़ा है और सवा लाख संस्कृत टीका। सब १७ बार देखा है। यह चीज़ नहीं है।

यह चीज़ देखी हो तो समयसार जब देखा... ओहोहो! मैंने तो सेठ को वही कहा था सेठ को। 'सेठ! यह अशरीरी (होने की) चीज़ है!' आहाहा! (संवत्) १९७८ में मिला। यह अशरीरी बनने की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? (संवत्) १९७८। कितने वर्ष हुए? ४९। एक दामोदर सेठ था वहाँ। उसको स्थानकवासी का आग्रह था। तो उस समय तो मेरे प्रति प्रेम था न। हम तो उसमें थे न। मैंने कहा तो... आहाहा! महाराज! बात तो ऐसी है। समयसार अशरीरी बनने की चीज़ है। शरीर नहीं, अवतार नहीं, गति नहीं। पुण्य और पाप नहीं तथा पुण्य-पाप का फल नहीं। ऐसी चीज़ यह है। उस समय तो स्वीकार किया था। बाद में हमने (सम्प्रदाय) छोड़ दिया तो विरुद्ध हो गये। समयसार में ऐसी भूल है। भूल क्या है समयसार में? समयसार तो भगवान की साक्षात् वाणी है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, जीव कर्म का कर्ता नहीं। क्या हुआ उसका अर्थ? उसकी पर्याय में परिणमना—करना, ऐसा भी नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई लालचन्दजी! आहाहा! वह तो परिणमन चलता है। परिणमन चले, उसको परिणमाऊँ, ऐसा विकल्प कहाँ आया? वस्तु की दृष्टि हुई कि मैं तो चैतन्यमूर्ति ज्ञाता-दृष्टा हूँ। आहाहा! फिर

परिणमन करूँ, यह कहाँ रहा ? परिणमन तो चलता ही है। समझ में आया ? छींटें पड़ते हैं....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो चले। यह सच्ची वर्षा है, वह तो बाहर की है।

मुमुक्षु : अशरीरी होने की वर्षा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! भगवान! शरीर ही मिले नहीं। गति कहाँ से आती है ? आहा! ऐसा आत्मा है। यह आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड क्रमसर परिणाम होता है, उसका ज्ञाता-दृष्टा है, कर्ता नहीं। आहाहा!

३२० गाथा की जयसेनाचार्य की टीका में तो यहाँ तक लिया है कि आत्मा द्रव्य जो ध्रुव है, वह तो मोक्ष की पर्याय और मोक्ष का कारण (ऐसा मोक्ष) मार्ग का भी कर्ता नहीं। आहाहा! यह तो चला है अपने। व्याख्यान बहुत चला है। वे पृष्ठ हैं न!

मुमुक्षु : बन्ध का, मोक्ष का कर्ता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव है न, ध्रुव। ध्रुव, पर्याय का कर्ता नहीं, यह बताना है। पर्याय, पर्याय की कर्ता है। समझ में आया ? व्याख्यान बहुत हुआ है उस पर। राजकोट में हुए थे, यहाँ भी हुए। भाई! यह तो शान्ति की बात है। ऐसा का ऐसा कोई विद्वान बड़ी-बड़ी बात करे और लाखों लोग प्रसन्न हो जायें (ऐसा नहीं है)। यह कोई चीज़ दूसरी है। समझ में आया ? यह तो संसार का अन्त और मोक्ष की शुरुआत, वह भी द्रव्य में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? उसका कारण वह कि परिणमन मैं करूँ, ऐसा द्रव्य में है नहीं। द्रव्य का भान हुआ (तो) शुद्ध का परिणमन चलता है। राग आता है, उसका भी ज्ञाता है ज्ञानधारा से। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **जीव करम करता नहि ऐसैं रस भोगता सुभाव न तैसैं...** ओहोहो! भगवान राग और दया-दान का और अशुभभाव का रस को भोगे, उसमें (रागादि) कहाँ है जो भोगे ? उसमें तो है ही नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि राग को भोगता नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा राग का भोक्ता नहीं, उसका अर्थ ऐसा है कि आत्मा जिसकी दृष्टि में आया, वह आत्मा भी राग के रस का भोक्ता भी नहीं। अमुलखचन्दजी!

आहा! ऐसा मार्ग है, भाई! दुनिया ऐसा कहे कितने ही कि यह एकान्त है और फलाना... बापू! जैसा है, वैसा है, भाई! परन्तु यह मार्ग समझे बिना तेरा किनारा नहीं दिखता, हों! दुनिया चाहे जिस प्रकार से तुझे ललचावे। ऐसा पुण्य करो और ऐसा यह करो और ऐसा होगा... भाई! यह पुण्य का परिणाम, वह द्रव्य में नहीं और द्रव्य पुण्य का कर्ता नहीं। तो उसका अर्थ क्या आया? कि समकिती के परिणाम में भी राग का कर्तापना नहीं है। आहाहा!

जैसे द्रव्य कर्ता नहीं... ऐसा भान हुआ कि मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ, तो द्रव्य कर्ता नहीं, गुण कर्ता नहीं और राग का कर्ता पर्याय भी नहीं। आहाहा! वह राग का जाननेवाला रहता है। उसका नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! पण्डितजी! आहा! अरे! जन्म-मरण का त्रास बापू! चार गति के दुःख, वह आकुलता के दुःख हैं, उसे खबर नहीं। वह आकुलता कितनी भोगी, वह अज्ञानभाव से भोगी, उसकी खबर नहीं। आहा! समझ में आया? कहते हैं कि **रस भोगता सुभाव न तैसे...** क्या कहते हैं? कोई ऐसा गुण नहीं, आत्मा में कोई ऐसी शक्ति नहीं कि राग को अनुभव करे। ऐसा आत्मा में कोई गुण नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो आचार्य का कथन (है), उसका तो पद बनाया है। उसका यह कलश है। यह कलशटीका राजमल्ल, नहीं? पीछे भी लिखा है न, 'राजमल्ल टीका' पीछे लिखा है। 'जैन धर्म का मर्मी' ऐसा लिखा है बनारसीदास ने (ऐसा लिखा है)। है न पीछे कहीं? कितना?

मुमुक्षु : ४१७ (पृष्ठ)।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, यह आया। लो। आहाहा!

पांडे राजमल्ल जिनधर्मी समैसार नाटक के मर्मी।
तीन गिरंथकी टीका कीनी। बालबोध सुगम कर दीनी॥
इहि विधि बोध-वचनिका फैली। समै पाय अध्यात्म सैली।
प्रगटी जगमांही जिनवानी। घर घर नाटक कथा बखानी॥

वह कहते हैं न, निश्चयकथा—निश्चय बात नहीं करना। यहाँ तो कहते हैं कि **प्रगटी जगमांही जिनवानी। घर घर नाटक कथा बखानी।**

नगर आगरे मांहि विख्याता। कारन पाइ भए बहु ग्याता॥
पंच पुरुष अति निपुन प्रवीने। निसिदिन ग्यान, कथा रस-भीने॥

यह तो बहुत (वर्ष से) ख्याल में था। समझ में आया? उसमें से (कलश में से) राजमल्लजी ने (टीका) बनायी। उसमें से समयसार नाटक बनाया।

मुमुक्षु : राजमल्लजी ने तो गजब कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : टीका बहुत अच्छी। टीका हिन्दी। अभी तो गुजराती में हुई है। हिन्दी पहले बाहर आयी थी शीतलप्रसाद की। शीतलप्रसाद ने पहले बारह प्रकाशित की थी।

मुमुक्षु : ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शीतलप्रसाद ने। उन्होंने बाहर प्रसिद्ध की। उनको मिली तो बाहर प्रसिद्ध की। नहीं? उन्होंने पहले प्रसिद्ध की थी न? यह है न पुरानी भाषा ढूँढारी।

मुमुक्षु : मूल भाषा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल भाषा। जैनमित्र (पत्रिका) में भेंट आयी थी। जैनमित्र निकलता है न सूरत से। उसमें बाहर आयी, भेंट आयी। बहुत वर्ष पहले। वह है यहाँ। फिर उसकी हिन्दी बनी। वर्तमान हिन्दी बनी और उसमें तो अभी गुजराती भी बन गयी है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा... जिसको आत्मा कहते हैं, वह तो ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु है। वह राग का कर्ता नहीं, ऐसे राग का अनुभव करनेवाला नहीं। वह तो नित्यानन्द भोजी है। आहाहा! वह तो आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजी आत्मा है, उसको आत्मा कहते हैं। आहाहा! राग का अनुभव करनेवाला, वह अनात्मा है। समझ में आया? **मिथ्यामतिसौं करता होई...** कर्ता तो होता है न अनादि काल से? मिथ्याबुद्धि है। चैतन्य भगवान ज्ञाता-दृष्टा की बुद्धि नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी व्यवहार पुण्य करना और पुण्य करते-करते निश्चय होगा न। अरे प्रभु! क्या कहता है तू? आहाहा! तेरे गुण में कोई ऐसा गुण नहीं... आया न?

सुभाव न तैसे... तेरी कोई शक्ति ऐसी नहीं कि राग को भोगूँ। ऐसा कोई गुण नहीं है। वह तो अज्ञानभाव से पर्याय में उत्पन्न होता है अज्ञान, तो भोक्ता होता है। कोई गुण नहीं। राग का भोगनेवाला गुण हो तो रागरहित कभी हो सकता नहीं। राग के अनुभव रहित कभी नहीं हो सकता। आहाहा! इसी प्रकार वस्तु का पहले अन्तर में निर्णय तो करे। आहा! समझ में आया? मूल चीज़ तो यह करनी है, इसे किये बिना सब बिना एक के सभी शून्य है। मींडा समझे? शून्य... शून्य। ये व्रत पालन किये और भक्ति की और तपस्या की... सब शून्य है बिना एक के। कहते हैं, **मिथ्यामतिसौं करता होई...** यह चैतन्यस्वभाव का भान नहीं, उसकी गुण-शक्ति का भान नहीं, वह राग का कर्ता और राग का भोक्ता होता है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता और व्यवहाररत्नत्रय के हर्ष का भोक्ता, वह अज्ञानी होता है। समझ में आया? है उसमें, आया या नहीं? पण्डितजी! ऐसे क्या... आहाहा! पुस्तक है साथ में। पहले समझ में तो ले कि क्या चीज़ है और कैसा उसका स्वभाव है।

गए अग्यान अकरता सोई,... लो! ओहो! अज्ञान का नाश होकर अपना चैतन्य द्रव्यस्वभाव शुद्धस्वभाव ध्रुव परम पवित्र प्रभु, जहाँ दृष्टि में आया, अकर्ता (हो गया)। व्यवहार का अकर्ता और व्यवहार का भी अभोक्ता है। समझ में आया? उसके बदले यह कहे कि व्यवहार करो, निश्चय होगा।

मुमुक्षु : व्यवहार तो करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना पड़े? व्यवहार तो उसको कहते हैं कि जब निश्चय अनुभव हुआ, तब राग आया, उसको व्यवहार कहने में आता है। अन्धा को व्यवहार कैसा?

वह सुबह आया था न धर्मध्यान में? निश्चय था अनुभव स्वद्रव्य के आश्रय से, तब जो विकल्प है, वह व्यवहार है। उसका फल स्वर्ग है। निश्चय का फल मुक्ति है। दोनों ही साथ में लिये थे। राग का फल, व्यवहार का फल निश्चय है, ऐसा नहीं है। आहाहा! **गए अग्यान अकरता सोई,...** अज्ञान हटने से अकर्ता—अभोक्ता... दोनों ही लेना। पाठ में अकर्ता है, परन्तु अर्थ में दोनों ही लिये हैं और है दोनों की बात यहाँ। अज्ञान हटने से कर्म का अकर्ता—राग का अकर्ता और राग का अभोक्ता। परद्रव्य जड़

की पर्याय तो अज्ञानी भी नहीं कर सकता। लो, **अज्ञान में जीव कर्म का कर्ता है**। वह बात कहते हैं। लो। इन्होंने अधिक स्पष्ट किया है, नहीं? इस कलश के सामने आयेगा दूसरा? '**अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसत।**'

★ ★ ★

काव्य - ५

अज्ञान में जीव कर्म का कर्ता है (सवैया इकतीसा)

निहचै निहारत सुभाव याहि आतमाकौ,
आतमीक धरम परम परकासना।
अतीत अनागत बरतमान काल जाकौ,
केवल स्वरूप गुन लोकालोक भासना।।
सोई जीव संसार अवस्था मांहि करमकौ,
करतासौ दीसै लीएं भरम उपासना।
यहै महा मोहकौ पसार यहै मिथ्याचार,
यहै भौ विकार यह विवहार वासना।।५।।

शब्दार्थ:-निहारत=देखने से। उपासना=सेवा। पसार=विस्तार। मिथ्याचार= निजस्वभाव से विपरीत आचरण। भौ=जन्म-मरणरूप संसार। व्यवहार=किसी निमित्त के वश से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञान को व्यवहारनय कहते हैं, जैसे - मिट्टी के घड़े को घी के निमित्त से घी का घड़ा कहना।

अर्थ:-निश्चयनय से देखो तो इस आत्मा का निज-स्वभाव परम प्रकाशरूप है और जिसमें लोकालोक के छहों द्रव्यों के भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती अनन्त गुण पर्यायें प्रतिभासित होती हैं। वही जीव संसारी दशा में मिथ्यात्व की सेवा करने से कर्म का कर्ता दिखता है, सो यह मिथ्यात्व की सेवा मोह का विस्तार है, मिथ्याचरण है, जन्म-मरणरूप संसार का विकार है, व्यवहार का विषयभूत आत्मा का अशुद्ध स्वभाव है।।५।।

काव्य-५ पर प्रवचन

निहचै निहारत सुभाव याहि आतमाकौ,
आतमीक धरम परम परकासना।
अतीत अनागत बरतमान काल जाकौ,
केवल स्वरूप गुन लोकालोक भासना।।
सोई जीव संसार अवस्था मांहि करमकौ,
करतासौ दीसै लीएं भरम उपासना।
यहै महा मोहकौ पसार यहै मिथ्याचार,
यहै भौ विकार यह विवहार वासना।।५।।

कहते हैं, **निहचै निहारत...** निश्चय अर्थात् सत्य दृष्टि से देखो तो... **इस आत्मा का निजस्वभाव परम प्रकाशरूप है,...** लो। **विशुद्धः स्वरसतः** है न। कलश है। तीसरा कलश है न उसमें नीचे।

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः,
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः,
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः॥३॥

आहाहा! पहले समझ में, यथार्थता क्या है, यह समझ करके श्रद्धा तो पहले करे व्यवहार। व्यवहार श्रद्धा हों वह भी। बाद में उसको छोड़कर द्रव्य का आश्रय लेकर श्रद्धा होती है, यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। व्यवहार को छोड़कर, हों! व्यवहार से होता नहीं। आहाहा! कहते हैं कि देखने से... निश्चयनय से देखो तो भगवान चैतन्य निर्मलानन्द प्रभु ऐसा सत्य स्वभाव निश्चय से—यथार्थदृष्टि से देखो तो निजस्वभाव परमप्रकाशरूप है, लो। **सुभाव याहि आत्माकौ, आतमीक धरम परम परकासना...** उसका धर्म तो प्रकाशना है। उसका धर्म क्या राग का करना और भोगना है? समझ में आया? यह तो जहाँ-तहाँ हम कर्ता, हम कर्ता। समझ में आया? **आतमीक धरम परम परकासना...** भगवान का धर्म, धर्म अर्थात् स्वभाव, वह तो परम प्रकाशना स्वभाव है। आहा! राग का

कर्ता और भोक्ता, उसका स्वभाव नहीं। कोई गुण नहीं तो गुण की पर्याय में भी परिणति ऐसी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अतीत अनागत बरतमान काल जाकौ, केवल स्वरूप गुन लोकालोक भासना,... बस। **जिसमें लोकालोक के छहों द्रव्यों के भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती अनंतगुण पर्यायें प्रतिभासित होती हैं।** लो! कहते हैं कि परद्रव्य के गुण-पर्याय और द्रव्य अपने ज्ञान में जानने में आते हैं। किया है, ऐसा आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? त्रिकालवर्ती अनन्त गुण-पर्याय प्रतिभासित होती है। उस श्रुतज्ञान में भी। केवलज्ञान में तो भासित होता ही है, परन्तु श्रुतज्ञान में भासित होता है त्रिकाल तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय प्रकाशना सब। किसी द्रव्य का, किसी गुण का, किसी पर्याय का कर्ता वह है नहीं। है, उसको जानता है, वह भी व्यवहार है। समझ में आया?

अपनी पर्याय को जाने, वह निश्चय है। अरे! अपनी पर्याय को जाने, ऐसा कहना भी व्यवहार है। भेद हुआ न। वह सर्वविशुद्ध में आयेगा, आगे आयेगा। पर्याय को जानता है आत्मा, ज्ञायक ज्ञायक को जानता है, यह तो भेद हो गया। आहाहा! चैतन्यसूर्य भगवान में जानना-देखना (कार्य) कहना, वह तो पर्याय में है, ऐसा कहते हैं। जानना-देखना (रूप) कायम स्वरूप तो उसमें है ही। लोकालोक है तो जानते हैं, ऐसा भी नहीं। आहा! अपना स्वभाव ही ऐसा जानना-देखना है। अपनी पर्याय को जानने-देखने में लोकालोक व्यवहार से अन्दर आ जाता है। निश्चय से अपनी पर्याय में तो लोकालोक आता ही नहीं। आहाहा! बहुत (कठिन) काम! सर्वज्ञ... आहाहा!

देखो न, यह कषायपाहुड़ आया है न भाई! बहुत सूक्ष्म बात। ओहोहो! सर्वज्ञ की कही हुई (बात)। १२वाँ भाग आया। वह कषायपाहुड़ है न। बहुत सूक्ष्म। अनुभाग की बात है। ओहोहो! एक-एक समय के जघन्य अनुभाग... किस समय में किसका समकित का, मिथ्यात्व का, चारित्रमोह का, भोग का कहाँ कितना काल, किस जीव में, किस गति में... ओहो! गजब बात है! सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात कहीं आती नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी आया १२वाँ (भाग)। ११ भाग तो आ गये हैं इस कषायपाहुड के। बारह नहीं आया? नहीं आया। यहाँ दोपहर में थोड़ा देखते हैं कि क्या-क्या है। कषायपाहुड १२वाँ भाग। ११ भाग तो आ गये हैं, यह १२वाँ भाग है।

अनुभाग की बात है। परन्तु गजब बात! आहाहा!

सर्वज्ञ की सिद्धि। एक समय में क्या मिथ्यात्व का जघन्य अनुभाग, उसकी स्थिति कितनी और वह अनुभाग कहाँ जीव को किस गति में है। आहा! इतनी-इतनी बात है। ऐसी-ऐसी १४८ प्रकृतियाँ। सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात जानने में नहीं आती। आचार्यों ने कण्ठस्थ रखा। आहाहा! गजब बात की है! .... कण्ठस्थ है इतनी-इतनी बात। बड़े समुद्र क्षयोपशम के। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं ऐसी है? दूसरे में कोई सर्वज्ञमार्ग है? सर्व धर्म समन्वय करो। सब धर्म का समन्वय हम करते हैं। पहले कहा था, नहीं? बण्डीजी! है, यह (स्वीकार), वह सर्व धर्म समन्वय। यह भी है और वह भी है, यह समन्वय। दोनों सच्चे हैं, ऐसा नहीं। धन्नालालजी! हैं तो सही न! है, यह 'है' इस अपेक्षा से। परन्तु दोनों सच्चे हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि का सार लेकर कुन्दकुन्दाचार्य ने यह शास्त्र बनाये।

कहते हैं, **केवल स्वरूप गुन लोकालोक भासना...** उसका स्वरूप तो लोकालोक देखना, इतना है। लोकालोक में कोई पर्याय का कर्ता है, ऐसा है नहीं। **सोई जीव संसार अवस्था मांहि करमकौ, करतासौ दीसै लीएं भरम उपासना...** भ्रमणा मिथ्यात्व के कारण... आहाहा! अपना निजस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा त्रिकाल स्वरूप, उसको भूलकर भ्रमणा में 'मैं पर का कर्ता हूँ'—ऐसी भ्रम की उपासना है, यह तो मिथ्यात्व की सेवना है। आहा! है न पाठ में, अर्थ में। **संसारीदशा में मिथ्यात्व की सेवा करने से कर्म का कर्ता दिखता है।** भ्रम की सेवा करता है, भगवान की नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यज्योति प्रभु की सेवा नहीं, दृष्टि नहीं, भान नहीं, अनुभव नहीं। वह अज्ञानी भ्रम की सेवा करते हैं। मैं कर्ता हूँ, मैं राग का कर्ता हूँ और आस्रव कर्ता हूँ—ऐसे भ्रमणा की सेवा में कर्ता दिखता है। आहाहा!

यहै महा मोहकौ पसार... आहाहा! राग का कर्ता भ्रम में भासित होता है, यह मोह का विस्तार है। भगवान चैतन्य की शक्ति का विस्तार नहीं। आहाहा! मोह का विस्तार... **मोहकौ पसार यहै मिथ्याचार,...** लो। यह आचरण मिथ्या है। आहाहा! राग-व्यवहार का आचरण मेरा, वह मिथ्या आचरण है। आहाहा! गजब बात है न! **महा मोहकौ पसार यहै मिथ्याचार...** मिथ्याचार है न अन्दर, देखो। मिथ्या आचरण है वह।

राग का मैं कर्ता और राग का भोक्ता, यह अज्ञान का मिथ्या आचरण है। अब मिथ्या आचरण है और उसको धर्म होता है? आहाहा! भारी सूक्ष्म बात! यह तो परमात्मा का पेट (अभिप्राय) है। आहाहा! वस्तु स्वयं परमात्मा ही है। परमात्मा अर्थात् परम स्वरूप भगवान। राग की सेवा या मिथ्यात्व की सेवा करने से... आहाहा! उसे राग का, पुण्यभाव का, व्यवहार का कर्ता भासित होता है और वह मिथ्याचार है। मोह के प्रसार में मिथ्याचार है! आहाहा! गजब बात है!

आचरण करो आचरण। क्या किसका आचरण करना? राग का आचरण करना ऐसा मानना, ऐसा अनुभव करना, वह मिथ्याचार है। आहाहा! गजब बात है! २८ मूलगुण मुनि के और श्रावक के १२ व्रत के विकल्प, उन विकल्पों का कर्ता मैं हूँ, यह मिथ्याचार है। कहो, भीखाभाई! बात बहुत आयी। अरे यह! बापू! तेरा घर जोरदार है। तेरे अन्तर घर में राग का कर्ता या भोक्ता हो, ऐसी कोई शक्ति तुझमें नहीं। तेरी शक्ति तो राग आदि होता है, उसको जानना-देखना और अपनी (निर्मल) पर्याय का कर्ता और भोगना, वह तेरी शक्ति है। दुनिया, दुनिया की जाने। मार्ग ऐसा है। दुनिया को पसन्द हो या न हो, उसके साथ सत्य का सम्बन्ध है ही नहीं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : फिर जैनधर्म कैसे टिकेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनधर्म आत्मा से टिकता है। वीतरागभाव से टिके या राग से टिके? पण्डितजी! उसको प्रश्न हुआ था। उसके साथ वह प्रश्न करते हैं। जैनधर्म वीतरागभाव है या जैनधर्म रागभाव है?

मुमुक्षु : वीतरागभाव।

मुमुक्षु २ : कथंचित् वीतरागभाव, कथंचित्...।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् वीतराग? जैन (इसे) कहते हैं कि राग और अज्ञान को जीतकर सम्यग्दर्शन और वीतरागभाव में रहना, उसका नाम जैन। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। राग को तो जीतना है, टालना है। यह जैन शब्द है न, वह नास्ति से अर्थ है। राग को टालना, अज्ञान को टालना, वह भी नास्ति से है। कथन तो ऐसे ही हो न! अपना वीतरागमूर्ति प्रभु सम्यग्दर्शन में उसकी प्रतीति करना, अनुभव करके, वह जैनधर्म है।

उससे जैनधर्म टिकता है। समझ में आया?

१५वीं गाथा में है न! जैनशासन। समयसार १५ गाथा। **जो पस्सदि अप्पाणं।** आत्मा को अबद्धस्पृष्ट देखे, सामान्य देखे, वीतरागभाव देखे, सुखरूप देखे—उसका नाम जैनशासन है। यह १५वीं गाथा में आया है। **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुद्धं अण्णायं णियदं अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि।'** यह १४। **'अबद्धस्पृष्टमनन्य-विशेषम्'** पश्चात् दो ले लेना उसमें। **'पश्यति जिनशासनं सर्वम्'**। (जिसने) पाँच पद देखे, वह सम्पूर्ण जैनशासन को देखता है। जैनशासन राग में रहता है या जैनशासन अपने वीतरागी स्वभाव देखने में वीतरागता हुई, उसमें जैनशासन रहता है? कहो, पण्डितजी! आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। त्रिकाल त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा की दिव्यवाणी में आया।

जिनेन्द्र ने कहा... नहीं? आया था न, सवेरे आया था। जिनेन्द्र ने द्रव्यश्रुत में ऐसा कहा। आहा! भगवान की वाणी में ऐसा है। उससे विपरीत हो, वह भगवान की वाणी ही नहीं। पंचास्तिकाय में आया न, अन्त में—आखिर में। जैनशासन का तात्पर्य क्या है? कि वीतरागता। पंचास्तिकाय में आया है १७२ गाथा। वीतरागता। राग तात्पर्य है? व्यवहार तात्पर्य है? आहा! सारे जैनशासन का तात्पर्य वीतरागता है, तो वीतरागता कैसे होती है? वह तो स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। वीतरागता—पर की उपेक्षा और स्व की अपेक्षा। पर्याय और राग की उपेक्षा और त्रिकाल आनन्दघन भगवान आत्मा की अपेक्षा, तब वीतरागता उत्पन्न होती है। वीतरागता सम्पूर्ण जैनशासन का सार है। आहाहा!

कहते हैं, **यहै भौ विकार...** आहाहा! भाषा कैसी डाली है, देखो! **व्यवहार का विषयभूत आत्मा का अशुद्ध स्वभाव है।** आहाहा! **यह विवहार वासना,...** है न? कहते हैं कि जो राग की सेवा... राग मेरा कर्तव्य है, यह सब मिथ्याभ्रम की सेवा है। वह मोह का प्रसार है। भगवान आत्मा का प्रसार नहीं। ऐसा प्रसार और प्रचार कहते हैं या नहीं? जैनधर्म का प्रसार करो, प्रचार करो। प्रसार-प्रचार कैसे होता है? पण्डितजी! अन्दर वीतरागभाव प्रगट करे, वह जैनधर्म का प्रसार है, वह प्रसार और प्रचार है। आहाहा! और वह जैनधर्म कोई पर्याय में रहता है या बाहर में रहता है? अपनी वीतरागी पर्याय में जैनधर्म रहता है, बाहर में रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जो राग अर्थात् व्यवहार की सेवा (है, वह) मिथ्यात्व की सेवा है। आहाहा! **यहै भौ विकार...** यह भव का विकार है। जन्म-मरणरूपी संसार का विकार है। आहाहा! विकल्प-राग (का) कर्ता और उसका मैं भोक्ता, यह जन्म-मरण का विकार है। आहाहा! और अन्त में तो व्यवहार वासना। यह व्यवहार की गन्ध है, निश्चय का अनादर है। वासना है न। **व्यवहार का विषयभूत आत्मा का अशुद्ध स्वभाव...** देखो! राग का करना-भोगना, वह तो व्यवहार है, अशुद्ध व्यवहार है। उसका—व्यवहार का विषय है। वह निश्चय का विषय नहीं। व्यवहार अभूतार्थ है, झूठा विषय है। आहाहा! तीसरा कलश है न, उसका अर्थ हो गया। अब दूसरा अभोक्ता। अकर्ता है, ऐसा अभोक्ता भी है। यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११९, श्रावण शुक्ल ७, गुरुवार, दिनांक २९-०७-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-६, ७, ८

यह समयसार नाटक। सर्वविशुद्ध अधिकार। छठवाँ पद है। छठवाँ पद। **जैसे जीव कर्म का अकर्ता है, वैसे अभोगता भी है।** छठवाँ पद है न?

★ ★ ★

काव्य - ६

जैसे जीव कर्म का अकर्ता है, वैसे अभोगता भी है

(दोहा)

यथा जीव करता न कहावै।
तथा भोगता नाम न पावै।।
है भोगी मिथ्यामति मांही।
गयैं मिथ्यात भोगता नांहि।।६।।

अर्थः-जिस प्रकार जीव कर्म का कर्ता नहीं है उसी प्रकार भोगता भी नहीं है, मिथ्यात्व के उदय में कर्म का भोगता है, मिथ्यात्व के अभाव में भोगता नहीं है।।६।।

काव्य-६ पर प्रवचन

यथा जीव करता न कहावै।
तथा भोगता नाम न पावै।।
है भोगी मिथ्यामति मांही।
गयैं मिथ्यात भोगता नांहि।।६।।

बहुत सरल और सीधी भाषा है। आहाहा! **यथा जीव करता न कहावै...** भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। पुण्य-पाप का भाव तो भिन्न तत्त्व है, आस्रवतत्त्व है। भिन्न तत्त्व का भिन्न तत्त्व **करता न कहावै...** कर्ता है नहीं। **यथा जीव करता न**

कहावै... यह तो दृष्टान्त है। अकर्ता सिद्ध किया, परन्तु अभोक्ता सिद्ध करना है। आहाहा! जैसे चैतन्यस्वभाव, आनन्द का अनुभव हुआ, वह आत्मा। तो वह आत्मा... आत्मा का दृष्टिवन्त समकिती **करता न कहावै...** व्यवहार का विकल्प जो है, उसका भी कर्ता कहने में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **तथा भोगता नाम न पावै...** ऐसे राग और हर्ष-शोक का अनुभव (का) भोक्ता, वह आत्मा नहीं। राग विकार है, पुण्य-पाप का भाव विकार है, विभाव है। उसका भोक्ता होवे तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : नहीं कर्ता नहीं भोक्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं कर्ता नहीं भोक्ता। ऐसी बात है, सूक्ष्म चीज़ है।

तथा भोगता नाम न पावै, है भोगी मिथ्यामति मांहि... आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप भगवान चैतन्य और अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, उसका जिसको भान नहीं, वह मिथ्यामति भोगता मांहि। मिथ्यामति भोगी कहावे। आहाहा! देखो न, बात तो देखो! शरीर-वाणी-कर्म जड़ है। पर का भोक्ता तो अज्ञानी भी नहीं होता। वकीलजी! पर तो पृथक् है। पर की पर्याय का रचनेवाला पर (द्रव्य) कर्ता नहीं, तो पर का भोक्ता भी नहीं अज्ञानभाव में भी। अज्ञानभाव में **है भोगी मिथ्यामति मांहि...** जहाँ आनन्दस्वरूप भगवान ऐसी दृष्टि न हो, मेरा स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, ऐसी दृष्टि का अभाव हो, ऐसा मिथ्यामति भोगी... आहाहा! **है भोगी मिथ्यामति मांहि...** है? आहाहा! हर्ष-शोक का अनुभव भी मिथ्या दृष्टि में होता है। आहाहा!

गयैं मिथ्यात भोगता नांहीं... बहुत सादी भाषा। बहुत सीधा सट्ट। आहाहा! ज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि को राग से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न अपना तत्त्व अनुभव में आया (और) मिथ्यात्व गया (तो) राग का, विकार का, विभाव का **भोगता नांहीं...** आहाहा! कहो, सेठ! बीड़ी-बीड़ी पीने का (कर्ता-भोक्ता) नहीं, ऐसा कहते हैं। तम्बाकू-बम्बाकू वह तो अज्ञानी भी नहीं करता। यहाँ तो अन्दर में हर्ष और शोक... मुझे विषय में मजा आता है, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में, शरीर में—ऐसी जो कल्पना, वह कल्पना मिथ्यादृष्टि को होती है। आहाहा! क्योंकि आत्मा का सुख तो आत्मा में है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुख का सागर है। उस सुख के सागर की दृष्टि जिसको भ्रष्ट हुई है, ऐसा मिथ्यादृष्टि, वह हर्ष-शोक का भोक्ता होता है। आहाहा! कहो, भीखाभाई!

कहो, यह पैसा-बैसा मिला और लड़के अच्छे, उस राग का भोग अज्ञानी करता है, ऐसा कहते हैं। हीराभाई कहाँ गये ?

भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप और ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। ऐसी दृष्टि जहाँ नहीं, वहाँ तो उसकी विकार के ऊपर दृष्टि है और विकार के ऊपर दृष्टि होने से उस विकार का भोक्ता है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! **गयैं मिथ्यात भोगता नांही...** आहाहा ! एक ही बात। राग, पुण्य मेरा है और पुण्य से धर्म होगा—ऐसा जब तक मिथ्यात्व है, तब तक राग का भोक्ता और संसार का—विकार का भोक्ता है। **गयैं मिथ्यात भोगता नांही...** आहाहा ! समझ में आया ? है न ? **मिथ्यात्व के अभाव में भोक्ता नहीं है।** कहते हैं न, छह खण्ड का राज चक्रवर्ती (भोगता है) ? छियानवें हजार स्त्रियाँ और छह खण्ड का राज ? नहीं, नहीं। भाई ! तुझे खबर नहीं। उसने छह खण्ड को नहीं साधा, वह तो अखण्ड को साधता था।

हमारे निहालभाई हुए हैं न। निहालचन्द सोगानी। कलकत्ता। कलकत्ता न ? वह दिल्ली और कलकत्ता भूल जाते हैं।

मुमुक्षु : अजमेर कहो या कलकत्ता कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले तो अजमेर में थे सोगानी, वहाँ तो चमड़े का व्यापार था। बाद में तो बहुत लाखोंपति (हो गये)। (उनको) तो एक रात्रि में अनुभव हो गया यहाँ, एक रात्रि में। (संवत्) २००२ के वर्ष में आये थे पहली बार। तो इतना कहा... बहुत वांचन... बहुत वांचन था। बुद्धि बहुत थी और संसार के किनारे आ गये थे। इतना कहा, भैया... द्रव्यदृष्टि प्रकाश है। आया न द्रव्यदृष्टि प्रकाश ? 'भैया ! ज्ञान और राग भिन्न है, हों ! विकल्प जो कोई भी हो शुभ-अशुभराग... ज्ञान और राग भिन्न है।' ऐसा मैंने गुजराती भाषा में कहा था। भगवान ज्ञानस्वरूप और राग दुःखस्वरूप—दोनों चीज़ भिन्न है।

यहाँ इतना सुना और समिति के कमरे में चले गये। कमरा है न समिति—भोजनशाला का। शाम से सवेरे तक घोलन लगाया। ध्रुव नित्यानन्द भगवान राग से रहित है, ऐसा अन्तर में घोलन करके सवेरे से पहले निर्विकल्प अनुभव हो गया,

सम्यग्दर्शन हुआ। निर्विकल्प आनन्द का स्वाद लेकर सुबह में उठ गये। द्रव्यदृष्टि प्रकाश है न? लालचन्दजी! वह दो भाग आये हैं। उसमें लिखा है पहले। उनके पुत्र को कहा था, तो पुत्र ने लिखा है। बहुत ध्यान में मस्त थे। (सम्यग्दर्शन होने के) बाद तो १७ वर्ष रहे। ३५ और १८ = ५३ वर्ष में गुजर गये।

अन्त में वहाँ आये थे मुम्बई। पाँच घण्टे तो ध्यान के लिये चाहिए उनको।

मुमुक्षु : व्यापार चमड़े का था?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले था, बाद में नहीं। बाद में तो बड़ी दुकान... वह तो पहले बहुत वर्ष पहले। अब कपड़े का बड़ा व्यापारी है। सम्यक्त्व के समय तो कपड़े के व्यापारी थे। वह तो पहले अजमेर में... जब अजमेर में थे तब। तब तो मिथ्यादृष्टि थे। कुछ खबर भी नहीं थी। अभी तो कलकत्ता में बड़ी दुकान है। बड़े लाखोंपति हैं। उनके लड़के हैं।

एक रात्रि में अनुभव राग से भिन्न आनन्द का अनुभव करके उठ गये। उन्होंने एक बातचीत में ऐसा बोल दिया था। 'भैया! चक्रवर्ती छह खण्ड को नहीं साधते हैं। वे तो समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। वे तो एक अखण्ड को साधते थे। छह खण्ड को नहीं, अखण्ड को साधते थे।' अखण्ड अभेद चैतन्य भगवान... अभेद अर्थात् सामान्य द्रव्यस्वभाव, उसके ऊपर समकिती की दृष्टि होती है। समझ में आया? यह क्रिया छह खण्ड की होती थी, वह जड़ की थी और अन्दर में थोड़ा राग आता था, वह भी पृथक् था। आहाहा! सम्यग्दृष्टि निश्चय में लीन... सुबह कहा था, समयसार नाटक में से। यही है न? इसमें ही है न! सवेरे कहा था। बन्ध अधिकार। बन्ध अधिकार में है। निर्जरा के बाद बन्ध (अधिकार) है न! वह बन्ध (अधिकार) है।

१९३ पृष्ठ, लो! यही है। सुबह उसमें से बताया था न! देखो, उसमें है। १९३। एक, नौ और तीन। **असंख्यात लोक परवांन जे मिथ्यात भाव, तेई विवहार भाव केवली-उकत है।** अमृतचन्द्राचार्य के कलश का अर्थ है। १९३ को तुम्हारे क्या कहते हैं? एक सौ तिरानवे। हमारे एकसो त्राणुं कहते हैं। नीचे ११ कलश है न, ११। **'सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनैस्तन्मन्यं'** अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं।

भगवान ने जब (कहा कि) पर का करना, पर को जिलाना, मारना, बचाना, सुख-दुःख देना (मैं कर सकता हूँ)—यह मान्यता मिथ्यात्वभाव है। इस अध्यवसान को भगवान ने छुड़ाया। तो '**स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रवस्त्वाजित।**' तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, हम तो उसमें से ऐसा निकालते हैं कि पर के आश्रय में जितना विकल्पभाव है, सर्व को छुड़ाया है भगवान ने। आहाहा! समझ में आया?

स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रवस्त्वाजितः
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानधने महिम्नि न निजे बघ्नन्ति संतो धृतिम्॥११॥

अरे समकिती जीव! तू तेरे स्वरूप में क्यों एकाकार नहीं होता? राग का तो त्याग है तुझे। व्यवहार विकल्प का तो त्याग है उसको। आहाहा! लोगों को अन्तर की चीज़, दृष्टि का विषय क्या और दृष्टि क्या है (उसकी खबर नहीं)। उसमें कहा न वह? बड़ी चर्चा हुई थी बनारसीदास के समय में इस बात पर (बड़ी चर्चा हुई थी)। श्वेताम्बर में एक कवि था। क्या? कहा। मेघकवि। मेघ उपाध्याय। इस श्लोक पर बड़ी चर्चा हुई थी। विरोधी ने पुस्तक बनायी है। हमने तो सब देखा है न! मेघविजय नाम का श्वेताम्बर साधु था। आचार्य था? उपाध्याय। हम तो पहले से बहुत वर्ष से सब देखते थे न! सब श्वेताम्बर, दिगम्बर (आदि के) सारे शास्त्र एक-एक देखे हैं। तो उसमें वह आया है। बनारसीदास की इस गाथा (पद) का विरोध किया था। आप व्यवहार को मिथ्यात्व कहते हो तो जैनदर्शन उठ जायेगा। पण्डितजी! है उसमें?

'**स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽपि।**' सर्वथा व्यवहार... गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी भगवान ने त्याज्य बताया है। आहाहा! दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का विकल्प तो त्याज्य है ही। **निखिलोऽपी...** आहाहा! सर्वथा व्यवहार का त्याग बताया है। अरे सन्तो! अपने निजानन्दस्वरूप में क्यों लीन नहीं होते? राग का तो त्याग बताया है तुमको। असंख्या लोकप्रमाण मिथ्यात्वभाव... व्यवहार ही मिथ्यात्व है, ऐसा अर्थ ले न? **तेई विवहार भाव केवली-उकत है...** उसका विरोध किया था। व्यवहार ही मिथ्यात्व है? पाठ तो ऐसा तुमने लिया है। परन्तु उसका अर्थ यह है कि जितने विकल्प अर्थात् व्यवहार है, उसकी रुचि है, इतना मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है,

भगवान! अरे! तेरी चीज़ क्या है (इसकी) तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : विजातीय भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विजातीय भाव है।

जिन्हकौ मिथ्यात गयौं सम्यक दरस भयौ... आहा! देखो, अभी तो सम्यग्दर्शन, अनुभव हुआ। राग से, विकल्प से मैं भिन्न हूँ—ऐसी चीज़ का सम्यक् अनुभव हुआ। **ते नियत-लीन विवहारसौं मुक्त है...** व्यवहार आये, हो। छह द्रव्य है तो क्या है? समझ में आया? परद्रव्य है।

मुमुक्षु : नियत लीन माने (-मतलब)?

पूज्य गुरुदेवश्री : नियत अर्थात् निश्चय में लीन। अन्तर में स्वरूपदृष्टि में लीन—एकाग्र है। राग होता है, परन्तु उसमें लीन नहीं। भाई लालचन्दजी! है न देखो। यह सुबह इसमें से बताया था। हमारे परिचय में यह आया था न पहले। यह पुस्तक समयसार नाटक। उसमें है। वह नियत लीन... पाठ में है न? **'सम्यङ्‌निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पमाक्रम्य किं।'** अन्दर में क्यों एकाग्र होता नहीं, राग से भिन्न पड़कर? आहाहा! ऐसा मार्ग। स्वद्रव्य का मार्ग, स्वस्वभाव का पंथ, वही मोक्षमार्ग और वही जैनमार्ग है। पीछे है न?

निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि... आहाहा! रागरहित तेरी चीज़ ज्ञान और आनन्द से लबालब भरा है आत्मा। ऐसी समाधि को... **निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सुगुन मोख पंथको धुकत है...** सम्यग्दृष्टि को तो अपने स्वभाव सन्मुख का झुकाव है। व्यवहार का झुकाव समकिती को छूट गया है। समझ में आया? **जे जीव परमदसामैं थिर रुप व्हैकै...** भगवान आनन्दस्वरूप का अनुभव हुआ और फिर उसमें स्थिर होकर धर्म में धूके। अपने परम पवित्र स्वभाव में धूके हैं। और **न करमसौं रुकत हैं...** कर्म और राग से रोका जाता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी तो सम्यग्दर्शन की महिमा है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं, देखो। **गयैं मिथ्यात भोगता नांही...** आहाहा! ६वाँ (पद) हो गया। **अज्ञानी जीव विषयों का भोगता है, ज्ञानी नहीं है।** यह ७वाँ पद। नीचे चौथा कलश है। नीचे है न कलश।

भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः।
अज्ञानादेव भोक्तायं तदभावादवेदकः ।।४।।

★ ★ ★

काव्य - ७

अज्ञानी जीव विषयों का भोगता है, ज्ञानी नहीं है
(सवैया इकतीसा)

जगवासी अग्यानी त्रिकाल परजाई बुद्धी,
सो तौ विषै भोगनिकौ भोगता कहायौ है।
समकिती जीव जोग भोगसौं उदासी तातैं,
सहज अभोगता गरंथनिमैं गायौ है।।
याही भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारि बुध,
परभाउ त्यागि अपनौ सुभाउ आयौ है।
निरविकलप निरुपाधि आतम अराधि,
साधि जोग जुगति समाधिमैं समायौ है।।७।।

शब्दार्थ:-जगवासी=संसारी। विषै (विषय)=पंच इन्द्रिय और मन के भोग। गरंथनिमैं=शास्त्रों में। अवधारि=निर्णय करके। बुध=ज्ञानी। जोग जुगति=योग निग्रह का उपाय।

अर्थ:-शास्त्रों में मनुष्य आदि पर्यायों से सदा काल अहंबुद्धि रखनेवाले अज्ञानी संसारी जीव को अपने स्वरूप का अज्ञाता होने से विषय भोगों का भोगता कहा है, और ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव को भोगों से विरक्त भाव रखने के कारण विषय भोगते हुये भी अभोगता कहा है। ज्ञानी लोग इस प्रकार वस्तु स्वरूप का निर्णय करके विभाव भाव छोड़कर स्वभाव ग्रहण करते हैं, और विकल्प तथा उपाधि रहित आत्मा की आराधना वा योग निग्रह मार्ग ग्रहण करके निजस्वरूप में लीन होते हैं।।७।।

काव्य-७ पर प्रवचन

आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप.... **जगवासी अग्यानी त्रिकाल परजाइ बुद्धि...** उसका अर्थ। **जगवासी अग्यानी त्रिकाल परजाइ बुद्धि...** उसकी—मिथ्यादृष्टि की तो राग और एक अंश पर बुद्धि है। उसकी द्रव्यबुद्धि है नहीं। मैं चिद् त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकमूर्ति हूँ, ऐसी दृष्टि के अभाव में **जगवासी अग्यानी त्रिकाल परजाइ बुद्धि, सो तौ विषै भोगनिको भोगता कहायौ है**। आहाहा! जिसकी दृष्टि राग और पुण्य आदि विकल्प पर है, वही विषय का भोक्ता मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। आहाहा!

क्योंकि सुखबुद्धि हुई न उसमें? तो वह तो मिथ्यादृष्टि है। सुख तो आत्मा में है। वकीलजी! आहाहा! आनन्द तो आत्मा में है और विषयवासना में आनन्द माना (तो) मूढ़—मिथ्यादृष्टि है। तब कहे, चक्रवर्ती भोग भोगते हैं न? नहीं भोगते, भगवान! सुन तो सही! वे तो ज्ञातादृष्टा रहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपने आत्मा को राग से हटाकर अपने स्वरूप में एकाग्रता (करने) का अभ्यास है उनको। चाहे तो भोग का काल हो, चाहे तो युद्ध का काल हो, उस समय में भी धर्मी तो अपने (मैं) राग से भिन्न अपनी एकाग्रता में ही है। राग और युद्ध में आत्मा है नहीं। युद्ध की क्रिया में हो, तब तो अजीव में आया। राग में आया तो आस्रव में आया। समझ में आया?

तीन लोक के नाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव उसे समकित कहते हैं। यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो तो समकित है, नौ तत्त्व की श्रद्धा करो तो समकित है। यह समकित नहीं, भगवान! तुझे खबर नहीं। तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं। तू तो सच्चिदानन्द प्रभु है। तेरी परमेश्वरता तुझमें पूरी भरी पड़ी है। तो कहते हैं, अज्ञानी जिसकी पर्यायबुद्धि—रागबुद्धि है (अर्थात कि) एक अंश के ऊपर बुद्धि है, शरीर के ऊपर बुद्धि है, राग के ऊपर बुद्धि है, **सो तो विषै भोगनिकौ भोगता कहायौ है...** विषय की वासना में मिठास से आनन्द मानकर भोक्ता कहते हैं अज्ञानी को। आहाहा! समझ में आया? विषय की वासना तो जहर है और जहर में मजा मानता है तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

समकिती जीव जोग भोगसौं उदासी तातैं... देखो! आहाहा! **ज्ञानी सम्यग्दृष्टि**

जीव को भोगों से विरकत भाव रखने के कारण विषय भोगते हुए भी अभोगता कहा है। जोग का अर्थ नहीं आया। **समकिती जीव जोग भोगसौं उदासी तातैं...** भाई! दो बातें हैं। आहाहा! जहाँ आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हुई, तो योग—कंपन और रागादि के कर्तापने का भाव... यह योग और भोक्ता (पना)—दोनों से विरक्त है। विकार... विकार... विकार शुभ-अशुभभाव। कहो, भीखाभाई! ऐसी बात है, भाई! बात गुलांट खाती है। **जगवासी अग्यानी त्रिकाल परजाइ बुद्धि, सो तो विषै भोगनिकौ भोगता कहायौ है।** गुलांट खाती है बात।

'अहो! मैं तो चिदानन्द ध्रुव आनन्द हूँ। वह एक समय का अंश भी नहीं और राग भी नहीं और निमित्त भी मुझमें नहीं।' ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव योग और भोगसौं उदासी... आहाहा! यहाँ हुआ था न, क्या कहलाता है? नोआखली... नोआखली। वह गाँधीजी गये थे। मुसलमान हिन्दुओं पर बहुत जोर करते थे। नोआखली देखने (गये थे)। माता बहिन को नग्न करते थे और लड़के को नग्न करते और दोनों को दबाये और (कहे), भोग ले। अररर... अरे! जमीन फट जाये तो समा जायें। ऐसी उनकी बुद्धि थी बेचारों की। माता-पिता को नग्न करे। ऐसे समकिती को विषय का राग काला नाग जैसा दिखता है। आहाहा! मेरी चीज़ तो आत्मा है और सच्चिदानन्द आत्मा में तो आनन्द पड़ा है प्रभु! आनन्द के अतिरिक्त दूसरी चीज़ मेरा भोग है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

समकिती जीव जोग भोगसौं उदासी तातैं... योग और भोग। योग का अर्थ कर्ता और भोग का अर्थ भोगना। दोनों से उदास है। आहाहा! भाई! यह बात की बात नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो वह तो आनन्द का कर्ता और आनन्द का भोक्ता है। आहाहा! देखो, समकित की महिमा! समकित का विषय—ध्येय ध्रुव, उसकी महिमा तो क्या कहना! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा महान पदार्थ जब सिद्धदशा होती है, तब प्रगटता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने तब प्रगटे या इसके बिना प्रगटे? विश्वास कहाँ है उसको? है, वह तो है ही।

मुमुक्षु : अभी वर्तमान में?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में त्रिकालवत् है। यह छठवीं गाथा में आया नहीं? समयसार।

मुमुक्षु : क्या आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं। छठवीं गाथा में आया है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज। (कहते हैं)।

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

शिष्य ने पूछा, 'महाराज! आप शुद्ध किसको कहते हो?' अमृतचन्द्राचार्य ने प्रश्न लिया उसमें। किसको आप शुद्ध कहते हो? भाई! परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर अपना त्रिकाली भगवान आत्मा, उसकी सेवा करने से उसको—द्रव्य को शुद्ध कहा जाता है। द्रव्य तो शुद्ध है ही। परन्तु किसको शुद्ध आया लक्ष्य में? जिसने राग, निमित्त आदि का लक्ष्य छोड़कर अपने त्रिकाली भगवान की सेवा की, शुद्धपर्याय प्रगट की, उसको द्रव्य शुद्ध है। राग में है, उसको द्रव्य शुद्ध कहाँ से आया? आहाहा! उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, अपना आत्मा द्रव्य तो शुद्ध चिदानन्द त्रिकाली है। परन्तु है, उसकी अस्ति का, सत्ता का स्वीकार कहाँ आया? स्वीकार जब तक न हो, तब तक यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा उसके भान में आया ही नहीं। बराबर है? यह मार्ग ऐसा है।

यह तो त्रिकाली भगवान आनन्दस्वरूप पर जब दृष्टि हुई तो पर्याय में शुद्धता आयी, तब उसको द्रव्य शुद्ध है, ऐसा कहने में आता है। ओहो! यह सारी चीज़ शुद्ध ही है। परन्तु पर्याय का, राग का अभाव करके द्रव्य की एकता नहीं हुई, उसको यह द्रव्य शुद्ध है (ऐसा) ख्याल में तो आया नहीं। (ख्याल) आये बिना द्रव्य शुद्ध तुम किसको कहते हो? समझ में आया? ऐसे वर्तमान में आत्मा पूर्णानन्द से भरा पड़ा है, (परन्तु) किसको? जिसकी दृष्टि उस सन्मुख हुई, उसको है। अज्ञानी को तो है ही नहीं, उसकी तो पर्यायबुद्धि है। उसकी बुद्धि तो राग में है, एक अंश में है, विकल्प में है। आहाहा! समझ में आया? यह तो लॉजिक से बात चलती है, हों! वकील! बराबर है? आहाहा!

यह कषायपाहुड़ में आता है। रस पड़े तो एकाग्र होकर थोड़ा-थोड़ा पढ़ते हैं। दोपहर में नियमित घण्टे-दो घण्टे थोड़ा-थोड़ा... आचार्यों ने कितना काम किया है! आहाहा! गजब काम किया है! सन्तों—वीरसेन आचार्य, यतिवृषभ आचार्य, गजब काम किया है। केवलज्ञान के मार्गानुसारी। एक-एक बात... उसमें एक यह न्याय शब्द आया था। ऐसा लेने से उदीरणा का वह न्याय है, ऐसा कहते हैं। ऐसी सब बहुत बातें हैं। सूक्ष्म बात बहुत है। करणानुयोग है न? सूक्ष्म बात है। वह पुस्तक आयी है। हरीभाई ने दी है न अभी। जयधवल में कषायपाहुड। थोड़ा-थोड़ा... मेहनत की है तो अपने देखो तो सही थोड़ा। ऐसा सूक्ष्म अधिकार। केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा भाव उसमें चित्रित किया है।

तो कहते हैं.... उसमें एक शब्द आया था, हों! आज ही आया था। न्याय है ऐसा आया था। यह उदीरणा, उत्कृष्ट उदीरणा जहाँ हो... वहाँ मिथ्यात्व की उदीरणा होती है, न्याय प्राप्त है। ऐसा था। पुस्तक है? यह? यह न्याय शब्द आया था। कहीं सब पढ़ा जाता है। वह तो पार नहीं आवे। यह तो सार-सार पर नजर पड़ जाती है। देखो, शब्द आया था। बहुत जगह आया है। यह आया। 'क्योंकि यथाख्यात संयम के विरोधी संज्वलनों के अनुभाग को देखते हुए क्षायोपशमिक संयम का प्रतिबन्ध करनेवाला प्रत्याख्यान कषाय का अनुभाग अनन्त गुणा हीन सिद्ध होता है, यह न्याय है।' पाठ में है। .... दूसरी भाषा है न? तीन-चार शब्द प्रयोग किये हैं, हों! 'नाईय-ता दो' ऐसा शब्द है। उसका अर्थ क्या? न्याय है, इतना। न्याय है। यह न्याय है। बहुत सरस बात है। यह तो सन्तों की बात है, केवलज्ञान के पथानुगामी थे सब। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि यह न्याय है। **समकिती जीव जोग भोगसौं उदासी तातैं...** क्योंकि योग है शुभाशुभ परिणाम और भोग है हर्ष-शोक। वह तो विकार है। विकार से तो आत्मा भिन्न है। समझ में आया? आहाहा! समकिती को विषय में विकल्प जो आता है, (उसमें) काला नाग जैसा दुःख लगता है। (ज्ञानी को) दुःख लगता है, अज्ञानी को उसमें रस लगता है। आहाहा! यह दृष्टि में अन्तर है। शरीर सुन्दर हो, माँस और हड्डियाँ, ऐसी खाने-पीने की चीज़ और उसमें अनुकूल हो स्त्री आदि, पुत्र आदि, पैसा आदि, (तो माने कि) मजा आता है। अरे मूढ! मजा तो आत्मा में है और

तुझे मजा राग में आया कहाँ से? सेठ! यहाँ तो यह बात है, भगवान! कीड़ा है अज्ञान का, ऐसा कहते हैं। भगवान आनन्दमूर्ति को छोड़कर तुझे पर में प्रीति हो गयी, प्रेम हो गया। भगवान का प्रेम तो छोड़ दिया तूने। भगवान अर्थात् अपना आत्मा। समझ में आया?

जहाँ-जहाँ अपने स्वभाव को छोड़कर पर में प्रसन्नता होती है, यह सब मिथ्यात्वभाव है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : इस बात को फिर से कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से। भगवान आत्मा... वह तो भाई कर्ता-कर्म में कहा था न! '**कोपादयोऽमी**' शब्द प्रयोग किया है वहाँ। पहले श्लोक में, कर्ता-कर्म (अधिकार) में। इसका अर्थ यह है कि स्वरूप के प्रति जिसे रुचि नहीं, उसे कोप है आत्मा के प्रति। प्रेम, जिसे राग का प्रेम है, उसको आत्मा के प्रति द्वेष है। ऐसा भगवान पुकार करते हैं। समझ में आया? तो कोप आ गया है। आहाहा! जिसको अपना (आत्मा) आनन्दस्वरूप भगवान, उसकी दृष्टि, उसका प्रेम छोड़कर, किसी भी पदार्थ में अनुकूलता की प्रसन्नता आती है, वह मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि उसमें प्रसन्नता है नहीं और प्रसन्नता मानी है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! क्या कहा?

जोग भोगसौं उदास... कहीं प्रसन्नता है ही नहीं। अरबों रुपये एक क्षण में आवे, धर्मी को प्रसन्नता होती नहीं। आहाहा! अप्सरा ऊपर से आवे, प्रसन्नता (नहीं)। अरे भगवान! हमारा आनन्द तो हमारे पास है न! यह बाहर में प्रसन्नता कैसी? समझ में आया। यह बाहर में प्रसन्नता... जो प्रसन्नता वेदी जाती है, वही मिथ्यात्व का वेदन है। आहाहा! समझ में आया? बहुत वर्ष पहले हम भावनगर गये थे, भावनगर। गृहस्थाश्रम में (थे तब)। बहुत वर्ष हुए। ६८ का वर्ष होगा, संवत् १९६८। वहाँ एक ध्रुव का नाटक था। ध्रुव... ध्रुव नहीं आता उसमें? अन्यमति में। ध्रुव और प्रहलाद अविचल पद... वह तो उसकी दृष्टि का अर्थ है। ध्रुव का नाटक था। हम भी देखने को (गये थे)। वैराग्य नाटक देखने को बहुत जाते थे, बहुत देखते थे गृहस्थाश्रम में।

एक बार गये थे। बड़ा नाटक था। ऐसा पर्दा... बारह आना टिकिट थी। बारह आना उस समय, हों! ध्रुव छोटा था। उसकी माता गुजर गयी थी। उसकी नयी माता

थी। पिता था। उसको वैराग्य हो गया। अन्यमति की बात है। छोटा लड़का। वह लकड़ी होती है न बाबा की। घोड़ी नहीं होती है ? तो डिगाने के लिये इन्द्राणी देवी आयी ऊपर से। नाटक में हरा पर्दा था न। तो वह पर्दा चीर दिया। ऊपर से लकड़ी की पाट हो न ? .... डोरी से ऊपर से उतरी इन्द्राणी। दो देवियाँ बहुत चलायमान करते-करते... इतना ध्रुव बोला—माता ! उसने (-देवी ने) तो ऐसा कहा, 'देखो ! मेरा शरीर सुन्दर है। माँस कैसा, स्तन कैसा, यह कैसा, यह शरीर केले जैसा।' यह क्या कहा जाता है ? यह जाँघ। बहुत महिमा की देवी ने।

(ध्रुव) कहता है... (संवत्) १९६८ के वर्ष की बात है। ६० वर्ष हुए। 'माता ! तेरा शरीर ऐसा सुन्दर (है तो) मुझे लगता है कि एकाध भव यदि मेरा हो तो तेरे गर्भ में अवतार लूँगा। दूसरी बात नहीं।' धन्नालालजी ! उस समय वैराग्य पसन्द था न पहले से ! नाटक में ऐसा बोले, हों ! पर्दा लाल, हरा था। ऊपर से देवी आयी। और पाव घण्टे, आधे घण्टे ऐसा बोले। 'माता ! तेरी शरीर की सुन्दरता की पहिचान तूने हमको दी, तो ऐसा ही है। परन्तु इतनी बात है, माता ! मुझे एकाध भव करना हो तो तेरे गर्भ में आऊँगा, दूसरी बात नहीं। समझ में आया ? तो यहाँ सम्यग्दृष्टि को... आहाहा ! दूसरी बात नहीं, चाहे तो इन्द्र और इन्द्राणी खड़े हो जायें और चौदह राजूलोक का आमन्त्रण दे। हमारी चीज़ में यह है नहीं। समझ में आया ? क्या कहा ?

समकिती जीव जोग भोगसौं उदासी तातैं... तातैं अर्थात् इसलिए। **सहज अभोकता गरंथनिमैं गायौ है...** सन्तों ने, आचार्यों ने भगवान के ग्रन्थ में समकिती को अभोक्ता गाया (-कहा) है। आहाहा !

मुमुक्षु : अभोक्ता कैसे स्वभाव में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें राग का भोक्ता (हो) ऐसा तो कोई गुण भी नहीं। आनन्द का भोक्ता हो, ऐसा गुण आत्मा में है। समझ में आया ? **समकिती जीव जोग भोगसौं उदासी...** उदास... आहाहा ! माता... जिसके गर्भ में सवा नौ महीने रहा, (वह) जननी, उसका शरीर नग्न हो तो क्या देखने में नजर है उसकी ? उदास... माता ! मेरी नजर नहीं। आहाहा !

रामचन्द्रजी और लक्ष्मण... नहीं आता ? रामचन्द्रजी और लक्ष्मण। (रावण)

सीताजी को ले गया लंका। तो सीताजी ऊपर से जेवर... जेवर थे न? जेवर छोड़े अर्थात् कहाँ गये, यह रामचन्द्रजी को खबर पड़े। जेवर थे न। रावण ले जाता था। बाद में जेवर राम के हाथ आये तो लक्ष्मणजी को कहते हैं, 'भाई! सीताजी का जेवर तूने देखा है कभी?' बारह वर्ष तो जंगल में साथ रहे तीनों, सीताजी, राम और लक्ष्मण—तीनों। लक्ष्मण स्वयं सब भोजन बनाते थे, फल लाते थे। बाद में उनको खिलाते थे। बहुत भक्ति करते थे। रामचन्द्रजी ने कहा—भाई! सीताजी का यह जेवर है, वह तुमने कभी देखा है? यह जेवर उसका है?' तात! मुझे खबर नहीं, हों! एकबार मैं पैर छूता था सीताजी के, तब उनके नुपुर पर नजर पड़ी थी। नजर वहाँ पड़ी थी एकबार। तो यह नुपुर उनका है, ऐसा लगता है। आहाहा!

वासुदेव लक्ष्मण, रामचन्द्रजी बलदेव और सीताजी महासती। १२-१२ वर्ष जंगल में रहे। साथ में कोई नहीं चौथा। लक्ष्मणजी को पूछते हैं, 'भाई! यह नुपुर उसका है?' 'तात! बांधव! मेरी नजर एकबार जब मैं पैर छूता था तब मेरी नजर गयी थी वहाँ पैर के ऊपर। पूरे शरीर को देखा नहीं।' यह देखो तो सही! उत्तम पुरुष कैसे थे! वासुदेव जिसे भोगपुरुष कहा जाता है, परन्तु बड़े भाई की स्त्री माता (समान मानते थे)। मुझे खबर नहीं, भाई! उनके क्या गहने हैं और क्या है, मुझे कुछ खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहते हैं, सम्यग्दृष्टि योग और भोग से उदास है। समझ में आया? उदास।

सहज अभोगता गरंथनिमैं गायौ है... सिद्धान्त में—भगवान के शास्त्र में समकिती को सहज अभोक्ता... बस, सहज अभोक्ता (कहा है)। हठ से नहीं, स्वाभाविक अभोक्ता। राग का और विषय का स्वाभाविक अभोक्ता। देखो, यह सम्यग्दर्शन और यह सम्यग्दर्शन का ध्येय ध्रुव। समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, (उसकी) पहले खबर नहीं और व्रत, तप करे, वे सब बिना एक के शून्य हैं। बराबर है? आहाहा! है न? अर्थ में तो अधिक कहा, भाई! ऐसास कि भोगों से विरक्तभाव (रखने के) कारण विषय भोगते हुए भी अभोक्ता कहा है। ऐसा लिया है। अर्थात् लोग तो ऐसा देखे न! हजारों रानियाँ हैं, यह भोगते हैं, यह खाते हैं, सोने की थाली में खाते हैं। अरे भगवान! कौन खाये? भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव अपने आनन्द का भोक्ता है। इससे राग का और वासना का भोक्ता नहीं। आहाहा! देखो, यह सर्वविशुद्ध अधिकार।

मुमुक्षु : कथनी कुछ और करनी कुछ नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : करनी आया, क्या आया? अन्दर में एकाग्र होना, राग से हटना, वह करना नहीं? **याही भाँति वस्तु की व्यवस्था अवधारि बुद्ध...** देखो। देखो, यह करना है या नहीं? इसी भाँति वस्तु की व्यवस्था निश्चित की, वह बुध है। **ज्ञानी लोग इस प्रकार वस्तु स्वरूप का निर्णय करके...** देखो। निर्णय किया या नहीं अन्दर में? रागादि नहीं, विषय वासना का अनुभव मेरा नहीं, मेरा तो आनन्द है। समझ में आया? आहाहा! वैश्या का प्रेम है न? ऐसा प्रेम समकिती का पर के प्रति है। वैश्या कोई लक्ष्मीपुत्र आवे तो प्रेम बतावे, परन्तु अन्दर में प्रेम नहीं है।

'सम्यग्दृष्टि जीवडा करे कुटुम्ब प्रतिपाल। अन्तर से न्यारो रहे ज्यों धाव खिलावे बाल।' धायमाता होती है न? खिलावे, नहलावे, दूध पिलावे, पिलावे, परन्तु अन्तर में तो मानती है कि यह पुत्र हमारा नहीं। यह बड़ा होकर मेरा पालन करेगा नहीं। इसी प्रकार धर्मी को आत्मा के-स्वभाव का भान हुआ है। किसी चीज़ के प्रति, यह मेरी है, (इसमें) सुख है—ऐसी बुद्धि होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ सम्यग्दर्शन, उसकी खबर और माहात्म्य न हो और धर्म हो जाये? कहते हैं, ऐसा निर्णय करके... ऐसा स्वरूप मेरा अतीन्द्रिय आनन्दमय (और) यह रागभाव दुःखमय—ऐसा (निर्णय करे)। नौ तत्त्व में आस्रवतत्त्व भिन्न है न! तो भिन्न तत्त्व का भोक्ता समकिती कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। भोगे तो आस्रव और आत्मा एक तत्त्व हो गये। समझ में आया? आहाहा! यह बात बापू! वह कहीं वस्तु की स्थिति... इसलिए ऐसा कहा न, इस भाँति वस्तु की व्यवस्था है। आहाहा!

अवधारी बुध... निर्णय करके ज्ञानी विभावभाव छोड़कर स्वभाव ग्रहण करते हैं। परभाउ त्यागि... देखो! **अपनौ सुभाउ आयौ है...** परभाव का त्याग, वह त्याग नहीं? परभाव रागादि मैं नहीं; मैं तो आनन्द हूँ—ऐसा दृष्टि में त्याग में ही राग का सर्वथा त्याग आ गया। समझ में आया? बराबर है? यह लॉजिक से तो बात करते हैं। इस प्रकार वस्तु स्वरूप का निर्णय करके विभावभाव को छोड़कर स्वभाव ग्रहण करते हैं।

परभाउ त्यागि अपनौ सुभाउ आयौ है, निरविकलप निरुपाधि आतम अराधि, लो। धर्मी तो अपनी **निरविकलप—**विकल्परहित अभेद चीज़, ऐसी **निरुपाधि—**उपाधिरहित, रागादि उपाधिरहित चीज़ **आतम अराधि।** ऐसा आत्मा का सेवन करके, आत्मा का आराधन करके **साधि जोग जुगति समाधिमैं समायो है, विकल्प और उपाधिरहित आत्मा की आराधना व योग निग्रह मार्ग ग्रहण करके...** योग का निग्रह मार्ग ग्रहण करके... रागादि का निग्रह, यह (रागादि) मेरी चीज़ नहीं, **निज स्वरूप में लीन होते हैं।** आहाहा!

यह राग का कर्ता और भोक्ता है नहीं। आहाहा! यह कोई चीज़ बाह्य की नहीं, यह तो अन्दर भाव की चीज़ है।

मुमुक्षु : सहज वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहज वस्तु है। राग और अंशबुद्धि छोड़कर त्रिकाल भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन ऐसी दृष्टि हुई तो स्वभाव का आराधन करके स्वभाव में लीन होते हैं। राग की लीनता धर्मी को छूट गयी है। है अवश्य दूसरी चीज़ (ज्ञान) परिणति में, (परन्तु) दृष्टि में छूट गयी है और दृष्टि में न छूटे, तब तक समकित दृष्टि नहीं। सम्यग्दृष्टि अर्थात् यथार्थ दृष्टि, वास्तविक दृष्टि। राग में सुख नहीं, ऐसी बुद्धि हुए बिना वास्तविक दृष्टि होती नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त जीवों को मार्ग तो वीतराग का सेवन करके मोक्षपद में गये हैं, इस विधि से (गये हैं)। समझ में आया? निजस्वरूप में लीन होते हैं। **ग्यानी मगन विषै सुख मांही, यह विपरीत संभवै नांहि।** यह आता है बनारसीदास में। **ग्यानकला जिन्हकै घट जागी, ते जगमांहि सहज वैरागी। ग्यानी मगन विषै सुख मांही, यह विपरीत संभवै नांहि।** (राग) होने पर भी उसमें रस नहीं। रस उड़ गया है। आहाहा! रस, आतमरस। आतमरस, आनन्दरस, अतीन्द्रिय भगवान आनन्दरस। इसका जहाँ रस लगा, सारा इन्द्र और इन्द्राणी के विषय का रस छूट गया। तब उसको सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **साधि जोग जुगति समाधिमैं समायौ है। योग निग्रह मार्ग ग्रहण करके निजस्वरूप में लीन होते हैं।** आठवाँ पद। नीचे पाँचवाँ श्लोक है न! नीचे पाँचवाँ श्लोक है।

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको,
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः।
इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां,
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ।।

इस कलश के (कर्ता) हैं अमृतचन्द्राचार्य। सन्त मुनि दिगम्बर वनवासी। सन्त तो वन में रहते थे न? वन में... वन में। चातुर्मास में भी वन में वृक्ष के नीचे बैठते थे।

मुमुक्षु : पंचम काल में तो बड़े शहर में रहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु कहाँ है? यह तो मूल चीज़ की बात है। जो चीज़ है, वह चीज़ है। जंगल में बड़ा वृक्ष होता है न? वृक्ष के अन्दर में पोल होती है न? पोल थोड़ी, उसमें बैठते हैं। वीतरागभाव जिनको प्रगट हुआ, क्षण में और पल में जिनको सप्तम गुणस्थान आता है। एक क्षण में सप्तम और दूसरे क्षण में छठवाँ, यह मुनि की दशा अलौकिक है! जिनको गणधर नमस्कार करें। 'णमो लोए सव्व साहूणं।' जिनके चरण में गणधर का नमस्कार पहुँचे, वह पैसा पद है भैया! कोई अलौकिक पद है।

ओहो! वीतरागभाव में मस्त हैं। जिनकी नींद भी पौन सेकेण्ड के अन्दर रहती है। क्योंकि छठवें गुणस्थान की स्थिति पौन सेकेण्ड के अन्दर है, इतने में जरा नींद होती है। एक सेकेण्ड भी नींद आ जाये तो छठवाँ गुणस्थान नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वस्तु की स्थिति ऐसी है। धवल में लिया है। धवल में (है कि) प्रमत्त छठवें की भूमिका पौन सेकेण्ड के अन्दर है। बस इतनी है। छहढाला में है न? 'पिछली रयनिमें...' नहीं आता? 'भूमांहि पिछली रयनिमें कछु शयन एकासन करन।' (एक) करवट में थोड़ी आती है, (फिर) सप्तम आ जाता है। आहाहा! कछु-थोड़ी। ऐसी दशा सर्वज्ञ परमात्मा के सन्त की है। वह किसी की कल्पना की बात नहीं है। आहाहा! धन्य अवतार है न! जिसने मनुष्यपना सफल किया है। वह दशा केवलज्ञान लेने की तैयारी... यहाँ तो समकिती की बात करते हैं अभी। समझ में आया?

वह भी राग से विरक्त है दृष्टि से। अस्थिरता है तो स्वरूप में स्थिरता करके अस्थिरता का नाश करेंगे। समझ में आया? ज्ञानी को भोग निर्जरा का हेतु है। भोग निर्जरा का हेतु है? शुद्ध की दृष्टि है और आनन्द में लीन है, उस अपेक्षा से भोग का

विकल्प अशुभ होने पर भी, अल्प बन्ध हुआ, उसकी गिनती नहीं गिनना। बाकी भोग का भाव निर्जरा का हेतु है ? वह तो राग है, वह तो अशुभभाव है। उस समय आत्मा में अन्तर शुद्धि है, आनन्द के ऊपर दृष्टि है। यह शुद्धता के जोर के कारण अशुभ का अल्प बन्ध है, उसकी गिनती की नहीं। ऐसी बात है। यहाँ तो (समकिती को) भोग नहीं कहा। समकिती को भोग नहीं तो मुनि को कहाँ से आया ? यह पाँचवें (श्लोक) का आठवाँ पद है, देखो। **ज्ञानी कर्म के कर्ता-भोगता नहीं है इसका कारण**। उसका कारण बताते हैं। उसका न्याय बताते हैं (कि) कारण क्या है ?

★ ★ ★

काव्य - ८

ज्ञानी कर्म के कर्ता-भोगता नहीं हैं इसका कारण (सवैया इकतीसा)

चिनमुद्राधारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन,
रतन भंडारी अपहारी कर्म रोगकौ।
प्यारौ पंडितनकौं हुस्यारौ मोख मारगमैं,
न्यारौ पुदगलसौं उज्यारौ उपयोगकौ।।
जानै निज पर तत्त रहै जगमैं विरत्त,
गहै न ममत्त मन वच काय जोगकौ।
ता कारन ग्यानी ग्यानावरनादि करमकौ,
करता न होइ भोगता न होइ भोगकौ।।८।।

शब्दार्थ:-चिन्मुद्रा=चैतन्य चिह्न। ध्रुव=नित्य। अपहारी कर्म रोगकौ=कर्म-रूपी रोग का नष्ट करनेवाला। हुस्यारौ (होश्यर)=प्रवीण। उज्झारौ=प्रकाश। उपयोग=ज्ञानदर्शन। तत्त (तत्त्व)=निजस्वरूप। विरत (विरक्त)=वैरागी। ममत्त (ममत्व)=अपनापन।

अर्थ:-चैतन्य चिह्न का धारक अपने नित्य स्वभाव का स्वामी, ज्ञान आदि गुणरूप रत्नों का भण्डार, कर्मरूप रोगों का नष्ट करनेवाला, ज्ञानी लोगों का प्रिय, मोक्षमार्ग में कुशल, शरीर आदि पुद्‌गलों से पृथक्, ज्ञानदर्शन का प्रकाशक, निज पर

तत्त्व का ज्ञाता, संसार से विरक्त, मन-वचन-काय के योगों से ममत्व रहित होने के कारण ज्ञानी जीव ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता और भोगों का भोगता नहीं होता है।।८।।

काव्य-८ पर प्रवचन

चिनमुद्राधारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन,
रतन भंडारी अपहारी कर्म रोगकौ।
प्यारौ पंडितनकौं हुस्यारौ मोख मारगमैं,
न्यारौ पुदगलसौं उज्यारौ उपयोगकौ।।
जानै निज पर तत्त रहै जगमैं विरत्त,
गहै न ममत्त मन वच काय जोगकौ।
ता कारन ग्यानी ग्यानावरनादि करमकौ,
करता न होइ भोगता न होइ भोगकौ।।८।।

चैतन्यचिह्न नित्य... **चिनमुद्राधारी ध्रुव...** धर्मी की दृष्टि तो चिन्मुद्रा ध्रुव पर पड़ी होती है। पर्यायबुद्धि छूट गयी और द्रव्यबुद्धि हो गयी। पर्याय है, ऐसा ख्याल रखते हैं, परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। ध्रुव चिन्मुद्राधारी भगवान आत्मा ज्ञान-चैतन्यचिह्न का धारक और **अपने नित्य स्वभाव का स्वामी...** ध्रुव धर्म अधिकारी। क्या कहते हैं? चिन्मुद्राधारी—ज्ञान की मुद्रावाला भगवान आत्मा। और **ध्रुव धर्म अधिकारी...** त्रिकाली ध्रुव के धर्म का अधिकारी आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुव और फिर नित्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, फिर नित्य शब्द प्रयोग किया है।... '**नित्य भवेद्वेदको**' है न? '**अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको।**' आहाहा! कहते हैं कि समकिती तो ध्रुव धर्म का अधिकारी है। आहाहा! और **गुन रतन भंडारी...** उसके पास भण्डार हो तो गुण के रत्न का भण्डार है। यह धूल का भण्डार-फण्डार, उसे अपना मानता नहीं। है? ज्ञानादि गुण रत्नों का भण्डार है। आहाहा! **रतन भंडारी अपहारी कर्म रोगकौ...** यह तो कर्मरूपी रोग है रागादि, उसका तो नाश करनेवाला है, रक्षा करनेवाला नहीं। उसको ज्ञानी कहते हैं। इस कारण से वह कर्ता-भोक्ता नहीं है। विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२०, श्रावण शुक्ल ८, शुक्रवार, दिनांक ३०-०७-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-८, ९, १०

सर्वविशुद्ध अधिकार। पाँचवाँ कलश है न नीचे, उसका आठवाँ पद है। २४८ पृष्ठ। कल एक (लाईन) बोल ली गयी है। फिर से। **ज्ञानी कर्म के कर्ता-भोगता नहीं है, इसका कारण।** किस कारण से धर्मी रागादि का कर्ता और भोक्ता नहीं है, उसका कारण बताते हैं। अज्ञानी किस कारण से राग का कर्ता और भोक्ता होता है? यह इससे विरुद्ध दृष्टि में हो, ऐसा। यह बाद में कहेंगे।

ग्यारह बोल कहे। कहते हैं कि धर्मी जीव की दृष्टि चैतन्यचिह्न... वह तो चैतन्य के लक्षण को धरनेवाला है। राग और शरीर मेरे हैं, ऐसी उसकी मान्यता होती नहीं। देखो, यह समकिती चौथे गुणस्थान (वाला)। चेतन चिन्मुद्राधारी। जिसका चैतन्यलक्षण है, वह बड़े आत्मा को लक्षित करता है धर्मी। पुण्य-पाप के परिणाम या परवस्तु, उसके लक्ष्य से आत्मा का लक्ष्य होता है, ऐसा धर्मी मानता नहीं। वह तो चैतन्य का पिण्ड है। भगवान आत्मा समझ और चैतन्य का तो सागर है। चैतन्य जिसकी मुद्रा-लक्षण है। आहाहा! और **ध्रुव धर्म अधिकारी...** सम्यग्दृष्टि त्रिकाली ध्रुव स्वभाव नित्य, उसका वह स्वामी है। आहाहा! संयोग और राग का वह स्वामी नहीं। आहाहा! **ध्रुव धर्म अधिकारी...** अर्थ में लिखा है कि नित्य स्वभाव का स्वामी है। आहाहा! ध्रुव कहो या नित्य कहो। आहाहा!

अज्ञानी उससे उल्टा है। वह पुण्य-पाप का कर्तव्य करनेवाला और वह मेरा कर्तव्य है—ऐसा लक्षणवाला है और उसकी—अज्ञानी की बुद्धि राग और पर्याय के ऊपर होती है। ज्ञानी की बुद्धि ध्रुव धर्म के ऊपर होती है। आहाहा! नित्यानन्द... सवेरे बहुत आया था आज। परमस्वरूप भगवान अविनाशी नित्य ध्रुव अंश। नय है न। नय का विषय अंश है। परन्तु एक समय की पर्याय का अंश वह नहीं। ध्रुव... आहाहा! नित्य भगवान आत्मा अविनाशी, उसके सन्मुख जिसकी दृष्टि है। चाहे तो युद्ध आदि की क्रिया में दिखाई दे, खाने-पीने और बोलने में दिखाई दे तो भी धर्मी की दृष्टि तो ध्रुव के स्वामीपने है। आहाहा! मैं पत्नी का पति हूँ या देश का स्वामी हूँ या राग का स्वामी हूँ

या नौकर का सेठ हूँ—ऐसी बुद्धि कहीं समकिती ज्ञानी को होती नहीं। समझ में आया?

यह पाँचवाँ कलश अमृतचन्द्राचार्य का है, उनका यह पद है। **गुन रतन भंडारी...** आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द—ऐसे अनन्त गुणों का—रतन का भण्डारी यह तो है। इसके भण्डार में तो अनन्त गुण पड़े हैं। आहाहा! यह राग और पर की लक्ष्मी का भण्डारी धर्मी नहीं। सेठ! यह भण्डारी, देखो! यह तुम्हारे पैसे का भण्डारी कहते हैं न तुमको सबको? पैसेवाले हैं, धूलवाले हैं। इसका अर्थ कि धूलवाले हैं, ऐसा।

मुमुक्षु : निश्चय का भण्डार, सो व्यवहार का भण्डारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का भण्डारी अर्थात् मिथ्यादृष्टि। व्यवहार-राग का स्वामी हो तो भी मिथ्यादृष्टि, फिर लक्ष्मी की तो कहाँ बात रही। आहाहा! बात ऐसी है, प्रभु! यह तेरी चीज़ गुण रत्न भण्डारी है।

अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसे तो अनन्त गुण संख्या से। है? **गुन रतन भंडारी...** बहुत बार कहा है गुण कितने यह। अनन्त। कितने अनन्त? कि छह महीने और आठ समय में सिद्ध होते हैं छह सौ आठ (जीव)। ऐसा सिद्धान्त है न? छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ मुक्ति को प्राप्त करते हैं। यह अनन्त काल हुआ। अनन्त पुद्‌गलपरावर्तन। उसकी जो संख्या सिद्ध की होती है, उससे एक आलू का राई जितना टुकड़ा... आलू कहते हैं न? बटाटा। हमारे (गुजराती में) बटाटा कहते हैं, तुम्हारे आलू कहते हैं न? आलू, प्याज, लहसुन की एक राई जितनी कटकी—टुकड़ा, उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर। एक शरीर में सिद्ध जो अभी तक हुए, उससे अनन्तगुना जीव। समझ में आया?

यह तो ज्ञान की पर्याय की इतनी सामर्थ्य है कि इतने ज्ञेय को भी जान ले। ऐसी बात है। समझ में आया? यह संसारी जीव की संख्या सिद्ध से अनन्तगुणी। उससे परमाणु अनन्तगुणे, यह रजकण। जीव की संख्या से यह परमाणु की संख्या अनन्तगुणी। एक जीव के (संयोग में) अनन्त रजकण। ऐसे तो अनन्त जीव से अनन्तगुणे रजकण हैं। पुद्‌गल अनन्तगुणे हैं और उससे तीन काल के समय अनन्तगुणे हैं। 'क' बोले

उसमें असंख्य समय चले जाते हैं काल के। वैसे तीन काल के समय, पुद्गल परमाणु की संख्या की अपेक्षा अनन्तगुणी संख्या है।

यह तो गुण कितना, यह कहते हैं, सेठ! तुम्हारे तो रुपये कितने हों? ६० लाख, ३० लाख, ८० लाख या करोड़पति कहते हों, लो न। यह दस करोड़, उसे फिर पाँच करोड़। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि पुद्गल परमाणु की संख्या से तीन काल के समय अनन्तगुणे, अनन्तगुणे और उससे आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे। आकाश है न। एक पॉईन्ट रजकण रखे (रहे) जितने में, (उसे) एक प्रदेश कहा जाता है। ऐसा आकाश सर्वव्यापक है। कहीं अन्त नहीं। ऐसे आकाश के प्रदेश की संख्या, काल से अनन्तगुणी है। और उससे अनन्तगुणे एक आत्मा में गुण हैं। आकाश के प्रदेश से भी अनन्त गुणे एक जीव में गुण हैं। आहाहा! ऐसे धर्मी तो गुण रत्न भण्डारी हैं। समझ में आया?

जिसकी दृष्टि में ध्रुव तत्त्व पड़ा है, उस ध्रुव में तो अनन्त गुण हैं, ऐसा कहते हैं। राग का स्वामी या राग करूँ—ऐसी बुद्धि समकिती को होती नहीं। हो जाये राग, परन्तु उसका कर्ता, मैंने रचा—यह बुद्धि समकिती की नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी! ऐसी वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु : करूँ और हो जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो जाये दूसरी बात है और मैं रचूँ, यह दूसरी बात है। आ जाये पुरुषार्थ की कमी से तो उसका ज्ञानी ज्ञाता रहता है, दृष्टा रहता है। रचना मेरी है, ऐसा मानता नहीं। समझ में आया? **गुन रतन भंडारी...** तीन बोल हुए। कितने बोल हुए? तीन... तीन। (१) चिन्मुद्राधारी, (२) ध्रुव धर्म अधिकारी, (३) गुण रतन भंडारी। आहाहा! अज्ञानी का मार्ग तो, राग और पुण्य-पाप का, यह मार्ग उसका है। उसके पास गुण रत्न है नहीं। आहाहा!

अपहारी कर्म रोगकौ... चौथा बोल। सम्यग्दृष्टि की ध्रुव के ऊपर नजर होने से कर्म का रोग तो नाश हो जाता है। आहाहा! चौथे गुणस्थान से मलिनता का नाश और आठ कर्म का भी नाश होता है। समझ में आया? आहाहा! **अपहारी कर्म रोगकौ...** ऐसा

आया न ? कर्म रोग का नष्ट करनेवाला। **प्यारौ पंडितनकौ...** धर्मी, ज्ञानी को ही प्यारे लगते हैं। अज्ञानी को तो ठीक लगते नहीं। आहाहा! समझ में आया ? पण्डित अर्थात् ज्ञानी। समकिती को ही समकिती प्यारा लगता है। अज्ञानी को तो 'हट! यह कहाँ मारकर उल्टा मार्ग....' ऐ पण्डितजी! व्यवहार का लोप कर देते हैं। ऐसे अज्ञानी को तो (धर्मी) प्रिय नहीं लगते। समझ में आया ? जेठाभाई! **प्यारौ पंडितनकौ...** ज्ञानी को ज्ञानी प्रिय है। अज्ञानी को ज्ञानी प्रिय नहीं लगता है। ओहोहो!

हुस्यारौ मोख मारगमैं,... होशियार। होशियार का क्या अर्थ किया है ? कुशल—प्रवीण। मोक्षमार्ग में धर्मी प्रवीण है। दुनिया की चीज़ में प्रवीण—फ्रवीण की बात यहाँ है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? होशियार, प्रवीण, चतुर, कुशल। मोक्षमार्ग में कुशल है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में कुशल है। राग में और संसार के धन्धे में कुशल है नहीं। लो, वकील! वकालत में कुशल नहीं, ऐसा कहते हैं। वकील है न! इसे खबर है न। इसके यहाँ भोजन करने को गये थे।

मुमुक्षु : आत्मा की वकालत तो कहते नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आत्मा की वकालत तो चलती है। भोजन करने को गये थे। पहले गये थे तो उसका कमरा था। मेडी क्या ? मंजिल। खबर है न! आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत काम करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ करते नहीं। अभिमान करते हैं। यहाँ तो कहते हैं, **हुस्यारौ मोख मारगमैं,...** आहाहा! संसार की चतुराई में होशियार हो—न हो, उसके साथ सम्बन्ध (है नहीं)। आहाहा!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। यह सम्यग्दर्शन अपने पूर्णानन्दस्वभाव के आश्रय से होता है और स्वसंवेदन ज्ञान भी अपने द्रव्य के आश्रय से होता है। वह ज्ञान कोई पर के आश्रय से होता नहीं। आहाहा! समकिती ऐसा मानते हैं कि वाणी सुनने से और वीतराग की वाणी से भी मुझे ज्ञान प्रगट होता है, ऐसा वे नहीं मानते। विकल्प ऐसा आया। सुनने में विकल्प है। वह व्यवहार बीच में आया, परन्तु उससे ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! बात तो ऐसी है। यहाँ क्या कहते हैं, देखो! **हुस्यारौ मोख मारगमैं,...** अपना

ज्ञान अपने से प्रगट हुआ, वह होशियार—कुशल है। आहाहा! पर की अपेक्षा रखकर हमें ज्ञान होता है, ऐसा समकिती मानते नहीं।

और चारित्र। अपना स्वरूप आनन्द में रमना, लीन होना, वह चारित्र। ऐसे समकिती उसमें कुशल है। स्थिरता विशेष भले न हो, परन्तु मेरे स्वरूप में रमना, वह चारित्र है, ऐसा वह कुशल है। पुण्य-पाप के परिणाम चारित्र हैं और व्रत चारित्र है, वह समकिती मानता नहीं। है या नहीं उसमें? यह अन्दर लिखा है। आहाहा! **ज्ञानी लोगों को प्रिय, मोक्षमार्ग में कुशल**। नीचे अर्थ है न। पाठ है न उसमें। मूल तो है न पाठ में? **ज्ञानी तु प्रकृति स्वभाव विरतो नो जातुचिद्वेदकः** उसमें से सब निकाला है। समझ में आया? कहते हैं कि **हुस्यारौ मोख मारगमैं,...**

न्यारो पुद्गलसौं... कुशल। यह छठवाँ बोल हुआ। **शरीर आदि पुद्गलों से पृथक्**। आहाहा! राग के विकल्प से पृथक् है धर्मी। राग तो पर है। आहाहा! समझ में आया? सुबह तो पर्याय को परद्रव्य कहा था। आहाहा! सार में सार गाथा थी वह। रिकॉर्ड में आया है न? ऐसी चीज़ है। भाषा स्पष्ट थी अन्दर। ऐसे रिकॉर्डिंग किया है। भाषा स्पष्ट। नहीं तो कितनी ही बार नहीं चलती। महाराज बोलते हैं कि इसकी रिकॉर्डिंग खराब नहीं पड़ी हमारे पन्नालाल को। आँखें ठीक नहीं बराबर। भाई कहते थे। खबर नहीं कि यह कौन बोलता है। आँख... आँखें आयी आँखें। आहाहा! **शरीर आदि पुद्गलों से पृथक्**। भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप (ऐसी) जिसकी दृष्टि हुई, ऐसा समकिती राग और पुद्गल से तो न्यारा है। आहाहा! स्त्री-कुटुम्ब में पड़ा होने पर भी उनसे न्यारा है। उसमें वह है नहीं आत्मा में। आहाहा! समझ में आया?

न्यारौ पुद्गलसौं उज्यारौ उपयोगकौ... ज्ञान और दर्शन, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का प्रकाश करनेवाला है। दूसरा हो-न हो, दूसरी बात। अवधि, मनःपर्यय... समझे? ज्ञान-दर्शन का प्रकाशक। सम्यग्ज्ञान, मति और श्रुत का प्रकाश करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। दूसरे को बतानेवाला है, ऐसा यहाँ नहीं। दूसरे को प्रकाश कर दे, बता दे—ऐसा नहीं। वह तो वाणी है, जड़ है। कौन बता दे? आहाहा! कठिन काम! मात्र अपना ज्ञान, दर्शन का प्रकाशक है। चैतन्यस्वभाव भगवान के अवलम्बन से जो मति-श्रुतज्ञान हुआ, उसका वह प्रकाश करनेवाला है, उसका प्रकाश करनेवाला है। आहाहा! आठ बोल हुए। आठ-आठ।

जाने निज पर तत्त... नौवाँ। **जाने निज पर तत्त...** समकिती को, निजस्वरूप क्या है और रागादि पर क्या है—उसका विवेक अन्दर हो गया है। आहाहा! व्यवहार भी परतत्त्व है। शुभ उपयोग है न, वह परतत्त्व है। भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टा, वह स्वतत्त्व है। ऐसा समकिती धर्मी जीव को चौथे गुणस्थान में ऐसा पर से भिन्न का विवेक—भेदज्ञान हो गया है।

रहै जगमैं विरत... दसवाँ बोल। यह संसार से विरक्त है। उदय भावादि संसार से तो भिन्न है। आहाहा! राग में रत्त नहीं। उदयभाव, वह संसार है। संसार कोई स्त्री, कुटुम्ब परिवार नहीं। 'संसार—संसरणं इति संसार:।' भगवान शुद्ध चिदानन्दस्वरूप से हटकर राग और विकल्प में आना, वह संसार है। आहाहा! समझ में आया? यह शान्ति का मार्ग है, भाई! आहाहा! अनन्त काल से जन्म-जरा-मरण करके चौरासी के अवतार में चले गये। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु बैठती क्यों नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार करता नहीं इसलिए। वह कैसे बैठ जाती है खेती की? दरबार! पच्चीस हजार की आमदनी, वहाँ गलगलिया हो जाये अन्दर से। रुचि है वहाँ। दरबार है जमींदार। क्यों दरबार? पैसा, पुत्र बराबर काम करे, फलाना करे, वहाँ प्रसन्न हो जाये अन्दर। जिसके ऊपर रुचि, उसकी उसे प्रसन्नता है। आत्मा की रुचि हो तो आत्मा की प्रसन्नता होती है। आहाहा!

'रुचि अनुयायी वीर्य' ऐसा शब्द है। जिसमें जितनी रुचि होती है, उस ओर उसका पुरुषार्थ—वीर्य गति करता है। 'रुचि अनुयायी वीर्य।' रुचि यदि स्वभाव-सन्मुख हो तो वीर्य—पुरुषार्थ उस—सन्मुख काम करता है। राग और पुण्य में रुचि हो तो वीर्य उस सन्मुख काम करता है। आहाहा! समझ में आया? वस्तुस्थिति प्रत्यक्ष स्पष्ट है। यह चीज़ है। आहा! वह भी वीतरागमार्ग के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं अन्यत्र होता नहीं। किसके साथ समन्वय करे? आहाहा! देखो तो सही! जिसको जगत से विरक्त (अर्थात्) राग में रत नहीं। संसार से विरक्त। वह प्रवचनसार में लिया है। संसार किसको कहते है? 'संसरणं इति संसार:'। चिदानन्द भगवान ध्रुव आनन्दकन्द से हटकर, संसरणं—कटकर राग और पुण्य को अपना मानना, वह मिथ्यात्व ही संसार है। आहाहा!

यह इसमें लिखा है। छठवाँ कलश है न! छठवें कलश में आता है। उसमें आता है न? अर्थ में नहीं आता होगा। कहीं लिखा है। मिथ्यात्व ही संसार है। यह छठवाँ कलश आयेगा न, भाई! **स हि मुक्त एव**। वहाँ कहीं है। छठवाँ कलश, उसमें नौवाँ पद है। **साधक सिद्धसम...** साधक तो सिद्धसम है। मिथ्यात्व, वही संसार है। समझ में आया? कहीं लिखा है अवश्य। किसमें लिखा है? नौवें पद में। यह तो पहले कहा। यह तो उसमें नौवाँ पद है न, उसमें कहीं लिखा है। उसमें लिखा नहीं। कहीं है अवश्य कि मिथ्यात्व संसार है। अटपटी। सर्वविशुद्ध अधिकार। मिथ्यात्व, वह संसार है, ऐसा है कहीं। अपने तो अन्यत्र आ गया है। यह तो अब में कहीं। बहुत पुस्तकें हैं, उनमें कहीं है। लक्ष्य में है। पहले आ गया है।

प्रसिद्ध होओ। मिथ्यात्व ही आस्रव और बन्ध है। पहले आ गया है। यह तो उसमें। समकित है, वह संवर, निर्जरा और मोक्ष है। प्रसिद्ध—प्रगट हो कि विपरीत मान्यता, वही संसार, बन्ध और आस्रव है। और सम्यग्दर्शन, वही संवर, निर्जरा और मोक्ष है। यह कहेंगे छठवें कलश में। निज-पर तत्त्व का ज्ञाता है, संसार से विरक्त है। आहाहा! **मन-वचन-काय के योगों से ममत्व रहित होने के कारण**। यह ११वाँ बोल। मन, वचन और काय योगों से ममत्वरहित है। आहाहा! मन, वचन, काया तो जड़ है, परन्तु कम्पन जो है अन्दर, उससे भी ज्ञानी तो ममत्वरहित है। कम्पन तो दोष है, दोष से रहित ज्ञानी है। इस कारण से... ऐसा है न? ममत्वरहित होने के कारण... ऊपर यह बताया था न? ज्ञानी कर्म के कर्ता भोक्ता नहीं, उसका कारण क्या? यह कारण। आहाहा! अजर प्याला है, भाई! मार्ग ऐसा है।

कहते हैं, **तो कारन ग्यानी ग्यानावरनादि करमकौ करता न होई**। इस कारण से, ऐसा। कर्ता नहीं, कर्ता नहीं, परन्तु क्यों कर्ता नहीं? कर्म का कर्ता नहीं, पर का कर्ता नहीं, किस कारण से? चिन्मुद्राधारी आदि ११ बोल के कारण से पर का कर्ता नहीं, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी अज्ञान से राग को अपना मानने के कारण, जिस चीज़ को अपनी मानते हैं, उसे अपने से भिन्न नहीं मानते तो उसका कर्ता होता है। क्योंकि उसका कारण है। वह आगे कहेंगे। दसवें पद में अज्ञानी की बात आयेगी। समझ में आया? सत्य भी जैसा है, वैसा समझना चाहिए। समझ में आया? ऐसे के ऐसे

बहुत पढ़ जाये, पढ़ जाये शास्त्रादि, परन्तु मूल तत्त्व क्या चीज़ है और तत्त्व में क्या चीज़ नहीं है... निश्चय में व्यवहार नहीं, व्यवहार में निश्चय नहीं। दो तत्त्व भिन्न है। समझ में आया ?

ऐसा कारण... निज और पर तत्त्व के ज्ञाता के कारण, संसार विरक्त के कारण और मन-वचन-काया के ममत्वरहित के कारण... अपने अनन्त गुण के भण्डार पर जिसकी दृष्टि है, (तो) वहाँ मेरापना है। योग में मेरापना नहीं। आहाहा! ऐसे ज्ञानी जीव, ज्ञानावरणीय कर्मों का कर्ता (नहीं)। इस कारण से धर्मी कर्ता है नहीं, ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा! समझ में आया? इस कारण से धर्मी जीव पर का कर्ता है नहीं। क्योंकि पर से भिन्न अपने स्वरूप का भान, ज्ञान का प्रकाश, प्रवीण आदि कारण से, योग की ममता से रहित के कारण से—वह पर का कर्ता और राग का भोक्ता इस कारण से नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है! राग तो दसवें गुणस्थान तक रहता है और यहाँ कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में कर्ता और भोक्ता नहीं है।

मुमुक्षु : राग क्या स्वभाव में आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव से भिन्न रहता है। दसवें (गुणस्थान में) हो, परन्तु भिन्न है। तत्त्व ही भिन्न है न! वह आस्रवतत्त्व है, आत्मा ज्ञायकतत्त्व है। ऐसा स्वतत्त्व-परतत्त्व को भिन्न जाना, वह परतत्त्व का कर्ता होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, पूनमचन्दजी! कैसी बात है? बहुत सूक्ष्म लगे। उसको सबको अच्छा लगे। सब धर्म समान है, ऐसा है और तैसा है, अच्छा लगे सबको। आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा, वह एक ही मार्ग सत्य है। दूसरों के साथ मिलान करना, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? सब धर्म समान मानना, यह विनय मिथ्यात्व है। पण्डितजी! विनय मिथ्यात्व आता है न? पाँच मिथ्यात्व है न? विनय मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : सब धर्म समान, यह विनय मिथ्यात्व ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विनय मिथ्यात्व है। यह पण्डितजी स्पष्टीकरण करवाते हैं। विनय मिथ्यात्व। आहाहा! यह भी सच्चा, वह भी सच्चा, वह भी सच्चा। आहाहा!

एक सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा आत्मा, वही एक सत्य है। यह आत्मा, सर्वज्ञ के

अतिरिक्त दूसरे ने ऐसा देखा नहीं। समकिती जानते हैं और सर्वज्ञ ने पूर्ण देखा है। अज्ञानी अल्पज्ञानी बातें करे आत्मा की कि ऐसा आत्मा और ऐसा आत्मा... तीन काल में हो सकता नहीं। क्योंकि भगवान आत्मा ही सर्वज्ञस्वभावी है। स्वभाव में सर्वज्ञ शक्ति है न? ४७ शक्तियाँ हैं न! सर्वज्ञ स्वभाव है। एक-एक आत्मा में सर्वज्ञ गुण पड़ा है। यहाँ कहा न? गुण रतन भण्डारी। तो उसमें अनन्त ज्ञान, सर्वज्ञ शक्ति भी प्रतीति में आ गयी है। समकिती को सर्वज्ञशक्ति, मैं सर्वज्ञ गुणवाला हूँ, सर्वज्ञ दर्शनवाला हूँ, मैं अनन्त आनन्दवाला हूँ—ऐसा अन्दर प्रतीति, अनुभव में समकिती को आ गया है। समझ में आया? सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई आत्मा को अल्पज्ञ आदि कहे और पूर्ण न कहे, तो वह आत्मा को जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह आठवाँ पद। छठवाँ कलश इस ओर नीचे।

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म,
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम्।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा-
च्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव।।६।।

★ ★ ★

काव्य - ९

(दोहा)

निरभिलाष करनी करै, भोग अरुचि घट मांहि।
तातैं साधक सिद्धसम, करता भुगता नांहि।।९।।

शब्दार्थः-निरभिलाष=इच्छा रहित। अरुचि=अनुराग का अभाव। साधक=मोक्ष का साधक सम्यग्दृष्टि जीव। भुगता (भोक्ता)=भोगनेवाला।

अर्थः-सम्यग्दृष्टि जीव इच्छा रहित क्रिया करते हैं और अन्तरंग भोगों से विरक्त रहते हैं, इससे वे सिद्ध भगवान के समान मात्र ज्ञाता-दृष्टा हैं, कर्ता-भोगता नहीं हैं।।९।।

काव्य-९ पर प्रवचन

शुद्धस्वभाव का अनुभव है, इसलिए मुक्त है, ऐसा कहते हैं। यह छठवाँ कलश। इसमें अर्थ बहुत संक्षिप्त लिया है। **निरभिलाष करनी करै भोग अरुचि घट मांहि...** कर्ता-भोक्ता का स्पष्टीकरण करते हैं। **निरभिलाष करनी करै...** राग आवे सही, पुण्य हो सही, परन्तु अभिलाषा बिना। आहाहा! इच्छा नहीं। इच्छा की इच्छा नहीं। राग का राग नहीं। राग आता है, परन्तु राग का राग नहीं। आहाहा! राग का प्रेम नहीं, रुचि नहीं। रुचि ज्ञाता-दृष्टा की है। आहाहा!

मुमुक्षु : सब करे, माने नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब करे, यह भाषा। यहाँ निराभिलाष करनी करे (ऐसा) शब्द आया है। 'करे' का अर्थ करे, तो कर्ता का तो निषेध करना है। समझाना है न? रागरूप परिणमन होता है, परन्तु उसकी अभिलाषा नहीं। वह ठीक है, ऐसी दृष्टि, इच्छा है नहीं।

मुमुक्षु : करना परन्तु उसके फल की इच्छा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करे और फिर अभिलाषा न रखे, यह और दूसरी बात। कर्ता हो और अभिलाषा न हो? अनासक्ति योग कहते हैं न? करना, (परन्तु) आसक्ति नहीं रखना। यह बात ही झूठी है। अनासक्ति योग। पढ़ा है या नहीं? झूठ बात है। पर का करना, वही आसक्ति मिथ्यात्व की है। वीतराग का मार्ग ऐसा है। समझ में आया? मैं पर की दया पाल सकता हूँ, संसार की व्यवस्था कर सकता हूँ, कुटुम्ब को निभा सकता हूँ—ऐसी कर्ताबुद्धि, वही मिथ्यात्व की आसक्ति है। करना और आसक्ति नहीं रखना—तो दो का मेल होता नहीं। आहाहा!

वह अमरचन्दभाई थे न? बीन बजाते समयसार पढ़कर। मोरबीवाले। वेदान्ती की लाईन थी न अन्दर। वाँचकर ऐसा (अर्थ) करते वे। वैसे होशियार व्यक्ति बाहर में। गवर्नर ने महिमा की थी एक बार, इसलिए ... हो गये मान में। फिर (कहे) 'देखो, समयसार शास्त्र में आता है कि क्रिया करना परन्तु इच्छा-अभिलाषा नहीं रखना।' ऐसा

है ही नहीं। करने की बात है ही नहीं। यहाँ तो करने-भोगने का निषेध करना है। पाठ में है न यहाँ? '**ज्ञानी करोति**' न, ऐसा है न? '**न वेदयते कर्म जानाति के वलमयं किल तत्सवभावम्**।' आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में लिखा है, मानते नहीं और विनाश करणी करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नीचे क्या कहा है? पद उन्होंने बनाया है। अर्थ समझना चाहिए या नहीं?

अरिहंताणं, लो। शास्त्र में आता है 'णमो अरिहंताणं।' कर्मरूपी अरि का जिसने नाश किया। जड़ का नाश कर सकता है आत्मा? जड़ की पर्याय तो स्वतन्त्र है। कहाँ लिखा है? 'णमो अरिहंताणं' लो। कोई और कहे, अरहंताणं। भाई! दोनों एक है। अरिहंताणं और अरहंताणं। उसमें कुछ (अन्तर है)? दोनों अर्थ सच्चे हैं। ऐसा कि और शत्रु को नहीं लेना। जैनधर्म में शत्रु कहाँ? अरे, परन्तु नाम में क्या है? अरि अर्थात् वैरी—दुश्मन आठ कर्म, लो ठीक। जड़ दुश्मन? चैतन्य के अष्टकर्म दुष्ट कर्म। यह तो भाषा तो समझाना कैसे? वैरी... ऐसा लिया है प्रवचनसार में। अपनी विकारी दशा, वह अनिष्ट और वैरी है। अनिष्ट है वह। ऐसा पाठ प्रवचनसार में लिया है। इष्ट अपना निर्मलानन्द स्वभाव, वह इष्ट है। विकार, वह अनिष्ट है, वह वैरी है। उसमें लिया है न?

चिद्विलास में लिया है भाई ने। अनुभवप्रकाश के कर्ता। क्या कहलाते हैं वे? दीपचन्दजी। वैरी अपनी पर्याय में होता है। वैरीपन दूर नहीं होता। ऐसा लिया है। निश्चय का अधिकार लिया न? व्यवहार—निश्चय का अधिकार है। दो व्याख्या ली है। वैरी तो अपनी विरोधी दशा, वह वैरी है। परद्रव्य वैरी कहाँ से आया? परद्रव्य तो भिन्न चीज़ है। आहाहा! तथापि शास्त्र में आता है 'णमो अरिहंताणं।' वह तो व्यवहारनय का कथन है। अज्ञान का नाश होता है, तब कर्म उसके (स्वयं के) कारण से कर्मपर्याय पलटकर अकर्मपर्याय हो जाती है। उसको नाश किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आया। लिखा है न? लिखा है, परन्तु किस नय का कथन है?

शास्त्र का कोई भी शब्द नय बिना का होता नहीं। या निश्चय, या व्यवहार, या सद्भूत या असद्भूत, उपचार या अनुपचार। नय बिना का वाक्य कोई होता नहीं। समझ में आया? धवल में लिया है। उसमें आया है नयचक्र में। नयचक्र है न? उसमें भी

लिया कि कोई भी वाक्य शास्त्र का नय बिना होता नहीं। कौन सा नय है, वह तुझे विचार करना चाहिए। लालचन्दजी! कोई भी शास्त्र वीतराग का, हों! अन्यमत में तो है ही कहाँ? वीतराग के शास्त्र... धवल में लिया है।

धवल तो भगवान की ठेठ तक की वाणी है न वह तो। यह 'धवल', 'जयधवल', 'महाधवल'। वीतराग की वाणी के साथ सब सम्बन्ध है टीका का। जयसेनस्वामी ने टीका बनायी है। षट्खण्डागम जो है... धरसेनाचार्य महाराज जूनागढ़ के पास थे। उन्होंने अन्तिम स्थिति—आखिर की स्थिति में दो मुनिराज को बुलाया। देह छूट जायेगी (तो) ऐसी चीज़ रह जायेगी। भावलिंगी सन्त थे। भगवन्त धरसेनाचार्य। पुष्पदन्त और भूतबली, दो मुनियों को बुलाया। वीतरागी वाणी है। वह वीतराग के साथ सम्बन्ध रखती है वह वाणी। षट्खण्डागम और यह समयसार आदि। समझ में आया? परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ के समवसरण में जो वाणी निकली थी, उसी वाणी का सम्बन्ध षट्खण्डागम, समयसार आदि से है। ऐसी वाणी है। वह कल्पना की वाणी नहीं। आहाहा! उसमें ऐसा लिखा है। समझ में आया?

किसी भी शास्त्र का कोई भी नय बिना का होता नहीं। निश्चयनय है तो शुद्ध निश्चय है या अशुद्ध निश्चय है? व्यवहार है तो सद्भूत व्यवहार है या असद्भूत व्यवहार है? सद्भूत व्यवहार है तो उपचारिक है या अनुपचारिक है? ऐसे नय के ज्ञान बिना शास्त्र का अर्थ करे तो अनर्थ हो जायेगा। समझ में आया? उसमें भी आता है न? छह बोल आते हैं न? पाँच बोल—शब्दार्थ, भावार्थ (आदि)। जयसेनाचार्य (तथा) द्रव्यसंग्रह में आते हैं।

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश में आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी भी शब्द का पहले शब्दार्थ होना चाहिए। पश्चात् आगमार्थ, पश्चात् नयार्थ, पश्चात् अन्य आगम में कैसे कहते हैं वह, पश्चात् तात्पर्य। एक-एक गाथा में पाँच-पाँच बोल से अर्थ करना चाहिए, ऐसा पाठ है। द्रव्यसंग्रह में है, जयसेनाचार्य की टीका में है, परमात्मप्रकाश में है, पंचास्तिकाय में है।

कोई भी शब्द, उसका पहले शब्दार्थ, पीछे नयार्थ (अर्थात्) किस नय का वाक्य है। पश्चात् आगमार्थ—आगम क्या कहना चाहता है उसमें। अन्यमति उसका क्या

विरोध करते हैं और अन्त में भावार्थ—तात्पर्य। कहने का तात्पर्य तो वीतरागता है। समझ में आया? ऐसे एक-एक गाथा का अर्थ करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। देखो! यहाँ अपने चलता है न कि **निरभिलाष करनी करै...** इससे यह लिया है। करे और फिर कर्ता नहीं, ऐसा कहना? कहाँ है। इसके लिये तो गाथा चलती है। आहाहा! **भोग अरुचि घट मांहि...** आहाहा! अरे, इन्द्राणी के भोग भी जिसे जहर जैसे लगते हैं। जो सुखबुद्धि है, वह मिथ्यात्व हो गया है। आहाहा! समझ में आया? **भोग अरुचि घट मांहि...** जैसे सर्प काला पाँच हाथ का (या) सात हाथ का लम्बा काला नाग देखे, वैसे ज्ञानी को भोग काले नाग जैसा लगता है।

बापू! ज्ञान अर्थात् क्या? समकित अर्थात् क्या चीज़ है? आहाहा! जिस तत्त्व में सुख नहीं, उसमें सुख मानना, वह तो मिथ्यात्व तत्त्व है। पण्डितजी! यह तो वस्तु की स्थिति है। आहाहा! व्यवहार में भी सुख नहीं, व्यवहार के राग में सुख नहीं और उसमें सुख का कारण, निश्चय का कारण मानना, मिथ्यात्व है। लोगों को यथार्थ तत्त्व समझने में बड़ा स्वच्छन्द होता है न! अपनी कल्पना से अर्थ करे, फिर गड़बड़ कर डाले। यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! अनन्त केवलियों ने कहा और उनका मुनीम होना... अरबोंपति का मुनीम होना। तेली करेगा? २५ रुपये का वेतनवाला मुनीमपना करेगा? इसी प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा (जिन्हें) एक समय में त्रिकाल ज्ञान है, ऐसे अनन्त केवली, अनन्त तीर्थंकरों का मुनीमपना (अर्थात् कि) उनकी बात करना, मुनीमपना करना, यह उसमें बड़ी जवाबदारी है। पण्डितजी!

यह दुकान चलाना... वीतरागमार्ग की दुकान चलाना। अरबोंपति की दुकान चलाने तेली बैठाते होंगे? पच्चीस (रुपये) का वेतन। अरे, वह तो पानी का पैसा भी न ले सके। उसका मुनीम तो बड़ा होता है। साधारण कारखाना अभी चलता है न (उसमें) दो हजार, पाँच हजार वेतन होवे एक व्यक्ति का।

मुमुक्षु : बीस हजार मासिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। अपने यहाँ भाई गोंडल, भाई आते हैं न? केवलचन्दभाई। दो-दो हजार वेतनवाला व्यक्ति, कारखाना चले, गोंडल (में) कारखाना चले। दो-दो हजार वेतन। बड़ा तो पच्चीस-पच्चीस हजार वेतन हो, उसमें क्या है? उसमें है क्या?

साधारण व्यक्ति काम कर सकता है?

इसी प्रकार वीतरागपंथ... सर्वज्ञदेव त्रिलोकीनाथ की दुकान धुरन्धर धर्म की चलती है, वह साधारण व्यक्ति का काम है? उसका प्ररूपणा करना, कथन करना और मिलान बिना की बात करना?

मुमुक्षु : मात्र पढ़ लेने से काम नहीं चलेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं चलेगा। पढ़ा तो ग्यारह अंग तो अनन्त बार पढ़ा। नौ पूर्व भी अनन्त बार पढ़ा। उसमें हुआ क्या? मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहाहा! जिस मार्ग का फल अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति सादि-अनन्त। जिस मार्ग का फल अनन्त आनन्द और वह आनन्द प्रगट हुआ सो प्रगट हुआ, वह सादि-अनन्त (रहे)। उस फल का कारण मार्ग कोई अलौकिक है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, **निरभिलाष करनी करै, भोग अरुचि घट मांहि...** बाहर से नहीं, अन्दर में अरुचि है। आहाहा! क्यों? कि धर्मी ने अपने आत्मा के आनन्द का स्वाद लिया है। धर्मी समकिती ने अपने अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन किया है। उस आनन्द के स्वाद के समक्ष दुनिया का भोग उसको जहर जैसा लगता है। मिलान करता है तो जहर जैसा लगता है। आहाहा! समझ में आया? चक्रवर्ती छह खण्ड के राज में रहे, ऐसा कहने में आता है। रहते नहीं, वह तो अपने आत्मा में रहते हैं। राग में (रहते) नहीं तो राग में कहाँ से आये? समकिती राग में नहीं रहते। राग से तो विरक्त कहा न? राग में (रहते) नहीं तो राग में कहाँ से आये? यह तो कथनशैली ऐसी है। समझाने को (कहते हैं) कि चक्रवर्ती छह खण्ड में रहते हैं। (वास्तव में) अखण्ड में रहते हैं। आहाहा!

दिखे ऐसा। भरत चक्रवर्ती छह खण्ड साधने के लिये जाते थे न! हर रोज— दिन-प्रतिदिन राजा की सैंकड़ों कन्यायें आती थीं। सैंकड़ों के साथ विवाह होता था। (भरतेश) वैभव में है, वह भरतेश वैभव है न, भरतेश वैभव है एक। देखा है। भरतेश वैभव देखा है या नहीं? नहीं देखा। ग्रन्थ है। यहाँ गुजराती हो गया है। हाँ, वह भरतेश वैभव है। सब देखा है न! सब यहाँ रखा है। वह हिन्दी में था, फिर गुजराती में किया।

मुमुक्षु : रत्नाकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रत्नाकर। हमने तो सब देखा है न! उसमें ऐसा लिखा है। और ऐसा है न! शादी करने जाते थे। सैंकड़ों राजा राजकन्या देते थे। विवाह प्रतिदिन होते थे। लग्न क्या? शादी। किसको? हमारी शादी हमारे पास है। विकल्प के साथ शादी नहीं (की तो) पर के साथ शादी कहाँ से आये? समझ में आया?

भोग अरुचि घट मांहि, तातैं साधक सिद्धसम। कहते हैं न नीचे। '**स हि मुक्त एव।**' वह कलश में है न? उसके साथ मिलाया। **शुद्धस्वभावनियत।** शुद्ध स्वभाव का वेदन करनेवाला यों, वही '**स हि मुक्त एव।**' आहाहा! है अन्दर कलश में है। अन्तिम—आखिरी लाईन। **स हि**—वह। ऐसा लिया। **स**—वह। **मुक्त एव,** ऐसा वापस। आहाहा! मुक्त ही है। सुन तो सही! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और सम्यग्दर्शन का ध्येय क्या चीज़ है? अलौकिक बात है, भाई! यह तो लोकोत्तर (मार्ग है)। (उसके साथ) दूसरे को लौकिक को मिलाये (तो) मिलान नहीं होता। यह आया न? पण्डितजी! तुम बोले थे न वह चिन्मुद्राधारी की।

'चिन्मुद्राधारी की मोहे रीत लगत है अटापटी, बाहर नारकी कृत दुख भोगे, अंतर सुखरस गटागटी।' कहो, नारकी को क्या है? पंचम गुणस्थान है? नारकी को पंचम गुणस्थान है? चौथा गुणस्थान है। 'बाहर नारकीकृत दु:ख भोगे अंतर सुखरस गटागटी।' सम्यग्दर्शन में आनन्द की गटागटी है, ऐसा कहते हैं। नारकी को तो पंचम गुणस्थान है नहीं। मुनिपना तो है ही नहीं। तथापि ऐसा है। अपना आनन्दस्वरूप भगवान... उसमें नियत शब्द पड़ा न, देखो। **शुद्धस्वभावनियत।** अपने आनन्द का स्वभाव का वेदन है। नियत (अर्थात्) निश्चय से अनुभव है।

'**स हि मुक्त एव।**' अटापटी (आदि) बहुत बोल आते हैं।... आस्रव से कटाकटी।

मुमुक्षु : रमत अनेक सुरनि संग, पे तिस परिणति से नित हटाहटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्ध परिणति से हटाहटी है। अशुद्ध परिणति जहाँ अपनी है नहीं, ऐसा अनुभव हुआ तो अनुभव में तो अशुद्ध परिणति से हटाहटा चलती जाती है, नाश हो जाती है। वह आया न ऊपर? **अपहारी कर्म रोगकौ...** यह रोग है। आहाहा! पुण्य और पाप का भाव, वह रोग है। अरे! रोग की इच्छा होती है किसी को? **तातैं साधक सिद्ध सम... इससे वे सिद्ध भगवान के समान मात्र ज्ञाता-दृष्टा हैं,...** लो। आहाहा!

कर्ता-भोक्ता नहीं है। देखो, स्पष्टीकरण तो यह किया। भाषा तो लेखन में (क्या) आवे ? अज्ञानी जीव कर्म का कर्ता-भोक्ता है, उसका कारण। उसमें, ज्ञानी कर्ता-भोक्ता नहीं, उसका कारण कहा था। यहाँ, अज्ञानी कर्म का कर्ता-भोक्ता है, उसका कारण। यह सातवाँ कलश है। सातवाँ है न नीचे कलश।

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षुताम् ।।७।।

यह आया वैष्णव का। वैष्णव लोग ईश्वर को कर्ता मानते हैं। इसका श्लोक है यह सर्वविशुद्ध (अधिकार) में। कर्ता मानते हैं, जगत का ईश्वर कर्ता है। ऐसा माननेवाला (और) हमारा नामधारी जैन साधु हो और (माने कि) छह काय की जीव की हम रक्षा कर सकते हैं, तो दोनों की मान्यता एक समान हुई। पण्डितजी! वैष्णव और जैन। वैष्णव (ईश्वर को) जगत का कर्ता मानते हैं। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि हमारा जैन साधु होकर... यह उसमें आयेगा आगे। उसमें आयेगा सातवें में।

त्यौं जिनमति दरबचारित्री कर... सब आयेगा। उसमें आया है न! द्रव्यचारित्र पाले, पंच महाव्रत पाले और उसका कर्ता हो, पंच महाव्रत की क्रिया का कर्ता हो। वैष्णव (ईश्वर को) जगत का कर्ता मानते हैं, ये (नामधारी जैन साधु अपने को) महाव्रत का कर्ता माने—दोनों ही मिथ्यादृष्टि एकसरीखे हैं।

मुमुक्षु : बहुत अन्तर है उसमें और इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : है नहीं, स्वतन्त्र चीज़ है जगत की। कर्ता कहाँ से आया? कर्ता आत्मा अपनी पर्याय का। द्रव्य का कर्ता तो कोई है नहीं। अनादि-अनन्त स्वतःसिद्ध है। अस्तित्व है या नहीं उसका? उसका अस्तित्व अपने से है। पर से है? आहाहा! सामान्य छह गुण में आता है। अस्तित्वगुण में आता है न? प्रमेयत्वगुण, द्रव्यत्वगुण। यहाँ तो कहते हैं कि अज्ञानी जीव कर्म का कर्ता—भोक्ता है, उसका कारण क्या? वह कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - १०

अज्ञानी जीव कर्म का कर्ता-भोगता है इसका कारण (कवित्त)

ज्यौं हिय अंध विकल मिथ्यात धर,
मृषा सकल विकलप उपजावत।
गहि एकंत पक्ष आतमकौ,
करता मानि अधोमुख धावत।।
त्यौं जिनमती दरबचारित्री कर,
कर करनी करतार कहावत।
वंछित मुकति तथापि मूढ़मति,
विन समकित भव पार न पावत।।१०।।

अर्थः-हृदय का अन्धा अज्ञानी जीव मिथ्यात्व से व्याकुल होकर मन में अनेक प्रकार के झूठे विकल्प उत्पन्न करता है, और एकान्त पक्ष ग्रहण करके आत्मा को कर्म का कर्ता मान के नीच गति का पंथ पकड़ता है। वह व्यवहारसम्यक्त्वी भावचारित्र के बिना बाह्य चारित्र स्वीकार करके शुभ क्रिया से कर्म का कर्ता कहलाता है। वह मूर्ख मोक्ष को तो चाहता है परन्तु निश्चय सम्यक्त्व के बिना संसार-समुद्र से नहीं तरता।।१०।।

काव्य-१० पर प्रवचन

ज्यौं हिय अंध विकल मिथ्यात धर,
मृषा सकल विकलप उपजावत।
गहि एकंत पक्ष आतमकौ,
करता मानि अधोमुख धावत।।
त्यौं जिनमती दरबचारित्री कर,

त्यौं जिनमती—जैन सम्प्रदाय में आये तो भी **दरबचारित्रीकर**—द्रव्यचारित्र (अर्थात्) पंच महाव्रत, २८ मूलगुण। **कर करनी करतार कहावत...** चारित्र करके

करनी का कर्ता... यह करनी मैंने की है, ऐसा मानते हैं। **वंछित मुकति तथापि मूढ़मति...** लो, ऐसे शब्द आये। यह तो ... का शब्द है। **वंछित मुकति तथापि मूढ़मति, विन समकित भव पार न पावत।** समझ में आया?

हृदय का अंधा अज्ञानी जीव, ज्यौंहि अंध विकल... मिथ्यात्व में व्याकुल होकर मन में अनेक प्रकार के झूठे विकल्प उत्पन्न करता है। मैं दया पालूँ और पर की अहिंसा करूँ और पर को समझा दूँ तथा पर मुझसे समझते हैं, ऐसा जो विकल्प मिथ्यात्व का, आहाहा! **अंध विकल मिथ्यात...** वह मिथ्यात्व का सेवनेवाला है। आहाहा! कठिन काम, भाई! हृदय का अन्धा अज्ञानी जीव मिथ्यात्व से व्याकुल होकर विपरीत मान्यता... विपरीत मान्यता... उसका कर दूँ, उसका कर दूँ, छह काय की रक्षा कर दूँ। छह काय की रक्षा करना माना तो छह काय का कर्ता हुआ। वह ईश्वर-कर्ता, यह छह काय का कर्ता। कर्ताबुद्धि एक सी हुई। समान हुआ। यह सर्वविशुद्ध अधिकार में है कलश में। समझ में आया? यह कोई पक्ष की बात नहीं, वस्तु के स्वरूप की बात है, भाई! समझ में आया?

एक बार ऐसा आया था पत्रिका में। ईश्वरकर्ता वैष्ण और जैन में अन्तर नहीं। वह पार्टी (वाले) लोगों ने दोनों को भिन्न कर दिया है। ऐसा आया था। पत्रिका में आया था। ऐसा नहीं है, भाई! पत्रिका में आया था। नाम नहीं देते। ऐसा कि दोनों एक हैं, दोनों में अन्तर नहीं। अन्तर तो स्वार्थी लोगों ने अन्तर कर दिया है। आहाहा! यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव और परमात्मा सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं कि जग में ३६३ पाखण्ड हैं। तीन सौ और त्रेसठ पाखण्ड हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। पर का कर्ता मानते हैं, ऐसे पाखण्डी हैं। तो कहते हैं कि पर को मिथ्यात्वी कहना, वह स्वयं मिथ्यात्वी है, ऐसा (वे) कहते हैं। भगवान ने कहा कि जगत में ३६३ पाखण्ड हैं। क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी, अज्ञानवादी। आता है। गिनती है या नहीं? अरे भगवान! बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! बहुत पंथ... ३६३ पाखण्ड हैं। उसकी गिनती है सब। क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी, अविनयवादी। गोम्मटसार में सब लेख है, भेद है सब। भेद है सब।

ज्यौ हिय अंध विकल मिथ्यात धर मृषा सकल विकलप उपजावत... झूठा विकल्प अज्ञानी... **गहि एकंत पक्ष आतमकौ करता मानि अधोमुख धावत...** आहाहा!

यह तो अभी अन्यमति की अपेक्षा से बात की। अब उसका सिद्धान्त मिलाते हैं। **त्यों जिनमती...** जैन में आये होने पर भी, जैन की व्यवहारक्रिया-चारित्र करने पर भी। है न? **दरबचारित्रीकर...** व्यवहार क्रिया, पंच महाव्रत, २८ मूलगुण (आदि) व्यवहारचारित्र बराबर करे। परन्तु वह राग का—क्रिया का कर्ता होता है। बात ऐसी है। यह तो वस्तु का स्वरूप है। किसी ने बनाया है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है।

जिनमती दरब चारित्री... लिखा है अन्दर, देखो! **वह व्यवहार सम्यक्त्वी भावचारित्र के बिना...** आता है। भगवान को मानते हैं, देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं व्यवहार से, परन्तु पंच महाव्रत का द्रव्यचारित्र के परिणाम का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार समकिती लिखा है, वास्तव में व्यवहार समकिती कहाँ है? **....भावचारित्र के बिना बाह्यचारित्र स्वीकार करके शुभ क्रिया से कर्म का कर्ता कहलाता है,...** देखो। आहाहा! हम अनेक क्रिया करते हैं, हम करते हैं, हमारी क्रिया है, हमें बराबर करना चाहिए।

मोक्षमार्गप्रकाश में लिखा है कि जिसको करता है तो उसकी ममता है, तो वह मेरा हुआ तो एकत्वबुद्धि हुई। भाई! आता है न? सातवें अध्याय में आता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में इस ओर पृष्ठ में आता है। यदि कोई शुभ का कर्ता माने तो ममता हुई। मेरा माना तो उसका वह कर्म हुआ—कार्य हुआ। तो कर्ता-कर्म हो गया। कर्ता-कर्म है तो अज्ञानी है वह तो। आहाहा! समझ में आया? **दरब चारित्री कर, कर करनी करतार कहावत। वंछित मुक्ति तथापि न मूढमति विन समकित भव पार न पावत।** विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२१, श्रावण शुक्ल ९, शनिवार, दिनांक ३१-०७-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-१० से १४

समयसार नाटक, सर्वविशुद्ध अधिकार। १०वाँ कलश है न। कलश है सातवाँ और पद है १०वाँ। फिर से लेते हैं, देखो। यह श्लोक ऐसे लिया है कि जो कोई विष्णु... उसका श्लोक है, भाई! सर्वविशुद्ध अधिकार। जगत को कर्ता मानते हैं, यह बात सत्य नहीं है।

मुमुक्षु : चौबीस तीर्थंकर सिद्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह, वह उसमें है। वह कलश है उसका। है न?

ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षुताम् ।।७।।

सामान्यजन अर्थात् कर्ता माननेवाला। सर्वविशुद्ध में उसका कलश है। ऐसे कोई प्राणी जैनदर्शन में जैनमति होकर भी.... देखो!

देखो, **ज्यौं हिय अंध विकल मिथ्यात धर...** हृदय का अन्धा अज्ञानी जीव मिथ्यात्व से व्याकुल होकर, **मृषा सकल विकलप उपजावत...** राग का कर्ता होकर विकल्प करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : खोटे विकल्प।

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठे विकल्प। वह विकल्प तो सच्चा है नहीं, विकल्प तो झूठा ही है। राग आदि विकल्प व्यवहार। **गहि एकंत पक्ष आतमकौ, करता मानि अधोमुख धावत...** एकान्तपक्ष ग्रहण करके आत्मा को कर्म का कर्ता मानकर, नीच गति का पंथ पकड़ता है। **अधोमुख...** अधोमुख जाते हैं। आहाहा!

कहते हैं, **त्यौं जिनमती...** वैसे जैन में जन्मा और जैन साधु द्रव्यलिंगी होकर भी, **दरबचारित्री कर...** द्रव्यचारित्र पालते हैं। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, यह द्रव्यचारित्र है। **कर करनी करतार कहावत...** यह करनी हमारी है, हम उसके कर्ता हैं। **वह व्यवहार सम्यक्त्वी भावचारित्र के बिना बाह्य चारित्र स्वीकार करके शुभक्रिया के**

कर्म का कर्ता कहलाता है। आहाहा! शुभक्रिया के परिणाम जो हैं, (उसका) मैं कर्ता (और) वह मेरा कार्य है—ऐसा मानते हैं। **वंछित मुकति तथापि मूढ़मति, विन समकित भव पार न पावत...** क्योंकि जब तक वह राग का कर्ता है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है।

कहते हैं न, **वंछित मुकति...** मुक्ति चाहे कि हम पंच महाव्रत पालते हैं, २८ मूलगुण करते हैं तो हमारी मुक्ति होगी। ऐसा अज्ञानी मूढ़मति **बिन समकित...** आत्मदर्शन... राग से रहित, विकल्प से रहित अपना चैतन्यस्वरूप उसकी अनुभव दृष्टि बिना **भव पार न पावत...** भव पार न पावत। आहाहा! यह चीज़ है। मिथ्यादृष्टि कहते हैं यहाँ। कहाँ गये रतनलालजी? यहाँ बैठे हैं। समझ में आया?

कोई भी जगत में ईश्वर को कर्ता माननेवाला है ऐसे, आचार्य महाराज कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य, ऐसे कोई जैनमत में रहकर शुभराग का कर्ता मानता है, तो दोनों ही एक जाति के मिथ्यादृष्टि हैं। धन्नालालजी! आहाहा! कहो, समझ में आया? है न पुस्तक? **दरबचारित्री...** शुभराग की क्रिया... पंच महाव्रत की, २८ मूलगुण की, अपवास आदि तप की—यह शुभ परिणाम की क्रिया है। वह **कर करनी करतार कहावत...** उस करणी का मैं कर्ता हूँ। आहाहा! **मूढ़मति मुकति तथापि बिन समकित...** मैं ज्ञानानन्द हूँ, यह राग का कर्ता नहीं। राग का कर्ता, व्यवहार का (कर्ता) माननेवाला, राग और आत्मा का स्वभाव एक मानता है। एक माने बिना कर्ता हो सकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है अन्दर। यह कोई कथन की शैली नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा को अपने ज्ञान और आनन्द का कर्ता कहना, वह भी उपचार और व्यवहार है।

मुमुक्षु : यह बात नहीं समझ में आयी। यह बात फिर से कहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं। यह गया है अपने पहले। इसमें आ गया है। कहाँ कुछ कर्ता-कर्म में आ गया है न, भाई! उपचार, नहीं? यह नीचे आ गया है कहीं। सब कहीं याद रहता है? ख्याल में वह बात होती है। कर्ता-कर्म में है। वह उपचार है।

अपनी निर्मल वीतरागी पर्याय का कर्ता कहना और (पर्याय को) कर्म, वह भी उपचार है। भेद हुआ न! आहाहा!

है उसमें? इस ओर है कहीं। कर्ता-कर्म में है। कलश-टीका में है। कर्ता-कर्म है न। निर्जरा के पहले, हों। आस्रव के पहले? कर्ता-कर्म। पहले शुरुआत में होगा, परन्तु वह चिह्न नहीं किया हुआ। दूसरा (शास्त्र) रखा है न। उपचार है, लिखा है कुछ। अपने उसमें पढ़ा है।

मुमुक्षु : समयसार कलश में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कलश में है न। यह कलश उनका ही है न। उस कलश में है, हों! कलशटीका में, हों! कलशटीका है उसमें है। कर्ता-कर्म, लो। कर्ता-कर्म में, हों! हाँ, देखो। यह चौथा कलश। धारावाही ४९ वाँ। व्याप्य—व्यापकता है न, उसमें है।

'जीव सत्त्व से पुद्गलद्रव्य का सत्त्व भिन्न है, निश्चय से व्याप्य-व्यापकता नहीं है। भावार्थ ऐसा है कि उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है। आहा! वही परिणाम द्रव्य से किये हुए हैं, अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र भी नहीं है।' आहाहा! समझ में आया? वह श्लोक है, ४९ में है। धारावाही श्लोक ४९ और कर्ता-कर्म में चौथा बोल (कलश), लो। देखो! द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता उपचारमात्र से है, देखो! शरीर, वाणी, कर्म आदि का कर्ता तो उपचारमात्र से भी नहीं। देखो, धन्नालालजी को बताओ। कहो, अंगूठा... यह अंगूठे के नीचे इस ओर यह।

मुमुक्षु : व्याप्य-व्यापकता नहीं। भावार्थ ऐसा है कि...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम नीचे। एकदम नीचे। अन्तिम आखिर की लाईन।

मुमुक्षु : उपचारमात्र से द्रव्य अपने परिणाम का कर्ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचारमात्र से... पदार्थ—द्रव्य आत्मा अपने परिणाम का उपचार से कर्ता है।

मुमुक्षु : वही परिणाम द्रव्य से किया हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किया हुआ है, इसलिए।

मुमुक्षु : अन्य द्रव्य का कर्ता अन्य द्रव्य उपचारमात्र से भी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार से भी नहीं। है ही नहीं पर के साथ व्याप्य-व्यापक। व्यापक द्रव्य है और व्याप्य उसकी अवस्था है। परद्रव्य की अवस्था व्याप्य है? आहाहा! निश्चय में तो... ७५वीं गाथा में तो ऐसा लिया है कि द्रव्य चैतन्यस्वभाव की दृष्टि जहाँ हुई तो सम्यग्दृष्टि व्यापक है और वीतरागी पर्याय उसका व्याप्य है। व्यवहाररत्नत्रय राग उसका व्याप्य नहीं। आहाहा!

क्या कहा? फिर से। फिर से। फरीने (को) क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : फिर से, दोबारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कि आत्मा... ७५ गाथा। कि अपना शुद्ध द्रव्यस्वभाव... उस स्वभाव की दृष्टि हुई तो वह अपनी निर्मल वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय वह व्याप्य और आत्मा व्यापक। परन्तु राग व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा है नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प शुभराग है, वह आत्मा का व्याप्य, आत्मा व्यापक—ऐसा है नहीं। यह व्याप्य-व्यापक कर्म में डाल दिया। कर्म व्यापक और शुभराग व्याप्य। परन्तु द्रव्यस्वभाव व्यापक और राग व्याप्य—ऐसा वस्तु में है नहीं। आहाहा! लोगों को तत्त्व की खबर नहीं होती और ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है, सत्य के निर्णय बिना। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, देखो! कि वांछित मुक्ति... अर्थ में। व्यवहार समकिती को लिया है। व्यवहार समकिती का अर्थ है तो मिथ्यादृष्टि। परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, नौ तत्त्व की श्रद्धा है, जैन साधु है, दिगम्बर मुनि है। **भावचारित्र के बिना,...** परन्तु अन्तर में ज्ञानानन्दस्वभाव का अनुभव बिना, अकेले द्रव्य क्रियाकाण्ड में जो रुक गया है, वह **बाह्यचारित्र स्वीकार करके...** व्यवहार क्रियाकाण्ड स्वीकार करके **शुभक्रिया से कर्म का कर्ता कहलाता है, वह मूर्ख...** मूढ़मति कहा है न? आहाहा! **मोक्ष को तो चाहता है परन्तु निश्चय सम्यक्त्व के बिना संसार-समुद्र से नहीं तरता।** अपना भगवान शुद्ध चैतन्यद्रव्य है, ऐसी उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि हुए बिना क्रियाकाण्ड से कभी मुक्ति होती नहीं। आहा! ऐसी बात है। **वास्तव में जीव कर्म का अकर्ता है, इसका कारण।** कारण बताते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ११

वास्तव में जीव कर्म का अकर्ता है इसका कारण (चौपाई)

चेतन अंक जीव लखि लीन्हा।
पुदगल कर्म अचेतन चीन्हा।।
बासी एक खेतके दोऊ।
जदपि तथापि मिलैं नहिं कोऊ।।११।।

अर्थ:-जीव का चैतन्य चिह्न जान लिया और पुद्गल कर्म को अचेतन पहिचान लिया। यद्यपि ये दोनों एक क्षेत्रावगाही हैं तो भी एक दूसरे से नहीं मिलते।।११।।

काव्य-११ पर प्रवचन

चेतन अंक जीव लखि लीन्हा।
पुदगल कर्म अचेतन चीन्हा।।
बासी एक खेतके दोऊ।
जदपि तथापि मिलैं नहिं कोऊ।।११।।

मिलैं नहिं कोऊ,... आहाहा! इस समयसार नाटक के समय में तो ऐसा लिखा है न कि 'घर घर नाटक कथा बखानी।' घर-घर नाटक कथा बखानी। ऐसी चीज़ है यह। अभी तो कहे, अरे! समयसार... समयसार... समयसार... है न अन्दर में पाठ? पीछे बताया था एक बार। समयसार नाटक घर-घर... उस समय बनारसीदास के काल में पंच पुरुष बहुत पूरे आगरा में हो गये। रूपचन्दजी ने कहा कि यह बनाओ। कलश की राजमल टीका थी, उसमें से बनाओ। पीछे कहा है कि घर-घर कथा बखानी। अध्यात्म की बात घर-घर चली। यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि अध्यात्म की बात नहीं करना।

मुमुक्षु : आत्मा की बात नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की मूल बात सत्य नहीं करना। झूठी बात करना।

वकील! यह सब वकील भी ऐसी गड़बड़ करते हैं, पहले से अन्दर। वकील क्या, सब दूसरे भी।

यहाँ कहते हैं कि **चेतन अंक जीव लखि लीन्हा...** जिसने जीव का चैतन्य लक्षण ऐसा जान लिया। 'मैं तो जानन-देखन लक्षणवाला हूँ। मुझमें राग, पुण्य, विकल्प, शरीर, कर्म कुछ है ही नहीं।' आहाहा! ऐसे लक्षण से लक्ष्य अर्थात् भगवान चैतन्यस्वरूप द्रव्य को अनुभव किया। ज्ञान—जानन लक्षण से लक्ष्य द्रव्य—वस्तु, चैतन्य लक्षण से लक्षित आत्मा—ऐसा अन्तर में भान होकर सम्यग्दर्शन हुआ। **पुद्गल कर्म अचेतन चीन्हा...** राग आदि पुद्गल, वह तो सब अचेतन है। आहाहा! राग... राग... व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग, उसको ७२ गाथा में जड़ कहा है, कर्ता-कर्म (अधिकार) में। जड़ है, अचेतन है, पुद्गल है। समझ में आया? आहाहा!

यह अभी प्रश्न हुआ था वहाँ जयपुर। मनोहरलालजी आये थे न। मनोहरलालजी वर्णी। दो दिन मिलने को आये थे शिखर से खास मिलने को। कभी हम मिले नहीं। जिन्दगी में कभी देखा नहीं। आये, मिलने को आयो। प्रेम से आये। पहले यह चर्चा हुई कि यह पुद्गल क्यों कहा राग को? आया न ५५ गाथा? ५० से ५५ में। पुद्गल कहा है, अचेतन है। यह आत्मा की चीज़ नहीं। आत्मा तो चैतन्यमूर्ति प्रभु है। ७२ गाथा में आया है। '**अशुचि, विपरीतं, दुःख कारणम्**।' ७२ गाथा है कर्ता-कर्म की। राग व्यवहार विकल्प है, वह अचेतन है, चैतन्य से विपरीत है, अशुचि है और दुःख का कारण है। आहाहा! भगवान आत्मा... वहाँ ऐसा लिया है। आत्मा को भगवान कहकर बुलाया है। संस्कृत टीका ७२ गाथा। ७२ है न? क्या कहते हैं? ७० और २। बहत्तर।

भगवान आत्मा... ऐसा कहा है, हों! संस्कृत टीका अमृतचन्द्राचार्य। पुण्य और पाप का राग, प्रभु! वह तो अशुचि है न, मैल है न और भगवान आत्मा तो सदा निर्मल, अति निर्मलानन्द आत्मा है। दोनों तो विपरीत हैं। आहाहा! (आस्रव) जड़ है, वह पुद्गल है क्योंकि अचेतन है। उसमें ज्ञान का अंश नहीं। व्यवहाररत्नत्रय, पंच महाव्रत के शुभराग की क्रिया, उसमें ज्ञान का अंश नहीं, वह तो अचेतन है। राग अपने को जानता नहीं, राग आत्मा को जानता नहीं, राग दूसरे से जानने में आता है। ऐसी टीका है संस्कृत में। राग दूसरे से जानने में आता है, इसलिए अचेतन है। समझ में आया?

धन्नालालजी! यह सब समझना पड़ेगा, हों! बाहर में धूल में कुछ है नहीं। हैरान... हैरान हो जाता है व्यक्ति। आहाहा!

कहते हैं, और दु:खरूप है। यह शुभराग दु:खरूप है। आहाहा! भट्टी है, अग्नि, कषाय अग्नि है। भगवान आत्मा तो ज्ञानानन्द अकषायस्वरूप है। ऐसा दो के बीच भेदज्ञान करके राग से हटकर स्वभाव का अनुभव करता है तो राग का कर्ता छूटकर ज्ञाता-दृष्टा होता है। उसका नाम धर्म और उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कठिन बातें भाई! महँगी ऐसी लगे साधारण सम्प्रदाय को। लोगों को ऐसे सबको प्रसन्न रखना सब, ओहोहो! राग से भी होता है, प्रशस्त राग से मुक्ति होती है। प्रसन्न हो सब। घात हो जाता है मिथ्यात्व से, उसकी खबर नहीं। प्रसन्न हों सब, आहाहा! यह बात बराबर है, हों! यह बात। राग आता तो है दर्शनविशुद्धि नहीं आती है? तो आता है तो किसी को लाभदायक है या नहीं शुभराग? अप्रशस्त राग भले झूठा हो। प्रशस्त राग आता है या नहीं? आहाहा!

यह दोनों तो बन्ध के ही कारण हैं, दोनों ही दु:खरूप हैं। दोनों में एक ठीक है और दूसरा अठीक है... यह प्रवचनसार ७७ गाथा में कहा (कि) दोनों में विशेषता मानते हैं, वह '**हिंडदि घोरमपारं संसार।**' कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं। आहाहा! अरेरे! उसे सत्य की शरण लेना नहीं रुचता। यह राग की शरण हो न तो कुछ-कुछ, कुछ न कुछ होगा। अरे! विकार की शरण में तो दु:ख है। आत्मा की शरण में सुख है। आहा! समझ में आया?

पुद्गल कर्म अचेतन चीन्हा, बासी एक खेत के दोऊ... एक क्षेत्र में रहनेवाले दोनों हैं—कर्म और आत्मा। हो, एक क्षेत्र में छह द्रव्य हैं, दूसरे भी हैं। **जदपि तथापि मिलैं नहि कोऊ...** कर्म का चतुष्टय—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव कर्म में है और आत्मा का चतुष्टय—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आत्मा में है। आत्मा में अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है, कर्म के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का उसमें अभाव है। यह सप्तभंगी है पहली। स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति। यह तो पहली जैनदर्शन की मूल चीज़ है। अपना आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं है। आहाहा! वही बात... **यद्यपि एक क्षेत्र के दोऊ, तथापि मिलै न कोऊ...** दोनों में मिलान एकत्वता

होती नहीं। आहा! समझ में आया? आगे कलशटीका में तो बहुत सूक्ष्म विषय लिया है, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। समझ में आया?

अपना आत्मा त्रिकाली ध्रुव एकरूप, वह अपना द्रव्य और उसमें भेद करना, वह परद्रव्य। समझ में आया? यहाँ नहीं? यह न? वह यही है न? यही है, लो। किसमें आता है? पीछे आता है, नहीं?

मुमुक्षु : स्याद्वाद अधिकार।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद अधिकार। स्याद्वाद। देखो, छठवाँ कलश है। उसमें से बनाया है यह समयसार नाटक।

'स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्पमात्र वस्तु। स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु के प्रदेश। स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल दशा—त्रिकाली। स्वभाव अर्थात् वस्तु की मूल की सहज शक्ति। परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेदकल्पना।' भगवान अभेद चिदानन्द प्रभु में भेद—'यह गुणी है और यह गुण है'—ऐसा भेद परद्रव्य है। आहाहा! देखो, यह राजमल टीका। उसमें है देखो। २५२ कलश है। २५२। स्याद्वाद (अधिकार) का छठवाँ कलश है, देखो!

'परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेदकल्पना, परक्षेत्र अर्थात् वस्तु का आधार प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्र रूप से कहे थे, वे प्रदेश सविकल्प भेद।' असंख्य प्रदेश में भेद—यह प्रदेश... यह प्रदेश, वह परक्षेत्र। आहाहा! समझ में आया?

और परकाल अर्थात् द्रव्य की मूल निर्विकल्पदशा—त्रिकाली, वह स्वकाल, वही अवस्थान्तर भेदरूप... एक समय की पर्याय (का) भेद करना, वही परकाल है। ऐसी तो टीका राजमलजी ने की है। उसमें से यह बनाया है।

मुमुक्षु : निश्चय की कथनी तो ऐसी होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय अर्थात् यथार्थ। निश्चय का क्या अर्थ है? धन्नालाल स्पष्ट कराते हैं। निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहावर अर्थात् वस्तु में नहीं है, ऐसा भेद। सूक्ष्म बात है, भाई! चैतन्यद्रव्य अभेद पर अन्तर लक्ष्य करना। भेद तो परद्रव्य है, कहते हैं यहाँ तो। परद्रव्य... कर्म, शरीर तो परद्रव्य कहीं रह गये और विकल्प—राग परद्रव्य

(वह भी) कहीं रह गये। आहाहा!

भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु अभेद, उसमें यह गुणी और यह गुण—ऐसा भेद परद्रव्य है। असंख्यप्रदेशी क्षेत्र एकरूप, वह स्वक्षेत्र और इस क्षेत्र में यह प्रदेश... यह प्रदेश—ऐसी भेदकल्पना, वह परक्षेत्र। त्रिकाली द्रव्य, वह स्वकाल। भगवान आत्मा त्रिकाली वस्तु, वह स्वकाल और उसमें एक समय की अवस्था भिन्न करके लक्ष्य में लेना, वह परकाल। यह है, यह तो बहुत पुस्तकें बाहर आ गयी हैं। समयसार (कलश) हिन्दी। यह तो गुजराती है। हिन्दी भी आ गयी है। उसमें से यह बनाया है। बहुत (सूक्ष्म)।

और परभाव। 'परभाव अर्थात् द्रव्य की स्वशक्ति का पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना—वह परभाव।' आहाहा! अनन्त गुण का भाव एकरूप, वह स्वभाव और भेद में—यह ज्ञान और यह दर्शन—ऐसा भेद करना, वह परभाव। पण्डितजी! आहाहा! ऐसा लिखा है, लो। '**प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावांचित।**' यह कलश में है। बहुत सरस टीका।

यह जूनी—पुरानी टीका है। वह आ गयी है न पहले। भेंट में आयी थी जैनमित्र में से। सूरत से पहले छपी थी। शीतलप्रसाद ने पहले छपाई थी। पहले में पहले हिन्दी, परन्तु ढूंढ़ारी भाषा हों! ढूंढ़ारी भाषा।

यहाँ तो बहुत वर्ष से देखा है, बहुत वर्ष से। पहले आया था यहाँ तो। बहुत वर्ष से सब शास्त्र देखते हैं। सम्प्रदाय में भी देखते थे हम तो। उसमें थे तो भी सब देखा है सारा। पुराण-पुराण सब देखा है अन्दर में। समयसार, प्रवचनसार। सम्प्रदाय में सब देखा था। और सम्प्रदाय में वाँचन भी किया था समयसार का सभा में।

मुमुक्षु : समयसार, प्रवचनसार समुदाय में?

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार का प्रवचन किया था। उसमें है ही नहीं। हमारी प्रसिद्धि बहुत थी न! हम तो यह वाँचते थे तो (लोग) सुनते थे। ऐसे कोई शंका न करे कि यह महाराज....

(संवत्) १९८६ के वर्ष में समयसार (सभा में) पढ़ा था। ९० में पढ़ा था।

रामजीभाई थे वहाँ। ९० अपने सदर में। सदर के उपाश्रय में। अन्तिम में अन्तिम १५००-१५०० लोग बाहर में। अन्त में हों, पीछे के एक-दो दिन। ....मार्ग यह है। परन्तु कोई शंका न करे कि यह दिगम्बर के शास्त्र हैं न? कोई शंका न करे। हमारी प्रसिद्धि बहुत थी न! कि वे जो कहेंगे यह बराबर कहेंगे। बाद में भड़क गये। यह तो मार्ग छोड़ दिया।

भाई! वस्तु तो ऐसी है। वस्तु ऐसी है। दिगम्बर सन्तों ने यह बात की है, वह सर्वज्ञ ने कहा, ऐसी वस्तु की स्थिति है। जैसी है, ऐसी बतायी है। आहाहा! ऐसी चीज़ सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त (कहीं है नहीं)। कुन्दकुन्दाचार्य सर्वज्ञ के पथानुगामी हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे में यह चीज़ है नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! अभी सत्य को सत्य रीति से सुनने को न मिले, तो उसकी श्रद्धा करने का अवसर कहाँ रहा? आहाहा!

कहते हैं, **ये दोनों एकक्षेत्रावगाही हैं तो भी एक दूसरे से नहीं मिलते**। अभेद भेद से नहीं मिलता, अभेद पर से नहीं मिलता, पर अपने से नहीं मिलता। आहाहा! स्यात् अस्ति—अपने से है, स्यात् नास्ति—पर से नहीं है। पर से तो नहीं है। आहाहा! पुनः दोहा।

★ ★ ★

काव्य - १२

पुनः (दोहा)

निज निज भाव क्रियासहित, व्यापक व्यापि न कोइ।
कर्त्ता पुदगल करमकौ, जीव कहांसौं होइ।।१२।।

शब्दार्थः-व्यापक=जो व्यापै-जो प्रवेश करै। व्यापि=जिसमें व्यापै-जिसमें प्रवेश करे।

अर्थः-दोनों द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय में रहते हैं, कोई किसी का व्याप्य-व्यापक नहीं है अर्थात् जीव में न तो पुद्गल का प्रवेश होता है और न पुद्गल में जीव का प्रवेश होता है। इससे जीव पदार्थ पौद्गलिक कर्मों का कर्ता कैसे हो सकता है?।।१२।।

काव्य-१२ पर प्रवचन

निज निज भाव क्रियासहित, व्यापक व्यापि न कोइ।
कर्त्ता पुदगल करमकौ, जीव कहांसौं होइ।।१२।।

आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु गोम्मटसार में पृष्ठ-पृष्ठ पर लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्या लिखा है? वह तो निमित्त का कथन है। पृष्ठ-पृष्ठ पर.... ज्ञानावरणीय ने ज्ञान को रोका। लो, यह शब्द है। गोम्मटसार।

मुमुक्षु : व्याख्या ऐसी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका अर्थ क्या? वह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। वह व्यवहारनय का कथन है, असत्यार्थ कथन है। अपने ज्ञान की परिणति अपने से रुकती है, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है। परद्रव्य क्या रोके? अपनी पर्याय में आ जाती है परद्रव्य की पर्याय, वह रोके? प्रवेश किये बिना रोके? समझ में आया?

वह कहते हैं, देखो! **दोनों द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय में रहते हैं।** कर्म, कर्म के गुण-पर्याय में रहता है, भगवान आत्मा अपने गुण और पर्याय में रहता है। आहाहा! जीव में न तो पुद्गल का प्रवेश होता है, देखो! **कोई किसी का व्याप्य-व्यापक नहीं है।** भगवान आत्मा व्यापक होकर जड़ की व्याप्य अवस्था करे, ऐसा तीन काल में होता नहीं। और कर्म व्यापक होकर, पसरकर अपनी (-आत्मा की) पर्याय में विकार करे, (ऐसा) तीन काल में होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **कर्त्ता पुद्गल करमकौ...** व्याप्य नहीं। **जीव में न तो पुद्गल का प्रवेश होता है और न पुद्गल में जीव का प्रवेश होता है। इससे जीव पदार्थ पौद्गलिक कर्मों का कर्ता कैसे हो सकता है?** कलश आठवाँ है नीचे। ८ कलश।

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः।।८।।

एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य के बीच कोई सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा कहते हैं।

देखो। है ? **सर्वोऽपि सम्बन्ध नास्ति।** उसमें है वह। सम्यग्ज्ञान तरंगिणी है न ? वह है न, क्या कहलाता है ? अध्यात्म तरंगिणी। यह कलश कौनसा है ? '**नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः।**'

मुमुक्षु : आठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आठवाँ। हाँ, आठ में आता है। देखो, **नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः।** पीछे आया है। '**एकः स्वसमय अंतर'...** आता है न। पीछे है।

मुमुक्षु : ....९वाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। उसमें आता है। एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य के साथ, रजकण के साथ, कर्म के साथ... देखो **सकलोऽपि सम्बन्धो...** सम्बन्ध... तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध यह है नहीं। तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध है नहीं। गुण-गुणीभावलक्षण सम्बन्ध है नहीं। कि कर्म गुण है और आत्मा गुणी है, ऐसा सम्बन्ध नहीं।

लक्ष्य-लक्षण भाव...

मुमुक्षु : यह भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा! कर्म लक्षण है, आत्मा लक्ष्य है, ऐसा है नहीं। आहाहा! टीका है संस्कृत। अध्यात्म तरंगिणी। परम अध्यात्म तरंगिणी। वाच्य-वाचकभावलक्षण है नहीं। वाच्य अर्थात् कहना—भाव को बताना और वाचक अर्थात् शब्द—ऐसा परद्रव्य के साथ कोई भी सम्बन्ध है नहीं। विशेष्य—विशेषण भाव यह भी नहीं। एक द्रव्य के साथ... दूसरा विशेष्य और एक विशेषण (नहीं)। **इत्यादिः संबंधो भिन्नवस्तुनो निषिद्ध एव,...** लो। यह नौवें कलश में है। है न **एकस्य।** आहाहा!

प्रत्येक चीज़ अपने-अपने से परिणमती है, दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध है ही नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। पाठ ऐसा है न! **नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः** भगवान अमृतचन्द्राचार्य मुनि। आहाहा! उनकी टीका और उनके कलश। चलते सिद्ध थे। उस समय भरतक्षेत्र में जब अमृतचन्द्र आचार्य विचरते होंगे, ओहोहो! तथापि सम्प्रदाय पक्ष तो रहा। दोनों एक नहीं हुए, उस काल में भी। ऐसे सन्त... जैसे तीर्थंकर के अर्थकार गणधर हैं, ऐसे कुन्दकुन्द आचार्य के अर्थकार गणधर जैसा काम किया है उन्होंने। महा भगवान कुन्दकुन्द आचार्य पंचम

काल के तीर्थंकर जैसे हैं, तो ये (उनके वचन का) अर्थ करनेवाले गणधर जैसे अमृतचन्द्र आचार्य हैं। आहाहा! नग्न मुनि दिगम्बर आत्मध्यान में मस्त। यह उनकी टीका गम्भीर अध्यात्म टीका है।

कहते हैं, कोई किसी में प्रवेश नहीं। जीव पदार्थ पौद्‌गलिक कर्म का कर्ता कैसे हो? वास्तव में भगवान आत्मा का राग में प्रवेश नहीं। आहाहा! राग तो विभाव है, स्वभाव त्रिकाली शुद्ध है। दोनों का अध्यास एकताबुद्धि से किया है, एकता है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे रागादिभाव का कर्ता भगवान आत्मा है ही नहीं। अब कहते हैं ९ कलश। नीचे कलश है न।

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेण सार्धं,
सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्धः।
तत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे,
पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जनाश्च तत्त्वम्।।९।।

वस्तुभेद में कर्ता-कर्म होता नहीं। एक चीज़ कर्ता और दूसरी चीज़ कार्य—ऐसा तीन काल में होता नहीं। आहाहा! भगवान कर्ता और राग कर्म—ऐसा है नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कर्ता (उसको) कहा जो स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता और कर्ता का इष्ट, वह कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। अज्ञानी का इष्ट राग, ज्ञानी का इष्ट आनन्द और आत्मा। आहाहा! धर्मी का इष्ट, वीतरागी पर्याय, वह धर्मी का इष्ट है। राग धर्मी को इष्ट है नहीं। आहाहा! गजब बात!

अरे, ऐसे काल में यह सत्य का शरण न आया, प्रभु! अवतार कहाँ होगा। आहाहा! करुणा... करुणा... उसकी अपनी करुणा आनी चाहिए। समझ में आया? आहा! कहाँ जाये कहाँ? भगवान आत्मा ऐसी चीज़ है कि जो राग का भी कर्ता नहीं, राग उसका कार्य नहीं, राग उसका साधन नहीं, राग उसका आधार नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा प्रभु स्वत:सिद्ध भगवान है। कहते हैं कि **तत्कर्तृकर्मघटनास्ति न वस्तुभेदे पश्यन्त्वकर्तृमुनयश्च जनाश्च तत्वम्।**

आहाहा! अब देखो। मुनि और जन—दो लिये न? अर्थात् सामान्य जीव जो

ईश्वर को जगत का कर्ता मानते हैं, वह भी छोड़ दे और मुनि होकर भी राग का कर्ता माने, वह भी तू छोड़ दे। दोनों की बात की है। समझ में आया? उसमें तो ऐसा लिया है कि जो कोई राग का, पर का कर्ता मानते हैं, अज्ञान में हैं। अज्ञान में राग का कर्ता है। समझ में आया? वह राग का कर्ता अज्ञान में मानते हैं। समझ में आया? जैसे वह पर का कर्ता ईश्वर को मानते हैं, वैसे यह राग का कर्ता (मानते हैं, दोनों) एक से मिथ्यादृष्टि हैं। दोनों को मिथ्यादृष्टि जान लेना, ऐसा पाठ है। समझ में आया?

तो ख्याल आ जायेगा ऐसा? मिथ्यादृष्टि ऐसा प्रतीति में आता है? सर्वविशुद्ध अधिकार में है न यह कलश। कितना आया यह? यह कलश १०। ११वाँ आया। सर्वविशुद्ध है न। उसके पहले अथवा ३४५ के पहले। **कम्मेहि दु अण्णाणी** के पहले। यह कलश २०१। २०१ कलश है। उसमें कलश लिखा नहीं। कलश का नाम लिखा नहीं। नौ लिखा है इसमें। हाँ, देखो। हाँ, २०१ लिखा है, २०१। देखो!

लोयस्स कुणदि विण्हू सुरणारयतिरिय माणुसे सत्ते।
समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे सत्ते काऐ॥३२१॥

आहाहा! मैं छह काय की रक्षा कर सकता हूँ तो वह कर्ता हुआ छह काय का। है?

लोयसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसहि विसेसो।

लोक और साधु के सिद्धान्त में तो अन्तर रहा नहीं। दोनों का एक सिद्धान्त हो गया, दोनों का।

लोयस्स कुणइ विण्हू समणाण वि अप्पओ कुणदि॥३२२॥

जैन साधु अपने आत्मा को राग का कर्ता, छह काय की दया का कर्ता मानता है। वह सामान्य जन विश्व—जगत का कर्ता....

एवं ण को वि इ मोक्खो दीसदि लोयसमणाण दोण्हं पि।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए॥३२३॥

लो। आहाहा!

मुमुक्षु : २०१ गाथा? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा है ३२१। ३२१ से ३२३। सर्वविशुद्ध अधिकार। देखो,

अन्तिम गाथा है। (लोग कहते हैं कि) सम्यग्दृष्टि को कहते हैं। अरे, मिथ्यादृष्टि को समझाते हैं यह।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दृष्टि बनाने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनाने के लिये बात है। अज्ञानी को यह समझाते हैं। पहली गाथा शुरुआत की है, वहाँ से लिया है। अप्रतिबुद्ध अज्ञानी है, उसको समझाते हैं। ऐसा गाथा में लिया है शुरुआत में। अत्यन्त अप्रतिबुद्ध है, अज्ञानी मूढ़ है, उसको यह बात कहते हैं। समझ में आया? देखो, कहते हैं।

मुमुक्षु : वस्तु को समझने में ऐसे ही अन्धकार था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अन्धकार ऐसा हुआ है अज्ञान में सब। '**मिच्छदिट्ठी णाणी णीसंसयंहवदि**।' देखो, क्या कहते हैं? जो कोई राग का कर्ता मानते हैं (और जो कोई) जगत का कर्ता मानते हैं, दोनों ही... '**मिच्छदिट्ठी णाणी णीसंसयंहवदि**।' (गाथा ३२६) मिथ्यादृष्टि अज्ञानी निःसंशै। '**जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि**।'

तम्हा ण मेत्ति णच्चा दोण्ह वि एदाण कत्तविवसायं। दोनों को कर्तृ का व्यापार। **परदव्वे जाणंतो जाणेज्जो दिट्ठरहिदाणं**।' (गाथा ३२७)। मिथ्यादृष्टि है, ऐसा जानो। ऐई, पूनमचन्दजी! क्या लिखा है? ऐसा मानो, कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि, देखो!

तम्हा ण मेत्ति णच्चा दोण्ह वि एदाण कत्तविवसायं। कर्ता के व्यापारवाले दोनों ही। वह कहे, मैं राग का कर्ता। यह कहे, मैं छह काय की दया का कर्ता। वह कहे, मैं जगत का कर्ता। **परदव्वे जाणंतो जाणेज्जो दिट्ठरहिदाणं**।' उसे जानना कि तुम्हारी यह दृष्टि मिथ्या दृष्टि है, सम्यक् दृष्टिरहित है।

मुमुक्षु : अन्तिम में अन्तिम बात। यह तो पहली वस्तु है साधारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहली साधारण (बात) है। परन्तु ऐसी लगे न सम्प्रदाय में। तूफान आया न? समझ में आया? तो कहते हैं, **कर्ता पुद्गल करमकौ, जीव कहांसौ होई**। आहाहा! अब यहाँ

★ ★ ★

काव्य - १३

अज्ञान में जीव कर्म का कर्ता और ज्ञान में अकर्ता है

(सवैया इकतीसा)

जीव अरु पुदगल करम रहैं एक खेत,
जदपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है।
लक्षन स्वरूप गुन परजै प्रकृति भेद,
दुहूंमें अनादिहीकी दुविधा ह्वै रही है।।
एतेपर भिन्नता न भासै जीव करमकी,
जौलौं मिथ्याभाव तौलौं ओंधि बाउ वही है।
ग्यानकै उदोत होत ऐसी सूधी द्रिष्टि भई,
जीव कर्म पिंडकौ अकरतार सही है।।१३।।

शब्दार्थ:-सत्ता=अस्तित्व। दुविधा=भेदभाव। ओंधि=उल्टी। सूधी दृष्टि=सच्चा श्रद्धान। सही=सचमुच में।

अर्थ:-यद्यपि जीव और पौद्गलिक कर्म एक क्षेत्रावगाह स्थित हैं तो भी दोनों की जुदी जुदी सत्ता है। उनके लक्षण, स्वरूप, गुण, पर्याय, स्वभाव में अनादि का ही भेद है। इतने पर भी जब तक मिथ्याभाव का उल्टा विचार चलता है, तब तक जीव पुद्गल की भिन्नता नहीं भासती, इससे अज्ञानी जीव अपने को कर्म का कर्ता मानता है, पर ज्ञान का उदय होते ही ऐसा सत्य श्रद्धान हुआ कि सचमुच में जीव कर्म का कर्ता नहीं है।

विशेष :- जीव का लक्षण उपयोग है, पुद्गल का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है। जीव अमूर्तीक है, पुद्गल मूर्तीक है। जीव के गुण दर्शन ज्ञान सुख आदि हैं, पुद्गल के गुण स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि हैं। जीव की पर्यायें नर नारक आदि हैं, पुद्गल की पर्यायें ईंट पत्थर पृथ्वी आदि हैं। जीव अबन्ध और अखण्ड द्रव्य है, पुद्गल में स्निग्ध रुक्षता है। इससे उसके परमाणु मिलते बिछुरते हैं। भाव यह है कि दोनों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का चतुष्टय जुदा-जुदा है और जुदी-जुदी सत्ता है। दोनों अपने ही गुण-पर्यायों के कर्ता-भोगता हैं, कोई किसी दूसरे का कर्ता-भोगता नहीं है।।१३।।

काव्य-१३ पर प्रवचन

जीव अरु पुदगल करम रहैं एक खेत,
जदपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है।
लक्षन स्वरूप गुन परजै प्रकृति भेद,
दुहूंमें अनादिहीकी दुविधा ह्वै रही है।।
एतेपर भिन्नता न भासै जीव करमकी,
जौलौं मिथ्याभाव तौलौं ओंधि बाउ वही है।
ग्यानकै उदोत होत ऐसी सूधी द्रिष्टि भई,
जीव कर्म पिंडकौ अकरतार सही है।।१३।।

इतने भेद हैं। आहाहा! लक्षण, स्वरूप, गुण और पर्याय, प्रकृति, भेद।

कर्म शब्द से राग और (द्रव्य) कर्म दोनों ही, जड़ (कर्म) और भाव (कर्म)। समझ में आया?

जीव अरु पुद्गल करम रहैं एक खेत,... देखो! दोनों एक क्षेत्र में रहो, तो भी दोनों की भिन्न-भिन्न सत्ता—न्यारी सत्ता है। भगवान आत्मा की भिन्न सत्ता है, कर्म और राग आदि की भिन्न सत्ता है। आहाहा!

यदपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी। देखो, **लक्षण, स्वरूप, गुण, पर्याय, स्वभाव में अनादि का ही भेद है।** इसका स्पष्टीकरण करेंगे। **इतने पर भी जब तक मिथ्याभाव का उल्टा विचार चलता है। जब तक मिथ्याभाव का उल्टा विचार चलता है, तब तक जीव पुद्गल की भिन्नता नहीं भासती, इससे अज्ञानी जीव अपने को कर्म का कर्ता मानता है। पर ज्ञान का उदय होते ही...** देखो। **ऐसौ मिथ्या भाव तौलौं ओंधि बाउ बही है।** ऊंधी—उलटी दृष्टि है।

ग्यानके उदोत होत। मैं तो राग से भिन्न हूँ। राग से मेरा ज्ञान भिन्न है और मेरे ज्ञान से राग भिन्न है। आहाहा! चाहे तो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प हो, मेरी चीज़ से वह भिन्न है। ज्ञान और राग भिन्न है। बस इतना शब्द कहा था। सोगानी....

मुमुक्षु : ऐसे प्रदेश भेद हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावभेद है, क्षेत्रभेद है, कालभेद है, सब भेद है। वह लिया है संवर अधिकार में। अशुद्धता का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! गजब बात है!

संवर अधिकार में लिया है। यहाँ अशुद्धता—विकार का क्षेत्र भिन्न है, भाव भिन्न है, काल भिन्न है, स्वभाव भिन्न है। आहाहा! क्योंकि असंख्य प्रदेश में जितने अंश में अशुद्धता है, वह क्षेत्र भी भेद (-भिन्न) हो गया। आहाहा! धन्नालालजी! अशुद्धता का क्षेत्रभेद? क्या असंख्य प्रदेश के अतिरिक्त बाहर में होता है?

मुमुक्षु : हो, दृष्टि कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वकीलजी! जरा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है, देखो! संवर अधिकार। ओहोहो! वही पृष्ठ आया, देखो!

'अत्यन्त स्वरूप विपरीतता होने से ज्ञान का स्वरूप और क्रोधादि तथा कर्म-नोकर्म का स्वरूप अत्यन्त विरुद्ध होने से उनमें परमार्थभूत आधाराधेय सम्बन्ध नहीं है।' हाँ, यह तो विशेष है उसमें भी। 'ज्ञान का स्वरूप जैसा जाननक्रिया, वैसा (ज्ञान का स्वरूप) क्रोधादि क्रिया भी नहीं है।' देखो, यहाँ पहले लिया है। देखो, यहाँ पहले है। 'वास्तव में एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं। क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न-भिन्न होने से...' देखो! संस्कृत टीका अमृतचन्द्र आचार्य। व्यवहाररत्नत्रय के राग का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा!

'दोनों के प्रदेश भिन्न होने से उनमें एक सत्ता की अनुपपत्ति है।' आहाहा! असंख्य प्रदेश में ही है वह, विकार कोई असंख्य प्रदेश के बाहर नहीं हैं। परन्तु असंख्य प्रदेश में जितने अंश में विकार है, वह क्षेत्र ही भिन्न है। जितने में सारी निर्मलता भरी है, वह क्षेत्र भिन्न है। आहा! जहाँ क्षेत्र में दो भाग कर दिये, तो भाव में तो दो भाग है ही। आहाहा! स्वाध्याय न करे, तत्त्व को समझे नहीं और ऐसे अपनी कल्पना से मान ले। वकीलजी! ऐसा है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ का मार्ग है, प्रभु! केवली का कहा

हुआ मार्ग है, प्रभु! साधारण प्राणी को उसका यथार्थ... वह, गाथा संवर की शुरुआत की है। शुरुआत।

(समयसार, गाथा) १८१-१८२-१८३। संवर अधिकार। यहाँ तो बहुत बार चली है। क्षेत्र भिन्न, प्रदेश भिन्न है। गजब बात है! आहा! राग का क्षेत्र भिन्न है और भगवान पवित्र का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? और स्पष्टीकरण किया है। फिर उसमें भी किया है। उपयोग... देखो! यह सब ही पुद्‍गलद्रव्य के... उन्हें और ज्ञान को प्रदेशभेद होने से अत्यन्त भेद है। भावार्थ में लिखा है। पण्डित जयचन्दजी (ने लिखा है)। यह तो टीका में है। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, उसका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपने में है और अशुद्धता का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पर में है। आहा! दोनों के प्रदेशभेद हैं। वीतरागमार्ग अलग है। अत्यन्त भिन्न है, क्षेत्र भिन्न है। ओहोहो! क्षेत्र भिन्न क्या? आत्मा के असंख्य प्रदेश के अतिरिक्त राग कहीं भिन्न (-अलग) होता है? परन्तु राग जो असंख्य प्रदेश में हुआ, वह क्षेत्र भिन्न है। अशुद्धता पर्यायबुद्धि में है, पर्यायक्षेत्र है वह। आहाहा! समझ में आया? समयसार तो भरतक्षेत्र का अद्वितीय शास्त्र है, अजोड़ शास्त्र है। साक्षात् सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा!

कहते हैं, लक्षण... लो। **जीव कर्म पिंडकौ अकरतार सही है। विशेष :- जीव का लक्षण उपयोग है।** भगवान का लक्षण तो उपयोग है। देखो, यह उपयोग आया। संवर अधिकार। **पुद्‍गल का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है।** यह राग भी वास्तव में तो अचेतन है। भले उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। व्यवहार-राग में वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है, परन्तु (उसमें) ज्ञान का अंश नहीं, इस अपेक्षा से अचेतन कहा है। आहाहा! समझ में आया?

जीव अमूर्तिक है, पुद्‍गल मूर्तिक है। राग भी मूर्तिक है, भगवान अमूर्त है। आहाहा! **जीव के गुण दर्शन ज्ञान सुख...** आत्मा के गुण तो दर्शन-ज्ञान-आनन्द है। यह क्या राग में है? **पुद्‍गल के गुण स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि है। जीव की पर्यायें नर-नारक आदि है, पुद्‍गल की पर्यायें ईंट, पत्थर, पृथ्वी आदि हैं।** समझ में आया?

मात्र पर से भिन्न बताते हैं इतना। बाकी वास्तव में नरक गति आदि की पर्याय जीव की तो नहीं। निश्चय दृष्टि में गति की पर्याय जीवस्वभाव की नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर से भिन्न करने के लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो पर से भिन्न इतनी बात की है। पीछे पर से भिन्न किया, उसकी दृष्टि में राग और क्षेत्र, गति भी भिन्न पड़ जाती है। आहाहा!

पर से लक्ष्य उठाकर द्रव्य के ऊपर लक्ष्य किया, तो पर तो अपने में नहीं, परन्तु गति भी अपने में नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कलश २५२ में तो भेद कल्पना को परद्रव्य कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य कहा। ऐसी बात है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव नहीं। अपने में ही चार भेद कर दिये (वह भेदकल्पना है)। ऐसी बात सुनने में आती नहीं। वकीलजी! खबर है न?

मुमुक्षु : .... पुराण है, उसमें भी कोई यह बात नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ थी? सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं बात नहीं है।

यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव को केवलज्ञान हुआ और ओम ध्वनि खिरी। 'ओमकार ध्वनि सुनि, अर्थ गणधर विचारे।' बनारसीविलास में आता है। 'ओमकार ध्वनि सुनि, अर्थ गणधर विचारे।' भगवान... जहाँ ओम ध्वनि पूरे शरीर में से। यहाँ (छद्मस्थ की) वाणी जैसी वाणी नहीं है। भाषा तो ऐसे बोले शास्त्र में। 'मुख कमल से निकली।' लो, पंचास्तिकाय में आता है। परन्तु उसका अर्थ, लोग कहते हैं इस अपेक्षा से कथन किया है। पूरे शरीर में से ओम, ऐसी आवाज उठती है, इच्छा बिना। समझ में आया?

ओमकार (ध्वनि) सुनी, अर्थ गणधर विचारे। 'ओमकार ध्वनि सुनि, अर्थ गणधर विचारे।' चार ज्ञान, चौदह पूर्व, बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में करते हैं भगवान की वाणी सुनकर। ओहो! उसमें ऐसा आया, उसमें ऐसा आया (ऐसा विकल्प में) चलता

है। चौदह पूर्व, बारह अंग का ज्ञान अन्तर्मुहूर्त में गणधर को होता है। ओहोहो! समझ में आया?

तो कहते हैं, **जीव अबन्ध और अखण्ड द्रव्य है।** भगवान जीव तो अबन्ध है, अखण्ड है। आहाहा! **पुद्गल में स्निग्धता रुक्षता है।** उस कारण से एक परमाणु दूसरे परमाणु के साथ मिलते हैं व्यवहार से। स्कन्धरूप होते हैं न व्यवहार से। यह भी व्यवहार है। **इससे उसके परमाणु मिलते बिछुरते हैं, भाव यह है कि दोनों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का चतुष्टय जुदा-जुदा है...** बस। आहाहा! अत्यन्त अभाव है। राग और स्वभाव के बीच में भी अत्यन्त अभाव है। यह पहले कर्ता-कर्म में आ गया है। समझ में आया?

व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग और भगवान आत्मा का स्वभाव—दोनों के बीच में अत्यन्त अभाव है। ऐसी बुद्धि अन्तर में होना, ऐसी दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। वहाँ से धर्म की शुरुआत होती है। इसके बिना धर्म की शुरुआत होती नहीं। **दोनों अपने ही गुण-पर्यायों के कर्ता-भोक्ता हैं,...** देखो! यह उपचार से (कथन है)। दोनों अपने गुण-पर्याय के कर्ता-भोक्ता हैं। वह आ गया न पहले उपचार से। कोई किसी दूसरे का कर्ता-भोक्ता नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - १४

पुनः (दोहा)

एक वस्तु जैसी जु है, तासौं मिलैं न आन।
जीव अकरता करमकौ, यह अनुभौ परवांन।।१४।।

अर्थ:-जो पदार्थ जैसा है वह वैसा ही है, उसमें अन्य पदार्थ नहीं मिल सकता, इससे जीव कर्म का अकर्ता है, वह विज्ञान से सर्वथा सत्य है।।१४।।

काव्य-१४ पर प्रवचन

एक वस्तु जैसी जु है, तासौं मिलैं न आन।
जीव अकरता करमकौ, यह अनुभौ परवांन।।१४।।

एक वस्तु जैसी जु है, तासौ मिलैं न आन... जो पदार्थ जैसा है, वैसा ही है, उसमें अन्य पदार्थ नहीं मिल सकता। राग आदि नहीं मिल सकते भगवान के साथ। आहाहा! **जीव अकरता करमकौ, यह अनुभौ परवांन...** यह भाव का... विज्ञान से सर्वथा सत्य है, ऐसा लिया है। उसमें अनुभव की व्याख्या की। सम्यग्ज्ञान के विज्ञान से राग का कर्ता आत्मा नहीं। उसका अर्थ, राग का परिणमन उसका है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निर्बलता से परिणमन है। ज्ञान जानता है कि है, परन्तु करनेयोग्य है— ऐसी बुद्धि समकिती को होती नहीं। यह अनुभव प्रमाण है। अपने सम्यग्ज्ञान में वह प्रमाण है। शास्त्र से भी जानने में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? विशेष १०वाँ कलश कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२२, श्रावण शुक्ल १०, रविवार, दिनांक ०१-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-१५ से २०

क्या कहते हैं? दसवाँ कलश है। इसमें कर्ता-कर्म की बहुत स्पष्टता ली है। कर्ता-कर्म अधिकार तो पहले आ गया है ७६ गाथा में। दोपहर में तो चलती है तुम्हारे ७१ गाथा। परन्तु उसका विशेष स्पष्ट सर्वविशुद्ध अधिकार में कहा। अनादि से कर्ता-कर्म में भूल पड़ी है। कहीं आत्मा का कर्ता ईश्वर मानता है कि ईश्वर आत्मा को करता है, कहीं आत्मा जड़ को करता है और कहीं आत्मा पुण्य और पाप विकाररूपी विभाव का कर्ता है, यह सब मिथ्यादृष्टि है। यह बात कहते हैं, देखो। १०वाँ कलश है।

ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेम-
मज्ञानमग्नमहसो बत ते वराकाः।
कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म,
कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्यः।।१०।।

★ ★ ★

काव्य - १५

अज्ञानी जीव अशुभ भावों का कर्ता होने से भावकर्म का कर्ता है
(चौपाई)

जो दुरमती विकल अग्यानी।
जिन्हि सु रीति पर रीति न जानी।
माया मगन भरमके भरता।
ते जिय भाव करमके करता।।१५।।

अर्थ:-जो दुर्बुद्धि से व्याकुल और अज्ञानी हैं, वे निज-परणति और परपरणति को नहीं जानते, माया में मग्न हैं और भ्रम में भूले हैं, इससे वे भाव कर्म के कर्ता है।।१५।।

काव्य-१५ पर प्रवचन

हिन्दी बहुत (सरल है और) पद अच्छा लिया है। आहाहा! भगवान कहते हैं कि **दुरमति विकल अग्यानी...** जिसको आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वभाव का भान नहीं। आहाहा! और राग, पुण्य और विकल्प 'ये मेरे हैं' ऐसी दुर्बुद्धि जो है... आहाहा! 'दुर्बुद्धि'—दुर्मति। अन्दर दुर्बुद्धि लिखा है। चैतन्य भगवान अनादि-अनन्त ज्ञान और आनन्द के कन्द और स्वभाव से भरा प्रभु है। ऐसी प्रभुता का जिसको भान नहीं और जिसने पुण्य और पाप में अधिकता, प्रभुता मान ली है... समझ में आया? पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत आदि के विकल्प—उसमें जिसने अपनी प्रभुता मान ली है (और) अपनी प्रभुता अन्दर में है, उसकी भी खबर नहीं। आहाहा!

ऐसा **दुरमति विकल...** व्याकुल चित्त। मैं ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, मैं पुण्यभाव करूँ, पाप करूँ—ऐसा व्याकुल अर्थात् दु:खी होकर अज्ञानी चैतन्य भगवान के भानरहित... **जिन्ही सु रीति पर रीति न जानी...** अपना निज स्वभाव चैतन्य शुद्ध है, उस रीति की परिणति निर्मल होनी चाहिए, यह जानता नहीं, और विकारी परिणति मलिन और अशुद्ध है, वह मेरी नहीं, ऐसा जानता नहीं। आहा!

जिन्ही सु रीति पर रीति न जानी... निज परिणति और पर परिणति नहीं जानता। भगवान आत्मा तो शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वरूप, उसकी परिणति—पर्याय, आनन्द और ज्ञान की पर्याय, वह निज परिणति है। आहाहा! समझ में आया? निज परिणति। शुद्ध चैतन्य ध्रुव निर्मलानन्द प्रभु की परिणति अर्थात् अवस्था शुद्ध है। उसकी अवस्था तो शुद्ध होती है। उस शुद्ध अवस्था का अजान और **पर रीति...** पुण्य और पाप के भाव जो अशुद्ध और मलिनभाव हैं, वे **पर रीति—**पर-परिणति है, अपनी नहीं। समझ में आया?

सम्यग्ज्ञानी (को) तो अपना शुद्ध स्वरूप, उसकी शुद्ध परिणति, वह मेरी चीज़ है और अशुद्ध परिणति जो है, उससे तो ज्ञानी मुक्त है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म! अन्तर की बात है यह तो। शरीर-बरीर तो कहीं रह गये। निज परिणति... शुद्ध स्वरूप पवित्र का पिण्ड प्रभु आत्मा है। तो जिसकी दृष्टि पवित्र द्रव्य के ऊपर है, उसकी परिणति तो शुद्ध

होती है। उसकी खबर नहीं कि 'मैं शुद्ध हूँ और मेरी परिणति शुद्ध होनी चाहिए।' यह अशुद्ध परिणति है, तब शुद्ध स्वभाव की दृष्टि नहीं तो शुद्ध परिणति का अभाव है तो अशुद्ध परिणति में अपना अस्तित्व मानते हैं। आहाहा!

पर्यायबुद्धि (इसे) कहते हैं। अपनी निज सत्ता—शुद्ध आनन्द और ज्ञायकधाम प्रभु परमेश्वर अपना पूर्ण स्वरूप है—ऐसी दृष्टि के अभाव में उसकी शुद्ध परिणति की तो खबर नहीं। यह व्यवहार की परिणति जो शुभ या अशुभ—यह अशुद्ध परिणति तो पर रीति है। आहाहा! शरीर, वाणी, देश, कुटुम्ब तो पर हैं, परन्तु शुभ-अशुभभाव की अवस्था भी पर है, वह अपनी निज चीज़ नहीं। आहाहा!

माया मगन भरमके भरता... माया अर्थात् जो वस्तु में नहीं, ऐसा जो पुण्य-पाप का राग, उसमें मग्न। माया अर्थात् आत्मा में नहीं। अन्यमति कहते हैं न, माया—'या-मा'। यह नहीं, ऐसा कहते हैं। वेदान्त। 'मा-या' 'या-मा'। वह नहीं। परन्तु वह नहीं कहाँ? आत्मा में नहीं। माया में माया है। समझ में आया? वस्तु में नहीं। कोई कहे कि 'है ही नहीं जगत में, माया और अशुद्धता तो है ही नहीं।' ऐसा नहीं है। अशुद्धता न हो तो शुद्धता के ऊपर दृष्टि करने का प्रसंग नहीं आता। अशुद्धता से हटकर अन्तर भगवान आत्मा... अलौकिक बात है, भाई! जैनदर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। अन्तर में समझना यह अपूर्व पुरुषार्थ है। सुबह आया था न, **परम पुरुषार्थ परायण,...** नहीं? सुबह आया था। स्वभाव... स्वभाव भगवान आत्मा चैतन्य महाप्रभु, उस ओर का परम पुरुषार्थ परायण है, राग का पुरुषार्थ ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा!

वीर्य का कार्य जहाँ बनाया... ४७ शक्ति में वीर्य (शक्ति) है। वीर्य तो उसको कहते हैं भगवान कि जो अपने निर्मल पवित्र स्वभाव की रचना करे, वह वीर्य। ४७ शक्तियों में आया है। जीवत्वशक्ति, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख और वीर्य। छठवीं शक्ति है। ४७ में छठवीं शक्ति। आहाहा! पर—शरीर, वाणी, मन, देश, कुटुम्ब की रचना-व्यवस्था करे, वह तो वीर्य है ही नहीं, परन्तु पुण्य और पाप की रचना करे, वह वीर्य नहीं। आहाहा! वह नपुंसक वीर्य है। समझ में आया? राग की रचना यह मेरी... कहते हैं न यहाँ, **माया मगन...** राग में मग्न।

तो कहते हैं कि राग की रचना, वही नपुंसकता है और उसमें राग मेरी चीज़ है,

यह तो मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। इसके अतिरिक्त राग से लेकर सब चीज़ तो अज्ञान है। अज्ञान शब्द से उसमें ज्ञान नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव का—अपनी सत्ता का जिसको स्वीकार, दृष्टि नहीं, वह तो मग्न में है। आहाहा! **माया मगन भरमके भरता...** वह तो मिथ्यात्व का पोषक है। आहाहा! **भरमके भरता...** वह तो भ्रमणा का भरतार है, भ्रमणा का स्वामी है। आहाहा! **भरता** का अर्थ किया है यहाँ। कहीं किया है, किसी जगह है कहीं। रूपचन्दजी में कहीं है। **भरमके भरता**। आहाहा!

आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की जिसको खबर नहीं, भान नहीं, ऐसा अज्ञानी—विकल मूढ़मति राग अर्थात् विकार पर्याय अशुद्ध में मग्न है और भ्रमणा का स्वामी है। चैतन्य का स्वामी नहीं। आहा! कहो, समझ में आया? मार्ग तो बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह चीज़ अन्दर परमानन्दस्वभाव, उसका अनुभव करना, वह तो अन्तर्मुख दृष्टि हो तो कर सकते हैं। वह तो अज्ञानी को अनादि से है नहीं। आहाहा! शुभ और अशुभराग में अज्ञानी मग्न है और **भरमके भरता** है। आहाहा! मिथ्यात्व का स्वामी है, मिथ्यात्व का वह स्वामी है। राग में मग्न, वह मिथ्यात्व का स्वामी है, मालिक है। आहाहा! ऐसे भरम किया। सूक्ष्म बात तो है भगवान! समझ में आया?

और कोई ऐसा कहता है... परन्तु यह मार्ग तो देखो प्रभु! कोई ऐसा कहते है कि लो, कानजीस्वामी ने एक नया पंथ निकाला। बोलेंगे अभी हमारे सेठ कहते थे। पन्नालालजी! वहाँ बीच में... दो-चार (व्यक्ति) वहाँ गये हैं न गिरनार। दो-चार होंगे श्वेताम्बर। उन्होंने बात की। भाई, कानजीस्वामी ने तो नया पंथ निकाला है। नहीं श्वेताम्बर, नहीं स्थानकवासी, नहीं दिगम्बर।

मुमुक्षु : परन्तु भगवान का पंथ है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! आहाहा! ऐसे शब्द नहीं, परन्तु उसका अर्थ यह। नया पंथ, ऐसा कहा न भैया? आहाहा! भाई पन्नालालजी कहते थे। और रेल में बैठे थे, वहाँ दो-चार मिल गये। उन्होंने भी ऐसा कहा।

मुमुक्षु : वह भावनगर का कलैक्टर था....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ और भावनगर का कलैक्टर मिल गया। उसने भी ऐसा कहा। कोई कलैक्टर है भावनगर। किसे खबर? कलैक्टर है कोई भावनगर का?

मुमुक्षु : ब्राह्मण।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्राह्मण है। कलैक्टर।

बापू! यह मार्ग तो वीतराग का अनादि का है, परन्तु समझ में आया? नहीं का और दूसरे प्रकार से पकड़ लिया है, तो यह मार्ग कोई दूसरा है, ऐसा कह दिया। आहा! भाई... कहते थे। तीन व्यक्ति मिले, तीनों ने ऐसा कहा।

मुमुक्षु : यह ज्ञान अन्यत्र न आवे, इसलिए नया ही मार्ग लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगे ऐसा। नया नहीं, भगवान! अनादि का मार्ग ही यह है। अनादि सन्त, केवली, तीर्थंकर, दिगम्बर मुनि यही कहते आये हैं। आहाहा! वह बात इसके अतिरिक्त कहीं होती नहीं, इसलिए उन्हें नया लगा। कोई सम्प्रदाय में रहे तो क्रिया करो, ऐसा करो और धर्म होगा। तो यहाँ कहते हैं कि भाई! वह राग है और पुण्य है न, प्रभु! पुण्य में मग्न होना तो मिथ्यात्व का स्वामी है। यहाँ तो कहते हैं, देखो!

वह पाठ में लिया न, भाई! '**वराकाः**' नीचे। हाँ, **अज्ञामग्नमहसो बत ते वराकाः** भिखारी है। आहाहा! पण्डितजी! वह वराका कहते हैं न। गरीब है, गरीब। वराका कहते हैं। गरीब भिखारी।

मुमुक्षु : दरिद्री।

पूज्य गुरुदेवश्री : दरिद्री।

मुमुक्षु : क्या मानता है, तो दरिद्री है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को अपना मानता है, वह दरिद्री है।

मुमुक्षु : ज्ञान का भिखारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु है, उसकी बादशाही का तो भान नहीं। आहाहा!

वह श्वेताम्बर में आता है, वराका।

मुमुक्षु : अज्ञानमग्न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। **अज्ञानमग्नमहसो...** अपने चैतन्य प्रकाश से खाली खेद है। आहाहा! **बत** कहते हैं न। खेद है, आचार्य कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य हों। दिगम्बर मुनि। आहाहा! लो, अमृतचन्द्र आचार्य ने ९०० वर्ष पहले यह टीका बनायी। गजब काम किया है! आहाहा! परमेश्वर का पेट (अभिप्राय) खोलकर बात की है। परन्तु लोग समझते नहीं और अपनी कल्पना से पढ़े, इसलिए समझ में आता नहीं।

कहते हैं, अरे! **अज्ञानमग्नमहसो...** महाप्रकाश का तो भान नहीं, चैतन्य निज परिणति क्या है... उसमें आया न? '**ये तु स्वभावनियमं कलयन्ति नेवं**' स्वभाव नियम का—वस्तु का अनुभव करते नहीं। अरे! मैं आत्मा ज्ञान हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ। विभाव-विकार की मुझमें त्रिकाल नास्ति है। आहाहा! अस्ति में तो, मेरी पवित्रता पूर्ण है, वह मेरी अस्ति है। वह मेरी मौजूदगी है और राग आदि का तो मुझमें त्रिकाल अभाव है। क्योंकि आस्रवतत्त्व भिन्न तत्त्व है। भिन्न तत्त्व का स्वतत्त्व में अभाव है। आहाहा! सूक्ष्म लगे न! लोगों को बाहर में चढ़ा दिया। व्रत करो, तप करो और यह सम्यक् का भान न हो। यह करो, पूजा करो, भक्ति करो और यात्रा करो। (निश्चय) श्रद्धा बिना (व्यवहार) श्रद्धा है, (वह) मिथ्या श्रद्धा है।

वह शत्रुंजय और सिद्धगिरि की यात्रा करो, ऐसा लोग कहे, लो! सिद्धगिरि है न! उसकी यात्रा करे। भगवान भी वहाँ ऐसा कि नौ क्रोड़ पूर्व में ९९ बार (समवसरण) आया था। ऐसा कहते हैं। अब भाई! कंकड़-कंकड़ में अनन्त मोक्ष गये हैं, ले। एक कंकड़ी ४५ (लाख) योजन में... ४५ लाख योजन है न मनुष्यक्षेत्र? ४५ लाख योजन। एक टुकड़ा खाली नहीं, जहाँ से अनन्त मुक्ति नहीं गये। आहाहा! मेरु पर्वत है एक ऐसा, लाख योजन का ऐसा। तो भी वहाँ कंकड़-कंकड़ से अनन्त मुक्ति गये हैं। क्यों?-(कि) वहाँ ४५ लाख योजन में कोई खाली भाग नहीं कि जहाँ से अनन्त सिद्ध (हुए) नहीं। सिद्ध होते हैं, यहाँ से सीधे जाते हैं। आगे-पीछे नहीं जाते। सीधे यहाँ से वहाँ।

यात्रा का कारण तो यह है कि जहाँ से सिद्ध हुए, (उसी क्षेत्र में) स्मृति में लाना कि अहो! परमात्मा यहाँ (समश्रेणी में) विराजते हैं। उनकी भाँति शत्रुंजय। पाण्डव—धर्मराजा, भीम, अर्जुन। सहदेव, नकुल। दो तो सर्वार्थसिद्धि में गये और तीन मुनि मोक्ष

में पधारे। तो उस स्थल में ऊपर ही हैं। शत्रुंजय में उसी स्थल में ऊपर ही तीनों भगवान विराजते हैं। क्योंकि सीधे मोक्ष में जाते हैं न ऊर्ध्वश्रेणी। समझ में आया? आहाहा!

एकबार... वह बरवाला का था न। पहले गये थे न जब मुम्बई। पहले (संवत्) २०१३ के वर्ष में। वह बरवाला के जगजीवनभाई थे। वे सन्तबाल के भक्त थे और बाद में सन्तबाल का फेरफार हो गया। थोड़े आगे जाने के बाद कहे, महाराज! क्या सुना यह? यात्रा में जाते हो? स्थानकवासी सही न। जगजीवनभाई थे। अपने एक हैं न, वे धनजी शाह थे न। अमृतलाल का भाई! वह कहे, कहाँ जाते हो? भाई! यात्रा का अर्थ तुम समझो, कि यात्रा का अर्थ ऐसा है कि जहाँ से मुक्ति पाकर सिद्ध (हुए) हैं, वहाँ समश्रेणी में (विराजमान) होते हैं। तो वहाँ जाकर, ऊपर भगवान हैं, ऐसा स्मरण में लाना, वह यात्रा का भाव ऐसा है। हाँ, गजब बात! कहे, वरना तो मूर्ति को मानते नहीं न। मैंने कहा, भाई! ऐसी बात है। गड़बड़ कर दे ऐसे नहीं। यह तो भगवान ऊपर विराजते हैं। नीचे जाकर (विचारना कि) प्रभु ऊपर हैं। सर्वज्ञपद, वह सिद्धपद हुआ। मेरे सिर के ऊपर सीधे वहाँ विराजते हैं। वहाँ उस स्थल में जाये तो।

ऐसे सम्मेदशिखर। जहाँ-जहाँ तीर्थंकर मोक्ष पधारे जिस क्षेत्र से, वहाँ ऊपर विराजते हैं और उस क्षेत्र में एक कण—एक टुकड़ा—एक अंश खाली नहीं कि जहाँ (ऊपर) अनन्त (सिद्ध) नहीं हैं। जो अनन्त (सिद्ध) वहाँ हैं तो यहाँ नीचे से अनन्त सिद्ध सीधे गये हैं। मेरुपर्वत के सीधे भाग में है न। सीधे समझे न? सोगठी जैसा है न वह।

मुमुक्षु : दीवार के समान।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। दीवार (जैसा) नहीं, ऐसा। दीवार तो ऐसी है। दीवार तो सीधी है। यह तो ऐसा है। वहाँ तो साधु बैठ सके नहीं। परन्तु वहाँ से भी अनन्त मोक्ष गये हैं। क्योंकि ऊपर अनन्त है, कहीं खाली नहीं। तो देवों ने... सन्त जब ध्यान में नहीं थे, प्रमत्तदशा में थे। अप्रमत्तदशा में वह (हिला) नहीं सकते। प्रमत्त में थे। शत्रु ने उठाया। पैर पकड़कर वह जो स्थान है न मेरुपर्वत का एक-एक कण पर पछाड़ा। नीचे शरीर गिर गया और वहाँ केवलज्ञान पाकर सीधे मोक्ष (चले) गये। आहाहा!

वरना वहाँ ४५ लाख योजन में एक राई जितना क्षेत्र खाली नहीं कि जहाँ से

अनन्त (जीव) मुक्ति (गये) नहीं। समश्रेणी में (मोक्ष) जाते हैं। पण्डितजी! सीधे जाते हैं न! आगे-पीछे जायें तो वहाँ से कहाँ से गये? आहाहा! वह शरीर जहाँ ऐसे पछाड़ा, वहाँ अन्दर में श्रेणी स्थिर हो गये। आनन्दकन्द में, ओहोहो! जम गये। देह नीचे गिर गयी, केवलज्ञान हो गया। आहाहा! ऐसी चीज़ तो अन्तर आत्मा है। जहाँ-जहाँ जाओ, ... छोड़ों परन्तु आत्मा तो है। आत्मा में एकाकार हो गये। देह का काम देह में हो गया। आहा! वे आत्मा में मग्न हुए। अज्ञानी राग में मग्न है। यहाँ वह कहते हैं। अज्ञानी भ्रमणा का स्वामी है, ज्ञानी आत्मा का स्वामी है। समझ में आया? आहाहा!

माया मगन भरमके भरता... यहाँ इस मस्तक के ऊपर भी अनन्त सिद्ध है। है या नहीं? खाली है? आहाहा! **माया मगन भरमके भरता...** यहाँ तो क्या लिया? कि राग में मग्न है, वह भ्रम का भरतार है। और भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में जो मग्न है, वह चैतन्यस्वामी का **भरता...** उसका स्वामी है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा में स्वस्वामी सम्बन्ध नाम की शक्ति पड़ी है। आहा! अनादि-अनन्त। वह ४७ शक्ति में आयी है। अन्तिम ४७ (वीं शक्ति)। सुडतालीस समझे न?

मुमुक्षु : सैंतालीस।

पूज्य गुरुदेवश्री : चालीस और सात। अन्त में आखिर में है। स्वस्वामी सम्बन्ध। तो धर्मात्मा का स्वस्वामी सम्बन्ध—स्व अपना द्रव्य, स्व अपना गुण और स्व अपनी निर्मल वीतरागी पर्याय—यह अपना स्व और उसका वह स्वामी है। ऐसा गुण आत्मा में पड़ा है। समझ में आया? अज्ञानी को अपना स्व क्या है, उसका स्वामी कौन है—उसकी खबर नहीं। यह राग और पुण्य अपना स्व, उसका मैं स्वामी। आहाहा! समझ में आया?

वह जीव **भाव करमके करता...** वह जीव राग के सूक्ष्म विकल्प के प्रेम में पड़ा है, मग्न है, लीन है, भ्रमणा का स्वामी है, वह भावकर्म का कर्ता है। राग अर्थात् विकल्प का कर्ता, वह अज्ञानी है, ज्ञानी नहीं। आहाहा! इस प्रकार अन्तर समझने के लिये बात है, हों! किसी को कहना कि कहे, इसके लिये यह बात है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **माया मगन भरमके भरता, ते जिय भाव करमके करता...** राग का कर्ता जड़ नहीं, ज्ञानी राग का कर्ता नहीं। अज्ञानी राग का कर्ता है क्योंकि वस्तु-चीज़

क्या है, उसकी खबर नहीं। आहा! आनन्दकन्द अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति 'मैं' हूँ। ऐसी खबर बिना राग में मग्न होकर कर्ता होता है। दूसरा श्लोक (पद) १६-१७।

★ ★ ★

काव्य - १६-१७

(दोहा)

जे मिथ्यामति तिमिरसौं, लखै न जीव अजीव।
तेई भावित करमके, करता होंहिं सदीव।।१६।।
ते असुद्ध परनति धरैं, करैं अहं परवांन।
ते असुद्ध परिनामके, करता होंहिं अजान।।१७।।

अर्थ:-जो मिथ्याज्ञान के अन्धकार से जीव-अजीव को नहीं जानते, वे ही सदा भावकर्म के कर्ता हैं।।१६।। जो विभावपरिणति के कारण परपदार्थों में अहंबुद्धि करते हैं, वे अज्ञानी अशुद्ध भावों के कर्ता होने से भावकर्मों के कर्ता हैं।।१७।।

काव्य-१६-१७ पर प्रवचन

जे मिथ्यामति तिमिरसौं, लखै न जीव अजीव।
तेई भावित करमके, करता होंहिं सदीव।।१६।।
ते असुद्ध परनति धरैं, करैं अहं परवांन।
ते असुद्ध परिनामके, करता होंहिं अजान।।१७।।

आहा! **जे मिथ्यामति तिमिरसौं...** कर्म के कारण से मिथ्यामति और अन्धकार है, ऐसा नहीं लिखा है। अपनी चीज़ को भूलकर 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' अपने को आप भूलके भगवान हैरान हो गया। आहाहा! कहते हैं कि **जे मिथ्यामति तिमिरसौं...** मिथ्याज्ञान के अन्धकार से, अरे! चैतन्य का नूर का प्रभु प्रकाश का पूर, उसकी खबर नहीं। अपनी चीज़ की प्रवीणता नहीं, अपनी चीज़ की परीक्षा

नहीं, वह मिथ्यामति अन्धकार में पड़ा है। आहा! **लखै न जीव अजीव...** देखो। जीव और अजीव कहा। राग को भी अजीव कहते हैं यहाँ। जीव की जाति नहीं। आहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह अजीव है। आहाहा! उसको तो अज्ञान कहा है। अज्ञान का अर्थ उसमें ज्ञान नहीं। भाई! सम्यग्ज्ञान दीपिका में। एक ओर भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, एक ओर राग से लेकर सब अज्ञान। यह ज्ञान उसमें नहीं। आहा! इसलिए सब अज्ञान है, ऐसा लिया है। सम्यग्ज्ञान दीपिका (में क्षुल्लक) धर्मदास ने ऐसा कहा है। दो भाग पाड़कर एक ओर ज्ञान तथा एक ओर अज्ञान। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अत्यन्त भिन्न है, अज्ञान है। आहाहा!

जे मिथ्यामति तिमिरसौं, लखै न जीव अजीव। 'लखै' अर्थात् जाने नहीं। अरे! मैं तो चैतन्य आनन्द हूँ और रागादि, वह तो अजीव है। मेरी चीज़ (के साथ) मिलान हो सकता नहीं। मेळवणी आता है न एक में? क्या कहते हैं? कलशटीका में आता है न। अनमेल, ऐसा शब्द है, भाई। संस्कृत। अनमेल (शब्द) तीन-चार जगह (आता है)। राग का भाग और मेरी चीज़ अनमेल है। मिलान न हो सके, ऐसी चीज़ है—ऐसा कहते हैं। अनमेल (ऐसा) पाठ है। कलश में है। किसी जगह बराबर कुछ याद न हो। समझ में आया? अपने आ गया है। व्याख्यान हो गया है न सारा? जीव और अजीव का मिलान नहीं। अनमेल है। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य प्रकाश का प्रभु, उसकी प्रभुता है और राग आदि अजीव की प्रभुता है। वह तो अजीव है। अज्ञानी, जीव और अजीव की भिन्नता जानते नहीं। आहाहा!

अभी तो शरीर की पुर्न... क्या कहलाता है? पुनर्भव। अब वह पूछते हैं। अरर! आर्य व्यक्ति। कल बहुत आये थे। २५-३० लोग लड़के जवान सब। ३०-३० वर्ष की उम्र के थे। अपने रतिभाई के ससुरालवाले। रतिभाई नहीं यह?

मुमुक्षु : हेडमास्टर।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ है न मुम्बई। आहाहा! सब... ऐसा पूछा, 'महाराज! आप पुनर्जन्म मानते हो? अरर! ...गजब बात! पुनर्जन्म है? बापू! है। यह लड़की को देखा

हो तो ... राजुल है, कहा। आज सुबह में भूल गया राजुल। आज रविवार है न आज। हें ? है। आहा! बापू! तुमको खबर नहीं, भाई! पुनर्जन्म अभी तो आत्मा को दूसरा भव है ऐई... अररर! आहाहा!

यहाँ तो आत्मा में राग भी दूसरा है, वह नहीं। मुझे तो पुनर्जन्म अर्थात् आगे बढ़ने पर मुझमें तो शुद्धता की उत्पत्ति होती है। समझ में आया? एक समय-समय शुद्धता का जन्म—उत्पत्ति, वह मेरा पुनर्जन्म है।

मुमुक्षु : यह दूसरे प्रकार का पुनर्जन्म है।

मुमुक्षु २ : शुद्धिपूर्वक...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि... क्या कहते हैं। यह तो पीछे से कहा। यह कोई कहे, जातिस्मरण क्या? अज्ञानी को भी जातिस्मरण होता है और ज्ञानी को भी होता है। दोनों ही को होता है।

सवेरे थोड़ा कहा था न श्वेताम्बर का। कहे, जातिस्मरण क्यों नहीं उत्पन्न होता है? बहुत देखा है। श्वेताम्बर के शास्त्र तो सब देखे हैं न। करोड़ों श्लोक देखे हैं। आठ वर्ष तो (संवत्) १९७० से... अरे, दुकान में निवृत्ति थी तो वह पढ़ते थे। हम तो पहले श्वेताम्बर थे न। हम जन्म तो उसमें था। उनका दस वैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग (आदि) सब शास्त्र दुकान पर मँगाये थे। छोटी उम्र से। ६४-६५ वर्ष से पढ़ते थे। निवृत्ति बहुत थी दुकान में। हमारी घर की दुकान थी पिताजी की। सब पढ़ते थे, पढ़ा है।

तो उसमें ऐसा आया था कि जातिस्मरण क्यों नहीं होता वर्तमान में? ऐसा व्यवहार डाला भाई ने तो। वास्तव में तो वह निश्चय... कि पूरी सत्य बात कहने में बाह्य में जगत को समाधान न हो, तो जगत के लिये उसको रुकना पड़े या नहीं, भाई! ऐसा है और ऐसा है और ऐसा है। ऐसे विकल्प आते हैं तो जातिस्मरण होता नहीं। यह व्यवहारनय। वास्तव में तो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : जैन में भी.... होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बहुत हजार हैं न। हमारे यहाँ आये थे अभी अमेरिका से। अमेरिका से आदमी आया था। यहाँ राजुल के लिये रिपोट लेने (आया था)। राजुल की रिपोर्ट लेने को आया था। गुजराती नहीं समझते थे। अमेरिका से आया था। प्रश्न किया अंग्रेजी में कि 'महाराज! गर्भ में जीव आते हैं तो पाँच महीने में आता है या पहले (महीने) से आता है?' ऐसा प्रश्न किया। अंग्रेजी में किया तो गुजराती....

लोग ऐसा कहते हैं न कि माता के गर्भ में पाँच महीने में जीव आवे। कहा, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : कितने तीन महीने के लिये कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो वहाँ से मरकर एक समय में यहाँ आता है। यह राजुल का दृष्टान्त तो सीधा है। राजुल वह बैठी है। वहाँ देह छूट गयी। नौ महीने सत्रह दिन में यहाँ जन्म लिया। वह यह लड़की है। नौ महीने और सत्रह दिन। समझ में आया? लोगों को व्यवहार की भी खबर नहीं अभी तो। मैं त्रिकाली हूँ, मैंने अनन्त अवतार किये हैं, इसकी खबर नहीं। आहाहा! आर्य मनुष्य में इतनी प्रतीति नहीं। यह तो निष्क्रिय अन्तर भगवान आर्यस्वरूप शुद्ध आनन्द का धाम उसके अनुभव में प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! पहली चीज़ यह है। जिस वस्तु का अन्तर अनुभव आया नहीं, तो उसको मानना कहाँ से आया?

आता है न? १७-१८ गाथा में आता है। समयसार १७-१८ (गाथा में) कि जो चीज़ ख्याल में आयी नहीं, उसकी प्रतीति तो खरगोश के सींग जैसी है। ससला समझे न? खरगोश। खरगोश। १७-१८ गाथा में है। समयसार में। टीका में। अमृतचन्द्राचार्य (ने कहा है)। जो चीज़ अन्तर ख्याल में नहीं, वह चीज़ है, ऐसा अनुभव नहीं और उस चीज़ को मानना, कैसे माने? समझ में आया? जो चीज़ कभी देखी नहीं। देखी नहीं और मानना? कैसे माने?

मुमुक्षु : आपने कहा तो हमने मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे माना, वह माना ही नहीं। ऐसा कहा न एक बार? वह

भाई क्या कहलाते हैं? कुवाडिया। कुवाडवा। कुवाडवा है न राजकोट के पास। पाँच कोस (दूर) कुवाडवा है न। नदी में....

उसके विद्यालय में उतरे थे। तो विद्यालय में एक मच्छर का फोटो था। मच्छर... मच्छर। मच्छर होता है न बारीक। मच्छर।

मुमुक्षु : जो मच्छर यहाँ काटते हैं न रात्रि को वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो एक फोटो था।

मुमुक्षु : उसको डांस बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मच्छर। डांस, वह अलग बड़ा। मच्छर छोटा होता है। हाँ, अन्तर है। परन्तु उस मच्छर का पैर लम्बा करके मास्टर ने बालकों को समझाया कि देखो! यह मच्छर है। चित्र-फोटो। पैर तो थोड़े छोटे हैं। परन्तु वह पैर में रोम.. रोम है न! उसे बताने को पैर लम्बा—बड़ा करके मच्छर को बालकों को बताया।

मास्टर कहे, देखो बालको! मच्छर ऐसा होता है। अब एक बार गाँव में आया हाथी। तो बालक कहते हैं कि मास्टर साहेब! आपने जो मच्छर बताया था वह। वह मच्छर बताया था, वह तो पैर लम्बा करके उसके नीचे... नीचे होते हैं न भाग?

मुमुक्षु : रोम।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोम—पैर के दो भाग चार टुकड़े होते हैं न ऐसे लम्बे बारीक-बारीक। तो सब बताने को (बड़ा करके) बताया था। तब उसने हाथी तो देखा नहीं था (और) मच्छर देखा नहीं था। मच्छर न हो ऐसा लम्बा-लम्बा दिखाया। तो कहते थे।

हम उस विद्यालय में उतरे थे। चौथे वर्ष (संवत् २००४)।

मुमुक्षु : मच्छर को काटने के लिये सूंढ होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह सूंढ होती है। उसके पैर में अन्तर होता है। नीचे पैर में। परन्तु यह तो पैर में... पैर नीचे है न, उसमें अन्तर होता है। जैसे ऊँट के पैर... अन्तर होता है। पैर में अन्तर होता है और ... ऊपर के पैर में अन्तर... ऐसा उस पैर में भी अन्तर। वह अन्तर बताने को लम्बा करके बताया। तो यह कहे, मास्टर साहेब! यह

मच्छर। वास्तविक मच्छर का रूप तो देखा नहीं था। चित्राम से देखा था। हाथी को (मच्छर) बताया। इसी प्रकार वास्तविक तत्त्व क्या है, यह जाने बिना यह आत्मा। यह नारकी, वह आत्मा; राग, वह आत्मा; मनुष्य, वह आत्मा; देव, वह आत्मा; स्त्री आत्मा, पुरुष आत्मा। भाई! यह आत्मा नहीं है। यह तो समझाया है कि स्त्री का आत्मा। रागवाला आत्मा—ऐसा बताया है। परन्तु रागवाला आत्मा और स्त्री आत्मा, यह आत्मा नहीं है। आहाहा!

आत्मा तो अखण्डानन्द प्रभु महासत्ता चैतन्य प्रभु को पूर्णानन्द... सुबह आया था न! त्रिकाल निरावरण निज शुद्ध चैतन्य, वह आत्मा। उसका वेदन करनेवाला तत्त्ववेदी निजवेदी। आहाहा! अपने आनन्द का वेदनेवाला—जाननेवाला वह समकिती। वह आत्मा को मानता है। देखे बिना माने क्या? समझ में आया? यहाँ अज्ञानी कहते हैं कि **लखै न जीव अजीव**। भान नहीं कि जीव किसको कहते हैं और अजीव किसको कहते हैं। शास्त्र से मान लिया कल्पना से। समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्वथा जीव उसे मानो और कथंचित् जीव दोनों को माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा जीव उसको मानो, सर्वथा अजीव उसको मानो। पुण्य-पाप के विकल्प को सर्वथा अजीव मानो। उसमें चैतन्य का अंश है ही नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

जे मिथ्यामति तिमिरसौं, लखै न जीव अजीव। इस कारण से, हों! अज्ञान और तिमिर अन्धकार के कारण से। दर्शनमोह कर्म के कारण से, यह कारण नहीं। **तेई भावित करमके... भावित करम...** रागरूपी भवन होकर जो कर्म बनाया, वह **करता होहि सदीव...** अज्ञानी राग का सदैव कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया? **जे असुद्ध परनति धरैं...** भाषा देखो। जो अज्ञानी राग आदि अशुद्धता परिणति धारता है, वह उसे भासित होता है।

करैं अहं परवांन... और उसे अहंपना मानता है, अहंबुद्धि। यह राग मेरा, अशुद्ध परिणति, यह मैं अर्थात् आस्रव वह मैं। आस्रवरहित चैतन्य का तो भान नहीं। आहाहा! **करैं अहं परवांन...** उसे अहंपना माने राग को। उदयभाव—संसारभाव—विकारभाव—

विभावभाव—जहरभाव—दु:खरूपभाव को प्रमाण मानते हैं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : औदयिकभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, औदयिकभाव। वह राग औदयिकभाव है। आहाहा! **करैं अहं परवांन...** उसे अपनेपने मानते हैं। आहाहा!

ते असुद्ध परिनामके करता होहिं अजान... भगवान आत्मा का अनजान, वह अशुद्धता का कर्ता होता है। क्योंकि जो चीज़ अपनी मानी, उसका कर्ता हुआ (और) वह मेरा ऐसा मानता है। आहाहा! कर्ता-कर्म के अधिकार तो कुन्दकुन्दाचार्य ने बहुत लिया है बहुत। क्योंकि मूल भूल ही अनादि से इसमें पड़ी है। आहाहा!

भावों के कर्ता होने से भावकर्मों के कर्ता है। इसके विषय में शिष्य का प्रश्न,... लो। अब शिष्य का प्रश्न है। जिसका अस्तित्व अपनी दृष्टि में आया उसका कर्ता माना और उसे अपना कर्म माना। क्योंकि अपना अस्तित्व ज्ञानानन्द वह तो दृष्टि में आया नहीं। पर्यायबुद्धि में तो राग और पुण्य और पाप का अस्तित्व दिखता है। '**पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं**' ऐसा आता है न। '**तं जाण परसमयं**'। दूसरी गाथा। यहाँ आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव में स्थित तो हुआ नहीं, तो राग में स्थित होकर अपना स्वरूप मान लिया। आहाहा! भाई! यह व्यवहाररत्नत्रय भी अशुद्धपरिणाम, अचेतन, अजीव। आहाहा! **इसके विषय में शिष्य का प्रश्न।**

★ ★ ★

काव्य - १८-१९-२०

इसके विषय में शिष्य का प्रश्न (दोहा)

शिष्य कहै प्रभु तुम कह्यौ, दुबिधि करमकौ रूप।
दरब कर्म पुदगलमई, भावकर्म चिद्रूप।।१८।।

करता दरवित करमकौ, जीव न होइ त्रिकाल।
अब यह भावित करम तुम, कहौ कौनकी चाल।।१९।।

करता यातौ कौन है, कौन करै फल भोग।
कै पुदगल कै आतमा, कै दुहुंकौ संजोग?।।२०।।

अर्थ:-शिष्य प्रश्न करता है कि हे स्वामी! आपने कहा कि कर्म का स्वरूप दो प्रकार का है, एक पुद्‌गलमय द्रव्यकर्म हैं और दूसरे चैतन्य के विकार भावकर्म हैं।।१८।। आपने यह भी कहा कि जीव, द्रव्यकर्मों का कर्ता कभी त्रिकाल में भी नहीं हो सकता, तो अब आप कहिये कि भावकर्म किसकी परिणति है?।।१९।। इन भावकर्मों का कर्ता कौन है? और उनके फल का भोगता कौन है? भावकर्मों का कर्ता-भोगता पुद्‌गल है या जीव है, या दोनों के संयोग से कर्ता-भोगता है?।।२०।।

काव्य-१८-२० पर प्रवचन

शिष्य कहै प्रभु तुम कह्यौ, दुबिधि करमकौ रूप।
दरब कर्म पुदगलमई, भावकर्म चिद्रूप।।१८।।
करता दरवित करमकौ, जीव न होइ त्रिकाल।
अब यह भावित करम तुम, कहौ कौनकी चाल।।१९।।
करता यातौ कौन है, कौन करै फल भोग।
कै पुदगल कै आतमा, कै दुहुंकौ संजोग?।।२०।।

यह किसकी गति है वह? पुण्य-पाप के भाव की गति—चाल किसकी है? मैं कौन, संयोग? यहाँ बड़ी गड़बड़ है अभी।

शिष्य कहै प्रभु! तुम कह्यौ दुबिधि करमकौ रूप... एक जड़कर्म, एक रागकर्म। एक भावकर्म, एक अजीवकर्म। परमाणु रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाले हैं। वह भी अचेतन है परन्तु भावकर्म में रंग, रस, गन्ध नहीं। परन्तु ज्ञान का अभाव है, इसलिए उसको अचेतन और अजीव कहा गया है। तो द्रव्यकर्म और भावकर्म आपने दो कहे। **दरब कर्म पुदगल मई...** आपने तो द्रव्य जड़कर्म को पुद्‌गल कहा। **भावकर्म चिद्रूप...** चिद्रूप की दशा है, ऐसा आपने कहा। **करता दरवित करमकौ, जीव न होइ त्रिकाल...** जड़कर्म का कर्ता तो नहीं। आहाहा! कहो, राग-द्वेष होते हैं, उस प्रमाण में कर्म का बन्धन होता

है, तथापि कर्म की पर्याय का अज्ञानी भी कर्ता नहीं। जितने प्रमाण में भ्रमणा और राग-द्वेष होते हैं, उसी प्रमाण में कर्म में रचना कर्म की होती है। शुभभाव मन्द हो और पुण्य विशेष बँध जाये कर्म में, ऐसा है?

जितने प्रमाण में मिथ्यात्व और राग-द्वेष, इतने प्रमाण में परमाणु की पर्याय उसी समय अपने से विकाररूप—कर्मरूप पर्याय होती है। तो कहते हैं कि यह जड़कर्म की पर्याय विकार के प्रमाण होती है। निमित्त है। उसी प्रमाण में, तो भी उसका कर्ता नहीं। आहाहा! तो यह व्यापार-धन्धा और शरीर का कर्ता और विवाह—लग्न के प्रसंग का कर्ता और लड्डू खाने का कर्ता—यह कर्ता तीन काल में आत्मा है नहीं। आहाहा! **करता दरवित करमकौ, जीव न होइ त्रिकाल...** शिष्य ने इतना तो निर्णय किया। आहाहा!

मुमुक्षु : जीव कर्म बाँधे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो अभी कर्म बाँधे।

मुमुक्षु : यह तो मैंने बाँध लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने बाँध लिया। अरे, भगवान! बापू! वह तो जड़ रजकण है। क्या रजकण की पर्याय तुझसे होती है? क्या तुम उसके स्वामी हो? उस परसत्ता का तेरी सत्ता में प्रवेश है? तेरी सत्ता (का) पर में प्रवेश है? आहाहा!

अब यह भावित करम तुम, कहौ कौनकी चाल... प्रभु! मेरा प्रश्न है। यह विकल्प जो उत्पन्न होते हैं, दया-दान-व्रत-भक्ति, वह भावकर्म की चाल—गति किसकी है? कौन करता है उसको? **करता याकौ कौन है,...** लो। **कौन करै फल भोग...** और कर्ता को भोक्ता कौन है बाद में? **कै पुद्गल के आतमा...** महाराज! यह पुद्गल करे या आत्मा? पुद्गल विकार को करे या आत्मा? **कै दुहुंकौ संजोग?** तीन बोल लिये। अभी कहते हैं वह। जयसेन आचार्य की समयसार की टीका में है।

मुमुक्षु : दोनों इकट्ठे होकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा दृष्टान्त है। वही लगाते हैं सब (जगह)। वह तो दूसरी चीज़ है। कि जैसे स्त्री और पुरुष दो मिलकर पुत्र होता है, तो पुरुष का पुत्र

भी नहीं कहने में आता है, स्त्री का भी नहीं कहने में आता है। ऐसा दृष्टान्त है। दोनों ही का है।

इसी प्रकार कर्म और आत्मा दोनों ही का राग है। ऐसी संस्कृत टीका है। वह तो दूसरी चीज़ बताते हैं। विकार अपने में है, यह निश्चय। तो निमित्त क्या है उसका—प्रमाण का ज्ञान कराते हैं। समझ में आया? रतनचन्दजी वही डालते हैं हर समय। है न (रतनचन्दजी) मुखत्यार? हाँ, वही डालते हैं। देखो, यहाँ जीव का अकेले का विकार नहीं (कहा)। कर्म का अकेले का नहीं, दोनों का ही है। माता-पिता दोनों ही का पुत्र है। ऐसा है, टीका में है। परन्तु वह तो प्रमाणज्ञान कराया है। प्रमाण अर्थात् निश्चय और निमित्त कौन है, उसका ज्ञान कराया है। दो होकर करते हैं, ऐसा तो तीन काल में है नहीं। आहाहा! यह प्रश्न ऐसा है न, देखो! 'महाराज! आत्मा में विकार होता है, वह पुद्गल करता है? आत्मा करता है? या दोनों मिलकर होता है?' पचास प्रतिशत कर्म का और पचास प्रतिशत आत्मा का, ऐसा होता है?

यह प्रश्न हुआ था पहले। सेठ आये न पहली (बार) सेठ। कौनसा वर्ष कहा? (संवत्) २००१ के वर्ष। जीवन्धर है न, जीवन्धर। वे आये थे साथ में लेकर। नाथुलाल, जीवन्धर। यह प्रश्न किया। .....ऐसा दो मिलकर होता है विकार? यह प्रश्न किया। तो पचास प्रतिशत कर्म के और पचास प्रतिशत आत्मा के, ऐसा है? आहाहा! ५०-५० कैसा?

मुमुक्षु : नहीं, १०० प्रतिशत।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! हमारे यहाँ था एक गृहस्थ सेठ। वह भी कर्म का कहते थे, कर्म की बहुत बात (करते थे)। कर्म से होता है... कर्म से होता है... कर्म से विकार होता है। फिर कहा, कर्म से किंचित् नहीं। यह तो पचास वर्ष पहले की बात है। पचपन वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९७१। कर्म का एक प्रतिशत भी नहीं है। दोकडा समझते हैं? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : टका (प्रतिशत)।

पूज्य गुरुदेवश्री : टका। एक टका (प्रतिशत) कर्म का नहीं।

कहते हैं कि 'महाराज ऐसा नहीं। थोड़ा रखो।' '५१ प्रतिशत पुरुषार्थ के रखो और ४९ प्रतिशत कर्म के रखो' ऐसा कहा। यह चर्चा तो बहुत चलती थी न पहले से। ५१ प्रतिशत आत्मा के रखो। टका समझे? धन्नालालजी!

मुमुक्षु : हिस्सा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिस्सा। '४९ प्रतिशत कर्म के रखो। वैसे हम तो ५०-५० प्रतिशत रखते हैं, परन्तु आप कहते हो तो हम ऐसा कहें (माने)। ५१ और ४९। दो (प्रतिशत) यहाँ विशेष हो गया' ऐसा कहा, हों! 'दो (प्रतिशत) विशेष (ज्यादा) हो गया।' कहा, एक भी प्रतिशत कर्म का नहीं। सौ में सौ प्रतिशत अज्ञानी का पुरुषार्थ ऊंधा-उल्टा होता है। अपने से विकार है, कर्म से बिल्कुल नहीं तीन काल-तीन लोक में (नहीं)। आहाहा! इससे क्या? कि द्रव्य (कर्म) का तो त्रिकाल कर्ता नहीं, परन्तु यह भावकर्म विकार? कि आत्मा में विकार तो....

यहाँ तो प्रश्न हुआ था। चिदानन्दजी थे न। दो वर्ष रह गये थे न? चिदानन्दजी नहीं वे द्रोणगिरिवाले? दो चातुर्मास रहे थे। वे पहले तो बहुत प्रश्न करते थे। देखो, दो सिद्धान्त। यह कहे, 'आत्मा में विकार तो है नहीं। द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, तो विकार कैसे हुआ?' ऐसा प्रश्न करते थे। विकार हुआ अपनी पर्याय के अपराध से। 'क्या कारण?' कारण क्या? स्वतन्त्र-कर्ता अज्ञानी है। विकार का स्वतन्त्र कर्ता अज्ञानी अज्ञानरूप से होता है। कारण-बारण कुछ नहीं। स्वतन्त्र कर्ता, उसका कारण क्या? बड़ी चर्चा पाँच दिन चली। सुनो, सुनो बराबर। फिर तो (बात) बैठी, हों! वह चिदानन्दजी... यहाँ दो चातुर्मास रहे। दो चातुर्मास रहे। चिदानन्दजी... पहले दोनों साथ में थे।

एक है न नेमीसागर। नेमीसागर है। वहाँ अपने नहीं आये थे? अन्तरीक्ष में। शौरीपुर। वहाँ नेमीसागर आये थे। वे भी यहाँ चातुर्मास में रहे। दोनों साथ में एक चातुर्मास (में रहे थे)। तो वह भी बेचारे नरम हैं। हमारी बात सुनने को (प्रसन्न थे)।

मुमुक्षु : वर्णीजी के साथ रहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, यह नेमीसागर दूसरे। वर्णीजी... वह चिदानन्द था,

पहले चिदानन्द था। यहाँ आया, बाद में तो उसकी लाईन बदल गयी। यहाँ तो अपने भोपाल में बोले थे न। भोपाल में बोले थे।

मुमुक्षु : भोपाल में लाभ नहीं लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। भोपाल में बोले थे। लोग बहुत थे न। 'हमारे ऊपर स्वामीजी का उपकार है', चिदानन्दजी कहते थे और एकान्त में हमारे पास आये थे। 'महाराज! आप कहते हैं तो इस प्रमाण हम तो क्षुल्लक नहीं। हमें क्या करना?' क्या करना, हम नहीं कहते हैं, भाई! छोड़ो, (हम नहीं) कहते, हम तो मार्ग कहते हैं कि मार्ग ऐसा है, ऐसा समझो, ऐसा निर्णय करो। समझ में आया? यहाँ आया था एकान्त में।

यह बात तो ऐसी है। उसमें कर्म की बात तो तीनों सम्प्रदाय में घुस गयी है उल्टी। बस, कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है। अकेला (जीव) विकार नहीं करता। अकेला विकार करे तो विकार स्वभाव हो जाये। परन्तु स्वभाव ही है पर्याय का, सुन तो सही! आहाहा!

मुमुक्षु : वह भी अज्ञान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान में पर्याय का स्वभाव है कि विकाररूप परिणमे, यह अज्ञानस्वभाव है। आहाहा! भाषा में नहीं, अन्तर में यह बैठना चाहिए। समझ में आया? लाख इन्द्र ऊपर से उतरे तो भी बदले नहीं, ऐसी बात बैठनी चाहिए। ऐसी बात है। कहते हैं, महाराज! यह विकार—पुण्य-पाप, दया-दान-व्रत-भक्ति, काम, क्रोध, मिथ्यात्व भ्रम—यह पुद्गल उसका कर्ता है या आत्मा अकेला कर्ता है या दोनों मिलकर करते हैं? दो भागीदार—हिस्सेदार हैं, ऐसा प्रश्न है। इस पर श्रीगुरु समाधान करते हैं, लो।

कार्यत्वादकृतं न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्कृतिः।
नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो,
जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः।।११।।

आत्मा को अनुसरकर होता है, जड़ को अनुसरकर होता नहीं। पुद्गल ज्ञाता नहीं। जाननहार है, वह जानन आत्मा, उसका कर्ता है। आहाहा! कर्म की भूल तो... बहुत

(जगह) शास्त्र में ऐसा आता है। ज्ञानावरणीय ज्ञान को रोके, दर्शनावरणीय दर्शन को रोके। परन्तु वह तो निमित्त का कथन व्यवहार का है। रोके क्या? ज्ञानावरणीय ज्ञान को रोके, उसका यहाँ निषेध करते हैं। ज्ञान की परिणति भावकर्मरूप हीन होती है, उसका कर्ता आत्मा है। कर्म से बिल्कुल हीन दशा होती नहीं। समझ में आया? वह चर्चा बहुत चली थी (संवत्) २०१३ के वर्ष में, वहाँ ईसरी (में)।

इस पर श्रीगुरु समाधान करते हैं। क्रिया एक करता जुगल, यौं न जिनागम मांहि। आहाहा! अक्षर भी बड़े हैं, कागज भी अच्छा है। **क्रिया एक करता जुगल...** और सिद्धान्त भी अच्छा है।

★ ★ ★

काव्य - २१-२५

इस पर श्रीगुरु समाधान करते हैं (दोहा)

क्रिया एक करता जुगल, यौं न जिनागम मांहि।
अथवा करनी औरकी, और करै यौं नांहि।।२१।।

करै और फल भोगवै, और बनै नहि एम।
जो करता सो भोगता, यहै जथावत जेम।।२२।।

भावकरम करतव्यता, स्वयंसिद्ध नहि होइ।
जो जगकी करनी करै, जगवासी जिय सोइ।।२३।।

जिय करता जिय भोगता, भावकरम जियचाल।
पुदगल करै न भोगवै, दुविधा मिथ्याजाल।।२४।।

तातैं भावित करमकौं, करै मिथ्याती जीव।
सुख दुख आपद संपदा, भुंजै सहज सदीव।।२५।।

शब्दार्थः-जुगल (युगल)=दो। जिनागम (जिन+आगम)=जिनराज का उपदेश। जथावत=वास्तव में। कर्तव्यता=करतूति। स्वयंसिद्ध=अपने आप। जगवासी जिय=संसारी

जीव। जियचाल=जीव की परणति। दुविधा=दोनों ओर का झुकाव। आपद=इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग। संपदा=अनिष्ट वियोग, इष्ट संयोग। भुंजै=भोगै।

अर्थ:-क्रिया एक और कर्ता दो ऐसा कथन जिनराज के आगम में नहीं है, अथवा किसी की क्रिया कोई करे, ऐसा भी नहीं हो सकता।।२१।। क्रिया कोई करे और फल कोई भोगे ऐसा जैन बैन में नहीं है, क्योंकि जो कर्ता होता है, वही वास्तव में भोगता होता है।।२२।। भावकर्म का उत्पाद अपने आप नहीं होता, जो संसार की क्रिया हलन-चलन चतुर्गति भ्रमण आदि करता है, वही संसारी जीव भावकर्म का कर्ता है।।२३।। भावकर्मों का कर्ता जीव है, भावकर्मों का भोगता जीव है, भावकर्म जीव की विभाव परिणति है। इनका कर्ता-भोगता पुद्गल नहीं है, और पुद्गल तथा दोनों का मानना मिथ्या जंजाल है।।२४।। इससे स्पष्ट है कि भावकर्मों का कर्ता मिथ्यात्वी जीव है और वही उनके फल सुख-दु:ख वा संयोग-वियोग को सदा भोगता है।।२५।।

काव्य-२१-२५ पर प्रवचन

क्रिया एक करता जुगल, यौं न जिनागम मांहि।
अथवा करनी औरकी, और करै यौं नांहि।।२१।।

करै और फल भोगवै, और बनै नहि एम।
जो करता सो भोगता, यहै जथावत जेम।।२२।।

भावकरम करतव्यता, स्वयंसिद्ध नहि होइ।
जो जगकी करनी करै, जगवासी जिय सोइ।।२३।।

जिय करता जिय भोगता, भावकरम जियचाल।
पुदगल करै न भोगवै, दुविधा मिथ्याजाल।।२४।।

तातैं भावित करमकौं, करै मिथ्याती जीव।
सुख दुख आपद संपदा, भुंजै सहज सदीव।।२५।।

आत्मा कर्ता और आत्मा भोक्ता। आत्मा कर्ता और कर्म भोक्ता, कर्म कर्ता और आत्मा भोक्ता—ऐसा है नहीं। देखो, **क्रिया एक करता जुगल...** परिणति एक और दो

(द्रव्य) करे, ऐसा होता नहीं। भगवान के मार्ग में ऐसा है नहीं। क्रिया एक और कर्ता जुगल—दो। समझ में आया? जैसे यह शरीर है। देखो, ऐसे चले तो क्रिया तो है। तो क्रिया का कर्ता दो। शरीर भी करे और आत्मा भी करे, ऐसा होता नहीं। क्यों अन्दर आत्मा नहीं है? अँगुली क्यों चली?... यह क्रिया एक और उसके कर्ता दो। शरीर भी अँगुली को चलाता है और आत्मा भी चलाता है, ऐसा तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा होगा तो मैं स्वच्छन्द हो जाऊँगा, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन स्वच्छन्द... कर सकता है कौन कि स्वच्छन्द होता है?

मुमुक्षु : स्वच्छन्द मिटाने की तो बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर कौन सकता है पर का? अज्ञान हो या ज्ञान हो, पर का तो कोई कर सकता नहीं। स्वच्छन्दी हो तो भी पर का तो कर सकता नहीं। विशेष आयेगा, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२३, श्रावण शुक्ल ११, सोमवार, दिनांक ०२-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-२१ से २६

समयसार नाटक। सर्वविशुद्धि अधिकार। २१ पद। क्या अधिकार चलता है? कि आत्मा में जो अनादिकाल से विकार होता है, वह विकार आत्मा की पर्याय है। कर्म उसका कर्ता है, ऐसा नहीं है। जैन में बहुत ऐसी (मान्यता) चलती है न। कर्म करे, कर्म करे, कर्म करे। पण्डितजी! ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को रोके, ऐसा तो समझाते हैं गोम्मटसार में। दर्शनावरणीय कर्म दर्शन को रोके, वेदनीय कर्म अव्याबाध गुण को रोके, मोहनीय सम्यग्दर्शन और चारित्र को होने न दे। आता है या नहीं? वह तो निमित्त का कथन है। कोई द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य की पर्याय को उत्पन्न करे, उत्पाद तो अपने से हुआ और वह उत्पाद पर से माने, (मान्यता में) बहुत गड़बड़ है। वह कहते हैं, **क्रिया एक करता जुगल, ज्यौं न जिनागम मांहि...** एक क्रिया, विकारी परिणमन होना, वह क्रिया एक और जुगल कर्ता दो।

आत्मा भी विकारीभाव का कर्ता और कर्म भी कर्ता। दो कर्ता और क्रिया एक।

मुमुक्षु : दो कारण चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण एक ही है। दूसरा कारण तो आरोपित है। ऐई! समझ में आया? यह गड़बड़ बहुत है अभी। बड़े मानधात और वे आचार्य नाम धरावे तो भी वह कहते हैं कि नहीं। श्वेताम्बर में, इस सम्बन्धी चर्चा हुई थी। ...वाले जेठाभाई। नहीं, आये नहीं। वहाँ मुम्बई में रहते हैं? ....वाले को चर्चा हुई थी बहुत उसके गुरु के साथ। वह गुरु कहे कि कर्म आत्मा को विकार कराता है, ऐसा यदि मानो तो तुम्हारे साथ चर्चा करेंगे। बहुत चर्चा चली। कर्म आत्मा में विकार कराता है, ऐसा तुम मानो तो हम चर्चा कर सकेंगे। फिर वह कहे, हम नहीं मानते हैं। पहले मानते थे, यहाँ का परिचय हुआ.... ऐसा तो हम मानते नहीं तो हमें चर्चा करनी ही नहीं। आहाहा!

यहाँ वह कहते हैं, **क्रिया एक करता जुगल...** देखो, यह शरीर चलता है, यह वाणी निकलती है, वाणी। तो वाणी की क्रिया जड़ की है। तो क्रिया एक और कर्ता दो। जड़ भी करे और आत्मा भी उस वाणी को करे। **यौं न जिनागम मांहि...** वाणी... वाणी

की पर्याय जो होती है, वह क्रिया वाणी की–जड़ की है। वह जड़ की क्रिया जड़ में है। वह क्रिया एक और कर्ता दो। जड़ भी वाणी करे और आत्मा भी वाणी बोले। कर सके तो करे। बोले कौन? आत्मा के बिना (वाणी) बोली जाती है?

सेठ के साथ चर्चा हुई थी। यहाँ से सुनकर गये। 'महाराज! यह वाणी कौन बोलता है?' तब कहे, उत्तर यह दिया कि 'तेरा बाप बोलता है?' ऐसा उत्तर दिया। तुम बोलते हो। न बोलो तो न बोलो। बोले तो तुम बोलते हो। ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : मुर्दा थोड़े ही बोलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुर्दा ही बोलता है। ... जाते हैं उसमें परमाणु बदल जाते हैं। यह मुर्दा क्या है? और यह तो आहारवर्गणा है। शरीर है, (वह) तो आहारवर्गणा है। आहारवर्गणा से भाषावर्गणा की पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। तो फिर आत्मा से हो, ऐसी बात तो (है नहीं)। समझ में आया? उस लड़के को पूछा था कल, नहीं? कहा, यह भाषा क्या है और यह शरीर क्या है?

यह तो आहारवर्गणा है। आहारवर्गणा आती है न? आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, कार्मणवर्गणा, मनोवर्गणा, भाषावर्गणा। तो भाषावर्गणा है वह, आहारवर्गणा जो यह शरीर है, उससे भी (भाषा) नहीं होती। तो आत्मा से हो? यह होंठ चलते हैं तो भाषा होती है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। होंठ का चलना, वह क्रिया होंठ की, औदारिकशरीर की है। वह क्रिया शरीर करे और आत्मा भी उसको करे, बोलने में प्रेरणा करके, ऐसा तीन काल में होता नहीं। आहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

इसी प्रकार भाषा पर्याय भाषा करे और आत्मा (का) विकल्प है तो मैं ऐसा बोलूँ, ऐसा बोलूँ। तो उस क्रिया का कर्ता जड़ भी है और आत्मा भी है, जिनागम में ऐसा है नहीं। यह तो उसमें लिया है न, पहले आ गया है। १६वें पद में। एक परिणाम न कर्ता द्रव दोई। बनारसीदास। पहले आ गया है न? कर्ता-कर्म (द्वार) में आ गया है। एक परिणाम के कर्ता दो द्रव्य नहीं हैं। दो द्रव्य एक परिणाम को करते नहीं।

तो कहते हैं कि **यौं न जिनागम मांहि...** सेठ! बीड़ी सुलगाते हैं न, बीड़ी। बीड़ी का धन्धा है न बीड़ी का। तो कहते हैं कि बीड़ी की पर्याय बीड़ी से होती है। परन्तु

बीड़ी की पर्याय की क्रिया बीड़ी से होती है और अँगुली से भी हो, ऐसी एक क्रिया के दो कर्ता नहीं हो सकते। आहाहा! अँगुली से ऐसा होता है न, यह बीड़ी सुलगाते हैं न? आपटा, क्या कहलाता है तुम्हारे? चीमरु। दो है न। एक चीमरु की बड़ी होती है, एक आपटा की होती है। हमारे दुकान में उसका धन्धा था पहले। लाखों बीड़ियाँ। बड़ा धन्धा था। कुंवरजीभाई को... तो बीड़ी सुलगानेवाले के... यहाँ देश में सुलगाते थे, हों! देश में .... मिले न।

तो बीड़ी सुलगाते हैं ऐसे, तम्बाकू डालकर। डोरी बाँधते हैं न आखिर में। तो यह क्रिया है, वह परमाणु की क्रिया है। उस बीड़ी के परमाणु की वह क्रिया है। तो वह बीड़ी की क्रिया परमाणु भी करे और अँगुली भी करे, ऐसा जिनागम में है नहीं। एक क्रिया के दो करनेवाले तीन काल में हो नहीं सकते। आहाहा! नन्दकिशोरजी! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : वह दिखाई तो देती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ दिखती है? भान नहीं होता।

मुमुक्षु : कोर्ट में बोलना या नहीं बोलना, यह तो निश्चित करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बोले? आहाहा! हमारे लक्ष्मीचन्दभाई थे एक वहाँ। रामजीभाई के पुत्र... वे कहे, महाराज! यह सब कहते हैं, अब मुझे वहाँ मेहमान आवे तो चाय पिलाना या नहीं? चाय पिलाना या नहीं? समझ में आया? यह तो कहे, कुछ करते नहीं। परन्तु चाय पिलावे कौन? आहाहा! कठिन बात, भाई!

क्रिया एक करता जुगल, यौं न जिनागम मांहि... ऐसे राग की परिणति अपने से हो, वह क्रिया आत्मा की और कर्म का उदय है, वह विकार करावे, ऐसे एक क्रिया के दो करनेवाले जगत में जिनागम में नहीं हैं। अज्ञानी माने, वह मूढ़ जीव है। समझ में आया? आहाहा! आज तो एक दूसरा विचार आया सुबह। यह मुनिपने की बात, भाई! मुनिपने में कहा... भगवान ने कहा। २८ मूलगुण। यह तो कहाँ-कहाँ है, ऐसा विचार करते हुए उसमें ही निकला प्रवचनसार में। दूसरे .... पाठ नहीं। मूलगुण है, ऐसा पाठ है अष्टपाहुड़ में, परन्तु २८ नाम नहीं। नाम यहाँ है। हाँ, यही कहता हूँ। प्रवचनसार में ही है। अन्यत्र कहीं नहीं ऐसा। २८ मूलगुण जिनवर ने कहे हुए। आहाहा!

उसमें क्या है ? कि सन्त मुनि हैं तो उनको दिन में एक बार ही आहार—भोजन होता है और वह भी खड़े-खड़े लेते हैं। आहाहा! ऐसी क्रिया, लाओ देखो, अन्यत्र भी कहाँ है ? आहाहा! गजब शान्ति! यह तो वहाँ भी है। मूलगुण नहीं है। २८ मूलगुण तो... यह तो शास्त्र में मूल पाठ वहाँ है। वहाँ चरणानुयोग अधिकार। हाँ, उसमें है। आहा! एक बार भोजन, खड़े-खड़े (आहार)। गजब तो देखो! शरीर शिथिल हो जाये, खड़ा न रह सके तो आहार ले सके नहीं। समाप्त। आहाहा! और अवस्त्र—वस्त्ररहित। और स्थिति (शयन)। स्थिति शयन। भूमि में शयन करना। आहाहा! गजब बात है!

मुनि की दशा तो देखो! व्यवहार हों! निश्चय तो अन्तर आनन्द की अनुभव दशा है। समझ में आया ? ऐसा कथन तो सन्तों ने कहा। दिगम्बर मुनियों ने वास्तविक तत्त्व जगत के समक्ष प्रसिद्ध किया। जिनवरदेव ने ऐसा कहा है। उससे विरुद्ध कहे, वह जिनवरदेव का कथन नहीं। आहाहा! समझ में आया ? पहले जिसका श्रद्धा में ठिकाना नहीं, आहाहा! उसके आचरण की बात क्या करना ? 'दंसण भट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स नत्थिनिव्वाणं सिझंति चरिय भट्ठा दंसण भट्ठा न सिझंति।'

है न पाठ अष्टपाहुड़ में ? दर्शनपाहुड़। वह अभी अष्टपाहुड़ नया आया है न.... राजकोट आया है। .... मँगाया है न अष्टपाहुड़ ? 'दर्शन भट्ठा'। जिसकी श्रद्धा भ्रष्ट है, वह दंसण भट्ठा भट्ठा। ऐसे दो बार शब्द है। कि जिसकी दृष्टि विपरीत है, वह भ्रष्ट में भ्रष्ट है। चारित्र भ्रष्ट सिझंति, दंसण भट्ठा न सिझंति। चारित्र की कमी हो, चारित्र में विरुद्धता हो, अव्रतभाव आदि हो तो सिझंति। उसकी दृष्टि में ख्याल है कि मुझमें चारित्र नहीं है। और मैं चारित्र लूँगा, अन्दर में स्थिर होऊँगा, तब मुक्ति होगी। समझ में आया ? व्यवहार क्रिया में ऐसी चीज़ है। निश्चय में तो ऐसा (और) व्यवहार में खड़े-खड़े (आहार)। आहाहा! गजब बात! आहाहा! शरीर में कमजोरी आ जाये। धन्नालालजी आये नहीं ? बुखार आया ?

मुमुक्षु : बुखार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुखार।

साधु को बुखार आये। शरीर तो जड़ है न! क्या करना ? खड़े न रह सके तो आहार ले नहीं सकते। देखो। और एक ही बार भोजन, दो बार नहीं। यहाँ (वर्तमान में)

देखो तो, उसमें दो-दो बार, सवेरे चाय, दस बजे आहार और दोपहर को फिर भजिया-बजिया। भजिया समझे? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : पकौड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पकौड़ी। और शाम की खिचड़ी और कढ़ी। चार बार। आहाहा!

मुमुक्षु : अगर श्वेताम्बर साधु जिसमें.... आ जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं चलता। एक ऐसा कथन है थोड़ा, परन्तु यह .... है। .....समझ में आया? आहाहा! कैसा मार्ग!

कहते हैं, ऐसे सम्यक् अनुभवसहित जिसकी क्रिया अविकारी अन्दर वीतराग परिणमन हो और उसके व्यवहार में ऐसी चीज़ होती है। तब निश्चय और व्यवहार से सच्चा साधु कहने में आता है। भाई! आहाहा! यह मार्ग वीतराग का तो ऐसा ही है।

यहाँ कहते हैं, **अथवा करनी औरकी और करै यौं नांहि...** पहले ऐसा कहा कि एक पर्याय की क्रिया दो मिलकर नहीं (करते)। दूसरे में कहा कि **करनी औरकी और करै...** दूसरे की क्रिया दूसरा अकेला करे, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! मुर्दा क्यों नहीं बोलता? पण्डितजी! ऐसा प्रश्न बहुत आता है। अरे भगवान! अनन्त द्रव्य हैं तो अनन्त द्रव्य अनन्तरूप से रहकर अपनी पर्याय करते हैं। अनन्त हैं न? परमाणु अनन्त हैं, आत्मा अनन्त हैं। अनन्त कब रहेंगे? कि अपनी-अपनी पर्याय अपने से अनन्त (द्रव्य) भिन्न-भिन्न करते हों तो अनन्त रहेंगे। दो मिलकर करेंगे तो अनन्त रहेंगे ही नहीं। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! भगवान! तेरा मार्ग ऐसा है, उसका पहले निर्णय तो करे। सम्यक् श्रद्धा में उसको ला तो सही कि मार्ग ऐसा है। आहाहा! दुनिया के साथ मिलान? पूनमचन्दजी! कहाँ गया रतनलालजी? बैठे हैं? अच्छा। यह वहाँ है न अपने इन्दौर में।

करै और फल भोगवै, और बनै नहि एम। तीसरा बोल। कि करे दूसरा और फल भोगे दूसरा, ऐसा होता नहीं। आहाहा! क्या कहा? रागक्रिया जड़ की और भोगना पड़े जीव को, ऐसा होता नहीं। और राग करे जीव और जड़ को भोगना पड़े, ऐसा होता नहीं। कहते हैं न कि भाई! शरीर का धर्म। राग आदि हो तो बुखार होता है शरीर के धर्म में। परन्तु शरीर की पर्याय शरीर से होती है। बुखार, वह जड़ की पर्याय है, आत्मा की पर्याय है नहीं। आहाहा!

करै और फल भोगवै... दूसरा करे और फल दूसरा भोगे। **और बनै नहि एम, जो करता सौ भोगता, यहै जथावत जेम।** जो कोई पर्याय राग की, द्वेष की, मिथ्यात्व की जीव अपने से करता है तो वही भोगता है। दूसरे करते नहीं और दूसरे को भोगनी पड़ती नहीं। आहा! यह कहीं साधारण बात नहीं है। ऐसे मान ले साधारण भाषा। भिन्न-भिन्न तत्त्व की भिन्न-भिन्न पर्याय। आहा! उत्पाद होता है पर्याय का तो अपने से होता है। दो मिलकर उत्पन्न होता है? बड़ी चर्चा करते हैं वह रतनचन्दजी। बहुत गड़बड़ करते हैं। आहाहा! क्या करे बेचारा? उसे वह (बात) बैठी हो न। आहाहा!

भावकरम करतव्यता, स्वयंसिद्धि नहि होई। क्या कहते हैं? विकारी परिणाम मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का भाव, स्वयंसिद्ध कर्ता बिना हो, ऐसा भी नहीं है। दो करते नहीं। एक कर्ता का दूसरा भोक्ता नहीं। और किये बिना होता है विकार, ऐसा भी नहीं। क्योंकि जैसे घड़ा कार्य है, तो कर्ता परमाणु है। इसी प्रकार विकार परिणाम कार्य है। समझ में आया? तो कार्य है तो कर्ता बिना हो सकता नहीं। भावकर्म पुण्य और पाप के मलिन परिणाम। आहाहा! मिथ्यात्व का भाव—विपरीत श्रद्धा। कोई ऐसा कहे... वह आता है न। भाई, उस गाथा में है न यह सब। ज्ञानावरणीय से आत्मा में ज्ञान रुका है। वह गाथा है न ३२२। ज्ञानावरणीय हटे तो आत्मा में ज्ञान होता है और दर्शनावरणीय से आत्मा में निद्रा आती है। दर्शनावरणीय हट जाये तो निद्रा उड़ जाती है। तो कर्म से सब होता है। यह उसकी तो गाथा है। हलन-चलन भी क्रिया आत्मा की हो, वह देह की नहीं, वह भी कर्म से होती है। शुभाशुभ परिणाम कर्म से होता है। समझ में आया?

यह भोग की वासना भी... शास्त्र में ऐसा चला है। देखो, एक दलील आती है। शास्त्र में ऐसा चला है। पुरुषवेद के उदय से आत्मा में विकार होता है। देखो, उसमें आया है शास्त्र में। अरे, सुन तो सही, प्रभु! यह तो निमित्तपने का ज्ञान कराया है। बाकी वेद के उदय से विषय की वासना, वह जीव करे तो होती है। न करे तो दूसरा करावे, ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? क्या करें हमारे कर्म का ऐसा उदय आया कि हमें विकार हुआ। यह परस्त्री का लम्पटपने का भाव हुआ। पर से हुआ है? समझ में आया?

वह कहते हैं। **भावकरम करतव्यता,...** भावकर्म विकारी भाव दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा, काम-क्रोध-हिंसा-झूठ (आदि) भाव, ये **स्वयंसिद्ध नहि होइ।** ये कार्य

कर्ता के बिना होते हैं, ऐसा भी नहीं है। **जो जगकी करनी करै, जगवासी जिय सोइ।** परन्तु जग में जो भटकनेवाला प्राणी है, उसके ही होते हैं, लो। भावकर्म का भोक्ता जीव है। भावकर्म जीव की विभाव परिणति है, इसका कर्ता-भोक्ता पुद्गल नहीं है। आहाहा! जो जीव जग की क्रिया... गति में जाना, राग करना, शुभाशुभ करना। वह तो कहते हैं, देखो, उपघातकर्म की प्रकृति है, उससे आत्मा में उपघात और पराघात होता है। ऐसी उसकी दलील है। ऐसा है नहीं। आहा! पर से भेद है, ऐसी क्रिया भेदवाली... भेद का करनेवाला जो है, वह होता है। पर का पर से नहीं होता।

मुमुक्षु : भावकर्म स्वयं नहीं होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं नहीं होता। स्वयं नहीं होता का अर्थ कर्ता है, तो कौन है ? कि जीव। यह सिद्ध करना है। यह तो कहते हैं, **भावकरम करतव्यता स्वयंसिद्ध नहि होइ, जो जगकी...** तब करता कौन है भावकर्म ? ऐसा कहते हैं, **जो जगकी करनी करै, जगवासी जिय सोइ।** जो राग और द्वेष, गति और गमन और पर्याय करता है अपनी पर्याय में, वह राग-द्वेष का कर्ता है। वह तो जीव ही है, कर्म नहीं। आहाहा!

जिय करता जिय भोगता, भावकरम जियचाल... भगवान आत्मा अपने को भूलकर यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम करे, ऐसी चीज़ अनादि की है। कर्म से हुआ है, यह बात है नहीं। कि हमारे अन्तराय का उदय है अन्दर तो आत्मा का लाभ होता नहीं, ऐसा नहीं है। हमारी वीर्यशक्ति—प्रबल पुरुषार्थ हमारे में नहीं है, उसका कारण अन्तरायकर्म है। हम पुरुषार्थ नहीं कर सकते, यह अन्तराय कर्म के कारण से है। झूठ बात है, ऐसा कहते हैं। सेठ! आहाहा! तेरा पुरुषार्थ उल्टा तुझसे होता है, अन्तरायकर्म—फर्म से होता नहीं। आहाहा! जैन में कर्म घुस गया है। दूसरों में ईश्वर घुस गया। ईश्वर कर्ता... हम बहुत वर्ष पहले गढडा गये थे। स्वामी नारायण का था एक। हमको देखकर कहा, 'ईश्वर के बिना एक पान-पत्ता भी नहीं चलता।' ऐसा बोला था साधु। (संवत्) १९६८ की बात होगी १९६९। ७० से पहले।

हम बोटाद गये थे। मन्दिर है न स्वामीनारायण का मन्दिर। तो हमको देखकर... नरसिंहभाई था एक भगत। होंकार देते हैं न। कहे, 'ईश्वर के बिना एक पत्ता भी नहीं चलता।' ओहो! कहो, ऐसे अर्थ करे। ईश्वर कौन है ? पत्ता कौन ? परमाणु। पत्ता तो

परमाणु की पर्याय है। वह पर्याय ईश्वर के बिना चले नहीं तो वह ऐसा माने (और) यह कहे कि आत्मा के बिना चले नहीं। दोनों एक ही बात है। जैन होकर ऐसा माने कि अँगुली उसके उठाये उठती है।

वह कहते हैं न, एक दृष्टान्त दिया था। यह मोरपिच्छी पड़ी है, देखो! मोरपिच्छी उसके कारण से उठेगी? अँगुली होगी तो उठेगी। यह बात ही झूठी है। समझ में आया? यह मोरपिच्छी की लकड़ी। देखो, यहाँ नीचे है तो ऊँची होती है। तो वह क्रिया उसमें हुई तो अँगुली से हुई है। तीन काल में झूठ बात है। आहाहा! यह बात ही ऐसी है। यह तो जैनदर्शन—वस्तु की स्थिति ऐसी है। आगे कहेंगे। समझ में आया?

जिय करता जिय भोगता। मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विषयवासना, क्रोध-मान-माया-लोभ वह जीव करे तो कर्ता और भोगे तो वह। करे (भी) वह और भोगे (भी) वह। यहाँ तो साधारण बात है। समकिती की यहाँ बात नहीं। यह मिथ्यादृष्टि की बात है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में तो राग है ही नहीं। सम्यग्दृष्टि (को) तो अपने स्वभाव की दृष्टि है तो राग होता है, उसका ज्ञाता-दृष्टा रहता है, कर्ता होता नहीं। यहाँ तो समुच्चय अज्ञानी की बात है। आहाहा! अज्ञानी ऐसा कहे कि हमारा विकार, कर्म का इतना जोर आया अन्दर... क्योंकि अनुभाग—फल है न कर्म में। अनुभाग जोरदार आवे तो हमें जोरदार विकार करना पड़े।

मुमुक्षु : परन्तु जोरदार आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'आता है' वह निमित्त का कथन है। वह तो बात कहते हैं यहाँ। समझ में आया?

पुद्‌गल करै न भोगवै, दुविधा मिथ्याजाल,... देखो। आहाहा! दो मिलकर होता है दुविधा (वह) मिथ्याजाल है। **पुद्‌गल और दोनों का मानना मिथ्या जंजाल है।** बहुत कहते हैं वे, जयसेन आचार्य का दृष्टान्त देकर (कहते हैं)। पुत्र... माता-पिता दो होकर पुत्र होता है। अकेले से पुत्र होता है? पुत्र दोनों से नहीं होता है, अकेले होता है, सुन न! एक-एक रजकण और एक-एक आत्मा अपनी पर्याय से उत्पन्न होता है और जाता है। कहीं माँ-बाप है तो पुत्र उत्पन्न हुआ है? कौन कहता है ऐसा?

मुमुक्षु : आचार्य कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? आहाहा!

वह तो दूसरी बात है। वह तो राग करते हैं तो निमित्तकारण है, उसका ज्ञान कराने को दो करते हैं ऐसा कहा, (परन्तु) ऐसा है नहीं। व्यवहारकारण, वह कारण ही नहीं है यथार्थ में। बहुत गड़बड़ चली है। ऐसी चीज़ है, ऐसी मान्यता न हो, विपरीत मान्यता हो तो अज्ञान में ऐसी विपरीत मान्यता है, वह कब छूटे? कर्म विकार करावे तो कब छूटे? कर्म छूटे तब विकार छूटे। अपने आत्मा के अधिकारी की बात नहीं रही। समझ में आया?

क्योंकि कर्म विकार करावे, तो कर्म छूटे तो विकार छूटे। तो हमारे अधिकार की बात रही नहीं।

मुमुक्षु : तो कर्म की पूजा करावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : और अन्तराय (कर्म) की पूजा भी करते हैं। कर्मपूजा होती है। आहाहा! ऐसा है नहीं, भाई! आत्मा, आत्मा स्वरूप भगवान आत्मा। अपना निर्मलानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु, उसका भान नहीं, वह प्राणी विकार का कर्ता स्वयंसिद्ध अपने से होता है। दूसरा कोई करनेवाला है नहीं। श्वेताम्बर में तो वही बात मुख्य है। कर्म करावे... कर्म करावे... कर्म करावे। लेखन भी ऐसा आवे, कर्म ही कर्ता है। विकार करने का क्या भाव होता है आत्मा को? दुःखी होने का भाव हो? तो विकार कर्म ही कराता है। बात ही झूठी है।

मुमुक्षु : करे कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! करे, कर्ता होकर करे। कर्ता स्वतन्त्र होकर करे, उसका नाम कर्ता। विकारी परिणमन आत्मा स्वतन्त्रपने अज्ञानरूप से करता है, अज्ञानरूप से, हों! आहाहा!

तातैं भावित करमकौं, करै मिथ्याती जीव। देखो, स्पष्टीकरण दिया न! अज्ञानी की बात है न यहाँ। समकिती तो जानते हैं कि मैं आत्मा शुद्ध आनन्द हूँ। राग होता है, वह मेरी पर्याय का स्वरूप ही नहीं। वह तो पर भिन्न है, उसका मैं जाननेवाला हूँ। आहाहा! **तातैं भावित करमकौं, करै मिथ्याती जीव। सुख दुख आपद संपदा, भुंजै**

सहज सदीव। सुख-दु:ख और आपदा और आकुलता यह अज्ञानी आत्मा भोगता है। अज्ञानी विकार करे और अज्ञानी विकार का फल भोगे। ज्ञानी विकार करे नहीं और विकार का फल ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! चैतन्य भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप (ऐसा) जहाँ दृष्टि में स्वीकार हुआ, वहाँ ज्ञानी विकार का कर्ता नहीं और विकार का भोक्ता भी नहीं।

सप्तम नरक का नारकी ३३ सागर की स्थिति। गया था, तब मिथ्यात्व लेकर गया था, परन्तु बाद में उसको भी सम्यग्दर्शन होता है। असंख्य नारकी समकिती पड़े हैं वहाँ। इतनी वेदना, संयोग उसको (ज्ञानी) तो छूते ही नहीं, अज्ञानी भी छूते नहीं। अज्ञानी उस वेदन में एकाकार होकर राग-द्वेष का वेदन करते हैं, ज्ञानी (को) एक समय भी द्वेष का वेदन नहीं है। आहाहा! वह आया न नारकीकृत?

मुमुक्षु : बाहर नारकीकृत दु:ख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर सुख की गटागटी। अरे! नारकी को तो चौथा गुणस्थान ही है। वहाँ तो पंचम गुणस्थान भी नहीं। तो भी कहते हैं कि नारकी, बाहर से दु:ख भोगते हैं, ऐसा देखने में आता है, परन्तु समकिती (को) तो अन्दर सुख की गटागटी है। आहाहा!

क्षण-क्षण में आस्रव घटता जाता है। विधि कर्म घटती जाती है। आता है न वह? चेतनमूर्ति की रीति मेरे कर्म की कटाकटी। वह सेठ आया था तब बोला था हुकमचन्दजी। हुकमचन्दजी आये थे न पहले। (संवत्) २००५ के वर्ष। २२ वर्ष हुए। वह पहले बोले थे। उसका अर्थ समझे नहीं। यह आत्मा राग का कर्ता ही नहीं। आत्मा आत्मापने जब हुआ, आहाहा! तो विकार का कर्ता भी नहीं और विकार का भोक्ता भी नहीं। धर्मी तो निर्दोष आनन्द का भोक्ता और आनन्द का कर्ता है। समझ में आया? छह खण्ड के राज में रहते थे भरत चक्रवर्ती... आता है या नहीं? 'भरत चक्रवर्ती घर में वैरागी।' छह खण्ड हैं, ९६ हजार स्त्रियाँ हैं। अरे! हमारे कुछ है नहीं। हम जहाँ हैं, वहाँ वह (संयोग) नहीं और वह है, वहाँ हम नहीं। हमारा चैतन्यधाम भगवान पूर्णानन्द का नाथ वह हमारी चीज़ है, उसमें हम हैं। हम गति में भी नहीं। आहाहा!

गति तो उदयभाव है। उदयभाव का कर्ता ज्ञानी है नहीं। बापू! उदय से विरक्त होना बड़ी मिथ्यात्व की विरति है। समझ में आया? राग से विरक्त होना, वही बड़ी विरति है पहली। आहाहा! पीछे अविरति से विरक्त होना, वह चारित्र है। परन्तु पहली चीज़ ही नहीं, वहाँ चारित्र कहाँ से आया? शास्त्र तो कहते हैं, दर्शनसार में कि जिसको सम्यग्दर्शन का भान ही नहीं, दर्शन से भ्रष्ट है, यह बात सुनकर ज्ञानी वन्दन नहीं करे उसे। समझ में आया? आहाहा! बहुत कठिन बात है। समाज के साथ रहना और अनमेल रहना—भिन्न रहना। कहते हैं, **करै मिथ्याती जीव। सुख दुख आपद संपदा भुंजै सहज सदीव।** अज्ञानी तो दु:ख का भोक्ता सदैव है। ज्ञानी दु:ख का और आकुलता का भोक्ता नहीं। आहाहा! अब १२वाँ कलश। नीचे कलश है।

कर्मैव प्रवितर्क्य कर्तृ हतकै: क्षिप्त्वात्मन: कर्तृतां,
कर्तात्मैष कथञ्चिदित्यचलिता कैश्चिच्छ्रुति: कोपिता।
तेषामुद्धतमोहमुद्रितधियां बोधस्य संशुद्धये,
स्याद्वादप्रतिबन्धलब्धविजया वस्तुस्थिति: स्तूयते ।।१२।।

आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं कि) वस्तु की स्थिति है, ऐसा हम कहते हैं। यह किसी के घर की चीज़ नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। **कर्म का कर्ता-भोक्ता बाबत एकान्त पक्ष पर विचार**। पद है न उसका।

★ ★ ★

काव्य - २६

कर्म के कर्ता–भोगता बावत एकांत पक्ष पर विचार

(सवैया इकतीसा)

केई मूढ़ विकल एकंत पच्छ गहैं कहैं,
आतमा अकरतार पूरन परम है।
तिन्हिसौं जु कोऊ कहै जीव करता है तासौं,
फेरि कहैं करमकौ करता करम है।।

ऐसै मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव,
जिन्हिकैं हिए अनादि मोहकौ भरम है।
तिन्हिकौं मिथ्यात दूर करिबैकौं कहैं गुरु,
स्यादवाद परवांन आतम धरम है।।२६।।

शब्दार्थ:-विकल=दु:खी। एकान्त पक्ष=पदार्थ के एक धर्म को उसका स्वरूप मानने का हठ। ब्रह्मघाती=अपने जीव का अहित करनेवाला।

अर्थ:-अज्ञान से दुखी अनेक एकान्तवादी कहते हैं कि आत्मा कर्म का कर्ता नहीं है, वह पूर्ण परमात्मा है। और उनसे कोई कहे कि कर्मों का कर्ता जीव है, तो वे एकान्तपक्षी[1] कहते हैं कि कर्म का कर्ता कर्म ही है। ऐसे मिथ्यात्व में पगे हुए मिथ्यात्वी जीव आत्मा के घातक हैं, उनके हृदय में अनादि काल से मोहकर्म जनित भूल भरी हुई है। उनका मिथ्यात्व दूर करने के लिये श्रीगुरु ने स्याद्वादरूप आत्मा का स्वरूप वर्णन किया है।।२६।।

काव्य-२६ पर प्रवचन

केई मूढ़ विकल एकंत पच्छ गहैं कहैं,
आतमा अकरतार पूरन परम है।
तिन्हिसौं जु कोऊ कहै जीव करता है तासौं,
फेरि कहैं करमकौ करता करम है।।
ऐसै मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव,
जिन्हिकैं हिए अनादि मोहकौ भरम है।
तिन्हिकौं मिथ्यात दूर करिबैकौं कहैं गुरु,
स्यादवाद परवांन आतम धरम है।।२६।।

कहो, अमरचन्दभाई! यह सब ऐसा सुने और करे उल्टा।

मुमुक्षु : यह भी क्या करे? अब सच्ची बात....

१. सांख्यमती आदि।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! ऐसी बात थी ही नहीं। परन्तु अब पुराने वृद्ध व्यक्ति हैं न! आहाहा! यह बात थी ही नहीं भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तुलना कर सकते हैं, तुलना करे तो कर सकते हैं। आहाहा! **केई मूढ़ विकल एकंत पच्छ गहैं...** अज्ञान से दु:खी अनेक एकान्तवादी कहते हैं। देखो, एकान्तवादी है या नहीं जगत में? या सब सम्यग्दृष्टि हैं? किसी को मिथ्यादृष्टि कहना, वही मिथ्या दृष्टि है, ऐसा (वे) कहते हैं। आचार्य तो कहते हैं कि ऐसा राग का कर्ता माननेवाला जैन का नाम धरावे, वह भी मिथ्यादृष्टि है। कहनेवाला मिथ्यादृष्टि है? आहा! सत्य को सत्य कहना, असत्य को असत्य कहना, असत्य की असत्य मान्यता बनाना और सत्य की सत्य मान्यता, वह तो यथार्थ है। समझ में आया? समभाव उसको कहते हैं कि सब समान है। यह तो विषमभाव है।

श्रीमद् ने व्याख्या की है। श्रीमद् राजचन्द्र। 'आत्मज्ञान समदर्शिता।' समदर्शिता की व्याख्या की है। अब समदर्शिता की ऐसी व्याख्या नहीं है कि कुगुरु को सुगुरु मान ले, कुधर्म को सुधर्म मान ले, कुशास्त्र को सुशास्त्र मान ले और सुशास्त्र को कुशास्त्र माने। ऐसा समभाव है नहीं। ज्ञानी कुशास्त्र को कुशास्त्र कहकर उत्थापते हैं; कुधर्म को कुधर्म कहकर उत्थापते हैं और कुगुरु को कुगुरु कहकर बतलाते हैं और उत्थापते हैं। समझ में आया? सबको प्रसन्न रखना और लोकेषणा में सब समान हैं। (ऐसी मान्यतावाला) मूढ़ है, वीतरागमार्ग का परम शत्रु है। ऐसा कहते हैं। मित्रसेनजी! बराबर है? तब तो विषमभाव हो जायेगा। किसी को मिथ्यात्वी कहेगा तो विषमभाव हो जायेगा। जैसा है ऐसा जानने में विषम (भाव) कहाँ आया? जैसा है, ऐसा जानना, उसका नाम समभाव है। आहाहा!

केई मूढ़ विकल एकंत पच्छ गहैं कहै, आतमा अकरतार पूरन परम है। यह तो परमात्मा है। यह तो पूर्ण परमात्मा है। और विकार का कर्ता–फर्ता कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है न, लिखा है। देखो! 'पूर्ण परमात्मा है' लिया न। **पूरन परम है।** परमात्मा आनन्दघन, यह और विकार का कर्ता कहाँ से आया? विकार का कर्ता आत्मा नहीं, ऐसा अज्ञानी मानते हैं। **तिन्हिसौं जु कोऊ कहै जीव करता है तासौं,**

फेरि कहैं करमकौ करता करम है। विकार का कर्ता तो कर्म ही है। समझ में आया? जीव नहीं।

उनमें कोई कहे कि कर्मों का कर्ता जीव है तो एकान्तपक्षी कहते हैं। (एकान्तपक्षी अर्थात्) सांख्यमति आदि। सांख्यमति आदि अर्थात् जैन में ही सांख्यमति हैं। सांख्यमति और जैन में अन्तर क्या आया? राग का अकर्ता मानना अज्ञानपने भी और कहना कि हमारा आत्मा तो शुद्ध है, शुद्ध है, शुद्ध है। कहाँ से शुद्ध आया? सम्यग्दर्शन बिना शुद्ध आया कहाँ से? समझ में आया? हम पूर्ण परमात्मा हैं। जड़ का धर्म जड़ करे। जड़, जड़ का धर्म करे। राग जड़ का है तो जड़ करे। हमारे क्या आया? मूढ़ है। आहाहा! **ऐसै मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती...** देखो। **कर्म का कर्ता कर्म ही है। ऐसे मिथ्यात्व में पगे हुए मिथ्यात्वी जीव आत्मा के घातक हैं।** गुनाह करे अपने से और डाले पर के ऊपर। अपराध अपने से हो और डाले पर के ऊपर। ब्रह्मघाति है। अज्ञानरूप से भी यथार्थ श्रद्धा की खबर नहीं।

जिन्हिकैं हिए अनादि मोहकौ भरम है। अनादि मिथ्यात्व भ्रमणा है तुझे कि मैं परमात्मा हूँ (तो) मुझे राग कहाँ आया? मुझमें अशुद्धता कहाँ है? पर्याय में भी अशुद्धता नहीं, पर्याय भी मेरी शुद्ध है। कहाँ से आयी पर्याय शुद्ध? शुद्ध हो तो आनन्द का स्वाद आना चाहिए। समझ में आया? और द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, तो पर्याय शुद्ध है। पर्याय अशुद्धगुण से आयी? ऐसा प्रश्न बहुत चलता है। चिदानन्दजी के साथ छह दिन चला था। चिदानन्दस्वरूप। सुनो, धीरे-धीरे सुनो। बाद में मिले... आहा! द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध। अभी कोई कहता था, (फिर) पर्याय में विकार कहाँ से आया? द्रव्य शुद्ध और गुण भी शुद्ध। कोई कहता था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म जड़ की पर्याय यहाँ आ गयी? यह तो चेतनपर्याय है। अब कहेंगे आगे। आहा! समझ में आया?

यह आ गया न, '**जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुगं ज्ञाता नः**'। पढ़े वह भूले। ज्ञाता हो वह भूले। जड़ भूले? जड़ में क्या आया? विकार की भूल तो उसकी है। अपने से

विकार करते हैं। जब तक पर्यायबुद्धि है, एक अंश और राग को भी अपना मानते हैं, तब तक विकार का कर्ता अज्ञानी ही है। दृष्टि पलटकर ज्ञायकभाव 'मैं हूँ'—ऐसा अनुभव हो, तब अनुभूति का करनेवाला राग का कर्ता नहीं।

जिन्हिकैं हिए अनादि मोहकौ भरम है। तिन्हिकौं मिथ्यात दूर करिबैकौं कहैं गुरु,... कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अमृतचन्द्र आचार्य (कहते हैं), ऐसी भ्रमणा को दूर करने को **स्यादवाद परवांन आतम धरम है।** समझ में आया? उसमें तो बहुत लिया है श्लोक में। विकार का कर्ता कर्म कहा, तो भगवान ने तो कर्ता कहा है। तो कहे, आत्मा का कर्ता आत्मा, ऐसा लिया है न? मूल पाठ में। जब तुम ऐसा कहो कि विकार का कर्ता कर्म है और विकार मैल है। मैल का कर्ता आत्मा कैसे हो? आत्मा तो निर्मल चिदानन्द है। तो फिर भगवान ने ऐसा कहा न कि आत्मा कर्ता है? कर्ता है बराबर है। किसका? आत्मा का कर्ता आत्मा। विकार का कर्ता कर्म।

गाथा में है। तब कहा कि आत्मा का कर्ता आत्मा (तो) किसका आत्मा? वस्तु कर्ता होती है? असंख्य प्रदेश में कर्तापना होता है? वह तो असंख्यप्रदेशी है। वह तो ज्ञायकभाव त्रिकाल है। वह भाव का कर्ता... आत्मा आत्मा का कर्ता। कथंचित् कर्ता लगाना, ऐसा लगाना है तुझे? पाठ गाथा में है। ऐसा है नहीं। कथंचित् कर्ता जो भगवान ने कहा है, वह अज्ञानभाव से विकार का कर्ता जीव, वह कहा है। विकार का कर्ता कर्म के ऊपर डाल दे और आत्मा आत्मा का कर्ता। किसका कर्ता? नहीं है आत्मा? (वह तो) ध्रुव है। ध्रुव का कर्ता कौन बने? और असंख्य प्रदेशी है। असंख्य प्रदेश किसे बनाना है? वह तो असंख्यप्रदेशी ध्रुव त्रिकाल है। असंख्य प्रदेश बनाना है? और कार्य तो है। तो वह कार्य, अज्ञानी का विकार कार्य है। आत्मा कर्ता। विकार का कर्ता है, वह आत्मा का कर्ता है। आत्मा का कर्ता आत्मा है, ऐसा बनता नहीं। झूठ है। उसमें बहुत लिया है।

वहाँ तो ऐसा लिया है कि परन्तु यह दिखता है न? कोई कहते हैं कि दिखता है न विकार? भाई! तुझे खबर नहीं। तू चैतन्यमूर्ति भगवान है। जब वह विकार आता है, वह ज्ञेय है। उस ज्ञेय का भेदज्ञान नहीं, उसे राग का कर्ता भासित होता है। समझ में आया? वह श्लोक में है मूल पाठ में। मूल पाठ है न। यह तो बहुत संक्षिप्त-संक्षिप्त है।

सर्वविशुद्ध अधिकार। तब क्या करना परन्तु अब? विकार तो है दिखता है। तुम कहते हो, (भाव) कर्म का कर्ता कर्म कर्ता नहीं। आत्मा तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। क्या करना?

भैया! तेरी चीज़ में जो विकार दिखते हैं, वे वास्तव में तो ज्ञेय हैं। परन्तु ज्ञेय के ज्ञान के काल में, राग मैं हूँ—ऐसी बुद्धि होती है, (उसका) अज्ञानी कर्ता होता है। परन्तु भिन्न करने के काल में (मैं) राग नहीं, मैं तो उसका जाननेवाला भिन्न हूँ। ऐसी दृष्टि हो तो राग का कर्ता आत्मा है नहीं। समझ में आया? मूल श्लोक में है। देखना है? कितना आया? ..... हाँ, आया। मुनि कर्म को करते हैं... यह तो आत्मा सामान्य अपेक्षा से तो ऐसा है। यह देखो। हिन्दी है? हिन्दी नहीं न? ज्ञायकभाव सामान्य अपेक्षा से ज्ञानस्वभाव से अवस्थित होने पर भी कर्म से उत्पन्न मिथ्यात्व आदि भावों का ज्ञान समय... है? इसमें ५०० पृष्ठ है गुजराती में। यह गाथा है न गाथा? ३४४ गाथा की (टीका) के बाद। ३४४ गाथा की टीका मूल। टीका है। समयसार, गाथा ३४४ पीछे टीका। ३४४ की टीका। गाथा है ३४४। ३३२ से ३४४, उसकी टीका। उस टीका में सर्वविशुद्ध कहा। यह गाथा है न!

जीवस्स जीवरुवं वित्थरदो जाण लोगमेत्तं खु। (३४३)। वह कहते हैं कि **एसो मिच्छसहावो तुम्हं।** (३४१)। वह मूढ़। **णिच्चोऽसंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि। ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहिओ य कादुं जे।** (३४२)। आत्मा आत्मा को करता है, ऐसा क्या कहते हैं परन्तु?

जीवस्स जीवरुवं वित्थरदो जाण लोगमेत्तं खु।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ य कहं कुणदि दव्वं॥३४३॥

अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अच्छदे त्ति मदं।
तम्हा ण वि अप्पा अप्पव तु सयमप्पणो कुणदि॥३४४॥

आत्मा का कर्ता आत्मा, आत्मा के गुण का कर्ता आत्मा—यह बात होती नहीं। तो क्या होता है? वह टीका में से स्पष्टीकरण लिया है। सामान्य अपेक्षा से ज्ञानस्वभाव से अवस्थित है वह तो। परन्तु विशेष दशा के काल में... आया? नहीं आया। क्या है वह? .... हिन्दी है? यह यहाँ ४७२। है? ज्ञायकभाव सामान्य अपेक्षा से... है? थोड़ी सूक्ष्म बात है। क्या? टीका में से यह अर्थ निकाला।

'ज्ञायकभाव सामान्य अपेक्षा से ज्ञानस्वभाव...' ध्रुवस्वभाव ऐसे स्थित है। 'कर्म से उत्पन्न मिथ्यात्वादि भावों के ज्ञान के समय...' अब विशेष की बात करते हैं। जब ज्ञान, राग का ज्ञान करना है उस समय... 'अनादि काल से ज्ञेय-ज्ञान के भेदज्ञान से शून्य होने के कारण...' राग ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ, ऐसे भेदज्ञान की शून्यता है। आहाहा! यह टीका है अमृतचन्द्राचार्य की। समझ में आया? वह टीका में है। '**ज्ञायकस्य भावस्य सामान्यापेक्षया ज्ञानस्वभावावस्थितत्वेऽपि कर्मजानां मिथ्यात्वादिभावानां ज्ञानसमयेऽनादि ज्ञेयज्ञान भेदविज्ञानशून्यत्वात्।**'

ज्ञायकस्वभाव एकरूप होने पर भी, विशेष की अपेक्षा से जब राग आदि आता है, वह ज्ञेय है और मैं ज्ञान हूँ—ऐसा दो के भेदज्ञान की शून्यता के काल में राग का कर्ता मैं हूँ, ऐसा अज्ञानभाव में भासित होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है थोड़ी। टीका में तो बहुत लिया है अमृतचन्द्राचार्य ने। यह तो कलश... आहाहा! 'ज्ञेय-ज्ञान के भेदज्ञान से शून्य होने के कारण पर को आत्मारूप से जानता हुआ...' देखो, है? राग को अपना मानते हुए, यह ज्ञायकभाव 'विशेष अज्ञानरूप ज्ञानपरिणाम को करता हुआ...' ज्ञानपरिणाम जो राग से भिन्न होना चाहिए, ऐसा न जानकर रागी मैं हूँ—ऐसा ज्ञानपरिणाम अज्ञानरूप करता है। ज्ञान परिणाम अज्ञानरूप करता है। 'अज्ञानरूप ज्ञानपरिणाम को करता होने से...' है? (अज्ञानरूप ऐसा जो ज्ञान का परिणाम, उसे करता हुआ कर्ता होने से) उसे कर्तापना सम्मत करना।' थोड़ी सूक्ष्म बात है।

कर्ता सिद्ध करना है न। वह कहते हैं या नहीं, विकार का कर्ता कर्म है। तब यह कहते हैं कि भाई! कर्ता भगवान ने कहा न? तो हम कहते हैं कि आत्मा, आत्मा के असंख्यप्रदेश हैं, उसका कर्ता। परन्तु नित्य में कर्ता (पना) होता नहीं। कर्तापना तो पर्याय में—अनित्य में हो। तुम कहो कि आत्मा नित्य का कर्ता, आत्मा का कर्ता आत्मा, नित्य का कर्ता। नित्य में कर्तापना होता ही नहीं। तब कहा कि कर्म—विकार तो होता है तो क्या करना हमें? विकार कर्म के ऊपर न डाले तो क्या करना? ऐसा कहते हैं। तो उसका उत्तर देते हैं। सुन तो सही!

विकार के परिणाम के ज्ञानसमय में, ज्ञेय और ज्ञान दोनों भिन्न है—ऐसे भेदज्ञान की शून्यता के कारण यह राग 'मैं हूँ' ऐसा परिणमन अज्ञानरूप से करते हैं। पण्डितजी!

समयसार में तो हजारों स्पष्टीकरण कर दिये हैं। ओहोहो! अद्वैतचक्षु अजोड़चक्षु है भरतक्षेत्र में! परन्तु लोगों को अभ्यास (नहीं होता)। समयसार, यह तो ऊँची चीज़ है, यह तो मुनि के जानने की चीज़ है (ऐसा लोग कहते हैं)। आहाहा! यहाँ तो जिसको मिथ्यात्व नाश करना है, उसके जानने की चीज़ है। आहाहा!

वह रात्रि को प्रश्न उठा था न कि अपरमभाव है, इसलिए निश्चय का उपदेश नहीं चाहिए, व्यवहार का उपदेश चाहिए। परन्तु ऐसा अर्थ ही वहाँ नहीं। परमभाव में स्थित जो आनन्द में रहते हैं, उनको अल्पज्ञता और राग है ही नहीं। परन्तु जिसको अल्पज्ञता और राग है, उसको जानना, (उसे) व्यवहार का उपदेश कहा जाता है। अपरम में जो स्थित... ऐसा कि हमें तो अभी निचली दशा में हैं तो हमें ऐसा निश्चय का उपदेश क्यों करते हो? उसे व्यवहार कहो। ऐसा अर्थ है नहीं। इस गाथा का ऐसा अर्थ है नहीं। टीकाकार ने स्पष्टीकर कर दिया है। '**तदात्वे**' समझे न! समयसार है न? लो, १२वीं गाथा। देखो न, यहाँ तो सब तैयार है न। यह पाठ टीका ऐसी है, देखो।

यह १२ गाथा की टीका है। '**विचित्रवर्णमालिकास्थानीय-त्वात्परिज्ञायमान-स्तदात्वे प्रयोजनवान्**' संस्कृत है। है उसमें? हाँ, यह। अन्तिम गाथा के अन्त में है। '**जइ जिणमयं पवज्जह ता**' के ऊपर है '**विचित्रवर्णमालिकास्थान**'। समकिती को भी पर्याय में राग आदि जब होता है तो निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय तो ध्रुव है। परन्तु अब पर्याय में (अपूर्णता) है, इसका क्या करना? तो पर्याय में जानना, है—ऐसा जानना, उसका नाम व्यवहार है। है शब्द? '**तदात्वे परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान्।**' यह आदरणीय है और करनेयोग्य है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। समझ में आया? उस काल में... यह जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी।

अपना आत्मा ध्रुव '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' ११वीं गाथा में आया है। '**भूयत्थं**' भूतार्थ त्रिकाल सत्यार्थ प्रभु की जहाँ दृष्टि हुई तो निश्चय तो यह है। तो कहते हैं कि अब व्यवहार रहता है या नहीं? पर्याय में व्यवहार है या नहीं? या निश्चय पूर्ण हो गया? तो कहते हैं कि उसकी पर्याय में कमजोरी है, तब तक राग है, शुद्धि की पर्याय अल्प है। यह शुद्धि (और) राग की एक-एक पर्याय... अनेक पर्याय मिलकर जानना, वह व्यवहार प्रयोजनवान है। समझ में आया? संस्कृत में है। टीका में है, अर्थ में है।

'उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है।' भाषा तो ऐसी है कि वर्तमान काल में जाना हुआ, उस काल में प्रयोजनवान है। ऐसा पाठ है। सम्यग्दृष्टि—धर्मी को भूतार्थ त्रिकाल की दृष्टि हुई, तो अब पर्याय में पूर्णता हुई नहीं, उसको क्या कहना, ऐसा कहते हैं।

तो कहते हैं कि पर्याय में शुद्धता की अपूर्णता है (अर्थात्) अशुद्धता है, वह उस-उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदरणीय और करनेयोग्य है, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! क्या करे? अर्थ करने में ही बड़ी भूल की है। अपनी दृष्टि प्रमाण अर्थ करे और (कहे कि) शास्त्र ऐसा कहता है, शास्त्र ऐसा कहता है। और '**जई जिणमयं पवज्जह ता**' यह है। कि व्यवहार है। उसे न माने तो पर्याय मानते नहीं। निश्चय है, सत्य परिपूर्ण अखण्ड है, ऐसा न माने तो निश्चय तत्त्व का नाश हो जाता है। और पर्याय है, व्यवहार है, यह न माने तो व्यवहार तीर्थ का नाश होता है। क्योंकि तीर्थ अर्थात् चौथा, पाँचवाँ, छठवें गुणस्थान की पर्याय वही तीर्थ है। पर्याय है बस इतना, आदरणीय नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : जानना प्रयोजनवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने। बस जानना (कि) 'है'।

मुमुक्षु : जानना प्रयोजन, फिर आदरणीय प्रयोजन हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदरणीय प्रयोजन... भाषा ऐसी है न!

मुमुक्षु : .... कर्म का कर्ता होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो कहते हैं न। यह बात तो चलती है।

मुमुक्षु : निश्चय का अवलम्बन करनेवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का कर्ता नहीं होता। वही तो बात चलती है न। बात क्या चलती है? हाँ, वह तो चलती है। अज्ञान है, तब तक राग का कर्ता है, राग का कर्ता है, यह तो बात चलती है। कितनी बार कहा? अभी भी कहा। १० बार, २० बार यह तो हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग। राग करते हैं न अज्ञानभाव से। वह तो कहा न पहले।

क्या कहा ? घण्टा तो हुआ—एक घण्टा तो हुआ, यह बात करते-करते। तभी पकड़ी नहीं। जब तक अज्ञानी... यहाँ कहा न! मिथ्यात्व है तो मिथ्यात्वी जीव करे। और यह तो अभी अर्थ किया, कितनी बार आया। अपना स्वरूप का—राग से भिन्न का भान नहीं, तब तक अज्ञानी रागरूपी कर्म का कर्ता होता है। राग छूटकर भेदज्ञान हुआ तो कर्ता छूट जाता है। बहुत बार कहा। परन्तु वह अन्दर... समझ में आया ? लो। **तिन्हिकौं मिथ्यात दूर करिबैकौं कहै गुरु, स्यादवाद परवांन आतम धरम है।** अज्ञानपने विकार करता है, ज्ञान हुआ तो विकार करता नहीं, ऐसा स्याद्वाद है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२४, श्रावण शुक्ल १२, मंगलवार, दिनांक ०३-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-२७ से ३४

यह समयसार नाटक। २६वाँ पद हो गया। कर्ता-कर्म का अधिकार है। बहुत विस्तार से स्पष्ट करते हैं। अनादि से... पहले आया न? 'अनादि मोह को भ्रम है।' ऊपर आया है। वास्तविक आत्मा आनन्द और ज्ञान स्वभाव है। कहते हैं कि स्वभाव—स्वरूप देखने से भावकर्म का कर्ता आत्मा है नहीं। द्रव्यकर्म की तो यहाँ बात है ही नहीं। कर्म... कर्म शब्द आया है न। द्रव्यकर्म की तो बात है नहीं। जड़ का कर्ता आत्मा व्यवहार से है, ऐसा (है) ही नहीं। असद्भूतव्यवहारनय से कहने में आता है, परन्तु झूठी दृष्टि से कहने में आता है। परन्तु यहाँ कोई ऐसा कहे कि आत्मा तो निर्मल शुद्ध चैतन्य है। उसमें मैल कहाँ रहा? मैल है तो निर्मलता रहती नहीं। कहते हैं कि मैल है, वह पर्याय में है। द्रव्य और गुण तो निर्मलानन्द शुद्ध चैतन्य है। जब तक निर्मल आत्मा का स्वभाव दृष्टि में आया नहीं, तब तक वह दया-दान-व्रत-भक्ति का परिणाम जो भावकर्म अरूपी विकार है, (उसका) वह कर्ता मानता है। समझ में आया? यह बारीक बात—सूक्ष्म बात है।

शरीर, वाणी, मन, वह तो जड़ है, उसका तो आत्मा कुछ कर सकता नहीं। क्योंकि परपदार्थ कोई निकम्मा नहीं। अपनी पर्याय से रहित कोई पदार्थ नहीं होता। प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक समय में अपनी पर्यायरूपी कार्य करता है। उसमें दूसरा करे, ऐसा होता नहीं। मात्र उसमें यह विकल्प जो उठते हैं दया-दान-व्रत-भक्ति-काम-क्रोधादि, जब तक उसकी दृष्टि पर के ऊपर है—बहिर्बुद्धि है, तब तक यह राग-विकार का वह कर्ता है अज्ञानभाव से। सूक्ष्म भाव है। अन्तर में यह बात लेना बड़ा गहन विषय है, बड़ा पुरुषार्थ है अन्दर। कहते हैं, **स्याद्वाद में आत्मा का स्वरूप**। अज्ञानी ऐसा माने कि आत्मा तो परमात्मा ही है, स्वरूप शुद्ध है, उसमें अशुद्धता कहाँ से आयी? और अशुद्धता हो तो उसका कर्ता कैसे हो आत्मा? उसको यहाँ कहते हैं। २७ (वाँ काव्य)

★ ★ ★

काव्य - २७

स्याद्वाद में आत्मा का स्वरूप

(दोहा)

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान।
नहि करता नहि भोगता, निहचै सम्यकवान।।२७।।

अर्थः-मिथ्यात्व में पगा हुआ अज्ञानी जीव कर्म का कर्ता-भोगता है, निश्चय का अवलम्बन लेनेवाला सम्यक्त्वी कर्म का न कर्ता है न भोगता है।।२७।।

काव्य-२७ पर प्रवचन

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान।
नहि करता नहि भोगता, निहचै सम्यकवान।।२७।।

चेतन करता भोगता मिथ्या मगन अजान... मिथ्यात्व में पगा हुआ अज्ञानी जीव। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य और आनन्द का पूर-नूर है—ऐसी दृष्टि अनादि से है नहीं। उस कारण मिथ्यादृष्टि—अज्ञानी अपनी पर्याय में पर्यायबुद्धि होने के कारण, शुभ-अशुभ विकल्प का चेतन कर्ता और भोक्ता (होता है)। यह राग का कर्ता और हर्ष-शोक का भोक्ता, **मिथ्या मगन अजान...** जिसको, आत्मा चैतन्य आनन्द है ऐसा अनजान है, ज्ञान नहीं, भान नहीं—वह अज्ञानी पुण्य-पाप और विकार का कर्ता-भोक्ता होता है। आहाहा! समझ में आया?

नहि करता नहि भोगता, निहचै सम्यकवान... अपना आत्मा रागबुद्धि छोड़कर स्वभावबुद्धि—सम्यग्ज्ञान हुआ। 'मैं तो आत्मा हूँ। आत्मा तो विकाररहित है और निर्विकार चैतन्य का पिण्ड है'—ऐसी बुद्धि—सम्यग्ज्ञान हुआ, **नहि करता नहि भोगता...** वह पुण्य-पाप के विकार और हर्ष-शोक का कर्ता भी नहीं, भोक्ता भी नहीं। आहाहा! देखो। समझ में आया?

जड़ का, कर्म का कर्ता, वह तो बात यहाँ है ही नहीं। शरीर आदि का कर्ता और देश, परिवार का काम करे, यह व्यापार-धन्धा व्यवस्थित करे। करते नहीं? पदमचन्दजी!

होशियार व्यक्ति हो तो बराबर व्यापार-धन्धे में... वह बात तो कल्पना, अज्ञानी की कल्पना है। परपदार्थ परमाणु उसमें भी कर्ता-कर्म (आदि) अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। एक परमाणु में भी कर्ता-कर्म-करण-सम्प्रदाय-अपादान-अधिकरण—ऐसी शक्तियाँ गुणरूप से एक परमाणु—पॉईन्ट में पड़ी हैं। तो वह परमाणु कर्ता होकर, उसकी पर्याय का—कर्म का कर्ता वह होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जिसे खबर न पड़े वह क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर की क्या बात है? (जिसे) खबर हो, वह तो चेतन एक ही तत्त्व है, तब दूसरा तत्त्व सिद्ध होता ही नहीं। पाँच तो जड़ हैं। अपना अस्तित्व रखते हैं और परिणमन है। बस, उसमें खबर की क्या बात है? समझ में आया?

परमाणु आदि अपना अस्तित्व... पाँच द्रव्य हैं न जड़? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल और पुद्गल—यह अचेतन है, जड़ है, उसके अस्तित्व की खबर उसको भी नहीं। परन्तु है न? है और उसमें नयी-नयी पर्याय समय-समय भी है। है, उसका स्वभाव परिणमन का है। तो जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, उसका कर्ता वह परमाणु है। समझ में आया? भोजन है। ग्रास आता है, ग्रास ऐसे लिया। तो ग्रास की क्रिया है, वह जड़ की क्रिया है। आत्मा ग्रास ले सके, अँगुली से उठा सके—ऐसी बात है नहीं।

मुमुक्षु : हाथ से ऊपर लिया न हाथ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ से... कहा न? हाथ से लिया नहीं। हाथ, वह परमाणु भिन्न है, ग्रास के परमाणु भिन्न हैं। आहाहा! तो यह ग्रास के एक-एक परमाणु में अनन्त गुण हैं। तो उसमें कर्ता-कर्म-करण (आदि) षट्कारक की शक्तियाँ पड़ी हैं। आहाहा! स्वयंसिद्ध है उसमें।

कहो, सुमनभाई! यह तो तेल-बेल का कर सके या नहीं?

मुमुक्षु : नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं?

मुमुक्षु : रोज करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोज करता है। यह उनका—रामजीभाई का लड़का है। कोई

कहते थे सुबह कि कौन सुमनभाई! यह सुमनभाई। आठ हजार वेतन मासिक लोग कहते हैं। इतना पुण्य जल जाता है। तो उसमें कोई आत्मा कर्ता है। तेल का क्या कहलाता है इनका? पेट्रोल। पेट्रोल कहलाता है वह?

मुमुक्षु : रिफाईनरी की फैक्ट्री।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका कुछ भी रजकण का करे, तीन काल में नहीं। राग करे।

मुमुक्षु : वर्तमान में तो करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? यह तो प्रश्न ... वर्तमान में भी यही कार्य है। भूतकाल, वह तो बीत गया, भविष्य तो आया नहीं। वर्तमान में ही होता है।

मुमुक्षु : कम्पनी मुफ्त का वेतन देती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कम्पनी कौन देती है? वह तो रजकण आनेवाला हो तो आता है। दे कौन? समझ में आया? रामजीभाई तीस वर्ष पहले कोर्ट में जाते थे पाँच घण्टे। लो, दो सौ रुपये लेते थे। लेते थे वे?

मुमुक्षु : आते हैं, आपने कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले—दे कौन? एक रजकण की भी क्रिया अपने षट्कारक के कारण से अपने में अपने से अपने काल में ही होती है। दूसरे से तीन काल-तीन लोक में होती नहीं। आहाहा!

भगवान जिनवर का पंथ... षट्द्रव्य है। वह षट्द्रव्य तो जाति से है। संख्या तो अनन्त है। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु। आहाहा! एक निगोद—आलू के शरीर का एक राई जितना टुकड़ा, उसमें असंख्य तो शरीर हैं। एक-एक शरीर में एक-एक परमाणु स्वतन्त्र काम करते हैं और एक शरीर में अनन्त निगोद जीव हैं। एक साथ मरे और एक साथ अनन्त उपजे। तो भी एक आत्मा अपनी पर्याय को करे। कर्म उसको करे और कर्म उसकी पर्याय को करे या दोनों मिलाकर (करे, ऐसा है नहीं)। अनन्त आत्मा साथ में इकट्ठे हैं।

लो, गोम्मटसार में आता है। 'अनन्त जीवों का एक श्वास, एक आहार...'

उसका अर्थ क्या? वह तो भिन्न-भिन्न अपनी पर्याय का कर्ता है। श्वास और आहार का कर्ता है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? आता है न वह श्लोक? अनन्त जीव एक साथ आहार, श्वास.... क्या कहा? चार बोल हैं न?

मुमुक्षु : शरीर, इन्द्रिय आदि।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शरीर। यह तो चार प्राण है न चार उसको। इन्द्रिय। इन्द्रिय। इन्द्रिय से द्रव्येन्द्रिय है। एक-एक जीव की भावेन्द्रिय भिन्न है। द्रव्येन्द्रिय सबकी— अनन्त की एक, भावेन्द्रिय भिन्न। आहाहा! समझ में आया?

एक इतने टुकड़े में सिद्ध हुए अभी तक... छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव) सिद्ध होते हैं। भाई! यह तो महा विश्वास की चीज़ है। छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव) सिद्ध परमात्मा होते हैं ढाई द्वीप में से। अभी यहाँ से नहीं हो (सके) तो महाविदेह में से छह सौ आठ (जीव) पाँच महाविदेह में से अभी भी जाते हैं। छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव)। ऐसे धारावाही प्रवाह से अनन्त सिद्ध हुए। उसमें... एक शरीर में निगोद—बटाटा / आलू—कन्दमूल क्या कहलाता है? प्याल, लहसुन। एक राई जितने टुकड़े में असंख्य तो औदारिकशरीर हैं और एक शरीर में अभी तक (हुए) सिद्ध से अनन्तगुणे जीव हैं। उन जीवों का श्वास आदि एक गिनने में आता है व्यवहार। श्वास की क्रिया सबकी (एक)। बस अपने में (श्वास) लेने की पर्याय में भावेन्द्रिय भिन्न-भिन्न है। द्रव्येन्द्रिय अनन्त की एक है। समझ में आया? मनहरलालजी! कहाँ यह खबर पड़े? कमाना, खिलाना और उसमें, यहाँ कहाँ खोजना? आहाहा!

भगवान! तुम वहाँ अनन्त बार रहे। समझ में आया? प्रथम पीहर का स्थान, जैसे स्त्री को पीहर होता है, पीहर कहते हैं न? पीहर माँ-बाप का (घर)। ऐसे जीव का पहला पीहर निगोद था। आहाहा! समझ में आया? स्त्री वहाँ तो १५-१६ वर्ष, १८ वर्ष निकालती है न पहले तो। भगवान तो ऐसा कहते हैं, जीव का मूल पहले पीहर स्थान— मातृस्थान तो निगोद है। आहाहा! एक-एक शरीर में अनन्त जीव अपनी भावेन्द्रिय भिन्न रखते हैं। आहाहा! यह वह कुछ गजब!

यह भावेन्द्रिय की पर्याय का अज्ञानरूप से कर्ता है। भाई! द्रव्येन्द्रिय का तो कर्ता वह भी नहीं। आहाहा! खण्ड-खण्ड इन्द्रियाँ जो हैं आंशिक, उसका कर्ता होना—वह भी मिथ्यात्व और अज्ञानभाव है। अंशबुद्धि है न अंशबुद्धि, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तो जब तक अंशबुद्धि है, तब तक **चेतन करता भोगता मिथ्या मगन अजान...** यह निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक दिगम्बर साधु (होकर) गया मिथ्यादृष्टि। तो मिथ्यादृष्टि (को) जब तक स्वभाव की दृष्टि नहीं और वह रागक्रिया, पुण्य की क्रिया का कर्ता (मानता) है, उस क्रिया के ऊपर दृष्टि है, तब तक अज्ञानी कर्ता है।

नहि करता नहि भोगता... आहाहा! भगवान अपने निज घर की सम्हाल में जब आया। **निहचै सम्यकवान...** सम्यग्दृष्टि हुआ। अरे! मैं तो पूर्णानन्द प्रभु हूँ। मैं राग भी नहीं, पर भी नहीं और अल्पज्ञ की पर्याय खण्ड इन्द्रिय भाव, भावइन्द्रिय खण्ड—वह भी मैं नहीं। आहाहा! क्षयोपशम ज्ञान का जो अंश है भावेन्द्रिय का, वह भी मैं नहीं। आहाहा! खण्ड नहीं, खण्ड नहीं। 'मैं तो अखण्ड ज्ञायक वस्तुस्वरूप' ऐसी चीज़ भगवान ने जो देखी, ऐसा दृष्टि में जब आवे तो सम्यग्ज्ञान होता है। वह सम्यग्ज्ञानी राग का, भावकर्म का कर्ता-भोक्ता नहीं। धन्धे का तो कर्ता नहीं। आहाहा! भाषा बोली जाती है, उसका भी कर्ता आत्मा नहीं। अज्ञानी भी भाषा का कर्ता नहीं। अज्ञानी कर्ता अपनी विकल्पदशा का, विकार का है।

यह आत्मा में भान हुआ। अरे, मैं क्या? मैं कोई खण्ड इन्द्रिय हूँ? मैं जड़ इन्द्रिय हूँ? मैं राग हूँ? मैं शरीर हूँ? मैं यह नहीं। मैं तो पूर्णानन्द प्रभु... वह जो कहते थे न (कि) पूर्ण परम है। बात तो पूर्ण परम बराबर है। परन्तु अज्ञानी कहते हैं कि पूर्ण परम है, इसलिए राग का कर्ता आत्मा नहीं, अज्ञानभाव से भी कर्ता नहीं। समझ में आया? आहाहा! इतना गर्व उतर जाये, अभिमान गल जाये। आहाहा! 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है।' 'मैंने किया, मैंने किया यह अज्ञान।' जब तक मूढ़ होकर मिथ्यात्व का गर्व सेवन करता है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **निहचै सम्यकवान...** राग... कर्म शब्द पड़ा है न? समकिती कर्म का... कर्म शब्द से भावकर्म। जड़कर्म की बात यहाँ है ही नहीं। अब, **इस विषय का एकान्तपक्ष खण्डन करनेवाले स्यादवाद का उपदेश कहते हैं।** लो। १३वाँ कलश। नीचे है न?

माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुषं सांख्या इवाप्याऽर्हता:,
कर्तारं कलयन्तु तं किल सदा भेदावबोधादध:।
ऊर्ध्वं तूद्धतबोधधामनियतं प्रत्यक्षमेनं स्वयं,
पश्यन्तु च्युतकर्तृभावमचलं ज्ञातारमेकं परम्।।१३।।

★ ★ ★

काव्य - २८

इस विषय का एकान्तपक्ष खंडन करनेवाले स्याद्वाद का उपदेश

(सवैया इकतीसा)

जैसैं सांख्यमती कहैं अलख अकरता है,
सर्वथा प्रकार करता न होइ कबहीं।
तैसैं जिनमती गुरुमुख एक पक्ष सुनि,
याहि भांति मानै सौ एकंत तजौ अबहीं।।
जौलौं दुरमती तौलौं करमकौ करता है,
सुमती सदा अकरतार कह्यौ सबहीं।
जाकै घटि ग्यायक सुभाउ जग्यौ जबहीसौं,
सो तौ जगजालसौं निरालौ भयौ तबहीं।।२८।।

शब्दार्थ:-जिनमती=जिनराज कथित स्याद्वाद विद्या के ज्ञाता।

अर्थ:-जिस प्रकार सांख्यमती कहते हैं कि आत्मा अकर्ता है, किसी भी हालत में कभी कर्ता नहीं हो सकता। जैनमती भी अपने गुरु के मुख से एक नय का कथन सुनकर इसी प्रकार मानते हैं, पर इस एकान्तवाद को अभी ही छोड़ दो, सत्यार्थ बात यह है कि जब तक अज्ञान है, तब तक ही जीव कर्म का कर्ता है, सम्यग्ज्ञान की सब हालतों में सदैव अकर्ता कहा है। जिसके हृदय में जब से ज्ञायकस्वभाव प्रगट हुआ है वह तभी से जगत के जंजाल से निराला हुआ - अर्थात् मोक्ष के सन्मुख हुआ है।।२८।।

काव्य-२८ पर प्रवचन

क्या कहते हैं, देखो! **जैसैं सांख्यामती कहैं अलख अकरता है, सर्वथा प्रकार करता न होइ कबहीं।** सांख्यमति और जैन का नाम धरानेवाले भी कहें। सब ले लेना, वे सब सांख्यमति हैं। **तैसें जिनमती गुरुमुख एक पक्ष सुनि...** आत्मा कर्ता नहीं, आत्मा कर्ता नहीं—ऐसा सुना। आत्मा कर्ता नहीं, शास्त्र में तो आता है। परन्तु कब कर्ता नहीं राग का? सम्यग्ज्ञान हुआ तो कर्ता नहीं। समझ में आया? सुनाये जाये। आत्मा तो अकर्ता है, आत्मा अकर्ता है। किसका अकर्ता? पर का तो अकर्ता है, यह बराबर है। परन्तु राग का भी अकर्ता है, ऐसा नहीं। अज्ञानभाव से राग का—विकार का—भावकर्म का कर्ता बराबर है।

याहि भांति मानै सौ एकंत तजौ अबहीं॥
जौलौं दुरमती तौलौं करमकौ करता है,
सुमती सदा अकरतार कह्यौ सबहीं।
जाकै घटि ग्यायक सुभाउ जग्यौ जबहीसौं,
सो तौ जगजालसौं निरालौ भयौ तबहीं॥२८॥

आहाहा! इसका अर्थ :— **जैसे सांख्यमती...** दृष्टान्त दिया है। **अलख अकरता है।** 'अलख' अर्थात् भगवान आत्मा। रागरूप परिणमन होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'अलख' अर्थात् इन्द्रिय से जानने में न आवे, ऐसा भगवान आत्मा त्रिकाल अकर्ता है। कभी (भी) कर्ता नहीं, ऐसा सांख्यमति मानते हैं। ऐसे जैन में भी... वह बाद में लिया। **सर्वथा प्रकार करता न होइ कबहीं....** विकार का सर्वथा प्रकार से किसी काल में कर्ता नहीं। इस प्रकार सांख्यमति की भाँति जैन भी मानते हैं। ऐसा कहते हैं, देखो। **तैसें जिनमती...** जैन सम्प्रदाय में जन्म हुआ और **गुरुमुख एक पक्ष सुनि...** गुरु ने कहा कि आत्मा द्रव्यानन्द प्रभु चिदानन्द प्रभु, वह राग का कर्ता होता ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : बारम्बार?

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से?

वह तो अन्तर सम्यक् दृष्टि द्रव्य के ऊपर आ गयी और शुद्ध चिदानन्द का स्वीकार हुआ तो वह आत्मा राग का कर्ता नहीं। समझ में आया? परन्तु स्वभाव का स्वीकार जहाँ नहीं, वहाँ राग का स्वीकार तो रहा और कहे कि राग के कर्ता हम नहीं, (तो) ब्रह्मघाती है, आत्मा का घात करनेवाला है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। पन्नालालजी! ऐसी बात है। **जिनमती गुरुमुख एक पक्ष सुनि...** एक पक्ष अर्थात् आत्मा ज्ञायक चैतन्य, वह कर्ता होता ही नहीं। ऐसी निश्चय की एक बात सुनी, परन्तु दूसरा पक्ष, अज्ञान में राग का—पुण्य-पाप का कर्ता है, यह पक्ष भूल जाता है। समझ में आया? **याहि भांति मानै सो एकंत तजौ अबहीं...** अब छोड़ो, भगवान! राग और पुण्य दया-दान-व्रत का परिणाम के कर्ता तुम अज्ञानभाव से हो। जब तक स्वरूप का भान नहीं, तब तक तो अज्ञानभाव से वही कर्ता है।

जौलौं दूरमती तौलौं करमकौ करता है... जब तक दुर्मति है। आहाहा! अपना निजस्वभाव का स्वाद आया नहीं, चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उसका जब तक स्वाद आया नहीं, ऐसे दुर्मति। आहाहा! सेठ! आहाहा! **दूरमती तौलौं करमकौ करता है...** बुद्धि दुर्बुद्धि है, अपना स्वरूप का भान नहीं। अरे! 'मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? कैसे हूँ?' ऐसी चीज़ की जब तक खबर नहीं, वह दुर्मति कर्म का—राग का कर्ता होता है। व्यवहार शुभराग का कर्ता अज्ञानी होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहार जो दया-दान-व्रत-भक्ति आदि का परिणाम, (उसका) दुर्मति कर्ता होता है—ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? कहो, अमरचन्दजी! आहाहा! अरे भगवान! तेरी चीज़ महान अनन्त शक्ति से भरा भण्डार है। ऐसा जब तक भान नहीं, तब तक अज्ञान अर्थात् स्वरूप के अजानपने की भूमिका में राग का कर्ता वही है।

सुमती सदा अकरतार कह्यौ सबही... देखो। वह दुर्मति कहा था। **सुमती सदा अकरतार...** देखो। सम्यग्ज्ञानी आत्मा विकल्प—राग से भी भिन्न है। कर्म, शरीर से तो भिन्न ही है, परन्तु अल्पज्ञ भावेन्द्रिय के खण्ड से भी भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? '**जो इंदिये जिणित्ता**' आता है न ३१ गाथा में। इन्द्रियों को जीता, उसका अर्थ? शब्द, रूप, रस, गन्ध का लक्ष्य छोड़ दिया, द्रव्येन्द्रिय का लक्ष्य छोड़ दिया और भावेन्द्रिय एक विषय को जाननेवाली भावेन्द्रिय, उस खण्ड-खण्ड ज्ञान की रुचि छोड़ दी और अखण्ड

ज्ञायकमूर्ति का जब सुमतिप्रकाश हुआ। आहाहा! यह **सुमती सदा अकरतार...** वह भाव व्यवहार का कर्ता यह है नहीं। आहाहा! व्यवहार होता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। अज्ञानी व्यवहार से संयुक्त है। बस इतना अन्तर है। समझ में आया? आहाहा!

यह वह कुछ बात है। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान आत्मा अपनी चीज़ की जहाँ भान, दृष्टि हुई, तो भगवान आत्मा **अकरतार सबही**—सदा। किसी क्षण भी। ज्ञानी युद्ध में हो, विषयवासना में देखने में आवे, तब भी उस राग का कर्ता ज्ञानी नहीं। आहाहा! नन्दकिशोरजी! ऐसी बात है। सत्य बात सुनने में न आवे, वह विचार कब करे? और कब रुचि करके परिणमन करे? आहाहा! कहते हैं। **सुमती सदा अकरतार कह्यौ सबही...** भगवान ने कहा, ऐसा कहते हैं। 'सबही'। कोई भी विकल्प का कर्ता आत्मा है नहीं, यह स्वरूप का सुमतिप्रकाश हुआ तब।

जाकै घटि ग्यायक सुभाऊ जग्यौ जबहीसौं,... देखो! जब घट में ज्ञायकस्वभाव जगा जब से। मैं तो जानन-देखन प्रज्ञाब्रह्मास्वरूप मैं हूँ। मैं तो पूर्णानन्द का नाथ हूँ। आहाहा! ऐसी सम्यक्‌बुद्धि सम्यग्ज्ञान हुआ। **जग्यौ जबहीसौं तो जगजालसौं सो तो निरालौ भयौ तबही...** आहाहा! व्यवहार अर्थात् विकल्प जगजाल है। आहाहा! समझ में आया? दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा-श्रवण-मनन (आदि) विकल्प, वह सब जगजाल है। संसार कहा न, संसार कहा न! सुबह आया था न? घोर संसार का मूल है। आहाहा!

मुमुक्षु : तो महाराज! पूजा-भक्ति करना या नहीं करना?

मुमुक्षु २ : यह निर्णय कर लो भैया!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सुबह में आया था कि बीच में राग आता है, जब तक वीतराग न हो, तब तक आये बिना रहता नहीं। परन्तु उसको हेय जानना।

मुमुक्षु : परन्तु करना या नहीं करना, उसका क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे कौन? होता है, उसको जानना। करे, ऐसा कर्ता हो तब तो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

वह कहा था न, रामजीभाई का एक मित्र था। गुजर गया। लखुभाई था, लखुभाई। यह महाराज ऐसा कहे, परन्तु अब हमारे मेहमान आवे तो चाय पिलाना या नहीं? वह

तो कहो। आहा! पुत्री का ससुर आया, ससुर। सत्ताप्रिय प्रकृति हो जरा, दम्भी और बड़ा... अब वह आवे तब हमारे क्या चाय देना या नहीं? हम चाय नहीं कर सकते हैं, हम चाय नहीं दे सकते हैं। कर सकते ही नहीं, फिर करना, न करना—उसका प्रश्न ही नहीं है। आहाहा! एक तो यहाँ हुआ था। आश्रम है न। मजाक की थी एकबार उसने। वह गुजर गया। 'लो, निश्चयवादी ऐसा हो कि मेहमान को कहे, कल हमारे यहाँ भोजन करने को आना।' परन्तु निश्चयवादी भोजन करने की भाषा का ही कर्ता नहीं। सुन तो सही!

चारित्रविजय था न, श्वेताम्बर। हम बैठे थे और थोड़ी मजाक की। आहाहा! 'लो यह निश्चयवादी ऐसा हो कि भाई! भोजन करने को कल हमारे यहाँ आना। पीछे आवे तब कहे, भोजन बना नहीं। हम तो बना सकते नहीं।' ऐसी मजाक... परन्तु भोजन करने को आवे, ऐसा (कहने का) विकल्प जिसको आया, ऐसा उसको करने का विकल्प आता है, परन्तु कर सकते नहीं, यह दूसरी बात है। समझ में आया? ऐसे लोग तत्त्व को समझे बिना उड़ा देते हैं। हम बैठे थे और कहते थे लोगों को। देखो, भोजन करने को आना भैया पाँच घर सारे। वह आवे तो कहे, भाई! भोजन बना नहीं। उसके कारण से बनता है, हम तो कर्ता नहीं।

मुमुक्षु : होली का दिन था क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मजाक का दिन था। आहाहा!

भाई! उसके कारण से आहार बनता है। मैं तो बना सकता नहीं। परन्तु तुझे विकल्प तो तुझे आया था या नहीं? तो जैसा विकल्प आया था (बुलाने का), ऐसा विकल्प भोजन बनाऊँ, ऐसा विकल्प आये बिना रहता ही नहीं, तथापि भोजन बनना-न बनना, उसका कर्ता आत्मा है नहीं। आहाहा! यह मजाक उड़ाते हैं। एक व्यक्ति कहता था। एक ब्रह्मचारी था। मोटर में बैठे थे। तुम्हारा वस्तुविज्ञानसार पढ़ा है। लो, यह सोनगढ़वाले तो कहते हैं, नाम लिया था कानजीस्वामी। कि कानजीस्वामी कहते हैं कि मोटर उसके कारण से चलती है, हमारे कारण से नहीं। समझ में आया? अपने यह चलता है, यह मोटर चलाती नहीं। हम अपने कारण से चलते हैं। कहो, सच्ची बात है? झूठ है। मोटर चलाते हैं हम तो।

मुमुक्षु : सोनगढ़ की मोटर पेट्रोल से नहीं चलती....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और दूसरा था एक। वह और दूसरा है। सोनगढ़ की मोटर पेट्रोल बिना चलती है। हमारी मोटर पेट्रोल से चलती है। आहा! हे भगवान! मोटर तो मोटर के कारण से चलती है। मोटर का एक-एक परमाणु ऐसा गति करता है, अपनी पर्याय के कारण से क्षेत्रान्तर होता है। कोई दूसरे परमाणु के धक्के से भी नहीं चलती। आहाहा! समझ में आया? लो, यह लकड़ी है, देखो! तो ऐसा करो तो चलती है? ऐसा है ही नहीं। उसके कारण से यहाँ से यहाँ धक्का लगा तो चलती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! एक सेठ की भी चर्चा... हमारे चर्चा बहुत आती थी न। सेठ थे तो उसने चर्चा की। देखो, लकड़ी है ऐसी देखो। तो पूरी लकड़ी को स्पर्शने की आवश्यकता नहीं। एक ओर ऐसा करो, ऐसा हो जायेगा।

यह तो चर्चा हमारे बहुत ५० वर्ष से चलती है न। एक दामोदर सेठ था। कि यह पूरी चीज़ है तो पूरी चीज़ को हिलाने को पूरी चीज़ को स्पर्शने की आवश्यकता नहीं। ऐसा करो तो चल जायेगा। कि भाई! झूठ बात है। ऐसा उसको छुआ ही नहीं। अँगुली उसको छूती ही नहीं। अपने कारण से गति करके चलते हैं। आहाहा! गजब बात है! भारी कठिन काम पड़े दुनिया को। कर्तापने में तो बहुत घुस गया है न अभिमान। 'मैं करूँ मैं करूँ यही अज्ञान है, शकट का भार ज्यों श्वान ताणे।' बड़ा व्यापार करते हैं। होशियार, गद्दी पर बैठते हैं गद्दी पर। थडा कहते हैं न दुकान का? हम बराबर व्यवस्था करनेवाले हैं। मूर्ख बैठाओ, नहीं कर सकेगा। अब तुम भी नहीं कर सकते और मूर्ख भी नहीं कर सकते, सुन न! आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। तेरा अभिमान है। इस अभिमान में तेरी खबर तुझे नहीं। आचार्य कहते हैं, अहो!

जब तक भगवान चैतन्य प्रभु का भान नहीं, तब तक तो विकार परिणाम का कर्ता अज्ञानी है, ऐसा निर्णय करना। पाठ में आया न! पाठ में ऐसा आया '**अपि आर्हताः**' अरिहन्त का मत माननेवाला। देखो, १३वें कलश के पहले पद का अन्तिम वाक्य। जैनमत को माननेवाला। व्यवहारिक जैनमत हो, अभी तो। **ग्यायक सुभाउ जग्यौ जबहीसौं...** तब अकर्ता होता है। यह पहले तो अकर्ता माननेवाला जैनों को भी (कर्ता) मानना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। जब तक अज्ञान है, तब तक विकार का कर्ता अज्ञानी है, ऐसा तुझे मानना पड़ेगा। अज्ञानी अर्थात् दूसरा माने या नहीं, राग का कर्ता (नहीं)। यह

तो शुद्ध है, वस्तु तो शुद्ध है। गुण शुद्ध है तो उसमें मैल कहाँ से आया? अरे, मैल तूने उत्पन्न किया, इसलिए आया। सुन न! और उसका कर्ता अर्थात् परिणमन मेरा है, यह अज्ञानबुद्धि है। आहाहा! एक बोल भी यथार्थ समझ जाये एक भाव का, तो सर्व भाव का ख्याल में आ जाये। परन्तु एक का ही ठिकाना नहीं।

सो तौ जगजालसौं निरालौ भयौ तबही,... देखो! जहाँ भगवान आत्मा अपना अज्ञान का नाश करके शुद्ध चैतन्य जलहल ज्योति 'ज्ञानसलिल'—ज्ञान का प्रवाह जहाँ भान में आया। '**ज्ञानसलिलं**', ऐसा पाठ आता है अष्टपाहुड़ में। अष्टपाहुड़ है न? '**ज्ञानसलिलं**'—ज्ञानरूपी प्रवाह चैतन्य का। राग पुण्य-पाप का प्रवाह वह मेरी चीज़ नहीं। मेरी चीज़ तो ज्ञानप्रवाह है। चैतन्यबिम्ब भगवान का प्रवाह, वह मेरी चीज़ है। उस प्रवाह में राग का कर्ता ज्ञानी होता नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! लोगों को सुनने में न आवे तो उसको गले (के नीचे) कहाँ से उतरे? समझ में आया?

एक बड़ा वकील था। यहाँ (संवत्) १९९७ के वर्ष में रहता था। एक महीने रहा था। मन्दिर बना न। ९७ के वर्ष में बना। (संवत्) १९९७। तीन और तीस (३३) वर्ष हुए इस मन्दिर को। यहाँ एक वकील रहा करता था। अभी है मुम्बई में। तो वह सुनता था। यह अकर्ता की बात आयी। उसने कहा, 'यह लो, मैंने ऐसे हाथ किया, देखो। किया या नहीं? यह हाथ मैंने लम्बा किया।' अरे भाई! लम्बा हाथ तुझसे हुआ या आत्मा से हुआ या पर से हुआ—इसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? यह तो कहते हैं... ऐसा उसे दृष्टान्त दिया था। कोई कहे कि माँस खाने से पाप होता है। तो हम कहते हैं कि माँस खाने से क्षुधा का दुःख मिटता है, लो। क्या कहा, अमरचन्दजी? कोई कहे कि माँस खाने से पाप होता है। तो माँस खानेवाला कहता है....

यह प्रश्न वहाँ (संवत्) १९८४ में हुआ था, बगसरा। काठी का एक गृहस्थ था। साठ हजार की आबादी। व्याख्यान में आते थे न! नाम प्रसिद्ध था तो सब बड़े-बड़े (आदमी) आते थे। तो उसने कहा कि 'महाराज! यह क्या?' (मैंने कहा), देखो, सुनो। माँस खाते (समय) क्षुधा थी क्षुधा, तो माँस खाया तो क्षुधा का दुःख मिट गया। भूख—क्षुधा। क्षुधा का दुःख मिट गया माँस से? अब कोई ऐसा कहे कि माँस से पाप होता है (पाप) कहाँ रहा उसमें? क्या कहा, समझ में आया? यह प्रत्यक्ष भूख मिट

गयी। और तुम कहते हो कि माँस खाने में पाप है और माँस खाने में दुःख है। अरे, सुन तो सही! यह माँस की क्रिया हुई, वह तो जड़ की है और क्षुधा मिटी, वह तो पूर्व का साता के उदय के कारण से क्षुधा मिट गयी है। यह माँस से क्षुधा मिटी है, ऐसा नहीं। तुझे त्रिराशि की खबर नहीं। समझ में आया?

जैसे कन्दमूल। कोई कहे, कन्दमूल में अनन्त जीव हैं, ऐसा? तो क्षुधा लगी। लाओ शक्करकन्द। शक्करकन्द होता है न, शक्करकन्द। बाफ कर बनाओ। हम खाते हैं तो क्षुधा मिट जाती है। तुम कहते हो कि अनन्त जीव का पाप है। इसमें पाप कहाँ आया?

मुमुक्षु : कहते हैं, जड़ की क्रिया जड़ करता है, शरीर की क्रिया शरीर करता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे, तुझे खबर नहीं, कहा। दुःख मिटा क्यों? और संयोग से दुःख मिटा नहीं, उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? मैंने तो ऐसा एक दृष्टान्त दिया था। वह तो राजा काठी था न, बगसरा। वह व्याख्यान में आया था, उसका लड़का भी आया था। वह राजकुमार था अमरचनद, अमरुभाई। हाँ, वह बेचारा बड़ा राजा जैसा था। परन्तु यह सुनकर ऐसा हुआ, आहाहा! .... एकबार।

कहा, एक करोड़पति था। उसको आया लड़का—बच्चा। आया तो राजा उसको अभिनन्दन.... तुम्हारे क्या कहलाता है? उसे उपहार लेकर जाये न। भेंट लेकर जाये। और यह करोड़पति था। राजा जाये। तो वह लड़का दिखा छोटा। आज ही जन्मा था। तो राजा कहते हैं, सुनो, कहा। (संवत्) १९८४ की बात है, ८४। ४३ वर्ष हुए। वह काठी को सुनाया। सुनो, कहा। वह लड़का कोमल दिखा। कूणा समझे न?

मुमुक्षु : मुलायम।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुलायम। तो राजा को विचार आया। और वह लड़के का पिता नास्तिक था। किसी को मानता नहीं था। राजा को ऐसा लगा कि भैया! मुझे क्षुधा लगी है। मैं खाये बिना तेरे लड़के (के लिये) भेंट लेकर आया। अंगून समझे न? यह पहनने की। भेंट लेकर। मुझे इस लड़के को.... करके खाने की भावना हो गयी है।

मुमुक्षु : उसका टुकड़ा करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : टुकड़ा करके।

वह बच्चा आया न नया। टुकड़ा करके खाने की भावना हुई। 'अरेरे!' वह कहे, 'नहीं... नहीं, यह नहीं।' 'क्यों नहीं? हमें क्षुधा है और उसको खाऊँ तो मेरी क्षुधा मिट जायेगी। पाप कहाँ से आया', राजा ऐसा कहते हैं। क्षुधा है तो उसको खाऊँ.... आया हूँ। तुम्हारा नाम सुना कि सेठ को एक पुत्र आया है और मैं चाय पीकर नहीं आया हूँ और बनाओ उसका टुकड़ा करके। मेरी भूख मिट जायेगी वहाँ दु:ख होगा? ऐ पद्मचन्दजी! वह कहे, 'अरे, नहीं... नहीं'। क्यों नहीं? तू तो नास्तिक है न? किसी को मानता नहीं न? परलोक नहीं है, सुख-दु:ख नहीं है, तो यहाँ ऐसा कैसे हुआ तुझे? 'नहीं, नहीं, महाराज! ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं होता', वह कहे। तब क्या है? बनाओ। उसे तो भान नहीं था परन्तु दूसरे ने कहा, 'महाराज! उसको काटकर खाना, वह तेरे दु:ख के मिटने का कारण नहीं है। वह तो साता का उदय आया तो उसमें दु:ख मिट गया। तो माँस खाया और दु:ख मिटा, यह बात एकदम झूठ है। धन्नालालजी!

उसी प्रकार फिर कन्दमूल खाया। कहा, लो, क्षुधा लगी। कन्दमूल में अनन्त जीव है। लो, तुम कहो कि पाप लगता है, जैनमत कहे। जैन कहे कि पाप लगता है। अब क्षुधा लगी थी और शक्करकन्द सेंककर खाया। शक्कर... शक्करकन्द होता है न वह? शक्करकन्द, (गुजराती में) शक्करिया। वह तो अपने शक्करिया कहते हैं। अपनी काठियावाड़ी भाषा। वह उसमें शक्करकन्द कहते हैं। सेंककर, अग्नि में सेंककर और घी में तलकर... आहाहा! लो, क्षुधा मिटी। तुम कहते हो न, कन्दमूल खाने में पाप है। अरे, सुन तो सही, तुझे भान नहीं। वह अनन्तकाय खाया, इसलिए क्षुधा मिट गयी, ऐसा है नहीं। समझ में आया? वह तो साता का उदय आया तो क्षुधा मिट गयी, यह तुझे खबर नहीं। आहाहा!

अनन्त काय खाया। फिर तो बहुत दृष्टान्त दिये थे। यह वनस्पति का दृष्टान्त दिया था। वह तो राजा है न। वह तो कहता है .... खाये। उसके तो पिता थे। डीगावाळा, नहीं भाई? वासववाळा, वासववाळा फिर हमेशा व्याख्यान में आते थे वहाँ, बगसरा। उसके गाँव में ले गये थे कि हमारी रानी को आपकी बात सुनना है। लो, भाई! वहाँ गये थे एक रात्रि। हमारी बात तो यह है कि पर के लक्षण से देखने से... अनन्त काय खाया तो दु:ख मिटा, माँस खाया तो दु:ख मिटा, वनस्पति खायी तो दु:ख मिटा—ऐसा है नहीं। उसका

न्याय करना चाहिए। समझ में आया ? कोई बोले कि लो, हम झूठ बोले तो पैसा मिला। तो झूठ से मिलता है ? सच्ची बात है ? वह पूर्व के पुण्य के कारण से मिला है तुझे। झूठ से तो तुझे नया पाप बँधा है। इसी प्रकार माँस और अनन्त काय खाया, उसमें तेरा भाव तो पाप है। उससे तो तुझे बन्ध हुआ है और (क्षुधा) मिट गयी, वह साता का उदय आया तो मिट गयी है। वह माँस खाने से मिट गयी है, अनन्तकाय खाया तो मिट गयी है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

उसे बेचारे को ऐसा हुआ। फिर घर में आहार लेने गये थे। .... वह अमुलखभाई को कहा। 'महाराज! कल का दृष्टान्त मेरी माताजी को सुनाओ। उसे बेचारे को... मेरी माता। उसकी माता को सोना के वे कढ़े थे। कडला कहते हैं न ? पैर के। वह तो गृहस्थ थे न, राजा थे न। सोने के कड़ला थे। उसकी माँ अन्दर थी और बाहर निकलती नहीं। ब्राह्मण का रसोड़ा था, वहाँ आहार लिया। 'परन्तु महाराज! पहले हमारी माताजी को यह सुनाओ कि माँस खाने से दु:ख मिटता नहीं, अनन्त काय खाने से दु:ख मिटता नहीं, यह क्या ?' पण्डितजी! भैया! तुझे भाव की खबर नहीं। न्याय की खबर नहीं तो तुम्हारी कल्पना से मान लो। समझ में आया ? आहा! ऐसे अज्ञानी... जब तक तुझे आत्मा का भान नहीं, तब तक तेरे राग और विकार का कर्ता तुम हो। पर के कर्ता तुम हो नहीं। तुझे स्वरूप की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह तो साधारण व्यक्ति हो तो उसे दृष्टान्त आवे तब समझ में आवे। देखो, भाई! यह क्या ? तब अब न्याय करना पड़ेगा या नहीं ? कहा, उसमें। या सीधे प्रत्यक्ष देखा कि माँस खाया और दु:ख मिटा, ऐसा मानना ? आर्य मनुष्य ऐसा मान सकता है ? उस बालक को टुकड़ा करके खाऊँ तो वह कहे, नहीं, नहीं। राजासाहेब! आपको पाप लगेगा। पाप मानते नहीं थे न तुम ? पाप मानते नहीं, परलोक मानते नहीं। पाप कहाँ से आया ? यह घर में आया... इसलिए। तेरा लड़का मैं काटकर खाऊँ, इसलिए पाप मानते हो अभी ? आहाहा! यह तो नहीं, नहीं, नहीं, हों नहीं, नहीं। परन्तु नहीं क्या ? भूख मिट जाती है न (ऐसा) यहाँ प्रत्यक्ष होता है। अन्धे को प्रत्यक्ष होता है। सुन तो सही! जिसको उसका ज्ञान नहीं कि राग क्या चीज़ है ? माँस क्या चीज़ है ? भाव क्या था ? और मिटा क्यों ? इसका जिसको भान नहीं, वह अज्ञानी मान लेता है। समझ में आया ? आहाहा!

उसी प्रकार यहाँ **अकरतार कह्यौ सबही सुमति जब आप जागी...** इससे पहले तो कर्म का कर्ता है। **तेरे घटि ज्ञान सुभाउ जग्यौ जबहीसौं, सो तौ जगजालसौं निरालौ...** आहाहा! व्यवहार के विकल्प से ज्ञानी भिन्न है। यह बात कैसी! छह खण्ड के राज में दिखे, ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में समकिती दिखे, (फिर भी) जगजाल से निराला है। आहाहा! समझ में आया? यह मेरी (चीज़) है, ऐसी बुद्धि उड़ गयी सबमें से। 'एक मैं ज्ञायक चिदानन्द, यह मेरी स्व चीज़ और उसका मैं स्वामी।' राग से लेकर परचीज़ वह स्व और उसका मैं स्वामी, (ऐसी) बुद्धि उड़ गयी है। जब तक अज्ञान था, तब तक राग और शरीर यह मेरा, यह स्व और मैं उसका स्वामी, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? भाई! धर्म तो अलौकिक चीज़ है! आहाहा!

वह तभी से जगत के जंजाल से निराला हुआ अर्थात् मोक्ष के सन्मुख हुआ। यह लिया। आहाहा! जब तक राग और पुण्य-पाप के ऊपर बुद्धि थी, वह संसार सन्मुख था, स्वभाव से विमुख था, वह अज्ञानी राग का कर्ता होता है। आहाहा! और जब स्वभाव-सन्मुख का भान हुआ। अरे! चैतन्य यह तो! यह तो ज्ञान का पूर-नूर ज्ञान का तेज है! ज्ञान का तेज, वह क्या करे मलिन को? वह मलिन की दृष्टि से हटकर अपनी पर्याय द्रव्य के सन्मुख झुक गयी है। आहाहा! ऐसा धर्मी सारे जगजाल से निराला है। कहो, समझ में आया? **इस विषय में बौद्धमतवालों का विचार।** अब बौद्धमतवाला लेते हैं। १४ है न १४? वह सांख्य का गया।

क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं,
निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम्।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः,
स्वयमयमभिषिञ्चश्चिच्चमत्कार एव ।।१४।।

★ ★ ★

काव्य - २९-३०

इस विषय में बौद्धमतवालों का विचार (दोहा)

बौध छिनकवादी कहै, छिनभंगुर तन मांहि।
प्रथम समय जो जीव है, दुतिय समय सो नांहि।।२९।।
तातैं मेरै मतविषैं, करै करम जो कोइ।
सो न भोगवै सरवथा, और भोगता होइ।।३०।।

अर्थः-क्षणिकवादी बौद्धमतवाले कहते हैं कि जीव शरीर में क्षणभर रहता है, सदैव नहीं रहता। प्रथम समय में जो जीव है वह दूसरे समय[1] में नहीं रहता।।२९।। इससे मेरे विचार में जो कर्म करता है, वह किसी हाल में भी भोक्ता नहीं हो सकता, भोगनेवाला और ही होता है।।३०।।

काव्य-२९-३० पर प्रवचन

इस विषय में बौद्धमतवालों का विचार।

बौध छिनकवादी कहै, छिनभंगुर तन मांहि।
प्रथम समय जो जीव है, दुतिय समय सो नांहि।।२९।।
तातैं मेरै मतविषैं, करै करम जो कोइ।
सो न भोगवै सरवथा, और भोगता होइ।।३०।।

क्षणिक एक समय की पर्याय को ही सारा आत्मा मानते हैं। यह तो दृष्टान्त दिया है बौद्ध का। परन्तु अज्ञानी वर्तमान बुद्धि पर्याय को ही आत्मा मानते है सारा जगत। समझ में आया? एक समय की पर्याय, वही मैं। त्रिकाल ज्ञायक आत्मा हूँ—ऐसी दृष्टि नहीं, वह सब पर्यायबुद्धि—क्षणिकबुद्धि बौद्धमति ही है। समझ में आया? आहा! वर्तमान काल को माननेवाला, एक समय की पर्याय को माननेवाला, दृष्टि वहाँ पड़ी है, पर्याय के पीछे सारा द्रव्य पर्यायवान त्रिकाल है, ऐसी जिसको द्रव्यबुद्धि—ध्रुवबुद्धि

१. एक सेकिण्ड में असंख्य समय होते हैं।

नहीं, वह वर्तमान पर्याय को ही माननेवाला वर्तमान पर्यायबुद्धिवाला है। आहाहा!

'यह लोक मीठा परलोक किसने देखा' कहते हैं न? आहाहा! वर्तमान में प्रत्यक्षरूप देखते हैं हम तो। कहीं धूल में भी नहीं, सुन तो सही! पर्यायदृष्टिवान को अकेला विकार और दुःख है। समझ में आया? वर्तमान दृष्टि, वर्तमान दृष्टि, ऐसा कहते हैं। जिसकी वर्तमान दृष्टि है, (वह) क्षणिकबुद्धि बौद्ध जैसा है। समझ में आया? वर्तमान को ही सारा आत्मा मानता है। मर जायेगा तो कहाँ जायेगा? कि 'गोदन गाडा भरे।' हमारे काठियावाड़ में ऐसा कहते हैं। पीछे होता क्या? वह पर्याय तो रहेगी नहीं। हम तो वहाँ रहेंगे नहीं। परन्तु ध्रुवपने कौन रहता है? पर्याय नहीं रहेगी, परन्तु ध्रुव तो यही है न! समझ में आया? आहाहा!

बौध छिनकवादी कहै, छिनभंगुर तन मांहि... यह शरीर आदि सब क्षणभंगुर। **प्रथम समय जो जीव है**। यहाँ 'तन मांहि' शब्द लिया है। पहले समय जीव है, वह **दुतिय समय नांहि**। दूसरे समय में कहाँ है वह? वह तो चला गया। समझ में आया? तब कहते हैं कि परन्तु वह पहले क्षण का दूसरे समय में संस्कार आता है न उस जाति का? वह संस्कार आता है, परन्तु वह पूर्व पर्याय का नहीं। पूर्व पर्याय गयी, वह तो गयी। इतना ही आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? यह देखो न, प्रतिकूलता दुःख की आती है ऐसी तो, शरीर छोड़ दो। बस फिर यह वर्तमान देखनेवाला वहाँ नहीं। भविष्य में क्या हुआ कौन जानता है? यह सब वर्तमान माननेवाले हैं। प्रतिकूलता आती है न? फिर यह जहर पीकर मरे, स्त्री आदि अग्नि में जले, कैरोसीन छिड़ककर जले, यह वर्तमान माननेवाले हैं। आहाहा! 'मैं त्रिकाली ज्ञायकतत्त्व हूँ। जहाँ हूँ वहाँ मैं त्रिकाली हूँ—ऐसी दृष्टि नहीं, वह क्षणभंगुर (आत्मा माननेवाला) एक समय में (जो आत्मा है), वह दूसरे (समय) नहीं मानता।

तातैं मेरे मनविषैं, करै करम जो कोई... जो आत्मा कर्म—विकार करता है, हों! दूसरे क्षण में वह भोगनेवाला नहीं। करे दूसरा और भोगे दूसरा। परन्तु वह तो पर्याय दूसरी है, किन्तु ध्रुव तो तुम हो या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता (है कि) ध्रुव ही नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय को ही ध्रुव माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय को ही सारा आत्मा मानता है। आहाहा! वर्तमान मजा आता है। ऐई मणिभाई! लो, अब मणिभाई आ गये। देखो न, कितना वर्तमान मजा आवे वहाँ मुम्बई में। नहीं?

मुमुक्षु : तो भी मजा छोड़कर आये न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी आये परन्तु अभी तक तो मजा माना न वहाँ? वह तो दूसरा भाव आया अभी तो। दूसरा भाव, वह दूसरा आत्मा। आहाहा!

सो न भोगवै सरवथा, और भोगता होई... आहा! भाई! वर्तमान में पाप किया तो दूसरे समय में या दूसरे भव में भोगना पड़े, तो मैं तो रहूँगा ही नहीं। एक क्षण के (बाद) मैं वह आत्मा तो हूँ ही नहीं। दूसरे भाव को भोगा। दूसरे भाव को किया। परन्तु यह तो पर्याय से तेरी दृष्टि है। परन्तु करनेवाला त्रिकाली द्रव्य है, वही करता है पर्याय को और वही दूसरे भव में भोगता है। कहो। यह **बौद्धमतवालों का एकान्त विचार दूर करने को दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं,...** लो।

★ ★ ★

काव्य - ३१-३४

बौद्धमतवालों का एकान्त विचार दूर करने को दृष्टांत द्वारा समझाते हैं

(दोहा)

यह एकंत मिथ्यात पख, दूर करनकै काज।
चिद्विलास अविचल कथा, भाषै श्रीजिनराज।।३१।।

बालापन काहू पुरुष, देख्यौ पुर एक कोइ।
तरुन भए फिरिकैं लख्यौ, कहै नगर यह सोइ।।३२।।

जो दुहु पनमैं एक थौ, तौ तिनि सुमिरन कीय।
और पुरुषकौ अनुभव्यौ, और न जानैं जीय।।३३।।

जब यह वचन प्रगट सुन्यौ, सुन्यौ जैनमत सुद्ध।
तब इकंतवादी पुरुष, जैन भयौ प्रतिबुद्ध।।३४।।

अर्थ:-इस एकान्तवाद की मिथ्यापक्ष हटाने के लिये श्री मज्जिनेन्द्रदेव आत्मा के नित्यस्वरूप का कथन करते हुए कहते हैं।।३१।। कि किसी मनुष्य ने बालकपने में कोई नगर देखा, और फिर कुछ दिनों के बाद जवानी की अवस्था में वही नगर देखा तो कहता है कि यह वही नगर है जो पूर्व में देखा था।।३२।। दोनों अवस्थाओं में वह एक ही जीव था तब तो उसने स्मरण किया, किसी दूसरे जीव का जाना हुआ वह नहीं जान सकता था।।३३।। जब इस प्रकार का स्पष्ट कथन सुना और सच्चे जैनमत का उपदेश मिला, तब वह एकान्तवादी मनुष्य प्रतिबुद्ध हुआ और उसने जैनमत अंगीकार किया।।३४।।

काव्य-३१-३४ पर प्रवचन

यह एकंत मिथ्यात पख, दूर करनकै काज।
चिद्विलास अविचल कथा, भाषै श्रीजिनराज।।३१।।
बालापन काहू पुरुष, देख्यौ पुर एक कोइ।
तरुन भए फिरिकैं लख्यौ, कहै नगर यह सोइ।।३२।।
जो दुहु पनमैं एक थौ, तौ तिनि सुमिरन कीय।
और पुरुषकौ अनुभव्यौ, और न जानैं जीय।।३३।।
जब यह वचन प्रगट सुन्यौ, सुन्यौ जैनमत सुद्ध।
तब इकंतवादी पुरुष, जैन भयौ प्रतिबुद्ध।।३४।।

क्या कहते हैं ? एकान्त मिथ्यापक्ष दूर करने के काज जिनराज कहते हैं, **चिद्विलास अविचल कथा...** भगवान! तेरा ज्ञानविलास आत्मा तो अनादि का है। **बालापन काहू पुरुष...** दृष्टान्त देते हैं। बालपन में किसी पुरुष ने **देख्यौ पुर एक कोइ नगर...** देखा कि यह राजकोट। **तरुन भए फिरिकैं लख्यौं...** तरुण अवस्था हुई, तब फिर जाना कि यह नगर। यह नगर। जो मैंने पहले देखा था, वही नगर है। किसने जाना ? आहाहा! एक ही समय की पर्याय (जितना) हो तो, यह जो मैंने देखा था वही यह—ऐसी सन्धि

करनेवाला तो ध्रुव है। समझ में आया? एक समय की पर्याय में तूने देखा कि यह नगर। दूसरे क्षण में या दूसरे भव में या दूसरे वर्ष में वह नगर पहले भी था। यदि आत्मा क्षणिक हो तो क्षणिक तो (चला) गया। वह कहते हैं कि 'मैंने जो यह देखा था, वह मैं हूँ, पहले देखा था, वही मैं हूँ।' यह तो ध्रुव आत्मा की सिद्धि हो गयी। समझ में आया? आहाहा!

यह राजुल को ऐसा पूछा था। वह राजुल लड़की है न। जातिस्मरण। बताया था न परसों? तो हमारे पण्डितजी ने उससे प्रश्न किया था। वहाँ ले जाने से पहले। कि 'राजुल! तुझे वहाँ ले जायेंगे तो तेरे पिता को देखकर पहिचानेगी? तेरी माता को पहिचानेगी? तेरे काका को पहिचानेगी?' तो कहे, 'हाँ'। 'तो तुम वहाँ गीता को पहिचानोगी?' ऐसा पूछा। तो जवाब दिया कि 'गीता को पहिचानेगी? बापूजी! क्या कहते हैं? गीता वहाँ कहाँ है? गीता तो यह रही।' समझ में आया? गीता। गीता तो पूर्वभव में थी। परन्तु वही यहाँ आयी है। मैं हूँ गीता। पूर्व की जो गीता थी, वह तो मैं हूँ। चलो बेटा! अब तेरी बात निश्चित हो गयी। पूर्व की और वर्तमान की सन्धि हो गयी। पूर्व में जो जूनागढ़ देखा था, वही वर्तमान में तुम कहती हो कि वही मैं गीता हूँ। समझ में आया? आहाहा!

तरुन भए फिरिकै लख्यौ, कहै नगर यह सोइ, जो दुहु पनमें एक थौ... दोनों में जो अकेला था अकेला। **तौ तिनि सुमिरन कीय।** स्मरण की बात आती है न? आहा! एक पुरुष का सम्बन्ध आया कि यह नगर (जिसने) पहले देखा था, वह 'मैं हूँ' और यह नगर वर्तमान में देखते हैं, वह भी 'मैं हूँ'। **और पुरुषकौ अनुभव्यौ, और न जानैं।** दूसरे ने अनुभव किया, दूसरा क्यों जाने? तूने जाना था वही तू वर्तमान में है। आहाहा! जातिस्मरण होता है, स्मरण होता है सब। यह तो बाहर की दृष्टान्त की बात है। इस मकान में मैं पचास वर्ष रहा था, वही मकान यह है। किसने जाना? क्षण-क्षण का आत्मा का सम्बन्ध किसने किया? सम्बन्ध तो त्रिकाली में से आया। समझ में आया? ध्रुव का निश्चय हो गया वहाँ।

जब यह वचन प्रगट सुन्यौ, सुन्यौ जैनमत सुद्ध, तब इकंतवादी पुरुष, जैन भयौ प्रतिबुद्ध... एकान्तवादी मनुष्य पर्यायबुद्धि छोड़कर... यह तो अनादि संसार में

पर्यायबुद्धि—क्षणिकबुद्धि है अज्ञानी की। क्षण पहले मैं था, वही मैं यह हूँ, ऐसी नित्यबुद्धि हुए बिना, पर्यायबुद्धि नाश होती नहीं। तो पर्यायबुद्धि नाश कराने को यह बात करते हैं। समझ में आया? भगवान! तुम तो त्रिकाल हो न, नाथ! एक-एक भव की, दो-दो भव की बात जानते हैं। समझ में आया? तो जाननेवाला—स्मरण करनेवाला तो कायम था, उसने जाना। तो क्षणिक आत्मा को माननेवाला झूठा है। त्रिकाली ज्ञायकभाव को मानना और अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२५, श्रावण शुक्ल १३, बुधवार, दिनांक ०४-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-३५ से ३८

यह समयसार नाटक है। सर्वविशुद्धि अधिकार। अधिकार यह चलता है कि अनादि का प्राणी अपनी क्षणिक पर्याय जो समय-समय में (होती) है, उसको ही मानता है। बौद्ध का तो दृष्टान्त दिया है। अनन्त बार द्रव्यलिंग—नग्नपना धारण किया, परन्तु पर्यायबुद्धि नहीं छोड़ी। एक अंश के ऊपर उसकी दृष्टि है तो शुभभाव में धर्म है, ऐसा मान लिया, द्रव्यलिंग धारण करके, मुनि नाम धराकर। यह अधिकार बहुत आया है भावपाहुड में। 'हे महाजस! तूने द्रव्यलिंग इतनी बार धारण किया कि पश्चात् चौरासी के अवतार में तेरे जन्म-मरण में कोई स्थान बाकी नहीं रहा। इतना जन्म-मरण तूने किया।' द्रव्यलिंग धारण करके भी उसकी बुद्धि में पर्याय और शुभराग ही रहा। 'पर्यायमूढा परसमया' ऐसा पाठ है, प्रवचनसार, ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन अधिकार, (गाथा) ९३। (इस अधिकार की) पहली गाथा है।

'**पर्यायमूढा**' यह बात सूक्ष्म है। बौद्ध और क्षणिक तो कहते हैं, परन्तु जैन में रहने पर भी, अपना स्वभाव त्रिकाली ध्रुव का आश्रय लिया नहीं और उसकी प्रतीति की नहीं, तो उसने एक समय की पर्याय को ही अपना आत्मा माना और दूसरे समय दूसरी पर्याय होती है तो इतना ही मैं आत्मा हूँ। क्योंकि द्रव्य जो त्रिकाली है, ध्रुव रहनेवाली चीज़ है, उस ओर तो दृष्टि दी नहीं। समझ में आया? अष्टपाहुड़ में बहुत लिया है कि 'हे महाजस!' आता है न, भाई! महाजस। अरे! तूने भावलिंग बिना द्रव्यश्रमण(पना) लिया, त्रिकाली चिदानन्दस्वरूप भगवान की शुद्ध भावना बिना तूने द्रव्यलिंग की ऐसी क्रिया अनन्त बार की और तूने (अनन्त) जन्म-मरण इतने किये कि तेरी माता को तेरे मरण से (जो) रुदन होता है, उस रुदन के नीर से सारे समुद्र भर जायें। ऐसा तो माता के रुदन का अश्रु का समुद्र भरा है। ओहोहो! समझ में आया?

बालक मर जाये और माता छातीफाट रुदन करे। बना था न, देखो न यहाँ गत शनिवार को। २४ वर्ष का लड़का। दो वर्ष का विवाह। वह बस में (बैठा था) और ट्रक आया। जैसे रोटी बेलते हैं, वैसा हो गया। माता को खबर पड़ी। गयी, सहन नहीं हुआ।

चिल्लाहट... हाय! बेटा! तेरी राह कहाँ देखूँगी। ऐसा रुदन करे न फिर! क्योंकि पुलिस जहाँ तक आवे नहीं, तब तक तो मुर्दा पड़ा रहे। ऐसा मरण द्रव्यलिंग धारण कर पर्यायमूढ़ में (किया), द्रव्यलिंग के पीछे भी ऐसे अनन्त मरण किये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु तेरी चीज़ शुद्ध ध्रुव अखण्डानन्द परमात्मा अपनी चीज़ जो शाश्वत्, उस पर तूने दृष्टि नहीं दी। समझ में आया? कहते हैं... १५वाँ कलश है। नीचे है कलश।

वृत्त्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्।
अन्य: करोति भुङ्क्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा।।१५।।

उसका पद ३५।

★ ★ ★

काव्य - ३५

बौद्ध भी जीव द्रव्य को क्षण-भंगुर कैसे मान बैठे इसका कारण बतलाते हैं

(सवैया इकतीसा)

एक परजाइ एक समैमैं विनसि जाइ,
दूजी परजाइ दूजै समै उपजति है।
ताकौ छल पकरिकैं बौध कहै समै समै,
नवौ जीव उपजै पुरातनकी छति है।।
तातै मानै करमकौ करता है और जीव,
भोगता है और वाकै हिए ऐसी मति है।
परजौ प्रवांनकौं सरवथा दरब जानैं,
ऐसे दुरबुद्धिकौं अवसि दुरगति है।।३५।।

शब्दार्थ:-परजाई=अवस्था। पुरातन=प्राचीन। छति (क्षति)=नाश। मति=समझ। परजौ प्रवांन=हालातों के अनुसार। दुरबुद्धि=मूर्ख।

अर्थ:-जीव की एक पर्याय एक समय में नष्ट होती है और दूसरे समय में दूसरी पर्याय उपजती है, और जैनमत का सिद्धान्त भी है, सो उसी बात को पकड़ के बौद्धमत

कहता है कि क्षण-क्षण पर नया जीव उपजता है, और पुराना विनशता है। इससे वे मानते हैं कि कर्म का कर्ता और जीव है, तथा भोक्ता और ही है, सो उनके चित्त में ऐसी उलटी समझ बैठ गई है। श्रीगुरु कहते हैं कि जो पर्याय के अनुसार ही द्रव्य को सर्वथा अनित्य मानता है, ऐसे मूर्ख की अवश्य कुगति होती है।

विशेष :-क्षणिकवादी जानते हैं कि मांस-भक्षण आदि अनाचार में वर्तनेवाला जीव है, वह नष्ट हो जावेगा, अनाचार में वर्तनेवाले को तो कुछ भोगना ही नहीं पड़ेगा, इससे मौज करते हैं और मनमाने वर्तते हैं। परन्तु किया हुआ कर्म भोगना ही पड़ता है। सो नियमते वे अपने आत्मा को कुगति में पटकते हैं।।३५।।

काव्य-३५ पर प्रवचन

एक परजाइ एक समैमैं विनसि जाइ,
दूजी परजाइ दूजै समै उपजति है।
ताकौ छल पकरिकैं बौध कहै समै समै,
नवौ जीव उपजै पुरातनकी छति है।।
तातै मानै करमकौ करता है और जीव,
भोगता है और वाकै हिए ऐसी मति है।
परजौ प्रवांनकौं सरवथा दरब जानैं,
ऐसे दुरबुद्धिकौं अवसि दुरगति है।।३५।।

समझ में आया? एक पर्याय एक समय में होती है, द्रव्य आत्मा में। उस पर्याय का काल तो एक समय है। ध्रुव त्रिकाली द्रव्य जो है, उसका काल त्रिकाल है। एक समय की अवस्था बदलती है। **दूजी परजाइ दूजै समै उपजाति है, ताकौ छल पकरिकैं...** जैनदर्शन भी ऐसा कहता है। पर्याय तो एक समय ही रहती है। समझ में आया? पर्याय है सत्, परन्तु एक समय का सत् है। समझ में आया? एक समय है, इतना सत् है वह। दूसरे समय तो उसका व्यय हो जायेगा। कहते हैं, **दूजी परजाइ दूजै समै उपजाति है, ताकौ छल पकरिकैं, बौध** (अज्ञानी) **कहे समै समै, नवौ जीव उपजै पुरातनकी छति**

है... पर्याय नयी होती है, तो जीव भी नया होता है। जीव ही पर्याय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वर्तमान पर्याय—अवस्था पर जिसकी दृष्टि है, (वे) सब क्षणिक बौद्धमति हैं। समझ में आया?

तो कहते हैं, **नवौ जीव उपजै पुरातनकी छति है...** जीव ही नया उत्पन्न होता है। जैन भी कहते हैं या नहीं? एक समय में पर्याय दूसरे समय नहीं रहती। तुम कहते हो, ऐसा ही हम मानते हैं। परन्तु तुम तो (मानते हो कि) एक समय की पर्याय है, इतना ही जीव है। दूसरे समय दूसरा। डर नहीं है न जगत को, भविष्य का डर नहीं है कि पाप करेंगे (तो क्या होगा)। (जो होना होगा सो) होगा। तो सब पर्याय को ही माननेवाले हैं। आहाहा! कहाँ जायेगा, कहाँ (जन्म) होगा? क्योंकि.... वह नीचे अर्थ में कहा है।

क्षणिक माननेवाला (मानता है कि) माँसभक्षण आदि अनाचार में वर्तनेवाला जीव अन्य है और उसका फल भोगनेवाला जीव (अन्य है)। और पाप (करके) भोगने (के लिये) हम तो रहेंगे नहीं। आहाहा! अन्य करे, अन्य भोगे। अन्य पर्याय में विकार दु:ख पाप होता है, अन्य पर्याय भोक्ता है। तो वर्तमान में चाहे इतना पाप करे, हमें इतना भोगना नहीं पड़ता। आहा! समझ में आया? नीचे है विशेष में।

क्षणिकवादी जानते हैं कि मांस-भक्षण आदि अनाचार में वर्तनेवाला जीव है, वह नष्ट हो जावेगा। अनाचार में वर्तनेवाले को तो कुछ भोगना ही नहीं पड़ेगा, इससे मौज करते हैं। राग तो यहाँ है। वर्तमान में राग आदि, द्वेष आदि में ठीक है, ऐसा (मानकर) मजा मानते हैं, वह सब पर्यायबुद्धि मूढ़ जीव है। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गये, वह वास्तव में तो पर्यायबुद्धि था। शुभभाव रागभाव... पर्यायबुद्धिवाले की दृष्टि राग के ऊपर जाती है। लम्बाये तो पर के ऊपर जाती है। तो वही मेरा धर्म है और वही मैं हूँ। त्रिकाल भगवान चिदानन्द प्रभु अन्तर पर्यायबुद्धि में रह गया।

ऐसे अज्ञानी को, **करमकौ करता है और जीव...** और **भोगता है और, वाकै हिए ऐसी मति है।** अरे! 'मैं' ही वर्तमान में हूँ, वही भविष्य में भी 'मैं' ही हूँ। समझ में आया? ऐसा मानता नहीं। ऐसी दृष्टि हो तो उसकी द्रव्य पर दृष्टि जाये। महासत्ता भगवान पूर्णानन्द प्रभु वह मैं हूँ—ऐसी दृष्टि जाये, तब तो पर्याय के ऊपर बुद्धि रहे नहीं। शुभभाव से धर्म होता है, ऐसी बुद्धि रहे नहीं। आहाहा! वहाँ तो अष्टपाहुड में भावपाहुड

में तो मुनि को लक्ष्यकर बहुत लिया है। 'हे महाजस! महामुनि! हे मित्र!' ऐसा कहा है, हों! आहाहा! तेरी पर्याय में राग आया। उसकी क्रिया (मैं) तेरा धर्म मानकर, द्रव्यलिंग में तेरा धर्म मानकर भावलिंग से तू चूक गया। आहाहा!

बहुत शब्द! कुन्दकुन्दाचार्य भावपाहुड़ में इतनी बात वैराग्य की भी करते हैं और उसके साथ द्रव्यलिंग का भी तिरस्कार करते हैं। अरे! तूने ऐसा मुनिपना, पंच महाव्रत का विकल्प द्रव्यक्रिया, अट्ठाईस मूलगुण का राग, नग्नपना अनन्त बार तुझे आया, '**जीव भावणवज्जिओ**' ऐसा पाठ हैं। '**जीव भावणवज्जिओ**' एक वीतरागस्वरूप भगवान जिसकी भावना तूने की (नहीं)। राग की भावना, वह तो जिनभावना से विरुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? मैं राग करूँ, मैं पुण्य करूँ और पुण्य से मुझे लाभ होगा, धर्म होगा—वह सब पर्यायबुद्धि है, सूक्ष्म पर्यायबुद्धि है। समझ में आया? भोक्ता अन्य है और कर्ता अन्य है—ऐसी तेरी मति **परजौ प्रवांनकौ सरवथा दरब जानै...** एक समय की पर्याय को ही तूने पूरा द्रव्य माना है। आहाहा!

आनन्दघनजी में भी आता है। 'स्थिरता एक समय में ठानै, उपजे—विनसे तब ही, उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी न कबहीं, अबधु नट नागर की बाजी।' नागर—चौरासी के अवतार में रुलनेवाला, आहा! एक समय में अवस्था उपजे, दूसरे समय में व्यय हो। उलट-पुलट हुआ न? उपजे-विनशे... उपजे-विनशे। स्थिरता एक समय में ठानै। और कायम ध्रुव एक समय में वह सदा रहता ही है। ऐसा ध्रुव का तूने शरण लिया (नहीं)। आहाहा! 'या हम सुनी न कबहीं।' ऐसी बात हमने कभी सुनी नहीं। आहाहा! मेरी चीज़ त्रिकाल है और समय-समय पलटती है।

अभी एक वेदान्ती आया था। पर्याय सत् आपने लिखा है आत्मधर्म में। आत्मधर्म पढ़े और श्रद्धा वेदान्त की। था जैन स्थानकवासी। 'भाई! आपने सत्, पर्याय को सत् लिखा है।' भाई! पर्याय को सत् कैसे लिखा है? एक समय की है, ऐसे। यह त्रिकाली है, इसलिए सत् है—ऐसा नहीं। उसको ऐसा कहना था कि आत्मधर्म में भी पर्याय को सत् कहते हो आप। सत्, वह तो त्रिकाली हो, उसे ही सत् कहना, ऐसा। समझ में आया? अभी आया था। रामजीभाई ने पहिचान करायी थी। पहिचान दी नहीं थी, एकान्त (कागज) था। एकान्त बात थी। मुझे तो खबर थी कि यह ही व्यक्ति है। वहाँ

राजकोट में पत्र आया है उसका कि यह सब भोंट लोग तुम्हारी बात मानते हैं। भोंट समझे?

मुमुक्षु : मूर्ख।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख अथवा बुद्धिरहित। ऐसा ही लगे। आहाहा! परन्तु मार्ग तुम कहते हो, ऐसा नहीं। मार्ग ऐसा है। त्रिकाली.... मूल यह कहना है। एक वस्तु त्रिकाली ध्रुव ही है। उसमें पर्याय भी एक समय की है, वह (असली) चीज़ है नहीं।

मुमुक्षु : इसमें मूर्खपना आया कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

मुमुक्षु : मूर्खपना तो पर्याय में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भोंट—मूर्खाई तो पर्याय में आयी। सुधार-बिगाड़ तो पर्याय में होता है। ध्रुव में सुधार-बिगाड़ कहाँ है? चाहे तो निगोद में एक अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय रह जाती है ज्ञान की, तो भी कुछ ध्रुव में कमी रह जाती है या ध्रुव में विशेष (पना) होता है, ऐसा है? क्या कहा? निगोद में एक समय में अक्षर के अनन्तवें भाग की पर्याय रह गयी है, विकार। परन्तु उस समय भी ध्रुव तो पुष्ट है, ऐसा है? वह तो है ही है। ध्रुव तो त्रिकाल है ही है। और जब केवलज्ञान होता है पर्याय में सुधार (विकास) करके, तो भी केवलज्ञान हुआ तो ध्रुव में कमी हुई, बहुत (पूर्ण) पर्याय आयी इसलिए (ध्रुव में) कमी हुई, अल्प पर्याय अक्षर के अनन्तवें भाग में है तो ध्रुव में पुष्टि हुई, ऐसा है?

मुमुक्षु : बिल्कुल नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

ध्रुव अनादि-अनन्त सच्चिदानन्द प्रभु—उसकी दृष्टि बिना... एकरूप रहनेवाला भगवान ध्रुव तो है, सदृश है। आहाहा! यह दृष्टि बिना पर्याय को ही अपना मानते हैं... वह भी बड़ी चर्चा हुई है। (प्रवचनसार) ९३ गाथा में पर्यायमूढ़ा कहा, तो जैन में भी एक कहते हैं सामने। यदि पर्याय न मानो तो वेदान्त हो जाता है। अरे! परन्तु सुन तो सही! अभी भी चर्चा हुई थी। जैन गजट में बड़ा (लेख) आया था। पर्यायबुद्धि

मिथ्यादृष्टि को ही कहते हैं। नहीं, झूठ है, पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि नहीं। पर्याय को न माने तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। अरेरे! पर्यायदृष्टि का अर्थ क्या? एक समय की पर्याय है, इतना मानना, वह पर्यायदृष्टि है। ज्ञानी पर्याय है, ऐसा मानते तो हैं, परन्तु दृष्टि पर्याय के ऊपर नहीं। समझ में आया?

यह जैनगजट में या उसमें आया था। बहुत लेख आया था। ऐसा पढ़े न रतनचन्दजी, जवाब दे। पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि, द्रव्यदृष्टि वह समकितदृष्टि। और पर्यायदृष्टि मिथ्यादृष्टि कोई कहते हैं। कहे, नहीं, ऐसा नहीं है। वह आता है न, पुरुषार्थसिद्धि उपाय में अन्त में। क्या कहलाता है तुम्हारे?

मुमुक्षु : ऐकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुत्वमितरेण।

पूज्य गुरुदेवश्री : घी (मक्खन) निकालना हो न (तो) एक डोरी खेंचना पड़े और दूसरी डोरी ढीला करना पड़े। इस ओर खींचना है तो यह ढीला करना पड़े। वह निकालते हैं न, घी, मक्खन-मक्खन। देखो, द्रव्य को गौण करके पर्याय को मुख्य करना हो तो पर्याय है, ऐसा निर्णय करना। अब यह दूसरी चीज़ है। है एक समय में अंश, यह कौन नहीं मानता? परन्तु पर्याय अंश है, इतने पर ही दृष्टि है तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में। बड़ा पृष्ठ भरा है। स्वामी कार्तिकेय। कि भाई! एक अंश... अंश... अंश तो अनादि से मानता है। समझ में आया? परन्तु त्रिकाली ध्रुव अव्यक्त द्रव्य जो है, (उसे मानता नहीं) और प्रगट अंश है, उसको मानता है। प्रगट अंश जो है इतना कहा (कि) है, है। परन्तु यह जो अंश है, वह तो एक दशा है। उसके पीछे सारी चीज़ ध्रुव तो रह जाती है। जिसमें से पर्याय उठती है, वह तो ध्रुव त्रिकाल है। आहाहा! ऐसे त्रिकाल ध्रुव की दृष्टि बिना अकेले अंश को माने, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा!

परजौ प्रवांनकौ सरवथा दरब जानै... सरवथा,... देखो! पर्याय पर्यायरूप है, परन्तु एक समय की है और द्रव्य त्रिकाल है। दोनों मिलकर प्रमाण का विषय होता है। अकेली पर्याय को सर्वथा द्रव्य प्रमाण माने, ऐसा कहते हैं। देखो! **सरवथा** है। **ऐसे दुरबुद्धिकौं अवसि दुरगति है।** आहाहा! उसमें स्पष्टीकरण लिया है नीचे, देखो! **इससे**

वे मानते हैं कि कर्म का कर्ता और जीव है तथा भोक्ता और ही है, सो उनके चित्त में उल्टी समझ बैठ गई है। श्री गुरु कहते हैं कि जो पर्याय के अनुसार ही द्रव्य को सर्वथा अनित्य मानता है। एक समय की दशा प्रगट है, वही मैं हूँ, और अप्रगट सारा द्रव्य है, वह तो पर्याय के पीछे पड़ा है। समझ में आया ? सर्वविशुद्ध अधिकार में यह लिया है, भाई! अधिकार तो सर्वविशुद्ध है, उसमें यह क्या लिया ? समझ में आया ?

यहाँ तो वहाँ तक कहा कि सर्वविशुद्ध का अर्थ द्रव्य में बन्ध और मोक्ष की पर्याय भी नहीं। जो ध्रुवतत्त्व है, ध्रुवतत्त्व है, द्रव्यतत्त्व है, वह सर्वविशुद्ध है। उसमें बन्ध और मोक्ष—दो पर्याय है ही नहीं। वह तो व्यवहार हो गया। बन्ध-मोक्ष की पर्याय तो व्यवहार हो गया। निश्चय जो ध्रुव है, उसमें (पर्याय) है नहीं। आहा! ध्रुव तो पर्याय को स्पर्शता ही नहीं। अरे, गजब बात है! अमरचन्दजी! समझ में आया ? पर्याय ध्रुव को स्पर्शती नहीं और ध्रुव पर्याय को स्पर्शता नहीं। अलिंगग्रहण में आया है। अलिंगग्रहण। बीस बोल हैं न! प्रवचनसार १७२ गाथा। तो उसमें आया है। समझ में आया ? अर्थावबोधरूप गुणविशेष, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष उसके आलिंगनरहित अकेला द्रव्य है। नन्दकिशोरजी! सूक्ष्म ऐसा है। आहाहा!

(अलिंगग्रहण में) १८-१९-२०। बीस बोल हैं न! १९ और २०। उसमें १९ बोल में ऐसा लिया है कि द्रव्य, (जो) पर्याय का विशेष है, उसको स्पर्श किये बिना—आलिंगन किये बिना द्रव्य रहता है। उसका नाम द्रव्य कहा जाता है। और फिर बीस बोल में कहा कि द्रव्य को स्पर्श किये बिना पर्याय रहती है। आहाहा! क्या कहा ? द्रव्य जो है, उसके स्पर्श किये बिना, प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो सामान्य द्रव्य, उसको आलिंगन किये बिना शुद्धपर्याय रहती है। शुद्धपर्याय कहने में आती है। आहाहा! शुद्धपर्याय जो है, वह द्रव्य त्रिकाली है, उसको छूती ही नहीं और त्रिकाली ध्रुव जो है, वह एक समय की पर्याय को छूता नहीं। दोनों भिन्न हैं। आहाहा! हीराभाई! २०वाँ (बोल) आता है न अलिंगग्रहण में ? पुस्तक हो गयी है। यहाँ तो सब हो गया है। अभी तो ३७वाँ चातुर्मास चलता है। सब व्याख्यान एक-एक चीज़ का बहुत आ गया है। आत्मधर्म में आ गया है। आहा! विचार करना पड़े भैया!

यहाँ कहते हैं, लो, वहाँ तो पर्याय, वही आत्मा (ऐसा) माना, भाई! यह शुद्धपर्याय

है, उसको आत्मा माना। क्यों? कि अनुभव है, वह उसका है, द्रव्य का अनुभव नहीं। अनुभव तो पर्याय का होता है। सिद्ध को भी पर्याय का अनुभव है। अनुभव कोई द्रव्य का हो? द्रव्य तो ध्रुव है। तो द्रव्य का अनुभव होता नहीं। द्रव्य का एक समय में अनुभव हो तो दूसरे समय द्रव्य नाश हो जाये। समझ में आया? अनुभव में आनेवाली तो एक समय की अवस्था ही है। इसलिए अनुभव में आया वह 'मैं'। लो, पर्याय में (मैं) माना तो भी द्रव्य दृष्टि है और सम्यग्दृष्टि है वह। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! वहाँ ऐसा कहा... सूक्ष्म है यहाँ, पन्नालालजी! किसी समय मुश्किल से आवे और फिर सूक्ष्म हो वहाँ सिर घूम जाये। पूरा बदल जाये ऐसा है यह संसार। (संसार) नाश होकर आत्मा प्रगट हो जाये, ऐसी बात है। आहा!

अरे, भगवान! तूने जन्म-मरण करके, अरे! तुझे थकान लगी नहीं। विश्राम लेने की चीज़ क्या है, उसकी तुझे खबर पड़ी नहीं। यहाँ तो ऐसा लक्ष्य में आ गया, लो। अभी हों, कि यहाँ पर्याय (को द्रव्य) कहा उसको मिथ्यादृष्टि कहा। भाई! और वहाँ (अलिंगग्रहण में) अकेली पर्याय, वह मैं हूँ (ऐसा जाननेवाले को) समकिती कहा। अमरचन्दजी! आहाहा! अभी और वह ख्याल में आ गया। ओहोहो! यहाँ तो कहते हैं कि मेरा द्रव्य तो द्रव्य है ही, परन्तु उस द्रव्य को स्पर्शे बिना मेरा आनन्द का जो अनुभव वर्तमान का है, वह मेरे (वेदन) में आया, वह मैं। आनन्द के वेदन में नहीं आया, वह द्रव्य है। आहाहा! सेठ!

यहाँ कहते हैं कि अकेली पर्याय है अशुद्ध... यहाँ तो अशुद्ध अंश (लिया) है न? और अंश को (सारा द्रव्य) मानते हैं तो अशुद्धता ही आती है और अशुद्धता का वेदन, वह तो मिथ्यादृष्टि वेदन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? पर्यायबुद्धि में अशुद्धता का वेदन है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। यहाँ अकेली पर्याय को मानता है (वह तो) मिथ्यादृष्टि है, परन्तु पर्याय में वेदन है अशुद्धता का। वह अशुद्धता का वेदन मैं हूँ, ऐसी मिथ्यामान्यता भी अज्ञानी में है। सम्यग्दृष्टि को अशुद्ध का वेदन है नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को वेदन तो पर्याय का ही है, परन्तु शुद्ध का है। समझ में आया? गजब बात! जैनदर्शन सत्यदर्शन की शैली कोई अलौकिक है! जगत में किसी दूसरे के साथ कहीं मिलान होता नहीं, ऐसी चीज़ है। लोगों को सुनने में आवे नहीं,

इसलिए गड़बड़-मरोड़ करके कुछ का कुछ उसको मान लेते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसे दुर्बुद्धि सर्वथा पर्याय को मानते हैं और पर्याय (बुद्धि) वाले को उसका वेदन भी अशुद्ध वेदन ही है। वह दुर्बुद्धि दुर्गति को जानेवाला है। भले स्वर्ग आदि में जाये, परन्तु वह स्वर्ग भी दुर्गति ही है। समझ में आया? आहाहा!

दूसरा (पद) ३६, ३७। **दुर्बुद्धि की दुर्गति होती है।**

★ ★ ★

काव्य - ३६-३७

दुर्बुद्धि की दुर्गति ही होती है

(दोहा)

कहै अनातमकी कथा, चहै न आतम सुद्धि।
रहै अध्यातमसौं विमुख, दुराराधि दुरबुद्धि।।३६।।

दुरबुद्धी मिथ्यामती, दुरगति मिथ्याचाल।
गहि एकंत दुरबुद्धिसौं, मुकत न होइ त्रिकाल।।३७।।

शब्दार्थः-अनातम=अजीव। अध्यात्म=आत्मज्ञान। विमुख=विरुद्ध। दुराराधि= किसी भी तरह से समझनेवाला। दुर्बुद्धि=मूर्ख।

अर्थः-मूर्ख मनुष्य अनात्मा की चरचा किया करता है, आत्मा का अभाव कहता है-आत्मशुद्धि नहीं चाहता। वह आत्मज्ञान से परान्मुख रहता है, बहुत परिश्रम पूर्वक समझाने से भी नहीं समझता।।३६।। मिथ्यादृष्टि जीव अज्ञानी है, और उसकी मिथ्याप्रवृत्ति दुर्गति का कारण है, वह एकान्तपक्ष ग्रहण करता है, और ऐसी मूर्खता से वह कभी भी मुक्त नहीं हो सकता।।३७।।

काव्य-३६-३७ पर प्रवचन

कहै अनातमकी कथा, चहै न आतम सुद्धि।
रहै अध्यातमसौं विमुख, दुराराधि दुरबुद्धि।।३६।।
दुरबुद्धी मिथ्यामती, दुरगति मिथ्याचाल।
गहि एकंत दुरबुद्धिसौं, मुकत न होइ त्रिकाल।।३७।।

देखो भाषा! **मूर्ख मनुष्य अनात्म की क्रिया करता है।** आहाहा! शुभराग और पुण्य तथा उससे स्वर्ग मिले, ऐसी चर्चा अज्ञानी करते हैं। पर्यायबुद्धिवाले राग की और पुण्य-विकार की चर्चा करते हैं। आहाहा! समझ में आया? **कहे अनातम की कथा...** पर्यायबुद्धि है, वह अनात्मा है वास्तव में। एक अंश में सारा आत्मा आता (नहीं)। यह व्यवहार आत्मा है, निश्चय से अनात्मा है। सारा आत्मा नहीं, इसलिए निश्चय से एक अंश अनात्मा है। आहाहा! गजब गम्भीर बात डाली है। समझ में आया? आया था न वह। वास्तव में आत्मा तो हम इसको कहते हैं, त्रिकाली निरावरण सहजानन्दमूर्ति परम अमृत का सागर, उसे ही आत्मा वास्तव में कहते हैं। पर्याय को वास्तव में आत्मा (नहीं कहते)। आहाहा! समझ में आया?

कहै अनातमकी कथा, चहै न आतम सुद्धि... देखो, भाषा। जिसकी पर्यायबुद्धि है, वह अनात्मा की कथा और वह (पर्याय) है, इतना माननेवाला, आत्मा की शुद्धि उसे नहीं (होती)। त्रिकाल 'मैं शुद्ध हूँ', ऐसी दृष्टि वह करता नहीं। आहाहा! सर्वविशुद्ध अधिकार में डाला है यह अधिकार। **रहै अध्यातमसौ विमुख...** आत्मज्ञान से तो विमुख रहते हैं, ऐसा कहते हैं। राग और पर्याय की बुद्धि में वहाँ रुक गया है। आहाहा!

रहै अध्यातमसौ विमुख... आत्मा वस्तु त्रिकाल उसका जो ज्ञान—आत्मज्ञान से तो विमुख रहा। राग के और एक अंश के सन्मुख रहा। आहाहा! **दुराराधि दुरबुद्धि...** कैसे? **बहुत परिश्रमपूर्वक समझाने से भी नहीं समझता।** ऐसी भाषा ली है। **दुराराधि...** यह समझ ही नहीं सके। पर्यायबुद्धि क्या? द्रव्यबुद्धि क्या? **दुराराधि** (अर्थात्) समझ नहीं सकता। महा परिश्रमपूर्वक समझाने से भी नहीं समझता। **दुरबुद्धि**। आहाहा!

दुरबुद्धि मिथ्यामती दुरगति मिथ्याचाल... यह राग और एक समय की पर्याय को ही आत्मा माननेवाला दुर्बुद्धि है—मिथ्यामति है। **दुरगति मिथ्याचाल...** आहाहा! **गहि एकंत दूर बुद्धिसौ, मुकत न होइ त्रिकाल...** वह आता है न, पर्यायबुद्धि नाहि।

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त,
साचे साचे बैन कहै साचे जैनमती है।
काहूके विरुद्धि नाहि परजाय-बुद्धि नाहि,
आतमगवेषी न गृहस्थ है न जती है।।७।।

आता है न वह। समयसार नाटक में आता है। है न यहाँ। कहाँ आया? पहले शुरुआत में आता है।

मुमुक्षु : सातवाँ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सात पृष्ठ। लो, सातवाँ पृष्ठ है। उसमें—शरीर में अहंबुद्धि रखी है, परन्तु मूल तो पर्याय में अहंबुद्धि है।

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त... जैनधर्मी समकिती धर्मी ऐसा होता है। **स्वारथके साचे...** अपना स्वार्थ में सत्य है, दूसरे का हो न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। ऐई! समकिती स्वार्थी है। अपना प्रयोजन सिद्ध करने में लगा है। स्वार्थी लिखा है न? दूसरे का कर सकता नहीं किसी काल में। अपना सब प्रयोजन सिद्ध करने में स्वार्थी है। स्व-अर्थी। **परमारथके साचे...** परम पदार्थ के साँचे हैं दृष्टि में। परम पदार्थ जिसको दृष्टि में पड़ा है। **साचे साचे बैन कहैं साचे जैनमती हैं...** सत्य बात कहे, पर्याय पर्यायरूप से; राग रागरूप से; द्रव्य द्रव्यरूप से, जैसी है ऐसी बात जैनमति करते हैं।

काहूके विरुद्धि नाहि... किसी का विरोधी नहीं। सब भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। पर्याय में भूल है, वह क्या देखे? अपनी पर्याय भूल निकाल दी। पर्याय में समता... समता... सर्व प्राणी के प्रति समता है **परजायबुद्धि नाहि...** वास्तव में तो एक समय की पर्याय की बुद्धि ज्ञानी को होती नहीं, यह कहना है। समझ में आया? **आतमगवेषी न गृहस्थ न जती है...** समकिती की बात है न, चौथे गुणस्थान (की बात है)। आतम का गवेषी है। वह राग और पुण्य का गवेषी नहीं है। आहाहा! **न गृहस्थ है...** श्रावक भी

नहीं। अभी पंचम गुणस्थान हुआ ही नहीं। **न जती है...** आत्मस्वरूप के खोजक हैं, न अणुव्रती है, न महाव्रती है। देखो, लिखा है न, अर्थ में लिखा है। सम्यक्‌दर्शी नहीं अणुव्रतधारी, नहीं महाव्रतधारी, आत्मा का खोजी है। आहाहा! अर्थ में है।

सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमैं प्रगट सदा... ऋद्धि भी आत्मा में देखते हैं, सिद्धि भी आत्मा में, वृद्धि भी आत्मा में। अपने आत्मा में ऋद्धि, सिद्धि और वृद्धि है। बाहर में ऋद्धि नहीं है। **अंतरकी लच्छिसौं अजाची लच्छपती है...** अन्तर की लक्ष्मी से **अजाची लच्छपती...** अपने ध्रुव का लक्षपति है। अपने लक्ष्य का पति है। आहाहा! **दास भगवन्त के...** आहाहा! देखो न आया था न यह। कुन्दकुन्दाचार्य .... आता है न? अपने समवसरण में स्तुति की, उसमें आया था? कुन्दकुन्दाचार्य एक बार विचार करते थे न वहाँ। मद्रास से ८० मील (दूर) पोन्नूर हिल। उससे अपने पण्डितजी ने बनाया है। 'रे रे सीमंधरनाथ का विरह पडा इस भरत में।' उसमें आया है। लिखा है, नहीं? उसमें नहीं, यह समवसरण में लिखा है—समवसरणस्तुति। यह भी **दास भगवंत के...** समझ में आया?

ध्यान में बैठे थे। विचार आया। आहाहा! समकिती भावलिंगी मुनि हैं। अरेरे! हमको भरतक्षेत्र में सीमन्धरनाथ का हमें विरह! हमारा जन्म कहाँ हुआ? समझ में आया? ऐसे ज्ञानी दास, भगवन्त के दास हैं। आहाहा! परमात्मा तो बारम्बार उनको याद आते हैं, ऐसा कहते हैं। 'दास' उसमें आया है। अरेरे! भगवन्त सीमन्धरनाथ का विरह पड़ा इस जगत में। उन्हें सीमन्धर भगवान का विरह पड़ा। यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य और सीमन्धर भगवान—दोनों का विरह पड़ा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अन्तर में दोनों जगह है। सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब.... वह तो बाहर की महिमा है। ज्ञानी को सर्वज्ञ की महिमा अन्दर है। सन्तों की भी महिमा है अन्दर। वास्तविक सन्त हैं, उनकी अन्तर महिमा है। समझ में आया? यह कहते हैं, **दास भगवन्त के...** किसी का दास नहीं, राग का दास नहीं, पर्याय का दास नहीं। आहाहा!

उदास रहैं जगतसौं... सारे जगत से उदास है। राग से लेकर सारा जगत। मेरी चीज़ में वह चीज़ है नहीं। आहाहा! **सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है...** यह

समकिती जीव सुखी हैं। समझ में आया? देखो, यहाँ समकिती को सुखिया कहा। किस अर्थ में? अपना आत्मा द्रव्य है, उसका अनुभव हुआ, यह आनन्द का अनुभव हुआ है। आहाहा! समकिती सुखिया है। समझ में आया? उसमें भी आता है। 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया रे।' धर्मात्मा आत्मदृष्टि है, वही एक जगत में सुखी है। बाकी प्राणी दुर्जन सब दु:खी हैं। आहाहा!

साधु हुआ, पुण्य की क्रिया में भी दु:खी है। आहाहा! वह सुखी नहीं। दिगम्बर साधु हुआ हजारों रानियाँ छोड़कर, परन्तु उस बाह्य के त्याग में तो तुच्छता है, उसमें तो कोई त्याग है नहीं। बाहर का तो उसमें—आत्मा में अभाव ही है। जो राग की एकता का त्याग नहीं किया, अभ्यन्तर का त्याग नहीं, उसके बाह्य त्याग की कोई कीमत नहीं। समझ में आया? आहाहा! **सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है...** देखो। आहाहा! पर्यायबुद्धि छूट गयी और द्रव्यबुद्धि हुई, सुखी है—शान्ति में है। आहाहा! अणुव्रतधारी नहीं, महाव्रतधारी नहीं और सुखिया! अमरचन्दजी! अपने लिया है। आहाहा! सदैव सुखिया है। आहाहा!

एक समय की पर्यायबुद्धि जहाँ छूट गयी और द्रव्यबुद्धि हुई, उस बुद्धि में आनन्द आये बिना रहता नहीं। आहाहा! निर्विकल्प चैतन्य का स्वाद आना, वह अनुभूति। आत्मा की अनुभूति, वह आनन्द का स्वाद है। ऐसा समकिती सदैव सुखी है। आहाहा! उसमें भी आता है वेदान्त में। 'मांहि पड्या ते महासुख माणे, देखनारा ते दाझे जोईने।' ऐसा यह धर्मी बैठा। किसी से डरना नहीं, किसी को मदद करना नहीं, काम करना नहीं और हम धर्मी हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आता है न, 'मांहि पड्या ते महासुख माणे। आनन्दस्वरूप द्रव्य—वस्तु (की) दृष्टि हुई तो 'मांहि पड्या ते महासुख माणे, देखनारा ते दाझे।' दूसरे फिर कहे, लो, यह धर्मी है। किसी का करना नहीं, दुकान चलाना नहीं, दूसरे को समझाना नहीं। कुछ काम नहीं और हम धर्मी। ऐसे देखनेवाले दाझे-जले बेचारे। समझ में आया? काठियावाड़ी भाषा है, देखनेवाले दाझे। दाझे अर्थात् जले।

एक पशु जैसा प्राणी हो, पशु—मेंढ़क। उसे जहाँ अन्तर बुद्धि हुई तो सुखी है।

दुनिया ऐसा देखे कि ले, उस बेचारे को रोटी मिलती नहीं, रोटला मिले नहीं, ताजा मिले नहीं, खाने का मिले नहीं। पानी भी जाय तब मिले थोड़ा। वह दुःखी है। तुझे भान नहीं, सुन तो सही! पैसा हमारे सुविधा... गर्म-गर्म रोटी ऐसे तवा में से सीधी पड़े थाली में।

मुमुक्षु : घी में पड़कर थाली में।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे घी में पड़कर फिर वापस... घी बाद में लेने का, लो न। यह कहते हैं कि मैं आऊँ तब रोटी बनाना। पहले से रोटी नहीं बनाना। ठण्डी हो जाये रोटी। वह गर्म-गर्म पड़े एकदम ऐसे तवा में से। फिर ऊपर से घी, फिर उसमें दाल। हम सुखी हैं। धूल भी नहीं, सुन न!

और इस मेंढ़क को कुछ नहीं मिले बेचारे को, आहाहा! कादव खाये, ऐसा कहे न भाई? देडको क्या कहते हैं? मेंढ़क, मेंढ़क। रोटी रोटला कहाँ है वहाँ? आहाहा! कीचड़ खाये। खाये कौन? परन्तु होता है, उसको देखते हैं। समकिती है न, आहाहा! गजब बात है! ऐई सेठ! यह तुम्हारे छह-छह लाख के मकान में सोवे और दुःखी है, ऐसा कहते हैं। झूले में झूले ऐसे ऐसा। आहाहा! कबीर ने कहा है, रस न रहे। 'सुखिया अब संसार खाय-पीके सोवे, दुखियो दास कबीर जब जागे तब रोवे।' अरे, निश्चिन्तता से खा-पीकर लड्डू उड़ावे, दो-तीन चूरमे के लड्डू और अरबी के पत्ते के भुजिया। पतरवेलिया कहते हैं न, क्या कहते हैं वह? अरबी के पत्ते होते हैं न, अरबी के पत्ते। समझते हैं या नहीं? अरबी के पत्ते नहीं होते हैं? चने का आटा डाले, फिर टुकड़े कर, टुकड़े करके....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? होगा। हमारे यहाँ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करते हैं, अच्छा। यहाँ तो करते हैं।

अरबी का पत्ता आता है न बड़ा। उसमें चने का आटा चने का डालकर फिर टुकड़े करके तेल में तलते हैं। खाकर कहे, हम सुखी! धूल भी नहीं सुख, सुन न! और मेंढ़क कीचड़ खाये तो भी सुखी है। तुझे खबर नहीं। समझ में आया? श्रीखण्ड और

पूड़ी उड़ावे। क्या था आज तुम्हारे बर्फी थी न कुछ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कल आया था वह। हलवाई, हलवाई। लेकर आया था न? हलवाई भावनगरवाला। दाढ़ीवाला आया था। यहाँ पहले भी आया था मेरे पास। कल आया था। क्यों कैसे आये? कहे, बर्फी और कुछ दूसरा नाम लिया। भूल गये। दो नाम कहे।

मुमुक्षु : मोहनथाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : बर्फी और मोहनथाल लेकर आया हूँ, कहे। हलवाई था, नहीं? भाई का था न पन्नालालभाई का। बर्फी और क्या कहा? मोहनथाल, दो लेकर आया हूँ, कहे। लो, कितना मजा उसमें? धूल भी नहीं, सुन तो सही!

और वह समकिती, आहाहा! आत्मा का स्वादिया रसीला। वह कीचड़ के काल में भी वह आनन्द और सुखी है। आहा! और यह सब अरबी के भुजिया, बर्फी और मोहनथाल उड़ानेवाले, यह राग के खानेवाले, वे दु:खी हैं। दूधपाक और पूड़ी को उड़ावे, मानो हम, ओहो! ऐसा करे। धूल में भी नहीं है, सुन तो सही! ऐई पन्नालालजी! इसकी बात ऐसी है यहाँ तो। दु:खी है वह। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **गहि एकंत दुरबुद्धि...** आहाहा! एक समय की पर्याय को और शुभराग को ही अपना आत्मा मानते हैं। **दुरबुद्धि मुक्त न होइ त्रिकाल...** तीनों काल में उसको मुक्ति होती नहीं। आहाहा! और वह मेंढ़क समकिती—आत्मज्ञानी—आत्मा का स्वादिया, उसको अल्पकाल में केवलज्ञान और मुक्ति होगी। समझ में आया? आहाहा! जिसने पाताल कुआँ खोजा अन्दर से। पताला कुआँ भगवान अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त आनन्द और ज्ञान का सरोवर—पाताल में दृष्टि ले गया। आहाहा! वह सुखी है। पर्याय... यह पाताल क्यों कहलाता है? वह पर्याय और राग में रहे, वह पाताल नहीं। वह तो ऊपर... अन्तर में गये, वे सुखी हैं।

दुर्बुद्धि की भूल पर दृष्टान्त। दृष्टान्त देते हैं। राग और पर्याय में (आत्मा) माननेवाला त्रिकाली भगवान को छोड़कर एक समय की दशा को माननेवाला दुर्बुद्धि है।

★ ★ ★

काव्य - ३८

दुर्बुद्धि की भूल पर दृष्टान्त

(सवैया इकतीसा)

कायासौं विचारै प्रीति मायाहीसौं हारि जीति,
लियै हठ रीति जैसैं हारिलकी लकरी।
चंगुलके जोर जैसैं गोह गहि रहै भूमि,
त्यौंही पाइ गाड़ै पै न छाड़ै टेक पकरी।।
मोहकी मरोरसौं भरमकौ न छोर पावै,
धावै चहुं वौर ज्यौं बढ़ावै जाल मकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठकै झरोखे झूली,
फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी।।३८।।

शब्दार्थ:-काया=शरीर। हठ=दुराग्रह। गहि रहै=पकड़ रक्खे। लकरी=लाठी। चंगुल=पकड़। पाइ गाड़ै=अड़ जाता है। टेक=हठ। धावै=भटके।

अर्थ:-अज्ञानी जीव शरीर से अनुराग रखता है, धन की कमी में हार और धन की बढ़ती में विजय मानता है, हठीला तो इतना होता है कि जिस प्रकार हरियल पक्षी अपने पाँव से लकड़ी को खूब मजबूत पकड़ता है, अथवा जिस प्रकार गोह[१] जमीन व दीवाल को पकड़कर रह जाता है, उसी प्रकार वह अपनी कुटेव नहीं छोड़ता – उसी पर डटा रहता है। मोह के झकोरों से उसके भ्रम की थाह नहीं मिलती अर्थात् उसका मिथ्यात्व अनन्त होता है, वह चतुर्गति में भटकता हुआ मकड़ी का सा जाल फैलाता है, इस प्रकार उसकी मूर्खता अज्ञान से झूठे के मार्ग में झूल रही है, और ममता की साँकलों से जकड़ी हुई बढ़ रही है।।३८।।

---

१. गोह एक प्रकार का जानवर होता है। उसे चोर लोग पास में रखते हैं, जब उन्हें ऊँचे महलों, मन्दिरों पर चढ़ना होता है, तब वे गोह की कमर से लम्बी रस्सी बाँधकर उसे ऊपर को फेंक देते हैं, तो वह ऊपर जमीन वा भीत को खूब मजबूत पकड़ लेता है और लटकती हुई रस्सी को पकड़कर ऊपर चढ़ जाते हैं।

काव्य-३८ पर प्रवचन

कायासौं विचारै प्रीति मायाहीसौं हारि जीति,
लियै हठ रीति जैसैं हारिलकी लकरी।
चंगुलके जोर जैसैं गोह गहि रहै भूमि,
त्यौंही पाइ गाड़ै पै न छाड़ै टेक पकरी।।
मोहकी मरोरसौं भरमकौ न छोर पावै,
धावै चहुं वौर ज्यौं बढ़ावै जाल मकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठकै झरोखे झूली,
फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी।।३८।।

यह बनारसीदास ने स्वतन्त्र बनाया है। कलश-बलश नहीं है। स्वतन्त्र बनाया है। उसमें से निकाला है, क्षणिक में से। **कायासौ विचारै माया प्रीति...** शरीर और राग मैं हूँ। मैं त्रिकाली ध्रुव हूँ, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! **कायासौ विचारै माया प्रीति मायाहीसौं हारि जीति...** लक्ष्मी कुछ जाये तो हार माने, दो-पाँच लाख पैदा हो तो जीत माने। यह मूर्ख के लक्षण कहते हैं।

मुमुक्षु : पूरी दुनिया ऐसा करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया ही मूर्ख है। उसके पिताजी थे न गजराजजी। ऐसा था कि २०-२० लाख आवे तो कुछ नहीं, बीस लाख जाये तो कुछ नहीं। ऐसा। ऐई पन्नालालजी!

ऐसा तो सुना था जब तीनों भाई को ८०-८० लाख रुपये बाँटे थे न।.... यहाँ आ गये हैं गजराजजी। यहाँ आ गये हैं (संवत्) २००९ के वर्ष में। वह जाति थी न कुछ, क्या कहलाती है?

मुमुक्षु : स्पेशियल।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पेशियल। हाँ, बाहुबली। दोनों आये थे बड़े भाई और... तोलाराम और तीनों भाई इकट्ठे हो गये थे। वच्छराज यहाँ थे। उनको तो बीस लाख

आमदनी हो जाये तो दरकार नहीं, कुछ नहीं और बीस लाख नुकसान हो जाये तो, भर दो। एक मण ज्वार भर दे, ऐसा। ऐसे थे उसके पिताजी।

यहाँ तो कहते हैं कि वह तो बाहर की बात है। समझ में आया? यहाँ तो सारा राज चला जाये, आहाहा! तो हार नहीं मानते। और .... आहाहा! समझ में आया? अरे, अपना राज तो आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है न! ऐसी दृष्टि में साम्राज्य—अपना आत्मा का साम्राज्य जहाँ देखा और अनुभव किया। वह पर से लक्ष्मी गयी तब ऐसा... अरे, हमारा समय था न। तब हमको तो ऐसे २५-२५ लोग बुलाते और हमारे साथ ऐसा... यह देखो न सेठ जाते थे न हुकमचन्दजी, इन्दौर में निकले तो २००-२०० लोग साथ में, खम्मा... खम्मा...

मुमुक्षु : दोनों और खड़े रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों ओर... ऐसे सब धूल और धाणी। उसमें क्या है? आहाहा!

मायाहीसौं हारि जीति... लो। लक्ष्मी मिले, परिवार आदि मिले, पुत्र अच्छा हो तो हम जीत में हैं, हमारी वृद्धि है। और जो घट गया, हार है हमारी। आहाहा! एक आदमी था गढडा का, भावनगर का। तो पहले मुम्बई गये, तो मुम्बई गया तब अकेला गया था। अभी छोटी उम्र न... पहले कमाने को। फिर दुकान हुई, विवाह हुआ, लड़का हुआ, पैसा हुआ, दुकान। और ४८ वर्ष जहाँ पूरे हुए। जाने के बाद ४८ (वर्ष)। लड़का मर गया, स्त्री मर गयी, मकान गया, पैसे गये। जैसे गया था, ऐसे अकेला आया।

वह कहते थे। हमारे गढडा में चातुर्मास था। गढडा है न। (संवत्) १९८१ में चातुर्मास के समय आये थे सब भावनगर से। नाम क्या भूल गये? नाम याद नहीं। वह गढडावाले थे। हमने कुछ दृष्टान्त दिया, उसमें कहे, 'महाराज! मैं उसमें का हूँ', कहे। जैसा एक गया था वैसा ४८ वर्ष में एक का एक वापस आया। नहीं पैसा, नहीं परिवार, नहीं कुछ। परन्तु उसमें क्या हुआ, कहा। आहाहा! बाहर की चीज़ आयी तो क्या लाभ है और गयी तो नुकसान कहाँ है? आहाहा! अज्ञानी तो बाहर से विचारते हैं। ज्ञानी को तो अन्तर की लक्ष्मी बढ़ती है, उसमें लाभ मानते हैं। उसको तो लक्ष्मी कभी घटती नहीं। निजनिधि।

लियै हठ रीति जैसे हारिलकी लकरी... यह हारिल कोई जानवर होता होगा। पैर में पकड़ा हो लकड़ी। छोड़े नहीं। कोई जानवर होगा। है अर्थ में लिखा है। **हठीला तो इतना होता है कि जिस प्रकार हरियल पक्षी अपने पांव से लकड़ी को खूब मजबूत पकड़ता है,...** छोड़ते नहीं। वैसे अज्ञानी, ऐसे हठवादी लाख बार उसको कहो कि एक समय की पर्याय में राग होता है, वह तेरी चीज़ नहीं। उससे तुम मिथ्यादृष्टि होते हो। लाख बार कहो तो, वह नहीं, नहीं, शुभराग तो है। प्रशस्त राग तो लाभदायक है। यह पर्यायबुद्धिवाले की बात चलती है, हों! समझ में आया? प्रशस्त क्यों कहा भगवान ने? एक ठीक और एक अठीक है। दो न आये? दो न आये, भगवान! तुझे खबर नहीं भाई! राग तो दुःखदायक है, परन्तु पकड़ा है, वह छोड़ता नहीं। फिर, फिर करके वहाँ लावे बात वापस।

मुमुक्षु : घूम-फिरकर वही बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर फिर से लावे। हाँ, पश्चात् दूसरा दृष्टान्त।

चंगुलकै जोर जैसैं गोह गहि रहै भूमि... जोरदार... एक वह होती है न? गोह... गोह... गोह होती है न? क्या कहते हैं? गोह। गोह, गोह कहते हैं, लो। बड़ी होती है। चन्दन गोह होती है ऐसी लम्बी। चन्दन गोह होती है। है छोटी, परन्तु उसको ऐसे डोरी बाँधकर फेंके ऊपर, जहाँ चिपक जाये तो चोर उस डोरी से चढ़ जाये। क्योंकि छूटे नहीं ऐसी शक्ति उसमें है। चन्दन गोह और एक दूसरी गोह लम्बी होती है, (परन्तु) साधारण है। वह काम नहीं करती। चन्दन गोह ऐसी होती है कि ऐसे चिपक जाये, जहाँ चिपक जाये वहाँ चिपक जाये बस। खाली भाग हो अकेली दीवार के ऊपर चिपक जाये। इसी प्रकार अज्ञानी जहाँ चिपक जाये, वहाँ चिपक जाता है, कहते हैं। आहाहा!

देखो है न! अपनी कुटेव नहीं छोड़ता। आहाहा! गोह जमीन-दीवार को पकड़कर... ऐसा है न? नहीं छोड़ता। **चंगुलकै जोर...** है न नीचे, पकड़... पकड़। **जैसैं गोह गहि रहै भूमि...** लाख बात से उसको मनाओ, समझाओ। नहीं... नहीं... नहीं... नहीं। व्यवहारकारण कहा तो व्यवहार से लाभ होता है तो कारण कहा है। समझ में आया? यह व्यवहारबुद्धि पर्यायबुद्धिवाला है। **त्यौंही पाइ गाड़ै पै न छाड़ै टेक पकरी,...** लो।

अड़ जाता है जहाँ-तहाँ, ऐसा। जहाँ-तहाँ चिपक जाये, चिपक जाये, ऐसा। हठ पकड़ लेता है।

मोहकी मरोरसौ भरमकौ न छोर पावै... मोह की मरोड़ में—मोह के प्रेम में। आहाहा! रागभाव में प्रेम लगा है, भ्रम को न छोड़ पावे। तो भ्रमणा को छोड़ नहीं सकता। है न? **उसकी भ्रम की चाह नहीं मिलती...** मिथ्यात्व अनन्त होता है, ऐसा लिखा। देखो! राग को अपना मानने से मिथ्यात्व का जोर बढ़ता है। मिथ्यात्व की बड़ी पुष्टि होती है। आहाहा! विभाव और स्वभाव की एकता मानना, बड़ी मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। द्रव्यलिंग धारण किया हो परन्तु छोड़े नहीं। नहीं, द्रव्यलिंग पहले आता है और द्रव्यलिंग हो तो मुक्ति होती है। भावलिंग होता है, ऐसी पकड़ (छोड़ता नहीं)। समझ में आया?

वह एक प्रश्न हुआ था। क्या कहलाता है वह? तत्त्वार्थ राजवार्तिक है न। उसमें ऐसा है। मुनि नग्न है। बाह्य सब छोड़ दिया है। तब उसको जब समकित होता है, तो एकदम सप्तम गुणस्थान आ जाता है। भाई! यह चर्चा हुई थी पण्डित बंशीधरजी के साथ हुई थी।

मुमुक्षु : बंशीधरजी के साथ रास्ते में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रास्ते में। कहे, यह है न। मैंने कहा, क्या है? वह नग्नपना था तो समकित हुआ, ऐसा है? नग्नपना था तो चारित्र्य हुआ, ऐसा है? परन्तु जब अन्दर चारित्र और अन्दर सम्यग्दर्शन होने का काल हो तो उस समय नग्नपना ही होता है। इतनी बात है। समझ में आया?

यह बात तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है। एकदम नग्न हो, पंच महाव्रत का विकल्प हो, मिथ्यादृष्टि हो। परन्तु ऐसे द्रव्य के ऊपर दृष्टि करता है तो एकदम पहले से सातवें गुणस्थान आ जाता है। समझ में आया? तो कहे कि देखो भैया! नग्नपना था तो सप्तम आया। यह झूठ बात है।

मुमुक्षु : नग्नपना और महाव्रत का जोर कितना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है। यह बात (सत्य) है ही नहीं। यहाँ अन्तर में द्रव्य

में जोर दिया, तब सप्तम गुणस्थान... मिथ्यात्व का नाश होकर समकित और एकदम सप्तम आ जाता है। तब वह बाहर की चीज़ तो निमित्त कहने में (आयी है)। समझ में आया?

यह तत्त्वार्थ राजवार्तिक में आता है। अनादि काल का मिथ्यादृष्टि (हो), नग्न हो, परन्तु उसको सप्तम गुणस्थान एकदम आ जाता है। समकितसहित चारित्र आ जाता है। द्रव्यलिंगी। परन्तु वह द्रव्य का आश्रय करता है, इसलिए (आता है)। वह द्रव्यलिंग है, इसलिए नहीं। ऐसा द्रव्यलिंग तो अनन्त बार लिया, नौवें ग्रैवेयक गये तब। द्रव्य का अन्दर में अवलम्बन लेते ही एकदम लवलीन हो जाये अन्दर में। सप्तम गुणस्थान, अप्रमत्त दशा। आहाहा! परन्तु कोई तो अन्तर्मुहूर्त काल में केवलज्ञान लेकर चले गये मुक्ति (-मोक्ष में)। उसमें क्या है? वह तो अपने द्रव्य के जोर के आश्रय से है या बाहर के निमित्त के आश्रय से है?

मुमुक्षु : अपने द्रव्य का जोर।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

कहते हैं, **धावैं चहुं वौर ज्यौं बढ़ावै जाल मकरी...** आहाहा! मकड़ी होती है न मकड़ी—मकड़ी। करोळिया, नहीं? लार निकालकर अपने ऊपर लपेटती है। उसी प्रकार अज्ञानी राग और पुण्य की क्रिया अपनी है, एक समय की पर्याय में अपनापन मानता है, तो अपने मिथ्यात्व जाल में लिपट जाता है। मिथ्यात्व से लिपट जाता है।

ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठकै झरोखे झूली... लिखा है न! चार गति में भटकता हुआ... देखो, उसका मिथ्यात्व अनन्त होता है। लिखा है न? मिथ्यात्व पुष्ट होता है। द्रव्यक्रिया में लाभ है, वह धर्म है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व की पुष्टि करती है, अनन्त संसार बढ़ाता है। संसार बढ़ता है और मानता है कि हम धर्मी हैं।

मुमुक्षु : सुनने पर भी इनकार करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने पर भी, कान में पड़ा। नहीं, नहीं, कहे। ऐसा नहीं। ऐसा लाभ है। अब कहते हैं कि द्रव्यलिंग—भावलिंग की खबर नहीं पड़ती, वह तो केवली जाने। और ऐसा कहते हैं।

अरे, भाई! द्रव्यलिंगी... प्रत्यक्ष दिखता है कि पर का मैं कर सकता हूँ, राग से...

है, राग से धर्म होता है—(ऐसी मान्यता है) । यह तो प्रत्यक्ष दिखता है (कि) मिथ्यादृष्टि है। यहाँ कहा न, सर्वविशुद्ध अधिकार में आ गया। सर्वविशुद्ध में आ गया या नहीं ? खबर पड़ती है। क्यों खबर नहीं पड़ती ? जिसकी दृष्टि में, प्ररूपणा में, कल्पना में विरुद्धता है, वह द्रव्यलिंगी ही है, मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो निरतिचार महाव्रत पालते हों। यहाँ तो महाव्रत का कहाँ ठिकाना है ?

फूली फिरै ममता जंजीरनिसौ जकरी... आहाहा ! **उसकी मूर्खता अज्ञान से झूठ के मार्ग में झूल रही है।** अज्ञान में झूला खाते हैं झूले पर। मानता है कि हम धर्म में हैं। **और ममता की सांकलों से जकड़ी हुई बढ़ रही है।** आहाहा ! पर्यायबुद्धि में यह डाला बनारसीदास ने। उसका अर्थ कि जिसको पुण्य और वर्तमान अंश के ऊपर बुद्धि है और उसमें लाभ माननेवाला (है तो) मिथ्यात्व को पुष्ट करता है। यह मानता नहीं और अपनी पकड़ छोड़ता नहीं, पकड़ बढ़ जाती है मिथ्यात्व की।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १२६, श्रावण शुक्ल १४, गुरुवार, दिनांक ०५-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-३९ से ४१

समयसार नाटक, सर्वविशुद्ध अधिकार। **दुर्बुद्धि की परिणति।** ३९ (पद) है। यह सर्वविशुद्ध अधिकार अर्थात् आत्मा अत्यन्त द्रव्य में पर्याय नहीं, शुद्ध-अशुद्ध का कोई भाग नहीं, द्रव्य में बन्ध-मोक्ष भी नहीं। ऐसी बात सुनकर दुर्बुद्धि अध्यात्म का विरोध करता है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? आत्मा अध्यात्म चीज़ मूल शुद्ध त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, हों! पहले से शुरु है न। ऐसी चीज़ सुनकर दुर्बुद्धि को वह जमती नहीं, बात बैठती नहीं। विरोध करता है कि यह क्या? समझ में आया? कितने ही अर्थ (-प्रकार) तो कहेंगे १६वें कलश में।

★ ★ ★

काव्य - ३९

दुबुद्धि की परणति
(सवैया इकतीसा)

बात सुनि चौंकि उठै बातहीसौं भौंकि उठै,
बातसौं नरम होइ बातहीसौं अकरी।
निंदा करै साधुकी प्रसंसा करै हिंसककी,
साता मानैं प्रभुता असाता मानैं फकरी।।
मोख न सुहाइ दोष देखै तहां पैठि जाइ,
कालसौं डराइ जैसैं नाहरसौं बकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठकै झरोखे झूली,
फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी।।३९।।

शब्दार्थ:-चौंकि उठे=तेज पड़े। भौंकि उठै=कुत्ते के समान भौंकने लगे। अकरी= ऐंठ जावे। प्रभुता=बड़प्पन। फकरी (फकीरी)=गरीबी। काल=मृत्यु। नाहर=बाघ, सिंह।

अर्थः-अज्ञानी जीव हिताहित नहीं विचारता, बात सुनते ही तेज पड़ने लगता है, बात ही सुनकर कुत्ते के समान भौंकने लगता है, मन रुचिती बात सुनकर नरम हो जाता है, और असुहाती बात हो तो ऐंठ जाता है। मोक्षमार्गी साधुओं की निन्दा करता है, हिंसक अधर्मियों की प्रशंसा करता है, साता के उदय में अपने को महान और असाता के उदय में तुच्छ गिनता है। उसे मोक्ष नहीं सुहाता, कहीं दुर्गुण दिखाई देवें तो उन्हें शीघ्र अंगीकार कर लेता है। शरीर में अहंबुद्धि होने के कारण मौत से तो ऐसा डरता है, जैसे बाघ से बकरी डरती है, इस प्रकार उसकी मूर्खता अज्ञान से झूठ के मार्ग में झूल रही है और ममता की सांकलों से जकड़ी हुई बढ़ रही है।।३९।।

काव्य-३९ पर प्रवचन

बात सुनि चौंकि उठै बातहीसौं भौंकि उठै,
बातसौं नरम होइ बातहीसौं अकरी।
निंदा करै साधुकी प्रसंसा करै हिंसककी,
साता मानैं प्रभुता असाता मानैं फकरी।।
मोख न सुहाइ दोष देखै तहां पैठि जाइ,
कालसौं डराइ जैसैं नाहरसौं बकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठकै झरोखे झूली,
फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी।।३९।।

बनारसीदास स्वयं (कहते हैं)। सर्वविशुद्ध अधिकार है न। ऐसे शब्द... **बात सुनि...** है न नीचे ? **अज्ञानी जीव हिताहित नहीं विचारता।** मेरा हित त्रिकाली द्रव्यदृष्टि से है। पर्यायदृष्टि से हित नहीं, आहाहा! और राग से भी हित नहीं। ऐसी बात जिसको जँचती नहीं। **अज्ञानी जीव हिताहित नहीं विचारता। बात सुनते ही तेज पड़ने लगता है।** कि आत्मा राग से रहित है, बन्ध-मोक्ष से रहित है—ऐसी बात सुनते ही, एकान्त है, (ऐसा कहता है)। ऐसी बात सुनते ही तेज पड़ने लगता है। इसमें तो ऐसा लिखा है। है न यह रूपचन्दजी। अध्यात्म की बात सुनकर... ऐसा लिखा है उसमें। बात तो उत्तम है न ? आहाहा!

बात सुनि चौंकि उठै... आहाहा! उसमें है। है न? रूपचन्दजी की बात की है न सारी। पहले बनारसीदासजी के गुरु रूपचन्दजी थे। बाद में बनारसीदासजी (आगे) बढ़ गये। तो रूपचन्दजी ने उसका (नाटक समयसार) का अर्थ किया। उनका बनाया हुआ। समझे? सर्वविशुद्धि न? ३९। मिथ्यामति... यह आ गया है। कितना?

मुमुक्षु : २६७ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सांख्यमति, एकान्तपक्षी। दुर्बुद्धि मिथ्यामति, यह आ गया है। काया को विचारी के बाद आया। यह ३९ है। औरों ही याहीं बात कहे, को अध्यात्म की बात कहे। तो सुन के चौंकी उठे। रूपचन्दजी ने ऐसा अर्थ किया है। कहते हैं, अरे आत्मा! जिसमें बन्ध-मोक्ष की पर्याय भी नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ की दृष्टि करना, उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है।

तो कहते हैं कि अज्ञानी ऐसी अध्यात्म की बात ऊँची मानकर सुनते ही तेज पड़ने लगता है। अरे, यह और कहाँ से आया? समझ में आया? (संवत्) १९८० का वर्ष है ८०। ४७ वर्ष हुए। ४० और ७। ऐसी एक बात रखी थी सम्प्रदाय में। भाई! अनुभव है, वह सम्यग्दर्शन है। फिर एक व्यक्ति कहे, 'अनुभव क्या? यह और जैन में कहाँ से आया? अनुभव तो वेदान्त में है', ऐसा बोला। समझ में आया? बोटाद सम्प्रदाय में था न वह। अनुभव और दूसरा 'स्वरूप' एक शब्द लिया। मैंने कहा, आत्मा का स्वरूप क्या है, उसे जाना ही नहीं। और एक व्यक्ति कहे, 'और स्वरूप क्या? ऐसे तो हमारे गुरु कोई कहते नहीं स्वरूप-स्वरूप।' बोटाद सम्प्रदाय। वे तो गुजर गये अभी। ठाकरशी गोपाणी थे। गोपाणी का लड़का यहाँ आता था। वहाँ अपने सामने दुकान है अहमदाबाद में, नहीं? तुम्हारे सामने, अपने मन्दिर के सामने, खाडिया के सामने। उसका पिता था।

यह तो बहुत वर्ष पहले ४७ वर्ष। ५० में ३ कम। कहा, स्वरूप समझे बिना, पंच परमेष्ठी का भी स्वरूप समझे बिना वह अज्ञानी मूढ़ है। क्या अरिहन्त है, क्या सिद्ध है, खबर नहीं। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं करे। स्वरूप जाने बिना अज्ञान मिटता नहीं। तब उसने कहा, स्वरूप क्या? हमारे गुरु तो अभी तक तो स्वरूप कहते नहीं। और स्वरूप क्या? समझ में आया? यहाँ कहते हैं... स्वरूप और अनुभव दो बात की

थी। और तीसरी विभाव। तीन बात की थी, ८० में। कि विभाव आत्मा की पर्याय में है। कहे, 'विभाव क्या? विभाव-विभाव अपने नहीं होता, विभाव वेदान्त में होता है।' खबर नहीं होती चीज़ की। क्या चीज़ है? जैन में जन्मा। समझ में आया?

तो अज्ञानी जीव बात सुनकर चौंक उठे। तेज आवे अन्दर। यह क्या? ऐसा धर्म क्या? कुछ भक्ति करना, पूजा करना, दया पालना, व्रत पालना—यह तो बात आती नहीं। यह आत्मा... आत्मा... आत्मा। पण्डितजी!

मुमुक्षु : आप तो (कहते हो) महाराज! द्रव्य में बन्ध भी नहीं और मोक्ष भी नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय द्रव्य में कहाँ आयी?

मुमुक्षु : चौंकेगा नहीं.....

पूज्य गुरुदेवश्री : चौंके, कौन चौंके? अज्ञानी चौंकता, वह तो कहते हैं। आहाहा! भगवानस्वरूप आत्मा पूर्णानन्द का नाथ द्रव्यस्वभाव, उसमें बन्ध-मोक्ष कहाँ है? वह तो पर्याय है। पर्याय द्रव्य में कैसी? दो चीज़ भिन्न है। वह तो कहा था न! अलिंगग्रहण। अलिंगग्रहण में आया नहीं? समझ में आया?

१९। १८ और १९ बोल है अलिंगग्रहण के। १७२ गाथा (प्रवचनसार)। देखो! कि अर्थावबोधरूप गुणविशेष... अर्थावबोध गुणविशेष जिसको नहीं (अर्थात्) द्रव्य को आलिंगन किया नहीं, उसका नाम द्रव्य कहने में आता है। समझ में आया? क्या कहा? यह सब आ गया है। व्याख्यान बहुत (हो गये हैं)। ७२ गाथा लो। दो बार आया। एक फिराया और दूसरी बार आया। देखो, गुण, लिंग, अलिंगग्रहण। 'लिंग अर्थात् गुण ऐसा जो ग्रहण (अर्थात् कि) अर्थावबोध (पदार्थज्ञान) वह जिसे नहीं।' ज्ञान जिसमें नहीं। गुणभेद जिसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। अलिंगग्रहण। इस प्रकार आत्मा गुण विशेष से नहीं आलिंगित। गुण विशेष से नहीं स्पर्शित। आहाहा! संस्कृत है, हों!

'न लिंगगुणो ग्रहणमर्थावबोधो यस्येति गुण विशेषानालीढ' गुण के भेद को जो स्पर्शता नहीं, उसको द्रव्य कहा जाता है। सूक्ष्म है, पन्नालालजी! आहाहा! चौंके ही न परन्तु। यह गुणभेद नहीं? गुणभेद नहीं। देखो, इस प्रकार आत्मा गुणविशेष, सामान्य

जो द्रव्य त्रिकाली ध्रुव है, उसमें गुणभेद का विशेष उससे आलिंगन नहीं, गुणभेद से स्पर्शित नहीं। गुणभेद को जो छूता नहीं। आहाहा! उसको शुद्धद्रव्य (कहते हैं) ऐसे अर्थ की प्राप्ति है। १७२ (गाथा) प्रवचनसार। अलिंगग्रहण, १७२। १७२ गाथा का अर्थ। अलिंगग्रहण के २० अर्थ हैं। उसमें १८वाँ अर्थ है।

अब १९। लिंग अर्थात् पर्याय जिसका ग्रहण अर्थात् अर्थावबोधविशेष जिसे नहीं। पर्याय जिसमें है नहीं। अमरचन्दजी! अरे भाई! यह तो वीतरागी तत्त्व है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, आहाहा! वीतरागबिम्ब हो गये अन्दर में और सर्वज्ञदशा हो गयी। आहाहा! धन्य अवतार है न! उनके मुख में से निकली वाणी, वह आगम है। समझ में आया? कहते हैं, पर्यायविशेष से नहीं स्पर्शित। गुणविशेष से नहीं स्पर्शित, यह १८ (वाँ) बोल। पर्यायविशेष से नहीं स्पर्शित, यह १९ (वाँ) बोल। और २० में द्रव्य को नहीं स्पर्शित, ऐसी पर्याय। आहाहा! वह मगनलाल थे न भाई! मोरबीवाले। कहे, महाराज ने १९ तो अर्थ किये। (संवत्) २००५ के वर्ष। २० (वें बोल) का कैसे करेंगे? वहाँ पर्याय का स्थापन किया है।

(संवत्) २००५ के वर्ष की बात है। २२ वर्ष (पहले)। नानालालभाई के मकान में प्रवचन था। यह अलिंगग्रहण का चलता था। २००५ के वर्ष, २२ वर्ष पहले। उस समय तो ३० व्याख्यान हुए थे। १७२ गाथा के ३० व्याख्यान। पहला पहला था न! २२ वर्ष पहले की बात है। मोरबी के थे एक। तो उसने कहा, 'महाराज द्रव्यदृष्टि की (बात) करते हैं, परन्तु अब २०वें (बोल का) क्या (अर्थ) करेंगे? २०वें में तो पर्याय आती है।' क्या है २० में, देखो। 'लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का करण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य, वह जिसे नहीं।' सामान्य जिसमें नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय में द्रव्य नहीं, द्रव्य में पर्याय नहीं, सामान्य में विशेष नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लालचन्दजी! आहाहा! क्यों मूलचन्दजी? यह बात सुनी नहीं। सुनकर चौंक उठता है। देखो! आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित, द्रव्य नहीं स्पर्शित, आत्मा द्रव्य से नहीं स्पर्शित, ऐसी शुद्ध पर्याय है, ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है। आहाहा! समझ में आया?

'न लिंगं प्रत्यभिज्ञान हेतुर्ग्रहणमर्थावबोध सामानयं यस्येति द्रव्यानालीढ

शुद्धपर्यायत्वस्य' आहाहा! वह यहाँ बात करते हैं। समझ में आया? ऐसी बात अध्यात्म की सुनकर... पन्नालालजी! पन्नालालजी ने तो सुना ही नहीं होगा कभी, कहाँ से चौंक उठे? वे सुननेवाले हों न बारम्बार। **बात सुनि चौंकि उठे...** है न? और **बातहीसौं भौंकि उठे...** कुत्ते की भाँति बकते हैं। है न? **बात ही सुनकर कुत्ते के समान भौंकने लगता है।** बोलना, बोल-बोल करे, ऐसा। परन्तु सुन तो सही, सच क्या है? यह पर्याय नहीं है, पर्याय नहीं है तो वेदान्त हो जाता है। फलाना हो जाता है ढींकणा। पण्डितजी! यह तो पण्डित को सम्हाल लिया है। आहाहा!

कहते हैं, **बातहीसौ भौंकि उठे...** बकबक किया ही करे। बोलाबोल किया करे। परन्तु सुन तो सही! कोई तो बात ठीक है, परन्तु द्रव्य से पर्याय भिन्न? और पर्याय से द्रव्य भिन्न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही नहीं, भिन्न है। यही बात है। आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय (मय वह) तो पर से भिन्न करने की बात है। परन्तु अपने में दो तत्त्व में दो को भिन्न करना है। पर्याय का सत् द्रव्य के सत् में नहीं और द्रव्य का सत् पर्याय के सत् में नहीं। यह सुना ही नहीं। अभी वह कमाने में, कमाने में घुस गये हैं। पन्नालालजी! वह पाकिस्तान का हुआ, तो अधिक कमाना हुआ। आये हैं तब तो यहाँ सुनते हैं न! समझ में आया? ऐसे तो प्रेम है। वहाँ एक भी कुछ कहा था वहाँ नहीं? कलकत्ता में कुछ। भूल गये। ... अच्छा कहा था। इनके पिता ने कुछ .... ऐई भूल गये। बात अनुकूल की थी, कुछ थी सही। भूल गये। बहुत समय हो गया। कुछ कहा था तुमने, हों! कहते हैं, बात ही सुनकर कुत्ते के समान भौंकने लगता है। बोलाबोल, लवलव (करे), ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं, अरे, सुन तो सही!

बापू! वीतराग का मार्ग, सर्वज्ञ से कहा हुआ यह मार्ग, अन्यत्र कहीं है नहीं। उससे विरुद्ध ३६३ पाखण्ड हैं। ३६३ पाखण्ड हैं, सुना है या नहीं? पण्डितजी! ३६३ पाखण्ड हैं। क्रियावादी १८०। १८० क्रियावादी, ८४ अक्रियावादी। ३६३ पाखण्ड है न! क्रियावादी १८०, अक्रियावादी ८४, विनयवादी ३२। वह विनय ३२। अज्ञानवादी ६७। ३६३ पाखण्ड हैं। आहाहा! अष्टपाहुड में है। भावपाहुड है न? बहुत गाथायें हैं।

यह कुछ याद कितनी रहे? ख्याल में हो कि यहाँ है इतना। १३७, १३७ गाथा। अष्टपाहुड़-भावपाहुड में १३७ गाथा। '**असियसय किरियवाई।**' ऐ बाबूजी! रतनलालजी! सुनो! तुम वहाँ प्रमुख हो मन्दिर में। ऐसा गप्प मारने को आये (उसकी) जय-जय नहीं करना, ऐसा कहते हैं। १८० क्रियावादी।

'**अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी।**' ८४ अक्रियावादी। क्रियावादी का अर्थ क्या? कि हलन-चलन करना, फिरना-फिरना सब क्रिया आत्मा करता है। यह क्रिया ही मानते हैं। अक्रिय आत्मा राग से भिन्न मानते नहीं। अक्रियावादी नास्तिक। कुछ नहीं। कुछ आत्मा, पुण्य भी नहीं, पाप भी नहीं, ऐसा नहीं, कुछ नहीं। वह अक्रियावादी। '**सत्तट्ठी अण्णाणी।**' ६७ भेद अज्ञान के हैं। १३७ गाथा। कोई विनय से धर्म मानते हैं। अपने तो गुरु का विनय करना (तो) मुक्ति होगी। कोई कहे कि माता की भक्ति करो तो मुक्ति होगी। आता है या नहीं वह? अन्यमति में नहीं है वह? श्रवण, श्रवण। उसके माता-पिता को.... डोली में ले गया था। यहाँ हमारे जामनगर में। श्मशान में सब दिखा दिया है। माता-पिता अन्धे हैं, यात्रा कराता है काँवड़ में बिठाकर।

मुक्ति, मुक्ति। मुक्ति धूल भी नहीं होती, सुन तो सही! कोई कहे, माता की भक्ति, कोई कहे पिता की (भक्ति), कोई कहे गुरु की (भक्ति), कोई कहे देव की (भक्ति) और कोई कहे शास्त्र की (भक्ति)। विनय करने से भक्ति होती है, मुक्ति होती है और अज्ञानी कुछ मानता नहीं। सर्वज्ञ-सर्वज्ञ कुछ है नहीं। आत्मा है? कहे, किसे खबर। नहीं है? यह किसे खबर है। कौन देखने को गया? परलोक है? कौन आया है? जवाब की चिट्ठी लाया है कोई? मृतक की कोई चिट्ठी लाया? यह चिट्ठी नहीं है? देखते नहीं, खबर नहीं है। एक को अनुकूलता का संयोग का पार नहीं, एक को प्रतिकूलता का पार नहीं। यह चिट्ठी नहीं आयी है? पूर्व भव में जैसा भाव किया था, वैसा कर्म बँधा, वैसा संयोग मिला है। चिट्ठी नहीं आयी यह प्रत्यक्ष? आहाहा!

एक दरिद्र, एक धनवान। एक रोगी, एक निरोगी। आहाहा! शरीर में... भगवान तो कहते हैं, पाँच करोड़ ६८ लाख ९० हजार ५८४ रोग है। कितने? अष्टपाहुड़ में तो है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। एक अंगुल में ९६ रोग। मूल श्लोक-पाठ है। एक अंगुल में ९६। और भगवती आराधना में है। अरे भगवान! तू तो आनन्द का पिण्ड है और

शरीर तो वेदना की मूर्ति है। आहाहा! ५ करोड़ ६८ लाख ९० हजार ५८४। इतने तो एक शरीर में रोग है। यह तो वेदना की मूर्ति है। ऐसा भगवान ने कहा (और) ऐसा है। अरे, ऐसी बात क्या करते हो? इतने रोग हम तो देखते नहीं। अरे, देखना कहाँ, तुझे भान नहीं। नन्दकिशोरजी! खबर नहीं चीज़ की और मान ले कि ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। वह बहुत व्याख्या की है।

कोई ऐसा कहते हैं न कि अपने तो गुरु की भक्ति करना, विनय करना, मुक्ति होगी। ....पाखण्ड कहा न, ३६३ पाखण्ड है। १३७ गाथा, भावपाहुड, अष्टपाहुड में। पहले है दर्शनपाहुड, दूसरा सूत्र, तीसरा चारित्र, चौथा बोध, पाँचवाँ भावपाहुड है। छठवाँ मोक्षपाहुड, लिंगपाहडु और (आठवाँ) शीलपाहुड—आठ पाहुड हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाये हैं। समझ में आया? ३६३ पाखण्ड है जगत में। आहाहा! जैन सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने कहा (हुआ) मार्ग के अतिरिक्त सब ३६३ पाखण्ड मार्ग है। कठिन लगे, क्या करे? कुनदकुन्दाचार्य ने कहा। समझ में आया? ३२ विनयवादी, ६७ अज्ञानवादी, ३६३ हैं।

मुमुक्षु : महाराज! यह तो अन्यमतियों की बात है, हम तो जैन कुल के हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे, जैन में क्या, तुमको भान नहीं तो जैन कैसे कहना? थैली में चिरायता था, ऊपर लिखे शक्कर, हो गया मीठा? पन्नालालजी! थैली, थैली में रखा चिरायता। ऊपर लिखे शक्कर। इसी प्रकार अन्दर मिथ्यात्व का भाव, बाहर से माने कि हम जैन हैं। उससे क्या मिठास आ जायेगी? जैन कैसे हो? जैन में भी एकान्त मान्यता है जिसकी (कि) पुण्य से धर्म है... समझ में आया? एक द्रव्यदृष्टि नहीं है, पर्यायदृष्टि से लाभ होगा, यह सब एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? आहाहा! बहुत संक्षिप्त में लिखा है। श्वेताम्बर निकले हैं, इसमें से निकला है न २००० वर्ष पहले। शास्त्र का अर्थ फेरफार (करके)। समझ में आया? वस्त्र को रखकर मुनिपना मानना, स्त्री को मुक्ति मानना, साधु को वस्त्रसहित में साधुपना मानना—यह सब विपरीत मान्यता है। समझ में आया? सेठ! यहाँ तो यह चलता है। कोई पक्ष है नहीं हमारा। मार्ग ऐसा है। आहाहा!

बातहीसों भौंकि उठे, बातसौं नरम होई... फिर उसे थोड़ी उसके जैसी अनुकूल

बात करे तो नरम पड़ जाये। और प्रसन्नता उड़ जाये। भान बिना प्रसन्न हो। हाँ, देखो भैया! राग बीच में आता है, हों! आये बिना रहता नहीं। प्रसन्नता उड़ जाये। निश्चय है वस्तु धर्म, परन्तु बीच में राग आता है। आहाहा! एक और अभी ऐसा प्रश्न आया कि वह शुद्धि कही न आठ बोल में? मोक्ष अधिकार में। यह शुद्धि। यह शुद्धि शुभ के अर्थ में है। शुभ के अर्थ में शुद्धि है। शास्त्र में ऐसा भी चले। विकल्प शुभराग है, उसको भी शुद्धि कहा है मोक्ष अधिकार में। और अमुक में तो ऐसा लिया है... मूल पाठ में है। भावपाहुड। वह उसमें था अपने। भावपाहुड न?

भावपाहुड में १६५ गाथायें हैं। वहाँ ऐसा लिया है पण्डित जयचन्द्रजी ने। इस प्रकार निश्चयव्यवहारकर मोक्षमार्ग का संक्षेप है, इसी को शुद्धभाव कहा है। दोनों को शुद्ध कहने में आता है। कैसे? आहाहा! अरे! जैनदर्शन क्या है! एक शुद्ध तो शुद्ध है ही निश्चय। परन्तु विकल्प को व्यवहार है, उसको शुद्ध कहने में आता है, आरोप से, व्यवहार से। निश्चय से अशुद्ध है, व्यवहार से शुद्ध है। नहीं, यहाँ डाला है। अपने प्ररूपणा हुई है न। उसमें नीचे लिखा है कि 'शुद्धभाव का निरूपण दो प्रकार से किया गया है।' व्याख्यान चला था न उसमें अष्टपाहुड में आता है। पीछे भावपाहुड में।

पण्डित जयचन्द्रजी ने कहा है कि निश्चय-व्यवहार दोनों को शुद्ध कहा जाता है। कहने में आता है। परन्तु शुद्धि का अर्थ क्या? कथन दो प्रकार का है। लिखा है किसी ने अन्दर। किसने लिखा है भाई यह? नीचे अर्थ है। यहाँ अपने प्ररूपणा हो गयी है न! 'शुद्धभाव का निरूपण दो प्रकार से किया है।' जैसे मोक्षमार्ग दो नहीं, परन्तु उनका निरूपण दो प्रकार का है, कथन दो प्रकार का है, वैसे सम्यग्दर्शन दो प्रकार का नहीं, सम्यग्दर्शन का कथन दो प्रकार का है। सम्यग्दर्शन तो एक ही निश्चयसम्यग्दर्शन है। समझ में आया? शुद्धि का अर्थ आया था वहाँ। देखो, अष्टपाहुड में आता है, तब कहा था उसका अर्थ।

मुमुक्षु : कौनसा पाहुड़ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावपाहुड। भावपाहुड की अन्तिम गाथा का भावार्थ। १६५ गाथा का भावार्थ। उसमें नोट है नीचे।

'इसी प्रकार शुद्धभाव को जहाँ दो प्रकार के कहे हैं, वहाँ निश्चयनय से और

व्यवहारनय से कहा है—ऐसा समझना चाहिए। निश्चयसम्यग्दर्शनादि है, उसे ही व्यवहार मान्य है और उसे ही निरतिचार व्यवहार रत्नत्रयादि में व्यवहार से 'शुद्धत्व' अथवा 'शुद्ध संप्रयोगत्व' का आरोप आता है।' परन्तु यह तो 'शुद्धि' शब्द आया। मोक्ष अधिकार में आठ बोल में। अपने आ गया है। शुभभाव को शुद्ध कहा।

मुमुक्षु : सोनगढ़ मानता नहीं। सोनगढ़ उसमें मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु, क्या आरोप से कहा? कथन से कहा? या यथार्थ से कहा? मोक्षमार्ग दो नहीं है। मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार का है। निश्चय यथार्थ है, व्यवहार को साथ में देखकर निमित्त से कहने में आया है। ऐसे शुद्धभाव दो प्रकार का नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्या हो? लोगों को बात कठिन लगे न। ऐई, फिर निन्दा करे। चौंकनेवाली बात है।

यह तो शुद्धि का अर्थ वास्तविक तो यह है। मोक्ष अधिकार में भी है न आठ बोल। वहाँ अपने आ गया। किसमें आ गया? सवेरे, नहीं? नियमसार में आया। आठ बोल आये। यह शुद्धि जो शब्द पड़ा है, वह शुभ के अर्थ में है। आठ बोल है न वह—प्रतिक्रमण, प्रतिहार, प्रतिशरण (निवृत्ति), धारणा, निन्दा, गर्हा, शुद्धि। यह शुद्धि का अर्थ शुभ है। अशुभ से—अशुभभाव से निवर्तना, उस अपेक्षा से उसको व्यवहार से शुद्धि कहा। परन्तु निश्चय से (यह) शुद्धि शुभराग है।

मुमुक्षु : अशुद्धि को शुभ, शुभ को शुद्धि कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : विशुद्ध कहो या शुद्ध कहो....

पूज्य गुरुदेवश्री : विशुद्ध तो बहुत प्रकार के हैं। विशुद्ध शुभभाव को भी कहते हैं, विशुद्ध शुद्ध को भी कहते हैं। बहुत प्रकार हैं। जहाँ-जहाँ अधिकार क्या है, उसको (ऐसे) लगाना। भाव आवे, वह शुभभाव। जब पुण्य का अधिकार चलता हो और विशुद्धभाव (कहा) हो तो वह कषाय की मन्दता और जब निर्मलता की व्याख्या चलती हो तो शुद्धता को विशुद्ध कहते हैं। विशेष शुद्धि। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **बातसौं नरम होइ, बातसौं अकरी...** और जहाँ प्रतिकूल बात

आवे तो अकड़ हो जाये। समझ में आया? 'अकरी' लिखा है न अन्दर? अकरी अर्थात् ऐंठ जावे। तुम्हारी भाषा है हिन्दी। ऐंठ जावे अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : अकड़ जावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकड़... अकड़ हो जाये। आहाहा! और **मन रूचती बात सुनकर नरम हो जाता है।** उसको अनुकूल लगे, वह मान्यता प्रमाण कहे कि हाँ, हाँ, अभी ठीक आया, हों! व्यवहार मानते हैं। व्यवहार है (ही) नहीं, व्यवहार है ही नहीं, ऐसा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है और व्यवहार से निश्चय को लाभ होगा, ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। बात तो ऐसी है। अमरचन्दजी! भाई! यह मार्ग तो प्रभु! खींचतान का नहीं, यह तो यथार्थ मार्ग ऐसा है। यह आगे आयेगा।

खोजी जीवै वादी मरे सांचि कहवति है। आगे आयेगा। हमारे बहुत वर्ष पहले चली थी। (संवत्) १९८० में चली या ८३ में चली। यह तो पहले से पढ़ते हैं न, ७८ की बात है। यहाँ है देखो, यह ४५ (पद) है। ४५। अपने ३९ (पद) चलता है न? ४५ है। देखो, **खोजी जीवै वादी मरे सांचि कहवति है।** यह प्रश्न हमारे ८३ के वर्ष में चला। दामनगर। बापू! खोजी रहो। वाद न करो, वाद न करो। सच क्या है, समझने की जिज्ञासा रखो। शोध, शोध। खोजी जीवे। सच क्या है (उसे) खोजनेवाला जीता है और सच पाता है। वादी मरे। वाद करने जायेगा तो मर जायेगा। सच बात यह तो है। 'सदगुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' सुन तो सही! समझ में आया? यह आगे आयेगा। यह तो हमारे बहुत वर्ष से चलती है न! (संवत्) ७८ से समयसार नाटक चलता है। १९७८। ४९ वर्ष हुए। समझ में आया? ५० में एक कम। उसमें थे तो हम (तत्त्वों को) मानते थे।

कहते हैं, **बातसौं नरम होइ बातहीसौं अकरी, निंदा करै साधु की...** सत्य बात जो कहते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं। यह तो निश्चयाभास है। ऐसा है, ऐसा है, ऐसा करके निन्दा करे सत्य की। है न अन्दर? **असुहाती बात हो तो ऐंठ जाता है। मोक्षमार्गी साधुओं की निन्दा करता है।** स्वरूप शुद्ध निर्विकल्प का आनन्द साधन है। व्यवहार साधन, वह तो निमित्त का कथन है। ऐसी बात कहते हो, उसकी निन्दा करे। नहीं, नहीं, व्यवहार का तो लोप कर देते हो। समझ में आया? ऐसी बात है। यह धर्म वीतराग का

मार्ग है। ऐ नन्दकिशोरजी! **प्रशंसा करै हिंसककी...** यह राग है, वह हिंसा है। और राग से धर्म माननेवाला हिंसक है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे आप पर से छूट गया, स्त्री-पुत्र छोड़ा तो वैरागी है, ऐसा नहीं। भगवान तो उसको वैरागी कहते हैं पुण्य-पाप अधिकार में कि पुण्य-पाप के राग से विरक्त हो, यह रुचि छोड़ दे, वह वैरागी है। राग का रस है, वहाँ वैराग कहाँ से आया? चाहे तो शुभभाव का प्रेम है, वह वैरागी कहाँ आया? वह तो रागी है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे हिंसक की प्रशंसा करे। राग स्थापित, राग से लाभ मनावे, माने। बड़ी बात। आग की (-जलद) बात है यह। ऐसी प्रशंसा करे। यह दुर्बुद्धि के लक्षण हैं, कहते हैं। आहाहा! गजब काम! बनारसीदास ने तो स्पष्ट कर दिया है। कहो, पूनमचन्दजी! **साता मानैं प्रभुता...** साता का उदय हो तो मानो बड़ा ईश्वर हो गया, प्रभु हो गया। शरीर में साता हो। ७० वर्ष, ८० वर्ष हुआ और कभी सौंठ भी चोपड़ी (लगाई) न हो। सूंठ समझे? सौंठ, सौंठ कहते हैं न!

यह अभी एक व्यक्ति कहे, हमने तो ऐसी कभी सौंठ भी लगाई नहीं। अभी उसमें क्या आया? वह तो साता का उदय हो तो इतना रहता है। कभी हमको तो रोग आता ही नहीं, ऐसी हमें प्रभुता है। धूल में नहीं है, सुन तो! रोग आवे, न आवे उसमें क्या है? सातवें नरक का नारकी। सोलह रोग और अन्दर समकित है। रोग क्या चीज़ है? रोग तो पर है, जड़ है। अज्ञानी साता माने... है न अन्दर? देखो, साता के उदय में अपने को महान मानता है। बड़ा है। देखो, दस-दस लाख की तो हमारी अमादनी एक महीने की है। हाँ, साता। शरीर में रोग नहीं और अनुकूल स्त्री, पुत्र, दुकान, हमारे आड़तिया और सब अनुकूल ही हैं। इतने हम महान हैं। मूढ़ है, अब महान कहाँ से आया तेरा? अज्ञानी बुद्धि में साता के उदय को ही प्रभुता मानते हैं। आहाहा! यह तो जड़ की दशा है, उसमें प्रभुता कहाँ आयी तेरी? आहाहा!

सनतकुमार चक्रवर्ती। ७०० वर्ष गलित कोढ़। महामुनि मोक्षगामी। यह तो असाता का उदय हो, उसमें क्या दोष है? असाता का उदय—रोग वह कोई दोष है? और निरोगता, वह कोई गुण है? समझ में आया? वह तो जड़ की चीज़ है। उसमें दोष-गुण कहाँ से आया? यह श्रीमद् को रोग हुआ था न, भाई! एक व्यक्ति ने लिखा कि 'राग है,

इसलिए रोग हुआ है।' बात ऐसी नहीं है। ऐसा लिखा है गाँधीजी ने। समझ में आया? राग था तो रोग हो, राग न हो उसे रोग नहीं होता। परन्तु वह तो किसकी (बात है?) राग है, इसलिए रोग है? वह तो दूसरी बात है। असाता का उदय हो और रोग आवे, वह रागी प्राणी हो इतना। परन्तु राग है, इसलिए असाता का उदय उसे आता है, (ऐसा नहीं)। समझ में आया?

साता मानैं प्रभुता, असाता मानैं फकरी... असाता का उदय हो तो हमें राग है, फकीर है, हमारे कुछ नहीं। फकीर, फकीर। बाबा हो गये। हमारे पास कुछ नहीं है। असाता के उदय से स्त्री मर गयी और पुत्र मर गया, शरीर में क्षय रोग लागू पड़ गया, हम तो भिखारी हो गये। यह मूढ़ ऐसा मानता है। बाहर की चीज़ में क्या आया? आहाहा! सातवें नरक का नारकी समकिती। एक अनाज का कण नहीं मिले, पानी की बूँद न मिले, सोने को पथारी न मिले, रहने को घर न मिले। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन—आत्मा का भान है अन्दर, (तो) बादशाह है। हम तो आत्मा के बादशाह हैं। आहाहा! समझ में आया?

साता मानैं प्रभुता, असाता मानैं फकरी। मौख न सुहाइ, दोष देखै तहां पैठि जाइ... मोक्ष परमानन्द मूर्ति आत्मा की दशा है। आज न हो। पहले स्वर्ग का सुख तो भोगने दो। बाद में मोक्ष होगा। अब सुन तो सही! स्वर्ग में सुख नहीं, होली है वहाँ। स्वर्ग में होली यहाँ के जैसी है। वहाँ कषाय अग्नि सुलगती है। आहाहा! अंगारे में, कषाय अंगारे में (जलते हैं)। पंचास्तिकाय शास्त्र में है। कषाय अंगारे में जलते हैं। टीका में अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं, सिंकता है। सिंकता है अर्थात् जलता है। आहाहा! उससे क्या सुखी है वह? **दोष देखै तहां पैठि जाइ...** जरा कुछ दोष देखे ज्ञानी का थोड़ा, आहा, देखो, देखो यहाँ।

कालसौं डराइ जैसैं नाहरसौं बकरी... जैसे बकरी, बाघ को देखकर भागती है, चिल्लाहट मचाती है, उड़ती है (दौड़ती है)। यह बकरा रखते हैं न रबारी लोग। वाड़े में बाँधे। बाघ बहुत हो जंगल में। डरे, कहते हैं। मोक्ष नहीं सुहाता, दुर्गुण दिखाई देवे। **शरीर में अहंबुद्धि होने के कारण मौत से तो ऐसा डरता है...** कि सिंह के पास बकरी जैसे डर जाये। अरे! यह शरीर छूटने का समय आ गया। यह तो छूटेगा ही, है क्या

तुझे ? यह तो देह की स्थिति है। मरण देखकर अज्ञानी डर जाते हैं। समझ में आया ? **कालसौं डराइ। ऐसी दुरबुद्धि भूली झूठ के झरोखे झूली,...** लो। **इस प्रकार मूर्खता अज्ञान से झूठ के मार्ग में झूल रही है।** मूर्खता झूल रही है। आहाहा! **फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी... ममता की सांकलों से जकड़ी हुई बढ़ रही है।** झूठ मार्ग में झूल रही है, लो। यह सर्वविशुद्ध अधिकार में ऐसी अध्यात्म की बात सुनकर जिसको (बात) नहीं रुचती है, उसकी बात की। अब १६वाँ श्लोक। पद है न वह। अमृतचन्द्राचार्य का।

आत्मानं परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः,
कालोपाधिबलादशुद्धिमधिकां तत्रापि मत्वा परैः।
चैतन्यं क्षणिकं प्रकल्प्य प्रथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-
रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षिभिः ।।१६।।

४०। पद में ४०। **केई कहै जीव क्षनभंगुर...** देखो, यह अज्ञानी की बात करते हैं। जीव जैसा हे, ऐसा न मानकर एकान्त माननेवाला क्रियावादी मूढ़ लिया है। ऐसा लिया है। अनेकान्त लेना है न!

★ ★ ★

काव्य - ४०

अनेकान्त की महिमा

(कवित्त)

केई कहैं जीव क्षनभंगुर,
केई कहैं करम करतार।
केई करमरहित नित जंपहिं,
नय अनंत नानापरकार।।
जे एकांत गहैं ते मूरख,
पंडित अनेकांत पख धार।
जैसैं भिन्न भिन्न मुकताहल,
गुनसौं गहत कहावै हार।।४०।।

शब्दार्थ:-क्षनभंगुर=अनित्य। जंपहिं=कहते हैं। एकान्त=एक ही नय। अनेकांत= अपेक्षित अनेक नय। पख धार=पक्ष ग्रहण करना। मुकताहल (मुक्ताफल)=मोती। गुन=सूत।

अर्थ:-बौद्धमती जीव को अनित्य ही कहते हैं, मीमांसक मतवाले जीव को कर्म का करता ही कहते हैं। सांख्यमती जीव को कर्मरहित ही कहते हैं। ऐसे अनेक मतवाले एक एक धर्म को ग्रहण करके अनेक प्रकार का कहते हैं, पर जो एकान्त ग्रहण करते हैं, वे मूर्ख हैं, विद्वान लोग अनेकान्त को स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार मोती जुदा-जुदा होते हैं, पर सूत में गुहने से हार बन जाता है। उसी प्रकार अनेकान्त से पदार्थ की सिद्धि होती है, और जिस प्रकार जुदा-जुदा मोती हार का काम नहीं देते, उसी प्रकार एक नय से पदार्थ का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता, बल्कि विपरीत हो जाता है।।४०।।

काव्य-४० पर प्रवचन

केई कहैं जीव क्षनभंगुर,
केई कहैं करम करतार।
केई करमरहित नित जंपहिं,
नय अनंत नानापरकार।।
जे एकांत गहैं ते मूरख,
पंडित अनेकांत पख धार।
जैसैं भिन्न भिन्न मुकताहल,
गुनसौं गहत कहावै हार।।४०।।

गुन अर्थात् सूत्र। सूत्र, सूत—डोरा। **केई कहैं जीव क्षनभंगुर..** कोई कहे कि एक समय की पर्याय, वही आत्मा। बस, दूसरा त्रिकाली आत्मा तो हमने कभी देखा नहीं नित्य रहनेवाला, ऐसा अज्ञानी एकान्त मानते हैं। यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। लो, यह बौद्ध भगवान, बौद्ध भगवान कहते हैं न लोग। एक समय की पर्याय को ही आत्मा मानता था वह। समझ में आया? रोग और निर्धनता का दु:ख देखकर वैराग्य था। यह

वैराग्य यथार्थ नहीं है। समकित नहीं, वह वैराग्य यथार्थ नहीं। दु:ख का नाश कैसे हो? परन्तु दु:ख का नाश, चिदानन्दस्वरूप क्या है, उसके भान बिना दु:ख का नाश होगा कहाँ से? आहाहा! **केई कहैं करम करतार...** उसमें लिया है न, तीन बोल लिये हैं कलश टीकाकार ने। कोई कहे कि कर्म का कर्ता अशुद्ध त्रिकाल है। कर्म से भिन्न पड़े वह आत्मा नहीं। ऐसा आत्मा है ही नहीं, ऐसा मानते हैं। मानते हैं न कितने ही? .... भी मानते हैं।

अभी मुक्ति में जाये कर्मसहित, परन्तु अमुक काल में वापस आता है, अवतार लेता है। यह झूठ है। **केई कहैं करम करतार, केई करमरहित नित जंपहिं...** कोई तो त्रिकाली शुद्ध ही है (ऐसा मानते हैं)। कर्म के निमित्त से अशुद्धता अपने में अपने से है। कहे, नहीं, त्रिकाल शुद्ध है। अरे, त्रिकाल शुद्ध तो द्रव्य है। परन्तु पर्याय में अशुद्धता नहीं है तो तुझे दु:ख कहाँ से आया? और अशुद्धता न हो तो नाश करके शुद्धता प्रगट करना कहाँ से आयी? समझ में आया?

करमरहित नित जंपहिं... एक क्षणिक, एक अशुद्ध और शुद्ध—तीन बोल लिये हैं। उसमें तीन बोल हैं। इस कलश में तो ऐसा है कि एक समय का है, उसमें तीन काल लागू कर दूँगा तो उपाधि आयेगी। यह वह है। एक समय का आत्मा में त्रिकाल लागू होगा तो उपाधि है। इसलिए एक समय का है, त्रिकाल नहीं। कलश का अर्थ तो ऐसा है, मूल पाठ। '**आत्मानं परिशुद्ध...**' अतिव्याप्ति हो जाती है। त्रिकाल में दो काल मिलाने से अतिव्याप्ति हो जाती है। इसलिए एक समय जितना है। एक समय है न, बस इतना। दो नहीं, तीन नहीं। भूतकाल में था, वर्तमान में है, भविष्य में रहेगा तो उपाधि लागू होगी। अनेक प्रकार जगत में पड़े हैं ऐसा। समझ में आया?

'**कालोपाधिबलादशुद्धिमधिका तत्रापि मत्वा परैः**' है न? '**चैतन्य क्षणिकं प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतैः**' शुद्ध ऋजु अर्थात् वर्तमान पर्याय को माननेवाला। त्रिकाल द्रव्यसहित ऋजुसूत्र मानना, वह नहीं। वर्तमान एक समय की पर्याय को ही (मानना)। सीधी बात और टेढ़ा कहाँ? त्रिकाल है और यह है, यह तो टेढ़ा हो गया अन्दर। उपाधि है न! आहाहा! ऐसे अनेक प्रकार के मत हैं, भाई! जैन में जन्मे होने पर भी अनेक प्रकार की मान्यता जैन में पड़ी है। भान नहीं (कि) वीतराग क्या कहते हैं।

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनके सौ-सौ इन्द्र चरण चूमते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, आहाहा! उनका मार्ग कोई अलौकिक है। अनेकान्त मार्ग है। द्रव्य से शुद्ध है, पर्याय से अशुद्ध है। सर्वथा अशुद्ध है, ऐसा नहीं; सर्वथा शुद्ध है, ऐसा नहीं। आहाहा! और अशुद्ध है तो सदा अशुद्ध ही रहेगा, ऐसा नहीं। समझ में आया?

केई करमरहित नित जंपहिं, नय अनंत नानापरकार। अनेक प्रकार, नय अनन्त प्रकार से हैं। एकान्त माननेवाला... भगवान का मार्ग अनेकान्त है। और कितने ही ऐसे कहते हैं कि जिस मनुष्य में एकान्त था, महावीर ने सबका एकान्त मिलाकर अनेकान्त ले लिया। अरे, दुनिया कहाँ गप्प मारती है! अपनी दृष्टि से अनुभव से तो अनेकान्त का भान हुआ था और ऐसा केवलज्ञान हुआ तो अनेकान्त कह दिया। लोग एकान्त मानते थे तो उन सबका संग्रह करके अनेकान्त कहा (ऐसा नहीं है)। कुछ भान नहीं होता। लिखनेवाला ऐसा पण्डित भी लिखे। सर्वज्ञ भगवान ने अनेकान्त क्यों कहा? एकान्त जितने मत थे, सबको संग्रह करके अनेकान्त बताया। नन्दकिशोरजी! ऐसा नहीं है। वस्तु ही अनन्त धर्मस्वरूप है। द्रव्य से, गुण से शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है। द्रव्य एक है, गुण-पर्याय अनेक है। यह वस्तु ऐसी है।

ऐसा अनुभव हुआ तब तो सम्यग्दर्शन हुआ। पश्चात् केवलज्ञान हुआ, तब वाणी (निकली)। वस्तु की स्थिति है, ऐसी (वाणी) निकली। दुनिया को देखकर मिलान किया, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान के समय में ऐसा था न! बहुत यज्ञ थे और हिंसा थी, तो भगवान ने हिंसा का निषेध किया। ऐसा व्यक्तिगत वहाँ आता है उपदेश? वहाँ तो ओम ध्वनि आती है। समझ में आया? यज्ञ में बहुत हिंसा होती थी न! भगवान ने रोक दिया। ऐ, अमरचन्दजी! भगवान ने रोक दिया, यह नहीं सुना है? सुना है। किसी से किसी को रोक सकते हैं? आहाहा! अखण्ड ध्वनि उसमें से निकली सहज बिना इच्छा के सारे शरीर में से ओम ध्वनि। 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' ऐसी भगवान की वाणी ओम ध्वनि सुनकर गणधरदेव ने अर्थ विचारकर शास्त्र बनाये। आहाहा! समझ में आया? 'ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' यह ओमकार में आता है।

बनारसीदास है न ? उनका एक बनारसी विलास है। बनारसीदास का बनारसी विलास है। उसमें यह है। यहाँ अपने छपवाया था। कौनसे वर्ष, नहीं ? अपने निकले थे पहले (संवत्) १९९५ के वर्ष। 'ओम' छपा है न अन्दर ? ९५, ९५। अपना ओम है न भाई ! यह इटली का पत्थर है। समझ में आया ? स्वाध्यायमन्दिर में 'ओम' समयसार के ऊपर (लगाया हुआ है)। ९५ में छपा था। बनारसी विलास में एक पत्र छपवाया था ऐसा .... बनारसी विलास में है। प्रणव मन्त्र का। हमने तो पहले से सब देखा है न ! ९५ वाँ पृष्ठ था। अभी नहीं है, समाप्त हो गया। उसमें ओम प्रणव मन्त्र। भगवान की वाणी में ओम ध्वनि आती थी। उसमें से ७०० अक्षर... वह ७०० प्रकार की वाणी है न, उसमें सब गर्भित है। आहाहा ! गणधरदेव परमात्मा के वजीर, दीवान, उन्होंने ओम सुनकर शास्त्र का अर्थ बनाया। भगवान ने अर्थ से कहा, गणधरों ने सूत्र से रचा। वह भी आता है भावपाहुड में। आहाहा !

ऐसे भगवान की बात छोड़कर एकान्त माननेवाला... **जे एकांत गहैं ते मूरख...** देखो, ऐसा कहते हैं। ऐ, पूनमचन्दजी ! मूर्ख लिखा है ? दूसरों को मूर्ख नहीं कहना। आहाहा ! भाई ! यह तो दया का शब्द है, करुणा का शब्द है। समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा ? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। पर को बचा सकता हूँ, सुखी कर सकता हूँ, ऐसा माननेवाला अज्ञानी मूढ़ है। वह तो जैसा स्वरूप है, ऐसी व्याख्या करते हैं। समझ में आया ? **पंडित अनेकांत पख धार**। आहाहा ! वह मूर्ख के सामने लिया। सम्यग्दृष्टि तो वस्तु के अनेक गुण हैं, अनन्ती पर्यायें हैं, पर्याय में अशुद्धता है, गुण-द्रव्य शुद्ध है (ऐसा मानता है)। वह कहते हैं न कि द्रव्य-गुण तो शुद्ध है तो पर्याय में अशुद्धता आयी कहाँ से ? अरे, पर्याय में अज्ञान से आयी, सुन तो सही ! समझ में आया ?

पंडित अनेकांत पख धार। भगवान ने जो अनेकान्त—अनन्त-अनन्त गुण (कहे)। एक गुण में दूसरा गुण नहीं, उसका नाम अनेकान्त। एक पर्याय में गुण सारा (-पूरा) नहीं, इसका नाम अनेकान्त। एक पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं, उसका नाम अनेकान्त। राग में निर्विघ्यता नहीं, उसका नाम अनेकान्त। निर्विघ्यता में राग नहीं, उसका नाम अनेकान्त। समझ में आया ? आहाहा ! अनन्त-अनन्त गुण, ऐसा समूह का पोटला। गुण समूह को द्रव्य कहते हैं न। आता है न ? कहा था न भाई सुबह ? प्रवेशिका में (आता

है)। 'गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।' जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (में आता है)। गुण किसको कहते हैं? गुण के विकार को पर्याय कहते हैं, पर्याय। गुण किसको कहते हैं? द्रव्य के सर्व भाग में, सर्व काल में रहे, उसका नाम गुण है। यह तो बालकों को समझाते हैं। समझ में आया?

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में है। कैसे? गोपालदास... गोपालदास बरैया। बहुत प्रख्यात है। बहुत अच्छा लिखा है। शास्त्र में से निकालकर संक्षिप्त भाषा। गुण समुदाय को द्रव्य कहते हैं। गुण जहाँ मिले, वहाँ दृष्टि करना या गुण जहाँ नहीं, वहाँ दृष्टि करना? अनन्त गुण की हाट (पिण्ड) तो आत्मा है, वहाँ व्यापार है अन्दर में। समझ में आया? एक समय की पर्याय में अनन्त गुण नहीं। राग में तो गुण है नहीं। आहाहा! कहते हैं, पण्डित अनेकान्त... **जैसैं भिन्न भिन्न मुकताहल...** मोती एक-एक मोती दो और डोरे में पिरोवे तो पूरा हार (हो जाता है)। एक-एक मोती रहे तो हार टूट जाता है। ऐसे जितना अनेकान्त स्वभाव है, सबको एक ही डोरे में पिरोते हैं। **गुनसौं गहत कहावै हार**। सूत के डोरे में मोती पिरोये तो हार कहा जाता है। उसी प्रकार भगवान ने जितने अनेक गुण कहे, सबको एकरूप ग्रहण करे तो द्रव्य सिद्ध होता है। अनेक प्रकार से कहते हैं, विद्वान लोग अनेकान्त को। ४१ (पद)।

★ ★ ★

काव्य - ४१

पुनः (दोहा)

यथा सूत संग्रह विना, मुकत माल नहि होइ।
तथा स्यादवादी बिना, मोख न साधै कोइ।।४१।।

शब्दार्थ:-संग्रह=इकट्ठे। मुकत माल=मोतियों की माला।

अर्थ:-जैसे सूत में पोये बिना मोतियों की माला नहीं बनती, वैसे ही स्यादवादी के बिना कोई मोक्षमार्ग नहीं साध सकता।।४१।।

काव्य-४१ पर प्रवचन

यथा सूत संग्रह विना, मुकत माल नहि होइ।
तथा स्यादवादी बिना, मोख न साधै कोइ।।४१।।

जैसे सूत्र में पोये बिना मोतियों की माला नहीं बनती... एक-एक भिन्न मोती से माला होती नहीं। आहाहा! **जैसे सूत्र में पोये बिना मोतियों की माला नहीं बनती, वैसे ही स्याद्वादी के बिना...** अपेक्षित कथन है। द्रव्य त्रिकाल शुद्ध है तो द्रव्य से ही शुद्ध है। परन्तु पर्याय अशुद्ध है, वह बात उसमें आ जाती है। स्याद्वाद—अपेक्षा से कहना है। उसमें है ही वह (कहना है)। उसमें नहीं है, उसमें स्याद्वाद कहाँ आया? आहाहा! स्याद्वादी अपेक्षा... स्याद्वाद में गड़बड़ उठती है। भगवान का अनेकान्त मार्ग है। व्यवहार से होता है (और) निश्चय से होता है। यह अनेकान्त नहीं हुआ, यह तो एकान्त हुआ। निश्चय से होता है और व्यवहार से नहीं होता, उसका नाम अनेकान्त है। पण्डितजी! कहे, नहीं, दो कहो तो अनेकान्त है। ऐसा भी हो और ऐसा भी हो। सिद्ध सुखी भी हैं और दु:खी भी हैं तो अनेकान्त कहने में आता है।—यह अनेकान्त है? सिद्ध सुखी हैं और दु:खी नहीं हैं, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया?

और सिद्ध ऊर्ध्वलोक में जहाँ क्षेत्र है, वहाँ ही हैं, दूसरे क्षेत्र में नहीं। उसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? धर्मास्ति नहीं है तो सिद्ध भगवान इतने परतन्त्र है, ऐसा नहीं है। अपनी स्वतन्त्र पर्याय से वहाँ रहे हैं। पर के कारण से रहे नहीं, उसका नाम अनेकान्त है। अस्ति-नास्ति का नाम अनेकान्त कहते हैं न? स्व से अस्ति और पर से नास्ति, उसका नाम अनेकान्त है। या अपने से भी है और पर से भी है, उसका नाम अनेकान्त है? अनेकान्त की गड़बड़ करते हैं। आहाहा! **तथा स्यादवादी बिना, मोख न साधै कोइ।** समझ में आया? द्रव्य और पर्याय जैसा है, गुण जैसा है, वैसा यथार्थ माने तो अन्तर्दृष्टि करके अशुद्धता टालकर मोक्ष होता है। दूसरों को मोक्ष होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२७, श्रावण शुक्ल १५, शुक्रवार, दिनांक ०६-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-४२ से ४५

समयसार नाटक है। सर्वविशुद्ध अधिकार। ४१ बोल चले। ४२। नीचे १७ कलश है।

कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा,
कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सञ्चिन्त्यताम्।
प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि-
च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्वेव नः ।।२०९।।

क्या कहते हैं? कि आत्मा को अनेकान्त न मानकर, एक पक्ष को मानते हैं, वह मिथ्यात्वभाव है। यहाँ तो कलश में तो ऐसा लिया है, लम्बी बात है। कि राग का कर्ता हो अज्ञानभाव से या ज्ञानभाव से कर्ता न हो।

मुमुक्षु : दोनों ही विकल्प हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, दोनों विकल्प हैं। देखो। **कर्तृवेदयित्तु...** अज्ञानभाव से हर्ष-शोक का वेदक हो, ज्ञानभाव से हर्ष-शोक का वेदक न हो, परन्तु वह दोनों ही विकल्प हैं। समझ में आया? **कर्त्ता वेदयिता च मा भवत...** ऐसा। न हो। **वस्तु एव सञ्चिन्त्यताम्**' भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और शान्ति का सागर, उसका अनुभव करो। समझ में आया? जन्म-मरण का चौरासी का अवतार नाश करने में एकान्त पक्ष काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। विकल्परहित अखण्ड आनन्द शुद्ध चैतन्य वस्तु की दृष्टि करके स्व का आश्रय लेकर स्वभाव के अनुकूल होकर, वीतरागी पर्याय रचना, वह मोक्ष का कारण है।

अब पाँच बोल में लेते हैं। बनारसीदास उसमें से पाँच बोल में कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ४२

पुनः (दोहा)

पद सुभाव पूरब उदै, निहचै उद्यम काल।
पच्छपात मिथ्यात पथ, सरवंगी सिव चाल।।४२।।

शब्दार्थ:-पद=पदार्थ। सुभाव (स्वभाव)=निजधर्म। उद्यम=पुरुषार्थ, तदवीर। काल=समय। पक्षपात=एक ही नय का ग्रहण। सरवंगी=अनेक नय का ग्रहण।

अर्थ:-कोई पदार्थ के स्वभाव ही को, कोई पूर्वकर्म के उदय ही को, कोई निश्चयमात्र को, कोई पुरुषार्थ को और कोई काल ही को मानते हैं, पर एक ही पक्ष का हठ ग्रहण करना मिथ्यात्व है, और अपेक्षित सब ही को स्वीकार करना सत्यार्थ है।।४२।।

भावार्थ:-कोई कहता है कि जो कुछ होता है, सो स्वभाव (नेचरल) ही से अर्थात् प्रकृति से होता है, कोई कहते हैं कि जो कुछ होता है, वह तकदीर से होता है, कोई कहते हैं कि एक ब्रह्म ही है, न कुछ नष्ट होता है, न कुछ उत्पन्न होता है, कोई कहते हैं कि तकदीर ही प्रधान है, कोई कहते हैं कि जो कुछ करता है सो काल ही करता है, परन्तु इन पाँचों में से एक किसी ही को मानना, शेष चार का अभाव करना एकान्त है।

काव्य-४२ पर प्रवचन

पद सुभाव पूरब उदै, निहचै उद्यम काल।
पच्छपात मिथ्यात पथ, सरवंगी सिव चाल।।४२।।

कोई पदार्थ के स्वभाव को ही मानते हैं। गोम्मटसार में ऐसा लिया है। स्वभाव... स्वभाव है, वही सब है, ऐसा मानते हैं। वह एकान्त पक्ष है। कोई पूर्व कर्म के उदय को मानते हैं। जैसा कर्म का उदय आवे, वैसे ज्ञान की पर्याय में तरंग उठे, एकान्त ऐसा मानते हैं। जैसा कर्म का अनुभाग—फल... अनुभाग का अर्थ क्या? फलदान देने की

शक्ति। तो कर्म में अनुभग आया, (ऐसा) फल दिया आत्मा को, ऐसे आत्मा में ज्ञान की पर्याय तरंग उठे, ऐसा एकान्त मानते हैं। यह भी झूठ बात है। तरंग उठती है, परन्तु अपनी पर्याय में अपने कारण से उठती है, कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! कोई निश्चय को ही अकेला मानते हैं। निश्चय एक अभेद ही वस्तु है। राग आदि या भेद आदि व्यवहार वस्तु है ही नहीं। अनेक आत्मा है ही नहीं। इस निश्चय में यह कहेंगे। अकेला आत्मा... सर्व लक्षण सबके एक हैं (तो) एक ही आत्मा है।

अभी तो यह चलता है न, वेदान्त बहुत चलता है। सुधरे हुए में लोग माने। सुधरे हुए, उसमें यही चलता है। बातें करना, बस आत्मा एक है। हम ब्रह्म हैं। अेगो... कुछ है नहीं छोटा-बड़ा। मानते हैं न बड़ा... हमारे वहाँ आया था कैम्प में। राजपूत था। व्याख्यान में लोग बहुत आवें। परन्तु बोले कैसा? एक है... एक है... एक है... ऐसा कहे। एक है तो एक का निर्णय किया, वही दो हो गये। वह तो दो हो गये। एक ही कहाँ रहा? एकान्त मानते हैं सब। उन लोगों में बहुत ऐसा चल गया है। सुधरे हुए लोग... जैन से जरा वेदान्त के मार्गानुसारी बहुत हो गये हैं। विलायत में भी यह वेदान्त की कितनी ही चर्चा बहुत हो गयी है। समझ में आया?

यह तो सूक्ष्म वस्तु है। एक ही आत्मा है, ऐसा मानना, वह एकान्त निश्चय है, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! कोई अकेले पुरुषार्थ को ही मानते हैं। पुरुषार्थ करो... पुरुषार्थ करो। पुरुषार्थ, परन्तु पुरुषार्थ तो स्वभाव, वस्तु, पर का अभाव—यह सब साथ हो तो पुरुषार्थ काम करे। अकेला पुरुषार्थ काम करे, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? कोई काल को ही मानते हैं। देखो, जिस समय जो होना होगा, वह होगा।

मुमुक्षु : सोनगढ़ क्रमबद्ध मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध, वह ही यह। भैया!

मुमुक्षु : पाँच को मानते हैं क्रमबद्ध में?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध में पाँच आ जाते हैं। कहना था वही। समझ में आया?

'क्रमबद्ध'। जिस द्रव्य में जिस समय जिस प्रकार पर्याय होनेवाली है काल,

(ऐसी ही) होगी, परन्तु ऐसा निर्णय (करनेवाला) किसके सन्मुख है? ऐसा निर्णय करनेवाला स्वभाव-सन्मुख है। तो 'स्वभाव' आ गया। 'पुरुषार्थ' स्वभाव सन्मुख किया तो पुरुषार्थ आ गया। वही समय 'काल' था तो काल में हुई। वही समय वही 'भवितव्यता' थी तो भाव हुआ और उसी समय प्रतिबद्ध का अभाव है, कर्म के उदय का प्रतिबद्ध का अभाव है। पाँचों ही बोल आ गये। मणिभाई! समझ में आया? यह प्रश्न तो चला था न वहाँ बहुत जयपुर। बड़ी सभा वहाँ तो थी। एक व्यक्ति खड़ा हुआ। परन्तु वह तो मध्यस्थ व्यक्ति था।

यह प्रश्न किया था। कहे, महाराज! दिन बहुत हो गये, थोड़े रहे। अब क्रमबद्ध का स्पष्टीकरण (करना) चाहिए।

मुमुक्षु : आप जयपुर में पधारे तो अब क्रमबद्ध का स्पष्टीकरण तो करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध का स्पष्टीकरण करना चाहिए। परन्तु क्रमबद्ध... क्रमबद्ध के कारण से (नाम से) नहीं आया है शास्त्र में। वह तो अकर्तापना बताने में क्रमबद्ध आया है। समयसार, सर्वविशुद्ध अधिकार (गाथा ३०८ से ३११ में)। समझ में आया? कहा था न वह? बताया था वह। यह समयसार है न, क्रमबद्ध आया है परन्तु वहाँ किस कारण से आया है?

मुमुक्षु : क्रमबद्ध के कारण से नहीं, परन्तु अकर्तापना बताने को (आया है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो।

मुमुक्षु : क्रमबद्ध तो सिद्ध बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बात सिद्ध ही है, परन्तु सिद्ध करने का कारण क्या? देखो!

'अब आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं। '**अतः आत्मनो अकर्तृत्त्वं दृष्टांतपूर्वक समआख्याति।**' यह शब्द है संस्कृत। आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहा जाता है। ऐसा शब्द पड़ा, उसमें क्रमबद्ध आया। कि आत्मा... जिस समय में जो पर्याय जहाँ होती है, तो वास्तव में वह आत्मा परद्रव्य की पर्याय का कर्ता तो है नहीं, राग का कर्ता तो है (नहीं), परन्तु अपनी पर्याय परिणमाऊँ, ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं

है। ऐसा अकर्ता सिद्ध करने को क्रमबद्ध आया है। मूल श्लोक है संस्कृत। समझ में आया? समयसार मूल श्लोक। इसमें है नहीं अपने यहाँ। बनारसीदास में नहीं है। '**अतः आत्मन अकर्तृत्त्वं दृष्टांतपूर्वक।**' वहाँ लिया है। '**दवियं चं उपज्जइ गुणेहि तं तेहिं जाणसु णण्णः**' द्रव्य जिस समय जिस पर्याय से उत्पन्न होता है, उस पर्याय से वह द्रव्य अनन्य है। अन्य पर्याय नहीं है। समझ में आया? उसमें क्रमबद्ध आया, देखो!

प्रथम तो... यह गुजराती है। हिन्दी नहीं है। है? 'जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव (ही) है।' यह संस्कृत है— '**जीवो हि तावत् क्रमनियमितं आतमपरिणामेन उपज्जमानो जीव एव। तावत् क्रमनियमित...**' दो शब्द पड़े हैं। देवकीनन्दन को बताया था। देवकीनन्दन आये थे न पहले। देखो! कहा, क्रम और नियमित—दो शब्द पड़े हैं। समय-समय में होगा, परन्तु नियमित जिस समय में होनेवाली, वही पर्याय होगी। उस द्रव्य का वह परिणमन का पर्याय का स्वभाव है। '**तावत् क्रमनियमितं आतमपरिणामेन उपज्जमानो जीव।**' परन्तु उसकी दृष्टि है कहाँ? आहाहा! ऐसे क्रमबद्ध... क्रमबद्ध कहे और कर्ताबुद्धि रहे तो क्रमबद्ध का निर्णय है ही नहीं। समझ में आया? मैं करूँ... मैं करूँ... करूँ, ऐसा तो होता है। तो 'करूँ, करूँ' ऐसे में क्रमबद्ध का निर्णय आया कहाँ?

क्रमबद्ध के निर्णय में तो अपना भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव है, उसके ऊपर दृष्टि जाती है तो 'स्वभाव' आया। उसी समय उत्पन्न होनेवाला 'काल' भी आया। और उस समय वही भाव था तो 'भवितव्य' भी आया। और 'पुरुषार्थ' स्वभाव-सन्मुख है तो पुरुषार्थ भी आया। और उसी समय प्रतिबद्ध कर्म का उदय है, उसका भी अभाव होता है। समझ में आया? गजब बात! जगत, जगत के झगड़े। यह तो बहुत वर्ष से यह झगड़ा (चलता है) हमारे तो। (संवत्) १९७२ के वर्ष से है। ७२-७२। ५५ वर्ष हुए ५५। समझ में आया? गजब भाई! पुरुषार्थ से होता है, परन्तु स्वभाव आया। लब्धि, उस समय की 'काललब्धि', वही समय वही पर्याय प्राप्त होनेवाली, उसका नाम काललब्धि है। और वही भाव, वह 'भवितव्य' है। समझ में आया? ये पाँचों एक समय में है। एक समय में काललब्धि, भवितव्यता, स्वभाव, पुरुषार्थ और प्रतिबद्ध का अभाव—एक समय में पाँचों हैं। आहाहा!

वह कहते हैं, देखो! 'जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव...' अजीव नहीं अथवा पर के कारण से वह पर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं। और 'अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव (ही) है।' आहाहा! शरीर आदि, रजकण आदि की पर्याय उसके काल में जब क्रम है, ऐसे वह होगा। उसमें परमाणु का स्वभाव आया, परमाणु की शक्ति भी आयी, पर्याय का काल आया। भवितव्यता आयी, विघ्न का अभाव आया। समझ में आया? आहा! भारी सूक्ष्म पड़े लोगों को।

मुमुक्षु : और एक जगह आया, **इवम् क्रमाक्रमे... वर्ततु**

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो गुण-पर्याय की बात है। उसमें गुण अक्रम है और पर्याय क्रम है, ऐसा। गुण क्रम-अक्रम और दूसरे दो प्रकार हैं उसमें। दूसरे प्रकार से है।

कि गति आदि है, वह क्रम है और कषाय-लेश्या-सम्यक् पर्याय—यह एक साथ है, यह अक्रम है। चौदह मार्गणा में एक-एक में पर्याय अक्रम है। और गति आदि है, वह क्रम है। ऐसा अकलंकदेव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक में कहा है। हाँ, उस तत्त्वार्थराजवार्तिक में यह कहा है। गुण अक्रम और पर्याय क्रम, यह दूसरी जगह कहा। जयधवल में, धवल में। परन्तु अकलंकदेव ने तो ऐसा कहा, भाई! अक्रम-क्रम कहा न? तो कहे, अक्रम में आत्मा की लेश्या-ज्ञान-दर्शन आदि पर्याय एक साथ होती है, वह अक्रम, परन्तु गति एक समय में एक हो नरक और पीछे मनुष्य, यह क्रम। गति एक समय में दो हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? अपने उसमें आया है, भाई! नहीं? कौनसी गाथा में, देखो न! अपने उसमें आया है?

मुमुक्षु : ३८ (गाथा समयसार)

पूज्य गुरुदेवश्री : ३८। अड़तीस। आया है सब। यह तो बहुत बार पढ़ लिया है। आहा!

देखो, ३८। 'नर नारक आदि (जीव के) विशेष, अजीव, पुण्य आदि निर्जरा आदि...' उसमें... आहाहा! क्या आया, देखो। यह रहा। 'चिन्मात्र आकार के कारण मैं समस्त क्रमरूप और अक्रमरूप...' ३८वीं गाथा संस्कृत में पड़ा है। '**समस्त क्रमाक्रम प्रवर्तमान व्यावहारिकभावैश्चिन्मात्राकारेणाभिद्यमानत्वादेक:**'।

मुमुक्षु : यह तो सबको व्यवहारिकभाव कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारिकभाव है। क्या व्यवहारिकभाव? कि एक समय में लेश्या होती है, उसी समय में ज्ञान की पर्याय होती है, उसी समय में श्रद्धा की पर्याय होती है, उसी समय में चारित्रपर्याय होती है, उसी समय में पर की नास्ति की पर्याय होती है और वीर्य की पर्याय होती है, अनन्त गुण की एक समय में ऐसी जो पर्याय है, उसको अक्रम कहते हैं। एक साथ की अपेक्षा से। और एक के बाद एक गति उत्पन्न हो। क्रोध के समय मान नहीं, मान के समय माया नहीं, गति के समय दूसरी गति नहीं—वह क्रम है। ऐसा यहाँ है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में नाम लिखा है पहले। ....नाम लिखा है। हाँ, पृष्ठ लिखा है पहला। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गुण एक साथ परिणमते हैं इसलिए अक्रम?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, गुण एक साथ है, यह अक्रम। परन्तु गुण की पर्याय एक साथ नहीं है, इसलिए क्रम। दो बातें। यहाँ तो पर्याय एक साथ है। ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय चारों एक साथ है या नहीं? तो सब पर्याय एक साथ है, वह अक्रम। और गति एक के बाद एक है, वह क्रम।

मुमुक्षु : पर्याय में दो भेद?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय के दो भेद। वह गुण तो अक्रम है और पर्याय क्रम है—वह दूसरी बात है। यह तो एक पर्याय में दो भेद। साथ में बहुत पर्याय है, उसका नाम अक्रम और एक के बाद एक पर्याय होती है—गति की, क्रोध की, मान की, अज्ञान की, ज्ञान की। अज्ञान के समय ज्ञान है? तो अज्ञान की पर्याय के समय ज्ञान नहीं और ज्ञान की पर्याय के समय अज्ञान नहीं—वह क्रम है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसे क्रम-अक्रम प्रवर्तमान व्यवहार से....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारिक भाव लिया यहाँ तो। आहाहा! यह उसमें लिखा है नाम, अकलंकदेव में ऐसा है। यह शब्द अकलंकदेव का है।

यह अमृतचन्द्राचार्य ने लिखा है पीछे देखो न। '**समस्त क्रमअक्रम प्रवर्तमान व्यावहारिकभावैः**' व्यवहारिकभाव में क्रम-अक्रम। उसका अर्थ गुण में नहीं। ज्ञान की

पर्याय के साथ श्रद्धा की पर्याय, शान्ति की पर्याय, आनन्द की पर्याय एक साथ है तो अक्रम। और गति की एक साथ नहीं होती है और क्रोध के समय मान नहीं होता है, यह क्रम। यह व्यवहारिक भाव हुआ। वह व्यवहारिक भाव कौन सा? व्यवहारिक भाव से भेदरूप नहीं होता। इसलिए मैं एक हूँ। ३८ में है न? '**अहमेक्को खलु शुद्धो**।'

मुमुक्षु : अर्थात् स्वभावपर्याय अक्रम।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभावपर्याय... नहीं, यहाँ तो विकारी पर्याय भी अक्रम रहती है साथ में। कहा न, लेश्या है उस समय क्रोध है। परन्तु जो गति आदि है, क्रोध आदि है.... (जिस समय) क्रोध, उसी समय मान (होता है), ऐसा नहीं। क्रोध-मान-माया क्रम में होते हैं और ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय, चारित्रपर्याय अक्रम एक साथ होती है। समझ में आया? आहाहा! भारी झगड़ा। ऐ, नन्दकिशोरजी! देखो न, भाव कैसा है?

चिन्मात्र आकार के कारण मैं समस्त क्रम और अक्रमरूप प्रवर्तमान व्यवहारिक भाव—व्यवहारिक पर्यायें, उनसे भेदरूप नहीं होता। मैं तो अभेद हूँ, त्रिकाल एक हूँ, ऐसा अर्थ किया, देखो! '**अहमेक**' 'मैं एक हूँ।' कैसे एक हूँ? कि अपनी पर्याय में ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की, आनन्द की पर्याय एक साथ है तो उस अपेक्षा से अक्रम और गति एक साथ नहीं, इस अपेक्षा से क्रम—ऐसे व्यवहारिक भाव से मैं भेदरूप नहीं होता। आहाहा! मैं तो अभेद अखण्ड हूँ। इस ३८ गाथा में जीव का टोटल बनाया—अन्तिम सार। आहाहा! यहाँ यह क्रम लिया है। बहुत लिया है। ओहोहो! समयसार में तो सारा समुद्र भर दिया है। आचार्य की शैली! ऐसे किसी क्षण में उस काल में बन गया है। धन्य भाग्य! धन्य घड़ी! यह पुस्तक ऐसी चीज़ बन गयी, भरतक्षेत्र में ऐसी कोई दूसरी चीज़ है नहीं। यह वस्तु की स्थिति है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान की पर्याय के साथ श्रद्धा की पर्याय साथ में है या नहीं? तो उसके साथ शान्ति की पर्याय है या नहीं? आनन्द की, वीर्य की, स्वच्छता की, प्रभुता की, सब अनन्त गुण की उसमें सब गुण की पर्याय है या नहीं? तो गुण तो अक्रम है ही, परन्तु पर्याय भी साथ में सब है तो वह अक्रम हुई। और एक गति के बाद गति होती है, क्रोध के बाद मान होता है। समझ में आया? और कृष्णलेश्या के बाद नील होती है। कृष्ण के समय नील होती है? ऐसा उसमें क्रम पड़ा। परन्तु लेश्या, ज्ञान, दर्शन आदि एक

साथ है, उसे अक्रम कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गुणस्थान क्रम से होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणस्थान भी क्रम से होते हैं। चौथे गुणस्थान के समय पाँचवाँ होगा? पाँचवें के समय छठवाँ होगा? उसमें क्रम है। परन्तु यह गुणस्थान में जो ज्ञान-दर्शन आदि की पर्याय एक साथ सब (होती है), वह अक्रम है। समझ में आया? यह १४ मार्गणा है न, लो न! चौदह मार्गणा में एक-एक पर्याय तो है या नहीं सबकी? ऐई! १४ मार्गणा में तो बहुत विस्तार किया। ओहोहो! गोम्मटसार में २० बोल का विस्तार है।

यहाँ कहते हैं कि कोई तो स्वभाव, पदार्थ के स्वभाव को ही माने। कोई पूर्व कर्म के उदय को ही माने। वह उदय अर्थात् गुण की तरंग लेंगे। समझ में आया? अनेक गुणरूप तरंग लेंगे। उनमें पर्याय होती है न भिन्न-भिन्न? राग की, ज्ञान की भिन्न-भिन्न होती है, वह कर्म अर्थात् कार्य। वही एक ही चीज़ है, ऐसा मानते हैं। कोई निश्चयमात्र को (मानते हैं)। ब्रह्म एक ही है, दूसरी चीज़ है नहीं। सबका लक्षण एक है तो एक ही आत्मा है। ऐसा अज्ञानी एक पक्ष को मानता है। कितने ऐसा कहते हैं कि इस समयसार का तो वेदान्त के साथ मिलान किया है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? झूठ है। वेदान्त के साथ एक भी चीज़ का मिलान नहीं है।

वे नाथूलाल थे न वहाँ? मुम्बई में, नहीं? नाथूराम प्रेमी। मुम्बई में पण्डित थे न। वे ऐसा कहते थे कि यह समयसार वेदान्त के ढाले में ढाला है। बिल्कुल नहीं। जैन में क्रियाकाण्ड में सब (धर्म) मान रहे थे तो उसको द्रव्य का निश्चय स्वभाव बताया। इससे लोगों को ऐसा लगा कि यह वेदान्त जैसी बात है। अरे, वेदान्त में अनन्त द्रव्य कैसे? वेदान्त में पर्याय कैसी? वेदान्त में विकार कैसा? चार गति कैसी? परिभ्रमण कैसा? अनेक गुण कैसे? अनेक द्रव्य कैसे? पर्याय कहाँ अनेक? समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ पूर्ण ब्रह्म भगवान ने जब तीन काल-तीन लोक देखे। ऐसे वीतराग को इच्छा बिना वाणी की प्रवाह धारा निकली। आहाहा! और मैं बोलूँ, ऐसा है केवली को? इच्छा है? इच्छा बिना वाणी निकलती है।

भगवान को केवलज्ञान हुआ, महावीर परमात्मा को। राजगृही, विपुलाचल

पर्वत। वाणी नहीं निकली। वाणी निकलने का काल नहीं था। ६६ दिन वाणी नहीं निकली। केवलज्ञान होने पर भी ६६—दो महीना और छह दिन। वैशाख शुक्ल दसमी को केवल (ज्ञान) हुआ। श्रावण कृष्ण एकम को ध्वनि खिरी। गणधर की उपस्थिति (नहीं थी)। कोई ऐसा कहते हैं कि लो गणधर आये तो वाणी खिरी। झूठ है। देखो, निमित्त आया तो उपादान वाणी निकली। ऐसा है नहीं, भाई! ऐसा नहीं। वाणी का काल ही वही समय निकलने का था। समझ में आया?

और प्रश्न भी चला है जयधवल में। ऐसा प्रश्न किया है कि महाराज! इन्द्र उसी समय क्यों लाया गौतम को? पहले लाना था न? जब केवलज्ञान हुआ, उस समय गणधर को लाना था न इन्द्र को। वहाँ तक जाकर। जयधवल में कहते हैं कि काललब्धि नहीं थी उनकी। लब्धिकाल (नहीं) था उनका—गौतम (गणधर) का। गौतम का लब्धिकाल नहीं था, ऐसा पाठ है। काललब्धि उनकी नहीं थी। समझ में आया? इसलिए इन्द्र ने उनको बुलाया नहीं। आहाहा! जिस समय जहाँ जिस प्रकार होना है, उसी प्रकार अपने से होता है। आहाहा! परन्तु इसमें ऐसा लगे लोगों को कि यह तो निश्चयाभास जैसा लगता है। परन्तु एकान्त। अरे, यही अनेकान्त है, सुन तो सही! वही कहते हैं, देखो यहाँ।

कोई तो उद्यम को ही मानते हैं। देखो, अकेले पुरुषार्थ को माने। अकेला पुरुषार्थ क्या करे? साथ में स्वभाव, काल, भवितव्यता—सब होनी चाहिए। अकेले काल को माने। देखो, आया न! यह काल का क्रमबद्ध। अकेला क्रमबद्ध ही समय-समय होता है, यह काल है। एकान्त ऐसे नहीं। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं कि क्रमबद्ध भी है और अक्रमबद्ध भी है। ऐसा नहीं। परन्तु क्रमबद्ध होने के पर्यायकाल में पाँच समवाय साथ में हैं, यह अनेकान्त है। समझ में आया? वह बहुत निकालते हैं, पत्रों में बहुत आता है पण्डितों का। रतनचन्दजी ने बहुत निकाला है। एक पत्र हमारे प्रति आया था। देखो, धवल-जयधवल पढ़कर नियत और अनियत दोनों निकाला है रतनचन्दजी ने।

मुमुक्षु : वह अनियत होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे, सुन तो सही!

नियत-अनियत पर्याय दो निकाली है, ऐसा कहते हैं। उनका पत्र है न अपने

पास। पम्पलेट आया है न। छोटी पुस्तक प्रकाशित की हुई है। उन्होंने नियत-अनियत— ऐसे दो बातें निकाली हैं धवल देखकर। कैसे नियत-अनियत? अर्थात् पर्याय क्रमबद्ध भी होती है न कोई अनियत काल में होती है। ऐसी (बात) है नही। अपने काल में होती है, यह नियत है, पर के कारण से नहीं होती है, वह अनियत है। उसका नाम अनियत है।

मुमुक्षु : परकाल में नहीं होती, वह अनियत।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर के काल से नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर के काल से नहीं होती, इसलिए अनियत?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनियत है।

मुमुक्षु : और अपने काल में होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने काल में नियत है, देखो! फिर से लेते हैं।

अपने द्रव्य के कारण से अपना द्रव्य है और अपने द्रव्य के कारण से परद्रव्य नहीं है। तो अपने द्रव्य के कारण से परद्रव्य अद्रव्य है।

मुमुक्षु : अद्रव्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्रव्य कहो। और अपने क्षेत्र की अपेक्षा से परक्षेत्र अक्षेत्र है। अपनी पर्याय की अपेक्षा स्वकाल की (अपेक्षा) पर अकाल है और अपने भाव की अपेक्षा से पर अभाव है। इसके बिना तत्त्व सिद्ध नहीं होगा। समझ में आया? अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अपना अस्तित्व है और पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अपना अस्तित्व नहीं और अपने अस्तित्व से पर का अस्तित्व नहीं। तो अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल-अभाव हो गया अपनी अपेक्षा से। उसकी अपेक्षा से स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है। समझ में आया? ऐसे पर की अपेक्षा से आत्मा को अनियत कहने में आता है। आगे पीछे हो, वह प्रश्न नहीं है। झगड़ा-झगड़ा। एकान्त का झगड़ा है सब।

पच्छपात मिथ्यात पथ... लो। यह पक्षपात करते हैं एकान्त में और पाँच एक साथ नहीं मानते, यह मिथ्यात्वपथ है। **सरवंगी शिव चाल...** मोक्ष का मार्ग तो सर्वांग पाँचों एक साथ एक समय में मानते हैं। समझ में आया? स्पष्टीकरण है न! निश्चय होता है न.... आवे न? कोई कहते हैं कि कुछ होता है सो तकदीर से होता है। कोई

कहे, ब्रह्म ही है। न कुछ नष्ट होता है और न कुछ उत्पन्न होता है। पर्याय है नहीं यूं। कोई कहते हैं कि तकदीर ही प्रधान है। कर्म ने किया, ऐसा हुआ। ऐसा कहाँ है? यह तो बाहर की चीज़ में किया है। अपने में क्या है? समझ में आया? **कोई कहते हैं कि जो कुछ करता है सो काल ही करता है, परन्तु पाँचों में से एक किसी की हो मानना, शेष चार का अभाव करना एकान्त मिथ्यात्व है। ४३। छहों मतवालों का जीव पदार्थ पर विचार।**

★ ★ ★

काव्य - ४३

छहों मतवालों का जीव पदार्थ पर विचार

(सवैया इकतीसा)

एक जीव वस्तुके अनेक गुन रूप नाम,
निजयोग सुद्ध परजोगसौं असुद्ध है।
वेदपाठी ब्रह्म कहैं मीमांसक कर्म कहैं,
सिवमती सिव कहैं बौद्ध कहैं बुद्ध है।।
जैनी कहैं जिन न्यायवादी करतार कहैं,
छहौं दरसनमें वचनकौ विरुद्ध है।
वस्तुकौ सुरूप पहिचानै सोई परवीन,
वचनकै भेद भेद मानै सोई सुद्ध है।।४३।।

शब्दार्थ:-निजजोग=निजस्वरूप से। परजोग=अन्य पदार्थ के संयोग से। दरसन (दर्शन)=मत। वस्तुकौ सुरूप=पदार्थ का निजस्वभाव। परवीन (प्रवीण)=पण्डित।

अर्थ:-एक जीव पदार्थ के अनेक गुण, अनेक रूप, अनेक नाम हैं, वह परपदार्थ के संयोग बिना अर्थात् निजस्वरूप से शुद्ध है और परद्रव्य के संयोग से अशुद्ध है। उसे वेदपाठी अर्थात् वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, मीमांसक कर्म कहते हैं, शैवलोक वैशेषिक मतवाले शिव कहते हैं, बौद्ध मतवाले बुद्ध कहते हैं, जैनी लोग जिन कहते हैं, नैयायिक

कर्ता कहते हैं। इस प्रकार छहों मत के कथन में वचन का विरोध है। परन्तु जो पदार्थ का निज-स्वरूप जानता है, वही पण्डित है, और जो वचन के भेद से पदार्थ में भेद मानता है, वही मूर्ख है।।४३।।

काव्य-४३ पर प्रवचन

एक जीव वस्तुके अनेक गुन रूप नाम,
निजयोग सुद्ध परजोगसौं असुद्ध है।
वेदपाठी ब्रह्म कहैं मीमांसक कर्म कहैं,
सिवमती सिव कहैं बौद्ध कहैं बुद्ध है॥
जैनी कहैं जिन न्यायवादी करतार कहैं,
छहौं दरसनमें वचनकौ विरुद्ध है।

वचन के विरुद्ध का अर्थ भाव का विरोध है। यह तो 'वचन' शब्द लिया है।

मुमुक्षु : स्वरूप में ही विरोध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐ, पूनमचन्दजी! क्या है? सबमें विरोध है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कोई कहते हैं, सबमें बराबर है। वचन में विरोध है, भाव में विरोध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में विरोध है, ऐसा बताते हैं यहाँ। भाई! यह तो 'वचन' शब्द लिया है। छहों में भाव में विरोध है, एकान्त है। आहाहा! समझ में आया? यह भी सच्चा और वह भी सच्चा और हमारा भी सच्चा—ऐसा है नहीं। ऐसा फुदड़ीवाद नहीं है। वीतरागमार्ग फुदड़ीवाद नहीं है। फुदड़ी समझते हैं? ऐसा जैसा फिर जाना, बदल जाना। यह भी ऐसा कहे। जड़ है भी सही।

एक बार यहाँ प्रश्न हुआ था हमारे (संवत्) १९९२ के वर्ष। तुम्हारे आचार्य था न वह? चन्द्रकान्त। चन्द्रकान्त गुजर गया बेचारा।

मुमुक्षु : गुरुकुल।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरुकुल के। हाँ, वह। चन्द्रकान्त था, होशियार था।

मुमुक्षु : आचार्य था।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका आचार्य था। फिर .... यहाँ मूर्ति नहीं थी। वह श्वेताम्बर मूर्ति थी... तब कोई व्यक्ति आया था। ... गये थे, बैठे थे। तो वह रास्ते में निकले तो उसको पूछा। कहा, जैन जड़ मानते हैं, जड़ है या नहीं ? तो वह कहे कि माने तो है और न माने तो नहीं है। क्योंकि शास्त्र में ऐसा आता है कि जड़ है सही और जड़ नहीं है सही। परन्तु किस अपेक्षा से ? कहा। जड़ है अपने से, जड़ नहीं है पर से। यह तो जड़ माने तो है, ऐसा है नहीं अनेकान्त, कहा।

वह तो बेचारा वेदान्त का, गुरुकुल का (आचार्य था)। गुरुकुल है न दयानन्द सरस्वती। सब माने सब जगह। ९२ के वर्ष की बात है। ९२। ८ और २७ = ३५ वर्ष हुए। कितने ? ३५। पैंतीस वर्ष हुए। आठ और सत्ताईस। ऐसा है नहीं। है शास्त्र में ऐसा। क्या ? कि जीव अपने से है, पर से नहीं है। इसलिए 'है और नहीं है' का अर्थ क्या ? माने तो है और न माने (तो नहीं है), ऐसा नहीं है। अपने से है और पर से नहीं। ऐसे 'नहीं है'। ऐसे जड़ स्व से है, पर से (नहीं), ऐसे 'नहीं है'। 'नहीं है' अर्थात् जड़ है ही नहीं, ऐसी बात नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? वही कहते हैं, देखो।

वस्तुकौ सुरूप पहिचानै सोई परवीन,
वचनकै भेद भेद मानै सोई सुद्ध है ॥४३॥

जैसा है वैसा माने, यह शुद्ध है—ऐसा कहते हैं। अर्थ : **एक जीव पदार्थ के अनेक गुण, अनेक रूप, अनेक नाम हैं।** जीव एक है, गुण अनेक है, रूप अनेक है, पर्याय भी अनेक है। **निजजोग सुद्ध...** अपने स्वभाव का सम्बन्ध करे तो शुद्ध है। अपनी पर्याय अपने स्वभाव का सम्बन्ध करे तो शुद्ध है। और **परजोगसौं असुद्ध है...** पर के कारण से नहीं, परन्तु पर का सम्बन्ध करे तो अशुद्ध है। दोनों ही बात है। समझ में आया ? नहीं, नहीं, अशुद्धता है ही नहीं। अरे, न हो तो तुझे आनन्द का अनुभव होना चाहिए। अशुद्धता यदि पर्याय में न हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होना चाहिए। समझ में आया ? और अशुद्धता यदि द्रव्य में हो तो कभी अशुद्धता टलकर शुद्धता प्रगट होवे नहीं। वस्तु शुद्ध है, पर्याय में अशुद्ध है। दोनों ही बात मानना चाहिए। समझ में आया ?

निजजोग सुद्ध परजोगसौं असुद्ध है... परजोगसों अशुद्ध कहा, हों। पर से अशुद्ध है, ऐसा नहीं कहा है यहाँ।

मुमुक्षु : पर के साथ सम्बन्ध करने से....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का योग—सम्बन्ध कहा है यहाँ। 'कर्म बेचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई' आता है या नहीं वह? चन्द्रप्रभ की स्तुति में।

मुमुक्षु : पूजा में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'कर्म बेचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात, लोह की संगति पाई।' लोह का संग करती है अग्नि तो घन पड़ते हैं। लोह की संगति न करे तो घन पड़ते नहीं। इसी प्रकार आत्मा जड़ का संग करे तो अशुद्धता होकर मार खाता है। आहाहा! '**परसंग एव**।' उसमें बड़ा विवाद है न? उसमें है न समयसार में। '**परसंग एव**।' स्फटिक (का दृष्टान्त) है। '**परसंग एव**।' पर से नहीं। ऐसा शब्द है। यहाँ बंशीधरजी ने स्वीकारा कि बराबर है। '**परसंग एव**।' पर से नहीं। परसंग। उन्होंने स्वीकार किया था। पर का संग करता है तो विकार होता है। विकार पर कराता है (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में है नहीं। समझ में आया?

निजजोग सुद्ध... भगवान आत्मा... अपनी पर्याय अन्तर में सम्बन्ध करे तो शुद्ध है। वस्तु शुद्ध है, ऐसी पर्याय भी शुद्ध है। अरे! ऐसा समय मिले नहीं निकलने का, उसमें झगड़ा एकान्त का। मुश्किल से मनुष्य भव थोड़ा काल। आहाहा! अरे, कहाँ अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... निगोद, त्रस। आहाहा! दो हजार सागर। निगोद एकेन्द्रिय में असंख्य पुद्गल परावर्तन। आहाहा! एक निगोद में ७० क्रोड़ाक्रोड़ी एक सूक्ष्म में। बाहर में ७० क्रोड़ाक्रोड़ी। ऐसे सूक्ष्म-बादर में करते... करते... करते दो (मिलकर) ढाई पुद्गलपरावर्तन। और ढाई पुद्गलपरावर्तन के अतिरिक्त निगोद सूक्ष्म और प्रत्येक में यह जाये और प्रत्येक, सूक्ष्म, बादर में सब (मिल) कर असंख्य पुद्गलपरावर्तन। असंख्य पुद्गलपरावर्तन, भाई! नाम लेने से... आहाहा! अरे, उसे विचारने का समय नहीं उसे। आहाहा!

एक सूक्ष्म निगोद में रहे तो सात चौबीसी रहे। ७० क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम। सात

चौबीसी तक हुई न। दस क्रोडाक्रोड़ी सागरोपम में एक चौबीसी। समझ में आया? दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम में एक चौबीसी। ऐसे ७० क्रोड़ाक्रोड़ी अकेला सूक्ष्म में मरे और जन्मे। मरे और जन्मे। समझ में आया? पश्चात् बादर में आ जाये तो वहाँ भी ७० क्रोड़ीक्रोड़ी अकेले बादर में रहे, पूर्ण काल। दोनों मिलाकर रहे तो ढाई पुद्गल परावर्तन।

मुमुक्षु : बादर में कितना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेले बादर में रहे तो ७० क्रोड़ाक्रोड़ी—सात चौबीसी। दो मिलकर रहे तो ढाई पुद्गलपरावर्तन। और प्रत्येक, पृथ्वी, अग्नि, वायु और निगोद—सब लेकर तो असंख्य पुद्गलपरावर्तन। आहाहा! पण्डितजी! शास्त्र में सब आया है। आहाहा!

असंख्य पुद्गलपरावर्तन किसको कहे? एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में तो अनन्त चौबीसी चली जाये। आहाहा! भाई! इसने विचार किया नहीं। अरे, मेरा काल अभी भव के अभाव का यह काल आया है। मुझे यह करना है ऐसा... आहाहा! आँखें मींचकर चला जायेगा। कोई साथ में है नहीं। कोई साथ में है नहीं। श्वास रुक जाये और चला गया। आहा! यह बेचारे लड़के देखो न रोवे कोई मानो देखे। आज सवेरे रोते थे। रोवे बेचारे। लड़का शनिवार को मर गया न रात्रि को।

मुमुक्षु : वह चिट्ठी आयी है, या मेहमान आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिट्ठी होगी। लड़का कुछ कहता था। सुनते हुए रोवे, रोवे। आहाहा!

बापू! किसे रोवे। 'रोनेवाला नहीं रे रहनेवाला रे।' रोनेवाला कहाँ रहनेवाला है कि मरनेवाले को रोते हो। आहाहा! तेरी भी एक दिन स्थिति—दशा छूट जायेगी। अकस्मात छूटती है, खबर नहीं रहेगी कि यह क्या? हाय! वहाँ दबाव में आया... और कोई कहता था ऐसा भाई को कि चिल्लाहट मचायी। बस और ट्रक... ऊपर हो, नीचे नहीं... ऊपर और ऊपर। आहाहा! २४ वर्ष (का) जवान व्यक्ति। दो वर्ष का विवाह... उसका भाई का है। वह तो असाध्य हो गया थोड़ी देर मित्र को देखकर... आहाहा!

निज जोगसौं सुद्ध... यह आया न। तेरा आतमराम परमात्मा तू ही है। तेरे पास है, (ऐसा) कहना यह पर्याय की अपेक्षा से कहना है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय के पास ही पड़ा है वह। बराबर है न पण्डितजी? पर्याय के पास पड़ा है। एक समय की पर्याय के पास सारा द्रव्य पड़ा है। आहाहा! और द्रव्य की अपेक्षा से लो तो तू ही पूरा है। द्रव्य की अपेक्षा से ले तो तू ही है। पर्याय की अपेक्षा से ले तो तेरे पास में है। पर्याय के पास में द्रव्य है। आहाहा! कहीं बाहर शोधने जाना नहीं पड़ता। आहाहा!

कहते हैं, अरे! **वेदपाठी ब्रह्म कहैं...** यह अशुद्धता-शुद्धता कुछ न माने। वह तो ब्रह्म एक ही है, बस, ऐसा माने। सर्वथा ब्रह्म एक ही है। बहुत है। यह मुसलमान में भी ऐसा है। फिलसूफ होता है... वह भी एक माने। वेदान्त (जैसा)। फकीर में, हों! देखा है, हमने एक फकीर को बोटाद में देखा है।

मुमुक्षु : उसकी पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पुस्तकें भी... अनाहत, ऐसा बोले। एक आत्मा, एक खुदा है, बस। दूसरा कुछ है नहीं। एक बार हमने फकीर को देखा था। भिक्षा को निकले थे। बोटाद, दरवाजा है न बड़ा। हमारा नाम तो वहाँ बहुत था न! बोटाद में तो बहुत था न नाम तो। कि यह बड़े महाराज हैं। दो फकीर खड़े थे। थे वैरागी धुन में, हों! देखा धुन में। दूसरे फकीर-बकीर जैसा नहीं। धुन में। वह एक ही माने। ऐसी चीज़ है नहीं।

एक है, तेरा द्रव्य-गुण-पर्याय अभेद है, उस अपेक्षा से एक है और गुण-पर्याय से तो अनेक ही है। आयेगा अभी। समझ में आया? तेरे गुण और पर्याय अनन्त हैं, तो इस अपेक्षा से तू अनन्त भी है और अभेद की अपेक्षा से तू एक है। तुझमें और तुझमें ही एक और अनेक है। पर की अपेक्षा से अनेक है और सब पर एक होकर एक है, (ऐसा नहीं है)। बहुत भ्रम चलता है। आहाहा! जैन के नाम से भी भ्रम चलता है। समयसार को पढ़कर भी कितनों को एक अद्वैत ब्रह्म है, ऐसी श्रद्धा हो जाती है, ऐसा श्रीमद् ने लिखा है। श्रीमद् ने पत्र में लिखा है। समयसार को पढ़कर कितनों को एक ही ब्रह्म है, ऐसी श्रद्धा हो जाती है। परन्तु ऐसा है नहीं। ऐसा समयसार कहता नहीं। एक ही है, ऐसा कहता नहीं। आहाहा! नन्दकिशोरजी! ऐसी सूक्ष्म बात! आहाहा!

ऐसी बात इसे... भगवान! क्या करे? अरे! मान तो बापू! अरे! कहाँ जायेगा? भाई! कहाँ कोई माँ-बाप वहाँ बैठे हैं? मौसीबा बैठी है? कि आओ भाई! आहाहा! यह देह छूटे जायेगी, अवश्य छूटेगी। पर से तो छूटा ही पड़ा है, परन्तु क्षेत्र से छूटे तब लगे कि हाँ... इसमें तेरी कोई चीज़ नहीं, भाई! तेरी पर्याय द्रव्य के समीप पड़ी है। आहाहा! वहाँ नजर कर तो भगवान शुद्ध का तुझे अनुभव होगा। आहाहा! समझ में आया? दुनिया मान दे, न दे तो उसमें क्या है? ओहोहो! समझ में आया?

कन्दमूल में पड़ा था। कन्दमूल समझे न? मूला, मूली। पहले तो सब्जी लेने को जाते थे तो दो पैसे की सेर। तो एक मूली छोटी थी तो लड़का कहे कि बापू! यह एक मूली दो न। मूली दे। मूली समझे न? वह मूला नहीं होता? छोटी मूली। तो उसमें पड़ा था तो वह मुफ्त में गया।

मुमुक्षु : ऊपर से भी दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर... वह तो माँगे तो दे। उस समय दो पैसे का सेर था।

मुमुक्षु : ग्राहक उठा ले और वह बोले नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बोले। ले जा, ले जा। आहाहा! कहाँ पड़ा है प्रभु तू? और किसका तुझे मान लेना है? किससे तुझे अधिकाई मानना है? आहाहा! अरेरे! आहाहा! निराधार निरालम्बी प्रभु! किसी पर का आलम्बन उसमें है नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **वेदपाठी ब्रह्म कहैं...** एकान्त पक्ष है भाई! प्रभु! ऐसा है नहीं। **मीमांसक कर्म कहै,...** यज्ञ करो, कर्म करो, कर्म करो, कर्म करो। कर्म करते-करते कल्याण हो जायेगा। यह क्रियाकाण्डी सब कर्मवादी हैं। यह मीमांसक मतिवाले हैं। कर्म करो, कुछ कर्म करो, कुछ करो काम। तो उससे... क्या करे? राग का करना?

मुमुक्षु : करनी पार उतरनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करनी पार उतरनी। यहाँ तो कहे, कर्म करे वह तो मीमांसक मतवाला है। वह कर्म को ही मानते हैं। कार्य करो, ऐसा। कुछ करो। राग करो या पर का करो या ऐसा करो। परन्तु ज्ञानस्वरूप भगवान करे किसका? आहाहा!

सिवमती सिव कहैं... शिवमति काल को माने। एक काल लिया है उसमें।

समझ में आया? शंकर मार डालने का (संहार करने का)... मारते हैं न वह शंकर? विष्णु (रक्षक)। ब्रह्मा कर्ता, विष्णु रक्षक और शिव है संहारक, संहारक। तो काल ही आया। एक समय का काल है, वही होगा। परन्तु काल अकेले क्या करे? समझ में आया? अपना स्वभाव और अपना पुरुषार्थ बिना अकेले काल से काम होता नहीं। समझ में आया? वह द्रव्यसंग्रह में ली है भाई! यही बात। उस समय (संवत्) १९८४ की बात है, ८४ के वर्ष। हम तो द्रव्यसंग्रह पढ़ते थे। कितने वर्ष हुए? ४३। दामनगर में द्रव्यसंग्रह पढ़ते थे। वहाँ आया कि काल निमित्त है। परिणमन में काल निमित्त है। परन्तु फिर लिखा कि वह हेय है, उससे कुछ होता नहीं। समझ में आया?

द्रव्यसंग्रह है। अपने नेमीचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती (सिद्धान्तिदेव) ने बनाया है। बहुत गजब काम किया है। सिद्धान्त... कोई भी दिगम्बर सन्त हो न। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, लो, द्रव्यसंग्रह लो। इष्टोपदेश लो, समयसार, प्रवचनसार। उनकी वाणी तो अमृत झरती है। आहाहा! परमसत्य को ही प्रसिद्ध किया है। हाँ, तो उस समय पढ़ते थे। ४३ वर्ष पहले। ४० और ३। और यहाँ हमारे वे हैं न जीवराजजी, तो उनके साथ एक सेठ था, गृहस्थ था। ४० वर्ष पहले की बात है न! दस लाख तो बहुत थे न! दस लाख रुपये। ४० हजार की आमदनी, पैसेवाला। उस समय एक ही सेठ था वहाँ।

वह तो उसको कहते थे कि महाराज कहते हैं कि पुरुषार्थ से अन्दर काम करना, (परन्तु) ऐसा है नहीं शास्त्र में। वह तो जब काल होगा, तब होगा। यह बात उस ओर करते थे उपाश्रय के पास। तो वे दरवाजे में कहते थे। मैं दूसरे दरवाजे में बैठा था। यह द्रव्यसंग्रह पढ़ता था। उसमें यह आया बराबर, हों! काल-बाल कुछ चीज़ है नहीं। काल है तो उसमें है। काल है तो हेय है। निमित्त है सही, परन्तु निमित्त हेय है। समझ में आया? यह जयसेनाचार्य की टीका में है। पढ़ो भाई। जयसेनाचार्य की टीका में लिखा है न? निमित्त है, हेय है। समयसार टीका में जयसेनाचार्य।

मुमुक्षु : कर्ता-कर्म अधिकार में।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता-कर्म।

मुमुक्षु : यह जरा जँचे नहीं ज्ञेय है, पर हेय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वस्तु जगत में न हो? वह हो तो उसमें फिर क्या आया?

यहाँ कहा न, अपने से आत्मा है और अपने से कालद्रव्य नहीं है। इस द्रव्य की अपेक्षा कालद्रव्य 'नहीं है।'

मुमुक्षु : अद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्रव्य है।

मुमुक्षु : काल तुम कहते हो निरर्थक है, यह बोल कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहा न, द्रव्य है, परन्तु (मेरी अपेक्षा से) अद्रव्य है। आश्रय करने लायक नहीं, जानने लायक है। यह तो स्व-पर प्रकाशक ज्ञान है तो परचीज़ है, उसको जाने। है, उसे जाने। परन्तु आदरणीय है, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह लोग आदरणीय मानते हैं, इतना अन्तर है। है तो सही। नहीं है वस्तु? आहा! काललब्धि होगी, परन्तु कब होगी? स्वभाव सन्मुख (लक्ष्य) करे, तब काललब्धि होगी तुझे। लिया है मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह प्रश्न आया है न उसमें। काललब्धि होगी, तब होगा या पुरुषार्थ से होगा? कैसे? यदि काललब्धि से होगा तो हमको उपदेश क्यों देते हो? समझ में आया?

तो उसे जवाब दिया कि काललब्धि कोई दूसरी चीज़ नहीं है। वह तो अपनी पर्याय है, (वह) अपने काल में होती है, वह चीज़ है। टोडरमलजी ने सातवें अध्याय में....

मुमुक्षु : नौवाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नौंवे अध्याय में। धर्म का अधिकार है न वह। स्पष्ट बात कही है। वह तो हमारी चर्चा बहुत (होती) थी। ८३ में बहुत चर्चा हुई थी। (संवत्) १९८३ के वर्ष। १७ और २८। बहुत चर्चा हुई थी। देखो, यह कहते हैं, काललब्धि कुछ चीज़ नहीं, कहा। यह तो अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ तो उस समय की वह पर्याय होनेवाली थी, उसका ज्ञान हुआ। इसके बिना अकेले काललब्धि, काललब्धि करके तुझे कहाँ जाना है? समझ में आया? काललब्धि उस समय होगी पर्याय, उसका ज्ञान किसको होता है? ज्ञान किये बिना काललब्धि... काललब्धि? काललब्धि से होगा, परन्तु काललब्धि का ज्ञान किसको होता है? आहाहा! यह तो हमारे तो बहुत वर्ष पहले

चलती थी। यह तो शुरु से संस्कार थे न! तो यह बात अन्दर से आती थी। सम्प्रदाय के साथ बहुत घर्षण (टकराव) होता था। मार्ग ऐसा नहीं, कहा, मार्ग दूसरा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उनके विरुद्ध पड़ती थी न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, विरुद्ध पड़ती थी। ऐसा नहीं।

देखो, यहाँ कहा न। **सिवमती सिव कहै...** शिव अर्थात् काल। क्योंकि संहार करते हैं न वह। तो बस काल ही है। जिस समय में जो हुआ, वह काल। परन्तु जिस समय होगा उसका ज्ञान किसको होता है? अपने स्वभाव-सन्मुख होकर जहाँ भान हुआ, तब एक समय (-पर्याय में) हुआ, उसका ज्ञान होता है। द्रव्य का ज्ञान हुए बिना पर्याय का ज्ञान कहाँ से होता है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है! लोग कहाँ-कहाँ अटकते हैं शल्य में, उसका स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया? सर्वविशुद्ध अधिकार। आहाहा! कुछ—अंश भी मैल न हो। अंश भी शल्य न हो, ऐसी नि:शल्य वस्तु है! आहाहा!

अब मुनि को... कहा नहीं शास्त्र में—तत्त्वार्थसूत्र में? **नि:शल्योव्रति।** पण्डितजी! नि:शल्योव्रति। व्रतधारी नि:शल्य होता है। मिथ्यात्व की शल्य हो और माया की शल्य हो, निदान की शल्य हो और व्रतधारी हो जाये? आहाहा!

मुमुक्षु : पंचम काल में.....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल (है तो) क्या है? हलुवा (बनाते) हैं, हलुवा होता है न, क्या कहते हैं तुम्हारे?

मुमुक्षु : हलुवा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हलुवा। चौथे काल में भी वह था या दूसरी चीज़ थी? 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ। दो पंथ, तीन पंथ—ऐसा होता नहीं। आहाहा! अरे!

कहते हैं। **बौद्ध कहै बुद्ध है...** क्षणिक माने। एक समय की अवस्था (है उसे) स्वभाव माने। स्वभाव... वह पर्याय को स्वभाव... स्वभाव माने। वह काल माने, वह

स्वभाव माने। एक क्षण का स्वभाव, वही आत्मा। एक क्षण का आत्मा, वही आत्मा। एकान्त मानते हैं। **जैनी कहै जिन...** आहाहा! जैनी उस आत्मा को जिन कहते हैं। वीतरागस्वरूप आत्मा है। आहाहा! राग आदि पर का संयोग वह चीज़ उसमें है नहीं। देखो, **जैनी कहैं जिन, न्यायवादी करतार कहैं**। किये बिना होता नहीं कुछ। कर्ता, कर्ता, कोई है ईश्वर कर्ता? किसी भी चीज़ का कर्ता होता है, ऐसा माने। झूठ बात है।

छहौं दरसनमें वचनकौ विरुद्ध है। भाव का विरोध उसमें लेना। **वस्तुकौ सुरूप पहिचानै सोई परवीन,...** परन्तु वास्तविक भगवान आत्मा... स्वभाव भी है, पुरुषार्थ है, काल है, भवितव्य है और प्रतिबद्ध का अभाव भी है। ऐसे **सुरूप को पहिचानै सोई परवीन,...** उसका नाम प्रवीण कहा जाता है। **वचनकै भेद भेद मानै सोई सुद्ध है।** भिन्न-भिन्न है। भिन्न-भिन्न है। परन्तु यह भाव से भिन्न है, परन्तु वस्तु से अभेद है। वचन के भेद से भी भेद मानना, वह मूर्ख, और ऐसा लिया है यहाँ। **वचनकै भेद भेद मानै सोई सुद्ध है**। ऐसा है। वह तो शुद्धता है, ऐसा मानते हैं। भेद के पाँच प्रकार जैसे हैं, वैसा मानते हैं। पाँच के पाँच प्रकार हैं, ऐसा भेद मानते हैं, यह शुद्ध है। पाँचवें (एकान्त) एक ही मानना मिथ्यात्व है। **पाँचों मतवाले एकान्ती और जैनी स्याद्वादी है...** लो।

★ ★ ★

काव्य - ४४

पाँचों मतवाले एकान्ती और जैनी स्याद्वादी है

(सवैया इकतीसा)

वेदपाठी ब्रह्म मांनि निहचै सुरूप गहैं,
मीमांसक कर्म मांनि उदैमैं रहत है।
बौद्धमती बुद्ध मांनि सूच्छम सुभाव साधै,
सिवमती सिवरूप कालकौं कहत है।।
न्याय ग्रंथकै पढ़ैया थापैं करतार रूप,
उद्दिम उदीरि उर आनंद लहत है।

पांचौं दरसनि तेतौ पोषैं एक एक अंग,
जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहत है।।४४।।

शब्दार्थ:-उद्दिम=क्रिया। आनंद=हर्ष। पोषैं=पुष्ट करें। जिनपंथी=जैनमत के उपासक। सरवंगी नै=सर्वनय-स्याद्वाद।

अर्थ:-वेदान्ती जीव को निश्चयनय की दृष्टि से देखकर उसे सर्वथा ब्रह्म कहता है, मीमांसक जीव के कर्म-उदय की तरफ दृष्टि देकर उसे कर्म कहता है, बौद्धमती जीव को बुद्ध मानता है और उसका क्षणभंगुर सूक्ष्म स्वभाव सिद्ध करता है, शैव जीव को शिव मानता है और शिव को कालरूप कहता है, नैयायिक जीव को क्रिया का कर्ता देखकर आनन्दित होता है और उसे कर्ता मानता है। इस प्रकार पाँचों मतवाले जीव के एक-एक धर्म की पुष्टि करते हैं, परन्तु जैनधर्म के अनुयायी जैनी लोग सर्व नय का विषयभूत आत्मा जानते हैं, अर्थात् जैनमत जीव को अपेक्षा से ब्रह्म भी मानता है, कर्मरूप भी मानता है, अनित्य भी मानता है, शिवस्वरूप भी मानता है, कर्ता भी मानता है, निष्कर्म भी मानता है, पर एकान्त रूप से नहीं। जैनमत के सिवाय सभी मत मतवाले हैं, सर्वथा एक पक्ष के पक्षपाती होने से उन्हें स्वरूप की समझ नहीं है।।४४।।

काव्य-४४ पर प्रवचन

वेदपाठी ब्रह्म मांनि निहचै सुरूप गहैं,... देखो! सब जीव का लक्षण ज्ञान आदि देखकर सब जीव एक हैं, ऐसा वे मानते हैं। **वेदपाठी ब्रह्म मांनि निहचै सुरूप गहैं,... वेदांती जीव को निश्चयनय की दृष्टि से देखकर उसे सर्वथा ब्रह्म करता है...** लो। सब एक ही है, एक ही है। परन्तु एक ही है तो यह संसार किसका? चार गति किसकी? समझ में आया? तो वह तो सब भ्रम है। परन्तु भ्रम 'है' या नहीं? भ्रम माया भी है या नहीं? माया न हो तो परिभ्रमण किसका? आहाहा! दूसरी चीज़ है, राग है, कर्म है और उससे संसार है। संसार विकार हुआ। स्वभाव तो त्रिकाल शुद्ध है। तो दो बातें हो गयीं। और पर्याय में हाँ—ना पड़ती है, वह पर्याय और वस्तु त्रिकाली ध्रुव है। वह भी दो हो गये। द्रव्य और पर्याय एक में दो हो गये। सर्वथा एक मानना, यह अत्यन्त मिथ्या दृष्टि है।

मीमांसक कर्म मांनि उदैमैं रहत है। उदय में रहता है। यह गुण का... कहेंगे फिर। गुण की पर्याय में अनेक प्रकार से विकल्प उठते हैं न, तो वही आत्मा है, ऐसा मानते हैं, एक ही पक्ष लेकर (मानते हैं)। कर्म करना, कुछ कर्म करना। अकर्तव्य में नहीं रहना। ऐसे कर्म माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। एक ही पक्ष में मानते हैं। **बौद्धमती बुद्ध मांनि सूच्छम सुभाव साधै,** देखो! बौद्धमति एक समय का स्वभाव साधे। एक समय का स्वभाव, वह आत्मा। त्रिकाल-फिकाल और अनादि-अनन्त, ऐसा नहीं मानते। **सिवमती सिवरूप कालकौं कहत है।** लो। यह काल को शिव कहते हैं। जो काल है, वही वस्तु है। काल है वही वस्तु है, बस।

न्याय ग्रंथकै पढ़ैया थापैं करतार रूप,... लो। **नैयायिक जीव को क्रिया कर्ता देखकर आनन्दित होता है।** काम करो, कुछ काम करो, कर्तव्य करो। अकेला ज्ञान... ज्ञान नहीं, परन्तु कर्तव्य करो। और कर्तव्य करके आनन्द मानता है। उसे कर्ता मानता है। **उद्दिम उदीरि उर आनंद लहत है।** पुरुषार्थ करना, ऐसा। राग करना, विकार करना, कुछ करना। **उद्दिम उदीरि उर आनंद लहत है, पांचौं दरसनि तेतौ पोषैं एक एक अंग,...** पाँचों दर्शन वे तो एक एक अंग को मानते हैं। **जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहत है।** पाँचों नय के पाँच स्वभाव ज्ञानी बराबर मानते हैं, विरुद्ध नहीं मानते। उसका विशेष स्पष्टीकरण करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२८, श्रावण कृष्ण १, शनिवार, दिनांक ०७-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-४५ से ४८

यह समयसार नाटक। सर्वविशुद्ध अधिकार। वस्तु आत्मा जो है, वह सर्वज्ञ ने देखा है, यही बात सत्य है। क्योंकि सर्वांग से आत्मा कैसा है, ऐसा सर्वज्ञ ने देखा। अज्ञानी तो एक -एक पक्ष करके, कताग्रह करके एक पक्ष को ही मानता है। वह हाथी का दृष्टान्त आता है न शास्त्र में? हाथी। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आया है। (जिसकी) आँखें हैं और (हाथी) प्रत्यक्ष है, वह पूरे हाथी को देखता है। परन्तु अन्धा है, वह एक (अंग) को (हाथी) मानता है, सूंढ़ को, पैर को, पूंछ को। परन्तु पूरे हाथी को देखता नहीं। इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप, छह द्रव्य आदि सर्वज्ञ ने जो देखा, (वह कहा)। अपनी शक्ति में त्रिकाल जानने की शक्ति है, उसे प्रगट करके देखा तो सारा पूर्ण वस्तु तीन काल-तीन लोक देखा। अज्ञानी—अन्धा एक-एक पक्ष (पकड़कर) मानता है कि आत्मा एक ही है, पर्याय ही है (और) द्रव्य नहीं; द्रव्य ही है (और) पर्याय नहीं। ऐसे एक पक्ष माननेवाला एकांगी मिथ्यादृष्टि है। सब धर्म समान हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहते। नहीं कहते? आहाहा!

मुमुक्षु : एक-एक धर्म सत्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सत्य किसकी अपेक्षा से? सर्वांग जिसने देखा है, उस अपेक्षा से सत्य है। उसका माना—एक (अंग में) सर्वांग, एक में सर्वपना माना है, यह भूल है, अज्ञान है। ज्ञानी ने एक-एक सत्य अंग को मिलाकर सारा आत्मा जैसा है, वैसा देखा है। तो उस अपेक्षा से एक-एक अंग सत्य है। अज्ञानी ने तो असर्वांश को सर्वांश माना है। असर्वांश को सर्वांश माना है। समझ में आया? और सर्वज्ञ ने तो पूरी चीज़ तीन काल-तीन लोक को देखा। उनका कहा हुआ, जाना हुआ पदार्थ यथार्थ है। इसके अतिरिक्त एकांगी माननेवाला मिथ्यादृष्टि (है, ऐसा) सर्वविशुद्ध अधिकार में लिया है। अनादि की ऐसी भूल रहती है अन्दर। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! **पाँचों मतों के एक-एक अंग का जैनमत समर्थक है।** समर्थक का अर्थ—एक-एक अंग है, ऐसा

मानते हैं। परन्तु सर्वांग साथ में पूर्ण करके मानते हैं। एक ही अंग को मानते हैं, ऐसा नहीं। ४५ (पद)।

★ ★ ★

काव्य - ४५

पाँचों मतों के एक एक अंग का जैनमत समर्थक है

(सवैया इकतीसा)

निहचै अभेद अंग उदै गुनकी तरंग,
उद्दिमकी रीति लिए उद्धता सकति है।
परजाइ रूपकौ प्रवान सूच्छम सुभाव,
कालकीसी ढाल परिनाम चक्र गति है।।
याही भांति आतम दरबके अनेक अंग,
एक मानै एककौं न मानै सो कुमति है।
टेक डारि एकमैं अनेक खोजैं सो सुबुद्धि,
खोजी जीवै वादी मरै सांची कहवति है।।४५।।

शब्दार्थ:-याही भांति=इस प्रकार। कुमति=मिथ्याज्ञान। खोजैं=ढूंढै। सुबुद्धि=सम्यग्ज्ञान। खोजी=उद्योगी। वादी=बकवाद करनेवाला।

अर्थ:-जीव पदार्थ के लक्षण में भेद नहीं है, सब जीव समान हैं, इसलिये वेदान्ती का माना हुआ अद्वैतवाद सत्य है। जीव के उदय में गुणों की तरंगें उठती हैं, इसलिये मीमांसक का माना हुआ उदय भी सत्य है। जीव में अनन्त शक्ति होने से स्वभाव में प्रवर्तता है, इसलिए नैयायिक का माना हुआ उद्यम अंग भी सत्य है। जीव की पर्यायें क्षण-क्षण में बदलती हैं, इसलिए बौद्धमती का माना हुआ क्षणिक भाव भी सत्य है। जीव के परिणाम काल के चक्र के समान फिरते हैं, और उन परिणामों के परिणमन में कालद्रव्य सहायक है, इसलिए शैवों का माना हुआ काल भी सत्य है। इस प्रकार आत्मपदार्थ के अनेक अंग हैं। एक को मानना और एक को नहीं मानना

मिथ्याज्ञान है, और दुराग्रह छोड़कर एक में अनेक धर्म ढूँढना सम्यग्ज्ञान है। इसलिए संसार में जो कहावत है कि 'खोजी पावे वादी मरे' सो सत्य है।।४५।।

काव्य-४५ पर प्रवचन

निहचै अभेद अंग उदै गुनकी तरंग,
उद्दिमकी रीति लिए उद्धता सकति है।
परजाइ रूपकौ प्रवान सूच्छम सुभाव,
कालकीसी ढाल परिनाम चक्र गति है।।
याही भांति आतम दरबके अनेक अंग,
एक मानै एककौं न मानै सो कुमति है।
टेक डारि एकमैं अनेक खोजैं सो सुबुद्धि,
खोजी जीवै वादी मरै सांची कहवति है।।४५।।

यह प्रश्न तो बहुत चला था (संवत्) १९८३ के वर्ष में। ८३। १७ और २७=४४ वर्ष हुए। सेठ था यहाँ। बहुत (कहता था), कर्म से होता है। कर्म से भटकता है और कर्म... भाई! एकान्त नहीं है ऐसा। कर्म के निमित्त से विकार होता है, परन्तु अपने से होता है। समझ में आया? और कर्म हटे तो मुक्ति हो, ऐसा कहता था। खसे, समझे?

मुमुक्षु : अलग हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग हो। ऐसा नहीं है, कहा। **खोजी जीवै...** ऐसा कहा था। ४४ वर्ष पहले। कहा, सेठ! **खोजी जीवै... खोजी** का अर्थ किया है देखो, उद्योगी। सत्य का शोधनेवाला—जैसा वस्तु का स्वरूप है, ऐसा शोधनेवाला—जीव जीता है। वादी मरता है वाद करके। कि ऐसा है और ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है। वादी, कहते हैं न? वादी मरे। समझ में आया?

निहचै अभेद अंग... एक अपेक्षा से यह बात सच्ची है। किसकी? वेदान्त की। कि सब जीव समान जाति के हैं और सबका लक्षण एक है, इस अपेक्षा से एक है। परन्तु संख्या अपेक्षा से एक है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? संख्या अपेक्षा से तो

अनन्त हैं परन्तु लक्षण अपेक्षा से और स्वभाव अपेक्षा से 'सर्व जीव हैं सिद्ध सम।' अपने यहाँ आया है योगीन्द्रदेव में 'सर्व जीव है ज्ञानमय।' ज्ञानमय सर्व जीव प्रभु है, उस अपेक्षा से एक है। परन्तु कहीं संख्या से एक है, सब जीव एक ही है, ऐसा है ही नहीं। समयसार देखकर भी कितने को ऐसा हो जाता है कि समयसार में वेदान्त जैसा कहा है। (ऐसा) है ही नहीं। समझ में आया?

वह नाथू (राम) शास्त्री थे न। क्या कहलाते हैं वे? नाथूराम प्रेमी। नाथूराम प्रेमी थे न मुम्बई। वह कहते थे कि यह समयसार वेदान्त के ढाले में ढाला है। वहाँ वह अकेला आत्मा आता है न? निश्चय... निश्चय... निश्चय... परन्तु निश्चय तो अभेद है, वह बताना है। परन्तु पर्याय आदि नहीं है, ऐसा मानते हैं? वेदान्त तो पर्याय ही मानता नहीं। अवस्था कुछ है नहीं। समझ में आया? परन्तु **निहचै अभेद अंग...** निश्चय से देखो तो सभी आत्मा एक जाति के हैं, इस अपेक्षा से एक हैं। संख्या से एक, ऐसा नहीं। जाति की अपेक्षा से एक कहने में आया है। इतना सच्चा है। परन्तु एक ही मान ले सर्व आत्मा। अभी वेदान्त का प्रचार बहुत है। सुधरे हुए लोग, वकील और डॉक्टर... यह प्रचार वेदान्त का बहुत होता है। बातें करना, सत्य क्या है, यह शोधने की दरकार नहीं। वह भी सच्चा है और हमारा भी सच्चा है। ऐसा है नहीं।

उदै गुनकी तरंग,... पहला कर्म लिया था। परन्तु यहाँ **जीव के उदय में गुणों की तरंगें उठती है।** कर्म के निमित्त में अनेक प्रकार का विकल्परूपी कार्य होता है। तो उस अपेक्षा से बात सच्ची है। परन्तु अकेला विकल्प उठता है, इतना ही आत्मा है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? जीव की तरंग, उदय में गुण की तरंग... **उद्दिमकी रीति लिए उद्धता सकति है।** मीमांसक का माना हुआ उदय भी सत्य है। ... **जीव में अनन्त शक्ति होने से स्वभाव में प्रवर्तता है, इसलिए नैयायिक का माना हुआ उद्यम अंग भी सत्य है।** एक उद्यम अंग एक ही सत्य है। परन्तु उद्यम एक ही है और दूसरा नहीं है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? उद्यम में स्वभाव भी है और काल भी है और भाव की भवितव्यता भी जो जिस समय में होनेवाला भाव, वह भी है। उद्यम के साथ में सब पाँचों समवाय हैं। अकेला (उद्यम) मानना, यह झूठ है।

परजाइ रूपकौ प्रवान सूच्छम सुभाव,... लो। पर्याय जीव में क्षण-क्षण में

बदलती है न, इसलिए बौद्धमति का माना हुआ क्षणिकभाव भी सत्य है, इस अपेक्षा से। क्षण-क्षण में परिणाम बदलते हैं, उस अपेक्षा से—परिणाम की अपेक्षा से बराबर है। परन्तु द्रव्य है नहीं और गुण है नहीं त्रिकाल रहनेवाले, ऐसा है नहीं। बौद्ध मत अभी इतने सब बढ़ गये हैं न। जैन में भी इतनी गड़बड़ हो गयी है कि यह पुण्य-पाप... पुण्य आदि क्रिया करो, उससे धर्म होगा। वह मीमांसक मत है सब। समझ में आया?

और एक ही आत्मा है, एक ही आत्मा है। कुछ पर्याय-फर्याय भी नहीं। समझ में आया? तो वह भी वेदान्त एकान्त मिथ्यात्व है। और पर्याय, पर्याय ही है, द्रव्य त्रिकाल है, वह वस्तु नहीं।

मुमुक्षु : बौद्धमति।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा! उसे माननेवाले बहुत हैं। जैन में भी समझे बिना पर्यायबुद्धि, वर्तमान बुद्धि, बस वर्तमान। यह वर्तमान दिखता है इतना मैं। और इन्द्रिय से ज्ञान करनेवाला स्वरूप से च्युत होकर इन्द्रिय से ज्ञान करता है तो इतना ही (आत्मा) मानते हैं। समझ में आया? इन्द्रिय से लक्ष्य करके ज्ञान करते हैं तो खण्ड-खण्ड ज्ञान को मानते हैं। अतीन्द्रिय अखण्ड ज्ञानमय चैतन्य है, शुद्ध आनन्दकन्द अभेद है, इस अंग को मानते नहीं। तो ज्ञानी अभेद को ही मानते हैं और इन्द्रिय की ओर के झुकाव का ज्ञान है सही, वह भी मानते हैं, परन्तु वह खण्ड-खण्ड है। समझ में आया?

कालकीसी ढाल परिनाम चक्र गति है... लो, शिवमति आया। **जीव के परिणाम काल के चक्र के समान फिरते हैं।** क्षण-क्षण में परिणाम की विचित्रता देखो। निगोद में से निकलकर आठ वर्ष में केवलज्ञान पाता है। कभी निगोद में से निकला नहीं था। निगोद समझते हैं न? लीलफूग / काई (आदि)।

मुमुक्षु : नित्य निगोद।

पूज्य गुरुदेवश्री : नित्य निगोद, सूक्ष्म निगोद, बादर निगोद। उसमें से निकलकर एकाध भव बीच में भले हो, परन्तु मनुष्य (होकर) आठ वर्ष में समकित पावे, एक अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान और देह छोड़कर सिद्ध हो जाये। ऐसी परिणाम में ताकत है। समझ में आया? तो यह परिणाम ही देखते हैं कि काल यह है। परन्तु परिणाम का

सामर्थ्य किसमें से आया? त्रिकाल ज्ञायक भगवान परिणामी स्वरूप है, उसमें से परिणाम आया तो वह द्रव्य भी मानना चाहिए। माने बिना अकेले परिणाम को माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

याही भांति आतम दरबके अनेक अंग,... आत्मा में अनेक प्रकार के अंग (अर्थात्) पक्ष हैं, (यह) वस्तु का स्वभाव है। **एक मानै एककौं न मानै सो कुमति है।** आहाहा! समझ में आया? **टेक डारि...** एक को माना, एक को नहीं माना, (तो) मिथ्याज्ञान है। और दुराग्रह छोड़कर अर्थात् टेक डारि। **टेक डारि—**दुराग्रह छोड़कर **एकमैं अनेक खोजैं...** भगवान आत्मा एक स्वरूप है, उसमें गुण-पर्याय अनेक हैं, ऐसा खोजे। समझ में आया? एक वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु एक होने पर भी अनन्त गुण और अनन्त पर्याय से शोधे, वह **खोजी जीवै...** वह सुबुद्धि है। समझ में आया?

सर्वज्ञ के अतिरिक्त जितने भी कल्पना से कहे, सब मिथ्याबुद्धि हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त कल्पना करके ऐसा है, एक ही आत्मा है, ऐसा विशेष ही है। विशेष अर्थात् एक ही। विशेष को ही मानते हैं, सामान्य को नहीं। सांख्यमति अकेले सामान्य को मानते हैं, विशेष को नहीं। ऐसा अभिप्राय यहाँ जैन में वाडा में भी घुस गया है। तो जीव को एकांगी माननेवाले को यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है। **खोजी जीवै वादी मरै...** लो। संसार में कहावत है, 'खोजी पावे, वादी मरे।' सत्य शोधनेवाला सत्य को प्राप्त करता है। परन्तु वाद ही करना, वाद ही करना। कोई भी कहे ऐसी बात, (तो कहे) तुम्हारी झूठी है, तुम्हारी झूठी है। सत्य बात कहे, उसकी भी झूठी (कहना)। ऐसा वाद करना तो मर जायेगा, कहते हैं। तेरा पता लगेगा नहीं। **स्याद्वाद का व्याख्यान।**

★ ★ ★

काव्य - ४६

स्याद्वाद का व्याख्यान(सवैया इकतीसा)

एकमैं अनेक है अनेकहीमैं एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यौ न परतु है।

करता अकरता है भोगता अभोगता है,
उपजै न उपजत मूएं न मरतु है।।
बोलत विचारत न बोलै न विचारै कछू,
भेखकौ न भाजन पै भेखसौ धरतु है।
ऐसौ प्रभु चेतन अचेतनकी संगतिसौं,
उलट पलट नटबाजीसी करतु है।।४६।।

अर्थः-जीव में अनेक पर्यायें होती हैं, इसलिए एक में अनेक है, अनेक पर्यायें एक ही जीवद्रव्य की हैं, इसलिए अनेक में एक है, इससे एक है या अनेक है कुछ कहा ही नहीं जा सकता। एक भी नहीं है, अनेक भी नहीं है, अपेक्षित एक है, अपेक्षित अनेक है। वह व्यवहारनय से कर्ता है, निश्चय से अकर्ता है, व्यवहारनय से कर्मों का भोक्ता है, निश्चय से कर्मों का अभोक्ता है, व्यवहारनय से उपजता है, निश्चयनय से नहीं उपजता है - था, है और रहेगा, व्यवहारनय से मरता है, निश्चयनय से अमर है, व्यवहारनय से बोलता है, विचारता है, निश्चयनय से न बोलता है न विचारता है, निश्चयनय से उसका कोई रूप नहीं है, व्यवहारनय से अनेक रूपों का धारक है। ऐसे चैतन्य परमेश्वर पौद्गलिक कर्मों की संगति से उलट-पलट हो रहा है, मानों नट जैसा खेल खेल रहा है।।४६।।

काव्य-४६ पर प्रवचन

एकमैं अनेक है अनेकहीमैं एक है सो,
एक न अनेक कछु कह्यौ न परतु है।
करता अकरता है भोगता अभोगता है,
उपजै न उपजत मूएं न मरतु है।।
बोलत विचारत न बोलै न विचारै कछू,
भेखकौ न भाजन पै भेखसौ धरतु है।
ऐसौ प्रभु चेतन अचेतनकी संगतिसौं,
उलट पलट नटबाजीसी करतु है।।४६।।

देखो, अचेतन के संग में जाता है, अपने चेतन का स्वरूप भूल जाता है तो **उसे उलट पलट नटबाजीसी करतु है।** नयी पर्याय धारे और पुरानी पर्याय नाश हो, (वह) उलट-पलट। समझ में आया? आनन्दघनजी का है, 'स्थिरता एक समय में ठानै उपजे विणसे तब ही, उलट-पलट ध्रुव सत्ता राखे या हम सुनी न कबहीं। अवधु नट नागर की बाजी।' श्वेताम्बर में एक आनन्दघनजी हुए थे। स्थिरता एक समय में—एक क्षण में ध्रुव भी रहता है आत्मा। 'स्थिरता एक समय में ठानै, उपजे विणसे तब ही।' नयी पर्याय में उपजता है, पुरानी पर्याय से व्यय होता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव। 'उलट पलट ध्रुव सत्ता राखे।' उत्पाद और व्यय उलट-पलट है, तथापि ध्रुव सत्ता रखे। आहाहा! समझ में आया? 'या हम सुनी न कब ही', आनन्दघनजी कहते हैं, ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं सुनने में आयी नहीं। उपजे-विणसे, टिका रहे। आहाहा! वह यहाँ आता है, देखो!

एकमैं अनेक है अनेकहीमैं एक है सो,... वस्तु कहो, तो भगवान (आत्मा) वस्तुरूप से एक है। असंख्य प्रदेशरूप से एक है। समझ में आया? परन्तु गुण-पर्याय से देखे तो अनेक है। एक में अनेक है। है न? **जीव में अनेक पर्यायें होती हैं, इसलिए एक में अनेक है।** अनेक पर्याय होती है। एक समय में अनन्त पर्याय। अनन्त गुण की अनन्त पर्याय। आहा! वस्तु एक, पर्याय अनन्त। **अनेक पर्यायें एक ही जीवद्रव्य की हैं, इसलिए अनेक में एक हैं।** अनन्त पर्याय होने पर भी वस्तु तो एक है। द्रव्य तो आत्मा एक ही त्रिकाल ध्रुव है। अनेक में एक है। एक में अनेक है। वापस ऐसा नहीं, हों! सिद्ध में... कहते हैं न कितने? एक में अनेक है और अनेक में एक है, ज्योति में ज्योति मिलाई। मोक्ष होता है तो वहाँ ज्योति में ज्योति मिल गई मोक्ष-मुक्ति में। ऐसा नहीं है। यहाँ तो एक वस्तु जो आत्मा है... समझ में आया? वह भक्तामर में आता है न, 'विभु' आता है। भक्तामर में 'विभु' आता है। आत्मा विभु है। तो उसमें से कितने निकालते हैं कि देखो, विभु अर्थात् सर्वव्यापक है। ऐसा नहीं। अपने गुण-पर्याय में विभु अर्थात् व्यापक है। परक्षेत्र में व्यापक है, ऐसा नहीं।

कहते हैं, एक समय में अनेक पर्याय में भी एक ही द्रव्य है। **इससे एक है या अनेक है कुछ कहा ही नहीं जा सकता।** एक क्षण में दो कैसे कहने में आवे? द्रव्यरूप से एक है, पर्यायरूप से अनेक है। और अस्ति-नास्ति एकसाथ कहने में कैसे आवे?

तो वह अवक्तव्य भी है। समझ में आया? सप्तभंगी है न, सप्तभंगी? जरा सूक्ष्म विषय है सप्तभंगी। एक है (तो) स्यात् एक, स्यात् अनेक, एक-अनेक (एक साथ) कहने में आता नहीं, इसलिए स्यात् अवक्तव्य। यह एक-एक आत्मा की बात होती है, हों! ऐसे एक-एक परमाणु में। आहा! एक-एक आत्मा में, एक-एक गुण में अनन्त सप्तभंगी उत्पन्न होती हैं। एक-एक द्रव्य में, एक-एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी उत्पन्न होती है। आहाहा!

एक पर्याय पर्याय से है, दूसरी अनन्त पर्याय से नहीं है। (१) 'है', (२) 'नहीं है'। (३) 'है', 'नहीं है' एकसाथ में है। (४) और 'है', 'नहीं है' एकसाथ में है, (परन्तु) कहने में आता नहीं तो 'अवक्तव्य' है। (५) और 'है' (फिर भी) 'अवक्तव्य' है, यह पाँचवाँ बोल है। है एकसाथ दोनों, (परन्तु) कहने में नहीं आता तो 'अवक्तवय' भी है। (६) 'नहीं है' (और) कहने में आता है तो 'नास्ति अवक्तव्य' है। (७) और 'है' और 'नहीं है' और 'अवक्तव्य' है। यह सप्तम भंग है। आहाहा! जैनदर्शन की चीज़ सूक्ष्म है। जैनदर्शन वस्तु का स्वभाव है, वह कोई सम्प्रदाय नहीं, वह तो वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। कहते हैं, जो एक है, अनेक है (फिर) भी कहने में आता नहीं। अपेक्षित एक है और अपेक्षा से अनेक है। जिस अपेक्षा से एक है, उस अपेक्षा से अनेक है, ऐसा नहीं। क्या कहा? जिस अपेक्षा से एक कहा—द्रव्य अपेक्षा से, तो उसी अपेक्षा से अनेक है, ऐसा नहीं है। पर्याय अपेक्षा से अनेक है, द्रव्य अपेक्षा से एक है। आहाहा!

करता, अकरता है, भोगता, अभोगता है... आहाहा! परिणति का कर्ता भी है... व्यवहार से राग का कर्ता भी है और निश्चय से अकर्ता भी है। आहाहा! और भोक्ता भी है। अज्ञानरूप से राग का भोक्ता भी है। अरे, ज्ञानरूप से परिणति में जितना राग है, इतनी भोक्ता की परिणति भी है। समझ में आया? ४७ नय आते हैं न, भाई! ४७ नय। प्रवचनसार। कर्तृत्वनय और अकर्तृत्वनय एकसाथ में है। भोक्तृत्वनय और अभोक्तृत्वनय एकसाथ में है। एक ओर कहना कि राग का अकर्ता है, यह निश्चय से। परिणति में राग है तो कर्ता है, समकिती को भी। चार ज्ञान के धरनेवाले भी, अपनी पर्याय में राग का परिणमन इतना कर्तृत्व जानते हैं, होता है इतना। करनेयोग्य है, ऐसा नहीं।

इसी प्रकार जितना हर्ष है, राग है उतना भोक्ता का परिणमन भी है, समकिती

को, गणधर को। गणधर को कहा न! पर्याय में इतना हर्ष का परिणमन है या नहीं ? तो इतना भोक्ता भी है। दृष्टि की अपेक्षा से दूसरी बात है। परन्तु जहाँ दृष्टि के साथ ज्ञान हुआ, वह ज्ञान तो दोनों ही को जानता है। यह तो सर्वविशुद्ध अधिकार है न! ऐसा कहना कि समकिती तो अशुद्धता का कर्ता है ही नहीं और अशुद्धता का भोक्ता है ही नहीं। यह एक बात। यह दृष्टि की अपेक्षा से एक बात। परन्तु दृष्टि के साथ जो ज्ञान प्रगट हुआ, वह दोनों ही को जानता है। राग का अकर्ता भी मैं हूँ और उसी समय में राग का परिणमन है तो कर्तृत्व भी मुझमें है। समझ में आया ?

यह नयप्रज्ञापन है न। आयी है न गुजराती, हों, हिन्दी नहीं। नयप्रज्ञापन, नहीं ? पुस्तक है, ४७ नय का सारांश।

मुमुक्षु : लालूभाई की ओर से (प्रकाशित हुई है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लालूभाई की ओर से। नयप्रज्ञापन, नहीं ? लालूभाई की ओर से ? नयप्रज्ञापन। है थोड़ा अपने ? थोड़ा है। देखा है या नहीं तुमने ?

मुमुक्षु : पढ़ा है।

मुमुक्षु २ : यह कहते हैं कि हिन्दी में प्रकाशित करवा दो महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कौन प्रकाशित करेगा ? अब हिन्दी कौन प्रकाशित करेगा ? यह तो है या नहीं, इतना जानते हैं हम तो। हम किसी को कहते नहीं कि इसे छपवाओ। यह रामजीभाई का काम है।

मुमुक्षु : ....आत्मा खपता है या नहीं, फिर महाराज के पास जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो, कर्तृत्व भी है और अकर्तृत्व भी है। भोक्ता भी है और अभोक्ता भी है। यह बात इसे नयी लगे। तुम्हारे तो कर्ता में आता है या नहीं ? कि दृष्टि अपेक्षा से आत्मा राग का कर्ता बिल्कुल नहीं। अशुद्धता है ही नहीं उसमें। क्योंकि शुद्ध द्रव्य चैतन्यमूर्ति है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो परिणमन भी शुद्ध है। द्रव्य और गुण शुद्ध है। अशुद्धता उसमें है ही नहीं। वह पर में डाल दी। परन्तु एक अपेक्षा से। आहाहा!

दूसरी अपेक्षा से ?

मुमुक्षु : पर से भेदज्ञान कराना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ वापस अपने में है, इतना। पर्याय (का) पर के (साथ) सम्बन्ध भी नहीं यहाँ तो। यहाँ अपनी पर्याय की पर से भिन्न सत्ता है, यह बताना है। उसमें से पर्याय से भिन्न बताना, वह दूसरी बात है। पहले राग उसमें नहीं, वह तो द्रव्य-गुण की अपेक्षा से। परन्तु साधक को भी, समकिती को भी, गणधर को भी राग का अंश है, इतना कर्तृत्व का परिणमन कर्तृत्वनय से जानने में आता है। आहाहा! परन्तु यहाँ 'नयप्रज्ञापन' में आया है। और भोक्ता भी है। पूर्ण भोक्ता जब तक अनुभव का न हुआ, तब तक इतना राग का भोक्ता है और अभोक्ता भी है। अरे, अरे! आहाहा! उस समय में राग का भोक्ता नहीं, ऐसा भी है और उस समय राग का भोक्ता है, ऐसा भी है। पण्डितजी! ऐसी बात है। भारी सूक्ष्म! लोगों को तत्त्व का ज्ञान नहीं न, तो एकान्त पकड़ ले। तो ऐसा नहीं है, कहते हैं यहाँ। समझ में आया?

करता अकरता है, भोगता अभोगता है, उपजै न उपजत... पर्याय अपेक्षा से उपजता है, द्रव्य अपेक्षा से उपजता नहीं। **मूएं न मरतु है...** पर्याय का व्यय होता है, वह मरण है। नहीं मरता है, (वह) द्रव्य से नहीं मरता है। बराबर है? पण्डितजी! **बोलत विचारत न बोलै न विचारै कछू,...** व्यवहार से ऐसा कहने में आता है, यह विकल्प है तो बोलता है। ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। न बोले। निश्चय से नहीं बोलता है। विकल्प भी उसमें है नहीं। आहाहा! बोलने की क्रिया तो है ही कहाँ? यह तो बोलने का विकल्प था न, तो बोलता है, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से बोलता नहीं। दोनों ही अंग उसमें हैं। **विचारै कछू,... बोलत विचारत न बोलै न विचारै कछू,...** विचारते भी हैं। पर्याय में विचार चलता है। **न विचारत कछू...** वस्तु में कोई विचार है ही नहीं। आहाहा!

भेखकौ न भाजन पै भेखसौ धरतु है... निर्विकल्प आनन्द आदि वेश और विकल्प २८ मूलगुण का भी वेश है। २८ मूलगुण हैं न विकल्प, वह वेश है। **भेखकौ न भाजन...** यह वेश का भाजन है नहीं। तथापि व्यवहार से **भेखसौ धरतु है।** समझ में आया? आहाहा! निश्चय से देखो तो निर्विकल्प जो भावलिंग है, वह भी आत्मा में है नहीं। कहो, समझ में आया? एक समय की निर्विकल्प जो भावलिंग (अवस्था) मोक्ष का मार्ग... भावलिंग, हों! विकल्प और शरीर नग्न, यह बात छोड़ दो। भावलिंग है,

परमात्मप्रकाश में है। वह सब व्याख्यान में हो गया है सारा। भावलिंग है, वह पर्याय में है, परन्तु भावलिंग नहीं है, वह द्रव्य में नहीं है। वस्तु है, उसमें भावलिंग-फावलिंग है नहीं। सूक्ष्म बात है! पन्नालालजी! नन्दकिशोर पहले-पहले आये हैं तो यह सूक्ष्म लगे।

भेखकौ न भाजन... आहाहा! 'अलिंगग्रहण' में तो ऐसा कहा, 'यति अर्थात् बाह्यलिंग का जिसमें अभाव है।' २८ मूलगुण का विकल्प और नग्नपना द्रव्यस्वभाव में है नहीं। इसलिए अलिंगग्रहण कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? अलिंगग्रहण में है। द्रव्य-भाव वेद जिसमें नहीं। द्रव्य-भाव वेद भी जिसमें नहीं। द्रव्यवेद तो नहीं, परन्तु भाववेद भी जिसमें नहीं, उसको हम आत्मा कहते हैं। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहा, १७२ गाथा। प्रवचनसार। यति की बाह्यक्रिया का जिसमें अभाव है, उस अपेक्षा से आत्मा को अलिंगग्रहण कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? है उसमें। प्रवचनसार में है न? हाँ, प्रवचनसार। १७२ (गाथा)। लो, यही गाथा आयी। गाथा तो यह आयी, परन्तु पृष्ठ दूसरा बदलना पड़ा। लो, कितना है यह खबर नहीं? स्त्री, नपुंसक वेद का ग्रहण नहीं।

१७वाँ बोल। लिंगों का—धर्मचिह्नों का ग्रहण जिसको नहीं है। १७वाँ बोल। लिंग अर्थात् गुण ऐसा ग्रहण। लिंग अर्थात् धर्मचिह्न। धर्म के चिह्न जिसमें नहीं हैं। समझ में आया? इस अर्थ की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से आत्मा में बहिरंग यतिलिंगों का अभाव है। और मुनि के भावलिंग तथा द्रव्यलिंग का अभाव है। वह दूसरी बात थी, हों! निर्विकल्पभाव की। वह परमात्मप्रकाश में है। यह तो प्रवचनसार में है। आहा! भगवान आत्मा! २८ मूलगुण के विकल्प जिसमें नहीं। आहाहा! उसको आत्मा कहते हैं। समझ में आया? पण्डितजी! यति के बाह्य धर्मचिह्न भी नहीं। आहाहा!

अलिंगग्रहण, देखो। १७वाँ बोल है। लिंगों अर्थात् धर्मचिह्नों का ग्रहण जिसमें नहीं। इस प्रकार आत्मा को बहिरंग—बाह्य यतिलिंगों का अभाव है, ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है। आहाहा! आचार्यों ने इतना स्पष्ट शास्त्र की रचना में केवलज्ञान का स्पष्टीकरण सब स्पष्ट कर दिया है। यह कहे, धर्मचिह्न ग्रहण करके... बहुत लोग आये हैं। शास्त्र में आता है न ऐसा, मुनि भिक्षा के लिये जाये, किसी का रुदन सुने, आगे न जाये। हम मोक्षमार्ग में निकले हैं, जहाँ आनन्द है, वहाँ यह क्या?

मुमुक्षु : बात सही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी है। मुनि भिक्षा के लिये जाये। महीने के उपवास हों। एक महीने के उपवास। कुछ भी रुदन सुनें, ओहो! हम तो आत्मा के आनन्द की मौज करने को मोक्ष में जाते हैं, मोक्ष के पंथ में जाते हैं, उसमें यह क्या? अब आहार नहीं। विकल्प तोड़कर अमृत का अनुभव करते हैं। आहाहा!

अन्तराय कहते हैं। ३२ अन्तराय आते हैं न! साधु को ३२ अन्तराय है न! चौदह... ३२ अन्तराय आवे। वह तो बापू! मुनिपना, आहाहा! धन्य अवतार! चारित्र किसको कहते हैं! आहाहा! चारित्र की व्याख्या सुनने में आयी नहीं, परिणमन में तो कहाँ से आवे? आहाहा! चलते (समय) कौवे की विष्टा पड़ जाये शरीर के ऊपर, ऊपर से निकला हो। बस .... आहार नहीं। यह क्या? हम तो आनन्द की लहर में निकले हैं अन्दर सागर में। मोक्ष के मार्ग में विघ्न क्या? अटकाव क्या? कोई अटकाव होता नहीं। समझ में आया? अपने उपयोग को कोई हरण कर जाये, ऐसा हमारा स्वभाव नहीं। यह अलिंगग्रहण में है नहीं। हमारा उपयोग आत्मा के साथ जो जुड़ा है, उसका हरण कभी हो, ऐसा आत्मा का स्वभाव है नहीं। समझ में आया? है? उसमें है कहीं, हों! उपयोग का है न!

उपयोग अर्थात् लक्षण द्वारा ग्रहण पौद्गलिक कर्म नहीं। नौ-नौ। यह वहाँ पढ़ा था मुम्बई में पहले मांगलिक में। मुम्बई पहले स्वागत का मांगलिक हुआ था न! लिंग अर्थात् उपयोग नाम का लक्षण का ग्रहण (जिसका) पर से हरण हो सकता नहीं, उसका नाम अलिंगग्रहण है। भगवान आत्मा अपना ज्ञान उपयोग जो आत्मा के साथ जुड़ा है, उसको कोई हरण करे और नाश कर सके, ऐसी जगत में कोई चीज़ है नहीं। ऐई, नन्दकिशोरजी! ११वें (गुणस्थान) से गिरते हैं और फलाने से गिरते हैं। अब गिरे वह तेरा स्वभाव है? समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने तो काम किया है, गजब काम किया है! दिगम्बर मुनियों ने जगत के समक्ष सत्य की प्रसिद्धि प्रसिद्ध कर दी है कि मार्ग ऐसा है भैया! तुझे रुचे, न रुचे, तू स्वतन्त्र है। मार्ग तो ऐसा है।

उपयोग का हरण कभी होता नहीं, उसको हम उपयोग (स्वरूप) आत्मा कहते हैं। आहाहा! अखण्ड आनन्द भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप की जहाँ दृष्टि हुई और

उपयोग में लक्षण में लक्ष्य जहाँ दृष्टि में आया, वह लक्ष्य से छूटे तो वह उपयोग नहीं। तो उपयोग का हरण कभी होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं, **भेखकौ न भाजन पै भेखसौ धरतु है...** निर्विकल्प वेश वीतरागी पर्याय का भी द्रव्य भाजन नहीं, तो भी पर्याय में धरते हैं। आहाहा! **ऐसौ प्रभु चेतन अचेतनकी संगतिसौं,...** भाषा देखो! अचेतन ने कुछ उसमें किया, ऐसा नहीं। **अचेतनकी संगतिसौं, उलट पलट नटबाजीसी करतु है।** आहाहा! परिणाम उलट-पुलट करते हैं, यह नटबाजी जैसा परिणमन है, कहते हैं। अब यह सब छोड़कर अनुभव करना, वह बात करते हैं। हो, कर्ता-अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता। जिस नय से जो कहा, ऐसा समझ लेना। **निर्विकल्प उपयोग ही अनुभव के योग्य है।**

★ ★ ★

काव्य - ४७

निर्विकल्प उपयोग ही अनुभव के योग्य है (दोहा)

नटबाजी[१] विकलप दसा, नांही अनुभौ जोग।
केवल अनुभौ करनकौ, निरविकलप उपजोग।।४७।।

शब्दार्थ:-नटबाजी=नट का खेल। जोग=योग्य।

अर्थ:-जीव की नट के समान उलटा-पुलटी सविकल्प अवस्था है, वह अनुभव के योग्य नहीं है। अनुभव करनेयोग्य तो उसकी सिर्फ निर्विकल्प अवस्था ही है।।४७।।

काव्य-४७ पर प्रवचन

नटबाजी विकलप दसा, नांही अनुभौ जोग।
केवल अनुभौ करनकौ, निरविकलप उपजोग।।४७।।

यह पाँचों अंग कहे, हो, परन्तु उसका जो विकल्प है, वह सब छोड़नेयोग्य है।

---

१. 'घटवासी' ऐसा ही पाठ है।

आहाहा! मैं नित्य हूँ या मैं अनित्य हूँ या राग की परिणति है या राग की परिणति नहीं है—यह सब विकल्प है, भेद के विकल्प हैं। आहाहा! **नटबाजी विकलप दसा... घटवासी...** वह नीचे पाठ है। आहाहा! विकल्प की वृत्तियाँ उठती हैं—मैं एक हूँ और अनेक हूँ, द्रव्य से एक हूँ और पर्याय से अनेक हूँ। वेश का धरनेवाला द्रव्य नहीं, परन्तु पर्याय में निर्विकल्प पर्याय है—ऐसा हो, वह सब भेद विचार-विकल्प है। **नांही अनुभौ जोग**। अन्तर सम्यग्दर्शन पाने में, अनुभव करने में योग्य नहीं किसी प्रकार से। आहाहा! क्या कहा? यह कहते हैं न कि भाई, व्यवहार से निश्चय होता है। यहाँ तो इनकार करते हैं कि **नांही अनुभौ जोग**। आहाहा!

'मैं अनन्त आनन्द हूँ, मैं अबद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं एक हूँ'— ऐसा जो विकल्प, विचार विकल्प की धारा यह अनुभव में योग्य नहीं है। आत्मा का अनुभव करने के लिये वह योग्य नहीं है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात! समझ में आया? **केवल अनुभौ करनकौ,...** भगवान आत्मा अनुभव—पूर्णानन्द को अनुसरकर होना, उसमें निर्विकल्प उपयोग... वह उपयोग तो निर्विकल्प है। पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! सम्यग्दर्शन पाने में निर्विकल्प उपयोग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं एक हूँ और अनेक हूँ, कर्ता हूँ और अकर्ता हूँ, भोक्ता हूँ और अभोक्ता हूँ, वेश का धरनेवाला नहीं, पर्याय में वेश है—यह सब विकल्प अनुभव के काम नहीं आते। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले करना तो पड़ेगा इतना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं। करना क्या पड़े? आहाहा!

नटबाजी विकलप दसा, नांही अनुभौ जोग। आहाहा!

मुमुक्षु : नटबाजी में डाल दिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नटबाजी में डाल दिया। समयसार में १३वीं गाथा में आता है न! नय, निक्षेप, प्रमाण से वस्तु को सिद्ध करना, परन्तु अनुभव में वह विकल्प काम नहीं करते। सर्वज्ञ ने कहा ऐसा आत्मा—निश्चय से ऐसा है, पर्याय से ऐसा है, प्रमाण से सारा पूरा है, निक्षेप से भाव क्या है, द्रव्य क्या है, नाम क्या है, आकार क्या है—ऐसा निश्चय करना, परन्तु वह सब विकल्प है। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा में जाकर

अनुभव करने में वह योग्य—लायक नहीं है। उसकी ताकत से अनुभव हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन निर्विकल्प उपयोग में होता है। देखो, क्या कहते हैं यहाँ? निर्विकल्प उपयोग। आहाहा!

यह सब विकल्प को छोड़कर... विकल्प में निर्विकल्प का अनुभव हो, यह योग्य नहीं, ऐसा कहा न! **नांही अनुभौ जोग...** आहाहा!

मुमुक्षु : निर्विकल्प ही अनुभव....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनुभव कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : सविकल्पदशा में वह विकल्प आवे, उसे छोड़ना कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य, लक्ष्य छोड़ना, ऐसा कहते हैं। अनुभव करने में लक्ष्य छूट जाता है, ऐसा कहते हैं। छोड़े कौन? भाषा उपदेश की क्या करे? अन्तर में निर्विकल्प उपयोग—अनुभव होता है, तो विकल्प उत्पन्न होता नहीं। निर्विकल्प में विकल्प मदद करता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो चिल्लाहट मचाते हैं न ....! 'व्यवहार को हेय कहते हैं, यह जैनधर्म का नाश करते हैं' ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। कल ही आया है। मक्खनलाल। अरे, भगवान! व्यवहार क्या तुम कहते हो? प्रभु! आहाहा! तेरी चीज़ तो निर्विकल्प उपयोगस्वरूप है। समझ में आया?

अलिंगग्रहण में भी ऐसा आया है। जैसे सूर्य में मैल नहीं—विकार नहीं; वैसे आत्मा में शुभ-अशुभ उपयोग है ही नहीं। वह तो शुद्ध उपयोगस्वभावी है। यह अलिंगग्रहण में है। समझ में आया? १०वाँ बोल है, अलिंगग्रहण में है। १०वाँ बोल है। सूर्य में जैसे विकार नहीं। वैसे भगवान आत्मा में शुभ-अशुभ उपयोग नहीं। वह तो शुद्ध उपयोगस्वभावी है। क्या हुआ? सम्यग्दर्शन शुभ उपयोग से होता है? शुभ उपयोग तो उसका स्वभाव ही नहीं, फिर कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? है उसमें १०वें बोल में। यह नौवाँ बोल है न हरण का। ९वाँ बोल लिया न पहले, हरण का। उपयोग का हरण नहीं। उपयोग। उसके पहले (आता है कि) उपयोग बाहर से आता नहीं, वह तो अन्दर से आता है। समझ में आया?

और सूर्य में जैसे मैल नहीं; वैसे भगवान आत्मा में शुभाशुभ परिणाम है ही

नहीं। शुभाशुभ परिणाम अनात्मा है, आस्रव है; वे आत्मा में है नहीं। अरे, अरे, गजब! और अभी कह गये कि वह राग के परिणमन में कर्तृत्व जानना। ज्ञान की अपेक्षा से यह कहा। दृष्टि की अपेक्षा में है ही नहीं कुछ। आहाहा! वह तो शुद्ध उपयोगस्वभावी है, उसको आत्मा कहते हैं। शुभ-अशुभ परिणाम क्या आत्मा है? वह तो आस्रव है, अनात्मा है। तो कहते हैं, **नटबाजी विकलप दसा, नांही अनुभौ जोग**। आहाहा! यह अनुभवनेयोग्य नहीं, ऐसा लिया न!

पहले माल लेना हो, बर्फी या कोई भी चीज़, तो पहले भाव पूछे। तराजू... त्राजवा क्या कहते हैं वह?

मुमुक्षु : तौल।

पूज्य गुरुदेवश्री : तौल करावे।

मुमुक्षु : काँटा (तराजू)।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, काँटा। तौल जाँचते हैं या नहीं? कि जिसमें माल डाले (उसके) नीचे मोम-बोम लगाया है या नहीं? माल डालना हो वहाँ मोम चुपड़ा हो और इस ओर खाली हो। तो बराबर तौल करावे। दोनों पलड़ों का। तराजू कहते हैं न? तराजू। भाव पूछे, तौल और उसका वह लोहे का क्या कहते हैं? पाँचसेरी। सेर, दो सेर निश्चित करावे या नहीं परन्तु बराबर है या नहीं?

मुमुक्षु : अपने तो काटला कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : काटला कहते हैं हमारे। पाँच सेर बाँट, बाँट। परन्तु इसकी हिन्दी भाषा दूसरी है न। यह निश्चित करे। परन्तु खाने के समय फिर विचार करते हैं उसका? इस भाव का है और तोल तराजू में निश्चित किया है और पाँच सेरी बराबर थी न!

मुमुक्षु : तो खाये कब? भोजन कब करे?

वह अधिकार उसमें आया है। समझ में आया? अनुभव के काल में वह तो है ही नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। प्रथम उसका निर्णय करने में भगवान सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा आत्मा द्रव्य-पर्याय, गुण-पर्याय, विकार-अविकार, संयोग-असंयोग—ऐसी चीज़ है,

उसको निर्णय करने में नय, निक्षेप, प्रमाण होता है। परन्तु जो चीज़ साधक कही जाती है, वही चीज़ अनुभव में बाधक है। आहाहा! वह आता है अन्दर। आहा ! समझ में आया ? बहुत कठिन चीज़। कहते हैं कि अनुभवयोग्य नहीं। **केवल अनुभौ करनकौ,...** अपने स्वरूप के आनन्द का अनुभव करने में निर्विकल्प उपयोग अर्थात् शुद्ध उपयोग... समझ में आया ? यह पठन-बठन और कुछ वहाँ काम नहीं करता है, कहते हैं। आहाहा! पढ़े-लिखे का ज्ञान भी वहाँ काम नहीं करता। आहाहा!

'अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' आहाहा! यह तो चौथे गुणस्थान की बात चलती है। हों! आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें बड़ा विवाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा विवाद। भाई! उसे खबर नहीं हों। वह तेरी चीज़ कैसी है प्रभु! यह सब विकल्प का ज्ञान, विकल्पवाला ज्ञान भी अनुभव में कोई मदद करनेवाला नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? **केवल अनुभौ करनकौ,...** है न ? अनुभव नहीं। **अनुभव करने योग्य तो उसकी सिर्फ निर्विकल्प अवस्था ही है।** आहाहा! शुद्ध उपयोग का अनुभव होता है। राग का और विकल्प का अनुभव होता नहीं, वह अनुभवनेयोग्य है नहीं। आहा!

दृष्टान्त कहते हैं। **अनुभव में विकल्प-त्यागने का दृष्टान्त।**

मुमुक्षु : अवस्था का अनुभव लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अवस्था का ही अनुभव है न, द्रव्य का अनुभव है नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य का ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का अनुभव होता ही नहीं। अनुभव तो पर्याय में निर्विकल्पदशा का ही होता है। पर्याय का ही अनुभव है, द्रव्य का अनुभव होता ही नहीं कभी तीन काल में। द्रव्य तो ध्रुव-त्रिकाल है।

मुमुक्षु : निर्विकल्प अवस्था का....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अवस्था का अनुभव है। समझ में आया ? वेदन, अनुभव, वह सब पर्याय का होता है। सम्यग्दर्शन का अनुभव, ज्ञान का अनुभव, चारित्र का

(अनुभव), यह सब पर्याय है। ध्रुव का अनुभव? ध्रुव तो त्रिकाल सत् पड़ा है। ध्रुव के आश्रय से हो, परन्तु अनुभव ध्रुव का नहीं। आहाहा! गजब! ऐसा मार्ग है, पन्नालालजी! **अनुभव में विकल्प त्यागने का दृष्टान्त।**

★ ★ ★

काव्य - ४८

अनुभव में विकल्प त्यागने का दृष्टान्त

(सवैया इकतीसा)

जैसैं काहू चतुर संवारी है मुकत माल,
मालाकी क्रियामैं नाना भांतिकौ विग्यान है।
क्रियाकौ विकलप न देखै पहिरनवारौ,
मोतिनकी सोभामैं मगन सुखवान है।।
तैसैं न करै न भुंजै अथवा करै सौ भुंजै,
और करै और भुंजै सब नय प्रवांन है।
जदपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग,
निरविकलप अनुभौ अमृत पान है।।४८।।

शब्दार्थ:-संवारी=सजाई। मुकत माल=मोतियों की माला। विग्यान=चतुराई। मगन=मस्त। अमृत पान=अमृत पीना।

अर्थ:-जैसे किसी चतुर मनुष्य ने मोतियों की माला बनाई, माला बनाने में अनेक प्रकार चतुराई की गई, परंतु पहिननेवाला माला बनाने की कारीगरी पर ध्यान नहीं देता, मोतियों की शोभा में मस्त होकर आनन्द मानता है, उसी प्रकार यद्यपि जीव न कर्ता है, न भोक्ता है, जो कर्ता है वही भोक्ता है, कर्ता और है, भोक्ता और है, ये सब नय मान्य हैं तो भी अनुभव में ये सब विकल्प-जाल त्यागने योग्य हैं, केवल निर्विकल्प अनुभव ही अमृतपान करना है।।४८।।

काव्य-४८ पर प्रवचन

जैसैं काहू चतुर संवारी है मुकत माल,
मालाकी क्रियामैं नाना भांतिकौ विग्यान है।
क्रियाकौ विकलप न देखै पहिरनवारौ,
मोतिनकी सोभामैं मगन सुखवान है।।
तैसैं न करै न भुंजै अथवा करै सौ भुंजै,
और करै और भुंजै सब नय प्रवांन है।
जदपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग,
निरविकलप अनुभौ अमृत पान है।।४८।।

जदपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग... आहाहा! ऐसा विकल्प भी त्याग-योग्य है। यहाँ तो अभी, अकेले व्यवहार—राग की मन्दता त्यागनेयोग्य है, कहने पर, आहाहा! दिगम्बर धर्म का नाश हो जाता है, (ऐसा लोग कहते हैं)। ऐई पूनमचन्दजी! अरे भगवान! सत्य को सत्य रहने दो न! जैसा है वैसा रहने दो प्रभु! ऐसी गड़बड़ हो तो सत्य नहीं प्राप्त होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्पों का अनुभाव हो तो अनुभव हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : तो अनुभव हो। विकल्प से अनुभव होता है? व्यवहार त्यागनेयोग्य है, तो विकल्प त्यागनेयोग्य है। 'नहीं, त्यागनेयोग्य है नहीं। छठवें गुणस्थान तक—प्रमत्त तक व्यवहारचारित्र है।' परन्तु व्यवहारचारित्र महाव्रत, वह तो निश्चयचारित्र की स्थिरता प्रगट हुई है, उसको है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपने द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुआ है, उसको प्रमत्त में जो महाव्रत का विकल्प है, (उसे) व्यवहार कहने में आया है। जहाँ आत्मा का—द्रव्य का आश्रय नहीं लिया निर्विकल्प, वहाँ विकल्प को व्यवहार कहने में आता ही नहीं। आहाहा! भारी गड़बड़। सोनगढ़ के नाम से तो फिर ऐसा करते हैं अन्दर। आहाहा! कहाँ गये, बाबूभाई गये?

मुमुक्षु : वे अहमदाबाद गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके गाँव गये।

यहाँ तो कहते हैं, **क्रियाकौ विकलप न देखै पहिरनवारौ,...** कहो, मोती की माला गूँथी। गूँथी, उस समय (विकल्प) भले हो। परन्तु माला पहनने के समय (ऐसी) गूँथी, ऐसा विकल्प है? पहनने की शोभा है। **मालाकी क्रियामैं नाना भांतिकौ विग्यान है...** ऐसा। विकल्प है, ऐसा। समझ में आया? परन्तु **मोतिनकी सोभामैं मगन सुखवान है।** यह सब विकल्प—यह मोती, यह उसकी माला, यह उसमें सूत का डोरा—यह सब विकल्प माला पहननेवाले को है नहीं। वह तो शोभा में मग्न है। **तैसें न करै न भुंजै अथवा करै सौ भुंजै,..** राग को करता भी नहीं और राग को भोगता भी नहीं। और पर्यायनय से करे और भोगे। भले हो। वह ज्ञान करो। परन्तु **और करै और भुंजै...** दूसरी पर्याय करे और दूसरी पर्याय भोगे। **सब नय प्रवांन है...** ज्ञान की अपेक्षा से, सब है, ऐसा ज्ञान करना।

जदपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग है, आहाहा! यह सर्वविशुद्ध अधिकार। यह सब विकल्प को छोड़कर... सब विकल्प विधि त्यागयोग्य है। वह त्यागयोग्य कहाँ? सातवें में?

मुमुक्षु : उसी समय....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय की बात.... निर्विकल्प अनुभव... यह विकल्प—विधि तो त्यागयोग्य है, देखो! **ये सब नय मान्य हैं तो भी अनुभव में ये सब विकल्प-जाल त्यागने योग्य हैं।** अर्थ में ऐसा लिखा है। आहाहा! **केवल निर्विकल्प अनुभव ही अमृतपान करना है।** निर्विकल्प अनुभव अमृतपान। आनन्द की ओर झुकने से अमृत का—आनन्द का स्वाद आया, उसमें सब विकल्प त्याग है। अनुभव के काल में विकल्प सब त्याज्य है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन हुआ, उस काल में अनुभव में विकल्प का त्याग है। आहाहा! समझ में आया?

कर्ता-(कर्म अधिकार) में यह लिया है न वहाँ? १४३-४४ (गाथा), नहीं? 'अबद्ध हूँ, एक हूँ, शुद्ध हूँ।' व्यवहार तो निषेध करते आये ही हैं, ऐसा तो कहा। अनेक है और रागसहित है, ऐसा तो निषेध करते आये हैं, परन्तु यहाँ तो एक हूँ और शुद्ध हूँ और अबन्ध हूँ, परिपूर्ण और अभेद हूँ—ऐसा जो विकल्प, वह भी छोड़े बिना तुझे अनुभव नहीं होगा। अमरचन्दजी! आहाहा! भारी कठिन, भाई! लोगों को यह बात ऐसी

लगे कि यह तो निश्चयाभास है। परन्तु निश्चयाभास, जहाँ आनन्द का अनुभव आया, वहाँ निश्चयाभास कहाँ रहा? यह तो कहते हैं यहाँ। आहाहा! समझ में आया? चिदानन्द भगवान को अपनी पर्याय में ध्येय बनाकर जो अनुभव हुआ, वह तो अमृत का पान है, अमृत की बूटी है। वह कोई वाद-विवाद का विषय नहीं, भाई! भीखाभाई! तुम्हारा विकल्प काम न करे, कहते हैं।

यह गुरु से सुने और गुरु का उपकार है—ऐसा विकल्प वहाँ अनुभव में काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एक अपवाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारा लड़का इनकार करता है परन्तु ऐसा। आहाहा! भगवान के आँगन में ऐसे विकल्प हों, कहते हैं। परन्तु इस विकल्प से निर्विकल्प अनुभव हो, यह योग्य नहीं। दो बार कहते हैं। वहाँ भी कहा। **नांहि अनुभौ जोग,...** यहाँ भी कहा, **जदपि विकलप विधि त्याग जोग,** है न? पण्डितजी! आहाहा! भाई! शान्त हो, शान्त हो। भगवान तो राग और विकल्प से रहित है। वह तो निर्विकल्प है तो निर्विकल्प उपयोग में उसका अनुभव होता है। शुद्ध उपयोग कहो या निर्विकल्प परिणाम कहो, सब एक ही बात है। उस शुद्ध उपयोग में सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? वह शुभ उपयोग से होता नहीं। यह ४८ (पद) हुआ। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२९, श्रावण कृष्ण २, रविवार, दिनांक ०८-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-४८ से ५०

सर्वविशुद्ध अधिकार है। ४८ पद हो गया। ४८ आया न अन्त में?

जदपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग,
निरविकलप अनुभौ अमृत पान है॥

आत्मा के लिये... सर्वज्ञ के अतिरिक्त एकान्त माननेवाले अनेक प्रकार हैं, वे जानना, परन्तु वह विकल्प है, वह त्याग करनेयोग्य है। आत्मा अबद्ध है द्रव्य से, पर्याय में रागादि अशुद्धता है, वस्तुरूप से एक है, गुण-पर्याय से अनेक है—ऐसे भेद हैं और अभेद भी है। तो जैसा है, ऐसा नय-प्रमाण से जानना। परन्तु जानकर बाद में करना क्या? यद्यपि ऐसा विकल्प से निर्णय किया, तथापि विकल्प विधि त्यागयोग्य है। ऐसा है और ऐसा नहीं है—यह सब विकल्प दृष्टि में से छोड़नेयोग्य है।

निरविकलप अनुभौ अमृत पान है। अपना स्वरूप निर्विकल्प ही है, तो पर्याय में निर्विकल्पता से अनुभव करके अमृत का पान करना, उसका नाम अनुभूति, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम धर्म की प्रथम निर्विकल्पता की शुरुआत होती है। समझ में आया? **अमृत पान...** आत्मा अन्तर में अतीन्द्रिय अमृत का धाम निर्विकल्प... सब विकल्प की जंजाल छोड़कर, स्वरूप ऐसा अखण्ड निर्विकल्प है, ऐसी परिणति में अमृतरस पीना। आहाहा! सर्व शास्त्र का यह तात्पर्य है। यहाँ तक आया है। अब, **किस नय से आत्मा कर्मों का कर्ता है और किस नय से नहीं है।** नीचे श्लोक है १८।

व्यावहारिकदृशैव केवलं कर्तृ कर्म च विभिन्नमिष्यते।
निश्चयेन यदि वस्तु चिन्त्यते कर्तृ कर्म च सदैकमिष्यते।।१८।।

मूल तो कर्ता-कर्म अधिकार विशेष स्पष्ट (करना) है न! विकल्प का कर्ता होना, वह आत्मा में है, परन्तु अज्ञानभाव से है। समझ में आया? विकल्प का कर्ता, राग का कर्ता होना, वही वस्तु का स्वरूप है अर्थात् पर का कर्ता नहीं। समझ में आया? पर से भिन्न बताना है न अभी तो।

★ ★ ★

काव्य - ४९

किस नय से आत्मा कर्म का कर्ता है और किस नय से नहीं है

(दोहा)

दरब करम करता अलख, यह विवहार कहाउ।
निहचै जो जैसौ दरब, तैसौ ताकौ भाउ।।४९।।

शब्दार्थ:-दरब करम (द्रव्यकर्म)=ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की धूल। अलख= आत्मा। ताकौ=उसका। भाउ=स्वभाव।

अर्थ:-द्रव्यकर्म का कर्ता आत्मा है, यह व्यवहारनय कहता है, पर निश्चयनय से तो जो द्रव्य जैसा है, उसका वैसा ही स्वभाव होता है – अर्थात् अचेतन द्रव्य अचेतन का कर्ता है और चेतनभाव का कर्ता चैतन्य है।।४९।।

काव्य-४९ पर प्रवचन

दरब करम करता अलख, यह विवहार कहाउ... जड़कर्म को आत्मा करे, यह तो झूठी व्यवहारदृष्टि से कहने में आया है। क्योंकि कर्म भी एक पदार्थ है, तो वह अपनी पर्याय को रचता है, करता है, उसमें आत्मा क्या करे? कर्म आत्मा बाँधे या कर्म का फल आत्मा भोगे—यह तो झूठी व्यवहारदृष्टि से कहने में आया है। **दरब करम करता अलख,...** भगवान आत्मा जड़ की पर्याय को करे **व्यावहारिक दृशैव**। है न? **व्यावहारिक दृशैव**। यह व्यवहार अर्थात् मिथ्या—झूठी दृष्टि से कहने में आता है। समझ में आया? **यह विवहार कहाउ...** कहने में आता है, वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। **निहचै जो जैसौ दरब, तैसौ ताकौ भाउ**। अभी तो मात्र पर से भिन्न बताना है, हों! स्वभाव का कर्ता है और भावकर्म का कर्ता नहीं—यह अभी सिद्ध नहीं करना है। समझ में आया? **निश्चयनय से तो जो द्रव्य जैसा है, उसका वैसा ही स्वभाव होता है, अचेतन द्रव्य अचेतन का कर्ता है और चेतनभाव का कर्ता चेतन है।**

पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, उसका कर्ता अज्ञानभाव से आत्मा ही है।

समझ में आया? परन्तु अज्ञानभाव से जड़ का भी कर्ता है, ऐसा नहीं। यह व्यवहार से कहने में आता है, परन्तु वह तो झूठे व्यवहार से। **निहचै जो जैसौ दरब, तैसौ ताकौ भाउ।** निश्चय का अर्थ... है तो वह भी व्यवहार। समझ में आया? अपने भाव का कर्ता है, यह भी अज्ञान का व्यवहार है। निश्चय तो... पर का कर्ता नहीं और स्व का कर्ता है, इतनी अपेक्षा से निश्चय कहा है। वास्तव में निश्चय यह है नहीं। राग का कर्ता... जब तक अपना स्वभाव-सन्मुख चैतन्य का पता नहीं लिया, तब तक तो स्वरूप के अज्ञानभाव से रागका कर्ता है, यह निश्चय है। निश्चय शब्द से स्व-आश्रय। समझ में आया? स्वाश्रय है, इसलिए निश्चय कहा, बाकी तो वह भी व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार-निश्चय के झगड़े। समझ में आया?

निहचै जो जैसौ दरब, तैसौ ताकौ भाउ। यहाँ तो विकारी (भाव) भी जीवद्रव्य का भाव है, यह सिद्ध करना है, भाई! आहा! जड़ की पर्याय का कर्ता नहीं। शरीर की पर्याय चलती है, उसका आत्मा कर्ता अज्ञानभाव से भी नहीं है। बोलना होता है जड़ की पर्याय से, अज्ञानभाव से भी जड़ की पर्याय का—भाषा का कर्ता (आत्मा) नहीं है। अज्ञानभाव से विकृतरूप विकार दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का भाव, (उसका कर्ता है) क्योंकि दृष्टि में वही है। दृष्टि में स्वभाव त्रिकाल तो है नहीं। तो अपने द्रव्य के ज्ञान के अभाव में अज्ञानी ही अपने विकार परिणाम का कर्ता है। समझ में आया?

यह ४९ (पद) हुआ। ५० (पद)। १९ कलश है। एक कलश है, परन्तु उसमें अर्थ नहीं दिया। नीचे अर्थ है न? उसमें नहीं है? पण्डितजी! बीच में श्लोक है न नीचे, उसका अर्थ नहीं दिया। क्योंकि ईडर की प्रति में नहीं है। लिखा है न? **यह श्लोक कलकत्ते की छपी हुई परम अध्यात्म तरंगिणी में है।** परम अध्यात्म तरंगिणी में है। उसमें है परम अध्यात्म तरंगिणी में। **किन्तु इसकी संस्कृत टीका प्रकाशक को उपलब्ध नहीं हुई। काशी के छपे हुए प्रथम गुच्छक में यह श्लोक नहीं है। ईडर भण्डार की प्राचीन हस्तलिखित प्रति में भी यह श्लोक नहीं है और न इसकी कविता ही है।** परन्तु यहाँ मूल श्लोक डाला। अपने डाला है। कितना है यह? २११। अपने यहाँ डाला है। देखो, श्लोक है नीचे।

ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः,
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया,
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः।।२११।।

'**ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः**' उसका अर्थ है। उसमें नहीं है। वास्तव में, 'ननु' का अर्थ वास्तव में। **परिणाम एव...** परिणाम है, वही निश्चय से कर्म है। अपने आत्मा में जो रागादि या शुद्धादि परिणाम होते हैं, वही जीव का कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। **पारिणामिन एव भवेत् नापरस्य भवित...** अपने परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का होता है। दूसरा बोल। एक बोल ऐसा कहा कि वास्तव में द्रव्य जो है, उसका जो परिणाम है, वह परिणाम उसका (द्रव्य का) वास्तव में कार्य अर्थात् कर्म है। यह परमाणु है। ऐसा होता है, यह कर्म है। निश्चय से यह परमाणु का कर्म है, परमाणु का कार्य है; आत्मा का नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद होता है। भेद कहना, वह तो व्यवहार—झूठी दृष्टि से कहना है। आहा! यहाँ तो यह कहते हैं, पर का कर्ता न माने (तो) दिगम्बर जैन नहीं। लो, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। पण्डित ऐसा कहते हैं। आहाहा! कितना फेरफार। अरे, भगवान!

तू तेरी सत्ता में तेरी परिपूर्ण दशा है। तुझमें उल्टा-सुल्टा कर सके। पर में कुछ कर सके, (ऐसा है नहीं)। कहते हैं कि परिणाम अपना कार्य है और परिणाम परिणामी का होता है। जो परिणाम हुआ, वह कार्य और वह परिणामी का परिणाम परिणामी के आश्रय से होता है। वह परिणाम निमित्त के आश्रय से होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह प्रश्न चला था। नन्दकिशोरजी! वह हीरालालजी आये थे न यहाँ। ... प्रश्न चला था। परन्तु निमित्त बिना होता नहीं। निमित्त बिना होता नहीं, उसका क्या अर्थ? कहा, लकड़ी का दृष्टान्त दिया था। यह लकड़ी है, देखो, आरी से कटी हुई है। अकेली कटेगी? कपाय अर्थात् समझते हैं? कटे। करवत से टुकड़ा होता है। करवत बिना होता है? अरे, भैया! करवत से होता है तो ऐसा क्यों रहा? अभी तो करवत है नहीं। अभी

रहा है अपने कारण से, तो उस समय भी अपने कारण से पर्याय में दो खण्ड हुए हैं। अरे, स्वतन्त्र दृष्टि... वह हीरालाल नहीं? क्या कहलाते हैं वे? प्रोफेसर। धवल का बनाया है न? धवल का बनाया है। आये थे न? पण्डितजी के साथ आये थे। यह वह और एक उपाध्याय, ए. एन. (उपाध्याय) दोनों आये थे। .... कोल्हापुर।

यहाँ तो कहते हैं, कोई भी परिणाम, परिणाम अर्थात् वर्तमान दशा—वर्तमान हालत, वह कर्म अर्थात् कार्य कहा जाता है। किसका? परिणामी का। परिणामी बिना परिणाम होता नहीं और वह परिणाम परिणामी का कर्म अर्थात् कार्य है। यह मन्दिर बनवा सके और मूर्ति पधरा सके—यह कार्य आत्मा का नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐ पोपटभाई! तुम्हारे कहाँ अभी पधराया है? किया नहीं कुछ। थोड़ा सा वहाँ किया है जोरावरनगर में। तुम्हारे गाँव में तो बाकी है बहुत सब। जोरावरनगर। क्या किया था? विकल्प। मन्दिर-बन्दिर में नहीं। अमुलखभाई! अमुलखभाई है न? यह तुम्हारे वहाँ मदद की थी न तुमको? नहीं करे?

भाई! जगत की चीज़ जो है, वह अपनी वर्तमान पर्याय से परिणम रही है। यह परिणाम ही उस द्रव्य का कार्य है और वह परिणाम परिणामी के आश्रय से होता है। वह परिणाम पर के आश्रय से होता है, ऐसा नहीं। दो बोल हुए। समझ में आया? दो बोल क्या हुए? कि प्रत्येक पदार्थ का वर्तमान पर्यायरूपी परिणाम, वह कर्म है। क्योंकि वह निश्चय से द्रव्य का वह कार्य है। और वह परिणाम परिणामी के आश्रय से होता है। तो उसका जो परिणामीद्रव्य है, उसके आश्रय से होता है। निमित्त के आश्रय से होता है, ऐसी चीज़ है (नहीं)। है उसमें यह? देखो, '**ननु परिणाम...**' ननु अर्थात् निश्चय। '**ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयत:**' वास्तव में तो परिणाम विकारी हो या अविकारी, वही कर्म अर्थात् कार्य का जाता है। '**स भवति नापरस्य परिणामित एव भवेत्।**' वह अपने परिणामी के आश्रय से होता है, पर के आश्रय से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दिखता है न कि पर के आश्रय से होता है? आत्मा है तो बोला जाता है। मुर्दा क्यों नहीं बोलता? किसी ने प्रश्न किया था या नहीं? भाई! मुर्दा भी अपनी पर्याय का ही कर्ता है, भाषा का कर्ता है नहीं। यहाँ भी भाषा की पर्याय का कर्ता, परमाणु भाषा का है, वह कर्ता है और वह उसका कर्म है। भाषा (वर्गणा) का वह कर्म अर्थात् कार्य है।

वह परिणाम भाषावर्गणा के आश्रय से हुआ है। होठ से भी नहीं। क्यों (कि) यह (शरीर) तो आहारवर्गणा है। भाषा, वचनवर्गणा है। दोनों भिन्न वर्गणाएँ हैं। भिन्न वर्गणा का कार्य भिन्न वर्गणा से होता है—ऐसा तीन काल में होता नहीं। पदमचन्दजी! तो यह सब होशियार तुम कहलाओ न धन्धे में—काम में न? पचास-पचास हजार कमाये और लाख-लाख कमाये। होशियार का काम है या नहीं सब? नहीं? शिखरचन्दजी! यह मूर्खाई का काम है?

२००-२०० रुपये लेते थे रामजीभाई, लो, तीस वर्ष पहले कोर्ट में। मूर्खाई का काम होगा? तीस वर्ष पहले कोर्ट में पाँच घण्टे जाये, दो सो (रुपये ले)। सलाह लेने आवे तो चालीस एक घण्टे के यहाँ रख। हम उगाही लेने जायें मुवक्किल के पास? तो यह उनकी होशियारी से मिलता था या नहीं? उसका अर्थ क्या? उसका अर्थ क्या? वह परमाणु की पर्याय क्षेत्रान्तर होकर वहाँ आनेवाली थी तो वह कार्य तो परमाणु का है। समझ में आया? चिमनभाई! यह सब चिमनभाई रहे पैसेवाले। रेड (छापा) का चलन बहुत अभी, विचारा नहीं होता। हें-हें हो गया था। क्या कहलाता है तुम्हारा? इनकमटैक्स।

भाई! यह परमाणु पदार्थ जगत की चीज़ है, अस्ति तत्त्व है। है, उसका परिणाम क्षण-क्षण में हुए बिना रहता नहीं। तो वह परिणाम उसका—परमाणु का कर्म है और वह परिणाम परमाणु के आश्रय से होता है। विकल्प किया, इसलिए यहाँ पैसा आया, ऐसा तीन काल में है नहीं। भीखाभाई! खबर है न? तुम्हारे ३०० वेतन था और यह अनेक हजारों पैदा करते हैं। हीराभाई कहीं होशियारी से करते होंगे या नहीं? रामजीभाई तो कहते हैं कि भाई! सुमनभाई की बुद्धि मुझसे अच्छी है। ऐसा तो कहते हैं। बात सुनी है। ऐसा कोई कहता था। कहो, समझ में आया?

उसमें कहाँ है? बुद्धि है तो आठ हजार वेतन मिलता है? आठ हजार वेतन तो परमाणु चीज़ है। परमाणु का आना, रहना, टिकना—वह तो परमाणु की पर्याय के कारण से है। वह परिणाम उसका—परमाणु का कार्य है और उसका परिणामी जो परमाणु है, उसके आश्रय से परिणाम हुआ है। दूसरे के आश्रय से हुआ है? सेठ! यह बीड़ी का सब धन्धा तुम्हारे आश्रय से होता है? सेठ आये लक्ष्य में। बारम्बार आते हैं तो देखें या

नहीं ? चार बोल है इस श्लोक में। एक बोल तो यह कि जिस द्रव्य का जो परिणाम, वह उसका कार्य। दूसरा बोल वह कि जो कार्य है, वह परिणामी के आश्रय से होता है, पर के आश्रय से नहीं। निमित्त उड़ा दिया। समझ में आया ?

मुमुक्षु : निमित्त उड़ा दिया, वह कहाँ लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या क्या लिखा है ? धन्नालालजी ! सेठ है यह तो। क्या लिखा है ? 'अपने आश्रयभूत परिणामी से होता है, अन्य का नहीं।' **अपरस्य न भवति...** है उसमें ? **अपरस्य न भवति।** पण्डितजी ! यह तो पण्डित है न ? संस्कृत जानते हैं या नहीं ? **अपरस्य न भवति...** देखो। है ? आहाहा ! **स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्।** अस्ति-नास्ति किया। अपर से नहीं होता, अपने परिणामी से वह परिणाम होता है। उस परिणाम का आश्रय आधार द्रव्य है, दूसरा द्रव्य नहीं। आहाहा ! बात ऐसी है, भाई ! मार्ग ऐसा है। सत्य वस्तु। एक सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात कहीं हो सकती ही नहीं।

एक बार समन्तभद्राचार्य ने मुनिसुव्रत भगवान की स्तुति में कहा, 'हे नाथ ! समय एक और उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन का पता एक समय में आपने लिया। वही आप सर्वज्ञ का लक्षण है। समय एक और एक समय में प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद, व्यय, (ध्रौव्य)। उत्पाद परिणाम हुआ, वह कर्म। पूर्व का व्यय हुआ और यहाँ ध्रुव है। तो वह परिणाम कर्म है। परिणाम परिणामी के आश्रय से होता है, अपर के आश्रय से नहीं। एक समय में तीन बोल आपने पकड़े। समय तो सूक्ष्म है। 'क' बोले उसमें असंख्य समय जाते हैं। आहाहा ! बापू ! केवलज्ञान की प्रतीति करना, यह साधारण बात नहीं है। एक समय में, नाथ ! आपने प्रत्येक द्रव्य के तीन अंश (देखे)। समय एक। 'क' (बोलने के काल का) असंख्यवाँ भाग एक समय। 'क' बोले इतने में असंख्य समय हैं। 'क' (बोलने के काल के) असंख्यवें भाग में एक समय है और तीन अंश। समय का तीन भाग नहीं और एक समय में तीन अंश आपने जान लिये यह आपका सर्वज्ञ लक्षण है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, भगवान ने देखा ऐसा ही कहते हैं। दो बोल हुए। कौन से दो बोल हुए ? कि (१) प्रत्येक परिणाम उस-उस द्रव्य का कर्म अर्थात् कार्य है। दूसरा—(२) वह परिणाम परिणामी पदार्थ के आश्रय से होता है, अन्य के आश्रय से होता नहीं।

प्रत्येक द्रव्य का परिणाम अपना निश्चय कर्म कहने में आता है। वह परिणाम अपने परिणामी द्रव्य के अवलम्बन से होता है, पर के अवलम्बन से होता नहीं। आहाहा! तीसरा बोल (३) **कर्म कर्तृशून्य न भवति।** जो कार्य है, वह कर्ता के बिना होता नहीं। ठीक है? जो कोई परमाणु और आत्मा है, उसमें जो परिणाम होता है—पर्याय होती है, वह कर्ता के बिना होता नहीं। यह तीसरा बोल है। कर्ता शून्य परिणाम होता नहीं। समझ में आया? और कर्म, कर्ता के बिना होता नहीं। तीसरा बोल। तीन बोल हुए।

चौथा बोल, उसमें ही उसमें। **वस्तुनः एकतया स्थिति ह न...** तब ऐसे देखने में आता है न कि जैसा-जैसा निमित्त मिला, ऐसा-ऐसा परिणाम पलटता है—ऐसा देखने में आता है न? भिन्न-भिन्न काल में। तो कहते हैं कि परिणाम की स्थिति एक समय की ही है। है? वस्तु की एकरूप स्थिति होती नहीं, वस्तु की एकरूप स्थिति रहती नहीं। वह कूटस्थ नहीं है। क्षण-क्षण में परिणाम होता है, इसलिए पलटने में तुझे ऐसा भासित होता है कि जैसा निमित्त आया, ऐसा परिणाम हुआ, (परन्तु) ऐसा है नहीं। स्थिति परिणमन की ऐसी है कि परिणमन एक ही समय रहता है। दूसरे समय में दूसरी स्थिति के कारण से है। पर के कारण से है (नहीं)। क्योंकि वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप होने से सर्वथा नित्यपना बाधासहित है। शाश्वत् एक ही स्थिति रहे, ऐसा नहीं है। प्रत्येक (द्रव्य) पलटता है। सिद्ध भी पलटते हैं। आहाहा!

सिद्ध में भी जो एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य है। स्थिति एकरूप नहीं रहती। इस कारण से पलटने में निमित्त देखकर तुझे विचक्षणता देखने में आवे, तो ऐसा है नहीं। एकरूप स्थिति नहीं, इसलिए पलटते हैं। वस्तु अपने परिणामरूप कर्म का कर्ता है, यह निश्चय सिद्धान्त है, लो। एक भी सिद्धान्त यथार्थ बैठ जाये तो उसकी दृष्टि पर के कर्तापने से उठ जाये (और) अपने परिणाम के ऊपर कर्तापने दृष्टि आवे। ऐसे विकारी परिणाम का कर्तापना आया तो मैं कौन हूँ? क्या विकारी परिणाम मेरा कर्तव्य है? मैं विकारी हूँ? मैं त्रिकाली द्रव्य अविकारी वीतरागमूर्ति हूँ। ऐसी दृष्टि जब हुई तो विकारी परिणाम का कर्ता (पना) भी छूट जाता है। समझ में आया? इस कारण से यह बात कही गयी है। चार बोल हुए। क्या चार हुए? पोपटभाई! क्या चार हुए?

मुमुक्षु : १. परिणाम कर्म है, वह तो द्रव्य का कर्म ही है। ऐसा ही चलता है।

२. परिणाम परिणामी का ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३. परिणाम कर्ता बिना होता नहीं। ४. और बदलता है उसका कारण, एकरूप स्थिति नहीं रहती, इसलिए बदलता है। निमित्त आता है तो बदलता है, (ऐसा नहीं है)। एकरूप स्थिति नहीं रहती, इसलिए बदलता है। समझ में आया? आहाहा! बहुत समय से यह चार बोल कहते हैं। यह चार बोल तो बहुत समय से चलते हैं। बहुत समय से कहते हैं व्याख्यान में। समझ में आया? अब १९वाँ कलश। इस कलश का अंक नहीं डाला।

बहिर्लुठति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयं,
तथाप्यपरवस्तुनो विशति नान्यवस्त्वन्तरम्।

'विशति' अर्थात्? प्रवेश करता है।

स्वभावनियतं यतः सकलमेव वस्त्विष्यते,
स्वभावचलनाकुलः किमिह मोहितःक्लिश्यते।।१९।।

आहाहा! गजब! आचार्यों ने बहुत संक्षिप्त में पदार्थ की व्यवस्था जैसी है, वैसी प्रसिद्ध कर दी है। यहाँ तो कहते हैं कि दुनिया का कर्ता ईश्वर तो नहीं, परन्तु तुम भी पर के कर्ता नहीं और तेरी पर्याय का कर्ता भी तू ही है। उसमें दो प्रकार है। जब तक राग के ऊपर दृष्टि है, राग का ही अस्तित्व दृष्टि में आया है, वस्तु का स्वभाव दृष्टि में आया नहीं, तब तक विकार का कर्ता तू ही है। और जब वस्तु का स्वभाव दृष्टि में आया तो वस्तु में विकार नहीं, तो विकार का कर्ता तू नहीं। नन्दकिशोरजी! ऐसी चीज़ है। आज तो तुम्हारे तेरहवाँ दिन चलता है। बीस में से तेरह। सात दिन रहे न, सात दिन रहे अब। बीस दिन की है न कक्षा (शिविर)? तेरह दिन की कक्षा तो हो गयी आज। समझ में आया? तेरह दिन हो गये, बीस दिन की कक्षा में। तेरह कहा न? तेरह।

उसका पद... पद... **ज्ञान का ज्ञेयाकाररूप परिणमन होता है, वह पर ज्ञेयरूप नहीं हो जाता।** आहाहा!

★ ★ ★

काव्य - ५०

ज्ञान का ज्ञेयाकाररूप परिणमन होता है, पर वह ज्ञेयरूप नहीं हो जाता

(सवैया इकतीसा)

ग्यानकौ सहज ज्ञेयाकार रूप परिणवै,
यद्यपि तथापि ग्यान ग्यानरूप कह्यौ है।
ज्ञेय ज्ञेयरूप यौं अनादिहीकी मरजाद,
काहू वस्तु काहूकौ सुभाव नहि गह्यौ है।।
एतेपर कोऊ मिथ्यामती कहै ज्ञेयाकार,
प्रतिभासनसौं ग्यान असुद्ध ह्वै रह्यौ है।
याही दुरबुद्धिसौं विकल भयौ डोलत है,
समुझै न धरम यौं भरम मांहि बह्यौ है।।५०।।

शब्दार्थः-ज्ञेयाकार=ज्ञेय के आकार। ज्ञेय=जानने योग्य घटपटादि पदार्थ। मरजाद (मर्यादा)=सीमा। प्रतिभासना=छाया पड़ना। मर्म (भरम)=भ्रान्ति।

अर्थः-यद्यपि ज्ञान का स्वभाव ज्ञेयाकाररूप परिणमन करने का है, तो भी ज्ञान, ज्ञान ही रहता है और ज्ञेय ज्ञेय ही रहता है। यह मर्यादा अनादि काल से चली आती है, कोई किसी के स्वभाव को ग्रहण नहीं करता अर्थात् ज्ञान ज्ञेय नहीं हो जाता और ज्ञेय ज्ञान नहीं हो जाता। इतने पर कोई मिथ्यामती-वैशेषिक आदि कहते हैं, कि ज्ञेयाकार परिणमन से ज्ञान अशुद्ध हो रहा है, सो वे इसी मूर्खता से व्याकुल हुए भटकते हैं-वस्तुस्वभाव नहीं समझे भ्रम में भूले हुए हैं।

विशेषः-वैशेषिकों का एकान्त सिद्धान्त है कि जगत के पदार्थ ज्ञान में प्रतिबिम्बित होते हैं, इससे ज्ञान अशुद्ध हो जाता है, सो जब तक अशुद्धता नहीं मिटेगी तब तक मुक्त नहीं होगा। परन्तु ऐसा नहीं है, ज्ञान स्वच्छ आरसी के समान है, उस पर पदार्थों की छाया पड़ती है सो व्यवहार से कहना पड़ता है कि अमुक रंग का पदार्थ झलकने से काँच अमुक रंग का दिखता है, पर वास्तव में छाया पड़ने से काँच में कुछ परिवर्तन नहीं होना ज्यों का त्यों बना रहता है।।५०।।

काव्य-५० पर प्रवचन

ग्यानकौ सहज ज्ञेयाकार रूप परिणवै,
यद्यपि तथापि ग्यान ग्यानरूप कह्यौ है।
ज्ञेय ज्ञेयरूप यौं अनादिहीकी मरजाद,
काहू वस्तु काहूकौ सुभाव नहि गह्यौ है।।
एतेपर कोऊ मिथ्यामती कहै ज्ञेयाकार,
प्रतिभासनसौं ग्यान असुद्ध ह्वै रह्यौ है।
याही दुरबुद्धिसौं विकल भयौ डोलत है,
समुझै न धरम यौं भरम मांहि बह्यौ है।।५०।।

राजमल्लजी की टीका में से बनाया है। राजमल्लजी की टीका है न?

क्या कहते हैं? **ग्यानकौ सहज ज्ञेयाकार रूप परिणवै,...** भगवान आत्मा का ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि जो परचीज़ जैसी है, उसरूप अपना ज्ञान अपने कारण से परिणमता है, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? शरीर को जानता है आत्मा, तो शरीर का जैसा स्वरूप है, उसरूप ज्ञान परिणमता है, अपने कारण से परिणमता है। वह ज्ञेय के कारण से नहीं। ज्ञेय है, वह ज्ञेयरूप रहकर, ज्ञान में ज्ञान का परिणमन ज्ञान के कारण से रहता है। ज्ञान का परिणमन हुआ तो ज्ञेयरूप हुआ, ऐसा नहीं। और ज्ञेय है, उसका ज्ञान होता है तो ज्ञेय ज्ञानरूप हो जाये, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ग्यानकौ सहज ज्ञेयाकार रूप परिणवै,... यह उसका स्वभाव तो परिणमना है। यह राग को जानना, शरीर को जानना, जगत को जानना, छह द्रव्य को जानना। जानना, ऐसा ज्ञान का सहज स्वभाव है। किसी का करना, पलट देना और किसी से अपने में पलटना—ऐसा कोई स्वभाव है नहीं। आहाहा! **यद्यपि तथापि ग्यान ग्यानरूप कह्यौ...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा... शरीर, वाणी आदि परपदार्थ को जानने के काल में अपना ज्ञान अपने से परिणमा है। वह ज्ञान तो ज्ञानरूप रहकर परिणमा है। यद्यपि ज्ञेयाकाररूप ज्ञान हुआ, परन्तु वह ज्ञेयाकार यहाँ आ गया और ज्ञेय के कारण से ज्ञान

परिणमा है, ऐसा नहीं। सर्वविशुद्ध लिया है न सर्वविशुद्ध ?

ज्ञान में जब चीज़ (जानने में) आती है तो चीज़ आ गयी यहाँ ज्ञान में ? ज्ञान तो ज्ञानरूप परिणमने की स्व-परप्रकाशक शक्ति के कारण से परिणमता है। स्व-परप्रकाशक शक्ति है, उस कारण से परिणमता है। होता है ज्ञान। वह ज्ञान होकर ज्ञान ज्ञानरूप ही रहा है। ज्ञान कोई ज्ञेयरूप हुआ ? निश्चय से तो राग को जानता है ज्ञान, तो ज्ञान, ज्ञान का परिणमन है, वह रागरूप नहीं हुआ। आहाहा ! समझ में आया ? कहते हैं कि समकिती करते तो हैं न ? यह सब लड़ाई करते हैं, राग, व्यापार-धन्धा करते तो हैं न ? अरे, तुझे खबर नहीं भाई ! धन्धा... ज्ञान का—जानने का धन्धा (करते हैं)। समझ में आया ? छह खण्ड के राज में समकिती देखने में आवे और ३२ वर्ष का जवान राजकुमार हो और राज पर चढ़ाई आ गयी हो, हजारों हाथी, घोड़ा लेकर जाते हैं। जाते हैं ? कहते हैं कि नहीं। गजब बात है ! पन्नालालजी ! वह पन्नालालजी करेलीवाले।

वह अज्ञानी भी खाता है और ज्ञानी भी खाता है। अज्ञानी का विवाह होता है और ज्ञानी का भी विवाह होता है, लो। तो कहते हैं, है ही नहीं, सुन तो सही ! ज्ञानी के ज्ञान के परिणमन में अपना स्वभाव का परिणमन और जो चीज़ है, उस प्रकार का परिणमन अपने कारण से ज्ञान का परिणमन हुआ है। पर का परिणमन वह करता नहीं और पर का परिणमन यहाँ आता नहीं। पोपटभाई ! कठिन काम, भाई ! ... करे सब और... अज्ञानी गरीब हो और थोड़े पैसे हों और खाने का साधन न हो और स्त्री थोड़ी हो। ज्ञानी को पूर्व का पुण्य हो तो हजारों स्त्रियाँ हों और अरबों पैसा हो और बड़ी पैसे की दुकान में गद्दी में बैठा हो। आहाहा !

यह गद्दी में नहीं, यह पर की व्यापार की क्रिया में नहीं। जैसी पर की क्रिया होती है, ऐसा ज्ञान अपने से परिणमता है, यह ज्ञान के परिणमन में है। राग-द्वेष आया। मारने का (भाव), उस द्वेष के भाव में भी नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : फिर तो बहुत पोल हो जायेगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पोल नहीं। बड़ी कठिन बात है। ठोस बात है कि ज्ञान में अपने स्वभाव का लक्ष्य किया तो ज्ञान स्व के लक्ष्य से भी अपना परिणमन हुआ और

परचीज़ है, उस प्रमाण अपने ज्ञान में जानने का परिणमन होता है। परन्तु जानने का परिणमन हुआ, इसलिए पर का कर्ता है और ज्ञान का परिणमन हुआ तो परचीज़—ज्ञेय यहाँ आ गयी है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

अज्ञानी को पचास रुपया वेतन मिलता हो और अविवाहित हो, साधारण हो और ज्ञानी को ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ सैनिक, ४८ हजार नगर, ७२ हजार पाटण। आहाहा!

मुमुक्षु : कहाँ रखता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ रखता होगा? आत्मा में रखता होगा वह? वह तो परचीज़ पररूप रही है और पररूप होकर परिणमती है, वह तो ज्ञानी जानते हैं। यह हुआ, ऐसा जानते हैं। वे पर को जानते हैं, (यह) कहना, यह भी अभी व्यवहार है। यहाँ समझाना है न? समझ में आया? सम्यग्दृष्टि तो अपनी पर्याय को ही जानते हैं। समझ में आया?

सर्वज्ञ का परिणमन हुआ, तो सर्व वस्तु है तो सर्वज्ञ का परिणमन हुआ, ऐसा है? और ज्ञेय सब पड़े हैं तो उस कारण से सर्वज्ञ का परिणमन हुआ? और सर्वज्ञ ने जाना तो ज्ञेय—लोकालोक आ गया पर्याय में? वस्तु समझना अलौकिक बात है। आहाहा! पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में ज्ञान की पर्याय हुई है। क्या पर की पर्याय आ गयी है? पर के कारण से ज्ञान परिणमन हुआ है? तो ऐसा क्यों आता है? ज्ञान किसको कहते हैं? जैसा है, वैसा जाने उसका नाम सम्यग्ज्ञान। है दूसरा और दूसरे प्रकार से जाने तो मिथ्याज्ञान है। इस प्रकार से जाने इसलिए उसे ऐसा हो जाता है कि पर के कारण से जानते हैं। अथवा ज्ञेय यहाँ आया तो यहाँ ज्ञान हुआ, झूठ बात है। आहाहा! '(कर्ता परिणामी दरव), कर्मरूप परिनाम; क्रिया पर्याय की फेरनी, वस्तु एक त्रय नाम।' (कर्ता-कर्म अधिकार में) सातवें पद में आ गया। वह तो (पद) है, उससे विशेष स्पष्टीकरण है। कर्ता-कर्म (अधिकार में) तो आ गया है। उससे भी विशेष स्पष्ट करते

हैं। सर्वविशुद्ध (अधिकार) है।

भाई! तू तो ज्ञानस्वरूप है न प्रभु! ज्ञान में स्व-परप्रकाशक जानना स्व का स्वत: स्वभाव है। उसमें जैसा ज्ञेय है, ऐसा ज्ञान हुआ, तो वह तो ज्ञान होकर रहा है या ज्ञेय (रूप) होकर ज्ञान हुआ है? ऐसा है नहीं। आहाहा! समकिती दुकान पर बैठा हो और वाणी निकले, 'ऐसा लो, दो', वह सब परिणमन ज्ञान का उसमें आता है, उस चीज़ का आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? करना कुछ नहीं और जानना सब—ऐसी बात है। करते नहीं कुछ, जाने बिना रहते नहीं कुछ। आहाहा! पहेली कठिन! लोगों को बाहर की दृष्टि हो गयी है न, बहिर्दृष्टि है न, (तो मानते हैं कि) अरे! जैसा ज्ञेय है, वैसा ज्ञान क्यों हुआ? ज्ञेय में कुछ निमित्तता है तो यहाँ नैमित्तिक ज्ञान उसरूप परिणमा। ऐसा नहीं है। समझ में आया?

यह शब्द कान में पड़ते हैं, तो शब्द तो परज्ञेय है। ज्ञान का जो अन्दर परिणमन होता है, वह कोई शब्द ज्ञेय है, उस कारण से परिणमन होता है? और ज्ञेय यहाँ घुस जाता है अन्दर? और ज्ञान ज्ञेय को छूता है? ज्ञान ज्ञेय को छूता है? ज्ञेय ज्ञान में आ जाता है? भिन्न-भिन्न अपना परिणमन है। आहाहा! ऐसी बात है। सर्वज्ञ के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। सब धर्म समान कहाँ से आये? एक ही धर्म वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : क्या करें महाराज! हम तो समझते नहीं, आप कहते हैं तो आपकी मान लेते हैं। कोई कहे तो उसकी मान लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे कैसे माने? कोई कहे कि तुम्हारे बाप को मेरे बाप ने पाँच लाख रुपये दिये तो मान लेते हो? तुम्हारे पिताजी को मेरे पिताजी ने पाँच लाख रुपये दिये थे उस भव में। हाँ कर दोगे? ऐसे किसी के कारण से नहीं मानते, उसको बैठता हो तो मानता है। पोपटभाई!

ज्ञेय ज्ञेयरूप यौं अनादिहीकी मरजाद,... आहाहा! राग आदि परपदार्थ ज्ञेय हैं, वे ज्ञेयरूप रहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञान के परिणमन में ज्ञेय का कभी स्पर्श नहीं। ज्ञेय का ज्ञान हुआ तो ज्ञेय का यहाँ स्पर्श हुआ ज्ञान में और ज्ञेय का ज्ञान हुआ तो ज्ञान ज्ञेय को स्पर्शा—छूआ—ऐसा है नहीं। ऐसी अनादि की मर्यादा,

देखो! **ज्ञेय ज्ञेयरूप यों...** छह द्रव्य, छह द्रव्यरूप रहते हैं। उसका अस्तित्व तेरी पर्याय में आता नहीं और तेरी पर्याय का अस्तित्व पर के कारण से होता नहीं। सर्वज्ञ का परिणमन हुआ तो लोकालोक है तो परिणमन हुआ? उसका अस्तित्व है तो वह (परिणमन) हुआ। समझ में आया?

बड़ी चर्चा हुई थी एक बार ८३ में। (संवत्) १९८३ के वर्ष। वीरजीभाई इस पक्ष के न? ज्ञान परिणमन अपने से होता है, छह द्रव्य से नहीं। दामोदर सेठ कहे, नहीं, ज्ञेय जितने हैं, उस प्रमाण में ज्ञान होता है, इसलिए ज्ञेय कारण है। बड़ी चर्चा हुई थी। ८३, ८३। (संवत्) १९८३। ४४ वर्ष हुए। छह द्रव्य न हो तो ज्ञान पूर्ण (कैसे) परिणमे? ज्ञान प्रमाण आत्मा, आत्मा प्रमाण ज्ञान और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण। भाई! आता है या नहीं प्रवचनसार में?

आत्मा ज्ञानप्रमाण, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण, ज्ञेय लोकालोकप्रमाण। प्रवचनसार में अधिकार है। परन्तु उसका अर्थ क्या? आहाहा! आत्मा ज्ञानप्रमाण, वह आत्मा। और ज्ञान ज्ञेयप्रमाण। जितना ज्ञेय उस प्रमाण में ज्ञान होता है। ज्ञेय लोकालोकप्रमाण। परन्तु लोकालोकप्रमाण ज्ञेय है, इसलिए यहाँ सर्वज्ञपना हुआ? ऐसा है नहीं। आहा! जहाँ व्यवहार विकल्प उठता है, व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार महाव्रत, भगवान का स्मरण, भक्ति इत्यादि। तो राग है तो राग का ज्ञान ज्ञेय के कारण से हुआ है? हुआ तो जिस प्रकार से राग है, वैसा ही ज्ञान होता है। वह तो ऐसा ही ज्ञान होता है। यह बारहवीं गाथा में आया न? '**तदात्वे प्रयोजनवान्**' 'जाना हुआ प्रयोजनवान है', ऐसा है। '**तदात्वे**'। जिस काल में राग आता है, उसे जानता है, परन्तु राग है, इसलिए जानता है? वास्तव में उस राग को जानता है? और वास्तव में वह ज्ञान का परिणमन राग को छूता है? (बिल्कुल नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

भिन्न-भिन्न तत्त्वों को एक तत्त्व मानना, वह मिथ्याभ्रम है, वही बताते हैं यहाँ। आता है न वह समयसार में? कि परज्ञेय को अपना मानना—द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, वह विकल्प मिथ्यात्व है, और ज्ञेय भेद से ज्ञान में भेद मालूम होना, वह अनन्तानुबन्धी का विकार है। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म पर है, उसे अपना मानना, वह मिथ्यात्व का संकल्प है। वह संकल्प है मिथ्यात्व का और विकल्प? समयसार में है। समझ में

आया ? कितनी गाथा में आया ? यह तो गुजराती है न ? दसवाँ कलश। यह दस।

'**आतमस्वभावं परभावभिन्नं।**' देखो, 'द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना, उसे संकल्प कहते हैं।' संकल्प अर्थात् मिथ्यात्व। 'और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद मालूम होना... ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद मालूम होना, यह विकल्प है।' यह अनन्तानुबन्धी कषाय है। ज्ञेयों का भेद होता है तो मेरे ज्ञान में भेद हो गया, (यह) भ्रम है। समझ में आया ? ज्ञानी अपना अपने कारण से उस प्रकार का परिणमन करता है, ज्ञेय के कारण से नहीं। निमित्त को उड़ा देते हैं। निमित्त से ज्ञान होता नहीं, ऐसा कहते हैं। विकल्प अनन्तानुबन्धी, संकल्प वह मिथ्यात्व।

ज्ञेय ज्ञेयरूप यौं अनादिहीकी मरजाद,
काहू वस्तु काहूकौ सुभाव नहि गह्यौ है॥

आहाहा! किसी जड़ की पर्याय का स्वभाव चेतन ग्रहे और चेतन की पर्याय का स्वभाव जड़ ग्रहे, तीन काल में मर्यादा में ऐसी बात है नहीं। आहाहा! शरीर, शरीररूप—अजीवरूप होकर रहा है तो अजीव की पर्याय को चेतन ग्रहे ? जैसी पर्याय है, उसका ज्ञानरूप परिणमन अपने से हो। पर अजीव ग्रहण में आता है और अजीव ज्ञान की पर्याय में प्रवेश करता है—ऐसा नहीं। जैसा अजीव है, वैसा ज्ञान होता है, परन्तु वह ज्ञान हुआ तो अजीव ने प्रवेश किया—ऐसा है नहीं। यह तो ज्ञान का स्व-परप्रकाशक परिणमन अपने कारण से है। आहाहा! समझ में आया ?

काहू वस्तु काहूकौ सुभाव नहि गह्यौ है॥
एतेपर कोऊ मिथ्यामती कहै ज्ञेयाकार,
प्रतिभासनसौं ग्यान असुद्ध ह्वै रह्यौ है।

आहाहा! ज्ञान में यह परद्रव्य का भास जब तक होता है, तब तक ज्ञान अशुद्ध है। परन्तु क्यों परभास होता है ? परन्तु तेरा स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, इसलिए पर भासन होता है। पर का भासन, वह अशुद्धता का कारण नहीं है। समझ में आया ? कान बन्द करो, भाई! ताँबा डाले... यह होठ है न तो छेद करके उसमें लोहे की कड़ी डाले, तो बोलना नहीं... परद्रव्य क्या नुकसान करता है कि लकड़ी डाली तूने ? समझ में आया ? वह सूरदास का आता है न ? आँखें फोड़ ली। परवस्तु है, वह ज्ञान में ज्ञात हुई,

उसमें अशुद्धता कहाँ आ गयी ? आँख का क्या दोष है ? और राग आया तो राग का क्या दोष है ? राग आया तो ऐसा जानने का परिणमन होता है ज्ञान में। परन्तु जिसकी दृष्टि पर के ऊपर है... ऐसी चीज़ सुनने से हमें राग होता है, ऐसी सुनने से हमें द्वेष होता है, यह बात ही झूठी है। समझ में आया ?

भड़ककर भागे झट। क्या है ? जैसी चीज़ है, ऐसा जानना, वह तो तेरी ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। स्वभाव में वह चीज़ आ गयी है ? उसको जानना अशुद्धता है ? जानना, वह तो स्व-परप्रकाशक की शुद्धता है। आहा! समझ में आया ? ऐसे ज्ञानरूप आत्मा और ज्ञेय ज्ञेयरूप रहकर, ज्ञेय का ज्ञान ज्ञान के कारण से अपने में होता है। ऐसा होने पर भी, **मिथ्यामती कहै ज्ञेयाकार, प्रतिभासनसौं ग्यान असुद्ध ह्वै रह्यौ है।** अरेरे! हमारे ज्ञान में यह दूसरी चीज़ जानने में क्यों आयी ? अपना आत्मा ही क्यों जानने में नहीं आया ? अब सुन तो सही! तेरे आत्मा में परसम्बन्धी की ज्ञानपर्याय, वह भी तेरी है। उस पर्याय का तू जाननेवाला है, पर को जाननेवाला नहीं। आहाहा!

प्रतिभासनसौं ग्यान असुद्ध ह्वै रह्यौ है, याही दुरबुद्धिसौं... देखो, ज्ञेय और ज्ञान की भिन्नता। जैसा ज्ञेय है, ऐसा ही ज्ञान होता है। इतने पर भी ज्ञेय के कारण से ज्ञान ऐसा होता है—ऐसा नहीं है। वह बताते हैं। आहाहा! अल्पज्ञ में अल्पज्ञानपने, सर्वज्ञ में सर्वज्ञानपने। लोकालोक दिखता है तो लोकालोक जानने में आया तो अशुद्धता है ? यह तो ज्ञान का सर्वज्ञपने परिणमना, यह आत्मज्ञान का स्वभाव है, अपना ज्ञान का स्वभाव है। स्व-परपने परिणमना, वह अपना निज स्वभाव है, पर के कारण से है नहीं। **याही दुरबुद्धिसौं विकल भयौ डोलत है,...** आहाहा! **मूर्खता से व्याकुल हुए भटकते हैं...** वस्तुस्वभाव को नहीं समझते, भ्रम में भूले हैं। विशेष कहा है।

विशेष : **वैशेषिको का एकान्त सिद्धान्त है कि जगत के पदार्थ ज्ञान में प्रतिबिम्बित होते हैं।** प्रतिबिम्बित ही नहीं होते हैं। प्रतिबिम्ब कहाँ हुआ ? वह तो ज्ञान ही अपने में ऐसा परिणमन करता है। पर का—जड़ का प्रतिबिम्ब होता है आत्मा में ? दर्पण में जो अग्नि और जल देखने में आता है, वह अग्नि और जल है ? बाहर तो अग्नि, जल है। अन्दर में ऐसा दिखेगा, ऐसी लौ अग्नि की। वह अग्नि है ? वह तो दर्पण की पर्याय है। हाथ लगाओ तो उष्णता होती है ? इसी प्रकार लोकालोक तो लोकालोक ही है। ज्ञान

(रूप) दर्पण में जानने में आता है। (वह) परचीज़ जानने में आती है? वह तो अपनी पर्याय जानने में आती है। समझ में आया? **समुझै न धरम यौं भरम मांहि बह्यौ है। सो जबतक अशुद्धता नहीं मिटेगी तब तक मुक्त नहीं होगा।** आहाहा!

ज्ञान में जब तक पर का जानना रहता है, तब तक मलिनता रहती है, ऐसा कहते हैं। यह पर का जानना छूट जाये तो शुद्ध हो जाता है, ऐसा अज्ञानी मानता है। पर का जानना छूटे कहाँ से? स्व और पर का जानना तो अपना निज स्वभाव है। अपना स्वभाव है, पर के कारण से नहीं। विषय बड़ा है, इसलिए जानते हैं, ऐसा नहीं। अपना ज्ञान का परिणमन ऐसा है। समझ में आया? ज्ञान का ही सामर्थ्य है। मतिपने परिणमना, श्रुतपने परिणमना, अवधि, मन:पर्यय, केवल(पने परिणमना)—यह अपना ज्ञान का सामर्थ्य है। पर के कारण है, ऐसा है नहीं। अभिनन्दे, आया न? यह तो अभेद होता है, उस अपेक्षा से अभिनन्दे। उसका पाँच (प्रकार) का सामर्थ्य, पाँच प्रकार से सामर्थ्य तो अपने से है। पर के कारण से है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात लगे।

जैसा राग हो, ऐसा ही यहाँ ज्ञान होता है। ऐसा ही ज्ञान होता है तो कुछ मलिनता आती है या नहीं? क्या आये? यह ज्ञान का स्वभाव है। जैसा राग है, ऐसा ही जाने। विषय की वासना का राग आया तो उसको ज्ञान जाने। ज्ञान जाने (वह) वासना के कारण से नहीं। अपने ज्ञान के स्व-परप्रकाशक के कारण से जाने। जाने, इसलिए ज्ञान मलिन हो गया? कहते हैं न, कुछ याद आता है तो थप्पड़ मारते हैं। ऐसी कोई बात (याद) आ जाये... थप्पड़ में क्या है? ऐसी मूर्खाई करते हैं न कितने ही? यह बेचारा माने अज्ञान से। यह अज्ञान है। ज्ञान में जानने में आया, इसलिए मलिनता कहाँ आ गयी? मैं मलिन हो गया। ऐसी बात सुनी तो मलिन हो गया। अरे, मलिन नहीं, सुन तो सही! तेरे ज्ञान के परिणमन में, मलिनता का परिणमन जैसा है, वैसा जानने में आ गया। ज्ञान में मलिनता आ गयी? नहीं। है तो स्वच्छन्दता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की भी नहीं। मलिनता का ज्ञान है, वह अपने में आया है, अपने कारण से, मलिनता के कारण से नहीं।

बारहवीं गाथा में कहा न, '**तदात्वे**'—जाना हुआ प्रयोजनवान है। समकिती को

चौथे गुणस्थान से जहाँ-जहाँ जिस समय में राग-द्वेष आदि आया, उस समय में उसको जाननेवाला आत्मा, इतना प्रयोजन है। जानता है, बस। सर्वज्ञ सर्व को जानते हैं। अल्पज्ञ जैसी अल्पज्ञता की सामर्थ्य खिली है, उस प्रमाण में जानते हैं। मलिनता जानी तो आत्मा मलिन आत्मा हो जाता है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? यह श्रद्धा में अन्तर है। ज्ञान का स्वभाव उसको प्रतीति में आया (नहीं)। गुण का स्वभाव ऐसा प्रतीति में नहीं आया। ज्ञानगुण का स्वभाव तो स्व-परप्रकाशमान है। आता है, पहले आ गया। 'ज्ञेय शक्ति द्विविधा प्रकाशी, स्वरूपा पररूपा भासी।' समझ में आया? 'ज्ञानी मगन विषय सुख मांही, यह विपरीत संभवे नाहीं। ज्ञेयशक्ति द्विविध प्रकाशी। स्व पर प्रकाशक दो रूप प्रकाशी। स्वज्ञेय और परज्ञेय। यह तो स्व-पर ज्ञेय है, पर ज्ञान में स्व-परपने का ज्ञान हुआ तो अपने से हुआ है, ज्ञेय के कारण से हुआ नहीं। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १३०, श्रावण कृष्ण ३, सोमवार, दिनांक ०९-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-५१ से ५३

(समयसार) नाटक। सर्वविशुद्ध अधिकार। पद ५१ है। २० कलश है।

वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत्।
निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य कः किं करोति हि बहिर्लुठन्नपि।।२०।।

जगत के पदार्थ परस्पर अव्यापक है,... वह कहते हैं। कोई भी पदार्थ, परपदार्थ की पर्याय में व्यापते नहीं, प्रवेश करते नहीं, पर को अपनेरूप बना सकते नहीं और पररूप अपना परिणाम होते नहीं। यह बात कहते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ५१

जगत के पदार्थ परस्पर अव्यापक हैं

(चौपाई)

सकल वस्तु जगमैं असहाई।
वस्तु वस्तुसौं मिलै न काई।।
जीव वस्तु जानै जग जेती।
सोऊ भिन्न रहै सब सेती।।५१।।

शब्दार्थः-असहाई=स्वाधीन। जेती=जितनी।

अर्थः-निश्चयनय से जगत में सब पदार्थ स्वाधीन हैं, कोई किसी की अपेक्षा नहीं करते और न कोई पदार्थ किसी पदार्थ से मिलता है। जीवात्मा जगत के जितने पदार्थ हैं, उन्हें जानता है, पर वे सब उससे भिन्न रहते हैं।

भावार्थः-व्यवहारनय से जगत के द्रव्य एक-दूसरे से मिलते हैं, एक-दूसरे में प्रवेश करते और एक-दूसरे को अवकाश देते हैं, पर निश्चयनय से सब निजाश्रित हैं, कोई किसी से नहीं मिलते हैं। जीव के पूर्ण ज्ञान में वे सब और अपूर्ण ज्ञान में

यथासम्भव जगत के पदार्थ प्रतिभासित होते हैं, पर ज्ञान उनसे मिलता नहीं है और न वे पदार्थ ज्ञान से मिलते हैं।।५१।।

काव्य-५१ पर प्रवचन

सकल वस्तु जगमैं असहाई।
वस्तु वस्तुसौं मिलै न काई।।
जीव वस्तु जानै जग जेती।
सोऊ भिन्न रहै सब सेती।।५१।।

सकल वस्तु जगमैं असहाई... निश्चय से जगत में जितने पदार्थ हैं, सब अपने स्वाधीन हैं। समझ में आया? जीव विकार करे तो भी वह स्वाधीन है, कर्म के आधीन हो तो भी स्वाधीन से आधीन होता है। समझ में आया? स्वाधीन से पराधीन होता है? पराधीन—पर के आधीन होने में स्वाधीनपने पर के आधीन होता है। परन्तु कोई पराधीन कर दे, ऐसी चीज़ नहीं है। **सकल वस्तु जगमैं असहाई...** एक-एक परमाणु और एक-एक आत्मा... निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव का कार्मणशरीर प्रत्येक का भिन्न-भिन्न और उसका—कार्मण (शरीर) का एक-एक स्कन्ध, उसमें एक-एक परमाणु भिन्न-भिन्न। कोई परमाणु किसी परमाणु को परिणमा सके अथवा पर से कोई परमाणु अपने में परिणमन कर सके, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया?

इसी प्रकार आत्मा... यहाँ तो विकार सहित की बात है। समझ में आया? **सकल वस्तु...** बाकी कौनसी रही? **असहाई...** किसी की चीज़ सहाय है नहीं। तो सिद्ध को यहाँ (लोकाकाश में) रहना पड़ता है, इतनी तो पराधीनता है या नहीं? सिद्ध को इतनी है, बस। धर्मास्तिकाय ऊपर नहीं है तो (बाहर) न जा सके, इतनी तो पराधीनता है या नहीं? नन्दकिशोरजी! नहीं? यह अपनी पर्याय का स्वाधीनपने, उसी स्थान में रहने की योग्यता का कर्ता स्वतन्त्रयप से है। वह कहते हैं, किसी निमित्त से उसको कुछ हो जाये अन्दर पराधीनता... स्वयं द्रव्य, पर को निमित्त बनकर, पर को पराधीन कर दे,

ऐसी चीज़ जगत में है नहीं। आहाहा!

वस्तु वस्तुसौं मिलै न काई... कोई चीज़ किसी चीज़ में कभी कुछ भी मिलान होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दूध में तो शक्कर डालते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्कर शक्कर के परमाणु में रही, दूध दूध के परमाणु में रहा। समझ में आया? एक-एक परमाणु अपनी पर्याय स्वतन्त्ररूप से करता है। देखो, यहाँ अँगुली है, देखो अँगुली। उसमें जो परमाणु है, वे बाहर जब भिन्न थे, तब सूक्ष्म थे और इसमें आये तो स्थूल हो गये हैं। वह स्कन्ध की पराधीनता से स्थूल हो गये। अकेला स्थूल नहीं था, ऐसा नहीं? ऐसी बात बाहर से आयी थी। देखो, एक परमाणु पृथक् है तो सूक्ष्म है। यहाँ परमाणु सूक्ष्म रहा? स्थूल हो गया? किसके कारण से? नन्दकिशोरजी! नहीं, स्थूल है। स्थूल हुआ है। पर्याय स्थूल हुई है। सूक्ष्म बात है। यह बात बहुत आयी थी वहाँ उत्तर खण्ड में से।

देखो, स्कन्ध में परमाणु आता है तो स्थूलरूप हो जाता है, वह स्थूल स्कन्ध के निमित्त के असर से होता है नहीं? और एक परमाणु में दो गुण स्निग्ध हो और दूसरे परमाणु में चार गुण स्निग्ध हो तो दोनों मिलकर यों एक परमाणु में दो गुण का चार गुण (रूप) होना पड़े? क्योंकि यहाँ चार गुण है तो चार गुण (रूप) परिणमन होगा, दो गुण (रूप) नहीं रह सकेगा। समझ में आया? आहाहा! द्रव्यानुयोग का तत्त्व स्वतन्त्र, स्वाधीन है। एक परमाणु पृथक् हो तो भी अपने से है। यहाँ आया और स्थूल हुआ है। सूक्ष्मरूप रहा नहीं। क्योंकि यदि एक सूक्ष्म रहे तो दूसरा (भी) सूक्ष्म (रहे), तीसरा सूक्ष्म (रहे), तो स्थूल किसकी पर्याय है? समझ में आया? एक-एक रजकण की पर्याय स्थूल हुई है यहाँ। परन्तु यह अपने कारण से अपने स्वकाल के परिणमन के कारण हुआ है। गजब बात! समझ में आया? स्कन्ध का मिलाप हुआ तो स्थूल हुआ? कि, नहीं; वस्तु असहायी है। अमरचन्दभाई!

परन्तु यह नजर से दिखता है न (कि) परमाणु स्थूल हुआ। अकेला पड़ जाये तो सूक्ष्म हो जाये। परन्तु निमित्त में स्थूल है तो उसको स्थूल परिणमना पड़ता है, ऐसा

है ही नहीं। स्थूल है सही। स्कन्ध स्थूल है, परन्तु यह स्थूल की पर्याय अपने से हुई है। स्थूल स्कन्ध का निमित्त है तो हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमाणु का कहा न यह! दो दृष्टान्त आये थे न पहले। परमाणु अपनी पर्याय से रहा है। स्कन्ध में भी परमाणु अपने स्वचतुष्टय में है। क्या कहा? स्कन्ध में परमाणु आया तो भी परमाणु अपने स्वचतुष्टय में है। अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में है, पर के कारण से नहीं। यह परमाणु में स्थूल होने की पर्याय की स्वकाल की योग्यता थी, तो अपने से स्थूल हुआ है। पृथक् पड़ जायेगा तो स्थूल नहीं रहेगा। यह भी अपनी पर्याय की योग्यता जब सूक्ष्म होने की थी तो पृथक् पड़ गया। समझ में आया?

स्कन्ध में भी प्रत्येक परमाणु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से स्वाधीनपने अन्दर रहा है, पराधीनपने नहीं। इसी प्रकार आत्मा अनन्त कर्म की कार्मणवर्गणा के मध्य में पड़ा है, तो वह पराधीन है और कर्म पराधीन करते हैं, (ऐसा है नहीं)। जैसा कर्म का उदय आये, ऐसा यहाँ परिणमन करना पड़ेगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **वस्तु वस्तुसौं मिलै न काई...** यह अनादि की मर्यादा है। **जीव वस्तु जानै जग जेती...** अब दृष्टान्त कहते हैं। कहा, भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी है (तो) सबको जाने। परन्तु सबरूप होता है और जाने—ऐसा नहीं है। अपने में रहकर सबको जानता है, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। सबको जानता है तो ज्ञेयरूप ज्ञान हो गया अथवा ज्ञान ने ज्ञेयरूप परिणमन कर दिया, (ऐसा नहीं है)। ज्ञान में जगत जानने में आता है तो ज्ञान की पर्याय जगत—ज्ञेयरूप हुई, ऐसा है? और ज्ञेयपर्याय ज्ञान में जानने में आती है तो ज्ञेयपर्याय ज्ञानरूप हुई है? समझ में आया? आहाहा!

ऐसी चीज़ स्वतन्त्र... स्वतन्त्र... स्वतन्त्र। **सोऊ भिन्न रहै सब सेती।** देखो। एक-एक आत्मा और एक-एक परमाणु—प्रत्येक परमाणु, अपने अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में भिन्न रहता है। किसी के साथ (रहता है, ऐसा) व्यवहार से कहा जाता है। कहो, पोपटभाई! लड़के और सब स्त्रियाँ और सब ऐसे रहते होंगे? लड़का कहाँ था? वह तो अनन्त परमाणुओं का पिण्ड शरीर है। आत्मा स्वचतुष्टय में अन्दर में रहता है। कर्म के कारण रहता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? उपयोग के अधिकार में आया है न? बहुत बात की है। कोई एक वस्तु, (दूसरी) एक वस्तु के आधार से नहीं। अत्यन्त

भिन्न है। आधार-आधेय नहीं। आहाहा! वहाँ तो वहाँ तक कह दिया है। यहाँ तो विकार अपने में अपने से है, ऐसा सिद्ध करना है। वहाँ तो कहते हैं कि विकार का (और) वस्तु का क्षेत्र भिन्न है (समयसार गाथा १८१ से १८३)। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो पर से भिन्न स्वतन्त्रता सिद्ध करनी है। स्वतन्त्रता सिद्ध करने के पश्चात् राग का क्षेत्र और राग का भाव स्वभावपने हुआ ही नहीं। स्वभाव रागरूप हुआ ही नहीं। समझ में आया? जैसे ज्ञान ज्ञेय को जाने, फिर भी ज्ञानरूप रहकर जानता है, ज्ञेयरूप होकर ज्ञान जानता है, ऐसा है नहीं। ऐसे अन्तर से भिन्न जब (करना) है, तब राग का आधार आत्मा, ऐसा है नहीं और स्वभाव का आधार राग, ऐसा है नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो है, उसका आधार-आधेय भिन्न है। अपना भगवान स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उसका आधार-आधेय... राग के बिना उसका आधार-आधेय भिन्न है। ऐसा स्वरूप है, मूलचन्दभाई! मूलचन्दभाई कहे, पूरी जिन्दगी गयी, ... यह भी याद नहीं किया।

प्रत्येक पदार्थ अपने में अन्तर समेटकर (अर्थात्) पर से भिन्न होकर... 'समेटकर' शब्द क्या है? अपने में समेटकर पर से भिन्न रहता है। अपनी पर्याय पर का स्पर्श करती है, (ऐसा) तीन काल में नहीं। आहाहा! समझ में आया? तीसरी गाथा में आया है शुरुआत में। प्रत्येक द्रव्य अपने अनन्त धर्म अर्थात् गुण-पर्याय को छूता है, चूमता है। समझ में आया? प्रत्येक पदार्थ अपने धर्म और गुण की पर्याय को चूमता है, ऐसे अनन्त धर्म को चूमता होने पर भी, पर को तो चूमता है ही नहीं। तीसरी गाथा है। (समयसार)

एयन्तणिच्छयगदो समओ सावत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयते तेहा विसंवादिणी होदि॥३॥

आहाहा! समझ में आया? कहो, पण्डितजी! क्या है यह? यह कहते हैं, कर्म के कारण से आत्मा में विकार होता है, कर्म के कारण से रुलना पड़ता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो जैन को लागू पड़ता है, दूसरों को लागू पड़ता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्य को ईश्वर भटकावे, वह चेतन है। उसको (जैन को) जड़ भटकावे, (तो) वह जड़ उसका स्वामी हो गया। आहाहा! समझ में आया? जैन

का जड़ स्वामी। जड़ के कारण से आत्मा में विकार होता है और उसके कारण से रुलना होता है। (संवत्) २००६ के वर्ष में हुआ। पालीताणा गये थे न यात्रा। २००६ के वर्ष। २१ वर्ष हुए। वहाँ श्वेताम्बर साधु था। हमारी चर्चा तो चलती थी... सभा बड़ी थी। नाम तो (बड़ा था न)। बड़े-बड़े गाँव के लोग सब वहाँ थे। दूसरा साधु गाँव में, उसने कहा, नहीं, कर्म से आत्मा को रुलना पड़ता है, ऐसा सिद्ध करो। अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते हैं।

गोम्मटसार में आता है, 'भावकलंक पउरा' यह क्या हुआ? यह कर्म के कारण से है? 'भावकलंक पउरा' ऐसा शब्द है गोम्मटसार में है। जीव निगोद में क्यों रहता है? कर्म से रहता है? वह तो असंज्ञी है—मनरहित है, (इसलिए) उसको तो कर्म रुलावे। क्षयोपशम होकर जब संज्ञी हो, तब तो स्वाधीन हो। ऐ नन्दकिशोरजी! क्योंकि उसको (असंज्ञी को) बुद्धि नहीं, मन नहीं, वाणी नहीं। बुद्धि, वाणी का क्या काम है? अपना आत्मा अपने से निगोद में रहते भी कर्म के कारण से रहा है, ऐसी बात तीन काल में नहीं है। 'भावकलंक पउरा' ऐसा गोम्मटसार में पाठ है। जिसमें ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुका, ऐसा कहा, उसमें यह पाठ है। समझ में आया? भगवान! तेरे भाव में कलंक की प्रचुरता तेरे कारण से है। उस कारण से तुझे निगोद में रहना पड़ा है। कर्म के कारण से रहना पड़ा है, ऐसा है नहीं।

सोऊ भिन्न रहै सब सेती। किसी चीज़ के साथ (सम्बन्ध नहीं)। तीन काल में अपनी मर्यादा अपने क्षेत्र में है। वह पर में प्रवेश करे और पर को अपना बना दे और अपना स्वरूप पररूप बना दे—ऐसी चीज़ तीन काल में है नहीं। समझ में आया? अन्दर स्पष्टीकरण है। थोड़ा फेरफार किया है नीचे। **व्यवहारनय से जगत के द्रव्य एक-दूसरे से मिलते हैं।** मिलते हैं क्या, कहने में आता है। समझ में आया? **एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं।** प्रवेश क्या करे, ऐसा कहने में आता है। दूध में शक्कर डाल दी, पानी में शक्कर डाल दी, (तो) एकमेक हो गये? कोई एक होता नहीं तीन काल में। अनन्त-अनन्त परमाणु प्रत्येक अपनी अनन्तता पृथक् रखकर परिणमता है। अनन्त पदार्थ अपनी पृथक्ता रखकर परिणमता है। एक होकर परिणमता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है! पदमचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो बहुत गहरी बात निकली।

पूज्य गुरुदेवश्री : गहरी नहीं, यह तो (वस्तु की) स्थिति ऐसी है। यह तो बहुत सरल है। समझ में आया?

हम तो (संवत्) १९७१ के वर्ष से यह कहते हैं। ७१। ५६ वर्ष हुए। सम्प्रदाय में कहा था। खलबलाहट हो गयी थी थोड़ी। ५६ वर्ष (हुए)। कर्म है तो आत्मा में विकार (होता) है, ऐसी बात बिल्कुल है नहीं। परद्रव्य है तो स्वद्रव्य की पर्याय विकार है, ऐसा कौन कहता है? समझ में आया? उसका सत् है तो यह सत् है? अजीव का सत् है तो जीव का सत् है? और जीव का सत् है तो अजीव का सत् है? कर्म का सत् है तो विकार का सत् है? सागर में चला था उस समय। कोई था न, कोई पण्डित था। मुन्नालालजी थे। .... यह (बात) बराबर नहीं बैठती थी, फिर अब बैठी। वही मुन्नालाल न? ..... यह 'धर्म की भूल'। धर्म की भूल। वह पुस्तक है या नहीं? जिसके पास न हो तो ले लेना। 'धर्म की भूल'। एक छोटी पुस्तक है। मुन्नालालजी ने बनायी है। जिसके पास न हो, ले लेना। स्वाध्यायमन्दिर में रखी है। समझ में आया? और जिसके पास वह 'हित की बात' पुस्तक न हो, वह भी ले लेना। दोनों भेंट है। समझ में आया? भाई तो गये। आहाहा! 'हित की बात' और 'धर्म की भूल' ऐसी दो पुस्तकें हैं। ....

कहते हैं, एक-दूसरे से.... **निश्चयनय से सब निजाश्रित हैं, कोई किसी से नहीं मिलते हैं। जीव के पूर्ण ज्ञान में वे सब और अपूर्ण ज्ञान में यथासम्भव... पूर्णज्ञान में वे सब और अपूर्ण ज्ञान में यथासम्भव जगत के पदार्थ प्रतिभासित होते हैं।** अल्पज्ञान में यथासम्भव, पूर्ण ज्ञान में सर्व। परन्तु वह ज्ञान का परिणमन ज्ञेय के कारण से हुआ और ज्ञेय को ज्ञान ने परिणमा दिया—ऐसा है नहीं। ज्ञान अपने से परिणमा है। आहाहा! लोकालोक है तो ज्ञान परिणमा है लोकालोक को जाननेरूप, ऐसा है नहीं। यह कर्म और क्षयोपशम तो कहीं रह गये। क्षयोपशम क्या कहते हैं? यथासम्भव जगत के पदार्थ ज्ञान में भासित हों। भासित होने से क्या ज्ञान ज्ञेयरूप हो गया? ज्ञेय ज्ञानरूप परिणम गया? अपनी सत्ता खो बैठते हैं? ऐसा है नहीं।

अरे! जीव और अजीव ऐसा भिन्न तत्त्व। अजीव में भी अनन्त और जीव में भी अनन्त, वह भी भिन्न-भिन्न तत्त्व। आहाहा! किसकी माता? किसका पिता? किसका

लड़का? किसकी लड़की? भिन्न-भिन्न चीज़ है, ऐसा कहते हैं। बोलने में आता है (कि) उसका लड़का। किसका लड़का? वह तो (भिन्न) द्रव्य है। सारी चीज़ बोलने की व्यवहार की पद्धति है। कहते हैं न? व्यवहार से बोलने में आता है। यह हमारा मकान, यह हमारा पैसा, यह हमारी स्त्री, यह हमारा पुत्र। धूल में भी नहीं है कहीं। ऐ मणिभाई! जहाँ (रहते हैं), वहाँ मिठास अधिक रहती है या नहीं? मुम्बई में। लड़के आने दे नहीं, (ऐसा नहीं, परन्तु) स्वयं को मिठास अधिक रहती है वहाँ। यहाँ खीमचन्दभाई के घर कहलाये न.... वहाँ स्वतन्त्र घर कहलाये।

ज्ञान उनसे मिलता नहीं। अल्पज्ञान में यथासम्भव ज्ञेय का ज्ञान हो और पूर्ण ज्ञान में पूर्ण ज्ञान हो, परन्तु ज्ञान ज्ञेयरूप कभी होता नहीं और ज्ञेय ज्ञानरूप कभी होता नहीं। आहाहा! वह तो पर से भिन्न स्वतन्त्र द्रव्य सिद्ध किया। अब, अन्तर में भिन्न सिद्ध करना हो तो व्यवहाररत्नत्रय का जो राग है, जिसको साधन कहा, जिसको कारण कहा, जिसको हेतु कहा, जिस साधन से निश्चय साध्य होता है, ऐसा कहा, उस रागरूप भी ज्ञान और ज्ञायक परिणमन करता नहीं। वह ज्ञेय हुआ। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान में व्यवहार राग का ज्ञान परिणमता है, परन्तु उस ज्ञेय के कारण से नहीं। अपने कारण से राग का ज्ञान अपने कारण से अपने में परिणमता है। समझ में आया?

व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उस समय में जाननेयोग्य है, ऐसा कहा तो उसका अर्थ? अपने ज्ञानरूप परिणमन में व्यवहार है, ऐसा ज्ञान आता है। यह ज्ञान है तो अपना, राग का नहीं। समझ में आया? शुभराग, व्यवहार शुभराग का भी यहाँ ज्ञान परिणमता है, वह अपने से है। तो राग से शुद्धि (की) वृद्धि होती है, राग से शुद्धि होती है, ऐसा तो कहाँ रहा? समझ में आया? राग—शुभ क्रियाकाण्ड का परिणमन (रूप) राग—उसका ज्ञानरूप परिणमन अपने में होता है, अपने से अपने कारण से अपनी सत्ता के सामर्थ्य से (होता है)। परन्तु ऐसा होने पर भी राग को ज्ञेयरूप रखते हैं। राग ज्ञानरूप कभी हुआ नहीं और ज्ञान का परिणमन रागरूप कभी हुआ नहीं। साधक में ऐसा होता नहीं। आहाहा! अब यहाँ तो कहे, व्यवहार साधन है, निश्चय साध्य है। भाई! यह तो व्यवहार का कथन किया। जैसा यहाँ कहा न, व्यवहारनय से एक द्रव्य (दूसरे) द्रव्य से मिलता है, दूसरे में प्रवेश करता है, यह तो कथनमात्र है। झूठी दृष्टि से

कहने में आता है। आहाहा! ५१ (पद) हुआ। ओहो! २१ कलश नीचे है।

यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किञ्चनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात्।।२१।।

कर्म करना और फल भोगना यह जीव का निज स्वरूप नहीं है। कर्म बाँधना, कर्म का अनुभव करना, कर्म के अनुभाग का अनुभव करना, कर्म के विपाक का अनुभव करना—यह आत्मा का स्वरूप नहीं। शास्त्र में तो ऐसा है, कर्म का अनुभाग—फलदान शक्ति है। फल किसको दे? अपने को? पर को दे न? अपने को देता है, पर को क्या देता है फल? अपनी पर्याय में फलदान है। जो अनुभाग शक्ति है, वह तो अपनी पर्याय का परिणमन है। आत्मा को क्या दिया उसने? भाषा ऐसी है। फलदान शक्ति कर्म में है तो फल भोगना पड़ेगा। ऐसा है ही नहीं।

★ ★ ★

काव्य - ५२

कर्म करना और फल भोगना यह जीव का निज-स्वरूप नहीं है

(दोहा)

करम करै फल भोगवै, जीव अग्यानी कोइ।
यह कथनी विवहारकी, वस्तु स्वरूप न होइ।।५२।।

शब्दार्थ:-कथनी=चरचा। वस्तु=पदार्थ।

अर्थ:-अज्ञानी जीव कर्म करते हैं और उनका फल भोगते हैं, यह कथन व्यवहारनय का है, पदार्थ का निजस्वरूप नहीं है।।५२।।

काव्य-५२ पर प्रवचन

करम करै फल भोगवै, जीव अग्यानी कोइ।
यह कथनी विवहारकी, वस्तु स्वरूप न होइ।।५२।।

अज्ञानी जीव कर्म करते हैं और उनका फल भोगते हैं, यह कथन व्यवहारनय का है। निमित्त का ज्ञान कराने को यह कथन है। आहाहा! भगवान आत्मा कर्म कैसे बाँधे? जिस परमाणु में कर्म होने की योग्यता है, वह कर्मरूप परिणमते हैं। आहाहा! समझ में आया? राग हुआ तो परमाणु को कर्मरूप परिमना पड़ा, ऐसा है ही नहीं—ऐसा कहते हैं। यहाँ विकार हुआ तो परमाणु को कर्मरूप परिणमना पड़ा, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....क्यों होता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता नहीं। वह तो भिन्न-भिन्न है। काल भिन्न-भिन्न है, स्थिति एकरूप होती नहीं। कल आया था न? वस्तु की स्थिति एक नहीं। समझ में आया? कल आये थे न चार बोल?

(१) परिणाम—कर्म निश्चय से परिणामी का है।

(२) उस परिणाम का आश्रय—आधार परिणामी है। आहाहा!

(३) कर्ता के बिना कर्म होता नहीं।

(४) एकरूप स्थिति पर्याय की होती नहीं।

मूल वास्तविक तत्त्व का बोध विपरीत हो गया। इसलिए उसकी यथार्थता क्या है, यह उसके ख्याल में आती नहीं। नहीं, नहीं, कथंचित् पराधीन कहो सिद्ध को। धर्मास्तिकाय नहीं है, (इसलिए आगे) नहीं जाते हैं। इसलिए कथंचित् स्वतन्त्र (कहो), कथंचित् शक्ति है वह अनेकान्त है। ऐसा आता है पत्र में।

मुमुक्षु : भगवान भले लोक में और लोक में रहते हैं, परन्तु यहाँ कहाँ आते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : (लोकाकाश के) ऊपर नहीं जा सकते, इसलिए पराधीन हैं, यह बात झूठ है। आहाहा! यह प्रश्न पहले से चला है यहाँ। पहली बार आये थे न सेठ हुकमीचन्दजी? उनके साथ वह जीवन्धरजी थे न? (संवत्) २००१ के वर्ष की बात है। २६ वर्ष हुए। वह प्रश्न चलता था....

सिद्ध (लोकाकाश के) ऊपर नहीं जा सकते (क्योंकि) धर्मास्तिकाय नहीं है इसलिए। यह प्रश्न हुआ था। किसी द्रव्य की पर्याय की मर्यादा किसी द्रव्य को रोक दे, ऐसा तीन काल में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? .... पहले तो कहा था। अपने

कारण से ऊर्ध्व जाते हैं, बस वह निश्चय। पश्चात् कहा, धर्मास्तिकाय अभाव? उपादान-निमित्त का ज्ञान कराया। क्या हो? २००१ के वर्ष में झगड़ा हुआ था। ऐसे का ऐसा झगड़ा।

यहाँ तो कहते हैं, अज्ञानी कर्म करे और अज्ञानी कर्मफल को भोगे, (यह) व्यवहार का कथन है। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। **वस्तु स्वरूप न होइ**। तब है क्या? आत्मा अपने विकार को करे और विकार को अपने में अपने कारण से भोगे। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। समझ में आया? और जब विकारदृष्टि छूट गयी और स्वभावदृष्टि हुई। 'मैं तो ज्ञायक हूँ चिदानन्द'—ऐसी दृष्टि—सम्यग्दर्शन हुआ, (तो) राग का कर्ता है नहीं। राग ज्ञान का ज्ञेय हो गया। परन्तु वह ज्ञेय है तो ज्ञान का कार्य हुआ, ऐसा है नहीं। ज्ञानकार्य में वह आनेवाला था तो राग (को) आना पड़ा उस प्रकार से, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? व्यवहार से कथन आता है। कुम्हार ने घड़ा बनाया, लो। क्या किया कुम्हार ने?

मुमुक्षु : कुम्हार न बनाये तो वकील बनाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : रामजीभाई बनाये क्या? ऐसा कहते हैं। रामजीभाई बोले भी नहीं, रामजीभाई घड़ा बनाये भी नहीं। सेठ! आहाहा!

प्रत्येक पदार्थ का उसका स्वकाल है, उस समय उसका कार्य पर्याय में होता है स्वाधीनपने। आहाहा! विकार का भी बहुत प्रश्न पहले उठा था न, (संवत्) २०१३ के वर्ष में। पर चाहिए, विकार के (लिये) पर चाहिए। यहाँ कहते हैं, अपने में—एक समय की पर्याय में—विकार होने में षट्कारकरूप परिणमन स्वाधीनपने होता है। अपने द्रव्य के कारण से नहीं, गुण के कारण से नहीं, निमित्त के कारण से नहीं। वहाँ बहुत चर्चा चली थी। क्या कहलाता है? मधुवन। एक थे (पण्डित) फूलचन्दजी। स्वामीजी कहते हैं, निश्चय से विकार व्यवहार की अपेक्षा रखे बिना अपने से होता है। खलबलाहट... खलबलाहट हो गयी। माना था, कर्म से विकार हो। द्रव्यकर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्म, सुना नहीं है? द्रव्यकर्म से भावकर्म होता है और भावकर्म से द्रव्यकर्म होता है। यह तो अज्ञानी का निमित्त का कथन है। आहाहा!

द्रव्यकर्म की पर्याय (पुद्गल द्रव्य-कर्म) द्रव्य में होती है। उसमें भावकर्म कहाँ से आया? उसमें—कर्म में भी भावकर्म है। अनुभाग पड़ा है, उसकी पर्याय आयी, वह उसका भावकर्म है। वहाँ राग का भावकर्म, कर्म करावे, ऐसा है नहीं। समझ में आया? यह प्रश्न भी बहुत चला था (संवत्) १९८२ के वर्ष में। दामनगर। ब्यावर की पाठशाला है बड़ी स्थानकवासी। उन लोगों के छोकरे-लड़के आये थे बड़े पढ़े-लिखे। और उसका स्वामी भी आया था धीरुभाई राणपुरवाला... फिर प्रश्न उठा। हमारे सेठ हैं... विवाद बहुत चले। द्रव्यकर्म से भावकर्म नहीं होता है, कहा, भावकर्म से द्रव्यकर्म नहीं होता। लड़के को पूछा कि कैसे? हाँ, हाँ, द्रव्यकर्म से भावकर्म होता है। क्या, हाँ करते हो? यह शास्त्र में लिखा है। परन्तु वह तो किसकी बात है? अज्ञानी अपना विकार करता है, तो कर्म निमित्त है, ऐसा ज्ञान कराया। कर्म जब परिणमता है विकाररूप, तो उसका निमित्त राग है, ऐसा ज्ञान कराया। परन्तु यहाँ राग हुआ तो कर्मरूप परिणमना पड़ा, ऐसा है नहीं। समझ में आया? कर्म का उदय आया तो विकार करना पड़ा, ऐसा है नहीं। वस्तु की मर्यादा ऐसी है नहीं। बड़ी गड़बड़ झंझट। २१ (श्लोक) हुआ।

शुद्ध द्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वं समुत्पश्यतो,
नैकद्रव्यगतं चकास्ति किमपि द्रव्यान्तरं जातुचित्।
ज्ञानं ज्ञेयमवैति यत्तु तदयं शुद्धस्वभावोदयः,
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जनाः।।२२।।

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता। प्रत्येक काल में ज्ञेय है, ऐसा ज्ञान होता है, तो भी ज्ञेय के कारण से नहीं (होता)। और ज्ञान उस ज्ञेय को यथार्थ जैसा है, वैसा जानता है, तो ज्ञान के कारण वह ज्ञेय है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

काव्य - ५३

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता (कवित्त)

ज्ञेयाकार ग्यानकी परणति,
पै वह ग्यान ज्ञेय नहि होइ।

ज्ञेय रूप षट दरब भिन्न पद,
ग्यानरूप आतम पद सोइ।।
जानै भेदभाउ सु विचच्छन,
गुन लच्छन सम्यक्द्रिग जोइ।
मूरख कहै ग्यानमय आकृति,
प्रगट कलंक लखै नहि कोइ।।५३।।

शब्दार्थ:-ज्ञान=जानना। ज्ञेय=जाननेयोग्य पदार्थ।

अर्थ:-ज्ञान की परिणति ज्ञेय के आकार हुआ करती है, पर ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं हो जाता, छहों द्रव्य ज्ञेय हैं और वे आत्मा के निज स्वभाव ज्ञान से भिन्न हैं, जो ज्ञेय-ज्ञायक का भेदभाव गुण-लक्षण से जानता है, वह भेदविज्ञानी सम्यग्दृष्टि है। वैशेषिक आदि अज्ञानी ज्ञान में आकार का विकल्प देखकर कहते हैं कि ज्ञान में ज्ञेय की आकृति है, इससे ज्ञान स्पष्टतया अशुद्ध हो जाता है, लोग इस अशुद्धता को नहीं देखते।

विशेष:-जीव पदार्थ ज्ञायक है, ज्ञान उसका गुण है, वह अपने ज्ञानगुण से जगत के छहों द्रव्यों को जानता है, और अपने को भी जानता है, इसलिए जगत के सब जीव-अजीव पदार्थ और वह स्वयं आत्मा ज्ञेय है, और आत्मा स्व-पर को जानने से ज्ञायक है, भाव यह है आत्मा ज्ञेय भी है, ज्ञायक भी है और आत्मा के सिवाय सब पदार्थ ज्ञेय हैं। सो जब कोई ज्ञेयपदार्थ ज्ञान में प्रतिभासित होता है, तब ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है, पर ज्ञान, ज्ञान ही रहता है, ज्ञेय नहीं हो जाता, और ज्ञेय, ज्ञेय ही रहता है ज्ञान नहीं हो जाता, न कोई किसी में मिलता है। ज्ञेय का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टय जुदा रहता है और ज्ञायक का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टय जुदा रहता है, परन्तु विवेकशून्य वैशेषिक आदि ज्ञान में ज्ञेय की आकृति देखकर ज्ञान में अशुद्धता ठहराते हैं।।५३।।

काव्य-५३ पर प्रवचन

ज्ञेयाकार ग्यानकी परणति,
पै वह ग्यान ज्ञेय नहि होइ।

ज्ञेय रूप षट दरब भिन्न पद,
ग्यानरूप आतम पद सोइ।।
जानै भेदभाउ सु विचच्छन,
गुन लच्छन सम्यक्द्रिग जोइ।
मूरख कहै ग्यानमय आकृति,
प्रगट कलंक लखै नहि कोइ।।५३।।

सेटिका का दृष्टान्त है इसमें। सेटिका समझे न? क्या कहते हैं? खड़ी। खड़ी होती है न खड़ी। खड़िया कहते हैं न, खड़ी सफेद, यह उसका दृष्टान्त है। खड़ी है, वह दीवार को सफेद करती है, यह व्यवहार का कथन है। सफेद करती नहीं। क्यों? दीवार, दीवाररूप रही है और खड़ी, खड़ीरूप रहकर सफेद होती है। (खड़ी ने) दीवार को सफेद किया नहीं। समझ में आया? खड़ी—कलाई वह अपने में रहकर वहाँ सफेद (रूप) परिणमन करती है। दीवार को सफेद किया, तो दीवार के अस्तित्व की पर्याय में सफेद की पर्याय क्या घुस गयी है अन्दर? आहाहा! गजब बात, भाई!

दाँत से रोटी का टुकड़ा होता है, तो दाँत हुआ निमित्त, रोटी का टुकड़ा हुआ नैमित्तिक। निमित्त से हुआ न? दाँत न हो तो टुकड़ा होता है? समझ में आया? ऐसा है नहीं। यह रोटी का एक-एक परमाणु अपने से स्वाधीन परिणमन करता है। दाँत की अपेक्षा रोटी का टुकड़ा होने में है नहीं। यह वह कहीं बात! कौन चबाता है? अंग्रेजी में (कहावत) है न? पेट में दाँत नहीं है, इसलिए बराबर चबाकर खाना। ऐसे-ऐसे नहीं उतारना (निगलना)। धूल में भी पाचन नहीं होता है, सुन तो सही! परमाणु-परमाणु अपनी पर्यायरूप स्वतन्त्र परिणमता है। परिणमन किसका करे? आहाहा! पेट में दाँत नहीं, ऐसा कहते हैं न? बराबर चबाना।

काठी लोग फुरसत में हों। काठी लोग हैं न? वे चबाया ही करे धीरे-धीरे। महिलायें फुरसत में हों, कुछ धन्धा हो नहीं। जैसे यह ढोर चबाते हैं ढोर? जुगाली। पेट में डाले फिर... परन्तु चबाया ही करे निश्चिन्तता से। शरीर अच्छा रहे। ऐसा नहीं? पत्थर के बारीक-बारीक टुकड़े पेट में डालो। पचेगा? यह हीराभाई ने डाले थे। वासुदेवभाई नहीं? हीराभाई ने कंकड़ी पेट में डाली थी, खबर है? उसे खबर नहीं।

कहते थे। एकबार गये थे नदी में। बारीक-बारीक कंकड़ी... एकबार डकार नहीं आती थी? यह उसकी आती थी। बारीक-बारीक कंकड़ी ली। वह पचे नहीं। उसकी पर्याय की योग्यता ऐसी है। आहाहा! जठर ने रोटी को पचा दिया, ऐसा है नहीं। बात सब खोटी। जितनी सत् से विरुद्ध मानी, वह सब (बात) झूठी है। आहाहा!

देखो, क्या कहते हैं, **ज्ञेयाकार ग्यानकी परिणति...** जैसा ज्ञेय है, ऐसा परिणमन ज्ञान में अपने स्वरूप से होता है। **पै वह ग्यान ज्ञेय नहि होई...** खड़ी कभी दीवाररूप नहीं होती और दीवार कभी खड़ीरूप नहीं होती। बराबर है? दीवार खड़ीरूप हो? दीवार खड़ीरूप हो जाये तो वर्षा आवे तो खड़ी धुल जावे। खड़ीरूप हो तो दीवार को भी गिरना पड़ेगा। दीवार यदि खड़ीरूप हो गयी हो तो खड़ी जब धुल जाती है तो दीवार को भी खिरना पड़ेगा। दीवार खड़ीरूप हुई नहीं और खड़ी स्वयं दीवाररूप हुई नहीं। आहाहा! इसी प्रकार ज्ञान में जो-जो राग, शरीर, वाणी, मन—ऐसा ज्ञेय जानने में आता है, **वह ग्यान ज्ञेय नहि होई...** ज्ञानस्वभाव कभी ज्ञेयरूप होता नहीं।

ज्ञेयरूप षट दरब भिन्न पद... षट्द्रव्य ज्ञेय, लो। समझ में आया? **ग्यानरूप आतम पद सोइ...** षट्द्रव्य तो ज्ञेय है और ज्ञानरूप तो भगवान आत्मा है। ज्ञेय जानने में ज्ञेय के कारण से ज्ञान जानता है, ऐसा नहीं। और ज्ञान जानता है ज्ञेय का ज्ञान, तो ज्ञेयरूप ज्ञान होता है, इसलिए ज्ञानरूप परिणमन करता है, ऐसा नहीं है। और ज्ञेय को ज्ञान जानता है, इसलिए ज्ञेय ज्ञान की परिणति को छूता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? शक्कर का स्वाद आता है, देखो। शक्कर। शक्कर है न? स्वाद आया। शक्कर का स्वाद मीठा-मीठा है। आत्मा को (स्वाद) आता है? शक्कर का स्वाद आया। मूढ़ है। शक्कर तो जड़ है। उसका स्वाद रस की पर्याय जड़ की है। तेरी पर्याय में स्वाद आया? वह स्वाद है, उसका तेरे स्वभाव से ज्ञान हुआ है कि यह शक्कर है। समझ में आया? आहाहा!

लोगों को तो ऐसा लगे, देखो भैया! बड़ी मिठास आयी। क्या कहलाता है? कुल्फी, कुल्फी। दूसरा क्या कहलाता है वह? आईसक्रीम। आईस्क्रीम ठण्डी होती है न, ठण्डी। आहाहा! ठण्डा, ठण्डा हो गया। कौन ठण्डा हो गया? आत्मा? आहाहा! मैं ठण्डा हो गया। बहुत ठण्ड लगी न? अरे भगवान! ठण्डी पर्याय तो जड़ है। जड़ को जानने में तेरा ज्ञान अपने से, जड़ की अपेक्षा (रखे) बिना उस प्रकार का ज्ञान—ज्ञेयरूप

का ज्ञान—अपने से हुआ है। ज्ञान हुआ है। स्वादरूप ज्ञान कभी हुआ नहीं। चरपराई होती है, लो, मुख में चरपराई। मिर्च, मिर्च कहते हैं न? मिर्ची चरपरी। चरपराहट... चरपराहट... कौन चरपरा हुआ है? तेरी ज्ञान की पर्याय में, वह चरपराहट उसमें है, उसमें है—ऐसा ज्ञान हुआ है। मुझमें है चरपराहट और ऐसा स्वाद आया, ऐसा कहाँ हुआ उसमें? भ्रम हो गया है तुझे।

ठण्डा हुआ, गर्म हुआ। अग्नि से मुझमें गर्मी हुई, सर्दी चली गयी। धूल भी नहीं हुई, सुन तो सही! दुनिया से भारी विरुद्ध है। अग्नि बिना शीतल पानी उष्ण होता है? कहो। यह प्रश्न हुआ था (संवत्) २००९ के वर्ष में। जुगलकिशोर। ऐई, हिम्मतभाई! तुमको बिच्छू काटा था तब। बिच्छू न? पडकू। किसे तुमको? पडकू है न छोटा? (संवत्) २००९ के वर्ष की बात है। दिल्लीवाले जुगलकिशोर (मुख्तार) आये थे। यहाँ प्रश्न किया रात्रि को। क्या अग्नि बिना जल उष्ण होता है? कहा, अग्नि बिना ही जल उष्ण होता है। जल की शीत पर्याय थी, बदलकर उष्ण हुई। क्या अग्नि के निमित्त से उष्ण हुई?

मुमुक्षु : निमित्त बिना हुई?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त बिना ही हुई है। निमित्त का तो उसमें अभाव है। पानी उष्ण हुआ। प्रत्यक्ष दिखता है न? क्या प्रत्यक्ष दिखता है? तुझे दिखा क्या? पानी गर्म हुआ ऐसा प्रत्यक्ष दिखता है। जल गर्म हुआ ऐसा देखने में आता है। अग्नि से हुआ, (ऐसा माना) तो तेरा भ्रम है। समझ में आया?

बड़ी गड़बड़। लाख वर्षों तक मिट्टी ... परन्तु कुम्हार के बिना घड़ा नहीं होता, ऐसा है ही नहीं। जब घड़ा होने की मिट्टी में (योग्यता हुई)। घड़ारूप पर्याय होने की सन्मुखता है, (तो) कुम्हार हो। कुम्हार से घड़ा हुआ है, ऐसा तीन काल में नहीं है। आचार्य तो कहते हैं। ३७२ गाथा में अभी आयेगा। हम तो देखते नहीं कि कुम्हार से घड़ा हुआ है। तुझे कैसे देखने में आया? अरे! निमित्त क्या, निमित्त तो पर है। पर से पर में क्या होता है? आहाहा! भारी गड़बड़। श्रद्धा में गड़बड़ बड़ी और फिर कहे, करो धर्म। क्या धूल धर्म करे? श्रद्धा तो उल्टी है। यहाँ कहते हैं, **ज्ञेयरूप षट दरब भिन्न पद...** यह तो भिन्न सत्ता रखता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भिन्न है, ज्ञेय तो निज ज्ञानस्वभाव से भिन्न है।

ग्यानरूप आतम पद सोइ... भगवान तो जाननेवाला है। यह है, ऐसा अपने में अपने कारण से स्व-परप्रकाशक ज्ञान की शक्ति से जानता है। उसको जानना कहना, यह व्यवहार है। आहाहा! उससे ज्ञान हुआ, वह तो नहीं, परन्तु ज्ञेय को जानता है, यह भी व्यवहार है। यह तो ठीक, परन्तु अपने को अपना आत्मा जानता है, वह भी व्यवहार (है क्योंकि) भेद हो गया। आता है सर्वविशुद्ध (अधिकार) में। सर्वविशुद्ध में आता है।

मुमुक्षु : स्व-स्वामी सम्बन्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व-स्वामी के भेद का क्या प्रयोजन है? ज्ञायक ज्ञायक को जानता है। अरे! भेद करके क्या काम है तुझे? समझ में आया? सूक्ष्म बात है।

जानै भेद भाउ सु विचच्छन... देखो! ज्ञेय की पर्याय और द्रव्य-गुण जैसा है, ऐसा ज्ञान जाने, ऐसा होने पर भी ज्ञान भिन्न और ज्ञेय भिन्न है। ऐसा जाने सो विचिक्षण, लो। उसको होशियार कहा, विचिक्षण कहा। अग्नि से पानी उष्ण होता है, ऐसा माने वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। **जानै भेद भाउ सु विचच्छन, गुन लच्छन सम्यक् द्रिग जोइ...** उसका गुण और पर्याय और लक्षण भिन्न है, अपना ज्ञान का गुण-पर्याय, लक्षण भिन्न है। ऐसा जाने, वह सम्यग्दृष्टि है। सत् की दृष्टि रखनेवाला वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपके सामने तो हमको हाँ करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जबरदस्ती करनी पड़ती है? जोर से। दब जाते हैं यहाँ, ऐसा कहते हैं। आकर्षित हो जाते हैं। उनका पुण्य इतना है। उनकी लकड़ी फिरती है। जादू की लकड़ी फिरती है, मांधाता हो तो भी कानबुट्टी पकड़ाते हैं। उनका नाम कानजी है न, कहे, (तो) कान (पकड़ावे)।

ऐसी बात चली है। चली थी (संवत्) १९९९ में। भाईलालभाई है या नहीं? भाईलालभाई है? वढवाणवाले नहीं? भाईलालभाई को कहा था। स्थानकवासी था। मुँहपत्ती छोड़ दी। 'वहाँ जाना नहीं, हों! वहाँ जाओगे तो कानबुट्टी पकड़ायेंगे।' और वहाँ का होता है, वह फिर आता नहीं। जादू है उनके पास। जादू क्या? यह तो चैतन्य की स्थिति है, बापू! यह जादू है। परन्तु (वापस) आता नहीं उसका कारण क्या? उसको सच लगता है तो सच में झुकता है, वह कारण है। ऐसा लगे कि ओहो! बात तो

यह सच है। थोड़ा परिचय करे तो खबर पड़े। हटे कहाँ से? यहाँ मार्ग ऐसा है। तीन काल–तीन लोक में दूसरी कोई चीज़ नहीं। व्यक्ति दिमागवाला है या नहीं? विचार तो करेगा या नहीं? मार्ग तो.... आहाहा!

भाईलालभाई को कहा, सही कर दो यहाँ। सही करो यहाँ। स्थानकवासी की सही... मद्रास में रहते हैं न! .... अरे, भगवान! आत्मा है तो उसके पास ज्ञान तो है या नहीं? तुलना करेगा या नहीं? सत् की तुलना करेगा तो सत् की हाँ करेगा। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? हम एकत्व निश्चयगत (आत्मा की) बात कहेंगे। तुम प्रमाण करके, अनुभव करके हाँ करना। ५वीं गाथा में है। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' यह शब्द है। ५वीं गाथा (समयसार)।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण धेत्तव्वं।

पमाणं—प्रमाण करना। हम स्व से एकत्व और पर से विभक्त ऐसी बात करेंगे। कहेंगे, ऐसा आचार्य भगवान कहते हैं। '**एयत्तविहत्तं**' स्व से एकत्व और पर से विभक्त, देखो! आहाहा! तो राग से भी विभक्त है, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी आत्मा विभक्त है, भिन्न है। तो भिन्न (चीज़) के कारण से भिन्न (चीज़) में अन्दर शुद्धि होती है? '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो**' भगवान कहते हैं, ऐसा नहीं। हमारे वैभव से कहते हैं। कहनेवाले तो हम हैं न? कहते हैं, हमारे वैभव से हम कहते हैं।

'**जदि दाएज्ज।**' यदि मैं कहूँ, प्रमाण करना प्रभु! अनुभव से मिलान करके प्रमाण करना। समझ में आया? वहाँ ऐसा कहा, लो। अनुभव से प्रमाण करना। '**चुक्केज्ज छलं ण धेत्तव्वं।**' किसी शब्द में फेरफार हो जाये, कालभेद, वाणीभेद, व्याकरणभेद, वह ग्रहण नहीं करना। हमारा भाव जो पर से विभक्त और स्व से एकत्व है, वह बात करेंगे, उसका प्रमाण करके अनुभव करना। व्याकरण, भाषा, यही आयी न बोलने में भाषा फिर गयी, भाषा में अन्तर हो गया। तुझे व्याकरण–भाषा का ज्ञान हो, बोलने में हमारा अन्तर हो जाये। '**छलं ण धेत्तव्वं।**' ऐसे छल नहीं पकड़ना। हमें भाव कहना है, वह पकड़ना। कितनी बात की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जानै भेदभाव सु विचच्छन गुन लच्छन सम्यक् द्रिग जोई,...** देखो! भेदभाव गुण लक्षण से जानता है। **मूरख कहै ग्यानमय आकृति...** ज्ञान में जो ज्ञेय जानने में आता है, वह कलंक है। जैसे दीपक में धुआँ है, वह दीपक में कलंक है। वैसे ज्ञान में ज्ञेय जानने में आता है, वह कलंक है, ऐसा मूर्ख कहते हैं। इसलिए दीपक को बुझा दो, धुआँ का कलंक नाश हो जायेगा। यह मत है। शास्त्र में है। प्रमेयकमल मार्तण्ड। धुआँ है न? धुआँ निकालना है तो क्या करना? (दीपक) बुझा दो। परन्तु धुआँ निकल गया तो दीपक भी नाश हो जायेगा। (राग और ज्ञान) चीज़ ही दोनों भिन्न है। ऐसे राग-द्वेष आदि परिणाम व्यवहार का (और) भगवान आत्मा भिन्न है। राग का ज्ञान करता है आत्मा। ज्ञान में राग का ज्ञान आया तो वह अपना ज्ञान है। आया तो वह (ज्ञान में) कलंक है।

प्रगट कलंक लखै नहि कोइ... बराबर जानते नहीं, इसलिए कलंक को ही अपना मानते हैं। ऐसा अज्ञानी कहते हैं। अज्ञानी ऐसा कहते हैं, ज्ञान पर से अशुद्ध हो जाता है। लोग अशुद्धता को नहीं देखते। यह अशुद्धता नहीं। समझ में आया? दर्पण में... दर्पण कहते हैं न? शीशा। उसमें जल, बर्फ और अग्नि... बर्फ पिघल जाता है, अग्नि ऐसी होती है। दर्पण में दिखे, तो उसके कारण से हुआ है वहाँ? उसमें अग्नि (और) बर्फ है? वह तो दर्पण की अवस्था है। उसी प्रकार आत्मा जगत की चीज़ जानता है, वह तो ज्ञान की अवस्था है। पर के कारण से अवस्था हुई है? वह कलंक है? वह तो स्वच्छता का स्वभाव है। स्व-पर प्रकाशना, यह तो अपनी स्वच्छता का स्वभाव है। पर प्रकाशे नहीं, अकेला स्व प्रकाशे (ऐसा नहीं)। आहाहा!

प्रगट लक्षण... कोई कहे कि (पर जानने को) अशुद्धता जानते नहीं, इसलिए भूल है। अज्ञानी ऐसा कहते हैं। अशुद्धता है ही नहीं। यह तो अपना ज्ञानस्वभाव है। लोकालोक जानो। जानने में क्या है? समझ में आया? स्त्री का अंग-उपांग सब केवली जानते हैं या नहीं? क्या मैल (-विकार) हो गया? समझ में आया? जानने का स्वभाव है तो जाने। सब चीज़ है, जानते हैं। जानना, वह कोई मैल नहीं। अज्ञानी मैल मानते हैं, वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानी जानते हैं कि अपने स्वभाव में अपना और पर का जानना होता है। उसका नाम सम्यग्दृष्टि कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १३१, श्रावण कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक १०-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-५४ से ५८

सर्वविशुद्ध अधिकार, ५४ वाँ पद है। **ज्ञेय और ज्ञान के सम्बन्ध में अज्ञानियों का हेतु।**

★ ★ ★

काव्य - ५४

ज्ञेय और ज्ञान के सम्बन्ध में अज्ञानियों का हेतु

(चौपाई)

निराकार जो ब्रह्म कहावै।
सो साकार नाम क्यौं पावै।।
ज्ञेयाकार ग्यान जब तांई।
पूरन ब्रह्म नांहि तब तांई।।५४।।

शब्दार्थ:-निराकार=आकार रहित। ब्रह्म=आत्मा, ईश्वर। साकार=आकार-सहित। पूरन (पूर्ण)=पूरा। तांई=तब तक।

अर्थ:-जो निराकार ब्रह्म है, वह साकार कैसे हो सकता है? इसलिए जब तक ज्ञान ज्ञेयाकार रहता है, तब तक पूर्ण ब्रह्म नहीं हो सकता।।५४।।

काव्य-५४ पर प्रवचन

निराकार जो ब्रह्म कहावै।
सो साकार नाम क्यौं पावै।।
ज्ञेयाकार ग्यान जब तांई।
पूरन ब्रह्म नांहि तब तांई।।५४।।

कहते हैं कि आत्मा तो निराकार है, उसमें यह विशेष जानना—साकार कहाँ से

आया? यह सर्वज्ञ में सब विवाद है न? जैन में भी सर्वज्ञ में विवाद उठा है। बड़ा लेख आया है। वहाँ यही कहते हैं कि आत्मा है, वह ज्ञानस्वभाव है और वह ज्ञेय को जाने, तब तो साकार हो गया। साकार अर्थात् परसम्बन्धी अन्दर आकार आया तो मैल हुआ। समझ में आया? निराकार ब्रह्म है, वह साकार कैसे हो सकता है?—ऐसा अज्ञानी का प्रश्न है। क्यों?

ज्ञेयाकार ग्यान जब तांई, ज्ञान में जब तक ज्ञेय ज्ञात होते हैं, तब तक मलिन है। **पूरन ब्रह्म नांहि...** अपने यह जैन में भी ऐसा कहते हैं कि केवली वर्तमान एक समय को जाननेवाले हैं। भूत-भविष्य की शक्ति है—ऐसा जाने, परन्तु वर्तमान है, ऐसा न जाने, क्योंकि वर्तमान में नहीं है। क्या कहा? समझ में आया? वर्तमान में तो वह पर्याय नहीं, है नहीं—उसे जाने? तब तो ज्ञान विरुद्ध हो गया, क्योंकि तीन काल की पर्यायों को जानता है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : कल ११वीं तारीख है, वह तुम जानते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कल बुधवार आयेगा, ऐसी अभी खबर नहीं? विगत कल सोमवार था, आज मंगलवार है - ऐसी खबर नहीं? छद्मस्थ को खबर पड़े और केवलज्ञानी को खबर न पड़े? परन्तु तीन काल-तीन लोक ज्ञान होते हैं, तो यह कहता है कि मैल है। यह जैन में ऐसा कहते हैं कि तीन काल को नहीं जानते, वर्तमान को जानते हैं; क्योंकि भूत की पर्याय बराबर जाने तो क्रमबद्ध हो गया, वह खटकता है। भगवान ने भूत की-गत काल की पर्यायें देखी तो वह शुद्ध-अशुद्ध पर्याय जो है, वह देखी; उसी समय में होनेवाली थी, ऐसा देखा तो क्रमबद्ध हो गया। इसलिए ऐसा नहीं है। और भविष्य की पर्याय भी जब होगी, तब जानेंगे; वर्तमान में जानते हैं - ऐसा नहीं है। अरे! तो केवलज्ञान कहाँ रहा? आहाहा! क्रमबद्ध सिद्ध हो जाता है, वह पोसाता नहीं है। ...

अशुद्धता की उपाधि यह क्रम नहीं। निमित्त आवे वैसा होता है, उसमें लिखा नहीं परन्तु... परन्तु अशुद्धता भी क्रमबद्ध ही है। जिस समय में होनेवाला है, वह केवलज्ञान में देखा है या नहीं? गजब करते हैं न! यह क्रमबद्ध का प्रश्न आया, तब से यह... घुसा है। भाई फूलचन्दजी ने जैनतत्त्वमीमांसा में लिखा है, जब से क्रमबद्ध की

बात आयी, तब से केवलज्ञान को नहीं माननेवाले तो नहीं मानते थे, परन्तु केवलज्ञान माननेवालों में भी भ्रम हो गया। भगवान प्रत्येक समय में तीन काल-तीन लोक देखते हैं? वर्तमान में पूर्ण देखे तो दूसरे समय जानने का क्या रहा? एक समय में केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को वर्तमान में देख ले तो फिर भविष्य में दूसरे समय में जानने का रहा क्या? अरे! भगवान! इतना अन्तर है कि एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे तो दूसरे समय जो वर्तमान पर्याय थी, वह भूतकाल में गयी, ऐसा जाना और भविष्य की पर्याय थी वह, वर्तमान में आ गयी, ऐसा जाना। इतना अन्तर है। ज्ञान तो सम्पूर्ण हो गया है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ अर्थात् क्या...!!

एक समय में तीन काल-तीन लोक न जाने तो उसे दिव्यज्ञान कहेगा कौन? आहाहा! भाई! यह बात नहीं है। यह आत्मा का त्रिकाली सर्वज्ञस्वभाव है। सर्वज्ञशक्ति है न? सर्वज्ञशक्ति त्रिकाल तीन लोक को जाने, वह तो स्वभाव है। उसका जब अनुभव करके, दृष्टि करके प्रगट किया तो पर्याय में तीन काल -तीन लोक जानने का प्रगट हो गया। यह तो कोई बात है!!

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में केवलज्ञान की एक पर्याय अनन्त केवली को जाने, अनन्त सिद्धों को जाने.. आहाहा! और भूत-भविष्य-वर्तमान जैसा जहाँ था, उस प्रकार से जाने। वर्तमान वर्तमान जाने, भविष्य में जो होगा, उसे भी वर्तमान में जानते हैं। समझ में आया? अन्तर इतना कि वर्तमान में देखते हैं कि यह पर्याय वर्तमान है और भूतकाल की भूतकाल में है और भविष्य की भविष्य में है। इतना अन्तर हुआ। वर्तमान की पर्याय भूतकाल में गयी और भविष्य की पर्याय दूसरे समय में थी, वह वर्तमान में आ गयी, बस! इतना परिणमन होगा। समझ में आया? पूर्ण में कोई अन्तर नहीं है। ऐसी ज्ञान की पर्याय में... कहते हैं निराकार ब्रह्म कहा है। इतना सब जानना, वह तो दोष है। यह कहते हैं कि इतना सब एक समय में जान सकता नहीं। आहाहा! अरे रे! नाम नहीं देते, यहाँ (रिकॉर्डिंग) उतरती है। कोई न जाने। एक समय में तीन काल-तीन लोक की पर्यायसहित जाने, ऐसा निर्णय हो तो क्रमबद्ध हो जाता है, तो सोनगढ़ की बात सच्ची सिद्ध होती है।

मुमुक्षु : शास्त्र की बात है न यह तो!

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र की बात नहीं, यह तो सोनगढ़ की बात है – ऐसा (वे) कहते हैं। शास्त्र में ऐसा कहीं नहीं। भाई! भगवान! तुझे मानना पड़ेगा। भाई! जिसे सर्वज्ञ की श्रद्धा होती है, वह एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक वर्तमान विद्यमानवत् जानते हैं। ऐसा (प्रवचनसार) ज्ञान अधिकार में पाठ है। समझ में आया? छद्मस्थ भी नहीं जानते?

आटा, रोटी बनाते हैं न? हमारे गोयणूं कहते हैं। स्त्री को खबर नहीं कि पहले यह आटा था, अभी ऐसा होता है और फिर रोटी होगी? ऐसा ख्याल है या नहीं? आटा होता है न? आटा को गूँथकर रखते हैं न रोटी बनाने के लिये? लोई निकाली, उसका ख्याल नहीं आया कि यह पहले गेहूँ का आटा था, अब लोई बना, बना, हों! बनाया नहीं। आहाहा! अब रोटी होगी। ऐसा करके नहीं परन्तु रोटी होगी। आटा में से रोटी होगी, ऐसा जानती है तो भी कर्ता होती है। मैं ऐसा करता हूँ तो रोटी हुई। परन्तु पहले ही तुझे ख्याल था कि यह रोटी होगी। पहले आटा था। मूलचन्दभाई! सूक्ष्म बात है। जैनदर्शन का एक-एक तत्त्व इतना गम्भीर और सूक्ष्म है कि यदि एक भाव यथार्थ जाने तो सर्व भाव ज्ञात हो जाते हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है। इनकार करे तो भी नहीं चलता, ऐसी यह चीज़ है। आहाहा!

छद्मस्थ जानता है, वैसे श्रुतज्ञान भी जानता है। अवधिज्ञान भूत-भविष्य, असंख्य चौबीसी जानता है। अवधि, परम अवधि, असंख्य चौबीसी (जानता है)। भूतकाल की असंख्य चौबीसी। एक चौबीसी में दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम जाते हैं। भरतक्षेत्र में चौबीस तीर्थंकर होते हैं तो दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम जाते हैं। दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम! ऐसी एक चौबीसी, ऐसा असंख्य चौबीसी का ज्ञान अवधिज्ञान में है। आहाहा! भूतकाल की असंख्य चौबीसी और भविष्य की असंख्य चौबीसी। ज्ञान किसे कहें! राग-फाग छोड़ न! छोड़ न! राग उसमें है ही नहीं। यह तो केवलज्ञान होने की ताकतवाला आत्मा है। ऐसी अन्दर से स्वीकृति आना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है!! समझ में आया?

हम कहते हैं, हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष से यही चर्चा हुई थी। १९७२, ५५ वर्ष हुए। सम्प्रदाय में हमारे गुरुभाई थे, वे बहुत बार ऐसा कहते—सर्वज्ञ ने जैसा देखा है, वैसा होगा; हम कुछ पुरुषार्थ नहीं कर सकते। कहा, यह वाणी कहाँ से आयी? ऐसी

वाणी शास्त्र में है? ऐसी वाणी शास्त्र में है? समझ में आया? उस समय तो यह प्रवचनसार कहाँ देखा था? परन्तु प्रवचनसार की ८०वीं गाथा है, वही भाव अन्दर से आया था।

भगवान सर्वज्ञ एक समय में तीन काल देखते हैं, उसकी जिसे प्रतीति हुई, वही पुरुषार्थ है। समझ में आया? भगवान ने भी ऐसा देखा है। बहुत चर्चा हुई थी (संवत्) ७२-७२, १९७२। ५५ वर्ष हुए। समझ में आया? बहुत चर्चा हुई थी। हमारे तो अन्दर में संस्कार थे, पूर्व की बात अन्दर से चली आती थी न! वे कहें - नहीं, ऐसा नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक देखते हैं, ऐसा ही होगा परन्तु उसकी मान्यतावाले को एक समय में केवलज्ञान ऐसा देखता है, उसकी प्रतीति जिसे होती है, वैसी प्रतीति द्रव्य के सन्मुख हुए बिना नहीं होती। जिसकी द्रव्यसन्मुख प्रतीति हुई, उसे अनन्त भव है—ऐसा भगवान के ज्ञान में दिखायी नहीं दिया। पद्मचन्दजी!

मुमुक्षु : द्रव्यस्वभाव में बहुत भरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भगवान ने देखा है। जिसे केवलज्ञान बैठा (स्वीकृत हुआ)... प्रवचनसार की ८०वीं गाथा में आया न?

जो जाणदि अरहंत दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं (मोहो खलु जादि तस्स लयं)॥

तब यह कहाँ पढ़ा था? समझ में आया? यही भाव आया था। भगवान एक समय में जो देखते हैं, वैसा ही होगा, परन्तु उसकी प्रतीति जिसे होती है, उसके भगवान ने अनन्त भव देखे हैं, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसी वाणी नहीं होती, वीतराग की वाणी ऐसी नहीं होती। वीतराग की वाणी में तो ऐसा कहा है, अरिहन्त का केवलज्ञान एक समय में, द्रव्य -गुण-पर्याय को जाने, वह अपने आत्मा को जानकर मोह का नाश कर डालता है। ८०वीं गाथा में आया है, '**मोहो खलु जादि तस्सं लयं**' और ८१वीं गाथा में ऐसा आया कि इस प्रकार मोह का नाश करने के पश्चात् स्वरूप की स्थिरता करके राग-द्वेष का नाश करता है। तत्पश्चात् भगवान का उपदेश ऐसा आता है कि जैसा मैंने किया, वैसा करेगा, उसका मोक्ष होगा। ऐसा उपदेश आया। '**तधोवदेसं**' ८२वीं गाथा में पाठ है न?

मुमुक्षु : सुना दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना दो! यह प्रवचनसार है न?

एक समय में केवलज्ञान-सर्वज्ञपद की जिसने प्रतीति की है, वह अपने द्रव्य के सन्मुख होकर प्रतीति होती है। इस प्रकार द्रव्य-सन्मुख हुआ, उसका मोह-मिथ्यात्व नाश हुए बिना नहीं रहता तीन काल में। दर्शनमोह का नाश होकर अपना सम्यग्दर्शन प्रगट करता है। पश्चात् कहा कि '**सव्वे वि य अरहंता**' यह गाथा, देखो! '**सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा**' '**सव्वे वि य अरहंता**' अनन्त काल के अरिहन्तों ने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय जानकर अपने द्रव्यस्वभाव में आये, पश्चात् राग-द्वेष का नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए। '**सव्वे वि य अरहंता**' आहाहा! यही भाव आये थे, भाई! हों! तीन काल-तीन लोक के तीर्थंकरदेव की वाणी ऐसी होती है कि जिसने केवलज्ञान जाना और राग-द्वेष का नाश किया, उसे केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं॥

यह शब्द पड़े हैं। ऐसा उपदेश दिया। ऐसा उपदेश नहीं दिया कि हम तीन काल-तीन लोक को जानते हैं तो तुम्हारा पुरुषार्थ काम नहीं करेगा। समझ में आया? उनके उपदेश में ऐसी वाणी आयी है कि जैसा हमने किया, वैसा तुम करो तो तुम्हें केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं। भव-फव कहाँ रहे? भव कहाँ आये? समझ में आया? यह तो जरा छोटी उम्र में बात आयी थी, इसलिए चर्चा के समय कहा, तुम्हारे अनन्त भव दिखे लगते हैं, इसलिए तुम्हारी ऐसी बुद्धि है। भाई... खलबलाहट हो गया था। अनन्त भव... अनन्त भव... भगवान ने देखा, वैसा होगा—ऐसी जिसे श्रद्धा होती है, उसके अनन्त भव होंगे? समझ में आया? भव कैसे? कहा। भगवान को भव होवे तो इसे भव हों। समझ में आया?

'**किच्चा तधोवदेसं**' अनन्त अरिहन्तों ने ऐसा उपदेश दिया है कि एक समय की केवलज्ञान पर्याय में (ज्ञात हुआ), वैसा होगा परन्तु जिसे ऐसी श्रद्धा हुई, उसे भव नहीं

है और भगवान ने ऐसा उपदेश दिया है। आगम की वाणी में ऐसा आया है। '**णिव्वादा ते णमो तेसिं**' आचार्य कहते हैं। आहाहा! प्रभु! ऐसे केवलज्ञान की पर्याय की जिसे श्रद्धा हुई, वह दर्शनमोह का नाश करता है और क्रम से राग-द्वेष का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करता है। '**णिव्वादा**' निर्वाण को प्राप्त करता है। '**णमो तेसिं**' आचार्य कहते हैं कि मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! प्रवचनसार, ज्ञान अधिकार, ८२ गाथा। '**जो जाणदि अरहंत दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**' यह ८० गाथा। ८१ में राग-द्वेष का नाश किया और ८२ में उपदेश कहा। आहाहा! समझ में आया? पाठ में ऐसा है, हों! ८२ (गाथा) है न?

अतीत काल में क्रमशः हो गये समस्त तीर्थंकर भगवन्त... क्रमशः हो गये अनन्त तीर्थंकर **प्रकारान्तर का असम्भव होने से...** दूसरी कोई पद्धति नहीं है। **द्वैत सम्भव नहीं है; ऐसे इसी एक प्रकार से कर्मांशों (ज्ञानावरणादि कर्म भेदों) का क्षय स्वयं अनुभव करके (तथा) परमाप्तता के कारण भविष्य काल में अथवा इस (वर्तमान) काल में अन्य मुमुक्षुओं को भी इसी प्रकार से उसका (-कर्म क्षय का) उपदेश देकर...** एक ही मोक्षमार्ग है, ऐसा सिद्ध किया। आहाहा! गजब बात है! अनन्त तीर्थंकर भूतकाल में हुए, इसका अर्थ कि भविष्य में होंगे और वर्तमान में हैं, वे सब एक ही प्रकार का उपदेश देते हैं। जैन में ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

जिसे जैन परमेश्वर की प्रतीति हुई,... भगवान ने देखा वैसा ही होगा परन्तु देखा है, वैसा होगा - ऐसे केवलज्ञान का विश्वास किसे आता है? समझ में आया? यह प्रश्न हुआ था। जयपुर, एक भाई खड़े हो गये। महाराज! क्रमबद्ध की बात करो, थोड़े दिन रहे हैं। बराबर है, कहा, भाई! तुम्हारी बात बराबर है। दो दिन चलाया था। है या नहीं? पाठ है? उसने समझने के लिये पूछा था, हों! पहले मुझे ऐसा लगा कि यह विरोध करता है? उसने समझने के लिये पूछा था। विरोध करते हैं, उसका निषेध करने की बात है।

भाई! सर्वज्ञ अरिहन्त!! आहाहा! तीन काल-तीन लोक की बात हथेली में जैसे आँवला दिखायी दे, वैसे देखते हैं। आँवला हथेली में ले, परन्तु छद्मस्थ को इतनी स्पष्टता नहीं होती। वह तो अनन्तगुणी स्पष्ट बात! आहाहा! ऐसी केवलज्ञान की एक

समय की पर्याय, वह द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई है। समझ में आया? ऐसी जिसे अन्दर अन्तर में प्रतीति आती है... उसमें भी लिखा है न? रत्नकरण्डश्रावकाचार। आप्त, आगम और तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। यह आप्त अर्थात् ये अरिहन्त, यह श्रद्धा। यह आत्मा, ऐसा नहीं। रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है न? आप्त का आत्मा क्या? गुरु का आत्मा क्या और शास्त्र का भाव अनेकान्त क्या है? यह जिसे समझ में आये, उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? यह व्यवहार की बात नहीं है; अन्दर भाव की बात है। सम्यग्दर्शन की। आहाहा!

(यहाँ प्रवचनसार ८२वीं गाथा में कहते हैं) **(कर्म क्षय का) उपदेश देकर निःश्रेयस (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं, इसलिए निर्वाण का अन्य (कोई) मार्ग नहीं है...** आहाहा! निज द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न होते हैं, उससे ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। दूसरा **(कोई) मार्ग नहीं है, ऐसा निश्चित होता है। अथवा अधिक प्रलाप से बस होओ! मेरी मति व्यवस्थित हो गयी है।** टीकाकार कहते हैं। मति व्यवस्थित हो गयी है। आहाहा! निःसंशय मेरी मति व्यवस्थित हो गयी है। मेरा आत्मा स्वभावसन्मुख होकर अपने सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति हुई, उसमें सर्वज्ञपर्याय की प्रतीति आ जाती है। ऐसी मेरी मति व्यवस्थित हो गयी है। आहाहा! देखो! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। **भगवन्तों को नमस्कार हो। 'व्यवस्थिता मतिर्मम। नमो भगवद्भ्यः।' 'भगवद्भ्यः' 'भगवद्भ्यः'** भगवान को। आहाहा! नमस्कार भी अलग प्रकार के हैं।

भगवान आत्मा मेरा ज्ञानस्वरूप, मैं सर्वज्ञस्वभावी हूँ। जिसे सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई, वह मेल नहीं, वह तो साकार उसका स्वभाव है। यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि मेल है। समझ में आया? इतना सब जाने। आहाहा! वह तो मेल है, कहते हैं। **'ज्ञेयाकार ग्यान जब तांई'** अरे! तुझे खबर नहीं, भगवान! आहाहा! **ज्ञेयाकार, वह ज्ञेयाकार नहीं; वह ज्ञानाकार है। समझ में आया? यह तो ज्ञेय से समझाया है कि लोकालोक है, ऐसा यहाँ ज्ञेयाकार का ज्ञान है, परन्तु वह ज्ञेयाकार का ज्ञान, वह ज्ञानाकार है।** वह ज्ञेयाकार कहीं परज्ञेयाकार नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

पूरन ब्रह्म नांहि तब तांई। यह (अज्ञानी) कहता है कि तब तक पूर्ण ब्रह्म नहीं है। ज्ञेयाकार इतने अधिक जानना... आहाहा! वे छूट जाएँ, तब ज्ञान होता है। यहाँ तो

कहते हैं कि इतना जानना हो, तब ज्ञान छूट जाता है और सर्वज्ञ होता है। समझ में आया? **इस विषय में अज्ञानियों को सम्बोधन—**अब अज्ञानी को समझाते हैं।

★ ★ ★

काव्य - ५५

इस विषय में अज्ञानियों को सम्बोधन (चौपाई)

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल मानै।
नास करनकौ उद्दिम ठानै।।
वस्तु सुभाव मिटै नहि क्यौंही।
तातैं खेद करैं सठ यौंही।।५५।।

शब्दार्थ:-मल=दोष। उद्दिम=प्रयत्न। क्यौंही=किसी प्रकार।

अर्थ:-वैशेषिक आदि ब्रह्म की ज्ञेयाकार परिणति को दोष मानते हैं, और उसके मिटाने का प्रयत्न करते हैं, सो किसी भी प्रयत्न से वस्तु का स्वभाव नहीं मिट सकता, इसलिए वे मूर्ख वृथा ही कष्ट करते हैं।।५५।।

काव्य-५५ पर प्रवचन

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल मानै।
नास करनकौ उद्दिम ठानै।।
वस्तु सुभाव मिटै नहि क्यौंही।
तातैं खेद करैं सठ यौंही।।५५।।

वैषेशिक आदि ब्रह्म की ज्ञेयाकार परिणति को... जयधवल में अर्थ है न? अर्थ को न जाने, ऐसा लिखा है। इनने अर्थ किया है... अर्थ क्या? भूत-भविष्य-वर्तमान नहीं, इसलिए न जाने, ऐसा नहीं लेना। ...असत् अर्थात् वस्तु में, पर्याय में, गुण में नहीं, उसे न जाने। ऐसा अर्थ किया है, भाई! ...नहीं है, उसे क्या जाने? परन्तु इसका अर्थ

ऐसा नहीं है कि वर्तमान पर्याय नहीं है, वह असत् है, इसलिए नहीं जाने, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी गड़बड़! समझ में आया? वर्तमान पर्याय में भूत-भविष्य प्रगट नहीं है, इसलिए उसे असत् कहना और असत् को नहीं जानते, इसलिए उसका यह अर्थ करना, ऐसी बात नहीं है। **भूत-भविष्य और वर्तमान सभी (पर्यायें) सत्, सत् और सत् ही है। वर्तमान सत् है। क्योंकि केवलज्ञान में जब पूर्ण देखा तो सामने एक समय में निमित्त में पूर्णता न हो तो निमित्त-नैमित्तिक का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता।** यह क्या कहा?

आत्मा में केवलज्ञानपर्याय हुई, वह नैमित्तिक पूर्ण (पर्याय है) और सामने निमित्त, भविष्य में होगा, ऐसा नहीं; वर्तमान में ही निमित्त में पूर्णता न हो तो यहाँ निमित्त का नैमित्तिक हो नहीं सकेगा। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। क्या कहा, समझ में आया? यहाँ अपने से सर्वज्ञपद प्रगट हुआ और सामने निमित्त में वर्तमान समय में पूर्णता न हो तो वह निमित्त ही नहीं कहलाता। वर्तमान में भूत-भविष्य और वर्तमान जो पर्याय है, वह सब उसमें वर्तमान में है। आहाहा! गजब बात है। क्या कहा, समझ में आया?

यहाँ पूर्ण हुआ तो भविष्य का निमित्त यहाँ कहाँ लेना है? एक समय की वर्तमान पर्याय, वर्तमान पूर्णता निमित्त में होवे तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहने में आता है। भविष्य में होगा, ऐसा होवे तो यहाँ पूर्ण कहाँ आया? पण्डितजी! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है फिर से...

सभी वर्तमान ही है। भूत-भविष्य की भी वर्तमानवत् है। यह जरा सूक्ष्म है। प्रवचनसार चलता था, तब यह बात कही थी। सर्व विद्यमान है। एक समय में सब है। आहाहा! उसमें गाथा है न! आहाहा! वर्तमान... ज्ञान में प्रगट ही है न! सुन तो सही! उसमें प्रगटरूप से है, ऐसा निमित्तपने में प्रगट है। आहाहा! समझ में आया? एक समय में पूर्ण जाना, वह एक समय में हुआ। सामने वर्तमान में पूर्ण निमित्तपना न होवे तो निमित्त कहलाता ही नहीं। आहाहा! अमरचन्दजी!

पूर्ण है। ...निमित्त में भी पूर्णता न हो तो... निमित्त कहलाता ही नहीं। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। प्रवचनसार चला था, तब कहा था। स्तम्भ का दृष्टान्त दिया है न शास्त्र में? स्तम्भ... स्तम्भ... तीन काल के तीर्थंकर का चित्र। स्तम्भ होता है न?

स्तम्भ। उसमें भूत-भविष्य-वर्तमान के तीर्थंकर (उत्कीर्ण हों)। देखनेवाले को सब दिखता है न? तीन काल के तीर्थंकर का चित्राम वर्तमान में वर्तमानवत् दिखता है। भविष्य के तीर्थंकर का चित्राम वर्तमान में न दिखे और बाद में दिखेगा? अमृतचन्द्राचार्य ने स्तम्भ का दृष्टान्त दिया है... ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : सभी पर्यायें वर्तमान में वर्तमानवत् जानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब वर्तमानवत् जानते हैं। यह क्या चलता है? यह बात तो चलती है। प्रवचनसार है न? ३८ गाथा।

देखो, **'जे णेव हि संजाया'** जो पर्याय उत्पन्न नहीं हुई **'जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया'** जो भूतकाल की पर्याय नष्ट हो गयी **'ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा'** समझ में आया? देखो! ३८ गाथा है। **'णाणपच्चक्खा'** **'तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा'** लो! यह ३७ गाथा में है।

णाणपच्चक्खा तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया।
तासिं वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं॥३७॥

भगवान के ज्ञान में भूत, भविष्य और वर्तमान, सब वर्तमानवत् ज्ञात होता है। आहाहा! अरे! अभी द्रव्य क्या वस्तु है? आत्मा के गुण क्या हैं और उसकी पर्याय क्या है, इसकी खबर नहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय की खबर नहीं और हो गया धर्म! कहाँ से धर्म होगा? **'वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं'** एक समय में भूत-भविष्य-वर्तमान सब अन्दर दिखता है। पश्चात् ३८ गाथा में कहा **'पच्चक्खा'** ज्ञान में सब प्रत्यक्ष है। समझ में आया? भूत-भविष्य-वर्तमान ज्ञान में वर्तमान प्रत्यक्ष है। आहाहा! ऐसा ज्ञान है। उसमें अज्ञानी कहता है कि ज्ञेय का आकार पड़ता है, इसलिए मलिन है। यह कहते हैं कि ऐसे ज्ञान में तीन काल ज्ञात हों तो भी ऐसा नहीं होता।

कहते हैं, **ज्ञेयाकार ब्रह्म मल मानै नास करनकौ उद्दम ठानै,** अरे रे! दर्पण में अग्नि दिखती है। दर्पण होता है न? उसमें अग्नि दिखती है तो अग्नि का नाश कर दो तो दर्पण सही हो जाए। क्या नाश करेगा? वह तो दर्पण की अवस्था है, वह कहीं अग्नि की अवस्था नहीं है, उसमें अग्नि आयी नहीं है। इसी प्रकार ज्ञान की अवस्था में तीन

काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं, वह ज्ञेय की अवस्था नहीं है, वह तो ज्ञान की अवस्था है। उसे मिटा दो। क्या मिटा दे? दर्पण का नाश हो जाएगा। तेरा ज्ञान नाश हो जाएगा। आहाहा! इतना सामर्थ्यवाला, भाई! आहाहा!

एक समय में; समय एक और तीन काल ज्ञात होते हैं। ओहोहो! समन्तभद्राचार्य ने वहाँ तो ऐसा लिया, हे नाथ! आत्मा का स्वभाव एक समय और जगत की वस्तु एक समय में तीन उत्पाद-व्यय-ध्रुव। यहाँ तो कहते हैं कि तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं। आहाहा! समझ में आया? भाई! अन्तर ज्ञान की वास्तविकता, यथार्थता का निर्णय होना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है, वही समकित है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञेयाकार ब्रह्म मल मानै नास करनकौ उद्दम ठानै, देखो! **नास करनकौ...** दर्पण में अग्नि दिखती है, इसलिए नाश करो। किसका नाश करेगा? दर्पण का नाश हो जाएगा। इसी प्रकार ज्ञान में ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वह तो अपनी पर्याय है। पर्याय का नाश करना है? द्रव्य कहाँ रहेगा? **वस्तु सुभाव मिटै नहि क्यौं ही...** वह तो अपना ज्ञानस्वभाव में ज्ञेय की जो स्थिति है, ऐसा अपने कारण से, ज्ञेय के अवलम्बन बिना और ज्ञेय ज्ञान में आये बिना, और ज्ञान ज्ञेय में गये बिना ज्ञात होते हैं। आहाहा! देखो तो सही! आहाहा!

तातैं खेद करैं सठ यौंही। सठ व्यर्थ का खेद करता है कि अरे रे! ज्ञान में यह वस्तु ज्ञात होती है, वह तो मेल है। अरे! प्रभु! मेल नहीं, वह तो तेरी दशा है। समझ में आया? रागरहित, शरीररहित, कर्मरहित अपनी निर्मल पर्याय में ज्ञेय, रागादि ज्ञात हुए, वह तो ज्ञान की दशा हुई है। राग ज्ञात हुआ, उसमें ज्ञान मलिन कहाँ हो गया? आहाहा! वह तो ज्ञान का स्वरूप है। सूक्ष्म बात है। एक भी वास्तविक तत्त्व यथार्थरूप से जँचे तो सब वस्तु सिद्ध हो जाए। समझ में आया?

...सर्वज्ञ को एक समय में दर्शनोपयोग और दूसरे समय में ज्ञानोपयोग होता है, ऐसा लिखा है, उसमें भी भूल है। आहाहा! एक समय में लब्ध और उपयोग छद्मस्थ को हो, ऐसा हो गया। ऐसा बत्तीस सूत्र में पाठ है। 'जं समये पस्सई तं समये न जाणहि, जं समये जाणहि तं समये न पस्सई।' आहाहा! छद्मस्थ के लिये। यह तो केवलज्ञानी ने खतौनी की है। सिद्धसेन दिवाकर है न? सम्मति तर्क वाला। यह जैन की बात नहीं है परन्तु जैन परमेश्वर कहते हैं, उसमें तो ऐसा लिखा है। केवली जिस समय जानते हैं,

उस समय देखते नहीं। आधे काल में केवलज्ञान और आधे काल में केवलदर्शन, ऐसा हो गया। एक समय में दो उपयोग है, ऐसा तो रहा नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। ५६ (वाँ पद)

★ ★ ★

काव्य - ५६

पुनः (दोहा)

मूढ़ मरम जानैं नहीं, गहै एकंत कुपक्ष।
स्यादवाद सरवंग नै, मानै दक्ष प्रतक्ष।।५६।।

अर्थः–अज्ञानी लोग पदार्थ की असलियत नहीं जानते और एकान्त कुटेव पकड़ते हैं, स्याद्वादी पदार्थ के सब अंगों के ज्ञाता हैं और पदार्थ के सब धर्मों को साक्षात् मानते हैं।

भावार्थः–स्याद्वाद, ज्ञान की निराकार साकार दोनों परिणति मानता है। साकार तो इसलिए कि ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है, और निराकार इसलिए कि ज्ञान में ज्ञेय जनित कुछ विकार नहीं होता।।५६।।

काव्य-५६ पर प्रवचन

मूढ़ मरम जानैं नहीं, गहै एकंत कुपक्ष।
स्यादवाद सरवंग नै, मानै दक्ष प्रतक्ष।।५६।।

अज्ञानी लोग पदार्थ की असलियत... असलीपना। **नहीं जानते**। सब ज्ञेयों को जाने, वह तो ज्ञान का असलपना है, असली भाव है, असलीपने का भाव है। ज्ञान सर्व को जाने, यह तो उसमें है नहीं। क्योंकि एक ही आत्मा है, (ऐसा मानते हैं)। यहाँ तो ज्ञान की पर्याय सबको जानती है, यह असलीपना है। उसकी पर्याय का असली भाव है। आहाहा! असली शब्द प्रयोग किया है न?

अज्ञानी **एकान्त कुटेव पकड़ते हैं।** असली को मानते नहीं और एकान्त कुटेव पकड़ते हैं। आहाहा! हमारे ज्ञान में वैश्या आदि ख्याल में आ गयी! माँस ख्याल में आया! ख्याल में आया तो क्या है? क्या ख्याल में आया? माँस अन्दर आ गया? समझ में आया? स्त्री का शरीर दिखायी दिया। आहाहा! क्या है? वह तो ज्ञेय है। **तेरी ज्ञान की परिणति में ज्ञेय के ज्ञानरूप तेरी ज्ञान की परिणति तुझसे ख्याल में आयी है, ज्ञेय नहीं। आहाहा!** जैन में भी ऐसा माने तो सब ऐसे ही हैं। समझ में आया?

स्याद्वादी पदार्थ के सब अंशों के ज्ञाता हैं। ज्ञानी सब प्रकार के ज्ञाता हैं। ज्ञेय को जानते हैं, वह भी अपनी परिणति है। अपनी परिणति में ज्ञेय को लाये नहीं और ज्ञेय में ज्ञान की परिणति में प्रवेश किया नहीं। ऐसा अपना स्वभाव है। सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है। **पदार्थ के सब धर्मों को साक्षात् मानते हैं।** दक्ष, ऐसा है न? **मानै दृक्ष प्रतक्ष।** ज्ञानी सबको प्रत्यक्ष मानता है। इसमें उसकी दृष्टि कहाँ रहती है? द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि हुए बिना ऐसी सम्यक् प्रत्यक्ष नहीं होती।

भावार्थ—स्याद्वाद, ज्ञान ही निराकार साकार दोनों परिणति मानता है। ओहोहो! ज्ञान को अद्भुत कहा है उसमें... अध्यात्म पंच संग्रह, नहीं? दीपचन्दजी ने लिया है। ओहो! एक समय में पूर्ण महासत्ता निराकार का भान। कोई भेद नहीं कि यह सत्ता है और यह महासत्ता है, ऐसा नहीं। एक समय में ऐसा निराकार का भान, उसी समय में अनन्त साकार भेद जानना। आहाहा! यह अद्भुत रस है!! आहाहा! समझ में आया? दर्शन की पर्याय में निराकार—कोई भेद नहीं। मैं हूँ और यह है, ऐसा भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसी महासत्ता है, ऐसा निराकार उपयोग परिणमता है और साकार अर्थात् एक-एक द्रव्य और एक-एक गुण तथा एक-एक पर्याय और एक-एक पर्याय के अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद। एक-एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी! आहाहा! भिन्न-भिन्न करके विकल्प के आश्रय बिना अपनी ज्ञान की पर्याय के सामर्थ्य से जानता है, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। आहाहा!

दर्शन और ज्ञान एक समय में है, तथापि एक का स्वभाव निराकार और एक का स्वभाव साकार। आहाहा! एक समय में दो उपयोग; एक समय में एक उपयोग नहीं। समझ में आया? कोई कहता है कि एक समय में दो उपयोग नहीं। सिद्धसेन और ऐसा

कहते हैं कि एक समय में दो का एक ही उपयोग है। समझ में आया? यहाँ दिगम्बर आचार्य ऐसा कहते हैं कि एक समय में दो उपयोग है। समझ में आया? श्वेताम्बर शास्त्र कहते हैं कि एक समय में एक उपयोग, दूसरे समय में दूसरा (उपयोग)। सिद्धसेन दिवाकर कहते हैं कि एक समय में दो उपयोग नहीं, एक ही उपयोग है। किसे इतना विचार करने की पड़ी है? हो... हा... बाहर के सम्प्रदाय चलाये, बहुत लोग माने, बस! धर्म हो गया।

स्याद्वाद, ज्ञान ही निराकार साकार दोनों परिणति मानता है। देखो, इसका–दर्शन का निराकार स्वभाव। ज्ञान का साकार होना, यह स्वभाव है। **साकार तो इसलिए कि ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है।** ज्ञेयाकार परिणति का अर्थ जैसा ज्ञेय है, वैसा ज्ञान की परिणति जाने। **और निराकार इसलिए कि ज्ञान में ज्ञेयजनित कुछ विकार नहीं होता।** यहाँ तो भेद नहीं होता। समझ में आया? परमात्मा ने कहा हुआ तत्त्व अलौकिक बात है! **स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा।**

★ ★ ★

काव्य - ५७

स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा

(दोहा)

सुद्ध दरब अनुभौ करै, सुद्धद्रिष्टि घटमांहि।
तातैं समकितवंत नर, सहज उछेदक नांहि।।५७।।

शब्दार्थः–घट=हृदय। उछेदक=लोप करनेवाला।

अर्थः–सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध द्रव्य का अनुभव करते हैं, और शुद्ध वस्तु जानने से हृदय में शुद्धदृष्टि रखते हैं, इससे वे साहजिक स्वभाव का लोप नहीं करते; अभिप्राय यह है कि ज्ञेयाकार होना ज्ञान का साहजिक स्वभाव है, सो सम्यग्दृष्टि जीव के स्वभाव का लोप नहीं करते।।५७।।

काव्य-५७ पर प्रवचन

सुद्ध दरब अनुभौ करै, सुद्धद्रिष्टि घटमांहि।
तातैं समकितवंत नर, सहज उछेदक नांहि।।५७।।

क्या कहते हैं ? देखो ! **सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध द्रव्य का अनुभव करते हैं...** आहाहा ! आत्मा पवित्र ज्ञान का पुंज, दर्शन का पुंज है। समझ में आया ? उसका अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! **और शुद्ध वस्तु जानने से हृदय में शुद्धदृष्टि रखते हैं।** जानने में शुद्धदृष्टि है। जानने में बहुत आया, इसलिए अशुद्धदृष्टि है - ऐसा नहीं है। **इससे वे साहाजिक स्वभाव का लोप नहीं करते।** ज्ञान में अनन्त ज्ञेय ज्ञात होते हैं, ऐसा ज्ञान का स्वभाव है, वैसे सहजस्वभाव का उच्छेद नहीं करते।

अभिप्राय यह है कि ज्ञेयाकार होना ज्ञान का साहाजिक स्वभाव है... लो ! लोकालोक को जानना, वह विषय है तो जानता है, ऐसा नहीं। आहाहा ! ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है। सहज स्वभाव। तीन काल-तीन लोक एक समय में अपने ज्ञान की परिणति में... परिणति को जानते हुए ज्ञात हो गये। समझ में आया ? जल की स्वच्छता में रात्रि में चन्द्र आदि (जल में) दिखता है, नदी का प्रवाह होता है न ? उसमें जल भी दिखता है और जल में प्रतिबिम्ब दिखता है, वह प्रतिबिम्ब नहीं, वास्तव में तो वह जल की ही अवस्था है। समझ में आया ? एक चन्द्र, एक सूर्य, अड़तालीस नक्षत्र, ८८ ग्रह, छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारे। एक-एक चन्द्र के साथ छियासठ हजार नौ सौ पिहचत्तर कोड़ाकोड़ी तारे। एक चन्द्र और सूर्य के साथ अट्ठाईस नक्षत्र, ८८ ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह आ गये, तारे - छियासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी। जल को देखने में आने पर वह सब दिखता है। ऐसा देखना पड़ता नहीं। पानी का प्रवाह चलता है, वह जल की पर्याय है, ऐसा दिखता है। इसी प्रकार केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को ऐसे देखे तो दिखायी दे, ऐसा नहीं है; वह तो अपनी स्वच्छता देखता है, उसमें सब दिख जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा तेरा स्वभाव है।

सम्यग्दृष्टि जीव **साहाजिक स्वभाव का लोप नहीं करते।** तीन काल-तीन लोक

को जानना... श्रुतज्ञान में भी ज्ञात होता है। वह ज्ञान की परिणति ऐसी है। यहाँ सम्यग्दृष्टि कहा न? अब २३ कलश है न?

मुमुक्षु : स्याद्वाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि न? पर्याय अपनी है, तो भी ज्ञेय को जानती है, वह मैल नहीं है। वह स्याद्वाद है। पर को जानना, वह मैल है, ऐसा नहीं है। यह तो अज्ञानी एक पक्ष को माननेवाले की दृष्टि है। ज्ञान पर्याय जानने में ज्ञेयाकार परिणति हुई, वह ज्ञेयाकार नहीं, ज्ञान परिणति है। अज्ञानी मानता है कि ज्ञेय के कारण यह परिणति है। समझ में आया? गजब बात, भाई! २३ कलश।

शुद्धद्रव्यस्वरसभवनात्किं स्वभावस्य शेष-
मन्यद्रव्यं भवति यदि वा सत्य किं स्यात्स्वभावः।
ज्योत्स्नारूपं स्नपयति भुवं नैव तस्यास्ति भूमि-
ज्ञानं ज्ञेयं कलयति सदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव॥२३॥

चन्द्र का दृष्टान्त देंगे। ज्ञान ज्ञेय से अव्यापक है, देखो! ज्ञान लोकालोक को जाने तो भी ज्ञान ज्ञेय में व्यापक नहीं है, पसरता नहीं है। समझ में आया? राणपुर में एक वेदान्ती था, उसका प्रश्न था। खत्री... खत्री... राणपुर (संवत्) १९८४ का वर्ष। नारणभाई, नहीं? इस ओर खत्री की दुकान थी। महाराज! आप कहते हो कि तीन काल को जाने तो परमाणु में प्रविष्ट हुए बिना परमाणु को किस प्रकार जानेगा? ऐसा प्रश्न था। यह परमाणु है और यह दूसरा जीव भिन्न है तो इसमें प्रवेश किये बिना किस प्रकार जानेगा? अरे! प्रवेश क्या करे? इस ओर दुकान थी। यह तो संवत् १९८४ की बात है। ४३ वर्ष पहले की बात है। अरे! यह क्या कहते हैं?

ज्ञान की पर्याय-अवस्था परजीव में और परमाणु में प्रवेश करे तो जाने, यह कहाँ से आया? कहा। समझ में आया? यहाँ भी नहीं दिखता! शक्कर की मिठास, वह तो रूपी है, उसमें ज्ञान प्रवेश करता है? ज्ञान में ख्याल नहीं आता कि यह मिठास है? मैं मिठास हूँ, ऐसा मानता है? समझ में आया? ज्ञान में मिठास का ख्याल आता है या नहीं? मिठास कहते हैं न? क्या कहते हैं? मिठाई। तुम्हारे घारी-पूरी और था न परसों? क्या कहलाता है? मोहनथाल को...

ज्ञान जानता है परन्तु ये मान लेता है कि मुझे स्वाद आया। स्वाद तो जड़ है। जड़ में प्रवेश किये बिना ज्ञान जानता है। ज्ञान जड़ को स्पर्श नहीं करता। जड़ को स्पर्श करे तो आत्मा जड़ हो जाए। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई!

★ ★ ★

काव्य - ५८

ज्ञान ज्ञेय से अव्यापक है, इस पर दृष्टान्त

(सवैया इकतीसा)

जैसैं चंद किरनि प्रगटि भूमि सेत करै,
भूमिसी न दीसै सदा जोतिसी रहति है।
तैसैं ग्यान सकति प्रकासै हेय उपादेय,
ज्ञेयाकार दीसै पै न ज्ञेयकौं गहति है।।
सुद्ध वस्तु सुद्ध परजाइरूप परिनवै,
सत्ता परवांन माहें ढाहें न ढहति है।
सो तौ औररूप कबहूं न होइ सरवथा,
निहचै अनादि जिनवानी यौं कहति है।।५८।।

शब्दार्थ:-प्रगटि=उदय होकर। भूमि=धरती। जोतिषी=किरणरूप। प्रकासै=प्रकाशित करे। सत्ता परवांन=अपने क्षेत्रावगाह के बराबर। ढाहैं=विचलित करने से। न ढहति है=विचलित नहीं होती। कबहूं=कभी भी। सर्वथा=हर हालत में।

अर्थ:-जिस प्रकार चन्द्रकिरण प्रकाशित होकर धरती को सफेद कर देती है, पर धरतीरूप नहीं हो जाती-ज्योतिरूप ही रहती है, उसी प्रकार ज्ञानशक्ति हेय उपादेयरूप ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करती है, पर ज्ञेयरूप नहीं हो जाती, शुद्ध वस्तु शुद्ध पर्यायरूप परिणमन करती है और निज सत्ता-प्रमाण रहती है, वह कभी भी किसी हालत में अन्यरूप नहीं होती, यह बात निश्चित है और अनादि काल की जिनवाणी कह रही है।।५८।।

काव्य-५८ पर प्रवचन

कहते हैं...

जैसैं चंद किरनि प्रगटि भूमि सेत करैं,
भूमिसी न दीसै सदा जोतिसी रहति है।

जैसे चन्द्र किरण भूमि को श्वेत करती है, ऐसा कहने में आता है परन्तु **भूमिसी न दीसै..** वह चन्द्र की ज्योति भूमि जैसी हुई नहीं है। भूमि जैसी हुई है? कलई का दृष्टान्त आता है न? कलई दीवार पर पोते तो उसने दीवार सफेद की है? दीवार में प्रवेश किया है? दीवार सफेद में आ गयी है? सफेदी सफेदी में है और दीवार दीवार में है। इसी प्रकार चन्द्र का दृष्टान्त दिया है। **जैसैं चंद किरनि प्रगटि भूमि सेत करैं,** भाषा ऐसी ली है। चन्द्र की ज्योति भूमि को श्वेत करती है, ऐसा देखने में आता है। रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश में श्वेत दिखायी देता है, पूरी जमीन सफेद दिखती है। **भूमिसी न दीसै...** परन्तु वह चन्द्र की ज्योति भूमि जैसी नहीं हो गयी है। आहाहा! **सदा जोतिसी रहति है।** वह तो ज्योति, ज्योति है।

तैसैं ग्यान सकति प्रकासै हेय उपादेय... देखो! भगवान आत्मा का ज्ञानस्वभाव, रागादि हेय है और स्वरूप उपादेय है – ऐसा जाने। '**प्रकासै हेय उपादेय**' '**ज्ञेयाकार दीसैं पै न ज्ञेयकौं गहति है।**' जैसे हेय–उपादेय ज्ञेय है, वैसा जाने। जानने पर भी ज्ञेयरूप नहीं होता। जैसे चन्द्र की ज्योति भूमिरूप नहीं होती, वैसे ज्ञेय को यह हेय है, यह उपादेय है – ऐसा जानने पर भी, उस ज्ञेयरूप ज्ञान नहीं होता। अज्ञानी का भी नहीं होता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। (ज्ञेयरूप) हो गया, ऐसा (वह तो) मानता है।

भगवान आत्मा ज्ञान की परिणति से परिणमता है। उसमें उस पर्याय में जितना सामने यथासम्भव ज्ञेय है, सर्वज्ञ को पूर्ण है यहाँ..., उस समय ज्ञेय का ज्ञान स्वयं से होता है, परन्तु वह ज्ञान कहीं ज्ञेयरूप होकर जानता है? आहाहा! देखो! भेदज्ञान। अपने में रहकर ज्ञेय को जानना, वह तो ज्ञान का स्वत: स्वभाव है। ज्ञेय के कारण से है, ऐसा नहीं है। तत्त्व की विपरीत दृष्टि कैसी है, वह बताते हैं। और विपरीत छोड़ना, ऐसा कहते हैं। ऐई! मेरे ज्ञान में यह क्या आया? समझ में आया? स्त्री का रूप दिखायी दे, स्त्री के

अवयव दिखायी दे। अरे! ज्ञान में मैल हो गया। अरे! भगवान! मैल कहाँ हो गया? वह तो ज्ञेय है। तुझे तो ज्ञेय सम्बन्धी तेरा ज्ञान स्वतः तेरे कारण से ज्ञान की परिणति हुई है। समझ में आया? आँख बन्द हो जाओ, नहीं देखना। क्या बन्द करे? ज्ञान को तुझे ढँक देना है? ज्ञान का स्वभाव है कि जैसा है, वैसा जाने। भारी कठिन काम। '**ज्ञेयाकार दिसैं पै न ज्ञेयकौं गहति है।**' ज्ञान की दशा ज्ञेय जैसी दिखती है, परन्तु ज्ञेयरूप होती नहीं है।

सुद्ध वस्तु सुद्ध परजाईरूप परिनवै... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं राग और ज्ञेय, पर को जानने पर भी वस्तु तो शुद्धरूप ही परिणमती है। अशुद्धता नहीं रहती। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो वहाँ ज्ञान भी शुद्ध ही है। व्यवहाररत्नत्रय के राग को जाने, इससे ज्ञान रागरूप हो गया? व्यवहाररत्नत्रय मैल, व्यवहाररत्नत्रय में रहा। आहाहा! **सुद्ध वस्तु सुद्ध परजाईरूप परिनवै...** देखो! यह तो ज्ञान का स्वभाव है कि शुद्धरूप जाने। शरीर को जाने, कसाईखाने को जाने, लो। कबीर का घर कसाई के पास, करेगा सो भरेगा, बन्दा तू क्यों हुआ उदास? ऐसा कबीर में आता है। तेरा घर कसाई के पास है। कसाई होता है न? कबीर की झोंपड़ी गलकटों के पास करेगा सो भरेगा, भैया! तू क्यों हुआ उदास? अरे रे! ऐसा मिला तो इस कारण से मुझे मैल होगा, ऐसा नहीं है, भगवान! समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, **सुद्ध वस्तु सुद्ध परजाईरूप परिनवै...** ज्ञान तो ज्ञानरूप शुद्धरूप परिणमता है, उसका स्वभाव है। जाने—राग आया, द्वेष आया, विषय की वासना आयी, आहाहा! वासना को वासनारूप होकर जानता है? वासना से पृथक् ज्ञानरूप होकर जानता है। आहाहा! समझ में आया?

सत्ता परवांन माहैं ढाहें न ढहति है। वह वस्तु अपनी सत्ता प्रमाण है। ज्ञान का परिणमन अपनी सत्ता प्रमाण अपने से सत् है। वह ज्ञेय के सत् से नहीं। ज्ञेय, ज्ञेय के सत् में है। ज्ञेय की अस्ति ज्ञेय के कारण से है और यहाँ ज्ञान का परिणमन ज्ञान की सत्ता के कारण से है, ज्ञेय के कारण से है नहीं। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त कहीं होगी? किसके साथ मिलान करना? यह भी ठीक है और वह भी ठीक है, यह कहीं स्याद्वाद नहीं है, फुदड़ीवाद है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अपनी ज्ञान की परिणति में परवस्तु ज्ञात होती है, पर नहीं। वह तो अपनी स्व-पर प्रकाशक ज्ञान की परिणति अपने में ज्ञात होती है। आहाहा! **सत्ता परवांन माहैं ढाहें न ढहति है।** अपनी ज्ञान की सत्ता

छोड़कर राग में ज्ञान जाता नहीं और राग अपनी सत्ता छोड़कर ज्ञान की परिणति में आता नहीं। आहाहा! कितना भेदज्ञान!

समकिती युद्ध में खड़ा हो, क्रिया होती हो, हाथी-घोड़ा, बाण, अन्दर द्वेष का अंश भी आया, तो कहते हैं कि उस काल में ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमता है। उस द्वेष और पर की क्रियारूप ज्ञान होता नहीं। यह द्वेष और पर की क्रिया ज्ञान में नहीं आती। अपनी सत्ता छोड़कर ज्ञान की सत्ता में प्रवेश नहीं करती। आहाहा!

सो तो औररूप कबहूं न होई सरवथा,.... सर्वथा। भाई! कथंचित् पररूप होता है, कथंचित् अपनेरूप होता है, ऐसा स्याद्वाद कहो। यह स्याद्वाद नहीं है। कथंचित् ज्ञेयरूप हुआ है और कथंचित् ज्ञानरूप है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। अपने ज्ञानरूप ही ज्ञान सदा त्रिकाल रहता है। **औररूप कबहूं न होई सरवथा,...** भाषा है न? कोई कहता है कि जैन में सर्वथा नहीं होता। अरे! नहीं होता, ऐसा होगा? जैन के अतिरिक्त अन्य में है कहाँ? द्रव्य, द्रव्यरूप से सर्वथा नित्य है; पर्याय, पर्यायरूप से सर्वथा अनित्य है। उसमें कथंचित् डालना? द्रव्य, द्रव्यरूप से कथंचित् सत् है और कथंचित् द्रव्य द्रव्यरूप से असत् है, अनित्य है - ऐसा है? द्रव्य, द्रव्यरूप से नित्य है, सर्वथा नित्य है। पर्याय, पर्यायरूप से सर्वथा अनित्य है। समझ में आया? पूर्ण अखण्ड द्रव्य की व्याख्या करे, तब तो कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। दो भाग पाड़कर एक को कहे, त्रिकाल द्रव्य नित्य ही है। त्रिकाल द्रव्य कथंचित् अनित्य भी है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? द्रव्यानुयोग सूक्ष्म है, भाई!

निहचै अनादि जिनवानी यौं कहति है। देखो! जिनवाणी - वीतराग की वाणी ऐसा कहती है कि ज्ञान में पर जाने, तथापि उसमें पर आता नहीं। पर की सत्ता छोड़कर अभाव होता नहीं और अपनी सत्ता का अभाव होकर पररूप होता नहीं। ज्ञान, ज्ञानरूप परिणमन करता है। राग, रागरूप परिणमन करता है। ऐसे भेद को यथार्थरूप जानना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १३२, श्रावण कृष्ण ५, बुधवार, दिनांक ११-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-५९, ६०

सर्वविशुद्धि अधिकार। २४वाँ कलश है नीचे। अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त ९०० वर्ष पहले हुए और कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले हुए। उनके समयसार की टीका करते (हुए), उन्होंने कलश बनाये। मन्दिर के ऊपर जैसे कलश चढ़ाते हैं, ऐसे टीका बनाकर ऊपर कलश बनाये। सारा सार कलश में भर दिया है। २४वाँ कलश।

रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत्,
ज्ञानं ज्ञानं भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम्।
ज्ञानं ज्ञानं भवतु तदिदं न्यक्कृताज्ञानभावं,
भावाभावौ भवति तिरयन् येन पूर्णस्वभावः।।२४।।

उसका पद ५९। **आत्मपदार्थ का यथार्थ स्वरूप**। सर्वविशुद्ध (अधिकार) है न?

★ ★ ★

काव्य - ५९

आत्मपदार्थ का यथार्थ स्वरूप

(सवैया तेईसा)

राग विरोध उदै जबलौं तबलौं,
यह जीव मृषा मग धावै।
ग्यान जग्यौ जब चेतनकौ तब,
कर्म दसा पर रूप कहावै।।
कर्म विलेछि करै अनुभौ तहां,
मोह मिथ्यात प्रवेस न पावै।
मोह गयें उपजै सुख केवल,
सिद्ध भयौ जगमांहि न आवै।।५९।।

शब्दार्थः-विरोध=द्वेष। मृषा मग=मिथ्या मार्ग। धावै=दौड़ता है।

अर्थः-जब तक इस जीव को मिथ्याज्ञान का उदय रहता है, तब तक वह राग-द्वेष में वर्तता है। परन्तु जब उसे ज्ञान का उदय हो जाता है, तब वह कर्मपरिणति को अपने से भिन्न गिनता है, और जब कर्मपरिणति तथा आत्मपरिणति का पृथक्करण करके आत्म-अनुभव करता है, तब मिथ्या मोहनीय को स्थान नहीं मिलता। और मोह के पूर्णतया नष्ट होने पर केवलज्ञान तथा अनन्त सुख प्रगट होता है, जिससे सिद्धपद की प्राप्ति होती है और फिर जन्म-मरणरूप संसार में नहीं आना पड़ता।।५९।।

काव्य-५९ पर प्रवचन

राग विरोध उदै जबलौं तबलौं,
यह जीव मृषा मग धावै।
ग्यान जग्यौ जब चेतनकौ तब,
कर्म दसा पर रूप कहावै।।
कर्म विलेछि करै अनुभौ तहां,
मोह मिथ्यात प्रवेस न पावै।
मोह गयें उपजै सुख केवल,
सिद्ध भयौ जगमांहि न आवै।।५९।।

क्या कहते हैं? **राग विरोध उदै जबलौं तबलौं,...** जब तक स्वरूप अन्तर आनन्दमूर्ति प्रभु का भान नहीं और उसका अज्ञान जब तक वर्तता है, तब तक राग और द्वेष दोनों उत्पन्न होते हैं। **यह जीव मृषा मग धावै...** राग और द्वेष की उत्पत्ति के झूठे मार्ग में प्रवृत्ति करता है। पर में (प्रवृत्ति) करते हैं—यह प्रश्न यहाँ नहीं है। परद्रव्य में प्रवृत्ति तो तीन काल में कर सकता नहीं। अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव... चार बातें ली हैं यहाँ। भगवान आत्मा अपनी शुद्ध शक्ति का पिण्ड है, उसका जब तक अज्ञान है, तो अज्ञान के कारण से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। **मृषा मग धावै...** तब झूठे मार्ग में उसका वीर्य काम करता है। आहाहा! समझ में आया?

जब तक अपना द्रव्यस्वभाव ध्रुव नित्यानन्द भगवान का स्वभाव-सन्मुख का भान नहीं और स्वभाव का अज्ञान है... देखो, यहाँ कर्म-बर्म लिया ही नहीं। स्वभाव का अज्ञान है, तब तक मिथ्यामार्ग राग और द्वेष की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। समझ में आया? **ग्यान जग्यौ जब चेतनकौ तब, कर्म दसा पर रूप कहावै...** जब अज्ञान में... पुण्य और पाप का भाव कि जो विकार और विभाव और दुःखरूप है, ऐसे झूठे मार्ग में अज्ञानी की प्रवृत्ति अज्ञान में है, तब तक संसार है। समझ में आया? **ग्यान जग्यौ जब चेतनकौ तब,...** मैं आत्मा शुद्ध चैतन्यघन विज्ञानपिण्ड प्रभु हूँ, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि—बहिर्मुख दृष्टि का लोप करके अन्तर स्वभाव की दृष्टि—उत्पन्न हुई, **कर्म दसा पर रूप कहावै...** तब तो विकारीदशा पर कहावे, अपने में वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को, अपना निज स्वभाव चैतन्य आनन्द और पूर्ण शुद्ध है, ऐसी जब ज्ञानशक्ति जगी, तो कहते हैं कि पीछे ज्ञानी की प्रवृत्ति राग-द्वेष में होती नहीं। समझ में आया? उसकी प्रवृत्ति आत्मा में होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? धर्मी को राग-द्वेष होता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। धर्मी को राग-द्वेष होता ही नहीं। युद्ध करता है न? कौन करे? प्रभु! तुझे खबर नहीं। जिसमें अपना अस्तित्व भासित नहीं हुआ, उसके अस्तित्व में क्या प्रवेश करे? देह की क्रिया और राग-द्वेष का परिणाम का अपनी सत्ता में—अस्तित्व में तो भासन हुआ नहीं, तो परसत्ता में प्रवेश किस प्रकार करे? समझ में आया? 'शी रीते' (को हिन्दी में) क्या कहते हैं? किस प्रकार करते हैं? तुम्हारी हिन्दी सब नहीं आती। समझ में आया? आहाहा! सार सार कहते हैं।

भगवान एक समय में शुद्ध पूर्ण आनन्द है, ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई, तो शिवस्वभाव प्रगट हुआ। समझ में आया? इस स्वभाव के कारण से, धर्मी जीव को जो राग और द्वेष और व्यवहार में प्रवृत्ति थी, वह प्रवृत्ति (अब) नहीं रही। आहाहा! समझ में आया? **कर्म दसा पर रूप कहावै...** स्वभाव में विकार नहीं, ऐसी जब स्वभाव की दृष्टि हुई, तो पुण्य-पाप का भाव तो पररूप कहावे, वह तो परज्ञेय हुआ, वह ज्ञान में आया नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात—बारीक बात है, भाई! समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य शीलपाहुड अधिकार में लेते हैं कि नरक में भी शील है। शील

अधिकार है। नरक में शील है। शील का अर्थ क्या? अपना आनन्द और ज्ञायकस्वरूप का अनुभव और उसमें एकाग्रता की शान्ति की उत्पत्ति, वह शील है। वह शील नरक में, सातवें नरक में समकिती है, उसको भी है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो ऐसा लिया है।

यहाँ कहा न, **कर्म दसा पर रूप कहावै...** जब अपना चैतन्य शुद्ध का भान सम्यग्दर्शन हुआ, आहाहा! तब तो विभाव का परिणाम पररूप जानने में आता है... पररूप जानने में आता है। अपने में है, ऐसा जानने में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ ने कहा मार्ग यह है। समझ में आया? सन्तों ने बीच में आड़तिया होकर दुनिया के समक्ष प्रसिद्ध किया है। माल तो सर्वज्ञ का है। समझ में आया? त्रिलोकनाथ जिनवरदेव तीर्थंकर प्रभु जिनके केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक अपनी पर्याय में पूर्ण जानने में आया। उनकी इच्छा बिना वाणी निकली ॐ ध्वनि।

'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' भगवान की दिव्यध्वनि साक्षात् समवसरण में खिरी, गणधर उसके अर्थ विचारकर शास्त्र रचते हैं। उस शास्त्र में ऐसा कहा, भाई! तुझे जब तक राग और पुण्य के परिणाम की रुचि है, तब तक तेरी प्रवृत्ति अशील अर्थात् विकारभाव में है। समझ में आया? और जब दृष्टि नरक में सातवें नरक में... वहाँ तो दृष्टान्त दूसरा दिया है कि तीसरे नरक में भी तीर्थंकर होते हैं न। तीसरे नरक में जाते हैं। तीर्थंकरगोत्र बँधा हो, (नरक में) जाते हैं.... एक अन्तर्मुहूर्त पहले समकित पलट जाता है। (नरक में) रहते हैं तो वहाँ भी राग से भिन्न और अपने स्वभाव से अभिन्न ऐसा अनुभव समकिती को होता है। आहाहा! इसके प्रताप से अरिहा होते हैं। अरिहा अर्थात् तीर्थंकर।

यह शील स्वभाव है। शील अर्थात् शुभ नहीं, यहाँ शुभ की बात ही नहीं। स्वभाव की दृष्टि और राग का—अनन्तानुबन्धी का अभाव, उसका नाम शील है। शील अर्थात् ब्रह्मचर्य नहीं। समझ में आया? शील अर्थात् ब्रह्मचर्य की यहाँ बात नहीं। शरीर से ब्रह्मचर्य पाले और मन-वचन से ब्रह्मचर्य पाले, वह तो शुभराग है। वह शील नहीं। यहाँ तो भगवान चैतन्य ज्योति प्रभु की जहाँ अन्तर्मुख दृष्टि हुई तो राग का अभाव जो उसमें हुआ। वैराग्य अधिकार में नहीं आया? कि समकिती को ज्ञान और वैराग्य दो

शक्तियाँ हैं। वैराग्यशक्ति है, वही शील है। समझ में आया?

निर्जरा अधिकार में आया न! ज्ञानी को ज्ञान और वैराग्य, (ऐसी) दो शक्तियाँ हैं। पूर्णानन्द प्रभु ऐसा सम्यग्ज्ञान और राग का अभाव, इतना वैराग्यभाव। समझ में आया? अनन्तानुबन्धी का अभाव है, इतना वैराग्यभाव है। ज्ञान-वैराग्य शक्ति। यह ज्ञान-वैराग्य शक्ति। एकदेश वैराग्य, वह शील है, वह समकिती को नरक में भी होता है। आत्मा है न? परिपूर्ण प्रभु, पूर्ण शुद्ध की सत्ता रखनेवाला, जिसमें अशुद्ध विकार की सत्ता है ही नहीं। समझ में आया?

ऐसा **ग्यान जग्यौ जब चेतनकौ तब, कर्म दसा पर रूप कहावै...** तब जो विकल्प आदि होता है, उसे अपनी पर्याय से भिन्न परज्ञेयरूप जानते हैं। यह ज्ञेयरूप रहा, आत्मा ज्ञानरूप हो गया। अज्ञान में ज्ञेय को अपना मानकर ज्ञान को भ्रष्ट कर देते थे। समझ में आया? अपना ज्ञान स्वभाव में अपनी दृष्टि रखकर ज्ञान को ज्ञानरूप रखा, ज्ञेय को ज्ञेयरूप (जानकर) छोड़ दिया। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उत्पन्न है, वह भी परज्ञेय में जाता है। समझ में आया? आहाहा! यह व्यवहार और निश्चय की गड़बड़ सब, निमित्त-उपादान की—चार और क्रमबद्ध की—पाँच। एक की एक बात है। क्रमबद्ध का बड़ा विवाद। यह क्रमबद्ध में एकान्त है, एकान्त है। अरे, भगवान! सुन तो सही, भाई! समझ में आया?

अखण्डधारा परिणाम की प्रत्येक द्रव्य में धारावाही चलती है। उसमें कोई विश्राम नहीं, कोई खण्ड नहीं, कोई फेरफार नहीं। परन्तु ऐसी धारावाही प्रवाह का क्रमबद्ध का निश्चय किसको होता है? जिसकी दृष्टि पर्याय और राग से रुचि छूटकर, चिदानन्द भगवान आत्मा है, उसकी दृष्टि हो तो तब प्रवाह चलता है, उसका ज्ञाता रहता है। आहा! कठिन बात! वह तो कहना चाहते हैं। राग आता है, तो कहते हैं, पररूप, ज्ञेयरूप ज्ञान जानता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप क्रमबद्ध पर्याय कहते हो तो हमें आपका विश्वास है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे विश्वास कहाँ से आया? यह तो पर का (विश्वास) हुआ। क्रमबद्ध में तो निमित्त से राग नहीं होता और पर्याय जो उत्पन्न होती है, उससे भी

द्रव्यदृष्टि नहीं होती और द्रव्यस्वभाव अखण्डानन्द है, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो रागादि है, वह पररूप है। वह क्रम में, राग उस क्रम में आनेवाला था और ज्ञान भी उसी समय में... वह 'ज्ञेयज्ञायक' अपने पुस्तक है न, उसमें डाला है। 'ज्ञेय-ज्ञायक स्वभाव' (ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव) इतना तो याद रखा। 'ज्ञेय-ज्ञायक स्वभाव।'

तो राग, राग के स्थान में क्रम में ज्ञेयरूप रहता है और धर्मी का ज्ञान ज्ञानरूप है। राग का और अपना ज्ञान उसी समय ऐसा ही उत्पन्न होनेवाला था। समझ में आया? आहाहा! अरे! कभी निजस्वरूप क्या है (यह जाना नहीं)। वीतराग कहते हैं, यह आत्मा तो वीतरागस्वरूप ही है। उसकी शक्ति और स्वभाव तो वीतरागमूर्ति आत्मा है। तो वीतरागमूर्ति है तो उसके आश्रय से वीतरागी पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरण, वह भी वीतरागी दशा है। वह वीतरागी दशा चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होती है।

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **ग्यान जग्यौ जब चेतनकौ तब,...** चेतन को ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान नहीं, पर का ज्ञान नहीं। आहाहा! जैसे सर्वज्ञ परमात्मा जिनवरदेव ने जैसा आत्मा देखा है, ऐसा आत्मा का जिसको ज्ञान हुआ। अज्ञानी कहते हैं आत्मा-फात्मा—ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? भगवान जिनवरदेव जिनके ज्ञान में अनन्त आत्मायें भासित होती है। समझ में आया? 'प्रभु तुम जाणग रीति...' गुजराती है। 'प्रभु तुम जाणग रीति, सब जग देखता हो लाल, निज सत्ताअे शुद्ध सौने पेखता हो लाल।'

हे नाथ! हे सर्वज्ञ परमात्मा! आप तीन काल-तीन लोक को देखते हैं, उसमें आत्मा तो शुद्ध सत्ता है, ऐसा सबका (आत्मा) देखते हैं। आपके ज्ञान में... हमारा आत्मा शुद्धस्वरूप है, अनन्त आत्मा शुद्धस्वरूप है, ऐसा आपके ज्ञान में दिखता है। समझ में आया? आत्मा आस्रववाला है और कर्मवाला है, ऐसा भगवान देखते नहीं। भगवान देखते नहीं। भगवान केवली हैं, (उनके ज्ञान में) आत्मा तो ऐसा देखते हैं कि आत्मा वह तो शुद्ध स्वरूप आत्मा ही है। शुद्ध की सत्ता रखनेवाला आत्मा है। पुण्य-पाप तो आस्रव में गये। भगवान ने देखा कि वह तो आस्रव है, कर्म-शरीर अजीव है। शुद्ध सत्ता चैतन्यमूर्ति, वह आत्मा है, ऐसा भगवान ने देखा है। समझ में आया?

वह कहते हैं यहाँ। ओहो! ऐसी शुद्ध सत्ता भगवान चैतन्यमूर्ति अशुद्धता से भिन्न

है। कर्म और शरीर से तो भिन्न है ही। अशुद्ध परिणाम से भिन्न शुद्ध द्रव्यस्वभाव का ज्ञान जगा तो अशुद्धता का परिणाम परद्रव्यरूप से, परज्ञेयरूप से जानने में आया। कठिन बात! दुनिया को क्या करना, इसकी खबर पड़ती नहीं। बाह्य में कुछ करना। जब तक न समझ में आये, तब तक क्या करना? यह शुभभाव तो आते हैं। अज्ञानी को भी आते हैं और ज्ञानी को भी आते हैं। आते हैं, यह दूसरी बात है, परन्तु उस राग को हेय मानकर चैतन्य का आदर करना, उपादेय मानना, उसका अनुभव करना—वह करना है। आहाहा! समझ में आया?

'कर्म विलेछि करै अनुभौ तहां,...' देखो! जब अज्ञान था, तब तो राग और द्वेष और विकार का ही अनुभव था। मलिन का अनुभव करे, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परन्तु जब आत्मा राग से, कर्म से, शरीर से... राग अर्थात् आस्रवतत्त्व और कर्म अर्थात् अजीवतत्त्व, शरीर अजीवतत्त्व है मिट्टी (है)—उससे भिन्न भासित हुआ। आया न? **ग्यान जग्यौ जब चेतनकौ तब,...** आहाहा! ऐसा मैं आत्मा शुद्ध आनन्द, ज्ञान हूँ, तब कर्मदशा परज्ञेय पररूप कहावै, ऐसा कहते हैं। पाठ में ऐसा है न, भाई!

'ज्ञानं ज्ञानं भवति। रागद्वेषद्वयमुदयते तावदेतन्न यावत् ज्ञान ज्ञान भवति न पुनर्बोध्यतां याति बोध्यम्।' ज्ञेय, ज्ञेयपने भासित न हो और ज्ञान, ज्ञानपने भासित न हो, तब तक अज्ञान में राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। देखो, कथन बहुत सूक्ष्म है अमृतचन्द्राचार्य का। समझ में आया? **कर्म विलेछि करै अनुभौ तहां,...** रागरूपी परिणाम, विकाररूपी कर्म अर्थात् कार्य, उसको विलक्षण—भिन्न करके... मेरी चीज़ तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप मैं हूँ। **कर्म विलेछि करै अनुभौ...** राग से भिन्न होकर भगवान आनन्दमूर्ति का अनुभव धर्मी करते हैं। आहाहा! राग का अनुभव करते हैं? राग का अनुभव अज्ञानी को है, ज्ञानी को नहीं है। आहाहा!

मोह मिथ्यात प्रवेस न पावै... भगवान आत्मा राग और अजीव का लक्ष्य और रुचि छोड़कर अपना शुद्ध चैतन्य का लक्ष्य और रुचि का अनुभव करता है तो मिथ्यात्व उत्पन्न नहीं होता। **मोह मिथ्यात प्रवेस न पावै...** वहाँ भ्रमणा रह नहीं सकती। आहाहा! समझ में आया? अध्यात्म बात, बापू! कोई सूक्ष्म है। लोगों ने जानी नहीं, सुनी नहीं और बाहर की प्रवृत्ति में धर्म मान रखा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जब तक शुभराग—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—इस राग में भी जब तक प्रवृत्ति है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी को राग की प्रवृत्ति नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं न, राग साथ में धर्मी धन्धे को नहीं करते, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! वह तो '**बोधतां...**' है न? '**बोधतां याति बोध्यम्**।' वह तो ज्ञेयरूप से ज्ञानी उसे जानते हैं। समझ में आया? है न?

'**ज्ञानं ज्ञान भवति न पुनर्बोधतां याति बोध्यम्**।' ज्ञेय, ज्ञेयरूप जब न हो, ज्ञान, ज्ञानरूप न हो, तब तक राग को अपना मानकर राग का अनुभव करते हैं। आहाहा! तो ज्ञेय, ज्ञान हो गया। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी '**बोध्यम्**' ज्ञेय है। परन्तु जब तक ज्ञेय और ज्ञान भिन्न नहीं जाना, तब वह ज्ञेय ही मैं हूँ, ऐसा राग का—विकार का अनुभव अज्ञानी करते हैं। आहाहा!

परन्तु जब राग से भिन्न शुद्ध सत्तास्वरूप भगवान आत्मा परमानन्द का धाम, ऐसे अन्तर में ज्ञान जगा, तब राग, राग में—बोध्य में—ज्ञेय में रह गया; आत्मा ज्ञान में रह गया। ज्ञानी को ज्ञान का, आनन्द का अनुभव है। अशुद्धता का अनुभव ज्ञानी को है नहीं। गजब बात, भाई! पहले सम्यग्दर्शन क्या है, उसको समझे और उस ओर की दर्शनशुद्धि प्रगट करना, वही पहला कर्तव्य है। समझ में आया?

यह किये बिना सब बिना एक का शून्य है। समझ में आया? आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और पूजा—मोहभजन है। दीपचन्दजी में आया है। सम्यग्ज्ञान दीपिका। अरे, सम्यग्ज्ञान दीपिका क्या? अनुभवप्रकाश। वह दीपचन्दजी हुए न। अनुभवप्रकाश में (कहते हैं कि) मोहभजन है। परमात्मप्रकाश (आदि) सबमें आता है। भाषा .... मोहभजन तेरा। 'भवे भवे जिन पूजियो अज्ञानभावे।' यह परमात्मप्रकाश के अर्थ में (आया है)। समझ में आया? ..... यह बनारसीदास। कलश के अमुक-अमुक भाव शास्त्र में भरे हैं।

मोह मिथ्यात प्रवेस न पावै... आहाहा! चैतन्यद्रव्य में मोह-मिथ्यात्व का प्रवेश तो था ही नहीं, परन्तु मानता था कि मैं रागी हूँ और मोही हूँ, तो मिथ्यात्व का प्रवेश है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! प्रवेश कौन करे? विकार के परिणाम निर्विकारी भगवान स्वभाव में प्रवेश कैसे करे? चैतन्य का कन्द प्रभु स्वभाव का पिण्ड आत्मा,

उसमें विभाव की गन्ध कहाँ से जाये? परन्तु अज्ञानी, अपने स्वरूप का भान नहीं इसलिए राग मेरी चीज़ है, ऐसी मिथ्यात्व की गन्ध घुस गयी है। समझ में आया? वह गन्ध, वासना (शब्द) तो अष्टपाहुड में आता है। अष्टपाहुड में 'गन्ध' ऐसा शब्द आता है। 'गन्ध' ऐसा शब्द है। अज्ञानी को राग की गन्ध आती है, ज्ञानी को आत्मा की गन्ध आती है। कहो, पूनमचन्दजी! क्या है यह वीतरागमार्ग? आहाहा!

मोह मिथ्यात प्रवेस न पावै, मोह गयें उपजै सुख केवल,... प्रथम तो मिथ्यात्व प्रवेश नहीं किया, स्वरूप का भान हुआ—सम्यग्दर्शन (हुआ), पश्चात् स्वरूप में एकाग्र होने से मोह का नाश कर दिया। **उपजै सुख केवल...** अकेला सुख उत्पन्न होता है, केवलज्ञान। अकेला आनन्द और अकेला ज्ञान रह गया। **सिद्ध भयौ जगमांहि न आवै।** उसकी साथ में बात की है। जब मोक्ष हुआ तो फिर अवतार लेते हैं.....

मुमुक्षु : वह बात ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया का उद्धार करने के लिये, राक्षसों का नाश करने और भक्तों का उद्धार करने के लिये। नहीं करते? अवतार नहीं करते भगवान? दूसरे में आता है। अरे, भगवान के भक्त को भय कैसा? भगवान के घर में भय कहाँ? आहाहा! निःशंक, निडर। निर्भय स्वभाव जिसको प्राप्त हुआ (तो) भय कैसा?

परन्तु यह तो कहते हैं न कि मोक्ष में से भी (आकर) परमात्मा अवतार धारण करते हैं। भक्तों का उद्धार (करने) के लिये और राक्षसों का (नाश करने के लिये)। उसका अर्थ यह है कि आत्मा अखण्डानन्द प्रभु अवतार लेता है अर्थात् पर्याय प्रगट करता है। अपनी भक्ति, जो भक्ति थी अन्दर में, उससे वीतराग की पर्याय प्रगट (की) और विकार की पर्याय का नाश (किया)—वह राक्षस का नाश और भक्तों की भीड़ है। यह जन्म है। उत्पाद को जन्म कहते हैं न? अपनी पर्याय उत्पन्न होती है, वह सृष्टि कहो, उत्पत्ति कहो... पर्याय में उत्पत्ति हुई, वह सृष्टि कहने में आती है। पर्याय की उत्पत्ति, सृष्टि अर्थात् उपजा, उसको जन्म कहते हैं। समझ में आया?

अपना आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, राग से भिन्न भान होकर, राग की प्रवृत्ति छोड़ दी और शुद्ध आत्मा की प्रवृत्ति अन्दर अंगीकार की, उसका—राग का नाश होकर

केवल सुख को प्राप्त करता है। समझ में आया? उसको पूर्णानन्द का जन्म होता है। केवलज्ञान, केवलदर्शन (आदि) अनन्त चतुष्टय। अज्ञान और राग-द्वेष(रूपी) राक्षस का नाश होता है। दूसरा राक्षस कौन है और दूसरा भक्त कौन है? भक्त के लिये भगवान ऊपर से उतरते हैं? समझ में आया?

सिद्ध भयौ जगमांहि न आवै। फिर से अवतार होता नहीं। अरे! जिसने अज्ञान नाश करके अपना ज्ञान भान किया, वह अज्ञान फिर होने देता नहीं। पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ हुए, वे फिर अवतार धारण करे, (ऐसा) तीन काल में बनता नहीं। न्याय समझ में आया, न्याय? कि अपना आत्मा... यह तो कहते हैं न, राग की प्रवृत्ति छोड़कर स्वभाव की प्रवृत्ति की, तो राग की प्रवृत्ति करता नहीं समकिती। उसमें आता नहीं, उपजता नहीं। शुद्ध में उपजता है। तो जहाँ पूर्ण शुद्ध हुआ, फिर वह अशुद्ध में आवे, तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? संसार में नहीं आना पड़ता। यह २४वाँ कलश हुआ। २५। नीचे है न २५? ओहोहो! अमृत की धारा है। यह जहर उतारने का मन्त्र है। आहाहा! अरे! उसकी निज निधि कैसी है, उसे सुना नहीं। राग और द्वेष, पुण्य अच्छा है और पाप ठीक नहीं है... मर गया ऐसा ठीक-अठीक करके।

परमात्मप्रकाश में तो कहते हैं। प्रवचनसार ७७ गाथा, प्रवचनसार। पुण्य और पाप दोनों में अन्तर माने, विशेषता माने, '**हिंडदि घोरमपारं संसारं।**' ढोर में जायेगा। ७७ गाथा है। दो सात। ७७ कहते हैं न? सात और सात। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, जो कोई शुभ-अशुभ (पाप) और शुभ-अशुभ पुण्य—दोनों में कुछ अन्तर है, पुण्य ठीक है और पाप अठीक है, ऐसा माननेवाला '**हिंडदि घोरमपारं संसारं।**' आहाहा! अशुद्धता अपनी मानी है। है शुद्धता का पिण्ड प्रभु। समझ में आया? आहाहा! प्रवचनसार समयसार अमृत से भरे हैं। टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य मिले। आहाहा! २५वाँ कलश नीचे।

रागद्वेषाविह हि भवति ज्ञानमज्ञानभावात्,
तौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ न किञ्चित्।
सम्यग्दृष्टिः क्षपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटं तौ,
ज्ञानज्योतिर्ज्वलति सहजं येन पूर्णाचलार्चिः।।२५।।

आहाहा! **परमात्मपद प्राप्ति का मार्ग**। देखो, यह मार्ग है। यह मोक्ष होने का मार्ग, सिद्ध होने का मार्ग है।

★ ★ ★

काव्य - ६०

परमात्मपद की प्राप्ति का मार्ग

(छप्पय छंद)

जीव करम संजोग, सहज मिथ्यातरूप धर।
राग दोष परनति प्रभाव, जानै न आप पर।।
तम मिथ्यात मिटि गयौ, हुवो समकित उदोत ससि।
राग दोष कछु वस्तु नांहि, छिन मांहि गये नसि।।
अनुभौ अभ्यास सुख रासि रमि,
भयौ निपुन तारन तरन।
पूरन प्रकास निहचल निरखि,
बानारसि वंदत चरन।।६०।।

शब्दार्थ:-उदोत=उदय। ससि=शशि (चन्द्रमा)। निपुन=पूर्ण ज्ञाता। तरन तारन= संसारसागर से स्वयं तरनेवाला और दूसरों को तारनेवाला।

अर्थ:-जीवात्मा का अनादिकाल से कर्मों के साथ सम्बन्ध है, इसलिए वह सहज ही मिथ्याभाव को प्राप्त होता है, और राग-द्वेष परिणति के कारण स्व-पर स्वरूप को नहीं जानता। पर मिथ्यात्वरूप अन्धकार के नाश और सम्यक्त्व-शशि के उदय होने पर राग-द्वेष का अस्तित्व नहीं रहता-क्षणभर में नष्ट हो जाता है, जिससे आत्म-अनुभव के अभ्यासरूप सुख में लीन होकर तारनतरन पूर्ण परमात्मा होता है। ऐसे पूर्ण परमात्मा का निश्चयस्वरूप अवलोकन करके पण्डित बनारसीदासजी चरणवन्दना करते हैं।।६०।।

काव्य-६० पर प्रवचन

जीव करम संजोग, सहज मिथ्यातरूप धर।
राग दोष परनति प्रभाव, जानै न आप पर।।
तम मिथ्यात मिटि गयौ, हुवो समकित उदोत ससि।
राग दोष कछु वस्तु नांहि, छिन मांहि गये नसि।।
अनुभौ अभ्यास सुख रासि रमि,
भयौ निपुन तारन तरन।
पूरन प्रकास निहचल निरखि,
बानारसि वंदत चरन।।६०।।

वन्दत चरण। अब उसका अर्थ। **जीवकरम संजोग...** एक चीज़.... से भिन्न है, (उसे) उस परचीज़ का संयोग मानते हैं, और संयोग करते हैं, (वह) स्वाभाविक मिथ्यात्व धरते हैं। उदय-फुदय (कारण) नहीं है। यहाँ तो स्वयं संयोग मानते हैं। जो रागादि संयोगी चीज़ है, कर्म संयोगी (चीज़) है, उसमें दृष्टि करते हैं तो मिथ्यात्वभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! **जीव करम संजोग, सहज मिथ्यातरूप धर... जीवात्मा का अनादिकाल से कर्मों के साथ सम्बन्ध है...** देखो, **इसलिए वह सहज ही मिथ्यात्वभाव को प्राप्त होता है।** परसंग के लक्ष्य से मिथ्यात्वभाव होता है। स्व—असंग चीज़ में संग करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान असंगी चीज़ जिसको राग का भी संग नहीं। ऐसा असंग का जिसने संग किया, उसको शान्ति और आनन्द की उत्पत्ति होती है। उसको सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की उत्पत्ति होती है। और संयोग में लक्ष्य करते हैं, संयोग का सम्बन्ध मानते हैं, उनको मिथ्यात्व और राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। यहाँ सम्यग्दर्शन और चारित्र उत्पन्न होता है। इस ओर मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न होता है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

राग दोष परनति प्रभाव, जानै न आप पर.. देखो! यह मिथ्यात्व के कारण से, राग-द्वेष की परिणति के प्रभाव से जाने नहीं (कि) राग-द्वेष भिन्न है और मेरी चीज़ भिन्न है। **जानै न आप पर..** आप—आत्मा शुद्ध आनन्द और पर अर्थात् रागादि विकार

भिन्न है। यह अज्ञान के कारण से, राग-द्वेष की परिणति के प्रभाव के कारण से, चैतन्य के प्रभाव के अभाव के कारण से... आहाहा!

है न परन्तु अन्दर बहुत भरा है। '**ज्ञानमज्ञानभावात्**' ऐसा है न पाठ? ज्ञान को अज्ञानरूप करते हैं, ऐसा टीका में है, मूल श्लोक में। भगवान आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है, उसको कर्म के संयोग में दृष्टि रखकर ज्ञान को अज्ञान कर देते हैं। आहाहा! यह बात ऐसी है न कि साधारण लोगों को रुचि नहीं और (इसलिए) सूक्ष्म पड़ती है। क्या करना कुछ सूझ पड़ती नहीं। परन्तु क्या चीज़ है? ऐसा समझना, श्रद्धा करना, स्वसन्मुख प्रयोग करना—वह कोई चीज़ नहीं? पण्डितजी! आहाहा! **राग दोष परनति प्रभाव,...** अज्ञानी को, **जानै न आप पर..** राग-द्वेष विभाव है और मेरी चीज़ त्रिकाली शुद्ध है, ऐसा उसको जानते नहीं।

तम मिथ्यात मिटि गयौ,... परन्तु अन्तर्मुख दृष्टि देने से... अन्तर्मुख है, देखो। '**वस्तुत्वप्रणिहितदृशा**।' वस्तु की दृष्टि से त्रिकाल शुद्ध आत्मा में '**प्रणिहित**'—दी हुई दृष्टि से, अन्तर्दृष्टि करने से '**दृश्यमानौ न किंचित्**।' अन्तर में राग-द्वेष किंचित् दिखते नहीं। आहाहा! नन्दकिशोरजी! ऐसी चीज़ है, परन्तु बड़े-बड़े वकीलों ने इसे सुना नहीं पहले।.... यहाँ से होगा, वहाँ से होगा। है न? वहाँ है न? राधास्वामी, कोई कबीरपंथी। ऐसा कुछ होगा, कुछ होगा। धूल भी नहीं, सुन तो सही! होगा अज्ञान। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ के शासन में कही हुई बात, वह दूसरे (सम्प्रदाय में) तीन काल में कहीं हो सकती नहीं। आहाहा!

वास्तव में तो यह है। जिसके मत में सर्वज्ञपद नहीं, एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को जानती है, ऐसी जिसमें सर्वज्ञ की सत्ता की खबर नहीं, उसमें धर्म सच्चा होता ही नहीं। क्योंकि धर्म का मूल सर्वज्ञ परमात्मा है। धर्म अनुप्रेक्षा में लिया है। धर्म अनुप्रेक्षा। बारह (अनुप्रेक्षा) है न? उसमें पहले लिखा है। सर्वज्ञ वह धर्म का मूल है। क्योंकि धर्म उन्होंने जाना है। तो जिसमें सर्वज्ञता नहीं। एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे और जिनके पास राग का कण नहीं, ऐसी सर्वज्ञता जिस सम्प्रदाय—जिस वाडा में नहीं, उसमें कोई धर्म सच्चा होता ही नहीं। समझ में आया?

तम मिथ्यात मिटि गयौ,... यह अन्धकार। स्वरूप की दृष्टि करने से—शुद्ध

चैतन्य की दृष्टि करने से **प्रणिहित**—दृष्टि अन्दर देने से '**न किंचित्**' अन्धकार, राग-द्वेष अन्दर में है नहीं। **हुवो समकित उदोत ससि...** सम्यग्दर्शनरूपी चन्द्रमा प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? पहली करने की चीज़ यह है, पश्चात् चारित्र और स्थिरता, वह तो (बाद की अवस्था) है। आहाहा! मूल चीज़ का भान नहीं और ऊपर व्रत, तप और यह सब चारित्र है। धूल में नहीं चारित्र। समझ में आया? व्रत ऐसा पालते हैं और पंच महाव्रत पालते हैं, वह तो राग है। राग को पालना, वह तो मिथ्यात्व है। यहाँ कहते हैं न? क्या कहा पहले? राग-द्वेष में प्रवृत्ति, वह तो मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया?

हमें राग की प्रवृत्ति करनी पड़े, यह हमारा कर्तव्य है, हमारा आचरण यह है। राग की प्रवृत्ति करनेवाले को तो यहाँ मिथ्यादृष्टि कहा है। सम्यग्दृष्टि को आता है न राग? परन्तु राग में प्रवृत्ति नहीं। राग को तो ज्ञेयरूप से जानते हैं। समझ में आया? यह मार्ग वीतराग का कहा भगवान ने समवसरण के मध्य में कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, तब यह मार्ग कहा था। क्षायिकभाव का मार्ग कहा था भगवान ने। आहाहा! समझ में आया?

तम मिथ्यात मिटि गयौ, हुवो समकित उदोत ससि... चन्द्रमा प्रगट हुआ। चन्द्र की उपमा दी, देखो, शीतलता के लिये। आहाहा! आत्मा शान्त... शान्त... वीतराग—अकषायस्वभाव से भरा हुआ है। ऐसी अकषाय शान्ति की दृष्टि प्रगट हुई, अकषाय शान्ति आयी साथ में। आहाहा! समकित के साथ में, अनन्तानुबन्धी का अभाव (हुआ), इतनी अकषाय शान्ति आयी और चन्द्रमा उगा। और उगा वह उगा, वह पूर्णिमा होगी। दूज उगती है, दूज हुई तो पूनम आयेगी, आयेगी और आयेगी। इसी प्रकार शशि—सम्यग्दर्शन दूज हुई, केवलज्ञान पूनम आये बिना रहेगी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हम कब केवल(ज्ञान) प्राप्त करेंगे? कब हम सिद्ध होयेंगे? अरे! यह सम्यग्दर्शन हुआ तो केवलज्ञान आयेगा, आयेगा और आयेगा। समझ में आया? मार्ग ऐसा है यहाँ। भगवान के मार्ग में ऐसी बात है। आहाहा!

छोटी-छोटी उम्र के कितने ही तो लोग जोर में आते हैं। एक लड़का है न यहाँ, दिलीप—दिलीप। कलकत्ता रहता है। बारह वर्ष का हुआ है। तेरहवाँ वर्ष लगा है। यह सूक्ष्म बात सुनी तो ऐसा कहे, 'ओहो! ऐसी चीज़ जगत को क्यों नहीं बैठती?' ऐसा

कहे। सूक्ष्म में सूक्ष्म वस्तु हों। ग्यारहवीं गाथा चलती थी एक बार। ऐसा कहता था। गृहस्थ है। शरीर भी ऐसा भरावदार है। बैठे ऐसे समयसार लेकर बैठे। अभी कलकत्ता है। वैशाख में आता है। जब अवकाश पड़ता है न... हम भी वैशाख में वहाँ थे। पुस्तक लेकर बैठे, हों! आत्मा है न! उम्र का क्या काम है यहाँ? उसको इतना प्रेम है। ... रुचि और प्रेम से... ऐसा कहे, 'ओहो! ऐसी चीज़ की कथनशैली सुनने में आवे, वह भाग्यशाली है।'—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

पढ़ो, पढ़ो, पढ़ो, उसका पिता कहे न, पढ़ो। छोटा है न। कहे, पढ़े अब। ऐसी पढ़ाई? भणतर, समझे न? पढ़ाई। ऐसी पढ़ाई तो अनन्त बार हुई, क्यों याद नहीं रहा? ऐसी पढ़ाई तो अनन्त बार हुई, क्यों याद नहीं रहा उस पढ़ाई में? ऐसा बोले, ऐसी पढ़ाई अनन्त बार हुई, याद है कुछ? अनन्त बार उल्टा पुरुषार्थ हुआ। एल.एल.बी. और एम.ए. और ऐसे पूंछड़ा तो अनन्त बार हुए थे। उपाधि कहते हैं न? डिग्री को उपाधि कहते हैं न? पूंछड़ा है उपाधि का। वहाँ कहाँ निरुपाधि है? भगवान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान, वह निरुपाधि ज्ञान है। यह ज्ञान, वह ज्ञान है, बाकी सब अज्ञान। समझ में आया?

राग दोष कछु वस्तु नांहि,... देखो। '**दृश्यमानो न किंचित**।' आहाहा! राग-द्वेष की, पुण्य-पाप की अस्ति—मौजूदगी स्वीकार में तब तक थी, जब तक मिथ्यात्व था, तब तक। परन्तु आत्मा में राग-द्वेष है नहीं, ऐसी जहाँ दृष्टि सम्यक् हुई, तो उसमें राग-द्वेष कहीं देखने में आता नहीं। .... संसार है नहीं। हमारी चीज़ में संसारमात्र कोई चीज़ है नहीं। **राग दोष कछु वस्तु नांहि, छिन मांहि गये नसि...** यह अज्ञान तो छिनमांही नाश हो गया। चैतन्य का भान का प्रकाश जहाँ हुआ, चन्द्रमा सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसी काल में **छिन मांहि गये नसि...** यह अज्ञान तो क्षण में नाश हो गया।

अनुभौ अभ्यास सुख रासि रमि,... आहाहा! पश्चात् धर्मी जीव अन्तर में राग से प्रवृत्ति छोड़कर स्वभाव में प्रवृत्ति करने लगे तो अनुभव करते-करते **अभ्यास सुख रासि रमि,...** आनन्द का गंज प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का घूंट पीते-पीते समकिती.... आहाहा! गन्ना पीते हैं न गन्ना? शेरडी। हमारे (गुजराती में) शेरडी कहते हैं। गन्ना का रस। गट... गट... गट... वह तो धूल है। गन्ना का रस तो धूल है धूल, पुद्गल है। यह तो आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द! अज्ञान का नाश कर जहाँ आत्मा का आनन्द का भान

हुआ, **अनुभौ अभ्यास...** अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करने का अभ्यास घूँट-घूँट पीते-पीते, आनन्द की (घूँट) पीते-पीते केवलज्ञान लेगा। ऐसा क्या कहते हैं कि अरेरे! हमें सहन करना पड़ेगा। यह चारित्र में दु:ख है। अरे! क्या कहता है? चारित्र दु:खरूप है? अन्तर में रमना, यह तो आनन्दरूप है। आहाहा!

भाई! चारित्र तो रेत का ग्रास है। दूध के दाँत से लोहे के चने चबाने जैसा चारित्र? ऐसा (चारित्र) है नहीं, सुन तो सही! यहाँ तो अभ्यास करते सुखराशि रमना, उसको चारित्र कहते हैं। आनन्द में रमणता का नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत का विकल्प-फिकल्प तो क्लेश है, दु:ख है। आहाहा! कठिन बातें, बापू!

तीर्थंकरों ने पंच महाव्रत लिये थे न? छद्मस्थ थे (तब)। कुन्दकुन्दाचार्य पालते थे। अरे! यह तो व्यवहारनय का कथन है। पाले किसको? दु:ख को पाले? वह तो ज्ञेयरूप है, (उसे) जानते थे। व्यवहारनय से ऐसा कहने में आता है। व्यवहार का कथन ऐसा है। अन्यथा कहना, वह व्यवहारनय है। यथार्थ जैसा है, वैसा जानना, वह निश्चयनय है। समझ में आया? यह तो वीतरागी क्रीड़ा है, प्रभु! समझ में आया? वहाँ राग की क्रीड़ा के खेल वहाँ हो सकते नहीं।

अनुभौ भयौ निपुण तारन तरन... क्रम लिया न? परमात्मपद की प्राप्ति का मार्ग है न? अन्तर में राग की एकता टूटकर, स्वभाव की एकता (होकर) आनन्द की राशि का भान हुआ। पश्चात् आनन्द राशि में रमते-रमते **भयौ निपुण तारन तरन...** उस परमात्मा (ने) अपने आत्मा को तार दिया और तरनेवाले जीव को निमित्त होते हैं। दूसरे को वे तारने में निमित्त होते हैं। अज्ञानी तारने में निमित्त है? यह बात ली है शास्त्र में। समझ में आया?

भयौ निपुन तारन तरन, पूरन प्रकास निहचल निरखि,... आहाहा! अरे, केवलज्ञान, अनन्त आनन्द जिसने अपनी धारावाही परिणति द्वारा प्रगट किया। वह राग से प्रगट हुआ केवलज्ञान? ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय से केवलज्ञान प्रगट हुआ? मोक्ष का मार्ग यह है? व्यवहाररत्नत्रय, यह मोक्षमार्ग है ही नहीं। वह तो बन्ध के मार्ग में आरोप से कथन करने में (आता है)। समझ में आया?

पूरन प्रकास निहचल निरखि,... यह तो वह अनुभव अभ्यास करते-करते केवलज्ञान प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। यह व्यवहार व्रत पालते हैं और तप करने का विकल्प उठा और उससे केवलज्ञान प्राप्त होता है, ऐसा तीन काल में होता नहीं। श्रद्धा में बहुत अन्तर है। प्रतीति और रुचि में ही पहले अन्तर है। मिथ्यादृष्टि पर से लाभ मानते हैं, पुण्य से और क्रियाकाण्ड से (लाभ मानते हैं), यह मिथ्यात्व के जोर में वे मानते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रद्धा में....

पूज्य गुरुदेवश्री : होती क्या? जहर दिखता है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्थिरता। राग, वह तो जहर है, दुःख है। बाह्य त्याग, वह त्याग नहीं। बाह्य त्याग को त्याग मानना मिथ्यात्व है। पण्डितजी की पकड़ बहुत बाहर की है न! बोलते नहीं बाकी... यहाँ तो राग का त्याग करूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। राग का त्याग आत्मा में है कहाँ? राग का तो अभाव है आत्मा में। त्याग किसका करना?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती को हुई, त्यागी को नहीं। यह चौथे गुणस्थान की बात है। इसके बिना समकित होता नहीं, चौथा (गुणस्थान आये) बिना। यह तो मिथ्यात्व (से) त्यागी हुआ। भारी कठिन बात, भाई! अभी बात समझने में भी कठिन पड़ती है। परिणमे तो कहाँ से? परन्तु बहुत कठिन बात है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ऐसा जानते हैं, मेरी चीज़ में रमणता करने से मुझे केवलज्ञान होगा। वह महाव्रत का विकल्प बीच में आयेगा, परन्तु वह दुःखरूप है। उस कारण से केवलज्ञान होता है, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं। ऐसी बात है। मार्ग तो ऐसा है, भाई!

मुमुक्षु : अन्तरंग, बहिरंग दो प्रकार की क्रिया होती है....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न? बहिरंग होती है, उसको जाने। यह तो आया न? **कर्म दसा पररूप कहावै...** वह तो यह आ गया। राग आता है, उसको पररूप जाने। परन्तु उससे आत्मा को लाभ होता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि—धर्मी कभी नहीं मानते। और माने तो

मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यहाँ बात तो स्पष्ट है। पदमचन्दजी! यहाँ कुछ गड़बड़ नहीं मिलती। यहाँ मार्ग तो स्पष्ट ऐसा है।

आता है न, स्वयं पुकार करते हैं। बनारसीदास कहते हैं। बनारसी वंदत चरन, देखो! आहाहा! चौथा गुणस्थान है न! जिसको अपने स्वरूप में राग से पृथक् होकर दृष्टि हुई, पश्चात् स्वरूप में स्थिरता करते-करते केवलज्ञान हुआ। ऐसे चरण को हम वन्दन करते हैं। कहो, समझ में आया? **बनारसीदासजी चरणवन्दना करते हैं।** अब यह श्लोक २६। २६वाँ श्लोक।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन उसके बाद ही मुनिदशा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे चारित्र होता है। वन्दनयोग्य कौन है? २८ मूलगुण वन्दनयोग्य है? वह तो राग है।

मुमुक्षु : तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव में जो दशा होती है....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो चारित्र है। कहीं पंच महाव्रत के परिणाम को चारित्र कहते हैं? वह तो अचारित्र है। आवे, वह दूसरी बात है, परन्तु उससे लाभ होता है, (ऐसा जानना), वह तो मिथ्यात्वभाव है। राग की क्रिया से आत्मा को लाभ होता है, यह (मान्यता) मिथ्यात्वभाव है। यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में राग से लाभ मानना, यह महामिथ्यात्व है।

देखो, सिद्धान्त में। यही मिथ्यात्व, यही संसार का कारण है। सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष का कारण है। यह कहते हैं। २६-२६। २६वाँ कलश। वह तो है न? अनादि की मान्यता है जगत की, वह कोई नयी नहीं है। वह तो सबसे सुनते हैं न? हम तो सुनते आते हैं पहले से ५८ वर्ष से। अनादि की है। दृष्टि पर के ऊपर है। वस्तु की कीमत नहीं। अपनी चीज़ ऐसी है, उसमें रमण करना, वह चारित्र है—ऐसी खबर नहीं, कीमत नहीं। कुछ करना, करना। तो राग का करना, (ऐसा) मानना, वही मिथ्यात्वभाव है। आ जाता है, उसको जानना।

'करे करम सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।'

पण्डितजी ! आहाहा ! ऐसी बात है । 'जे मारग सिंह संचर्या...' वह लाईन आती है । 'जे मारगे सिंह संचर्या...' वह सूखा खड़ा तृण सूखेगा । रज लगी तृण... 'जे मारगे सिंह संचर्या, रजु लागी तरणा' तृण को रज लगे न सिंह की । 'अे खड उभा सुकशे, नहीं चरे अेने हरणा ।' सिंह जिस रस्ते से चला और उसकी रज उड़कर चरण में चिपटी, हिरण नहीं खा सकेगा, पामर प्राणी नहीं ले सकेगा उसे । वीतरागमार्ग में जो चढ़े, उसकी जिसे झपट लगी, वह अज्ञानी सहन नहीं कर सकेगा । बात तो ऐसी है । समझ में आया ? वह आती है, लाईन आती है हमारे ।

'जे रास्ते सिंह संचर्या, रजु लागी तरणा ।' रज उड़कर तृण (को लगी), उसे हिरण नहीं सूँघ सकेंगे । गन्ध आवे वहाँ हाँ... भागो । इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, देखो ! विवाद होता है न बहुत । राग-द्वेष की उत्पत्ति कर्म से होती है, कर्म से राग-द्वेष होता है... कर्म से राग-द्वेष होता है । उसका यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं । राग-द्वेष कर्म से होता है । आत्मा में तो विकार नहीं है तो विकार कहाँ से हो ? सब विवाद अभी चलते हैं न ? राग-द्वेष, राग-द्वेष, बापू ! कर्म बिना तो राग-द्वेष होता ही नहीं । वह यहाँ इनकार करते हैं । पर्यायदृष्टि से करता है तो होते हैं, राग कर्म कराता नहीं (और) स्वभाव में है नहीं ।

यह कहते हैं, देखो । '**रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्टया नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि**' जरा भी कर्म आत्मा को विकार करावे, यह तीन काल में है नहीं । आहाहा ! इसमें बड़ी झंझट है न । कर्म... कर्म... कर्म... कर्म से होता है... कर्म से होता है । अन्य में ईश्वर से होता है । जैन में कर्म से होता है । ईश्वर से जड़कर्म बड़ा हो गया । जड़ उसको रुलाता है । '**सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात् ।**' देखो, राग-द्वेष को स्व-स्वभाव कहा । हाँ, ३७२ । ३७२ गाथा । समयसार ३७२ गाथा । बहुत सार ! बहुत अलौकिक ! यहाँ तक कहा कि भाषा करने में वीतराग भी अलायक है, अयोग्य है । भाषा जड़ से होती है, आत्मा उसको क्या करे ? समझ में आया ? यह उसका कलश है । ३७२ (गाथा) है न, सारभूत है । उसका पद लेंगे ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १३३, श्रावण कृष्ण ६, गुरुवार, दिनांक १२-०८-१९७१
सर्वविशुद्धि द्वार, काव्य-६१, ६२, ६३

यह समयसार नाटक, सर्वविशुद्धि अधिकार। २६वाँ कलश है नीचे। **राग-द्वेष का कारण मिथ्यात्व है**। राग-द्वेष की उत्पत्ति में कर्मादिक कारण नहीं है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

रागद्वेषोत्पादकं तत्त्वदृष्ट्या नान्यद्द्रव्यं वीक्ष्यते किञ्चनापि।
सर्वद्रव्योत्पत्तिरन्तश्चकास्ति व्यक्तात्यन्तं स्वस्वभावेन यस्मात्।।२६।।

आहाहा! उसका पद।

★ ★ ★

काव्य - ६१

राग-द्वेष का कारण मिथ्यात्व है

(सवैया इकतीसा)

कोऊ सिष्य कहै स्वामी राग दोष परिनाम,
ताकौ मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है।
पुग्गल करम जोग किंधौं इंद्रिनिकौ भोग,
किंधौं धन किंधौं परिजन किंधौं भौन है।।
गुरु कहै छहौं दर्व अपने अपने रूप,
सवनिकौ सदा असहाई परिनौन है।
कोऊ दरब काहूकौ न प्रेरक कदाचि तातैं,
राग दोष मोह मृषा मदिरा अचौन है।।६१।।

शब्दार्थः-मूल=असली। प्रेरक=प्रेरणा करनेवाला। परिजन=घर के लोग। भौन (भवन)=मकान। परिनौन=परिणमन। मदिरा=शराब। अचौन (अचवन)=पीना।

अर्थ:-शिष्य प्रश्न करता है कि हे स्वामी! राग-द्वेष परिणामों का मुख्य कारण क्या है? पौद्गलिक कर्म हैं? या इन्द्रियों के भोग हैं? या धन है? या घर के लोग हैं? या घर हैं? सो आप कहिये। इस पर श्रीगुरु समाधान करते हैं कि छहों द्रव्य अपने अपने स्वरूप में सदा निजाश्रित परिणमन करते हैं, कोई द्रव्य किसी द्रव्य की परिणति के लिये कभी भी प्रेरक नहीं होता, अतः राग-द्वेष का मूल कारण मोह मिथ्यात्व का मदिरापान है।।६१।।

काव्य-६१ पर प्रवचन

कोऊ सिष्य कहै स्वामी राग दोष परिनाम, ताकौ मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है। यह अनादि से भ्रम है न? यह विकार, संसार होता है आत्मा में, वह तो कर्म से होता है। यह मान्यता बाहर की जन्मकर आने के बाद। परन्तु अन्दर में अनादि से यह दृष्टि (है कि) पराधीन—पर के आश्रय से मुझमें विकार होता है, ऐसा मानते हैं। जैन में तो यही बात चलती है। भगवान की मर्जी। कहा न, एक बार गढडा गये थे। तो साधु कहते थे.... ईश्वर बिना एक पत्ता भी हिलता नहीं, ऐसा कहते थे। और जैन में (माने कि) कर्म के बिना आत्मा में विकार होता नहीं। दोनों ही एक प्रकार है। सेठ! **कोऊ सिष्य कहै स्वामी राग दोष परिनाम,....** विषयवासना इत्यादि सब, हों! **ताकौ मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है।** प्रेरक कौन है, उसको कौन कराता है?

पुग्गल करम जोग किंधौं इंद्रिनिकौ भोग,
किंधौं धन किंधौं परिजन किंधौं भौन है॥
गुरु कहै छहौं दर्व अपने अपने रूप,
सवनिकौ सदा असहाई परिनौन है।

देखो, यह विकार की बात चलती है।

मुमुक्षु : गुरु ऐसा ही कहते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु ऐसा ही अनादि से कहते आते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह गोम्मटसार में तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गोम्मटसार में तो निमित्त से कथन है। ज्ञानावरणीय ज्ञान को रोकता है। आता है या नहीं? जड़ रोके आत्मा को?

मुमुक्षु : तो लिखा किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा तो, संक्षिप्त शब्द में कैसे बतावे? अपनी पर्याय अपने से हीनपने परिणमती है तो निमित्तपने ज्ञानावरणीयकर्म का उदय कहने में आता है। परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से ज्ञान की हीन दशा हुई, यह तीन काल-तीन लोक में है नहीं। आहाहा! बड़ी गड़बड़ी।

वह कहते हैं, देखो। **पुग्गल करम जोग...** पुद्गलकर्म का सम्बन्ध है, इसलिए विकार होता है? किसी जगह योग को अलग भी किया है। योग अर्थात् कम्पन, मन-वचन-काय। ऐसा न डालकर पुद्गल योग लिया है। पुद्गल का सम्बन्ध है, कर्म का सम्बन्ध है तो विकार होता है? ऐसा शिष्य प्रश्न करता है। **किंधौं इंद्रिनिकौ भोग,...** यह इन्द्रिय का भोग है तो बन्ध का कारण है? राग-द्वेष उत्पन्न होता है? **किंधौ धन...** यह लक्ष्मी राग-द्वेष का कारण है? बहुत लक्ष्मी (वाले) पड़े हैं। ऊँचे-ऊँचे पैसे मिले तो राग-द्वेष होता है? ऐई, सेठ! लक्ष्मी से राग-द्वेष नहीं होता। शान्ति-फान्ति तो कहाँ थी वहाँ? **किंधौं धन किंधौं परिजन...** कि हमारे कुटुम्ब-परिवार विकार का कारण है? स्त्री अच्छी है, पुत्र अच्छा है, उस कारण से हमारे राग-द्वेष उत्पन्न होता है? क्या है यह?

किंधौ भौन... बँगला, मकान। भौन अर्थात् भवन। बड़ा मकान। सेठ! छह-छह लाख का मकान संगमरमर का। तो यह मकान राग-द्वेष कराता है? यह क्या है? ऐ सेठ! संगमरमर, संगमरमर, लो। चालीस लाख का बँगला है गोवा में। चालीस लाख का एक बँगला। वह तो बड़ा करोड़पति है न! चालीस करोड़ रुपये हैं... दो अरब और चालीस करोड़ इतना पेसा है। बनिया जैन। चालीस लाख का एक बँगला। दस लाख का था, उसमें पैसा बढ़ गया तो चालीस लाख (का बनाया)। वह मकान बड़ा है, वह राग-द्वेष कराता है या नहीं?

मुमुक्षु : महिमा देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी महिमा देता नहीं। यह महिमा क्या चीज़ है? ऐ चिमनभाई! आहाहा! कर्म का सम्बन्ध राग-द्वेष का कारण है? इन्द्रिय का भोग राग-द्वेष का कारण है? धन राग-द्वेष का कारण है? परिजन—परिवार राग-द्वेष का कारण है? और भवन—मकान।

गुरु कहै छहौं दर्व अपने अपने रूप,... है... वही उत्तर है। आहाहा! यह ३७२ गाथा का कलश है। समयसार की ३७२ गाथा बड़ी अलौकिक गाथा है। वहाँ तो ऐसा लिया है—कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि कुम्हार से घड़ा उत्पन्न होता है, ऐसा हम तो नहीं देखते। समझ में आया? मिट्टी से घड़ा होता है, ऐसा हम तो देखते हैं। अज्ञानी कहे, कुम्हार है तो घड़ा होता है। समझ में आया? ३७२ गाथा का कलश है। ३७२ गाथा है न ३७२। देखो, यह गाथा तो बहुत अच्छी है। ३७२, लो। पृष्ठ? यह है न? देखो। **'अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरए गुणप्पाओ।'** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अन्य द्रव्य की पर्याय अन्य द्रव्य की पर्याय को कभी तीन काल में उत्पन्न कर नहीं सकती। गुण शब्द से (आशय) पर्याय। गुण तो त्रिकाल है न? **'तम्हा दु सव्वदव्वा उपज्जंते सहावेण...'**

टीका : अपने जीव में परद्रव्य रागादि उपजाते हैं, ऐसी शंका नहीं करना। ऐसी शंका नहीं करना। टीका है। **'न च जीवस्य परद्रव्यं रागादीनुत्पादयतीति शंक्यम्..'** अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। जैन में तो वही है। बस, कर्म का उदय आया, ज्ञानावरणीय का उदय आया तो ज्ञान ढँकता है। ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम हो तो ज्ञान उत्पन्न—प्रगट होता है।

मुमुक्षु : पाठशाला में लड़कों को यही सिखाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करें? शास्त्र में भाषा ऐसी है। उसमें क्या है, देखो! क्योंकि अन्य द्रव्य द्वारा अन्य द्रव्य के गुण का उत्पाद कराने की अयोग्यता है। आहाहा! भगवान में भी भाषापर्याय करने की अयोग्यता है। समझ में आया? कुम्हार में घड़ा बनाने की अयोग्यता है। अयोग्यता शब्द पड़ा है।

मुमुक्षु : अलोक में जाने की?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध में अलोक में जाने की अयोग्यता है। वही शब्द पड़ा है, देखो।

'**अन्यद्रव्येण अन्यद्रव्यस्य गुणोत्पादकरणस्यायोगात्।**' संस्कृत है। आहा! 'अयोगात्'। ऐसी स्पष्ट बात है, तथापि ऐसा (कहे), नहीं, वह तो कर्म का उदय आवे तो ऐसा जीव को विकार करना पड़ता है। क्योंकि वह तो निमित्त होकर आता है। जैसा निमित्त उदय आया, उस प्रमाण से विकार होता है। नोकर्म तो, विकार करे तो निमित्त का आरोप दिया जाता है। परन्तु कर्म तो निमित्त होकर ही आता है कि आत्मा को विकार करावे। ऐसी बात चलती है। कहते हैं कि अन्य द्रव्य द्वारा,—अन्य द्रव्य द्वारा अन्य द्रव्य की पर्याय का उत्पाद कराने की अयोग्यता है। क्यों? सर्व द्रव्यों का स्वभाव का उत्पाद... देखो, विकार भी उसका स्वभाव कहने में आता है। अपना 'स्वस्थ भवनं स्वभाव:' विकार भी अपनी पर्याय में अपने से होता है, इसलिए—उस कारण से भगवान 'अमृतचन्द्राचार्य' स्वभाव कहते हैं। यह बात दृष्टान्त....

देखो, मिट्टी घटभाव से उपजती है तो क्या कुम्हार के स्वभाव से उपजती है या मिट्टी के स्वभाव से उपजती है? अमृतचन्द्राचार्य प्रश्न करते हैं। टीका : मिट्टी घड़े के भाव से उत्पन्न होती है या कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न होती है? यदि कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न होती हो तो कुम्हार का घड़ा करने का अहंकार है, ऐसे पुरुष रहेगा, उसका हाथ आदि व्यापार करते हैं तो पुरुष के आकार से घड़ा होना चाहिए। पुरुष के स्वरूप से घड़ा होना चाहिए। ऐसा तो होता नहीं। आहाहा! क्योंकि अन्य द्रव्य का स्वभाव से अन्य द्रव्य का परिणाम उपजना देखने में आता नहीं। देखने में आता नहीं, ऐसा आचार्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लकड़ी ऊँची होती है तो उसकी पर्याय को करनेवाली वह लकड़ी है। अँगुली से (ऊँची) हुई, ऐसा हमको देखने में नहीं आता, ऐसा आचार्य कहते हैं। समझ में आया?

इसी प्रकार अन्य द्रव्य के स्वभाव से किसी द्रव्य का परिणाम—उत्पाद देखने में नहीं आता। ऐसा है तो मिट्टी कुम्हार के स्वभाव से उपजती नहीं है। मिट्टी कुम्हार के स्वभाव से उत्पन्न होती नहीं, परन्तु मिट्टी के स्वभाव से उपजती है। मिट्टी अपने स्वभाव से उत्पन्न हुई है। घड़े को मिट्टी करे। मिट्टी ने किया है, कुम्हार ने नहीं। गजब बात!

रोटी स्त्री ने नहीं की। कुम्हार का उपादान कुम्हार में रहा। वह निमित्त वह उसमें—निमित्त में, परन्तु उसका उपादान तो उसमें है। निमित्त क्या करे उसमें? ऐसा कहते हैं। रोटी ने क्या किया? रोटी ने अपने आकार से रोटी बनाई। कहीं स्त्री से बनी है? वह तो आटा होता है न, क्या कहते हैं? लोई, लोया। उसमें जो बेलना पड़ता है न लकड़ी का? बेलन। तो बेलन ने कहीं रोटी बनायी है? चौड़ी जो होती है तो बेलन से होती है? तो बेलन का स्वभाव अन्दर आना चाहिए। वह तो अपना आटा के स्वभाव से रोटी लम्बी, चौड़ी होती है।

मुमुक्षु : आटे में है कार्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह परिणमन है न, तो परिणमन करते हैं। देखो, यहाँ तो कहते हैं, क्योंकि अपने स्वभाव के कारण से द्रव्य के परिणाम का उत्पाद देखने में आता है। ऐसा होने से मिट्टी अपने स्वभाव को नहीं उल्लंघती होने से कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं। देखो, टीका संस्कृत है। देखो। कुम्हार घड़े का कर्ता है ही नहीं। कुम्हार के स्वभाव को नहीं स्पर्शती हुई अपने स्वभाव से कुम्भभाव से मिट्टी उपजती है। आहाहा! यह तो दृष्टान्त दिया, हों! इसी प्रकार रोटी, भाषा, शरीर। शरीर जो ऐसा चलता है तो उसके परिणाम से ही उत्पाद होकर चलता है। आत्मा के स्वभाव से शरीर नहीं चलता। समझ में आया? आत्मा, ऐसा शरीर चलता है, उसका कर्ता है ही नहीं।

यह कहते हैं कि हमको तो, जैसे मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होता है, उसी प्रकार प्रत्येक पर्याय अपने द्रव्य से उत्पन्न होती है, ऐसा हमको देखने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान कैसे होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने कारण से। क्या ज्ञानावरणीय का उदय गया तो केवलज्ञान होता है?

मुमुक्षु : वज्रवृषभनाराच संहनन?

पूज्य गुरुदेवश्री : वज्रवृषभनाराच संहनन जड़ की पर्याय है। केवलज्ञान की पर्याय अपने द्रव्य के कारण से उत्पन्न होती है। ज्ञानावरणीय गया तो उत्पन्न हुआ, वज्रवृषभनाराच संहनन है तो उत्पन्न हुआ, मनुष्य देह है तो उत्पन्न हुआ—यह बात,

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमको तो देखने में नहीं आता। तेरी अंधी दृष्टि में देखने में आवे तो तेरी स्वतन्त्रता है। तुम्हारी मान्यता सब झूठी थी। सेठ! ....यह तो कलश है।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं लिखा, नेमिचन्द्र आचार्य ने लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी ने लिखा नहीं। नेमिचन्द्र सिद्धान्त आचार्य ने लिखा नहीं। लिखा, वह तो निमित्त का कथन से कहा हो। परन्तु उससे होता है, ऐसा कोई आचार्य तीन काल में कहते नहीं। दिगम्बर सन्तों ने तो स्वतन्त्रता का ढ़िंढोरा पीटा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है, कोई घर की बात वे नहीं कहते। हम तो कुम्हार का... कहते हैं, देखो। सर्व द्रव्य अपने स्वभाव को नहीं उल्लंघते होने से निमित्तभूत अन्य द्रव्य परिणाम का उत्पादक है ही नहीं। सर्व द्रव्य निमित्तभूत अन्य द्रव्य के स्वभाव को नहीं स्पर्शते हुए, अपने स्वभाव से अपने परिणामभाव से उपजते हैं। बहुत स्पष्ट! बहुत स्पष्ट!

देखो, कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं।

मुमुक्षु : वह तो कथंचित् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् नहीं, सर्वथा उत्पादक है ही नहीं। ऐई! कथंचित् उत्पादक और कथंचित् (नहीं)। कुम्हार घड़े का सर्वथा उत्पादक है ही नहीं। मिट्टी अपने घड़े का सर्वथा उत्पादक है। उससे (कुम्हार से) नहीं है, वह अनेकान्त है। कथंचित् मिट्टी से और कथंचित् घड़ा (कुम्हार से), ऐसा अनेकान्त तो है ही नहीं, वह तो फुदड़ीवाद हुआ। मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होता है, कुम्हार से नहीं, उसका नाम अनेकान्त है। कहो, समझ में आया? रोटी अपने आकार से उत्पन्न होती है, वह बेलन से और नीचे क्या कहलाता है वह लकड़ी का? चकला और स्त्री का हाथ, उसमें कभी होती नहीं।

मुमुक्षु : वह नहीं हो तो भी हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन नहीं हो, परन्तु वह हो तो उसके घर रहा। वहाँ कहाँ आ गया? आहाहा! समझ में आया?

कुम्हार घड़े का उत्पादक है ही नहीं, देखो न! आहाहा! हम तो ऐसा नहीं देखते,

कहते हैं। तुझे दिखता है अन्ध आँखों से। आहाहा! नन्दकिशोरजी! देखो यह, देखो। .... धर्म का मार्ग ऐसा है, भगवान! किसी की कल्पना की घर की चीज़ है? वस्तु— चीज़ ऐसी है। क्योंकि उत्पाद होता है, ध्रुव रखकर अपने से उत्पाद होता है। चाहे तो विकार का उत्पाद हो और चाहे तो सम्यग्दर्शन का उत्पाद हो। दर्शनमोह गया तो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई, ऐसा हमको देखने में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। चारित्रमोह गया तो चारित्र की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा हमको—कुन्दकुन्दाचार्य को देखने में आता नहीं। आहाहा! अपने परिणमन के काल में पर्याय की योग्यता से जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह अपने से उत्पन्न होती है, पर से नहीं। आहाहा! ......

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हमको तो पहले जब आया था। ... यह (संवत्) १९७१ के वर्ष में जब अन्दर से बात आयी थी। ५५-५६ वर्ष हुए। लाठी (गाँव)। भगवती (सूत्र) पढ़ते थे, हम श्वेताम्बर का भगवतीसूत्र (पढ़ते थे)। सोलह हजार श्लोक हैं। सवा लाख (श्लोक प्रमाण) संस्कृत टीका है। .... ओहो! अन्तर में तो ऐसा आया। संशय अर्थात् मिथ्यात्व उत्पन्न होता है, (वह) अपने पुरुषार्थ से उत्पन्न होता है, कर्म से किंचित् उत्पन्न होता नहीं। ऐसी बात पहले प्रसिद्ध की।

लाठी। (संवत्) १९७१। ऐकोत्तेर, समझे न? सत्तर और एक। गड़बड़ हो गयी गड़बड़। लोगों को (लगा), यह क्या? बोले नहीं। हम तो शास्त्र का आधार लेकर बोलते थे। देखो, शास्त्र। श्वेताम्बर का, हों! श्वेताम्बर का भगवतीसूत्र है, उसका ४७ शतक है। १६००० श्लोक हैं, सवा लाख (श्लोक प्रमाण) संस्कृत टीका है। सत्रह बार तो उसे पढ़ा है। सत्तर समझे? दस और सात। सवा लाख (श्लोक प्रमाण) संस्कृत टीका और सोलह हजार श्लोक। यह उसमें लिखा है पहले में।

संशय अर्थात् मिथ्यात्व का उत्पाद आत्मा से होता है। यह यहाँ भी कहते हैं, देखो! हमने पढ़ा न! राग-द्वेष का कारण मिथ्यात्व है, दूसरे कारण से (नहीं)। भ्रमणा है अज्ञानी को अज्ञान से। इस कारण से राग-द्वेष की उत्पत्ति अपने कारण से है; दर्शनमोह के कारण से बिल्कुल नहीं और दर्शनमोह का अभाव हो तो समकित होता है, ऐसा तीन काल में नहीं। शास्त्र में आता है न कि केवलज्ञानावरणीय के क्षय से

केवलज्ञान होता है। वह तो निमित्त का कथन है। समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र में अन्त में आता है।

यहाँ तो कहते हैं कि अपना आत्मा, जिस काल में जो रागरूप परिणमन करो, वह भी अपने से है। मिथ्यात्वरूप परिणमन करो तो अपने से है, सम्यग्दर्शन का परिणमन करो तो भी अपने से है। निसर्गज—अधिगमात् कहने में आता है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। वह अपने से ही उत्पन्न होता है। समझ में आया? ऐसी द्रव्य की अनादि मर्यादा है। आहाहा! किसी द्रव्य में किसी का प्रवेश है नहीं। किसी पर्याय का किसी की पर्याय में प्रभाव नहीं पड़ता। प्रभाव नहीं पड़ता। आहाहा! गजब बात भाई! गड़बड़ हो गयी।

एक बार व्याख्यान में मूलचन्दभाई थे। (संवत्) १९७१। ऐसे तो व्याख्यान नहीं करता था, परन्तु अष्टमी और पूर्णिमा तथा अमावस्या का अपवास हो न लोगों को। तो लोग कहे, कानजीमुनि वांचे, कानजी मुनि वांचे। भाई! हम व्याख्यान करने को तो निकले नहीं, मैं तो अपना (कल्याण) करने को निकला हूँ। हमारे गुनु ने बहुत कहा कि कानजी! वांच। लोग बहुत माँग करते हैं। तब पच्चीस वर्ष की उम्र। अभी तो ८२ हुए। और सारा अभ्यास तो किया था श्वेताम्बर शास्त्र का। 'वांच, तू वांच। कानजी! वांच तू। तेरे वांचन में नया-नया न्याय निकलेगा। तुम एकान्त में वांचते हो तो इसलिए मेरे को लाभ होगा....' महाराज! फिर से मुझे नहीं कहना। मैं व्याख्यान वांचने को नहीं निकला।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय की बात है न। गुण की बात है कहाँ? गुण तो त्रिकाली है। अपनी पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। उस पर्याय का उत्पादक... घड़ा क्या है? पर्याय है। राग-द्वेष है, वह पर्याय है। राग-द्वेष की उत्पत्ति अपने से होती है। कर्म से और पर से किंचित्—बिल्कुल होती नहीं। समझ में आया? गुण कहाँ आया उसमें? गुण तो त्रिकाल है। पर्याय की उत्पत्ति है और पर्याय का व्यय है। गुण तो त्रिकाल है। द्रव्य और गुण तो त्रिकाल है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, देखो न! कुम्हार घड़े का उत्पादक है नहीं, है नहीं। आहाहा! चिल्लाहट मचाये ... सबमें निमित्त

से होता है, निमित्त से होता है, ऐसा रगड़ दिया है। यहाँ तो उत्थापते हैं। पर से आत्मा में विकार किंचित् उत्पन्न होता नहीं। आया न शास्त्र में? क्या आया?

'**न अन्य द्रव्यं वीक्ष्यते किंचनापि।**' किंचित् भी परद्रव्य अपने को विकार करावे और धर्म करावे, ऐसी चीज़ तीन काल में है नहीं। समझ में आया? यह ३७२वीं गाथा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस मिट्टी में... वह आया है, उसमें तत्त्वज्ञान मीमांसा में। मिट्टी में घड़ा उत्पन्न होने का (समय) है, उसी समय उत्पन्न होगा। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में से तत्त्वज्ञान मीमांसा में फूलचन्दजी ने डाला है। कुम्हार कर्ता है नहीं। उसकी पर्याय उसमें होती है। उसकी पर्याय उसमें होती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पर्याय में वह है। घड़े की पर्याय क्या करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। सब झूठ बात है। इसलिए तो यह श्लोक है।

उसका विकल्प तो निमित्त है। विकल्प तो उसमें है। घड़े की पर्याय तो मिट्टी से हुई है। द्रव्य है तो उसका उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने से है और कुम्हार का उत्पाद-व्यय अपने से है। कुम्हार के कारण से घड़े की उत्पत्ति—उत्पाद हुआ, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है। यह बड़ी गड़बड़ है अभी। हम तो पहले जब (संवत्) १९७१ में निकले, बड़ी गड़बड़ हो गयी। दामोदर सेठ कर्म का बड़ा पक्षकार था। कर्म का बड़ा पक्षकार। स्थानकवासी में था। ... पश्चात् श्वेताम्बर मिला। श्वेताम्बर मिला, वह कहे कि ऐसा है। बिल्कुल नहीं।

एक साधु मिला था श्वेताम्बर, हों! (संवत्) १९८४ के वर्ष में। वह हमारे उपाश्रय में आया था। संस्कृत, व्याकरण का बहुत विद्वान। दिखाव पण्डित का सा परन्तु व्याकरण और संस्कृत का खास व्यक्ति। इतनी बुद्धि। आचारांग, सूयगडांग, सब मुखाग्र। मेरे पास सुनने को आया था उपाश्रय में। अपने आज रात्रि में चर्चा करेंगे। यह बात हुई

तो ऐसा कहते हैं, 'ऐसी बात हमने अभी तक कहीं सुनी नहीं। हम शास्त्र बनाते हैं, परन्तु यह बात (कभी सुनी नहीं)।'

बापू! यह तो वस्तु का स्वरूप है। प्रत्येक पदार्थ में समय-समय में उत्पाद-व्यय होता है या नहीं? यह उत्पाद-व्यय पर के कारण से होता है या अपने कारण से होता है? निमित्त और राग कौन देखे परन्तु? जब अपनी पर्याय के उत्पन्न का काल है, तो अपनी योग्यता से उत्पन्न होती है, निमित्त हो। (निमित्त) हो, तो क्या उसने किया है? निमित्त अपनी पर्याय को करे या पर की पर्याय को करे? यही अन्तर है। दो क्रिया एक समय में करे एक (द्रव्य, ऐसा माने) वह तो मिथ्यादृष्टि है। जैन में अभिप्राय ऐसा है नहीं। गाथा में आया है। ओहोहो!

गुरु कहै छहौं दर्व... देखो! भाषा तो देखो! **अपने अपने रूप, सवनिकौ सदा असहाई परिनौन है।** (सब) द्रव्य का परिणमन असहाय है—पर के कारण से है (नहीं)। आहाहा! मूलचन्दभाई! कहो, भाषा की पर्याय करने में तीर्थंकर भी अयोग्य है, ऐसा कहते हैं। ६६ दिन में वाणी निकली। भगवान को केवलज्ञान वैशाख शुक्ल दसमी को हुआ था। महावीर भगवान को (केवलज्ञान) वैशाख शुक्ल दसमी और वाणी निकली श्रावण कृष्ण एकम। वाणी की पर्याय तो जब होने की होती है तो होती है। क्या आत्मा से होती है वह? आहाहा!

मुमुक्षु : गणधर की उपस्थिति नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त की बात है। गणधर आये तो भाषा की पर्याय भाषा के काल में उत्पन्न हुई है। तीर्थंकर से भी वाणी नहीं निकली, वह गणधर के कारण से वाणी निकले?

यह निमित्त-उपादान का बड़ा झगड़ा है। उसका स्पष्टीकरण है। यह तो विकार की बात है, हों! विकार भी अपने से अपने कारण से उत्पाद होता है। पर के कारण से '**किंचिनापि। न अन्यद्रव्यस्य नान्यद् द्रव्यं वीक्ष्यते किंचिनापि।**' उसका अर्थ करते हैं बनारसीदास। **गुरु कहै छहौं दर्व अपने अपने रूप, सवनिकौ सदा...** तीनों काल... सर्व को तीन काल **असहाई परनौन है।** पर की सहायता बिना प्रत्येक पदार्थ का अपने कारण

से परिणमन है। आहाहा! यह चर्चा तो हमारे बहुत होती थी न, पहले सम्प्रदाय से होती थी। हमने तो सम्प्रदाय में सब देखा है न! समयसार, समयसार नाटक सब देखा है, सब पढ़ा है। हम तो लोगों के साथ चर्चा करते थे। समझ में आया?

कोऊ दरब काहूकौ न प्रेरक कदाचि तातैं,... यह '**किंचिनापि**' आया। कोई द्रव्य किसी (अन्य) पर्याय को कदापि प्रेरक नहीं है। **न प्रेरक कदाचि....** तब है क्या? विकार होता है, वह स्वभाव तो नहीं। विकार तो निमित्त से ही होता है, नहीं तो विकार स्वभाव हो जाये? यहाँ कहते हैं कि विभाव अपना (पर्याय) स्वभाव है। वैभाविक शक्ति नाम का आत्मा में गुण है। वह निमित्त आधीन परिणमता है, (परन्तु) अपने आधीन स्वतन्त्रपने, पर से परिणमता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! सिद्ध में भी वैभाविकशक्ति तो है ही। निर्मल परिणमती है। अपने कारण से निर्मल परिणमती है। यहाँ अपने कारण से विभावरूप परिणमती है। वैभाविकशक्ति त्रिकाल गुण आत्मा में है। सिद्ध में भी वैभाविकशक्ति है, परन्तु उस शक्ति का परिणमन शुद्ध है अपने कारण से। यहाँ परिणमन अशुद्ध है, वह भी अपने कारण से, पर के कारण से है नहीं। आहाहा!...

राग दोष मोह... देखो तीनों। मोह अर्थात् मिथ्यात्व। **मृषा मदिरा अचौन है।** आहाहा! अर्थ है न। अर्थ : **शिष्य प्रश्न करता है कि हे स्वामी! राग-द्वेष का परिणाम का मुख्य कारण क्या है? पौद्गलिक कर्म हैं? या इन्द्रियों के भोग हैं? या धन है? या घर के लोग हैं? या घर है? सो आप कहिए।** गुरु समाधान करते हैं, **छहों द्रव्य अपने-अपने स्वरूप में सदा निजाश्रित परिणमन करते हैं।** समय-समय में आत्मा अपना और छह द्रव्य अपने आश्रित पर्याय में परिणमते हैं। आहाहा! इतना स्पष्ट होने पर भी.... यह ज्ञानावरणीय ने अपने में ज्ञान हीन कर दिया, दर्शनमोह ने मिथ्यादर्शन उत्पन्न कर दिया, अन्तरायकर्म ने अपने में वीर्य की हानि कर दी—यह सब झूठ है। समझ में आया?

यह तो पहले कहा था न? 'कर्म बिचारै कौन? भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात, लोह की संगति पाई।' लोह का संग किया तो घन पड़ते हैं। इसी प्रकार निमित्त का संग किया तो विकार अपने से उत्पन्न होता है, पर से नहीं। इतना ठिकाना नहीं कि विकार अपने से उत्पन्न होता है या पर से उत्पन्न हो? पर को सिखाना न? भैया! तुम हट जाओ। इसको विकार छोड़ना है। कर्म को शिक्षा देना? भैया! तुम विकार कराते हो तो

दूर हो जाओ, इसको धर्म करना है। जड़ को उपदेश देना? उपदेश तो आत्मा को दिया है। आचार्य (कहते हैं), हम तो आत्मा को उपदेश देते हैं (कि) जो स्वतन्त्र भूल करता है। कर्ता अर्थात् स्वतन्त्रपने करे, वह कर्ता और कर्ता का इष्ट, वह कर्म अर्थात् कार्य। अज्ञानी कर्ता और उसका इष्ट विकारभाव। तो वह कर्ता (होकर) अपने से (विकार) उत्पन्न करता है। कर्म से बिल्कुल नहीं, परिवार से नहीं, कर्म से नहीं, नोकर्म से नहीं। दो लिये न? पुद्‌गलकर्म योग.... दोनों ही नहीं। समझ में आया?

अपनी पर्याय अपने से स्वतन्त्ररूप से उत्पाद करनेवाला आत्मा है। परमाणु भी अपनी पर्याय उत्पन्न करनेवाला स्वतन्त्र है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अज्ञानी विभाव करता है, अपने से करता है। वही बात चलती है। समझ में आया? 'भावकर्म निज कल्पना इससे चेतनरूप, जड़कर्म की...' आगे जड़कर्म वर्णन किया।

भावकर्म तो चैतन्य की दशा है। विकार (वह) चिदाभास है। चिदाभास अपनी पर्याय आत्मा अपने से उत्पन्न करता है। जब तक मिथ्यात्व है, तब तक भ्रमणा है, तब तक दृष्टि राग के ऊपर, पर के ऊपर है, तो राग की उत्पत्ति अज्ञानी अपने से करता है। ज्ञानी को अपने द्रव्य के ऊपर दृष्टि है तो राग की उत्पत्ति करता नहीं। यहाँ तो यह लिया न? मिथ्यात्व है तब तक ही.... देखो, राग-द्वेष का कारण मिथ्यात्व परिणाम है। विपरीत मान्यता, वह राग-द्वेष का कारण है। कर्म-फर्म कारण है नहीं। आहाहा! गजब! भूल किसकी है भूल?

आड़ी आँख करते हैं न आड़ी, तो चन्द्रमा दो दिखते हैं। चन्द्रमा दो नहीं, चन्द्रमा तो एक ही है। ऐसे करे तो दो दिखते हैं। तूने आँख आड़ी की न? आड़ी क्या कहते हैं? टेढ़ी, टेढ़ी। ऐसी तूने आड़ी-टेढ़ी दृष्टि की... चन्द्रमा दो दिखे। दो है क्या? अज्ञान से ऐसा भासित होता है। ऐसी टेढ़ी—विपरीत दृष्टि करते हैं, इस कारण से उसमें विकार और मिथ्यात्व और राग-द्वेष होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कल आ गया न ? यह कर्ता-कर्म में आ गया। कर्ता-कर्म में आ गया।

'परसंग एव' अर्थात् पर का संग करता है तो विकार होता है। स्फटिक का दृष्टान्त दिया है। स्फटिकमणि में लाल और पीले फूल के संग में जो झाँईं दिखती है, वह अपनी योग्यता से दिखती है। फूल के कारण से नहीं। यदि फूल के कारण से ऐसा हो तो लकड़ी लो। यहाँ रखो। वहाँ नहीं होगी, लाल झाँई नहीं होगी। क्योंकि इसकी योग्यता नहीं है। स्फटिक में होती है क्योंकि उसकी योग्यता ऐसी है। इस कारण से लाल-पीली दिखती है। फूल के कारण से नहीं। समझ में आया ? उसकी योग्यता है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक में लिया है। 'योग्यता ही शरण है।' तत्त्वार्थ राजवार्तिक। अकलंकदेव (कृत)। पर्याय की योग्यता ही शरण है, दूसरा कोई कारण नहीं। अपनी पर्याय की योग्यता से मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न करता है। पर के कारण से बिल्कुल नहीं। पर के कारण से माने, वह अपनी पर्याय का नाश करता है। पर्याय का नाश करता है तो पर्याय का आधार द्रव्य का भी नाश करता है। क्योंकि जब राग-द्वेष की उत्पत्ति मिथ्यात्व आदि उत्पन्न होता है, वह गुण की उल्टी दशा—पर्याय का अंश स्वतन्त्र अपने कारण से न माने (और) पर के कारण से (माने तो) वह पर्याय तो अपनी रही नहीं। तो गुण की उस समय की पर्याय कौनसी ? उस पर्याय का नाश किया तो गुण का भी नाश कर दिया। समझ में आया ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई !

मुमुक्षु : उत्पाद, व्यय ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उत्पाद-व्यय भाषा। भगवान उमास्वामी ने तो कहा, 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।' पर के कारण से उत्पाद-व्यय है ? यह तो राजवार्तिक में कहा है एक जगह। पर्याय दो कारण से उत्पन्न होती है, ऐसा भी है। वह तो निमित्त का ज्ञान कराते हैं। निमित्त कराता है, कर्ता है, ऐसा है नहीं। ..... वह तो देखा है। दस हजार पुस्तकें हैं। रखो। उसमें आया है, वाँचना। हमारे पास बहुत हैं। लेख आया था न तीन वर्ष पहले। उसकी दस हजार पुस्तकें हैं। उसमें भी ऐसा लिखा है, बहुत लिखा है। मिली तुमको ? जिसके पास वह पुस्तक न हो, वे सब लेने आना वहाँ। बहुतों को दी है और रखी है वहाँ। न हो, वे लेने आना वहाँ स्वाध्यायमन्दिर। दोपहर में निवृत्ति हो न तब।

यहाँ तो कहते हैं, **राग-द्वेष का मूलकारण मोह मिथ्यात्व का मदिरा पान है...** देखो। आहाहा! अपने चैतन्य भगवान को भूलकर निमित्त की रुचि और संयोग की मित्रता (की), मित्रता के कारण से मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न होता है। प्रवचनसार में ऐसा लिया है। निमित्त की मित्रता। मित्रता छोड़ता नहीं। आहाहा! प्रवचनसार। पीछे है। उसको निमित्त की मित्रता है। प्रवचनसार टीका। आहाहा! पर के साथ सम्बन्ध क्या है? एक-दूसरे में तो अभाव है। एक द्रव्य की पर्याय में दूसरे द्रव्य की पर्याय का तो अभाव है। अभाव है, वह दूसरा अभाव यहाँ भाव कैसे कर दे? उसमें तो अभाव है, तो भाव कैसे कर दे? समझ में आया? आहाहा! यह ६१ हुआ। **अज्ञानियों के विचार में राग-द्वेष का कारण**। २७ कलश।

'यदिह भवति रागद्वेषप्रसूतिः, कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र' जरा भी दूषण पर का नहीं है। अरे, अरे! आदत पड़ गयी है। **कतरदपि**—कुछ भी... **परेषां दूषणं नास्ति तत्र। स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो भवतु विदितम**—यह विदित हो। **अस्तु भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः**। यह अज्ञान से अस्त—नाश हो जाओ। समझ में आया? उसमें कहा, देखो। ६२। दोनों इकट्ठे हैं।

★ ★ ★

काव्य - ६२-६३

अज्ञानियों के विचार में राग-द्वेष का कारण

(दोहा)

कोऊ मूरख यौं कहै, राग दोष परिनाम।
पुग्गलकी जोरावरी, वरतै आतमराम।।६२।।
ज्यौं ज्यौं पुग्गल बल करै, धरिधरि कर्मज भेष।
रागदोषकौ परिनमन, त्यौं त्यौं होइ विशेष।।६३।।

शब्दार्थः-परिनाम=भाव। जोरावरी=जबरदस्ती। भेष (वेष)=रूप। विशेष=ज्यादा।

अर्थः-कोई कोई मूख ऐसा कहते हैं कि आत्मा में राग-द्वेषभाव पुद्गल की

जबरदस्ती से होते हैं।।६२।। वे कहते हैं कि पुद्‌गल कर्मरूप परिणमन के उदय में जैसा जैसा जोर करता है, वैसे वैसे बाहुल्यता से राग-द्वेष परिणाम होते हैं।।६३।।

काव्य-६२-६३ पर प्रवचन

कोऊ मूरख यौं कहै, राग दोष परिनाम।
पुग्गलकी जोरावरी, वरतै आतमराम॥६२॥

कर्म के उदय के जोर के कारण से आत्मा राग-द्वेषरूप होता है, ऐसा कोई मूर्ख कहे।

कोऊ मूरख यौं कहै, राग दोष परिनाम।
पुग्गलकी जोरावरी, वरतै आतमराम॥

पुद्‌गल के जोर से अपने में जबरदस्ती से विकार होता है, ऐसा अज्ञानी मूर्ख यौं कहे। **ज्यौं ज्यौं पुग्गल बल करै,...** आहाहा! ज्यों-ज्यों उदय का जोर हो। **धरिधरि कर्मज भेष...** नये-नये कर्म के वेश धारण करे और कर्म का जोर आवे तो विकार करना पड़े। **रागदोषकौ परिनमन, त्यौं त्यौं होइ विशेष।** अज्ञानी ऐसा कहते हैं, हमारे तो यह कर्म का उदय आवे... पानी का लोढ़ आता है। लोढ़ क्या कहते हैं? प्रवाह। जोरदार प्रवाह आवे तो बहना ही पड़े हमें। क्या हम टिक सकते हैं? कहाँ गये सेठ? पानी का प्रवाह बहुत आता है जोरदार, बहते हैं अन्दर। तनाता हैं, समझे? पानी आगे धक्का मारकर ले जाता है। क्या रह सके? इसी प्रकार कर्म का उदय आवे तो धक्का मारकर विकार कराता है। समझ में आया? ऐसी बात है नहीं।

उस समय में भी अपनी योग्यता से गति करता है मनुष्य, पानी के तीव्र प्रवाह से नहीं। परद्रव्य, परद्रव्य की पर्याय क्या करे? यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं कि अपने परिणाम की योग्यता ऐसी है तो होता है, ऐसा कहते हैं। यह तो दृष्टान्त है। है, खबर है न! नदी का प्रवाह... में आता है।

खबर है न सब। यहाँ तो कहते हैं... शास्त्र में भाषा हो, तत्प्रमाण बात करते हैं। है ही नहीं, एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय से हो, बिल्कुल तीन काल में किसी काल में पर के कारण से होता नहीं। विकार भी अपने कारण से होता है। वह तो बड़ी चर्चा हुई थी। पंचास्तिकाय की ६२ गाथा है। ६२ है न? गुजराती का ६२। बहुत चर्चा हुई थी। ईसरी में।

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण॥६२॥

बस। उसमें पाठ है टीका में। (१) 'जीव भावपर्याय से प्रवर्तमान आत्मद्रव्यरूप से कर्तृत्व को धारण करता हुआ...' अपनी विकारी पर्याय(रूप) परिणमनेवाला आत्मा ही कर्ता है। (२) 'भावपर्याय प्राप्त करने की शक्तिरूप से करणपने को अंगीकृत करता हुआ...' वह करण है। अपने में अपना करण है। दूसरा करण है ही नहीं। (३) 'प्राप्य ऐसी भावपर्यायरूप से कर्मपने का अनुभव करता हुआ। (४) पूर्व भावपर्याय का नाश होने पर भी ध्रुवत्व का अवलम्बन करने से...' छह बोल हैं। (५) 'उत्पन्न होनेवाले भावपर्यायरूप कर्म द्वारा समाश्रित होने पर भी, (६) धारण की हुई भावपर्याय का आधार होने से, ऐसा स्वयमेव षट्कारकरूप से वर्तता हुआ अन्य कारक की अपेक्षा नहीं रखता।' पाठ है। '**स्वयमेव षट्कारकीरुपेण व्यवतिष्ठमान न कारकान्तरमपेक्षते।**'

दूसरा कारण और कारक की अपेक्षा विकार करने में है नहीं। पंचास्तिकाय ६२ गाथा। १४ वर्ष पहले बहुत चर्चा हुई थी ईसरी में। सब भड़क गये। यह कहाँ? कहो, यहाँ शास्त्र आधार है। परद्रव्य के कर्ता-कर्म के कारण की अपेक्षा अपने विकार करने में है नहीं। कर्म कर्ता नहीं, कर्म कर्म नहीं, कर्म करण नहीं, कर्म अपादान नहीं, कर्म अधिकरण नहीं, कर्म सम्प्रदान नहीं। कर्म की पर्याय कर्म में और अपनी विकारीपर्याय अपने में। समझ में आया? खलबलाहट हो गयी थी। बंसीधरजी थे, फूलचन्दजी थे, सब थे, वर्णीजी थे। रामजीभाई थे। हमारे पण्डितजी थे। १४ वर्ष पहले जब सम्मेदशिखर गये थे न पहली यात्रा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो नहीं लिखा कहीं। कहीं है नहीं। स्व-पर प्रत्यय (में) विकार बताना है। स्व उपादान है, वहाँ विकार में कर्म निमित्त है, वह बताना है। परन्तु हुआ है अपने से। गाथा में है। विभाव बताना है न? १७२ गाथा। १७२ गाथा है न?

विभाव अकेला अपने से उत्पन्न हुआ है, परन्तु साथ में निमित्त है, यह बताना है। है तो अपने से उत्पन्न हुआ है। पर्याय अपनी पर्याय दूसरे से उत्पन्न हो? श्रद्धागुण की, चारित्रगुण की, आनन्दगुण की (पर्याय)। वह गुण तो त्रिकाल है। उसकी वर्तमान में पर्याय पर के कारण से उत्पन्न हो, तो तुमने क्या किया? समझ में आया? कठिन काम!

खलबलाहट हो गयी थी। बंसीधरजी ने ऐसा कहा, देखो, अभिन्न कारक की... परन्तु अभिन्न कारक की बात क्या? अपने से विकार अपने कारण से होता है, (अपने) षट्कारक से। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। यह पर्याय ही पर्याय का कारण है; द्रव्य-गुण भी नहीं, क्योंकि द्रव्य-गुण में विकार है नहीं। पर नहीं। एक समय की विकारी पर्याय का विकार कर्ता, विकार कर्म, विकार करण, विकार सम्प्रदान, विकार अपादान, विकार अधिकरण—छह बोल हैं।

ऐसे कर्म की पर्याय... ज्ञानावरणीयरूप पर्याय हुई कर्म में, तो यहाँ ज्ञान की हीन दशा की, तो हुई, पर की अपेक्षा है नहीं। उस परमाणु में उसी समय ऐसी पर्याय होने में कर्ता परमाणु है, कर्म परमाणु है, कारण-करण भी वही है। आत्मा ने राग किया तो वहाँ कर्मरूप होना पड़ा, ऐसी अपेक्षा कर्म की पर्याय में है नहीं। '**न कारकान्तरमपेक्षते**।'

बहुत चर्चा हुई थी। फिर बंसीधरजी यहाँ आये थे। उन्होंने स्वीकार किया था। 'परसंग एव'। देखो, 'पर एव' नहीं लिखा। कर्ता-कर्म में अभी आया न! 'परसंग एव'। पर का संग किया तो विकार करता है। पर एव—पर से विकार हुआ, ऐसी बात है ही नहीं तीन काल में। समझ में आया? भैया! बात तो ऐसी है, भगवान!

स्वतन्त्र है, प्रत्येक पर्याय स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र .... हम तो पहले (संवत्) १९७७ के वर्ष में भावनगर गये थे। ७७, हों! २३ और २७ = ५० हुए। ५० वर्ष पहले भावनगर गये थे। .... तो वहाँ एक डॉक्टर था। कानी डॉक्टर था, नहीं? कानी, कानी। ५० वर्ष पहले। घोघा के दरवाजे दवाखाना था। वह डॉक्टर कहता था, मुझे तो दवा पर कोई विश्वास है नहीं।

मुमुक्षु : डॉक्टर कहता था?

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर कहता था। कानी डॉक्टर। ५० वर्ष पहले की बात है। बड़ा ऑफिस था। घोघा के दरवाजे दवाखाना था। ५० वर्ष पहले हम गये थे न भावनगर। ५८ वर्ष हुए न दीक्षा को। ५० और ८। ५० वर्ष पहले गये थे। कण्ठ में ठीक नहीं था। डॉक्टर (कहे), मुझे (दवा पर) कोई विश्वास नहीं। क्योंकि डॉक्टर दवा करते हैं, परन्तु (रोग) मिटता नहीं। किसी को मिटता है, किसी को नहीं। वह उसके कारण से मिटता है, दवा से नहीं। समझ में आया?

और दूसरा डॉक्टर आता है। प्राणजीवन डॉक्टर है न? जामनगर में बड़ा डॉक्टर है। ढाई हजार—तीन हजार का वेतन मासिक। तो उसकी लड़की को छोटा सर्प काटा। पडका कहते हैं न? छोटा सर्प। काटा तो कहे, हम नहीं कर सकते। विश्वास कुछ नहीं होता। दूसरा कम्पाउण्डर था न! लड़की को... छोटा सर्प नहीं कहते हैं? काठियावाड में पडका कहते हैं। परन्तु उसको विश्वास नहीं था। वचना या (प्राण) छूटना, वह तो परमाणु की पर्याय स्वतन्त्र है। अपने से होता है, पर से कुछ नहीं होता। पर्याय में निमित्त (को) कर्ता (मानने से) मिथ्यात्व होता है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य की मित्रता करना, वह एकत्वबुद्धि है, वह मिथ्यात्वभाव है। सदृश है ही नहीं, विकार सदृश होता नहीं। अपने कारण से विसदृश होता है। रात्रि को प्रश्न करना।

यहाँ तो समय-समय में अपनी पर्याय (अपने से होती है)। हल्दी और साबुन घिसो तो लाल हो जाता है, ऐसा है नहीं। अपनी पर्याय का उत्पाद... उस समय का व्यय और उत्पाद अपने से होता है। तीन काल-तीन लोक में यह बात निश्चित किये बिना उसकी द्रव्य की दृष्टि व्यवहार सदृशता नहीं आती। अपनी पर्याय के कारण से सब होता है। वह तो चलता है यहाँ। देखो न, **त्यौं त्यौं होइ विशेष**। उसमें तो बहुत लिया है। अर्थ किया है न इसमें। २८वाँ (कलश) है न? देखो, लिखा है। अभी यह गाथा आयेगी न!

'रागजन्मनि निमित्ततां...' 'रागजन्मनि निमित्ततां...' आयेगा न अभी? उसमें अर्थ लिखा है। राजमलजी। क्या लिखा है, देखो। आठ कर्म, शरीरादि नोकर्म, बाह्य सामग्री—पुद्‍गलद्रव्य का निमित्त पाकर जीव रागादि अशुद्धरूप परिणमता है, ऐसी श्रद्धा करता है जो कोई जीव राशि, (वह) मिथ्यादृष्टि है, अनन्त संसारी है... पर का भी

आ गया न? '**रागजन्मनि निमित्ततां...**' यहाँ २८वाँ कलश है। यहाँ (समयसार में धारावाही) २२१वाँ कलश है। पहले यह कलश आ गया है न? कलशटीका पहली शीतलप्रसाद ने छपवाई थी। बहुत सरस। कलशटीका राजमल्लजी की ढुंढारी भाषा में। अभी यहाँ से (हिन्दी) हुआ। पहले ढुंढारी भाषा में है। शीतलप्रसादजी ने सूरत से प्रकाशित की थी।

यहाँ तो सब ग्रन्थ पहले से आते थे न। यहाँ कहते हैं, देखो कि परद्रव्य अर्थात्... जीवद्रव्य की परिणति... अशुद्ध परिणमता जीवद्रव्य के विषय में परद्रव्य अर्थात् आठ कर्म, शरीर आदि नोकर्म, बाह्यभोग सामग्रीरूप '**निमित्ततां कलयन्ति**' पुद्गलद्रव्य का निमित्त पाकर जीव रागादि अशुद्धरूप परिणमता है, ऐसी श्रद्धा करता है, (ऐसी) जीवराशि मिथ्यादृष्टि है, अनन्त संसारी है। यह तो पहले की है, राजमल्लजी की टीका है। २२१ कलश।

'संसारी जीव का जिसका ऐसा विचार है, संसारी जीव की रागादि अशुद्ध परिणमने की शक्ति नहीं, पुद्गलकर्म बलात्कार से परिणमाता है। (ऐसा हो तो) पुद्गलकर्म तो सर्वथा विद्यमान ही है, (तो) जीव को शुद्ध परिणाम का अवसर कहाँ? कोई अवसर नहीं रहेगा।' पर के कारण से यदि अशुद्धता हो तो शुद्ध करने का अवसर रहता नहीं। अपने कारण से अशुद्धता हो तो पुरुषार्थ से अशुद्धता टल सकती है। समझ में आया? पर के कारण से अशुद्धता पर्याय में हो, तो वह तो पर छोड़े तब छूटेगा, तो अपना अधिकार रहा ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज लोगों को मिली नहीं। तीनों सम्प्रदाय में कर्म से होता है, ऐसा दृढ़ अभिप्राय हो गया है। पण्डित लोग और बाकी सबका। एक यह जरा गड़बड़ (हो गयी है)।

जन्मघुट्टी में मिला है ऐसा मूलचन्दभाई कहते हैं। गळथूथी, समझे? जन्मघुट्टी। हमारी देशी भाषा है, गळथूथी। यह जन्मघुट्टी में मिला है, ऐसी बात है। कर्म से होता है, कर्म से होता है। यह तीन काल में सत्य है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहाँ? किसी को हो। अनादि काल से... पड़ा है।

....जो जोड़ते हैं, वे तोड़ते हैं। अज्ञान के जोड़ में राग-द्वेष उत्पन्न करता है, तो तोड़ डाले। 'मैं तो आत्मा हूँ। चिदानन्द आत्मा में राग-द्वेष, मिथ्यात्व उत्पन्न हो, (ऐसा) तीन काल में है नहीं।' आहाहा! ऐसे पुरुषार्थ से अपने जोर—बल से आत्मा मिथ्यात्व नाश कर सकता है। अपने से होता है, ऐसा माने तो। पर से होता है, ऐसा माने तो उसे तोड़ने की अवस्था रहती ही नहीं। हे भगवान! हे कर्म! हट जा भाई! मुझे धर्म करना है। ऐसा है? देखो, **अज्ञानियों को सत्यमार्ग का उपदेश**। यह कलश है न २८। पहले कहा न अन्दर?

राग जन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः।।२८।।

रंडुवा है, विधुर है। विधुर शब्द पड़ा है। रंडुवा हुआ है। पुरुषार्थ को नहीं समझता है। पर से राग होता है, पर से राग... विधवा है तू। महिला को विधवा कहते हैं, इसे (पुरुष को) विधुर कहते हैं। ऐ सेठ! आत्मा स्वामी तो रहा नहीं। विकार करने में अपना आत्मा तो रहा नहीं। विधुर है, रंडुवा है तू। ऐई पद्मचन्दजी! ऐसी बात है। आहाहा! '**उतरन्ति न हि मोहवाहिनी शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः**' अन्धा है। तुझे कर्म विकार कराता है, पर कराता है, अन्धा है क्या? अनन्त संसारी है, ऐसा कहा उसमें। कर्म के जोर से विकार होवे। जैसा जैसा जोर आवे, ऐसा ऐसा करना पड़े। ऐसा है नहीं, भाई!

मुमुक्षु : कर्म का अनुभाग हो तो क्या हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म का अनुभाग कर्म में रहा। वहाँ कहाँ घुस गया? कर्म का अनुभाग तो अजीव है। तो अजीव की पर्याय जीव में घुस जाती है? अपना अपराध... उसमें कहा न? पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। महाराज! सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् तीर्थंकरगोत्र बँधता है और आहारकशरीर भी मुनि होने के पश्चात् बँधता है। वह क्या चीज़ है? वह गुण से बँधा है या नहीं? समकित होने के पश्चात्? कहते हैं, नहीं, नहीं। भाई! यह तो अपना अपराध था। शुभ उपयोग का अपराध है। शुभ उपयोग के अपराध से तीर्थंकरगोत्र बँधा है। गजब है! तीर्थंकरप्रकृति भी शुभ उपयोग का अपराध है। भैया! पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) में है।

मुमुक्षु : शुभ उपयोगोऽय अपराधः।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ उपयोग ही अपराध है। कितनी गाथा है? ५० ? २२० गाथा।

‘**रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।**’ मोक्ष का मार्ग तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्मल दशा है। ‘**आस्त्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽयमपराधः**’ अमृतचन्द्राचार्य का मूल श्लोक। समझ में आया? पुरुषार्थसिद्धि उपाय। अपराध है। गजब बात है!

मुमुक्षु : ऐसा तो पुरुषार्थसिद्धि करने के लिये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहे, तीर्थंकरगोत्र बाँधा, यह लाभ है। यहाँ तो कहा, अपराध है। सुन तो सही! तुझे खबर नहीं। सराग है, राग अपराध है।

मुमुक्षु : वह हो वहाँ तक मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकरगोत्र पड़ा है तो दो भव तो हो गये। केवलज्ञान नहीं ले सकता। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ है, भगवान! आत्मा ऐसी चीज़ है।

मुमुक्षु : भगवान है न आत्मा तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान (आत्मा) तीन लोक का नाथ है। अनन्त सिद्ध उसके गर्भ में रहे हैं। उसको भूलकर विकार करता है। यहाँ तो ज्ञानी को विकार है ही नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। ज्ञानी को तो निर्मल आनन्द की पर्याय उत्पन्न होती है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

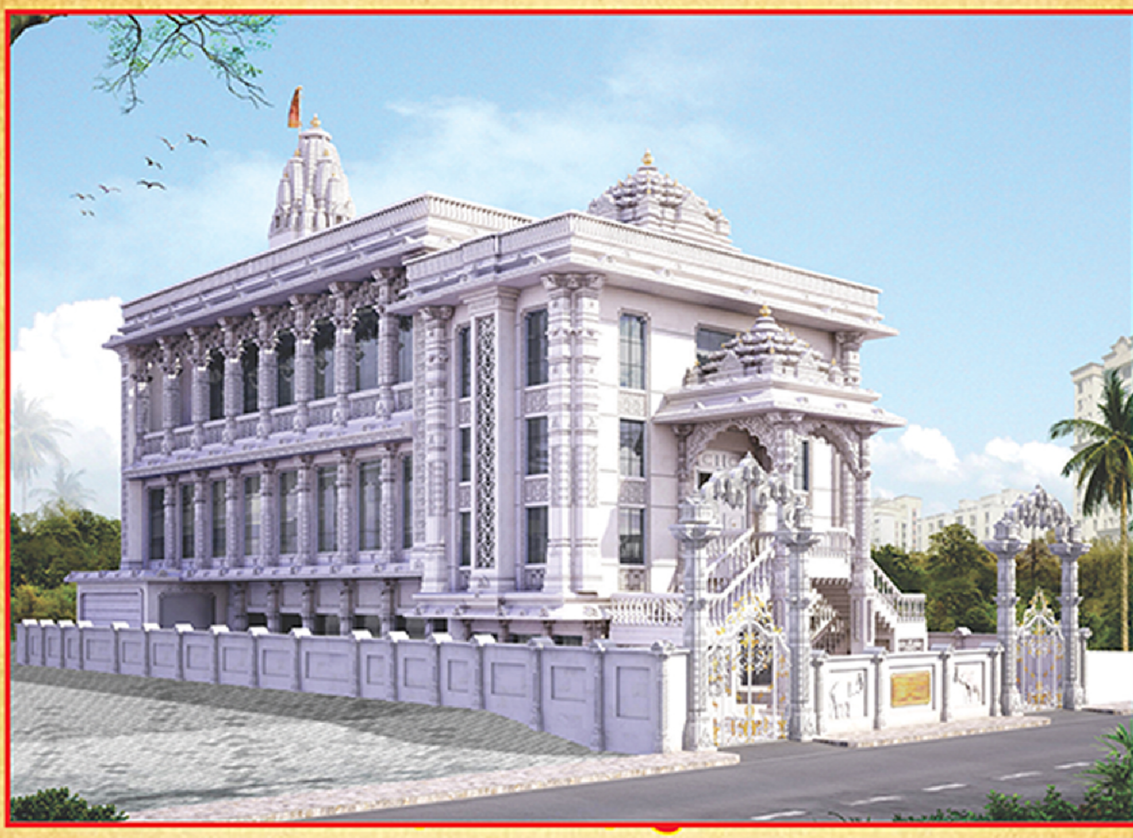

श्री सीमंधरस्वामी दिगंबर जिनमंदिर
विले पार्ला , मुंबई